ॐ

धर्मध्यान

प्रकाशक
धर्मोदय विद्यापीठ
सागर (मध्यप्रदेश)

कृति	:	**धर्मध्यान**
आशीर्वाद	:	संयम स्वर्ण महोत्सव मण्डित **आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज**
प्रसंग	:	**मुनि श्री सुव्रतसागर जी महाराज** का स्वर्णिम अवतरण वर्ष एवं रजत दीक्षा वर्ष 2023
संयोजन	:	बा॰ ब्र॰ (डॉ॰) भरत भैय्या, सागर 7582-986-222 बा॰ ब्र॰ संजय भैय्या, मुरैना 94251-28817
संस्करण	:	प्रथम, जनवरी, 2024
आवृत्ति	:	550
प्राप्तिस्थान	:	धर्मोदय विद्यापीठ 170, गीतांजली ग्रीन सिटी सागर (मध्यप्रदेश)
मुद्रक	:	विकास ऑफसेट प्रिंटर्स एण्ड पब्लिसर्स भोपाल (मध्यप्रदेश)

अनुक्रमणिका

शास्त्र मंगलाचरण १

प्रतिक्रमण

मुनि प्रतिक्रमण ३

मुनि पाक्षिक प्रतिक्रमण ४९

ईर्यापथभक्ति ९४

श्रावक प्रतिक्रमण १०६

संस्कृत भक्तियाँ

सिद्धभक्ति १३८

श्रुतभक्ति १४४

चारित्रभक्ति १५१

योगिभक्ति १५६

आचार्यभक्ति १६१

पञ्चमहागुरुभक्ति १६८

शान्तिभक्ति १७१

समाधि भक्ति १७९

निर्वाणभक्ति १८५

नंदीश्वरभक्ति १९६

चैत्यभक्ति २१५

धर्म आराधना २२८

स्तोत्र पाठ

मङ्गलाष्टक स्तोत्र २२९

सुप्रभात स्तोत्र २३३

दर्शन पाठ २३९

वीतराग स्तोत्र २४२

परमानंद स्तोत्र २४५

गोम्मटेस – थुदि २५०

पञ्चमहागुरु भक्ति २५३

शान्ति स्तवन २५५

चौबीस तीर्थंकर स्तुति २५६

भक्तामर स्तोत्र २६३

कल्याणमन्दिर स्तोत्र २८२

एकीभाव स्तोत्र २९९

विषापहार स्तोत्र ३११

प्रभु स्तुति ३२३

भूपाल जिनचतुर्विंशतिका ३२४

भावना दिन रात मेरी ३३५

भावना द्वात्रिंशतिका ३३६

मृत्यु महोत्सव ३४६

इष्ट प्रार्थना ३५०

छहढाला ३५१
समाधि भावना ३६१
छहढाला ३६२

हिन्दी भक्तियाँ

सिद्धभक्ति ३७५
चारित्रभक्ति ३७६
योगिभक्ति ३७८
आचार्यभक्ति ३८०
निर्वाणभक्ति ३८२
नंदीश्वरभक्ति ३८८
चैत्यभक्ति ३९६
शान्तिभक्ति ४०३
पञ्चमहागुरुभक्ति ४०६
समाधि भक्ति ४०८

हिन्दी पाठ

बारह भावना ४१०
गोम्मटेश अष्टक ४१४
गोम्मटेश अष्टक ४१५
आत्मा हमारा ४१६
वैराग्य भावना ४१७
आत्मार्थी की भावना ४१९
मेरी भावना ४२०
आलोचना-पाठ ४२२
सामायिक पाठ ४२५
आत्म कीर्तन ४२७
निर्वाण काण्ड ४२८
निर्वाण काण्ड ४३०
थुति शतक ४३२
रत्नाकर पञ्चविंशतिका ४४१
भक्तामर स्तोत्र भाषा ४४५

ग्रन्थ पाठ

जिनसहस्त्रनाम स्तोत्र ४५२
रत्नकरण्डक श्रावकाचार ५००
बृहत्स्वयंभू स्तोत्र ५४०
स्वरूप सम्बोधन ५८८
इष्टोपदेश ५९५
द्रव्य संग्रह ६०७
प्रश्नोत्तर रत्नमालिका ६२१
समाधितंत्र ६२८
बारसाणुपेक्खा ६५५
शास्त्रसार समुच्चय (मूल) ६७६
परीक्षामुख सूत्र ६७९
आलापपद्धति ७०१
देवागम स्तोत्र
(आप्तमीमांसा) ७२७
तत्त्वार्थसूत्र ७५५
जीवन का ध्येय ७६५
कौन-कौन सी भक्ति
कहाँ-कहाँ करनी चाहिए ७६६

शास्त्र प्रकाशन में सहयोगी शहडोल के श्रावक गण

११०००	दयाचन्द्रजी, हर्ष जी, पेंड्रा
११०००	अनिल जैन आयुषी, स्वाति जैन इंजीनियर
५१५१	राशि जैन, राजकमल बुक स्टोर्स, शहडोल
५१००	श्री महेन्द्र जी, श्रीमती मधु, मानसी, आयुषी, अनुदीश
५१००	रितिका, ऋषिका
५१००	निशांत रागिनी जैन
५१००	दिनेश, दीपाली, सुप्री, दिशा
५१००	आरती मुकेश जैन टोरी मयुख
५१००	सचिन लीना चौधरी
५१००	महावीर ऑटो पार्ट्स
५१००	अनिल अभिलाषा सुनीता
५१००	एन. जी. परिवार
५१००	श्री सुरेश चौधरी श्रीमती मणि जैन
५१००	श्री हेमचंद किरण जैन
५१००	श्री दीपक दीपा जैन
३१००	कु. अदिति जैन, मंडला वाला परिवार
२१००	श्री सुभाष, निखिलेश, लक्ष्मी सुज्जल उज्वल
२१००	सतीश चूड़ी

२१००	सुलोचना जैन कोटा
११११	राजकमल परिवार शहडोल
११००	जयकुमार श्रेयांश जैन
११००	रिंकू, गुनगुन नायक
११००	जयकुमार जैन अमित नायक
११००	श्रीमती कल्पना जैन, वैशाली जैन
११००	श्रीमती चंदा सिंघई
११००	सेहजल, खुशी
११००	स्मृतिशेष अंगूरी जैन, अखिलेश शालिनी
११००	श्री संजय, राखी जैन
११००	पारस टाइल्स
११००	हर्षित हर्षिता
११००	श्रीमती शीलरानी, साधना, कमलेश जैन, दिव्या, शशांक जैन
११००	हार्दिक, प्रियांशी जैन
११००	संचित, सांची नायक
५००	कु. अंशिका जैन

मंगलाचरण

मंगलं भगवान्नर्हन् मंगलं सुसिद्धेश्वरः,
मंगलं श्रमणाचार्यो मंगलं साधुपाठकौ।
मंगलं जिननामानि मंगलं नवदेवता,
मंगलं शाश्वतमंत्रं मंगलं जिनशासनं ॥

मंगल मंत्र

धर्म चाहने वाले बोलें, ओम् णमो अरिहंताणं।
मोक्ष चाहने वाले बोलें, ओम् णमो सिद्धाणं।
दीक्षा चाहने वाले बोलें, ओम् णमो आइरियाणं।
शिक्षा चाहने वाले बोलें, ओम् णमो उवज्झायाणं।
शान्ति चाहने वाले बोलें, ओम् णमो लोए सव्वसाहूणं ॥
जिनशासन के दर्शक बोलें, एसो पंच णमोयारो।
नवदेवों के सेवक बोलें, सव्व-पावप्पणासणो।
सिद्धों के आराधक बोलें, मंगलाणं च सव्वेसिं।
शुद्धातम के भावक बोलें, पढमं होई मंगलम् ॥

मंगल भावना

तेरा मंगल मेरा मंगल, सबका मंगल होवे।
सुखिया होवे सारी दुनियाँ, कोई दुखी न होवे ॥
कण-कण मंगल क्षण-क्षण मंगल, जन - जन मंगल होवे।
हे प्रभु! निजमंगल के पहले, जग का मंगल होवे ॥१॥
तेरा मंगल...॥

जिन माँ बापू ने जन्मा है, उनका मंगल होवे।
जिन बंधु ने पाला पोषा, उनका मंगल होवे ॥
जिन मित्रों ने हमें सम्हाला, उनका मंगल होवे।
जिन गुरुओं ने ज्ञान दिया है, उनका मंगल होवे ॥२॥
तेरा मंगल...॥

जो धरती नभ आश्रय देते, उनका मंगल होवे।
जिस जलवायु से जीते हैं, उसका मंगल होवे ॥

जिस अग्नि से जीवन चलता, उसका मंगल होवे।
जिन तरुओं से भोजन मिलता, उनका मंगल होवे ॥३॥
तेरा मंगल...॥
हम जिस दुनियाँ में रहते हैं, उसका मंगल होवे।
हम जिस भारत देश में रहते, उसका मंगल होवे ॥
हम जिस राज्य प्रान्त में रहते, उसका मंगल होवे।
हम जिस नगर शहर में रहते, उसका मंगल होवे ॥४॥
तेरा मंगल...॥

❑ ❑ ❑

तीर्थंकर का बल

बारह मनुष्य के बराबर	–	एक बैल में बल
बारह बैलों के बराबर	–	एक भैंसा
बारह भैंसा के बराबर	–	एक घोड़ा
सौ घोड़े के बराबर	–	एक हाथी
एक हजार हाथियों के बराबर	–	एक सिंह
दश हजार सिंहों के बराबर	–	एक शार्दूल
एक लाख शार्दूल के बराबर	–	एक अष्टापद
दो अष्टापदों के बराबर	–	एक नारायण
नौ नारायणों के बराबर	–	एक चक्रवर्ती
करोड़ चक्रवर्तियों के बराबर	–	एक देव
करोड़ देव के बराबर	–	एक इन्द्र
असंख्यात इन्द्र के बराबर	–	एक तीर्थंकर में बल होता है।

मंगलाचरण

ॐ नमः सिद्धेभ्यः ! ॐ नमः सिद्धेभ्यः !! ॐ नमः सिद्धेभ्यः !!!

अर्थ—(पाँचों परमेष्ठी सहित) सिद्धों को नमस्कार हो।

णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं॥

अर्थ—लोक के समस्त अरहंतों को नमस्कार हो, सिद्धों को नमस्कार हो, आचार्यों को नमस्कार हो, उपाध्यायों को नमस्कार हो और साधुओं को नमस्कार हो।

ओकारं बिन्दुसंयुक्तं, नित्यं ध्यायन्ति योगिनः।
कामदं मोक्षदं चैव, ओंकाराय नमोनमः॥

अर्थ—योगीजन बिन्दु सहित ओम् (ॐ) अक्षर का सर्वदा ध्यान करते हैं, जो कि नियम से अभिलषित पदार्थ और मोक्ष को देने वाला है। ऐसे ओंकार को नमस्कार हो।

अविरलशब्दघनौघ-प्रक्षालित-सकल-भूतलकलङ्का।
मुनिभिरुपासिततीर्था, सरस्वती हरतु नो दुरितम्॥

अर्थ—निरन्तर शब्दरूपी मेघों के समूह से धो दिया है सम्पूर्ण पृथ्वीतल के कलंक (मिथ्यात्व) को जिसने जिस तीर्थ की उपासना मुनियों ने की है, ऐसी सरस्वती-गंगा हम सबके पापों को हरे।

अज्ञानतिमिरान्धानां, ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन, तस्मै श्री गुरवे नमः॥

अर्थ—अज्ञानरूपी अन्धकार से ग्रस्त अन्धे पुरुष की आँखें जिन्होंने ज्ञानरूपी अञ्जन की सलाई से खोल दी हैं, ऐसे उन श्री गुरु के लिए मेरा नमस्कार हो।

श्री परमगुरुभ्यो नमः, परम्पराचार्यगुरुभ्यो नमः सकलकलुष विध्वंसकं, श्रेयसां परिवर्द्धकं, धर्मसम्बन्धकं, भव्यजीवमनः प्रतिबोध-कारकमिदं शास्त्रं श्री (ग्रन्थ का नाम) नामधेयं, अस्य मूलग्रन्थकर्त्तारः श्री सर्वज्ञ-देवास्तदुत्तरग्रन्थकर्त्तारः श्री गणधरदेवाः प्रतिगणधर-देवास्तेषां वचोऽनुसार-मासाद्य पूज्य श्री (आचार्य का नाम) आचार्येण विरचितं इदं शास्त्रं। श्रोतारः सावधानतया शृण्वन्तु।

अर्थ—परम गुरुओं को नमस्कार हो तथा परम्परागत आचार्य गुरुओं को नमस्कार हो। सम्पूर्ण कर्मों का नाशक, कल्याणों का बढ़ाने वाला, धर्म से सम्बन्ध कराने वाला, भव्यजीवों के मन को जागृत करने वाला, यह शास्त्र (ग्रन्थ का नाम) है। इसके मूल ग्रन्थ बनाने वाले तो सर्वज्ञदेव हैं। उनके अनन्तर ग्रन्थ रचयिता गणधरदेव एवं प्रतिगणधरदेव हैं। आगे उन्हीं के वचन के अनुसार पूज्य श्री (आचार्य का नाम) आचार्य के द्वारा प्राप्त कर रचा गया यह शास्त्र है। श्रोतागण सावधानी पूर्वक सुनें।

मङ्गलं भगवान् वीरो, मङ्गलं गौतमो गणी।
मङ्गलं कुन्दकुन्दाद्यो, जैनधर्मोस्तु मङ्गलम्॥

अर्थ—श्री १००८ भगवान् महावीर मंगल-स्वरूप हों, गौतम गणधर मंगल-स्वरूप हों, सबमें प्रथम कुन्दकुन्दादि आचार्य प्रवर मंगल-स्वरूप हों, जैनधर्म मंगल-स्वरूप हो।

सर्वमङ्गलमाङ्गल्यं, सर्वकल्याणकारकम्।
प्रधानं सर्वधर्माणां, जैनं जयतु शासनम्॥

अर्थ—सभी मंगलों में मंगल स्वरूप, सभी के कल्याण को करने वाला, सभी धर्मों में प्रधान जिनेन्द्र तीर्थंकरों द्वारा कहा गया यह जैनधर्म का शासन जयवन्त हो।

❑ ❑ ❑

मुनि प्रतिक्रमण

जीवे प्रमाद - जनिताः प्रचुराः प्रदोषाः,
यस्मात्-प्रतिक्रमणतः प्रलयं प्रयान्ति।
तस्मात्-तदर्थ-ममलं मुनि-बोधनार्थं,
वक्ष्ये विचित्रभवकर्म-विशोधनार्थम् ॥१॥

अन्वयार्थ—(यस्मात्) जिस **(प्रतिक्रमणतः)** प्रतिक्रमण से **(जीवे)** जीव में **(प्रमाद-जनिताः)** प्रमाद से उत्पन्न **(प्रचुराः)** अनेक **(प्रदोषाः)** दोष **(प्रलयं)** क्षय को **(प्रयान्ति)** प्राप्त होते हैं। **(तस्मात्)** इसलिये **(तदर्थं)** उनके लिये **(विचित्र-भव-कर्म विशोधनार्थं)** अनेक भवों में उपार्जित कर्मों का विशोधन अर्थात् क्षय करने के लिये यह **(मुनि बोधनार्थम्)** मुनियों को ज्ञान कराने के लिये **(अमलं)** विमल/निर्मल प्रतिक्रमण **(वक्ष्ये)** कहूँगा।

''भूतकालीन दोषों का निराकरण करना प्रतिक्रमण है।''

उद्देश्य सूत्र

पापिष्ठेन दुरात्मना, जडधिया मायाविना लोभिना,
रागद्वेष-मलीमसेन मनसा, दुष्कर्म यन्निर्मितम्।
त्रैलोक्याधिपते!जिनेन्द्र! भवतः, श्रीपाद-मूलेऽधुना,
निन्दापूर्व-महं जहामि सततं, वर्वर्तिषुः सत्पथे ॥२॥

अन्वयार्थ—(जिनेन्द्र) हे जिनेन्द्र ! **(त्रैलोक्याधिपते)** हे तीन लोक के अधिपति! मुझ **(पापिष्ठेन)** पापी **(दुरात्मना)** दुष्ट **(जड़धिया)** जड़ बुद्धि **(मायाविना)** मायाचारी **(लोभिना)** लोभी **(रागद्वेष-मलीमसेन)** राग-द्वेष रूपी मल से मलिन **(मनसा)** मन से **(यत्)** जो **(दुष्कर्म)** अशुभ कर्म **(निर्मितं)** किये हैं। **(सततं)** निरंतर **(सत्पथे)** सन्मार्ग में **(वर्वर्तिषुः)** प्रवृत्ति करने की इच्छा करने वाला **(अहं)** मैं **(अधुना)** इस समय **(भवतः)** आपके **(श्री-पादमूले)** अनन्त चतुष्टयरूप लक्ष्मी से सम्पन्न चरण-कमलों में **(निन्दापूर्वं)** निन्दापूर्वक **(जहामि)** छोड़ता हूँ।

संकल्प सूत्र

खम्मामि सव्वजीवाणं सव्वे जीवा खमंतु मे।
मित्ती मे सव्वभूदेसु, वेरं मज्झं ण केणवि ॥३॥

अन्वयार्थ—(सव्वजीवाणं) समस्त जीवों को **(खम्मामि)** मैं क्षमा करता हूँ **(सव्वे जीवा)** सभी जीव **(मे खमंतु)** मुझे क्षमा करें। **(मे)** मेरा **(सव्वभूदेसु)** सभी जीवों में **(मित्ती)** मैत्रीभाव है, **(केण वि)** और किसी के प्रति **(मज्झं)** मेरा **(वैरं)** वैरभाव **(ण)** नहीं है।

राग परित्याग सूत्र

राग-बंध-पदोसं च, हरिसं दीण-भावयं।
उस्सुगत्तं भयं सोगं रदिमरदिं च वोस्सरे ॥४॥

अन्वयार्थ—(राग-बंध-पदोसं) राग-बन्ध-द्वेष **[हरिसं]** हर्ष (च) और **(दीणभावयं)** दीनभाव, **(उस्सुगत्तं)** पञ्चेन्द्रिय विषयों की वासना की उत्सुकता **(भयं)** भय **(सोगं)** शोक, **(रदिं)** रति **(च)** और **(अरदिं)** अरति को मैं **(वोस्सरे)** छोड़ता हूँ।

पश्चात्ताप सूत्र

हा दुट्ठ-कयं हा दुट्ठ-चिंतियं भासियं च हा दुट्ठं।
अंतो अंतो डज्झमि पच्छत्तावेण वेयंतो ॥५॥

अन्वयार्थ—(हा दुट्ठकयं) हा! मैंने जो दुष्ट कार्य किया है, **(हा दुट्ठचितिंयं)** हा! मैंने जो दुष्ट चिन्तन किया है, **(च)** और **(हा दुट्ठ भासियं)** हा! मैंने जो दुष्ट वचन कहे हैं। **(वेदंतो)** उन सबका वेदन करता हुआ **(अंतो अंतो)** मैं अन्दर ही अन्दर **(पच्छत्तावेण)** पश्चात्ताप से **(डज्झमि)** जल रहा हूँ।

दव्वे खेत्ते काले, भावे य कदाऽवराह-सोहणयं।
णिंदणगरहण-जुत्तो, मणवयकायेण पडिक्कमणं ॥६॥

अन्वयार्थ—(दव्वे) द्रव्य में **(खेत्ते)** क्षेत्र में **(काले)** काल में **(य)** और **(भावे)** भाव में **(कदावराह सोहणयं)** किये अपराधों की शोधना करने के लिये **(णिंदण-गरहण-जुत्तो)** निंदा और गर्हा से युक्त होता हुआ **(मण-वच-कायेण)** मन-वचन-काय से **(पडिक्कमणं)** मैं प्रतिक्रमण करता हूँ।

एइंदिया बेइंदिया तेइंदिया चउरिंदिया पंचिंदिया पुढवि-काइया आउकाइया तेउकाइया वाउकाइया-वणप्फदि-काइया तसकाइया एदेसिं उद्दावणं परिदावणं विराहणं उवघादो कदो वा, कारिदो वा,

कीरंतो वा समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

अन्वयार्थ—(ए-इंदिया) एकेन्द्रिय **(बे-इंदिया)** दो इन्द्रिय **(ते इंदिया)** तीन इंद्रिय **(चतुरिंदिया)** चार इन्द्रिय **(पंचिंदिया)** पञ्चेन्द्रिय **(पुढवि काइया)** पृथ्वीकायिक **(आउ-काइया)** जलकायिक **(तेउ काइया)** अग्निकायिक **(वाउ-काइया)** वायुकायिक **(वणफ्फदि-काइया)** वनस्पति-कायिक **(तस-काइया)** त्रसकायिक **(एदेसिं)** इन जीवों का **(उद्दावणं)** मारण **(परिदावणं)** संतापन **(विराहणं)** विराधन **(उवघादो)** उपघात अर्थात् एकदेश घात **(कदो)** किया हो **(वा)** अथवा **(कारिदा)** दूसरों से कराया हो **(वा)** अथवा **(कीरंतो वा समणुमण्णिदो)** करने वालों की अनुमति की हो **(तस्स)** उससे होने वाले **(मे दुक्कडं)** मेरे दुष्कृत्य/पाप **(मिच्छा)** मिथ्या होवें।

वद-समिदिंदिय-रोधो -लोचा - वासयमचेलमण्हाणं।
खिदिसयण-मदंतवणं, ठिदिभोयण-मेयभत्तं च ॥१॥
एदे खलु मूलगुणा समणाणं जिणवरेहिं पण्णत्ता।
एत्थ पमाद-कदादो अइचारादो णियत्तोऽहं ॥२॥

अन्वयार्थ—(वद-समिदिंदियरोधः) पाँच महाव्रत, पाँच समिति, पंचेन्द्रिय निरोध **(लोचो)** लोच करना **(आवासयं)** षट् आवश्यक **(अचेलं)** वस्त्र मात्र का त्याग अर्थात् नग्नता **(अण्हाणं)** स्नान का त्याग **(खिदि सयणं)** भूमि शयन **(अदंतवणं)** दंत धवन नहीं करना **(ठिदि-भोयणं)** भूमि पर खड़े होकर भोजन करना **(च)** और **(एयभत्तं)** दिन में एक बार भोजन करना **(खलु)** निश्चय से **(एदे)** ये **(समणाणं)** मुनियों के **(मूलगुणा)** अट्ठाईस मूलगुण **(जिणवरेहिं)** जिनेन्द्र देव ने **(पण्णत्ता)** कहे हैं। **(एत्थ)** इन मूलगुणों में **(पमाद कदादो)** प्रमाद जनित **(अइचारादो)** अतिचारों से **(अहं)** मैं **(णियत्तः)** निवृत्त होता हूँ।

छेदोवट्ठावणं होदु मज्झं।

अन्वयार्थ—(मज्झं) मेरे **(छेदोवट्ठावणं)** छेदोपस्थापना अर्थात् प्रमाद से लगे दोषों का निराकरण होकर पुनः व्रतों की स्थापना **(होदु)** होवे।

पंचमहाव्रत-पंचसमिति-पंचेन्द्रियरोधलोच षडावश्यक

क्रियादयो, अष्टाविंशतिमूलगुणाः उत्तम क्षमामार्दवार्जवशौच-सत्य-संयमतपस्त्यागा-किञ्चन्य-ब्रह्मचर्याणि दशलाक्षणिको धर्मः, अष्टादशशीलसहस्त्राणि, चतुरशीतिलक्षगुणाः, त्रयोदशविधं चारित्रं, द्वादशविधं तपश्चेति। सकलं सम्पूर्णं अर्हत्-सिद्धा-चार्योपाध्यायसर्वसाधु-साक्षिकं सम्यक्त्वपूर्वकं दृढव्रतं सुव्रतं, समारूढं ते मे भवतु ॥३॥

अथ सर्वातिचार-विशुद्ध्यर्थं दैवसिक (रात्रिक) प्रतिक्रमण-क्रियायां कृतदोषनिराकरणार्थं पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्म-क्षयार्थं, भावपूजा-वन्दना-स्तव-समेतं आलोचना-श्रीसिद्ध-भक्ति-कायोत्सर्गं करोम्यहम्। (इति प्रतिज्ञाप्य)

णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ॥

चत्तारि मंगलं - अरहंतामंगलं, सिद्धामंगलं, साहुमंगलं, केवलि-पण्णत्तो धम्मो मंगलं। चत्तारि लोगुत्तमा - अरहंतालोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा साहु लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो। चत्तारि सरणं पव्वज्जामि-अरहंतासरणं पव्वज्जामि, सिद्धासरणं पव्वज्जामि, साहुसरणं पव्वज्जामि, केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि।

अड्ढाइज्जदीवदो समद्वेसु पण्णारस-कम्म-भूमिसु, जावअरहंताणं, भयवंताणं, आदियराणं, तित्थयराणं, जिणाणं, जिणोत्तमाणं, केवलियाणं, सिद्धाणं, बुद्धाणं, परिणिव्वुदाणं, अंतयडाणं, पार-गयाणं, धम्माइरियाणं, धम्मदेसयाणं, धम्मणायगाणं, धम्म-वर-चाउरंग-चक्कवट्टीणं, देवाहि-देवाणं, णाणाणं, दंसणाणं, चरित्ताणं सदा करेमि किरियम्मं। करेमि भंते! सामाइयं सव्वसावज्ज-जोगं पच्चक्खामि जावज्जीवं तिविहेण मणसा वचसा काएण, ण करेमि, ण कारेमि, ण अण्णं करंतं पि समणुमणामि तस्स भंते! अइचारं पडिक्कमामि, णिंदामि, गरहामि, अप्पाणं, जाव अरहंताणं, भयवंताणं, पज्जुवासं करेमि तावकालं पावकम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि।

अन्वयार्थ—(अड्ढाइज्जदीव दो समुद्देसु) जम्बूद्वीप, धातकी खण्ड और अर्द्ध पुष्करद्वीप-इन ढाई द्वीपों तथा लवण और कालोदधि इन दो समुद्रों में **(पण्णारस कम्मभूमिसु)** पाँच भरत, पाँच ऐरावत और पाँच विदेह—इन१५ कर्मभूमियों में होने वाले **(जाव)** जितने **(अरहंताणं)** अरहंत **(भयवंताणं)** भगवन्त **(आदियराणं)** आदितीर्थ प्रवर्तक **(तित्थयराणं)** तीर्थंकर **(जिणाणं)** कर्मशत्रुओं को जीतने वाले जिनों को **(जिणोत्तमाणं)** जिनों में श्रेष्ठ तीर्थंकरों को **(केवलियाणं)** केवलज्ञान सम्पन्न ऐसे केवलियों को **(सिद्धाणं)** सिद्धों को **(बुद्धाणं)** त्रिकालवर्ती समस्त द्रव्य-गुण-पर्यायों के ज्ञाता जिनसिद्धों को **(परिणिव्वुदाणं)** मुक्ति को प्राप्त करने वाले सिद्धों को **(अंतयडाणं)** अन्तकृत-केवलियों को **(पारयडाणं)** संसार-सागर को पार करने वालों को **(धम्माइरियाणं)** धर्माचार्य को **(धम्मदेसयाणं)** धर्मोपदेश देने वाले उपाध्यायों को **(धम्मणायगाणं)** धर्मानुष्ठान करने वाले धर्मनायक साधु **(धम्मवर चाउरंग चक्क वट्टीणं)** उत्कृष्ट धर्मरूपी चतुरंग सेना (चार आराधना) के अधिपति **(देवाहिदेवाणं)** देवाधिदेव अर्थात् चतुर्निकाय देवों के द्वारा वन्दनीय होने से जो देवों के भी देव हैं **(णाणाणं)** ज्ञान **(दंसणाणं)** दर्शन **(चरित्ताणं)** चारित्र का **(सदा किरियम्मं करोमि)** हमेशा कृतिकर्म करता हूँ।

[विशेष—इस प्रकार दण्डक पढ़कर तीन आवर्त और एक शिरोनति करके २७ श्वासोच्छ्वास पूर्वक कायोत्सर्ग करें। पश्चात् नमस्कार कर तीन आवर्त और एक शिरोनति करके चतुर्विंशति स्तव पढ़ें।]

(नौ बार णमोकार मन्त्र का जाप करें।)

थोस्सामि हं जिणवरे, तित्थयरे केवली अणंतजिणे।
णरपवरलोयमहिए, विहुय-रयमले महप्पण्णे ॥१॥

अन्वयार्थ—(जिणवरे) जो कर्मरूपी शत्रुओं को जीतने वाले जिनों में श्रेष्ठ **(केवली)** केवलज्ञान से युक्त **(अणंतजिणे)** अनन्तसंसार को जीतने वाले अन्तरहित/अनन्त जिनेन्द्र **(णर-पवर-लोय-महिए)** मनुष्यों में श्रेष्ठ चक्रवर्ती आदि से पूजित अथवा मनुष्यों में श्रेष्ठों तथा लोगों द्वारा पूजित **(विहुय-रय-मले)** ज्ञानावरण-दर्शनावरणरूपी रज और मोहनीय-अन्तरायरूपी मल को दूर करने वाले तथा **(महप्पण्णे)**

महामह पूजा को प्राप्त/महाप्राज्ञ–उत्कृष्ट ज्ञानवान ऐसे **(तित्थयरे)** तीर्थंकरों की **(हं थोस्सामि)** मैं स्तुति करता हूँ।

लोयस्सुज्जोय-यरे, धम्मं तित्थंकरे जिणे वंदे।
अरहंते कित्तिस्से, चउवीसं चेव केवलिणो ॥२॥

अन्वयार्थ–(लोयस्सुज्जोय-यरे) केवलज्ञान के द्वारा लोक में धर्म का उद्योत वा नयनप्रिय प्रकाश करने वाले **(धम्मं तित्थंकरे)** रत्नत्रयरूप धर्मतीर्थ को करने वाले **(जिणे)** इन्द्रिय विजेता जिन **(अरहंते)** पञ्च-कल्याणक पूज्य अरहंत **(केवलिणो)** केवलज्ञानी **(चउवीसं)** चौबीस तीर्थंकर जिनेन्द्रों की मैं **(वंदे)** वन्दना करता हूँ **(च)** और **(एव)** निश्चित ही गुणों का **(कित्तिस्से)** कीर्तन/ स्तवन करूँगा।

उसह-मजियं च वंदे, संभव-मभिणंदणं च सुमइं च।
पउमप्पहं सुपासं, जिणं च चंदप्पहं वंदे ॥३॥

अन्वयार्थ–मैं कुन्दकुन्दाचार्य **(उसहं)** ऋषभदेव **(अजियं)** अजितनाथ **(च)** और **(संभवं)** संभवनाथ **(अभिणंदणं)** अभिनंदननाथ **(च)** और **(सुमइं)** सुमतिनाथ की **(वंदे)** वंदना करता हूँ **(च)** और **(पउमप्पहं)** पद्मप्रभ देव **(सुपासं)** सुपार्श्वनाथ **(च)** और **(चंदप्पहं)** चन्द्रप्रभ **(जिणं)** जिनेन्द्र की **(वंदे)** वंदना करता हूँ।

सुविहिं च पुप्फयंतं, सीयल सेयं च वासुपुज्जं च।
विमल-मणंतं भयवं, धम्मं संतिं च वंदामि ॥४॥

अन्वयार्थ–(च) और मैं **(सुविहिं)** सुविधि / सौभाग्यशाली **(पुप्फयंतं)** पुष्पदंत **(सीयल)** शीतलनाथ **(सेयं)** श्रेयोनाथ **(च)** और **(वासुपुज्जं)** वासुपूज्य **(विमलं)** विमलनाथ **(अणंतं)** अनन्तजित् अनंतनाथ **(धम्मं)** धर्मनाथ **(च)** और **(संतिं)** शान्तिनाथ **(भयवं)** भगवान की **(वंदामि)** वंदना करता हूँ।

कुंथुं च जिणवरिंदं, अरं च मल्लिं च सुव्वयं च णमिं।
वंदामि रिट्ठ-णेमिं, तह पासं वड्ढमाणं च ॥५॥

अन्वयार्थ–मैं **(कुंथुं च)** कुंथुनाथ **(अरं च)** अरनाथ **(मल्लिं च)** मल्लिनाथ **(सुव्वयं च)** मुनिसुव्रतनाथ **(णमिं)** नमिनाथ **(अरिट्ठ-णेमिं)** अरिष्ट-नेमिनाथ **(तह)** तथा **(पासं)** पार्श्वनाथ **(च)** और **(वड्ढमाणं)**

वर्धमानस्वामी **(जिणवरिंदं)** जिनवरों में प्रधान तीर्थंकरों को **(वंदामि)** वन्दन/नमस्कार करता हूँ।

एवं मए अभित्थुआ, विहुयरयमलापहीण-जरमरणा।
चउवीसं पि जिणवरा, तित्थयरा मे पसीयंतु ॥६॥

अन्वयार्थ– **(एवं)** इस प्रकार **(मए)** मेरे द्वारा **(अभित्थुआ)** स्तुति किए गए **(विहुय-रय-मला)** ज्ञानावरण-दर्शनावरणरूपी रज व मोहनीय-अन्तराय-रूपी मल को दूर करने वाले **(पहीण-जर-मरणा)** बुढ़ापा और मृत्यु से रहित **(जिणवरा)** गणधर आदि जिनों में प्रधान जिनवर **(चउवीसं)** चौबीस **(पि)** ही **(तित्थ-यरा)** तीर्थंकर भगवान **(मे)** मेरे ऊपर **(पसीयंतु)** प्रसन्न होवें।

कित्तिय वंदिय महिया, एदे लोगोत्तमा जिणा सिद्धा।
आरोग्ग-णाण-लाहं, दिंतु समाहिं च मे बोहिं ॥७॥

अन्वयार्थ– इस प्रकार मेरे द्वारा **(कित्तिय)** कीर्तित-वचन से कीर्तन किए गए **(वंदिय)** वंदित-मन से वंदना किए गए तथा **(महिया)** महित-काय से पूजे गए **(एदे)** ये **(लोगोत्तमा)** लोक में उत्तम, **(सिद्धा)** कृतकृत्य **(जिणा)** जिनवर अरहंत **(मे)** मेरे लिए **(आरोग्ग-णाणलाहं)** निरोगता और ज्ञान का लाभ **(समाहिं)** समाधि **(च)** और **(बोहिं)** बोधि/रत्नत्रय को **(दिंतु)** देवें।

चंदेहिं णिम्मल-यरा, आइच्चेहिं अहिय-पयासंता।
सायर-मिव गंभीरा, सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु ॥८॥

अन्वयार्थ– जो **(चंदेहिं)** चन्द्रमा से **(णिम्मलयरा)** अधिक निर्मल **(आइच्चेहिं)** सूर्य से **(अहिय-पयासंता)** अधिक प्रभा वाले/प्रकाशमान **(सायरं इव)** सागर के समान **(गंभीरा)** गम्भीर तथा **(सिद्धा)** सिद्धि को प्राप्त ऐसे चौबीस सिद्ध भगवान **(मम)** मुझे **(सिद्धिं)** सिद्धि/मोक्ष को **(दिसंतु)** उपदेशित करें/देवें।

यहाँ तीन आवर्त और एक शिरोनति करके निम्नलिखित मुख्य मंगल पढ़ें]

श्रीमते वर्धमानाय, नमो नमित-विद्विषे।
यज्ज्ञानाऽन्तर्गतं भूत्वा, त्रैलोक्यं गोष्पदाऽयते ॥१॥

अन्वयार्थ–(श्रीमते) जो श्रीमान् है,**(नमित-विद्विषे)** नमस्कार

कराया है संगम नामक [देवपर्याययुक्त] शत्रु को जिन्होंने ऐसे **(वर्धमानाय)** वर्धमान जिनेन्द्र के लिए **(नमः)** नमस्कार हो **(यज्ज्ञानान्तर्गतं)** जिनके ज्ञान के अन्तर्गत **(भूत्वा)** होकर **(त्रैलोक्यं)** तीन लोक **(गोष्पदायते)** गाय के खुर के समान आचरण करता है।

सिद्ध-भक्ति

तव -सिद्धे णय -सिद्धे, संजम - सिद्धे चरित्त - सिद्धे य।
णाणम्मि दंसणम्मि य, सिद्धे सिरसा णमंसामि॥

अन्वयार्थ—(तवसिद्धे) तप सिद्ध **(णय सिद्धे)** नय सिद्ध **(संजमसिद्धे)** संयम सिद्ध **(णाणम्मि)** ज्ञान से **(य)** और **(दंसणम्मि)** दर्शन से होने वाले **(सिद्धे)** सब सिद्धों को **(सिरसा)** मस्तक झुकाकर **(णमस्सामि)** नमस्कार करता हूँ।

अञ्चलिका

इच्छामि भंते! सिद्धभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं, सम्म-णाण-सम्मदंसण-सम्म-चरित्त-जुत्ताणं, अट्ठ-विह-कम्म-विप्प-मुक्काणं, अट्ठगुण-संपण्णाणं, उड्ढ-लोए-मत्थयम्मि पइट्ठियाणं, तव-सिद्धाणं, णयसिद्धाणं, संजमसिद्धाणं, चरित्तसिद्धाणं, अतीताणागद-वट्टमाण-कालत्तय-सिद्धाणं, सव्व-सिद्धाणं णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहि-मरणं, जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

अन्वयार्थ—(भंते) हे भगवन्! मैंने **(सिद्धभक्ति काउस्सग्गो कओ)** सिद्धभक्ति का कायोत्सर्ग किया है **(तस्सालोचेउं)** उसकी आलोचना करने की **(इच्छामि)** इच्छा करता हूँ। **(सम्मणाण)** सम्यग्ज्ञान **(सम्मदंसण)** सम्यग्दर्शन **(सम्मचरित्तजुत्ताणं)** सम्यक्चारित्र से युक्त **(अट्ठविह कम्म-मुक्काणं)** ज्ञानावरण आदि आठ कर्मों से मुक्त **(अट्ठगुणसंपण्णाणं)** सम्यक्त्व आदि आठ गुणों से युक्त/सम्पन्न **(उड्ढलोएमत्थयम्मि)** ऊर्ध्वलोक के मस्तक पर **(पइट्ठियाणं)** विराजमान **(तवसिद्धाणं)** तप से सिद्ध **(णयसिद्धाणं)** नय से सिद्ध **(संजम-सिद्धाणं)** संयम से सिद्ध **(चरित्तसिद्धाणं)** चारित्र से सिद्ध **(अतीदा-णागद-वट्टमाण-**

कालत्तय-सिद्धाणं) भूत, भविष्यत् और वर्तमान तीनों कालों में होने वाले **(सव्वसिद्धाणं)** समस्त सिद्धों की मैं **(सया)** सदा **(णिच्चकालं)** हमेशा/नित्यकाल/सर्वदा (अंचेमि) अर्चना करता हूँ। **(पूजेमि)** पूजा करता हूँ **(वंदामि)** वन्दना करता हूँ **(णमस्सामि)** नमस्कार करता हूँ। **(मज्झं)** मेरे **(दुक्खक्खओ)** दुखों का क्षय हो **(कम्मक्खओ)** कर्मों का नाश हो **(बोहिलाहो)** बोधि का लाभ हो **(सुगइगमणं)** सुगति में गमन हो **(समाहिमरणं)** समाधिमरण हो **(जिनगुणसंपत्ति)** जिन भगवान् के गुणों की सम्पत्ति **(मज्झं)** मुझे (होउ) प्राप्त होवे।

आलोचना

इच्छामि भंते! चरित्तायारो तेरसविहो, परिविहा-विदो, पंचमहव्वदाणि, पंचसमिदीओ, तिगुत्तीओ चेदि। तत्थ पढमे महव्वदे पाणादिवादादो वेरमणं से पुढविकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, आउकाइया जीवा असंखेज्जा-संखेज्जा, तेउकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, वाउकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, वणप्फदिकाइया जीवा अणंताणंता हरिया, बीआ, अंकुरा, छिण्णा, भिण्णा, एदेसिं उद्दावणं, परिदावणं, विराहणं उवघादो कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥१॥

अन्वयार्थ—(भंते!) हे भगवन्! **(पंच महव्वदाणि)** अहिंसा आदि पाँच महाव्रत **(पंच-समिदीओ)** ईर्या आदि पाँच समिति **(च)** और **(तिगुत्तीओ)** मन गुप्ति आदि तीन गुप्तियों रूप **(तेरसविहो)** तेरह प्रकार का **(चरित्तायारो)** चारित्राचार **(परिहाविदो)** का खंडन किया हो तो **(इच्छामि)** मैं उस दोष की आलोचना करने की इच्छा करता हूँ। **(तत्थ)** उस तेरह प्रकार चारित्राचार में **(पाणादिवादादोवेरमणं)** जीवों के प्राणों के व्यतिपात से विरक्ति रूप **(पढमे महव्वदे)** प्रथम अहिंसा महाव्रत है **(से)** उस व्रत में **(पुढविकाइया जीवा)** पृथ्वीकायिक जीव **(असंखेज्जा संखेज्जा)** असंख्यातासंख्यात **(आउकाइया जीवा)** जलकायिक जीव **(असंखेज्जा-संखेज्जा)** असंख्याता-संख्यात **(तेउकाइयाजीवा)** तैजस/अग्निकायिक जीव **(असंखेज्जा-संखेज्जा)** असंख्यातासंख्यात

(वाउकाइया जीवा) वायुकायिक जीव **(असंखेज्जासंखेज्जा)** असंख्यातासंख्यात **(वणप्फदि-काइया जीवा)** वनस्पतिकायिक जीव **(अणंताणंता)** अनन्तानन्त **(हरिआ)** हरित सचित्त **(बीआ)** बीज **(अंकुरा)** अंकुर **(एदेसिं)** इनका **(छिण्णा)** छेदन **(भिण्णा)** भेदन **(उद्धावणं)** उत्तापन **(परिदावणं)** परितापन **(विराहणं)** विराधना **(उवघादो)** उपघात **(कदो)** मैंने किया हो **(वा)** अथवा **(कीरंतो समणुमण्णिदो)** करने वाले की अनुमोदना की हो **(तस्स)** उस सम्बन्धी **(मे)** मेरे **(दुक्कडं)** सभी पाप **(मिच्छा)** मिथ्या होवें।

बेइंदिया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा कुक्खिकिमि-संख-खुल्लय-वराडय-अक्खरिट्ठय-गंडवाल-संबुक्क-सिप्पिपुल-विकाइया एदेसिं उद्धावणं, परिदावणं, विराहणं, उवघादो कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणु-मण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥२॥

अन्वयार्थ—(बे-इंदिया जीवा) दो इन्द्रिय जीव **(असंखेज्जा-संखेज्जा)** असंख्यातासंख्यात **(कुक्खि)** कुक्षि **(किमि)** कृमि/लट **(संख)** शंख **(खुल्लुय)** क्षुल्लक बाला **(बराउय)** वराटक या कौड़ी **(अक्ख)** अक्ष **(रिट्ठबाल)** बाल जाति का विशेष जन्तु **(संबुक्क)** छोटा शंख **(सिप्पि)** सीप **(पुलविकाइया)** पुलविक अर्थात् पानी के जोंक **(एदेसिं)** इनको **(उद्धावणं)** उत्तापन **(वरिदावणं)** परितापन **(विराहणं)** विराधन **(उवघादो)** उपघातन **(कदो)** मैंने किया हो **(वा)** अथवा **(कारिदो)** कराया हो **(वा)** अथवा **(कीरंतो समणुमण्णिदो)** करने वाले की अनुमोदना की हो **(तस्स)** तत्संबंधी **(मे)** मेरे **(दुक्कडं)** दुष्कृत्य **(मिच्छा)** मिथ्या हों।

तेइंदिया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा कुंथुद्देहिय-विंच्छिय-गोभिंद-गोजुव-मक्कुण-पिपीलिया-इया, एदेसिं उद्धावणं, परिदावणं, विराहणं, उवघादो, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥३॥

अन्वयार्थ—(कुंथु) कुन्थु अर्थात् सूक्ष्म अवगाहना धारक कुन्थु जीव **(द्देहिय)** देहिक **(विंच्छिय)** बिच्छू **(गोभिंद)** गोभिद **(गोजुव)** गो

जूँ अर्थात् भैंस आदि के स्तनादि पर लगी रहने वाला 'जूँ' **(मक्कुण)** खटमल **(पिपीलियाइया)** चींटी आदि **(असंखेज्जासंखेज्जा)** असंख्यातासंख्यात **(तेइंदिया)** तीन इन्द्रिय **(जीवा)** जीव **(एदेसिं)** उनका **(उद्दावणं)** उत्तापन **(परिदावणं)** परितापन **(विराहणं)** विराधना **(उवघादो)** उपघात **(कदो)** मैंने किया हो **(वा)** अथवा **(कारिदो)** दूसरों से करवाया हो **(वा)** अथवा **(कीरंतो समणुमण्णिदो)** करने वाले की अनुमोदना की हो **(तस्स)** तो तत्सम्बन्धी **(दुक्क डं)** दुष्कृत **(मे)** मेरे **(मिच्छा)** मिथ्या होवें।

चउरिंदिया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा दंसमसय-मक्खि-पयंग-कीड-भमर-महुयर-गोमच्छियाइया, तेसिं उद्दावणं, परिदावणं, विराहणं, उवघादो कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥४॥

अन्वयार्थ—(असंखेज्जासंखेज्जा) असंख्यातासंख्यात **(दंसमसय मक्खि-पयंग-कीड-भ्रमर-महुयर-गोमच्छियाइया)** डांस-मच्छर-मक्खी-पतंगा कीड़ा-भौंरा-मधुमक्खी गोमक्षिका आदि **(चउरिंदिया जीवा)** चतुरिन्द्रिय जीव **(एदेसिं)** इनका **(उद्दावणं)** उत्तापन **(परिदावणं)** परितापन **(विराहणं)** विराधन **(उवघादो)** उपघात **(कदो)** मैंने किया हो **(वा)** अथवा **(कारिदो)** कराया हो **(वा)** अथवा **(कीरंतो समणुमण्णिदो)** करते हुए अनुमोदना की हो **(तस्स)** तत्सम्बन्धी **(दुक्क डं)** दुष्कृत/ खोटे कार्य **(मे)** मेरे **(मिच्छा)** मिथ्या होवें।

पंचिंदिया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा अंडाइया, पोदाइया, जराइया, रसाइया, संसेदिमा, सम्मुच्छिमा, उब्भेदिमा, उववादिमा, अवि-चउरासीदि-जोणि-पमुह-सदसहस्सेसु एदेसिं उद्दावणं, परिदावणं, विराहणं, उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा, समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥५॥

अन्वयार्थ—(असंखेज्जासंखेज्जा)असंख्यातासंख्यात **(पंचिंदिया जीवा)** पंचेन्द्रिय जीव **(अंडाइया)** अण्डज **(पोदाइया)** पोतज **(जराइया)** जरायुज **(रसाइया)** रस से उत्पन्न होने वाले **(संसेदिमा)** संस्वेदिम **(समुच्छिमा)** समूर्च्छन **(उब्भेदिया)** उद्भेदिय **(उववादिमा)** उपपाद जन्म

से उत्पन्न देव-नारकी **(अवि)** और भी **(चउरासीदिजोणि पमुहसद-सहस्सेसु)** चौरासी लाख योनियों में प्रमुख पञ्चेन्द्रिय जीव **(एदेसिं)** इनका **(उद्दावणं)** उत्तापन **(परिदावणं)** परितापन **(विराहणं)** विराधन **(उवघादो)** उपघात **(कदो)** मैंने किया हो **(वा)** अथवा **(कारिदो)** कराया हो **(वा)** अथवा **(कीरंतो वा समणु-मण्णिदो)** करते हुए की अनुमोदना की हो **(तस्स)** तत्सम्बन्धी **(मे)** मेरे (दुक्कडं) दुष्कृत **(मिच्छा)** मिथ्या हों।

प्रतिक्रमण-पीठिका-दण्डक

इच्छामि भंते! देवसियम्मि (राइयम्मि) आलोचेउं, पंच-महव्वदाणि, तत्थ पढमं महव्वदं पाणादिवादादो वेरमणं, विदियं महव्वदं मुसावादादो वेरमणं, तिदियं महव्वदं अदत्तादाणादो वेरमणं, चउत्थं महव्वदं मेहुणादो वेरमणं, पंचमं महव्वदं परिग्गहादो वेरमणं, छट्ठं अणुव्वदं राइभोयणादो वेरमणं, इरियासमिदीए, भासासमिदीए एसणासमिदीए, आदाण-णिक्खेवणसमिदीए, उच्चार-पस्सवण-खेल-सिंहाण-वियडि-पइट्ठावणिया-समदीए मणगुत्तीए, वचिगुत्तीए, कायगुत्तीए, णाणेसु, दंसणेसु, चरित्तेसु, बावीसाए परीसहेसु, पणवीसाए भावणासु, पण-वीसाए किरियासु, अट्ठारस-सील-सहस्सेसु, चउरासीदि-गुणसय-सहस्सेसु, वारसण्हं संजमाणं, वारसण्हं तवाणं, वारसण्हं अंगाणं, चोदसण्हं पुव्वाणं, दसण्हं-मुंडाणं, दसण्हं-समण-धम्माणं, दसण्हं-धम्म-ज्झाणाणं, णवण्हं बंभचेरगुत्तीणं, णवण्हं णोकसायाणं, सोलसण्हं कसायाणं, अट्ठण्हं कम्माणं, अट्ठण्हं पवयण-माउयाणं , अट्ठण्हं सुद्धीणं, सत्तण्हं भयाणं, सत्तविह-संसाराणं, छण्हं जीव-णिकायाणं, छण्हं आवासयाणं, पंचण्हं इंदियाणं, पंचण्हं महव्वदाणं, पंचण्हं समिदीणं, पंचण्हं चरित्ताणं, चउण्हं सण्णाणं, चउण्हं पच्चयाणं, चउण्हं उवसग्गाणं, मूलगुणाणं, उत्तरगुणाणं, दिट्ठियाए, पुट्ठियाए, पदोसियाए, परदा-वणियाए, से कोहेण वा, माणेण वा, माएण वा, लोहेण वा, रागेण वा, दोसेण वा, मोहेण वा, हस्सेण वा, भएण वा, पदोसेण वा, पमादेण वा, पिम्मेण वा, पिवासेण वा,

लज्जेण वा, गारवेण वा, एदेसिं अच्चासणदाए, तिण्हं दंडाणं, तिण्हं लेस्साणं, तिण्हं गारवाणं, दोण्हं अट्ठरुद्द-संकिलेस-परिणामाणं, तिण्हं अप्पसत्थ संकिलेस परिणामाणं मिच्छाणाण-मिच्छादंसण-मिच्छाचरित्ताणं, मिच्छत्तपाउग्गं, असंजमपाउग्गं, कसाय-पाउग्गं, जोग-पाउग्गं, अप्पाउग्ग-सेवणदाए, पाउग्ग-गरहणदाए इत्थ मे जो कोई देवसिओ (राइयो) अदिक्कमो, वदिक्कमो, अइचारो, अणाचारो, आभोगो, अणाभोगो, तस्स भंते ! पडिक्कमामि, मए पडिक्कंतं तस्स मे सम्मत्तमरणं, पंडियमरणं, वीरियमरणं, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुण संपत्ति होदु मज्झं।

अन्वयार्थ—(इच्छामि भंते राइयम्मि/देवसियम्मि आलोचेउं) हे भगवन्! मैं रात्रि में या दिन में व्रतों में लगने वाले दोषों की आलोचना शुद्धि पूर्वक करने की इच्छा करता हूँ। **(पंच महव्वदाणि)** पाँच महाव्रत हैं **(तत्थ)** उनमें **(पढमं महव्वदं)** पहला महाव्रत **(पाणादिवादादो वेरमणं)** प्राणों के व्यपरोपण से रहित है **(विदियं महव्वदं)** दूसरा महाव्रत **(मुसावादादो वेरमणं)** असत्य भाषण/मृषावाद से रहित है **(तिदियं महव्वदं)** तीसरा महाव्रत **(अदिण्णा दाणादो वेरमणं)** बिना दी वस्तु के ग्रहण से रहित **(चउत्थ महव्वदं)** चौथा महाव्रत **(मेहुणादो वेरमणं)** मैथुन सेवन से रहित है **(पंचमं महव्वदं)** पाँचवाँ महाव्रत **(परिग्गहादो वेरमणं)** परिग्रह से रहित है **(छट्ठं अणुव्वदं)** षष्ठ/छठा अणुव्रत **(राइभोयणादो वेरमणं)** रात्रिभोजन से रहित है।

समिदीए-समितियाँ **(इरिया समिदीए)** ईर्या समिति, **(भासा समिदीए)** भाषा समिति, **(एसणा-समिदीए)** एषणासमिति, **(आदाण णिक्खेवण समिदीए)** आदान-निक्षेपण समिति **(उच्चार-पस्सवण-खेल-सिंहाण-वियडि पइट्ठावणियासमिदीए)** टट्टी, पेशाब, खखार, नासिका मल, गोमय आदि पित्तादि विकार को क्षेपण करना प्रतिष्ठापना समिति है। इसी का दूसरा नाम उत्सर्ग समिति है।

(मणगुत्तीए) मनोगुप्ति **(वचिगुत्तीए)** वचनगुप्ति **(कायगुत्तीए)** कायगुप्ति। **(णाणेसु)** ज्ञानों में **(दंसणेसु)** दर्शन में **(चरित्तेषु)** चारित्रों

में **(बावीसाय परीसहेसु)** बाईस प्रकार के परीषहों में **(पणवीसाय)** २५ प्रकार की भावनाओं में **(पणवीसाय किरियासु)** २५ प्रकार की क्रियाओं में **(अट्ठारससीलसहस्सेसु)** अठारह हजार शीलों में, **(चउरासीदिगुण सय सहस्सेसु)** चौरासी लाख गुणों में **(बारसण्हं संजमाणं)** बारह प्रकार के संयमों को **(बारससण्हं तवाणं)** बारह प्रकार तपों को **(बारसण्हं अंगाणं)** बारह प्रकार अंगों को **(चोदसण्हं पुव्वाणं)** चौदह पूर्वों को **(दसण्हं मुंडाणं)** दस प्रकार के मुंडों को **(दसण्हं समण धम्ममाणं)** दस प्रकार के श्रमण धर्मों को **(दसण्हं धम्मज्झाणाणं)** दस प्रकार के धर्म्यध्यान को **(णव्वइं बंभचेर-गुत्तीणं)** नौ प्रकार की ब्रह्मचर्य गुप्ति में।

(णवण्हं णो-कसायाणं) नव प्रकार नौ कषायों को **(सोलसण्हं कसायाणं)** सोलह प्रकार की १६ कषायों को **(अट्ठहं कम्माणं)** आठ प्रकार के कर्मों को **(अट्ठण्हं पवयण माउयाणं)** आठ प्रकार प्रवचन मातृकाओं का **(अट्ठण्हं सुद्धीणं)** आठ प्रकार की शुद्धियों को **(सत्तण्हं भयाणं)** सात प्रकार के भयों को **(सत्तविह संसाराणं)** सात प्रकार के संसार को **(छण्ह जीवणिकायाणं)** छह प्रकार के जीवों के समूह को **(छण्हं आवासयाणं)** छह प्रकार के आवश्यकों को **(पंचण्हं इंदियाणं)** पाँच प्रकार की इन्द्रियों को **(पंचण्हं महव्वयाणं)** पाँच प्रकार के महाव्रतों को **(पंचण्ह समिदीणं)** पाँच प्रकार समितियों को **(पंचण्हं चरित्ताणं)** पाँच प्रकार के चारित्र को **(चउण्हं सण्णाणं)** चार प्रकार की संज्ञाओं को **(चउण्हं पच्चयाणं)** चार प्रकार के प्रत्ययों को **(चउण्हं उवसग्गाणं)** चार प्रकार के उपसर्गों को **(मूलगुणाणं)** मूलगुणों को **(उत्तर गुणाणं)** उत्तर- गुणों को **(दिट्ठियाए)** दृष्टिक्रिया से **(पुट्ठियाए)** पुष्टीक्रिया से **(पदोसियाए)** प्रादोषिकी क्रिया से **(परदावणियाए)** परतापनि क्रिया से **(से कोहेण वा)** क्रोध से अथवा **(माणेण वा)** मान से अथवा **(मायाए वा)** माया से अथवा **(लोहेण वा)** लोभ से अथवा **(रागेण वा)** राग से अथवा **(दोसेण वा)** द्वेष से अथवा **(मोहेण वा)** मोह से अथवा **(हस्सेण वा)** हास्य से अथवा **(भएण वा)** भय से अथवा **(पदोसेण वा)** प्रदोष अपराध से अथवा **(पमादेण वा)** प्रमाद से अथवा **(पिम्मेण वा)** प्रेम

से अथवा **(पिवासेण वा)** प्यास से अथवा **(लज्जेण वा)** लज्जा से अथवा **(गारवेण वा)** गारव से अथवा **(एदेसिं अच्चासणदाय)** इनमें अत्यासना को **(तिण्हं दंडाणं)** तीन प्रकार के दंडों को **(तिण्हं लेस्साणं)** तीन प्रकार लेश्याओं को **(तिण्हं गारवाणं)** तीन प्रकार के गारवों को **(तिण्ह अप्पसत्थ संकिलेस परिणामाणं)** तीन प्रकार के अप्रशस्त संक्लेश परिणामों को **(दोण्हं अट्ट-रुद्द-संकिलेस-परिणामाणं)** दो प्रकार के आर्त-रौद्र संक्लेश परिणामों को **(मिच्छाणाण)** मिथ्या-ज्ञान **(मिच्छा-दंसण)** मिथ्या दर्शन **(मिच्छा चरित्ताणं)** मिथ्या चारित्र को **(मिच्छत्त-पाउग्गं)** मिथ्यात्व प्रयोग **(असंजम पाउग्गं)** असंयम प्रयोग **(कसाय-पाउग्गं)** कषाय प्रयोग **(जोग पाउग्गं)** योग प्रयोग **(अपाउग्ग-सेवणदाए)** अप्रयोजनीय सेवन से **(पाउग्ग गरहणदाए)** प्रयोजनीय में गर्हा से **(एत्य)** इस प्रकार **(मे)** मेरे द्वारा **(राइओ)** रात्रि में **(देवसिओ)** दिन में **(अदिक्कमो)** अतिक्रम **(वदिक्कमो)** व्यतिक्रम **(अइचारो)** अतिचार **(अणाचारो)** अनाचार **(आभोग)** आभोग **(अणाभोगो)** अनाभोग किया गया हो **(भंते)** हे भगवन्! **(तस्स)** उन सब दोषों का **(पडिक्क मामि)** मैं प्रतिक्रमण करता हूँ **(मए पडिक्कतं तस्स)** मैंने उन दोषों का प्रतिक्रमण किया है **(मे सम्मत्त मरणं)** मेरा सम्यक्त्व मरण **(पंडिय मरणं)** पंडितमरण **(वीरिय मरणं)** वीरमरण **(दुक्खक्खओ)** दुखों का क्षय **(कम्मक्खओ)** कर्मों का क्षय **(बोहिलाहो)** बोधि का लाभ **(सुगइगमणं)** सुगति गमन **(समाहि-मरणं)** समाधिमरण, **(जिन-गुण संपत्ति होउ मज्झं)** जिनेन्द्र गुणों की संपत्ति मुझे प्राप्त हो।

वद-समिदिंदिय-रोधो-लोचावासय - मचेलमण्हाणं।
खिदिसयणमदंत-वणं, ठिदिभोयणमेयभत्तं च॥१॥
एदे खलु मूलगुणा, समणाणं जिणवरेहिं पण्णत्ता।
एत्थपमाद-कदादो, अइचारादो णियत्तोऽहं ॥२॥
छेदोवट्ठाणं होउ मज्झं।

(इति प्रतिक्रमणपीठिकादण्डकः)

णमो अरहंताणं (इत्यादिदण्डकं पठित्वा कायोत्सर्गं कुर्यात्। अनन्तरं) थोस्सामीत्यादि पठेत् निषिद्धिकादंडकाः।

॥ नौ बार णमोकार मंत्र का जाप करें॥

णमो अरिहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ॥३॥

॥ तीन बार मंत्र को पढ़ें ॥

णमो जिणाणं णमो जिणाणं णमो जिणाणं, णमो णिस्सिहीए णमो णिस्सिहीए णमो णिस्सिहीए, णमोत्थु दे णमोत्थु दे णमोत्थु दे, अरहंत! सिद्ध! बुद्ध! णीरय! णिम्मल! सममण! सुभमण! सुसमत्थ! समजोग! समभाव! सल्लघट्टाणं! सल्लघत्ताणं! णिब्भय! णीराय! णिद्दोस! णिम्मोह! णिम्मम! णिस्संग! णिस्सल्ल! माण-माया-मोसमूरण! तवप्पहावणं! गुणरयणसील-सायर! अणंत! अप्पमेय! महदिमहावीर-वड्ढमाणबुद्धिरिसिणो चेदि णमोत्थु दे णमोत्थु दे णमोत्थु दे।

अन्वयार्थ—(णमो जिणाणं) जिनेन्द्र देव को तीन बार नमस्कार हो **(णमो णिस्सिहिए)** १७ प्रकार के निषिद्विका स्थानों को नमस्कार हो **(णमोत्यु दे-णमोत्थु दे णमोत्थु दे)** नमस्कार हो, नमस्कार हो, नमस्कार हो। **(अरहंत)** चार घाति कर्म के क्षयकारक अरहंत! **(सिद्ध)** निःशेष कर्म-क्षय कारण सिद्ध ! **(बुद्ध)** हेयोपादेय विवेक सम्पन्न बुद्ध! **(णीरय)** ज्ञानावरण, दर्शनावरण रूप कर्म रज से रहित होने से नीरज ! **(णिम्मल)** निर्मल-द्रव्य व भावकर्म रहित निर्मल! **(सममण)** अर्घावतारण असिप्रहारण में सदा समताधारक ऐसे सममण! **(सुभमण)** आर्त-रौद्रध्यान रहित शुभमन! **(सुसमत्थ)** कायक्लेश-उपसर्ग व परीषहों के सहन करने में समर्थ होने से सुसमत्थ! **(समजोग)** परम उपशम योग वाले होने से समजोग! **(समभाव)** संसारवर्द्धक राग-द्वेष परिणामों से रहित होने से समभाव! इस प्रकार जो अरहंतादि हैं उन सबको नमस्कार हो। नमस्कार हो। नमस्कार हो।

इस प्रकार यहाँ तक सामान्य अर्हतादिकों की स्तुति कर पुनः विशेष रूप से अंतिम तीर्थंकर श्री महावीर स्वामी की स्तुति करते हुए लिखते हैं- **(सल्लघट्टाणं)** हे संसारवर्द्धक शारीरिक, मानसिक दुख पहुँचाने वाली, बाण के समान चुभने वाली माया-मिथ्यात्व-निदान शल्य के नाशक

[सल्लघत्ताणं] हे संसारी जीवों की शल्य के विनाशक **(णिब्भय)** निर्भय **(णीराय)** राग रहित **(णिद्दोस)** निर्दोष-१८ दोषों से रहित **(णिम्मोह)** निर्मोह **(णिम्मम)** निर्ममत्व **(णिस्संग)** निष्परिग्रह **(णिस्सल्ल)** माया, मिथ्यात्व निदान शल्य रहित। निःशल्य **(माण-माया-मोस-मूरण)** मान, मायाचार और झूठ का मर्दन करने वाले **(तवप्पहावण)** हे तप प्रभावक! **(गुणरयण)** हे ८४ लाख गुण के स्वामी गुणरत्न! **(सील सायर)** हे १८ हजार शीलों के समुद्र सीलसायर **(अणंत)** हे अन्त रहित होने से अनन्त या अनन्त चतुष्टय धारक हे अनन्त! **(अप्पमेय)** इन्द्रिय ज्ञान से जानने योग्य न होने से हे अप्रमेय **(महदि महावीर)** हे पूज्यनीय महावीर! **(वड्ढमाण)** हे वर्द्धमान **(बुद्धिरिसिणो)** हे बुद्धर्षिन्! आपको **(णमोत्थु दे णमोत्थु दे णमोत्थु दे)** आपको तीन बार नमस्कार हो, नमस्कार हो, नमस्कार हो।

मम मंगलं अरहंता य, सिद्धा य, बुद्धा य, जिणा य, केवलिणो य, ओहिणाणिणो य मणपज्जवणाणिणो य चउदसपुव्वगामिणो, सुदसमिदि-समिद्धा य, तवो य बारसविहो तवस्सी य, गुणा य गुणवंतो य, महरिसी तित्थं तित्थं-करा य, पवयणं पवयणी य, णाणं णाणी य, दंसणं दंसणी य, संजमो संजदा य, विणओ विणदा य, बंभचेरवासो बंभचारी य, गुत्तीओ चेव गुत्तिमंतो य, मुत्तीओ चेव मुत्तिमंतो य, समिदीओ चेव समिदिमंतो य, सुसमय-परसमयविदु, खंति-खंतिवंतो य खवगाय, खीणमोहा य खीणवंतो य, बोहियबुद्धा य, बुद्धिमंतो य, चेइयस्रुक्खा य, चेइयाणि।

अन्वयार्थ—(अरहंता) अरहंत **(य)** और **(सिद्धा)** सिद्ध **(य)** और **(बुद्धा)** हेय उपादेय ज्ञान से युक्त बुद्ध **(य)** और **(जिणा)** जिन **(य)** और **(केवलिणो)** केवलज्ञानी **(ओहिणाणिणो)** अवधिज्ञानी **(मणपज्जव-णाणिणो)** मनःपर्ययज्ञानी **(चउदसपुव्व-गामिणो)** चौदह पूर्व के ज्ञाता **(य)** और **(सुदसमिदि समिद्धा)** श्रुत के समूह से युक्त **(तवो वारह विहो)** बारह प्रकार का तप **(य)** और **(तवस्सी)** बारह प्रकार के तप को धारण करने वाले तपस्वी **(गुणा)** ८४ लाख गुण **(य)** और **(गुणवंतो)** चौरासी लाख गुणों को धारण करने वाले **(महरिसी)**

ऋद्धिधारी मुनि **(तित्थं)** तीर्थ **(य)** और **(तित्थंकरा)** तीर्थंकर **(पवयणं)** प्रवचन **(य)** और **(पवयणी)** प्रवचन देने वाले **(णाणं)** ज्ञान **(य)** और **(णाणी)** पाँच प्रकार के ज्ञान को धारण करने वाले ज्ञानी **(दंसणं)** औपशमिक, क्षायोपशमिक और क्षायिक दर्शन **(य)** और **(दंसणी)** तीन दर्शन के धारक सम्यग्दृष्टि जीव **(संजमो)** बारह प्रकार का संयम **(य)** और **(संजदा)** संयम को धारण करने वाले **(विणओ)** चार प्रकार का विनय **(य)** और **(विणदा)** चार प्रकार विनय के धारक **(बंभचेर वासो)** ब्रह्मचर्य आश्रम **(य)** और **(बंभचारी)** ब्रह्मचारी **(गुत्तीओ चेव)** तीन प्रकार की गुप्ति **(य)** और **(गुत्तिमंतो)** तीन प्रकार की गुप्ति को धारण करने वाले **(मुत्तीओ चेव)** तथा बहिरंग अंतरंग परिग्रह का त्याग **(य)** और **(मुत्तिमंतो)** बहिरंग अन्तरंग परिग्रह का त्याग करने वाले **(समिदीओ चेव)** तथा समिति **(य)** और **(समिदिमंतो)** समिति को धारण करने वाले **(सुसमय-परसमय-विदु)** स्वसमय परसमय के ज्ञाता **(खंति)** क्षमा **(य)** और **(खंतिवंतो)** क्षमा गुण धारक मुनि **(य)** और **(खवगाय)** क्षपकश्रेणी पर चढ़ने वाले **(य)** और **(खीणमोहा)** दर्शनमोह और चारित्रमोह को क्षीण करने वाले **(य)** और **(खीणवंतो)** क्षीणमोह गुणस्थानवर्ती **(य)** तथा **(बोहियबुद्धा)** दूसरों के उपदेश से संसार-शरीर-भोगों से विरक्त होने वाले बोधितबुद्ध **(य)** और **(बुद्धिमंतो)** कोष्ठबुद्धि आदि बुद्धि को धारण करने वाले **(य)** और **(चेइय-रुक्खा)** चैत्यवृक्ष **(च)** तथा **(चेइयाणि)** कृत्रिम-अकृत्रिम आदि चैत्यालय ये सब **(मम)** मेरे लिये **(मंगलं)** मंगलदायक हों।

उड्ढमहतिरियलोए सिद्धायदणाणि णमंसामि, सिद्ध-णिसीहियाओ, अट्ठावय-पव्वए सम्मेदे उज्जंते चंपाए पावाए मज्झिमाए हत्थिवालियसहाए जाओ अण्णाओ काओवि णिसीहियाओ जीवलोयम्मि इसिपब्भारतल-गयाणं सिद्धाणं बुद्धाणं कम्मचक्कमुक्काणं णीरयाणं णिम्मलाणं गुरु आइरिय उवज्झायाणं पव्वतित्थेर-कुलयराणं चाउवण्णो य समणसंघो य दससु भरहेरावएसु पंचसु महाविदेहेसु, जे लोए संति साहवो संजदा तवसी एदे मम मंगलं पवित्तं, एदेहं मंगलं करेमि भावदो विसुद्धो

सिरसा अहिवंदिऊण सिद्धे काऊण अंजलिं मत्थयम्मि तिविहं तिरयणसुद्धो।

अन्वयार्थ—[उड्ड-मह-तिरिय-लोए] ऊर्ध्वलोक, अधोलोक और मध्यलोक **(सिद्धायदणाणि)** सिद्धायतनों, सिद्ध प्रतिमा स्थित स्थानों को **(णमस्सामि)** नमस्कार करता हूँ **(सिद्ध-णिसीहियाओ)** सिद्धों की निषिद्धिका अर्थात् निर्वाण स्थलों **(अट्ठावय-पव्वए)** अष्टापद कैलाश पर्वत पर **(सम्मेदे)** सम्मेद-शिखर **(उज्जंते)** उर्जयन्त/गिरनार पर्वत पर **(चंपाए)** चम्पापुरी **(पावाए)** पावापुरी **(मज्झिमाए)** मध्यमा नगरी **(हत्थिवालिय-सहाए)** हस्तिपालक राजा की सभा में यह एक ऐतिहासिक राजा हुआ है, जिसने अपने राज्य में बड़ी-भारी सभा करके जैन धर्म के उत्थान के लिये बहुत अच्छा कार्य किया था। **(जाओ अण्णाओ काओ वि)** और भी जो कोई **(णिसीहियाओ)** निषिद्धिका स्थान हैं **(जीवलोयम्मि)** अढाई द्वीप और दो समुद्रों में **(इसिपब्भार-तल गयाणं)** ईषत्प्राग्भार मोक्ष शिला पर स्थित **(सिद्धाणं)** सिद्धों को **(बुद्धाणं)** बुद्धों को **(कम्मचक्क मुक्क णं)** ज्ञानावरणादि कर्मों से रहित **(णीरयाणं)** पाप रहित **(णिम्मलाणं)** भावकर्म से रहित निर्मल **(गुरु-आइरिय-उवज्झायाणं)** गुरु, आचार्य, उपाध्याय **(पव्वत्तित्थेरकुलयराणं)** प्रवर्तक, स्थविर और कुलकर **(य)** और **(चउवण्णो समणसंघो)** चार प्रकार के ऋषि, मुनि, यति, अनगार आदि चतुर्विध संघ **(दंससु भरहेरावएसु)** भरत-ऐरावत दस क्षेत्रों में **(पंचसुमहाविदेहेसु)** पाँच विदेह क्षेत्रों में **(लोए)** और मनुष्य लोक में **(जे साहवो)** जो साधु **(संजदा)** संयमी **(तवसी)** तपस्वी हैं **(एदे)** ये सब **(मम)** मेरा **(पवित्तं मंगलं)** पवित्र मंगल करें। **(एदे)** इनको **(अहं)** मैं **(विसुद्धो भावदो)** विशुद्ध भाव से **(सिरसा)** मस्तक झुकाकर **(सिद्धे)** सिद्धों को **(अहिवंदिऊण)** नमस्कार करके **(मत्थयम्मि अंजलि)** मस्तक पर अंजली **(काऊण)** रखकर **(तिविहं)** त्रिविध **(तियरणसुद्धो)** मन-वचन-काय की शुद्धि से **(णमस्सामि)** नमस्कार करता हूँ। **(मंगलं करेमि)** मैं मंगल कामना करता हूँ।

(इति निषिद्धिकादण्डकः)

मन-वचन-काय द्वारा दोषों की आलोचना

पडिक्कमामि भंते! देवसियस्स (राइयस्स) अइचारस्स, अणाचारस्स, मणदुच्चरियस्स, वचि-दुच्चरियस्स, काय-दुच्चरियस्स, णाणाइचारस्स, दंसणाइचारस्स, तवाइ-चारस्स, वीरियाइचारस्स, चारित्ताइचारस्स, पंचण्हं महव्वयाणं,पंचण्हं समिदीणं, तिण्हं गुत्तीणं, छण्हं आवासयाणं, छण्हं जीवणिकायाणं, विराहणाए, पील कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥२॥

अन्वयार्थ—(भंते) हे भगवन्! **(राइयस्स/देवसियस्स)** रात्रिक दैवसिक **(अइचारस्स)** अतिचार का **(अणाचारस्स)** अनाचार का **(मणदुच्चरियस्स)** मानसिक दुष्ट चेष्टाओं का **(वचिदुच्चरियस्स)** वाचनिक दुष्ट चेष्टाओं का **(काय दुच्चरियस्स)** शारीरिक दुष्चेष्टाओं का **(णाणाइ-चारस्स)** ज्ञानाचार के अतिचार का **(दंसणाइचारस्स)** दर्शनाचार के अतिचार का **(तवाइचारस्स)** तपाचार के अतिचार का **(वीरिया इचारस्स)** वीर्याचार के अतिचार का **(चारित्ताइचारस्स)** चारित्राचार के अतिचार का निराकरण करता हूँ, ज्ञानादिक को निर्मल करता हूँ**(महव्वयाणं)** पाँच महाव्रतों का **(पंचण्हं समिदीणं)** पाँच समिति **(तिण्ह गुत्तीणं)** तीन गुत्तियों का **(छण्हं आवासयाणं)** छह आवश्यक का **(छण्हं जीवणिकायाणं)** छह काय के जीवों की **(विराहणाए)** विराधना में **(पील)** पीड़ा अर्थात् आगमविरुद्ध प्रवृत्ति करके व्रतों की खंडना **(कदो वा कारिदो वा)** मैंने स्वयं की हो, करवाई हो **(कीरंतो वा समणमण्णिदो)** या करने वालों की अनुमोदना की हो **(तस्स मे)** तत्सम्बन्धी मेरे **(दुक्क डं)** दुष्कृत्य **(मिच्छा)** मिथ्या हों, इसलिये **(पडिक्क मामि)** मैं प्रतिक्रमण करता हूँ।

पडिक्कमामि भंते! अइगमणे, णिग्गमणे, ठाणे, गमणे, चंकमणे, उव्वत्तणे, आउंचणे, आउट्टणे, पसारणे, आमासे, परिमासे, कुइदे, कक्कराइदे, चलिदे, णिसण्णे, सयणे, उव्वट्टणे, परियट्टणे, एइंदियाणं, वेइंदियाणं, तेइंदियाणं, चउरिंदियाणं, पंचिंदियाणं, जीवाणं, संघट्टणाए, संघादणाए, उद्दावणाए, परिदावणाए,

विराहणाए, एत्थ मे जो कोई देवसिओ (राइओ) अदिक्कमो, वदिक्कमो, अइचारो, अणाचारो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥२॥

अन्वयार्थ—(भंते) हे भगवन् ! **(अइगमणे)** अतिवेग से गमन में **(णिग्गमणे)** निर्गमन में-गमन क्रिया के प्रारंभ में **(ठाणे)** स्थान में स्थिति क्रिया में **(गमणे)** गमन में **(चंकमणे)** व्यर्थ परिभ्रमण करने में **(उवत्तणे)** उद्वर्तन में **(आउट्टणे)** हाथ और पैरों को संकुचित करने में **(पसारणे)** हाथ-पैर पसारने में **(आमासे)** आमर्श में-नियत शरीर के प्रदेशों को छूने में **(परिमासे)** परिमर्श में सर्वशरीर के स्पर्श करने में **(कुइदे)** कुत्सित में स्वप्न में बड़बड़ करने में **(कक्क राइदे)** दाँतों को कटकटाने में या अत्यन्त कर्कश शब्द करने में या निद्रा में दाँत कटकटाने में **(चलिदे)** चलने में-गमन के समय शरीर की हलन-चलन करने में **(णिसण्णे)** बैठने में **(सयणे)** शयन में सोने में **(उव्वट्टणे)** उद्भवन में सोकर जागने में **(परियट्टणे)** पसवाड़ा फेरने में [आदि क्रियाओं में] **(एइंदियाणं)** एकेन्द्रिय **(बेइंदियाणं)** दो इन्द्रिय **(तेइंदियाणं)** तीन्द्रिय **(चउरिंदियाणं)** चतुरिन्द्रिय **(पंचिंदियाणं)** पंचेन्द्रिय **(जीवाणं)** जीवों का **(संघट्टणाए)** मैंने परस्पर संघर्षण करके मर्दन किया हो **(संघादणाए)** इकट्ठे किये हों **(उद्दवणाए)** संताप उपजाया हो **(परिदावणाए)** परितापन किया हो **(विराहणाए)** विराधना की हो **(एत्थ)** इस प्रकार **(मे)** मेरी **(राइओ-देवसिओ)** रात्रिक-दैवसिक क्रियाओं में **(जो कोई)** जो भी कोई **(अदिक्कमो)** अतिक्रम **(वदिक्कमो)** व्यतिक्रम **(अइचारो)** अतिचार **(अणाचारो)** अनाचार हुआ हो **(तस्स मे दुक्क डं)**, तत्सम्बन्धी मेरे दुष्कृत **(मिच्छा)** मिथ्या हों अर्थात् तज्जनित मेरे पाप मिथ्या होवें, इसलिए **(पडिक्क मामि)** मैं प्रतिक्रमण करता हूँ।

ईर्यापथ (गमनागमन सम्बन्धी दोषों की) दूसरी आलोचना

पडिक्कमामि भंते! इरियावहियाए, विराहणाए, उड्ढमुहं चरंतेण वा, अहोमुहं चरंतेण वा, तिरियमुहं चरंतेण वा, दिसिमुहं चरंतेण वा, विदिसिमुहं चरंतेण वा, पाणचंकमणदाए, वीयचंकमणदाए, हरियचंकमणदाए, उत्तिंगपणयदय-मट्टियमक्कडय-तंतुसत्ताण चंकमणदाए पुढविकाइय-संघट्टणाए, आउकाइयसंघट्टणाए,

तेउकाइय-संघट्टणाए, वाउकाइय-संघट्टणाए, वणप्फदिकाइय-संघट्टणाए, तसकाइय-संघट्टणाए, उद्धावणाए, परिदावणाए, विराहणाए, एत्थ मे जो कोई इरियावहियाए अइचारो अणाचारो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥३॥

अन्वयार्थ—(भंते) हे भगवन् ! **(इरियावहियाए)** ईर्या समिति की **(विराहणाए)** विराधना में **(उड्ढमुहं चरंतेण)** ऊँचा मुँह करके चलने में **(वा)** अथवा **(अहोमुहं चरंतेण)** नीचा मुँह करके चलने में **(वा)** अथवा **(तिरियमुहं चरतेण)** तिरछा मुँह करके चलने में **(या (दिसिमुहं चरंतेण)** चारों दिशाओं में मुँह करके चलने में **(वा)** अथवा **(विदिसिमुहं चरंतेण)** विदिशाओं में मुँह करके चलने में **(वा)** अथवा **(पाणचंकमणदाए)** दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय आदि जीवों पर चलने से **(वीयचंकमणदाए)** गेहूँ, चना आदि बीजों पर चलने से **(हरिय-चंकमणदाए)** हरित वनस्पतिकायिक जीवों पर चलने से **(उत्तिंग)** पूँछ के अग्रभाग जमीन से स्पर्श करके चलने वाले लट, झल्ली उद्देइ आदि जीव **(पणय)** सेवाल, काई आदि **(दय)** जल के विकार बर्फ, ओला आदि अथवा अप्रासुक जल **(मट्टिय)** बहु पादा खजूर सदृशी अथवा खान की मिट्टी आदि **(मक्क डय)** कोलिक जाति जीव **(तंतु)** तंतु बनाने वाले जीव **(संताण)** पृथ्वी, जल, अग्नि, वायुकायिक इन सब जीवों पर **(चंकमणदाए)** चलने में **(पुढविकाइयसंघट्टणाए)** पृथ्वीकायिक जीवों का संघट्टन करने में **(आउकाइयसंघट्टणाए)** जलकायिक जीवों के संघट्टन करने में **(तेउकाइय संघट्टणाए)** तेजकायिक जीवों का संघट्टन करने में **(वाउकाइय संघट्टणाए)** वायुकायिक जीवों का संघट्टन करने में **(वणप्फदिकाइया संघट्टणाए)** वनस्पतिकायिक जीवों का संघट्टन करने में **(तसकाइयसंघट्टणाए)** त्रसकायिक जीवों का संघटन करने में **(उद्धावणाए)** प्राणों का उत्तापन करने में **(परिदावणाए)** परितापन **(विराहणाए)** विराधन करने में **(एत्थ)** इस प्रकार **(मे)** मेरे द्वारा **(इरियावहियाए)** ईर्या समिति में **(जो कोई)** जो कोई भी **(अइचारो)** अतिचार **(अणाचारो)** अनाचार हुआ हो **(तस्स मे दुक्कडं)** तत्सम्बन्धी मेरे दुष्कृत/पाप **(मिच्छा)** मिथ्या हों अर्थात् ईर्यासमिति में लगे मेरे सभी

पाप मिथ्या हों, इसलिए **(पडिक्क मामि)** मैं प्रतिक्रमण करता हूँ।

मल-मूत्रादि क्षेपण सम्बन्धी दोषों की आलोचना

पडिक्कमामि भंते! उच्चारपस्सवण-खेल-सिंहाण-वियडि-पइट्ठाव-णियाए पइट्ठावंतेण जो केई पाणा वा, भूदा वा, जीवा वा, सत्ता वा, संघट्टिदा वा, संघादिदा वा, उद्दाविदा वा, परिदाविदा वा, एत्थ मे जो कोई देवसिओ (राइओ) अइचारो अणाचारो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥४॥

अन्यवार्थ—(भंते) हे भगवन्! **(उच्चार)** टट्टी **(पस्सवण)** पेशाब **(खेल)** खंखार **(सिंहाण)** नासिका मल **(वियडिय)** विकृति अर्थात् पसीना आदि **(पइट्ठावणियाए)** क्षेपण करने में **(जो कोई)** जो भी कोई **(पाणा वा भूदा वा जीवा वा सत्ता वा)** विकलेन्द्रिय या वनस्पतिकायिक जीव या पञ्चेन्द्रिय जीव या पृथ्वी, जल, अग्नि व वायुकायिक जीवों का **(संघट्टिदा)** संघट्टन किया हो **(वा)** या **(संघादिदा)** संघातन किया हो **(वा)** अथवा **(उद्दाविदा)** उत्तापन किया हो **(वा)** अथवा **(परिदाविदा)** परितापन किया हो **(एत्थ)** इनमें **(मे)** मेरे द्वारा **(देवसिओ-राइओ)** दैवसिक-रात्रिक क्रियाओं में **(जो कोई)** जो भी कोई **(अइचारो)** अतिचार **(अणाचारो)** अनाचार हुए हों **(तस्स)** तत्सम्बन्धी **(मे दुक्कडं)** मेरे दुष्कृत **(मिच्छा)** मिथ्या होवें, निष्फल होवें इसलिए **(पडिक्कमामि)** मैं प्रतिक्रमण करता हूँ।

पडिक्कमामि भंते! अणेसणाए, पाणभोयणाए, पणय-भोयणाए, वीयभोयणाए, हरियभोयणाए, आहाकम्मेण वा, पच्छाकम्मेण वा, पुराकम्मेण वा, उद्दिट्ठयडेण वा, णिद्दिट्ठयडेण वा, दयसंसिट्ठयडेण वा, रस-संसिट्ठयडेण वा, परिसादणियाए, पइट्ठावणियाए, उद्देसियाए, णिद्देसियाए, कीदयडे, मिस्से, जादे, ठविदे, रइदे, अणसिट्ठे, बलिपाहुडदे, पाहुडदे, घट्टिदे, मुच्छिदे, अइमत्तभोयणाए एत्थ मे जो कोई गोयरिस्स अइचारो अणाचारो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥५॥

अन्वयार्थ—(भंते!) हे भगवन्! **(अणेसणाए)** भोजन के अयोग्य **(पाणभोयणाए)** पान के भोजन से **(पणयभोयणाए)** पणय भोजन से

(बीयभोयणाए) बीज भोजन करने से **(हरियभोयणाए)** हरित भोजन करने से **(आहाकम्मेण वा)** अधःकर्म से या **(पच्छाकम्मेण वा)** पश्चात्कर्म से या **(पुराकम्मेण वा)** पूर्वकर्म से या **(उद्दिट्ठयडेण वा)** उद्दिष्ट कृत से या **(णिद्दिट्ठयडेण वा)** निर्दिष्टकृत या **(दयसंसिट्ठयडेण वा)** दया से दिये गये दान से, **(रससंसिट्ठयडेण वा)** रज अर्थात् धूल लगे/मिटी बर्तनों से आहार से **(परिसादणियाए)** पाणिपात्र में आहार को बार-बार डालकर भोजन करने से **(पइट्ठावणियाए)** प्रतिष्ठापनिका भोजन से **(उद्देसियाए)** उद्देश्य कर दिये गये भोजन से **(णिद्देसियाए)** निर्देश का दिये गये आहार से **(कीदयडे)** क्रीत अर्थात् खरीद कर लाये भोजन **(मिस्से जादे)** मिश्र भोजन से **(ठविदे)** स्थापित में **(रइदे)** पौष्टिक भोजन में **(अणिसिट्ठे)** अनिसृष्ट में **(बलिपाहुडदे)** यक्षनागादिक के लिये लाये गये भोजन से **(पाहुडदे)** प्राभृत दोष से दूषित भोजन से **(घट्टिदे)** सर्वाभिघट और देशाभिघट दोष युक्त भोजन से **(मुच्छिदे)** मूर्च्छित दशा में भोजन करने से **(अइमत्त-भोयणाहारे)** अधिक मात्रा में भोजन करने से **(इत्थ)** इस प्रकार **(मे)** मुझसे **(जो कोई)** जो भी कोई **(गोयरस्स)** आहार सम्बन्धी **(अइचारो)** अतिचार **(अणाचारो)** अनाचार हुआ **(तस्स)** तत्सम्बन्धी **(मे)** मेरे **(दुक्कडं)** दुष्कृत **(मिच्छा)** मिथ्या हों। मैं दोषों के निराकरणार्थ **(पडिक्कमामि)** प्रतिक्रमण करता हूँ।

स्वप्न सम्बन्धी दोषों की आलोचना

पडिक्कमामि भंते! सुमिणिंदियाए विराहणाए, इत्थि-विप्परियासियाए, दिट्ठिविप्परियासियाए, मणविप्परियासियाए, वचिविप्परियासियाए, कायविप्परिया-सियाए, भोयण-विप्परिया-सियाए, उच्चावयाए, सुमिण-दंसणविप्परियासियाए, पुव्वरए, पुव्वखेलिए, णाणाचिंतासु, विसोतियासु, एत्थ जो कोई देवसिओ (राइओ) अइचारो अणाचारो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥६॥

अन्वयार्थ—(भंते!) हे भगवन्! **(सुमणिंदियाए)** स्वप्न में **(विराहणाए)** विराधना में **(इत्थि विप्परियासियाए)** स्त्री विपर्यासिका में **(दिट्ठिविप्परियासियाए)** दृष्टि विपर्यासिका में **(मणिविप्परियाए)** मन विपर्यासिका में **(वचि विपर्यासियाए)** वचन विपर्यापिका में **(काय**

विप्परियासियाए) काय विपर्यासिका में **(भोयण विप्परियासियाए)** भोजन विपर्यासिका में **(उच्चावयाए)** स्त्री के राग से शुक्रस्त्राव होने में। **(सुमणदंसणविप्परियासियाए)** स्वप्न दर्शन विपर्यासिका में **(णाणा-चिंतासु)** नाना प्रकार चिंताओं में **(विसोतियासु)** बार-बार सुनने में **(एत्थ)** इस प्रकार **(मे)** मेरे द्वारा **(जो कोई)** जो भी कोई **(राइओ-देवसियो)** रात्रिक-दिवस में **(अइचारो)** अतिचार **(अणाचारो)** अनाचार हुए हों **(तस्स)** तत्सम्बन्धी **(मे)** मेरे **(दुक्क डं)** दुष्कृत **(मिच्छा)** मिथ्या हो इसीलिये **(पडिक्क मामि)** मैं प्रतिक्रमण करता हूँ।

विकथा सम्बन्धी दोषों की आलोचना

पडिक्कमामि भंते! इत्थिकहाए, अत्थकहाए, भत्तकहाए, रायकहाए, चोरकहाए, वेरकहाए, परपासंड कहाए, देसकहाए, भासकहाए, अकहाए, विकहाए, णिठुल्ल-कहाए, परपेसुण्ण-कहाए, कंदप्पियाए, कुक्कुच्चियाए, डंबरियाए, मोक्खरियाए, अप्पपसंसणदाए, परपरिवादणदाए, पर-दुगुंछणदाए, परपीडा-कराए, सावज्जाणुमोयणियाए, एत्थ मे जो कोइ देवसिओ (राइओ) अइचारो अणाचारो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥७॥

अन्वयार्थ—(भंते!) हे भगवन् ! **(इत्थिकहाए)** स्त्री कथा में **(अत्थ कहाए)** अर्थ कथा में, **(भत्थ कहाए)** भोजन कथा में **(रायकहाए)** राज कथा में **(चोर कहाए)** चोर कथा में, **(बैर कहाए)** शत्रु कथा में **(परपासंडकहाए)** दूसरे पाखंडियों की कथा में **(देसकहाए)** देश कथा में **(भास कहाए)** भाषा सम्बन्धी कथा में **(अकहाए)** असंबद्ध प्रलाप में **(विकहाए)** विकथा में **(णिट्ठुल्लकहाए)** निष्ठुर कथा में **(परपेसुण्ण कहाए)** पर पैशुन्य कथा में **(कंदप्पियाए)** कंदर्पिका कथा के कथन में **(कुक्कुचियाए)** कौत्कुच्य में **(डंबरियाए)** डंबरिका में, **(मोक्खरियाए)** मौखरिकी कथा में **(अप्पपसंसणदाए)** आत्म-प्रशंसा में **(परपरिवाद-णाए)** पर-परिवादन में **(परदुगंछणदाए)** पर जुगुप्सनता में **(परपीडा-कराए)** पर पीड़ाकारक कथा में **(सावज्जाणुमोयणियाए)** सावद्यानु-मोदिका कथा में **(इत्थ)** इस प्रकार **(मे)** मेरे द्वारा **(जो कोई)** जो भी कोई **(राइओ/देवसिओ)** रात्रिक या दिवस सम्बन्धी **(अइचारो)** अतिचार

(अणायारो) अनाचार हुआ **(तस्स)** तत्सम्बन्धी **(मे)** मेरा **(दुक्क डं)** दुष्कृत **(मिच्छा)** मिथ्या हो **(पडिक्क मामि)** मैं प्रतिक्रमण करता हूँ।

आर्तध्यानादि अशुभ परिणाम व कषायादि दोषों की आलोचना

पडिक्कमामि भंते! अट्टज्झाणे, रुद्दज्झाणे, इहलोय-सण्णाए, परलोय-सण्णाए, आहारसण्णाए, भयसण्णाए, मेहुणसण्णाए, परिग्गहसण्णाए, कोहसल्लाए, माण-सल्लाए, मायासल्लाए, लोहसल्लाए, पेम्मसल्लाए, पिवास-सल्लाए, णियाणसल्लाए, मिच्छादंसणसल्लाए, कोहकसाए, माणकसाए, मायाकसाए, लोहकसाए, किण्हलेस्सपरिणामे, णील-लेस्सपरिणामे, काउलेस्स -परिणामे, आरंभपरिणामे, परिग्गहपरिणामे, पडिसयाहि-लास-परिणामे, मिच्छादंसणपरिणामे, असंजम-परिणामे, पावजोग-परिणामे, कायसुहाहि-लास-परिणामे, सद्देसु, रूवेसु, गंधेसु, रसेसु, फासेसु, काइयाहि-करणियाए, पादोसियाए, परदावणियाए, पाणाइवाइयासु, एत्थ मे जो कोई देवसिओ (राइओ) अइचारो अणाचारो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥८॥

अन्वयार्थ—(भंते! पडिक्कमामि) हे भगवान्! मैं आर्तध्यान आदि अशुभ परिणामों के करने से लगे दोषों की आलोचना करता हूँ-**(अट्टज्झाणे)** चार प्रकार के आर्तध्यान में, **(रुद्दज्झाणे)** चार प्रकार के रौद्रध्यान में **(इहलोयसण्णाए)** इस लोक सम्बन्धी सुख की इच्छा में **(परलोय-सण्णाए)** परलोक सम्बन्धी सुख की इच्छा में **(आहार सण्णाए)** आहार संज्ञा में **(भय सण्णाए)** भय संज्ञा में **(मेहुण सण्णाए)** मैथुनसंज्ञा में **(परिग्गह सण्णाए)** परिग्रह संज्ञा में **(कोहसल्लाए)** क्रोध शल्य **(माण सल्लाए)** मानशल्य **(माया सल्लाए)** माया शल्य में **(लोहसल्लाए)** लोभ शल्य में **(पेम्म-सल्लाए)** प्रेम शल्य **(पिवाससल्लाए)** पिपासा शल्य **(णियाण सल्लाए)** निदान शल्य **(मिच्छादंसणसल्लाए)** मिथ्यादर्शन शल्य **(कोह कसाए)** क्रोध-कषाय **(माणकसाए)** मान कषाय **(माया कसाए)** माया कषाय **(लोह कसाए)** लोभ कषाय **(किण्हलेस्स परिणामे)** कृष्णलेश्या के परिणाम **(णीललेस्सपरिणामे)**

नील लेश्या के परिणाम **(काउलेस्स-परिणामे)** कापोत लेश्या के परिणाम **(आरंभपरिणामे)** आरंभ परिणाम **(परिग्गह परिणामे)** परिग्रह के परिणाम **(पडिसयाहिलासपरिणामे)** प्रतिश्रयाभिलाष-परिणाम **(मिच्छादंसण-परिणामे)** मिथ्यादर्शन के परिणाम (**असंजम परिणामे)** असंयम के परिणाम **(पावजोगपरिणामे)** पापयोग्य परिणाम **(कायसुहाहिलास परिणामे)** शारीरिक सुख की अभिलाषा के परिणाम **(सद्देसु)** मनोज्ञ शब्दों के सुनने में **(रूवेसु)** रूप देखने में **(गंधेसु)** सुगंधित कर्पूर, चन्दन आदि की गंध में **(रसेसु)** तिक्त मधुरादि रसों में **(फासेसु)** मृदु कठोर कोमल स्निग्ध आदि स्पर्श में **(काइयाहिकरणियाए)** कायाधिकरण क्रिया में **(पदोसियाए)** प्रदोष क्रिया दुष्ट मन-वचन-काय लक्षण क्रिया में **(परिदावणियाए)** परितापन क्रिया में **(पाणाइवाइयासु)** प्राणातिपात में-पाँच इन्द्रियाँ, मन, वचन, काय, श्वासोच्छ्वास, आयु-इन दस प्राणों का वियोग करने में **(इत्थं मे)** इस प्रकार आर्तध्यानादि परिणामों से मेरे द्वारा **(राईओ-देवसिओ)** रात्रिक दैवसिक क्रियाओं में **(जो कोई)** जो कोई भी **(अइचारो)** अतिचार **(अणायारो)** अनाचार हुए हो **(तस्स)** तत्सम्बन्धी **(मे)** मेरे **(दुक्कडं)** दुष्कृत **(मिच्छा)** मिथ्या हों, इसलिए मैं दोषों के निराकरणार्थ प्रतिक्रमण करता हूँ।

एक को आदि ले ३३ संख्या पर्यन्त दोषों की आलोचना

पडिक्कमामि भंते! एक्के भावे अणाचारे, दोसु रायदोसेसु, तीसु दंडेसु, तीसु गुत्तीसु, तीसु गारवेसु, चउसु कसाएसु, चउसु सण्णासु, पंचसु महव्वएसु, पंचसु समिदीसु, छसु जीवणिकाएसु, छसु आवासएसु, सत्तसु भएसु, अट्ठसु मएसु, णवसु बंभचेरगुत्तीसु, दसविहेसु समणधम्मेसु, एयारसविहेसु उवासयपडिमासु, बारह-विहेसु भिक्खु-पडिमासु, तेरसविहेसु किरियाट्ठाणेसु, चउदसविहेसु, भूदगामेसु, पण्णरसविहेसु, पमायठाणेसु, सोलहविहेसु, पवयणेसु, सत्तरसविहेसु असंजमेसु, अट्ठारसविहेसु, असंपराएसु, उणवीसाए णाहज्झाणेसु, वीसाए असमाहि-ट्ठाणेसु, एक्कवीसाए सबलेसु, बावीसाए परीसहेसु, तेवीसाए, सुद्वेयडज्झाणेसु, चउवीसाए अरहंतेसु, पणवीसाए भावणासु, पणवीसाए किरियाट्ठाणेसु,

छव्वीसाए पुढवीसु, सत्तावीसाए अणगारगुणेसु, अट्ठावीसाए आयारकप्पेसु, एउणतीसाए पावसुत्तपसंगेसु, तीसाए मोहणीठाणेसु, एक्कत्तीसाए कम्मविवाएसु, बत्तीसाए जिणोवदेसेसु, तेत्तीसाए अच्चासणदाए, संखेवेण जीवाणं अच्चासणदाए, अजीवाणं अच्चासणदाए, णाणस्स अच्चासणदाए, दंसणस्स अच्चासणदाए, चरित्तस्स अच्चासणदाए, तवस्स अच्चासणदाए, वीरियस्स अच्चासणदाए, तं सव्वं पुव्वं दुच्चरियं गरहामि, आगामेसीएसु पच्चुप्पण्णं इक्कं तं पडिक्कमामि, अणागयं पच्चक्खामि, अगरहियं गरहामि, अणिंदियं णिंदामि, अणालोचियं आलोचेमि, आराहणं अब्भुट्ठेमि, विराहणं पडिक्कमामि, एत्थ मे जो कोई देवसिओ (राइओ) अइचारो अणाचारो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥९॥

अन्वयार्थ—(भंते!) हे भगवान्! **(एक्केभावे अणाचारे)** एक अनाचार रूप भाव में **(वेसु राय-दोसेसु)** दो राग-द्वेष परिणामों में **(तीसु दंडेसु)** तीन दण्डों में **(तीसु गुत्तीसु)** तीन गुप्तियों में **(तीसु गारवेसु)** लीन गारवों में **(चउसु कसाएसु)** चार कषायों में **(चउसु सण्णासु)** चार संज्ञाओं में **(पंचसु महव्वएसु)** पाँच महाव्रतों में **(पंचसु समिदीसु)** पाँच समितियों में **(छसु जीव-णिकाएसु)** छह जीवनिकायों में, **(छसु आवासएसु)** छह आवश्यकों में **(सत्तसु भएसु)** सात भयों में **(अट्ठसु मएसु)** आठ मदों में **(णवसु बंभचेर गुत्तीसु)** नौ प्रकार ब्रह्मचर्य गुप्तियों में **(दसविहेसु समण-धम्मेसु)** दस प्रकार के श्रमण धर्मों में **(एयारसविहेसु उवासय पडिमासु)** ग्यारह प्रकार की श्रावक प्रतिमाओं में **(बारह-विहेसु भिक्खु पडिमासु)** बारह प्रकार की भिक्षुक प्रतिमाओं में **(तेरस-विहेसु-किरियाट्ठाणेसु)** तेरह प्रकार के क्रिया/चारित्र स्थानों में **(चउदसविहेसु भूदगामेसु)** चौदह प्रकार भूत ग्रामों में **(पणरस-विहेसु पमाय ठाणेसु)** पन्द्रह प्रकार प्रमाद स्थानों में **(सोलह-विहेसु पवयणेसु)** सोलह प्रकार प्रवचनों में **(सत्तारस-विहेसु असंजमेसु)** सत्रह प्रकार असंयमों में, **(अट्ठारस विहेस असंपराएसु)** अठारह प्रकार के असम्परायों में **(उणवीसाय णाहज्झाणेसु)** उन्नीस प्रकार के नाथाध्ययनों में **(वीसाए असमाहि-ट्ठाणेसु)** बीस प्रकार के असमाधि

के स्थानों में, **(एक्क वीसाए सवलेसु)** इक्कीस प्रकार की सबल क्रियाओं में **(बावीसाए परीषहेसु)** बाईस प्रकार के परीषहों में **(तेवीसाय सुद्वयड-ज्झाणेसु)** तैबीस प्रकार के सूत्राध्ययन में **(चउवीसाए अरहंतेसु)** चौबीस प्रकार के अरहंतों में **(पणवीसाए भावणासु)** पच्चीस प्रकार की भावना में **(पणवीसाए किरियाट्ठाणेसु)** पच्चीस प्रकार के क्रिया स्थानों में, **(छव्वीसाए पुढवीसु)** छब्बीस प्रकार पृथ्वियों में **(सत्तावीसाए अणगार गुणेसु)** सत्ताईस प्रकार के अनगार गुणों में **(अट्ठावीसाए आयार कप्पेसु)** अट्ठाईस प्रकार आचार कल्पों में, **(एउणतीसाए पाव सुत्त पसंगेसु)** उनतीस प्रकार के पापसूत्र प्रसंगों में **(तीसाए मोहणी ठाणेसु)** तीस प्रकार के मोहनीय के स्थानों में, **(एकत्तीसाए कम्मविवाएसु)** इकतीस प्रकार के कर्म विपाकों में **(बत्तीसाए जिणोवएसेसु)** बत्तीस प्रकार के जिनोपदेश में **(तेतीसाए अच्चासणदाए)** तैंतीस प्रकार की अत्यासादना में **(संखेवेण जीवाण अच्चासणदाए)** संख्यात प्रकार जीवों की अत्यासादना में **(अजीवाणं अच्चासणदाए)** अजीवों की अत्यासादना में **(णाणस्स अच्चासणदाए)** ज्ञान की अत्यासादना में **(दंसणस्स अच्चासणदाए)** दर्शन की अत्यासादना में **(चरित्तस्स अच्चासणदाए)** चारित्र की अत्यासादना में **(तवस्स अच्चासणदाए)** तप की अत्यासादना में **(वीरियस्स अच्चासदणाए)** वीर्य की अत्यासादना में **(तं)** उस **(सव्वं)** सब **(पुव्वं दुच्चरियं)** पूर्व में आचरित दुश्चरित की **(गरहामि)** गर्हा करता हूँ **(आगामेसीएसु पच्चुप्पण्णं इक्कं तं पडिक्क मामि)** भूत, भविष्य, वर्तमान के दोषों का प्रतिक्रमण करता हूँ **(अणागयं पच्चक्खामि)** भविष्य काल में पापों का त्याग करता हूँ **(अगरहियं गरहामि)** मैं अगर्हित की गर्हा करता हूँ **(अणिंदियं णिंदामि)** अनिंदित की मैं निन्दा करता हूँ **(अणालोचियं आलोचेमि)** अनालोचित की आलोचना करता हूँ **(आराहणं-अब्भुट्ठेमि)** आराधना को स्वीकार करता हूँ **(विराहणं पडिक्कमामि)** विराधना का प्रतिक्रमण करता हूँ।

(इत्थ) इस प्रकार **(मे)** मेरे द्वारा व्रतों में **(जो कोई)** जो भी कोई **(राइओ)** रात्रि में **(देवसिओ)** दिन में **(अइचारो)** अतिचार **(अणायारो)** अनाचार लगा हो **(तस्स)** तत्सम्बन्धी **(मे)** मेरे **(दुक्कडं)** दुष्कृत **(मिच्छा)**

मिथ्या हों, इसीलिए **(पडिक्कमामि)** मैं प्रतिक्रमण करता हूँ।

इच्छामि भंते! इमं णिग्गंथं पवयणं अणुत्तरं केवलियं पडिपुण्णं णेगाइयं सामाइयं संसुद्धं सल्लघट्टाणं सल्लघत्ताणं सिद्धिमग्गं सेढिमग्गं खंतिमग्गं मुत्तिमग्गं पमुत्तिमग्गं मोक्खमग्गं पमोक्खमग्गं णिज्जाणमग्गं णिव्वाणमग्गं सव्वदुक्खपरिहाणिमग्गं सुचरियपरि-णिव्वाणमग्गं अवितहं अविसंति पवयणं उत्तमं तं सद्दहामि तं पत्तियामि तं रोचेमि तं फासेमि इदोत्तरं अण्णं णत्थि ण भूदं ण भविस्सदि। णाणेण वा दंसणेण वा चरित्तेण वा सुत्तेण वा इदो जीवा सिज्झंति बुज्झंति मुच्चंति परिणिव्वाणयंति सव्वदुक्खाणमंतं करेंति पडि-वियाणंति। समणोमि संजदोमि उवरदोमि उवसंतोमि उवहिणियडिमाण-माया-मोस-मूरण-मिच्छा-णाण-मिच्छा-दंसण-मिच्छाचरित्तं च पडिविरदोमि सम्म-णाण-सम्मदंसण-सम्मचरित्तं च रोचेमि जं जिणवरेहिं पण्णत्तं इत्थ मे जो कोइ देवसिओ (राइओ) अइचारो अणाचारो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥१०॥

अन्वयार्थ–(भंते!) हे भगवन्! **(इमं णिग्गंथं)** इस निर्ग्रंथ लिंग की **(इच्छामि)** मैं इच्छा करता हूँ। **(इमं णिग्गंथं)** यह बाह्य आभ्यंतर परिग्रह से निर्ग्रंथ लिंग **(पवयणं)** प्रवचन है अर्थात् मोक्ष प्राप्ति का साक्षात् कारण आगम में कहा है। **(अणुत्तरं)** यह अनुत्तर है अर्थात् इस निर्ग्रंथ लिंग से भिन्न दूसरा और कोई उत्कृष्ट मोक्षमार्ग नहीं है **(केवलियं)** केवली सम्बन्धी है अर्थात् केवली भगवान् द्वारा कथित है **(पडिपुण्णं)** परिपूर्ण है अर्थात् कर्मों का क्षय करने में कारणभूत होने से परिपूर्ण है **(णेगाइयं)** नैकायिक है अर्थात् परिपूर्ण रत्नत्रय के निकाय से सम्बन्ध रखने वाला है **(सामाइयं)** सामायिक है परम उदासीनता रूप तथा सर्वसावद्य योग का अभाव होने से निर्ग्रंथ लिंग ही सामायिक है **(संसुद्ध)** संशुद्ध है अर्थात् अतिचार रहित आलोचनादि प्रायश्चित्त से विशुद्ध होने के कारण शुद्ध है **(सल्लघट्टाणं)** माया-मिथ्या-निदान आदि शल्य दुखी जीवों की **(सल्लघत्ताणं)** माया-मिथ्या-निदान आदि शल्यों की करने वाला है **(सिद्धिमग्गं)** सिद्धि का मार्ग है अर्थात् स्वात्मोपलब्धि का मार्ग है **(सेढिमग्गं)** उपशम और क्षपक श्रेणी का मार्ग है **(खंतिमग्गं)** शान्ति

और क्षमा का मार्ग है **(मुत्तिमग्गं)** मुक्ति का मार्ग है **(पमुत्ति मग्गं)** उत्कृष्ट रूप से तिल-तुष-मात्र परिग्रह का त्याग, परम निस्पृह भाव स्वरूप है **(मोक्खमग्गं)** मोक्षमार्ग है, **(पमोक्खमग्गं)** अरहंत, सिद्ध अवस्था की प्राप्ति का उपाय है **(णिज्जाणमग्गं)** निर्वाण का मार्ग अर्थात् चतुर्गति भ्रमण के अभाव का मार्ग है **(णिव्वाणमग्गं)** निर्वाण का मार्ग है **(सव्वदुक्खपरिहाणिमग्गं)** सर्व दुःख-शारीरिक, मानसिक आदि के नाश का मार्ग है **(सुचरिय-परिणिव्वाणमग्गं)** सामायिक आदि शुद्ध चारित्र की पूर्णता द्वारा एक-दो भव में निर्वाण की प्राप्ति का मार्ग है **(अवित्तहं)** मोक्षार्थी जीवों को मोक्ष प्राप्ति निर्ग्रंथलिंग से ही होती है इसमें कोई विवाद भी नहीं है **(अविसंति)** मोक्षार्थी इस निर्ग्रंथ लिंग का आश्रय लेते हैं **(पवयणं)** यह निर्ग्रंथ लिंग सर्वज्ञ द्वारा प्रणीत है **(तं उत्तमं)** उस उत्तम निर्ग्रंथ लिंग का **(सद्दहामि)** मैं श्रद्धान करता हूँ **(तं पत्तियामि)** उस निर्ग्रंथ लिंग को मैं प्राप्त होता हूँ **(तं)** उस निर्ग्रंथलिंग की **(रोचेमि)** रुचि करता हूँ **(तं)** उस निर्ग्रंथ लिंग का **(फासेमि)** स्पर्श करता हूँ। **(इदोत्तरं)** इस निर्ग्रंथ लिंग से बढ़कर **(अण्णं)** अन्य कोई मोक्ष का हेतु **(णत्थि)** वर्तमान में नहीं है **(ण भूदं)** भूतकाल में नहीं था **(ण भविस्सदि)** न भविष्य काल में होगा **(णाणेण)** ज्ञान से **(वा)** अथवा **(दंसणेण)** दर्शन से **(वा)** अथवा **(चरित्तेण)** चारित्र से **(वा)** या **(सुत्तेण)** सर्वज्ञ प्रणीत आगम से, क्योंकि श्रुत/आगम निर्ग्रंथ लिंग का ज्ञापक या कारण होने से **(वा)** अथवा **(इदो)** इस निर्ग्रंथ लिंग से **(जीवा)** जीव **(सिज्झंति)** आत्मस्वरूप को प्राप्त कर सिद्ध अवस्था को प्राप्त होते हैं **(बुज्झंति)** वीतरागता की वृद्धि के कारण मुनि अवस्था प्राप्त कर जीवादि तत्त्वों के विशेष ज्ञान को प्राप्त करते हैं **(मुंचंति)** संपूर्ण कर्मों से मुक्त हो जाते हैं **(परिणिव्वाणयंति)** पूर्ण निर्वाण को प्राप्त सुखी या कृतकृत्य हो जाते हैं **(सव्वदुक्खाणमंतं करेंति)** शारीरिक, मानसिक व आगन्तुक सभी प्रकार के दुखों का अन्त करते हैं **(परिवियाणंति)** इस निर्ग्रंथ लिंग के द्वारा ही सम्पूर्ण पदार्थों को जानते हैं **(समणोमि)** मैं मुनि/श्रमण होता हूँ **(संजदोमि)** में संयत होता हूँ अर्थात् मैं प्राणी संयम व इन्द्रिय संयम में तत्पर होता है **(उवरदोमि)** उपरत होता हूँ अर्थात् विषय भोगों से विरक्त

होता हूँ **(उवसंतोमि)** उपशांतभाव अर्थात् राग-द्वेष आदि भावों से उपशान्त होता हूँ **(उवहि)** उपधि/परिग्रह **(णियडि)** निकृति/वंचना **(माण)** मान **(माय)** माया/कुटिलता **(मोस)** असत्य भाषण **(मूरण)** मूर्च्छा **(मिच्छाणाणं)** मिथ्याज्ञान **(मिच्छादंसण)** मिथ्यादर्शन **(च)** और **(मिच्छाचरितं)** मिथ्याचारित्र इनसे **(पडिविरदोमि)** विरक्त होता हूँ **(सम्मणाण)** सम्यग्ज्ञान **(सम्मदंसण)** सम्यग्दर्शन **(च)** और **(सम्मचरितं)** सम्यक्चारित्र में **(रोचेमि)** श्रद्धान करता हूँ **(जिणवरेहिं पण्णत्तं जं)** जिनेन्द्रदेव के कहे गये जो तत्त्व हैं, उनका ही श्रद्धान करता हूँ **(इत्थ)** इस प्रकार **(मे)** मेरे द्वारा **(राइओ देवसिओ)** रात्रिक-दैवसिक क्रियाओं में **(जो कोई)** जो भी कोई **(अइयारो)** अतिचार **(अणायारो)** अनाचार हुए हों **(तस्स मे)** तत्सम्बन्धी मेरे **(दुक्कडं मिच्छा)** दुष्कृत/समस्त पाप मिथ्या हो, निष्फल हों।

पडिक्कमामि भंते! सव्वस्स, सव्वकालियाए, इरियासमिदीए, भासासमिदीए, एसणासमिदीए, आदाण-णिक्खेवण-समिदीए, उच्चार-पस्सवण-खेल-सिंहाणय-वियडि-पइट्ठावणिसमिदीए मणगुत्तीए, वचि-गुत्तीए, काय-गुत्तीए, पाणादिवादादो वेरमणाए, मुसावादादो वेरमणाए, अदिण्णादाणादो वेरमणाए, मेहुणादो वेरमणाए, परिग्गहादो वेरमणाए, राइभोयणादो वेरमणाए, सव्व-विराहणाए, सव्वधम्म-अइक्कमणदाए, सव्वमिच्छा-चरियाए, एत्थ मे जो कोई देवसिओ (राइओ) अइचारो अणाचारो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥११॥

अन्वयार्थ—(भंते!) हे भगवन्! **(सव्वस्स)** सम्पूर्ण **(अइयारो)** अतिचारों का **(सव्वकालियाए)** सार्वकालिक अर्थात् सम्पूर्ण काल में होने वाली **(इरियासमिदीए)** ईर्या समिति में **(भासा-समिदीए)** भाषा समिति में **(एसणासमिदीए)** एषणा समिति में **(आदाणणिक्खेवण-समिदीए)** आदान-निक्षेपण समिति में **(उच्चारपस्सवणखेलसिंहाणय-वियडि-पइट्ठावण समिदीए)** मल-मूत्र, खँखार, नासिका मल, शरीर मल आदि के निक्षेपण लक्षण प्रतिष्ठापन समिति में **(मण गुत्तीए-वचि गुत्तीय)** मनो गुप्ति, वचन गुप्ति, काय गुप्ति में **(पाणादिवादादो**

वेरमणाए) प्राणातिपात से विरक्ति रूप अहिंसा महाव्रत में **(मुसावादादो वेरमणाए)** असत्य भाषण से विरक्ति रूप सत्य महाव्रत में **(अदिण्णादा-णादो वेरमणाए)** अदत्तादान से विरक्त रूप अचौर्य महाव्रत में **(मेहुणादो वेरमणाए)** मैथुन से विरक्ति रूप ब्रह्मचर्य महाव्रत में **(परिग्गहादो वेरमणाए)** विरक्त रूप अपरिग्रह महाव्रत में **(राई भोयणादो वेरमणाए)** रात्रिभोजन से विरक्त रूप षष्ठ रात्रिभोजन अणुव्रत में **(सव्वविराहणाए)** सब एकेन्द्रियादि जीवों की विराधना में **(सव्वधम्म अइक्कमणदाए)** सर्वधर्मों का अतिक्रमण किया हो अर्थात् जो आवश्यक कार्य जिस काल में करना बतलाये हैं उनका उल्लंघन करने में **(सव्वमिच्छाचरियाए)** मिथ्या आचार का सेवन किया हो **(इत्थ)** इस प्रकार **(मे)** मेरे द्वारा **(जो कोई)** जो भी कोई **(राइयो देवसिओ)** रात्रिक-दैवसिक क्रियाओं में **(अइयारो-अणायारो)** अतिचार अनाचार हुए हों **(तस्स)** तत्सम्बन्धी **(मे)** मेरे **(दुक्क डं)** दुष्कृत/पाप **(मिच्छा)** मिथ्या हों, निष्फल हों, इसलिए **(पडिक्क मामि)** मैं प्रतिक्रमण करता हूँ।

इच्छामि भंते ! वीरभत्ति काउस्सगो जो मे राइओ (देवसिओ) अइचारो, अणाचारो, आभोगो, अणाभोगो, काइओ, वाइओ, माणसिओ, दुच्चिंतिओ, दुब्भासिओ, दुप्परिणामिओ, दुस्समणीओ, णाणे, दंसणे, चरित्ते, सुत्ते सामाइए, पंचण्हं महव्वयाणं, पंचण्हं समिदीणं, तिण्हं गुत्तीणं, छण्हं जीव-णिकायाणं, छण्हं आवासयाणं, विराहणाए, अट्ठ-विहस्स कम्मस्स-णिग्घादणाए, अण्णहा उस्सासिएण वा, णिस्सासिएण वा, उम्मिसिएण वा, णिम्मिसिएण वा, खासिएण वा, छिक्कि एण वा, जंभाइएण वा, सुहुमेहिं-अंग-चलाचलेहिं दिट्ठि-चलाचलेहिं, एदेहिं सव्वेहिं आयरेहिं, असमाहिं-पत्तेहिं, जाव अरहंताणं, भयवंताणं, पज्जुवासं करेमि, ताव कायं पाव कम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि।

अन्वयार्थ—(भंते!) हे भगवन्! **(वीरभत्ति काउस्सगो)** मैं वीर भक्ति के कायोत्सर्ग की **(इच्छामि)** इच्छा करता हूँ। **(मे)** मेरे द्वारा **(जो कोई)** जो कोई **(राइयो-देवसिओ)** रात्रिक-दैवसिक क्रियाओं में **(अइचारो-अणायारो)** अतिचार-अनाचार **(आभोगो-अणाभोगो)**

आभोग-अनाभोग **(काइयो-वाइओ-माणसिओ)** कायिक-वाचनिक मानसिक **(दुच्चिंतीओ)** दुश्चिंतन किया हो **(दुब्भासिओ)** दुर्वचनों का उच्चारण किया हो **(दुप्परिणामीओ)** मानसिक दुष्परिणाम किये हों **(दुस्समणीओ)** खोटे स्वप्न देखें हों या खोटा आचारण किया हो **(णाणे)** ज्ञान में **(दंसणे)** दर्शन में **(चरित्ते)** चारित्र में **(सुत्ते)** आगम में **(सामाइए)** समताभावरूप सामायिक में **(पंचण्हं महव्वयाणं)** पाँच महाव्रत **(पंचण्हं समिदीणं)** पाँच समिति **(तिण्हं गुत्तीणं)** तीन गुप्ति **(छण्हं जीवणि-कायाणं)** छह प्रकार के जीवनिकाय **(छण्हं आवासयाणं)** छह आवश्यक-सबकी **(विराहणाए)** विराधना की हो **(अट्ठविहस्स कम्मस्स)** आठ प्रकार के कर्मों का **(णिग्घादणाए)** निर्घातन अर्थात् नाश करने वाली क्रियाओं के प्रयत्न करने में जो दोष लगे हों **(अण्णहा)** अन्य भी दोष लगे हों यथा **(उस्सासिदेण)** उच्छ्वास से **(वा)** अथवा **(णिस्सासिदेण)** निश्वास से **(वा)** अथवा **(उम्मिसिएण)** उन्मेष अर्थात् आँखों के खोलने से **(वा)** अथवा **(णिम्मिसेण)** निमेष अर्थात् आँखों को बन्द करने से **(वा)** अथवा **(खासिएण)** खाँसी लेने से **(वा)** अथवा **(छिंकिएण)** छींक लेने में **(वा)** अथवा **(जंभाइएण)** जंभाई लेने में **(वा)** अथवा **(सुहुमेहिं)** सूक्ष्म रूप से **(अङ्गचलाचलेहिं)** अंगों के चलाचल करने में **(दिट्ठिचलालेहिं)** आँखों के चलाचल करने में **(एदेहिं सव्वेहिं)** इन सब क्रियाओं में **(असमाहिपत्तेहिं)** असमाधि को प्राप्त हुआ हूँ **(आयारेहिं)** आचार व्यवहार में दोष लगा हो, उन सबको दूर करने के लिये कायोत्सर्ग करता हूँ। **(जाव)** जब तक **(अरहंताणं)** अरहंत भगवान् की **(भयवंताणं)** सातिशय ज्ञानधारी पूज्य केवली भगवन्तों की **(पज्जुवासं)** पर्युपासना करता हूँ **(तावकालं)** तब-तक अर्थात् उतने काल पर्यन्त हे भगवन्! **(पावकम्मं)** पापकर्मों को **(दुच्चरियं)** दुश्चरित्र को/दुर्गति में ले जाने वाली कुचेष्टाओं को **(वोस्सरामि)** छोड़ता हूँ।

वदसमिदिंदियरोधो, लोचा-वासयमचेलमण्हाणं।
खिदिसयणमदंत-वणं, ठिदिभोयणमेयभत्तं च ॥१॥
एदे खलु मूलगुणा समणाणं जिणवरेहिं पण्णत्ता।
एत्थपमाद-कदादो अइचारादो णियत्तोऽहं ॥२॥

छेदोवट्ठावणं होदु मज्झं।

अथ सर्वातिचारविशुद्ध्यर्थं दैवसिक/रात्रिक प्रतिक्रमणक्रियायां कृतदोष-निराकरणार्थं पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजा-वन्दनास्तव-समेतं निष्ठितकरण-वीर-भक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहम्।

(इति प्रतिज्ञाप्य) ऐसी प्रतिज्ञा करके दिवसे १०८ रात्रौ च ..... चतुर्विंशतिस्तवं पठेत्)।

अर्थ—इस प्रकार प्रतिज्ञा करके दिन में १०८ तथा रात्रि में ५४ उच्छ्वासों में 'णमो अरहंताणं...' इत्यादि पढ़कर कायोत्सर्ग करना चाहिए एवं तत्पश्चात् थोस्सामि...करना चाहिए।

यः सर्वाणि चराचराणि विधिवद्,द्रव्याणि तेषां गुणान्,
पर्यायानपि भूत-भावि-भवतः, सर्वान् सदा सर्वदा।
जानीते युगपत् प्रतिक्षण-मतः, सर्वज्ञ इत्युच्यते,
सर्वज्ञाय जिनेश्वराय महते, वीराय तस्मै नमः ॥१॥

अन्वयार्थ—(यः) जो **(सर्वाणि)** सम्पूर्ण **(चर-अचराणि)** चेतन और अचेतन **(विधिवत्)** स्वरूपानुसार उनकी **(द्रव्याणि)** द्रव्यों को **(तेषां)** और उनके **(गुणान्)** समस्त गुणों को **(भूतभाविभवतः)** भूत-भावी और वर्तमान **(सर्वान् पर्यायान्)** सम्पूर्ण पर्यायों को **(सदा)** हमेशा **(सर्वदा)** सर्वकाल में **(प्रतिक्षणं)** प्रति समय में **(युगपत्)** एक साथ **(जानीते)** जानते हैं **(अतः)** इसलिए **(सर्वज्ञः)** वे सर्वज्ञ **(इति)** इस प्रकार **(उच्यते)** कहे जाते हैं **(तस्मै)** उन **(सर्वज्ञाय)** सर्वज्ञ **(जिनेश्वराय)** जिनेश्वर **(महते वीराय)** पूज्य महावीर भगवान् के लिए **(नमः)** नमस्कार हो!

वीरः सर्व-सुराऽसुरेन्द्र-महितो, वीरं बुधाः संश्रिता,
वीरेणाभिहतः स्व-कर्म-निचयो, वीराय भक्त्या नमः।
वीरात् तीर्थ-मिदं-प्रवृत्त मतुलं, वीरस्य घोरं तपो,
वीरे श्रीद्युतिकान्तिकीर्तिधृतयो, हे वीर! भद्रं त्वयि ॥२॥

अन्वयार्थ—(वीरः) वीर भगवान् **(सर्व सुर असुरेन्द्र महितः)** सभी सुर/देव और असुर तथा इन्द्रों से पूजित हैं **(वीरं)** वीर प्रभु को **(बुधाः)** ज्ञानी जन **(संश्रिताः)** आश्रय करते हैं **(स्वकर्मनिचयः)** अपने

कर्म समूह को **(वीरेण)** जिन वीर भगवान् के द्वारा **(अभिहतः)** नष्ट कर दिया गया है **(वीराय)** उन वीर प्रभु के लिए **(भक्त्या)** भक्ति से **(नमः)** नमस्कार हो। **(वीरात्)** वीर प्रभु से ही **(इदम्)** यह **(अतुलं)** अनुपम, अतुल **(तीर्थं)** तीर्थ **(प्रवृत्तं)** प्रवृत्त हुआ है **(वीरस्य)** वीर भगवान् का **(तपो)** तप **(घोरं/वीरं)** उत्कृष्ट है **(वीरे)** वीर भगवान् में **(श्री)** अन्तरंग अनंत चतुष्टय और बाह्य समवसरणादि लक्ष्मी **(धुति कान्ति कीर्तिधृतयः)** तेज, कान्ति, यश और धैर्यता गुण विद्यमान हैं **(हे वीर!)** हे वीर भगवान् **(त्वयि)** आप में **(भद्रं)** कल्याण निहित है अर्थात् हे वीर भगवान्! आप ही कल्याणकारी हैं।

इस श्लोक में कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, सम्बंध, अधिकरण और सम्बोधन आठों विभक्तियों का प्रयोग करते हुए वीर भगवान् की सुन्दर अलंकार पूर्ण स्तुति की गई है।

ये वीरपादौ प्रणमन्ति नित्यं, ध्यानस्थिताःसंयम-योग-युक्ताः।
ते वीतशोका हि भवन्ति लोके, संसारदुर्गं विषमं तरन्ति ॥३॥

अन्वयार्थ—(ये) जो भव्य पुरुष **(ध्यान स्थिताः)** होकर **(संयम-योगयुक्ताः)** संयम सहित योग से युक्त होते हुए **(नित्य)** प्रतिदिन/हमेशा **(वीर पादौ)** वीर भगवान् के दोनों चरण-कमलों को **(प्रणमन्ति)** नमस्कार करते हैं **(ते)** वे भव्य पुरुष **(लोके)** संसार में **(हि)** निश्चित रूप से **(वीतशोका)** शोक मुक्त / शोक रहित होते हैं **(विषमं)** विषम **(संसार दुर्गम्)** संसाररूपी अटवी को **(तरंति)** तिर जाते हैं अर्थात् पार कर मुक्त हो जाते हैं।

व्रत - समुदय - मूलः संयम - स्कन्ध - बन्धो,
यम नियमपयोभिर्वर्धितः शील - शाखः।
समिति - कलिक - भारो गुप्ति - गुप्त - प्रवालो,
गुण - कुसुमसुगन्धिः सत् - तपश्चित्र - पत्रः ॥४॥
शिव - सुख - फलदायी यो दया - छाययौद्घः,
शुभजन - पथिकानां खेदनोदे समर्थः।
दुरित - रविज - तापं प्रापयन्नन्त-भावं,
स भव - विभव - हान्यै नोऽस्तु चारित्र - वृक्षः ॥५॥

अन्वयार्थ—(व्रत समुदयमूलः) व्रतों का समूह जिसकी जड़ है **(संयम-स्कन्धबन्धो)** संयम जिसका स्कन्ध बन्ध है **(यम नियमपयोभिः)** यम और नियमरूपी जल के द्वारा जो **(वर्द्धितः)** वृद्धि को प्राप्त है **(शील-शाखः)** १८ हजार शील जिसकी शाखाएँ हैं **(समितिकलिक भारः)** पाँच समिति रूप कलिकाएँ भार हैं **(गुप्ति गुप्तप्रवालः)** तीन गुप्तियाँ जिसमें गुप्त कोंपल हैं **(गुणकुसुमसुगंधिः)** ८४ लाख उत्तरगुण व २८ मूलगुण जिसके पुष्पों की सुगन्धि है **(सत्तपः)** समीचीन तप **(चित्रपत्रः)** चित्र-विचित्र पत्ते हैं। **(यः)** जो **(शिवसुखफलदायी)** मोक्षरूपी फल को देने वाला है **(दयाछायया ओघः)** दयारूपी छाया समूह से युक्त है **(शुभजन-पथिकानां)** शुभोपयोग में दत्तचित्त पथिकों या भव्य जनों के **(खेदनोदे)** खेद को दूर करने में **(समर्थः)** समर्थ है **(दुरित-रविज तापं)** पापरूप सूर्य से उत्पन्न होने वाले ताप को **(अभावं)** अस्त या नाश को **(प्रापयन्)** प्राप्त कराता हुआ **(सः)** वह **(चारित्रवृक्ष)** चारित्र रूपी वृक्ष **(नः)** हमारे **(भव)** संसार रूप **(विभव हान्यै)** नश्वर विभूति या पुण्याधीन वैभव के नाश के लिये **(अस्तु)** हो।

चारित्रं सर्वजिनैश्, चरितं प्रोक्तं च सर्व - शिष्येभ्यः।
प्रणमामि पञ्च - भेदं, पञ्चम - चारित्र - लाभाय ॥६॥

अन्वयार्थ—(सर्वजिनैः) सब तीर्थंकरों के द्वारा **(चारित्रं)** जिस चारित्र का स्वयं **(चरितं)** आचरण किया गया। **(च)** तथा **(सर्वशिष्येभ्यः)** समस्त शिष्यों के लिए **(प्रोक्तं)** जिस चारित्र का उपदेश दिया गया, उस **(पंचभेदं चारित्रं)** सामायिक, छेदोपस्थापना आदि पाँच भेद युक्त चारित्र को **(पंचम चारित्र लाभाय)** पाँचवें यथाख्यातचारित्र की प्राप्ति के लिये **(प्रणमामि)** मैं नमस्कार करता हूँ।

धर्मः सर्व - सुखाकरो हितकरो, धर्मं बुधाश्चिन्वते,
धर्मेणैव समाप्यते शिव - सुखं, धर्माय तस्मै नमः।
धर्मान्नास्त्यपरः सुहृद्भव - भृतां, धर्मस्य मूलं दया,
धर्मे चित्तमहं दधे प्रतिदिनं, हे धर्म, मां पालय ॥७॥

अन्वयार्थ—(सर्वसुख आकरः) सब सुखों की खानि **(हितकरः)** हित को करने वाला **(धर्मः)** धर्म है। **(बुधाः)** बुद्धिमान लोग **(धर्मं)** धर्म

को **(चिन्वते)** संचय करते हैं **(धर्मेण)** धर्म के द्वारा **(एव)** ही **(शिवसुखं)** मोक्ष सुख **(सम् आप्यते)** अच्छी तरह **(तस्मै)** इसलिये **(धर्माय)** धर्म के लिये **(नमः)** नमस्कार हो। **(भवभृतां)** संसारी प्राणियों का **(धर्मात्)** धर्म से **(अपरः)** भिन्न, अन्य कोई दूसरा **(सुहृद्)** मित्र **(न अस्ति)** नहीं है। **(धर्मस्य)** धर्म की **(मूलं)** जड़ **(दया)** दया है। **(अहं)** मैं **(प्रतिदिनं)** प्रतिदिन/सदैव को **(धर्मे)** धर्म में **(दधे)** लगाता हूँ। **(हे धर्म!)** हे धर्म **(मां)** मेरी **(पालय)** रक्षा करो।

इस श्लोक में धर्म के साथ सातों विभक्तियों का सुन्दर प्रयोग किया है।

धम्मो मंगल-मुक्किट्ठं अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तस्स पणमंति जस्स धम्मे सया मणो ॥८॥

अन्वयार्थ—(अहिंसा) अहिंसा **(संयमो)** संयम **(तवो)** तप रूप **(धम्मो)** धर्म **(मंगलम्)** मंगल **(उक्किट्ठं)** कहा गया है **(जस्स)** जिसका **(मणो)** मन **(सया)** सदा **(धम्मे)** धर्म में लगा रहता है **(तस्स)** उसको **(देवा वि)** देव भी **(णमंसंति)** नमस्कार करते हैं।

इच्छामि भंते! पडिक्कमणाइचारमालोचेउं सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचरित्त-तव-वीरियाचारेसु जम-णियम-संजम-सील-मूलुत्तर-गुणेसु, सव्वमइचारं, सावज्ज-जोगं पडिविरदोमि, असंखेज्ज-लोग-अज्झवसाण-ठाणाणि, अप्पसत्थजोग-सण्णा-इंदिय-कसाय-गारव-किरियासु मणवयणकाय-करण-दुप्पणिहाणाणि, परिचिंतियाणि, किण्हणील-काउ-लेस्साओ, विकहा-पालिकुंचिएण, उम्मग्गहस्सरदि-अरदि-सोय-भय-दुगुंछ-वेयण-विज्झंभ-जंभाइ आणि अट्टरुद्द-संकिलेस-परिणामाणि परिणाम-दाणि, अणिहुदकर-चरण-मण-वयण-काय-करणेण, अक्खित्त-बहुल-परायणेण, अपडिपुण्णेण वा, सरक्खरावय-परिसंघाय-पडिवत्तिएण, अच्छाकारिदं मिच्छामेलिदं, आमेलिदं, वा मेलिदं वा अण्णहादिण्णं अण्णहापडिच्छिदं, आवासएसु परिहीणदाए कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा समणु मण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्क डं।

अन्वयार्थ—(भंते!) हे भगवन् ! **(पडिक्कमणाइचारमालोचेउं)**

प्रतिक्रमण भक्ति सम्बन्धी कायोत्सर्ग करके उसकी आलोचना करने की **(इच्छामि)** मैं इच्छा करता हूँ। **(सम्मणाण सम्मदंसण-सम्मचरित्त-तव-वीरियाचारेसु)** ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार और वीर्याचार **(जम-णियम संजम-शील-मूलुत्तरगुणेसु)** यम-नियम-संयम-शील-मूलगुण और उत्तर गुणों में होने वाले **(सव्वं)** समस्त **(अइयारं)** अतिचारों व **(सावज्जोगं)** सावद्ययोग से **(पडिविरदोमि)** विरत होता हूँ, त्याग करता हूँ। **(असंखेज्जलोगअज्झवसायठाणाणि)** असंख्यात लोक प्रमाण अध्यवसाय स्थान **(अप्पसत्थजोगसण्णा णिंदियकसायगारव-क्रिरियासु)** अप्रशस्तयोग, संज्ञा, इन्द्रिय, कषाय और गारव क्रियाओं में **(मणवयण कायकरणदुप्पणिहाणाणि-परिचिंतियाणि)** मन-वचन-काय का दुष्पणिधान हुआ हो या अशुभ चिंतन किया हो **(किण्हणीलकाउ-लेस्साओ)** कृष्ण, नील, कापोत लेश्याओं में **(विकहापालिकुंचिएण)** विकथा में अनुरक्त हुआ हो **(उम्मग्ग हस्सरदि अरदिसोयभयदुगंछ वेयणविज्जंभजंभाइआणि)** उन्मार्ग, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, मुँह फाड़कर जंभाई लेना **(अट्ठरुद्दसंकिलेसपरिणामाणि परिणामदाणि)** आर्त-रौद्र रूप संक्लेश परिणाम में परिणमित किया हो **(अणिहुदकरचरण-मणवयणकाय-करणेन)** अनिभृत/चंचल हाथ-पैर-मन-वचन-काय की प्रवृत्ति करने से **(अक्खित्तबहुल परायणेण)** इन्द्रिय विषयों में अति प्रवृत्ति करने या लम्पटता होने से **(अपडिपुण्णेण)** अपरिपूर्णता से **(वा)** अथवा **(सरक्खरावयपरिसंघाय पडिवत्तिएण)** स्वर, अक्षर व्यञ्जन, पद और परिसंघात में अन्यथा प्रवृत्ति करने से **(वा)** अथवा **(अच्छाकारिदं)** शीघ्र उच्चारण किया हो **(वा)** अथवा **(मिच्छा-मेलिदं)** मिथ्या मिलाया हो अर्थात् पदच्छेदादि संबंध रहित दूसरे अक्षर मिलाकर पढ़ा हो **(आमेलिदं वा)** अथवा अक्षरों या छन्दों को इधर-उधर मिलाकर पढ़ा हो, जैसा 'दशरामसरा' को दशरा-मसरा पढ़ना **(मेलिदं वा)** अथवा उच्चध्वनि से पढ़ने योग्य अक्षरों को मन्द-ध्वनि से पढ़ा हो **(अण्णहादिण्णं)** अन्य प्रकार से उच्चारण किया हो **(अण्णहापडिच्छदं)** अन्यथा सुना हो **(आवासएसु)** आवश्यक क्रियाओं में **(परिहीणदाए)** हानि या त्रुटि

(कदो) की हो **(वा)** अथवा कराई हो **(वा)** अथवा **(कीरंतो)** हीनता करने वाले की **(समणुमणिदो)** अनुमोदना की हो **(तस्स)** तत्सम्बन्धी **(मे)** मेरे **(दुक्कडं)** दुष्कृत **(मिच्छा)** मिथ्या हों, मेरे पाप निष्फल होवें।

वदसमिदिंदियरोधो, लोचा-वासयमचेलमण्हाणं।
खिदिसयणमदंत-वणं, ठिदिभोयणमेयभत्तं च ॥१॥
एदे खलु मूलगुणा समणाणं जिणवरेहिं पण्णत्ता।
एत्थपमाद-कदादो अइचारादो णियत्तोऽहं ॥२॥
छेदोवट्ठावणं होदु मज्झं।

अथ सर्वातिचारविशुद्ध्यर्थं दैवसिक (रात्रिक) प्रतिक्रमणक्रियायां कृतदोषनिराकरणार्थं पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजा-वन्दना-स्तव-समेतं श्रीचतुर्विंशति-तीर्थंकर-भक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहम्।

अर्थ—अब व्रतों में लगे सभी अतिचारों की विशुद्धि के लिये रात्रिक-दैवसिक प्रतिक्रमण क्रियाओं में किये गये दोषों का निराकरण करने के लिये पूर्व आचार्यों के क्रम से सकल/सम्पूर्ण कर्मों के क्षय के लिये भावपूजा-भाव वन्दना स्तवन सहित चौबीस तीर्थंकर भक्ति के कायोत्सर्ग को मैं करता हूँ।

इति प्रतिज्ञाप्य

अर्थ—ऐसी प्रतिज्ञा करके 'णमो अरहंताणं' इत्यादि दण्डक बोलकर कायोत्सर्ग करना चाहिए तथा तत्पश्चात् 'थोस्सामि' इत्यादि चतुर्विंशति स्तव का पाठ करना चाहिए।

चतुर्विंशति तीर्थंकर भक्ति

चउवीसं तित्थयरे उसहाइ-वीर-पच्छिमे वंदे।
सव्वेसिं गुण-गण-हरे सिद्धे सिरसा णमंसामि ॥१॥

अन्वयार्थ—(उसहाइवीरपच्छिमे) वृषभदेव को आदि लेकर अन्तिम तीर्थंकर महावीर पर्यन्त **(चउवीसं)** चौबीस **(तित्थयरे)** तीर्थंकरों को **(वन्दे)** मैं नमस्कार करता हूँ। **(सव्वेसिं)** समस्त **(गुण-गण-हरे सिद्धे)** मुनि, गणधर और सिद्धों को **(सिरसा)** शिर से अर्थात् शिर झुका कर **(णमंसामि)** नमस्कार करता हूँ।

ये लोकेऽष्ट- सहस्र-, लक्षणधरा, ज्ञेयार्णवान्तर्गता,
ये सम्यग्भवजाल-हेतुमथनाश्चन्द्रार्कतेजोऽधिकाः ॥२॥

ये साध्विन्द्रसुराप्सरो-गण-शतै, गीत-प्रणुत्यार्चितास्,
तान्देवान्वृषभादिवीर-चरमान्भक्त्या नमस्याम्यहम् ॥३॥

अन्वयार्थ—(ये) जो **(लोके)** लोक में **(अष्टसहस्त्रलक्षणधरा)** एक हजार आठ लक्षणों के धारक हैं **(ज्ञेयार्णवान्तर्गता)** जो जीवादिक पदार्थों रूपी महासागर के पारंगत हैं **(ये)** जो **(सम्यक् हेतु)** समीचीन कारण हैं **(भवजालमथना:)** संसाररूपी जाल स्वरूप मिथ्यादर्शन-मिथ्याज्ञान मिथ्याचारित्र के नाश करने के लिए **(चन्द्र अर्क तेज: अधिका:)** चन्द्र और सूर्य से भी अधिक तेजस्वी हैं, **(साधु)** गणधर-मुनिगण **(इन्द्र)** इन्द्र **(सुर)** देव **(अप्सरागणशतै:)** तथा सैकड़ों अप्सराओं के समूह से **(गीत प्रणूता: ये)** जिनकी स्तुति की गई है, नमस्कार किया गया है **(अर्चिता:)** पूजा की गई है **(तान्)** उन **(वृषभादिवीर चरमान्)** वृषभनाथ जी को आदि ले अन्तिम महावीर पर्यन्त **(देवान्)** २४ तीर्थंकर देवों को **(अहं)** मैं **(भक्त्या)** भक्तिपूर्वक **(नमस्यामि)** नमस्कार करता हूँ।

नाभेयं देवपूज्यं, जिनवरमजितं, सर्वलोक- प्रदीपं,
सर्वज्ञं सम्भवाख्यं, मुनि-गण- वृषभं, नन्दनं देव-देवं।
कर्मारिघ्नं सुबुद्धिं, वरकमल-निभं, पद्मपुष्पाभिगन्धं,
क्षान्तं दान्तं सुपार्श्वं, सकलशशिनिभं, चंद्रनामानमीडे ॥४॥

अन्वयार्थ—(जिनवरं) जिनों में श्रेष्ठ **(देवपूज्यं)** देवों के द्वारा पूज्य **(नाभेयं)** नाभि राजा के पुत्र/नाभिनन्दन श्री आदिनाथ की। **(सर्वलोक-प्रदीपं)** तीन लोक को प्रकाशित करने के लिये दीप सम श्री **(अजितं)** अजितनाथ जिनेन्द्र की **(सर्वज्ञं)** त्रिकालवर्ती समस्त द्रव्य और उनकी समस्त पर्यायों को युगपत् जानने वाले श्री **(संभव)** संभवनाथ जिनेन्द्र। **(मुनिगणवृषभं देवदेवं)** मुनियों के समूह में श्रेष्ठ, देवाधिदेव **(नन्दनं)** श्री अभिनन्दन जिनेन्द्र की। **(कर्मारिघ्नं)** कर्मरूपी शत्रुओं को नाश करने वाले **(सुबुद्धिं)** श्री सुमतिनाथ जिनेन्द्र **(पद्मपुष्प अभिगन्धं)** कमल के पुष्प समान जिनके पावन शरीर की सुगंधि है, ऐसे **(वरकमल-निभं)** श्रेष्ठ कमल पुष्प के समान आभायुक्त श्री पद्मप्रभ जिनेन्द्र की। **(क्षांतं)** क्षमा/शान्ति/सहिष्णुता गुण युक्त **(दान्तं)** जितेन्द्रिय **(सुपार्श्वं)**

सुपार्श्वनाथ जिनेन्द्र की। **(सकलशशिनिभं)** पूर्णिमा के पूर्ण चन्द्रमा की आभा समान **(चन्द्रनामानं)** चन्द्रप्रभ नाम भगवान की **(ईडे)** मैं स्तुति करता हूँ।

विख्यातं पुष्पदन्तं, भवभय-मथनं शीतलं, लोक-नाथं,
श्रेयांसं शील-कोशं, प्रवर-नर-गुरुं, वासुपूज्यं सुपूज्यं।
मुक्तं दान्तेन्द्रियाश्वं, विमलमृषिपतिं सिंहसैन्यं, मुनीन्द्रं,
धर्मं सद्धर्मकेतुं, शमदमनिलयं, स्तौमि शान्तिं, शरण्यम् ॥५॥

अन्वयार्थ—(विख्यातं) विशेष प्रसिद्धि को प्राप्त **(पुष्पदन्तं)** श्री पुष्पदन्त जिनेन्द्र की **(भवभयमथनं)** संसार के भय का मथन/नाश करने वाले **(शीतलं)** श्री शीतलनाथ जिनेन्द्र की **(सुपूज्यं)** सम्यक् प्रकार से सौ इन्द्रों से पूज्य **(प्रवरनरगुरुं)** श्रेष्ठ या उत्तम मनुष्य-चक्रवर्ती गणधर आदिकों के गुरु **(मुक्तं)** चार घातिया कर्मों से रहित **(दान्त इन्द्रिय अश्वं)** इन्द्रियरूपी घोड़ों का दमन करने वाले **(विमलं)** विमलनाथ जिनेन्द्र की। **(ऋषिपतिं)** ऋद्धिधारी मुनियों के अर्थात् गणधर आदि सप्तर्द्धिधारी मुनियों के स्वामी **(मुनीन्द्रं)** मुनियों में श्रेष्ठ **(सिंह सैन्यं)** सिंहसेन राजा के पुत्र श्री अनन्तनाथ जिनेन्द्र की **(सत् धर्म केतु)** समीचीन/श्रेष्ठ रत्नत्रय धर्म की ध्वजा स्वरूप **(धर्मं)** धर्मनाथ जिनेन्द्र की **(शमदमनिलयं)** शान्ति/साम्यभाव तथा दमन रूप संयम भाव के खजाने **(शरण्यं)** संसार के दुखों से पीड़ित समस्त जीवों के शरणभूत **(शान्तिं)** श्री शान्तिनाथ जिनेन्द्र की **(स्तौमि)** मैं स्तुति करता हूँ।

कुन्थुं सिद्धालयस्थं, श्रमणपतिमरं, त्यक्तभोगेषु चक्रं,
मल्लिं विख्यातगोत्रं, खचरगणनुतं, सुव्रतं सौख्यराशिं।
देवेन्द्रार्च्यं नमीशं, हरिकुल-तिलकं, नेमिचन्द्रं भवान्तं,
पार्श्वं नागेन्द्रवन्द्यं, शरणमहमितो, वर्धमानं च भक्त्या ॥६॥

अन्वयार्थ—(सिद्धालयस्थं) सिद्धालय में स्थित **(कुन्थुं)** कुन्थुनाथ भगवान् की **(श्रमणपतिं)** मुनियों के अधिपति **(त्यक्तभोगेषु चक्रं)** त्याग दिया है भोगरूपी बाणों के समूह और हाथ में आये हुए चक्ररत्न को जिन्होंने ऐसे **(अर)** अरनाथ जिनेन्द्र (कामदेव-चक्री पद के धारी) की। **(विख्यातगोत्रं)** प्रसिद्ध है इक्ष्वाकु वंश है जिनका ऐसे **(मल्लिं)** मल्लिनाथ

भगवान् की /**(खचरगणनुतं)** विद्याधरों के समूह से नमस्कृत **(सौख्य-राशिम्)** सुख की राशि **(सुव्रतं)** मुनिसुव्रतनाथ जिनेन्द्र का। **(देवेन्द्रार्च्यं)** देवेन्द्रों के द्वारा पूजित **(नमीशं)** नमिनाथ जिनेन्द्र की **(भव अन्तं)** भव के अन्त को प्राप्त **(हरिकुलतिलकं)** हरिवंश के तिलक **(नेमिचन्द्रं)** नेमिनाथ भगवान् की। **(नागेन्द्र वन्द्यं)** धरणेन्द्र के द्वारा वन्दित, अर्चित **(पार्श्वं)** श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्र **(च)** और **(वर्धमानं)** वर्धमान जिनेन्द्र की **(अहं)** मैं **(भक्त्या)** भक्ति से/श्रद्धा से **(शरणं)** शरण को **(इतः)** प्राप्त होता हूँ।

अंचलिका

इच्छामि भंते! चउवीसतित्थयर भत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं पंचमहाकल्लाण-संपण्णाणं अट्ठमहा-पाडिहेरसहियाणं चउतीसातिसय-विसेस-संजुत्ताणं बत्तीस-देविंदमणिमउडमत्थय-महियाणं बलदेव-वासुदेव-चक्क हररिसि-मुणिजइअणगारोव-गूढाणं थुइसय सहस्स-णिलयाणं उसहाइवीरपच्छिम-मंगल-महा-पुरिसाणं णिच्चकालं अंचेमि पूजेमि वंदामि णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुण संपत्ती होउ मज्झं।

अन्वयार्थ—(भंते!) हे भगवन्! **(चउवीस तित्थयर भत्ति-काउस्सग्गो)** चौबीस तीर्थंकर भक्ति का कायोत्सर्ग **(कओ)** मैंने किया **(तस्स)** तत्सम्बन्धी **(आलोचेउं)** आलोचना करने की **(इच्छामि)** मैं इच्छा करता हूँ। **(पंचमहाकल्लाण संपण्णाणं)** गर्भ-जन्म-तप-ज्ञान और मोक्ष इन पाँच महाकल्याणक से सम्पन्न **(अट्ठमहापाडिहेरसहियाणं)** आठ महा-प्रतिहार्यों से युक्त **(चउतीसातिसयविसेससंजुत्ताणं)** ३४ अतिशय विशेषों से युक्त **(बत्तीसदेविंदमणिमयमउडमत्थयमहियाणं)** बत्तीस देवेन्द्रों के मणिमय मुकुटों से सुशोभित मस्तकों से पूजित **(बलदेववासुदेव चक्कहर)** बलदेव, वासुदेव चक्रधर/चक्रवर्ती **(रिसि-मुणिजइअणगारः)** ऋषि, मुनि, यति और अनगारों से **(अवगूढ)** **(थुइसयसहस्सणिलयाणं)** लाखों स्तुतियों के पात्र/खजाने **(उसहाइवीर-पच्छिममंगल-महापुरिसाणं)** वृषभदेव को आदि लेकर महावीर पर्यन्त मंगलमय महापुरुषों की **(णिच्च-कालं)** नित्यकाल/हमेशा **(अंचेमि)** मैं

अर्चना करता हूँ, **(पूजेमि)** पूजा करता हूँ **(वंदामि)** वन्दना करता हूँ **(णमस्सामि)** नमस्कार करता हूँ। **(दुक्खक्खओ)** मेरे दुखों का क्षय हो **(कम्मक्खओ)** कर्मों का क्षय हो **(बोहिलाहो)** मुझे बोधि का लाभ हो, बोधि अर्थात् रत्नत्रय का लाभ हो **(सुगइगमणं)** मेरा सुगति में गमन हो **(समाहिमरणं)** मेरा समाधिपूर्वक मरण हो **(जिन गुणसंपत्ति)** जिनेन्द्र गुणों की सम्पत्ति **(मज्झं)** मुझे **(होउ)** प्राप्त होवे।

अथ सर्वातिचारविशुद्ध्यर्थं दैवसिक (रात्रिक) प्रतिक्रमण-क्रियायां कृतदोषनिराकरणार्थं पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजा-वन्दनास्तव-समेतं श्री सिद्धभक्ति, प्रतिक्रमणभक्ति, निष्ठितकरण-वीर-भक्ति, चतुर्विंशति तीर्थंकर भक्तिः कृत्वा तद्धीनाधिक-दोष-विशुद्ध्यर्थं, आत्म-पवित्री-करणार्थं समाधि-भक्ति कायोत्सर्गकरोम्यहम्।

(इति विज्ञाप्य—णमो अरहंताणं इत्यादि दण्डकं पठित्वा कायोत्सर्गं कुर्यात्। अनन्तरं) थोस्सामीत्यादि पठेत्।

इस प्रकार विज्ञापन करके-णमो अरहंताणं इत्यादि दण्डक को पढ़कर कायोत्सर्ग को करें। थोस्सामी इत्यादि स्तव पढ़ें।

अथेष्ट-प्रार्थना

प्रथमं करणं चरणं द्रव्यं नमः।

अर्थ—प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग को नमस्कार हो।

शास्त्राभ्यासो जिन - पति - नुतिः, सङ्गतिः सर्वदार्यैः,
सद्वृत्तानां गुण - गण - कथा, दोष - वादे च मौनम्।
सर्वस्यापि प्रिय - हित - वचो, भावना चात्म - तत्त्वे,
सम्पद्यन्तां मम भव - भवे, यावदेतेऽपवर्गः ॥१॥

अन्वयार्थ—(मम) मुझे **(यावत्)** जब तक **(अपवर्गः)** मोक्ष की प्राप्ति न हो तब तक **(भवभवे)** भव/भव अर्थात् जन्म-जन्म में **(शास्त्र)** शास्त्रों का **(अभ्यासः)** पठन-मनन-चिंतन **(जिनपतिनुतिः)** जिनेन्द्र देव के चरणों को नमस्कार **(सर्वदा)** हमेशा **(आर्यैः)** आर्य पुरुष/चारित्रवान्, सज्जन पुरुषों की **(संगतिः)** संगति **(सद्वृत्तानां गुणगण-**

कथा) सच्चारित्र परायण पुरुषों के गुणों की कथा **(दोष वादे च)** पर के दोष कथन और दूसरों से विवाद में **(मौनं)** मौन **(सर्वस्यापि)** सब जीवों के साथ **(प्रिय हितवचः)** प्रिय व हितकर वचन **(आत्मतत्त्वे)** आत्मतत्त्व में स्वात्मास्वरूप में **(भावना)** भावना **(एते)** इन सब वस्तुओं की **(सम्पद्यन्तां)** प्राप्ति हो।

तव पादौ मम हृदये, मम हृदयं तव पदद्वये लीनम्।
तिष्ठतु जिनेन्द्र! तावद् यावन् निर्वाण-सम्प्राप्तिः ॥२॥

अन्वयार्थ—(जिनेन्द्र!) हे जिनेन्द्र देव! **(मम)** मुझे **(यावत्)** जब तक **(निर्वाणसम्प्राप्तिः)** मोक्ष सुख की प्राप्ति **(न)** नहीं होवे **(तावत्)** तब तक **(तव)** आपके **(पादौ)** दोनों चरण-कमल **(मम)** मेरे **(हृदयं)** हृदय में **(तिष्ठतु)** विराजमान रहें **(मम)** मेरा **(हृदयं)** हृदय **(तव)** आपके **(पदद्वये)** दोनों चरण-कमलों में **(लीनं)** लीन रहे।

अक्खर-पयत्थ-हीणं, मत्ताहीणं च जं मए भणियं।
तं खमउ णाणदेव! य, मज्झवि दुक्खक्खयं दिंतु ॥३॥

अन्वयार्थ—(णाणदेव!) हे कैवल्यज्योतिमयी ज्ञानदेव! **(मए)** मेरे द्वारा **(जं)** जो भी **(अक्खरपयत्थहीणम्)** अक्षर-पद-अर्थ रहित **(च)** और **(मत्ताहीणं)** मात्रा रहित **(भणियं)** कहा गया **(तं)** उसको **(खमउ)** क्षमा कीजिए **(य)** और **(मज्झवि)** मेरे भी **(दुक्खक्खयं)** दुखों का क्षय **(कुणउ)** कीजिए।

इच्छामि भंते! समाहिभत्ति-काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं, रयणत्तय-सरूव-परमप्पज्झाण-लक्खण-समाहिभत्तीए णिच्च-कालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुण-संपत्ति होउ मज्झं।

अन्वयार्थ—(भंते!) हे भगवन्! **(समाहिभत्ति)** मैंने समाधिभक्ति का **(काउस्सग्गो)** कायोत्सर्ग **(कओ)** किया **(तस्स)** तत्सम्बन्धी **(आलोचेउं)** आलोचना करने की **(इच्छामि)** मैं इच्छा करता हूँ। मैं **(रयणत्तयरूव परमप्पज्झाणलक्खण)** रत्नत्रय स्वरूप परमात्मा का ध्यान है लक्षण जिसका ऐसे **(समाहिभत्तिम्)** समाधिभक्ति की

(णिच्चकालं) सदा, हमेशा/नित्यकाल **(अंचेमि)** अर्चना करता हूँ **(पूजेमि)** पूजा करता हूँ, **(वंदामि)** वन्दना करता हूँ **(णमस्सामि)** नमस्कार करता हूँ, मेरे **(दुक्खक्खओ)** दुःखों का क्षय/नाश हो, **(कम्मक्खओ)** कर्मों का क्षय हो **(बोहिलाहो)** बोधि अर्थात् रत्नत्रय का लाभ हो, **(सुगइगमणं)** सुगति में गमन हो **(समाहिमरणं)** सम्यक् प्रकार आधि-व्याधि-उपाधि-रहित समाधिपूर्वक मरण हो **(मज्झं)** मुझे **(जिनगुणसंपत्ति)** जिनेन्द्रदेव के गुणरूप सम्पत्ति की प्राप्ति हो।

॥ इति रात्रिक/दैवसिक प्रतिक्रमण समाप्त ॥

मुनि पाक्षिक प्रतिक्रमण

(पाक्षिक, चातुर्मासिक और वार्षिक आदि प्रतिक्रमणों में सभी साधर्मी शिष्य, लघुसिद्धभक्ति, श्रुतभक्ति एवं आचार्यभक्ति द्वारा आचार्यश्री की वन्दना करें।)

नमोऽस्तु आचार्य-वन्दनायां प्रतिष्ठापन-सिद्धभक्ति-कायोत्सर्गं करोम्यहम्। (९ जाप्य)

सम्मत्त-णाण-दंसण-वीरिय-सुहुमं तहेव अवगहणं।
अगुरुलहु-मव्वावाहं, अट्ठगुणा होंति सिद्धाणं ॥१॥
तव-सिद्धे, णय-सिद्धे, संजम-सिद्धे,चरित्त-सिद्धे य।
णाणम्मि दंसणम्मि य, सिद्धे सिरसा णमस्सामि ॥२॥

इच्छामि भंते। सिद्ध-भत्ति-काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचरित्त-जुत्ताणं, अट्ठविह-कम्म-विप्प-मुक्काणं-अट्ठगुण -संपण्णाणं, उड्ढलोय-मत्थयम्मि पइट्ठियाणं, तवसिद्धाणं, णय-सिद्धाणं, संजमसिद्धाणं, चरित्तसिद्धाणं, अतीदाणागद-वट्टमाण-कालत्तय-सिद्धाणं, सव्वसिद्धाणं, णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमस्सामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं समाहिमरणं, जिणगुण-संपत्ति होउ मज्झं।

नमोऽस्तु आचार्यवन्दनायां प्रतिष्ठापन-श्रुतभक्ति-कायोत्सर्गं करोम्यहम्।

(९ जाप्य)

कोटिशतं द्वादश चैव कोट्यो, लक्षाण्य-शीतिस्-त्र्यधिकानि चैव।
पञ्चाश-दष्टौ च सहस्र - संख्य- मेतच्-छ्रुतं पञ्च-पदं नमामि ॥१॥
अरहंत-भासियत्थं-गणहर-देवेहिं गंथियं सम्मं।
पणमामि भत्ति-जुत्तो, सुद-णाण-महोवहिं सिरसा ॥२॥

इच्छामि भंते! सुदभत्ति-काउसग्गो कओ तस्सा-लोचेउं अंगोवंग-पइण्णय-पाहुडय-परियम्मि-सुत्त पढमाणि-ओग-पुव्वगय - चूलिया चेव-सुत्तत्थय-थुइ-धम्मकहाइयं, सया णिच्च-कालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमस्सामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइ-गमणं, समाहि-मरणं जिणगुण-संपत्ति होउ-मज्झं।

नमोऽस्तु आचार्य-वन्दनायां प्रतिष्ठापन-आचार्य-भक्ति-कायोत्सर्गं करोम्यहम्।

(९ जाप्य)

श्रुतजलधि-पारगेभ्यः, स्व-पर-मत-विभावना-पटुमतिभ्यः।
सुचरित-तपोनिधिभ्यो, नमो गुरुभ्यो-गुण-गुरुभ्यः ॥१॥

छत्तीस-गुण-समग्गे, पंच -विहाचार -करण-संदरिसे।
सिस्सा-णुग्गह-कुसले, धम्मा-इरिये सदा वंदे ॥२॥
गुरु-भत्ति-संजमेण य, तरंति संसार-सायरं घोरम्।
छिण्णंति अट्ठकम्मं, जम्मण-मरणं ण पावेंति ॥३॥
ये नित्यं-व्रत-मन्त्र-होम-निरता, ध्यानाग्नि-होत्राकुलाः।
षट्कर्माभिरतास्-तपोधनधनाः, साधुक्रियाः साधवः ॥४॥
शील - प्रावरणा-गुण-प्रहरणाश्-चन्द्रार्क-तेजोऽधिकाः ।
मोक्षद्वार-कपाट-पाटन-भटाः, प्रीणन्तु मां साधवः ॥५॥
गुरवः पान्तु नो नित्यं ज्ञान - दर्शन - नायकाः।
चारित्रार्णव-गम्भीरा, मोक्षमार्गोपदेशकाः ॥६॥

इच्छामि भंते! आइरियभत्ति-काउसग्गो कओ, तस्सालोचेउं, सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचरित्त-जुत्ताणं, पंच-विहाचाराणं, आइरियाणं, आयारादि-सुद-णाणो-वदेसयाणं उवज्झायाणं, तिरयण-गुण-पालण-रयाणं सव्वसाहूणं, णिच्च-कालं, अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमस्सामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइ-गमणं-समाहिमरणं, जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

(यहाँ शिष्यों और साधर्मियों से युक्त आचार्य अपने इष्टदेव को नमस्कार करें पश्चात् 'समतासर्वभूतेषु' इत्यादि पाठ और बृहत्सिद्धभक्ति एवं चारित्र-भक्ति पढ़ें।)

नमः श्रीवर्धमानाय निर्धूत-कलिलात्मने।
सालोकानां त्रिलोकानां यद्विद्या दर्पणायते ॥१॥
समता सर्वभूतेषु संयमे शुभ-भावना।
आर्त्तरौद्र-परित्यागस्तद्धि सामायिकं मतम् ॥२॥

अथ सर्वातिचार-विशुद्ध्यर्थं पाक्षिक/चातुर्मासिक/वार्षिक-प्रतिक्रमण-क्रियायां कृतदोष-निराकरणार्थं पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं, भाव-पूजा-वन्दना-स्तव-समेतं श्रीसिद्धभक्ति-कायोत्सर्गं करोम्यहम्।

णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ॥१॥

चत्तारि मंगलं-अरहंत मंगलं सिद्ध मंगलं साहू मंगलं केवलि-पण्णत्तो धम्मो मंगलं। चत्तारि लोगुत्तमा - अरहंत लोगुत्तमा सिद्ध लोगुत्तमा साहू

लोगुत्तमा केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो। चत्तारि सरणं पवज्जामि-अरहंत सरणं पवज्जामि सिद्ध सरणं पवज्जामि साहू सरणं पवज्जामि केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पवज्जामि।

अड्ढाइज्जदीव-दोसमुद्देसु पण्णारसकम्मभूमीसु जाव अरिहंताणं भयवंताणं आदियराणं तित्थयराणं जिणाणं जिणोत्तमाणं केवलियाणं सिद्धाणं बुद्धाणं परिणिव्वुदाणं अंतयडाणं पारगयाणं धम्माइरियाणं धम्मदेसियाणं धम्मणायगाणं धम्मवरचाउरंगचक्कवट्टीणं देवाहिदेवाणं णाणाणं दंसणाणं चरित्ताणं सदा करेमि किरियम्मं। करेमि भंते! सामाइयं सव्व-सावज्ज-जोगं पच्चक्खामि जावज्जीवं तिविहेण मणसा वचसा काएण ण करेमि ण कारेमि अण्णं करंतं पि ण समणुमण्णामि तस्स भंते अइचारं पडिकम्मामि णिंदामि गरहामि अप्पाणं जाव अरहंताणं भयवंताणं पज्जुवासं करेमि तावकालं पावकम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि।

(यहाँ तीन आवर्त, एक शिरोनति करके २७ उच्छ्वास पूर्वक कायोत्सर्ग करें। अनन्तर नमस्कार करके पुनः तीन आवर्त और एक शिरोनति करके चतुर्विंशतिस्तव पढ़ें।)

थोस्सामि हं जिणवरे, तित्थयरे केवली अणंतजिणे।
णरपवरलोयमहिए, विहुय-रयमले महप्पण्णे ॥१॥
लोयस्सुज्जोय-यरे, धम्मं तित्थंकरे जिणे वंदे।
अरहंते कित्तिस्से, चउवीसं चेव केवलिणो ॥२॥
उसहमजियं च वंदे, संभव-मभिणंदणं च सुमइं च।
पउमप्पहं सुपासं, जिणं च चंदप्पहं वंदे ॥३॥
सुविहिं च पुप्फयंतं, सीयल सेयं च वासुपुज्जं च।
विमल-मणंतं भयवं, धम्मं संतिं च वंदामि ॥४॥
कुंथुं च जिणवरिंदं, अरं च मल्लिं च सुव्वयं च णमिं।
वंदामि रिट्ठ-णेमिं, तह पासं वड्ढमाणं च ॥५॥
एवं मए अभित्थुआ, विहुयरयमलापहीण-जरमरणा।
चउवीसं पि जिणवरा, तित्थयरा मे पसीयंतु ॥६॥
कित्तिय वंदिय महिया, एदे लोगोत्तमा जिणा सिद्धा।
आरोग्ग-णाण-लाहं, दिंतु समाहिं च मे बोहिं ॥७॥

चंदेहिं णिम्मल-यरा, आइच्चेहिं अहिय-पयासंता।
सायरमिव गंभीरा, सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु ॥८॥

सिद्धभक्ति

सिद्धा-नुद्धूत-कर्मप्रकृति-समुदयान्, साधितात्म-स्वभावान्।
वन्दे सिद्धिः-प्रसिद्धयै, तदनुपम-गुण-प्रग्रहाकृष्टि-तुष्टः॥
सिद्धिः स्वात्मोपलब्धिः प्रगुण-गुण गणोच्छादि-दोषापहाराद्,
योग्योपादान-युक्त्या दृषद् इह यथा हेम-भावोपलब्धिः ॥१॥
नाभावासिद्धि-रिष्टा, न निज-गुण-हतिस्तत् तपोभिर्नयुक्ते,
रस्त्यात्मानादिबद्धः स्वकृतज-फलभुक्-, तत् क्षयान् मोक्षभागी।
ज्ञाता दृष्टा स्वदेह-प्रमिति-रुपसमाहार-विस्तार-धर्मा,
ध्रौव्योत्पत्ति-व्ययात्मा,स्वगुण-युत इतो, नान्यथा साध्यसिद्धिः॥२॥
स त्वन्तर्बाह्य-हेतु-प्रभव-विमल-सद्दर्शन-ज्ञान-चर्या-
सम्पद्धेति-प्रघात-क्षत-दुरित-तया, व्यञ्जिताचिन्त्य-सारैः।
कैवल्यज्ञानदृष्टि - प्रवर - सुख - महावीर्य सम्यक्त्वलब्धि-
र्ज्योति-र्वातायनादि-स्थिर-परमगुणै-, रद्भुतै-र्भासमानः॥३॥
जानन् पश्यन् समस्तं, सम-मनुपरतं, संप्रतृप्यन् वितन्वन्,
धुन्वन् ध्वान्तं नितान्तं, निचित-मनुपमं, प्रीणयन्नीशभावम्।
कुर्वन् सर्व-प्रजाना-मपर-मभिभवन्, ज्योति-रात्मानमात्मा,
आत्मन्येवात्मनाऽसौ, क्षण-मुपजनयन्-,सत्स्वयंभूः प्रवृत्तः ॥४॥
छिन्दन् शेषानशेषान्-, निगल-बल-कलींस्तै-रनन्त-स्वभावैः,
सूक्ष्मत्वाग्र्यावगाहा-,गुरु-लघुक-गुणैः, क्षायिकैः शोभमानः।
अन्यैश्चान्य-व्यपोह-, प्रवण-विषय-सम्प्राप्ति-लब्धि-प्रभावै-
रूर्ध्वं व्रज्या स्वभावात् समय-मुपगतो धाम्नि सन्तिष्ठतेऽग्र्ये ॥५॥
अन्याकाराप्ति-हेतु-, र्न च भवति परो येन तेनाल्प-हीनः,
प्रागात्मोपात्त-देह-, प्रति-कृति रुचिराकार एव ह्यमूर्तः।
क्षुत्-तृष्णा-श्वास-कास-, ज्वर-मरण-जरानिष्ट-योग-प्रमोह-
व्यापत्याद्युग्र-दुःख-,प्रभवभवहतेः, कोऽस्य सौख्यस्य माता ॥६॥
आत्मोपादान-सिद्धं, स्वय-मतिशय-वद्-, वीत-बाधं विशालं,
वृद्धि-ह्रास-व्यपेतं, विषय-विरहितं, निःप्रतिद्वन्द्व-भावम्।

अन्य-द्रव्यानपेक्षं, निरुपम-ममितं, शाश्वतं सर्व-कालम्,
उत्कृष्टानन्त-सारं, परम-सुखमतस्तस्य सिद्धस्य जातम् ॥७॥
नार्थः क्षुत्-तृड्-विनाशाद्, विविध-रसयुतै-,रन्न-पानै-रशुच्या,
नास्पृष्टे-र्गन्ध-माल्यै-, र्नहि मृदुशयनै-र्ग्लानि-निद्राद्यभावात्।
आतङ्कार्ते-रभावे, तदुपशमन-सद्-, भेषजानर्थतावद्,
दीपा-नर्थक्य-वद् वा, व्यपगत-तिमिरे, दृश्यमाने समस्ते ॥८॥
तादृक्-सम्पत्-समेता, विविध-नय-तपः, संयम-ज्ञान-दृष्टि -
चर्या-सिद्धाः समन्तात्, प्रवितत्-यशसो, विश्वदेवाधि-देवाः।
भूता भव्या भवन्तः, सकल-जगति ये, स्तूयमाना विशिष्टैस्,
तान् सर्वान् नौम्यनन्तान्, निजिगमिषुरं तत्स्वरूपं त्रिसन्ध्यम् ॥९॥
कृत्वा कायोत्सर्गं, चतुरष्ट-दोष-विरहितं सुपरिशुद्धं।
अतिभक्तिसम्प्रयुक्तो, यो वन्दते स लघु लभते परम सुखम्॥

अञ्चलिका

इच्छामि भंते! सिद्धभत्ति-काउस्सग्गो कओ तस्सा-लोचेउं सम्मणाण-सम्मदंसण सम्मचरित्तजुत्ताणं, अट्ठविह-कम्म-विप्पमुक्काणं, अट्ठगुण-संपण्णाणं, उड्ढलोय-मत्थयम्मि पइट्ठियाणं, तवसिद्धाणं, णयसिद्धाणं, संजमसिद्धाणं, चरित्तसिद्धाणं, अतीताणागदवट्टमाण-कालत्तय-सिद्धाणं, सव्व-सिद्धाणं, णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइ-गमणं, समाहि-मरणं, जिणगुण-संपत्ति होउ मज्झं।

अथ सर्वातिचार-विशुद्ध्यर्थं आलोचना चारित्र-भक्ति-कायोत्सर्गं करोम्यहम्।

(यहाँ आवर्त आदि की पूर्व विधि सहित सामायिकदण्डक एवं थोस्सामिस्तव इत्यादि बोलकर निम्नलिखित चारित्रभक्ति आलोचना सहित बोलना चाहिए।)

चारित्रभक्ति

येनेन्द्रान् भुवन-त्रयस्य विलसत्,-केयूर-हाराङ्गदान्,
भास्वन्-मौलि-मणिप्रभा-प्रविसरोत्-तुङ्गोत्तमाङ्गान्नतान्।
स्वेषां पाद-पयोरुहेषु मुनयश्, चक्रुः प्रकामं सदा,
वन्दे पञ्चतयं तमद्य निगदन्,-नाचार-मभ्यर्चितम् ॥१॥
अर्थ-व्यञ्जन-तद्द्वया-विकलता,- कालोपधा-प्रश्रयाः,

स्वाचार्याद्यनपह्नवो बहु-मतिश्, चेत्यष्टधा व्याहृतम्।
श्रीमज्ज्ञाति-कुलेन्दुना भगवता, तीर्थस्य कर्त्राऽञ्जसा,
ज्ञानाचार-महं त्रिधा प्रणिपता,-म्युद्धूतये कर्मणाम् ॥२॥
शङ्का-दृष्टि-विमोह-काङ्क्षणविधि-,व्यावृत्ति-सन्नद्धतां,
वात्सल्यं विचिकित्सना-दुपरतिं, धर्मोपबृंह-क्रियाम्।
शक्त्या शासन-दीपनं हित-पथाद्, भ्रष्टस्य संस्थापनं,
वन्दे दर्शन-गोचरं सुचरितं, मूर्ध्ना नमन्नादरात् ॥३॥
एकान्ते शयनोपवेशन - कृतिः, सन्तापनं तानवं,
संख्या-वृत्ति-निबन्धना-मनशनं, विष्वाण-मर्द्धोदरम्।
त्यागं चेन्द्रिय-दन्तिनो मदयतः, स्वादो रसस्यानिशं,
षोढा बाह्यमहं स्तुवे शिवगति,- प्राप्त्यभ्युपायं तपः ॥४॥
स्वाध्यायः शुभकर्मणश्च्युतवतः सम्प्रत्यवस्थापनं,
ध्यानं व्यापृति - रामया - विनि गुरौ, वृद्धे च बाले यतौ।
कायोत्सर्जन सत्क्रिया, विनय-इत्येवं तपः षड्विधं,
वन्देऽभ्यन्तर-मन्तरङ्ग बलवद्, - विद्वेषि विध्वंसनम् ॥५॥
सम्यग्ज्ञान विलोचनस्य दधतः श्रद्धान-मर्हन्मते,
वीर्यस्या-विनि-गूहनेन तपसि, स्वस्य प्रयत्नाद्यतेः।
या वृत्तिस्तरणीव नौ-रविवरा, लघ्वी भवोदन्वतो,
वीर्याचारमहं तमूर्जितगुणं, वन्दे सता-मर्चितम् ॥६॥
तिस्रः सत्तम-गुप्तयस्तनुमनो, भाषानिमित्तोदयाः,
पञ्चेर्यादि-समाश्रयाः समितयः, पञ्चव्रतानीत्यपि।
चारित्रोपहितं त्रयोदशतयं पूर्वं न दृष्टं परै-
राचारं परमेष्ठिनो जिनपतेर्, वीरं नमामो वयम् ॥७॥
आचारं सह-पञ्चभेद-मुदितं, तीर्थं परं मङ्गलं,
निर्ग्रन्थानपि सच्चरित्र-महतो, वन्दे समग्रान्यतीन्।
आत्माधीन सुखोदया मनुपमां लक्ष्मी-मविध्वंसिनीं,
इच्छन्केवलदर्शना - वगमन, प्राज्यप्रकाशोज्ज्वलाम् ॥८॥
अज्ञा-नाद्य-दवीवृतं नियमिनोऽ, वर्तिष्यहं चान्यथा,
तस्मिन् नर्जित-मस्यति प्रतिनवं, चैनो निराकुर्वति।

वृत्ते सप्ततयीं निधिं सुतपसा-मृद्धिं नयत्यद्भुतं,
तन्मिथ्या गुरुदुष्कृतं भवतु मे, स्वं निन्दतो निन्दितम् ॥९॥
संसार-व्यसना-हति-प्रचलिता, नित्योदय-प्रार्थिनः,
प्रत्यासन्न-विमुक्तयः सुमतयः, शान्तैनसः प्राणिनः।
मोक्षस्यैव कृतं विशालमतुलं सोपान-मुच्चैस्तरा,
मारोहन्तु चरित्र-मुत्तम-मिदं, जैनेन्द्र-मोजस्विनः ॥१०॥

इच्छामि भंते! चारित्तभत्ति काउस्सग्गो कओ, तस्स आलोचेउं सम्म-णाणजोयस्स सम्मत्ताहि-ट्ठियस्स, सव्वपहाणस्स, णिव्वाण-मग्गस्स, कम्मणिज्जरफलस्स, खमाहारस्स, पंचमहव्वयसंपण्णस्स, तिगुत्ति-गुत्तस्स, पंचसमिदिजुत्तस्स, णाणज्झाण-साहणस्स, समया इव पवेसयस्स सम्मचारित्तस्स णिच्चकालं, अंचेमि, पूजेमि, वंदामि,णमंसामि, दुक्खक्खओ कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

बृहद्-आलोचना

(इच्छामि भंते! अट्ठमियम्मि आलोचेउं, अट्ठण्हं दिवसाणं, अट्ठण्हं राइणं, अब्भंतरादो, पंचविहो आयारो णाणायारो, दंसणायारो, तवायारो, वीरियायारो, चारित्तायारो चेदि ॥१॥)

इच्छामि भंते! पक्खियम्मि आलोचेउं, पण्णरसण्हं दिवसाणं, पण्णरसण्हं राइणं, अब्भंतरादो, पंचविहो आयारो णाणायारो, दंसणायारो, तवायारो, वीरियायारो, चरित्तायारो चेदि ॥२॥

(इच्छामि भंते! चउमासियम्मि आलोचेउं, चउण्हं मासाणं,अट्ठण्हं पक्खाणं, वीसुत्तर-सय-दिवसाणं, वीसुत्तर-सय-राइणं, अब्भंतरादो, पंचविहो आयारो णाणायारो, दंसणायारो, तवायारो, वीरियायारो, चरित्तायारो चेदि ॥३॥)

(इच्छामि भंते! संवच्छरियम्मि आलोचेउं, बारसण्हं मासाणं, चउवीसण्हं पक्खाणं, तिण्हं सय छावट्ठि-दिवसाणं, तिण्हं सय छावट्ठि-राइणं, अब्भंतरादो, पंचविहो आयारो णाणायारो, दंसणायारो, तवायारो, वीरियायारो, चरित्तायारो चेदि ॥४॥)

तत्थ णाणायारो अट्ठविहो काले, विणए, उवहाणे, बहुमाणे, तहेव

अणिण्हवणे, विंजण-अत्थ-तदुभये चेदि। णाणायारो-अट्ठविहो परिहाविदो, से अक्खरहीणं वा, सरहीणं वा, विंजणहीणं वा, पदहीणं वा, अत्थहीणं वा, गंथहीणं वा, थएसु वा, थुइसु वा, अत्थक्खाणेसु वा, अणियोगेसु वा, अणियोगद्वारेसु वा, अकाले-सज्झाओ कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो, काले वा, परिहाविदो, अच्छा-कारिदं वा, मिच्छा-मेलिदं वा, आमेलिदं वा, वामेलिदं, अण्णहादिण्हं, अण्णहापडिच्छिदं, आवासएसु-परिहीणदाए तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥१॥

दंसणायारो अट्ठविहो

णिस्संकिय-णिकंक्खिय-णिव्विदिगिंच्छा अमूढदिट्ठी य।
उवगूहण-ठिदिकरणं वच्छल्ल-पहावणा चेदि ॥१॥

दंसणायारो अट्ठविहो परिहाविदो संकाए, कंखाए, विदिगिंछाए, अण्ण-दिट्ठी-पसंसणाए, परपासंडपसंसणदाए, अणायदण-सेवणाए, अवच्छल्ल-दाए, अपहावणाए तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥२॥

तवायारो बारसविहो अब्भंतरो छव्विहो, बाहिरो छव्विहो चेदि। तत्थ बाहिरो अणसणं, आमोदरियं, वित्ति-परिसंखा, रसपरिच्चाओ, सरीरपरिच्चाओ, विवित्त-सयणासणं चेदि। तत्थ अब्भंतरो पायच्छित्तं, विणओ, वेज्जावच्चं, सज्झाओ, विउस्सग्गो, झाणं चेदि। अब्भंतरं-बाहिरं बारसविहं तवोकम्मं ण कदं, णिसण्णेण पडिक्कंतं तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥३॥

वीरियायारो पंचविहो परिहाविदो वरवीरिय-परिक्कमेण जहुत्त-माणेण, बलेण, वीरिएण, परिक्कमेण णिगूहियं, तवोकम्मं ण कदं णिसण्णेण पडिक्कंतं तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥४॥

चरित्तायारो तेरसविहो परिहाविदो पंचमहव्वदाणि, पंचसमिदीओ, तिगुत्तीओ चेदि। तत्थ पढमे महव्वदे पाणादिवादादो वेरमणं से पुढविकाइया जीवा असंखेज्जा-संखेज्जा, आउकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, तेउकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, वाउकाइया जीवा असंखेज्जा-संखेज्जा, वणप्फदिकाइया जीवा अणंताणंता हरिया, बीआ, अंकुरा, छिण्णा, भिण्णा, एदेसिं उद्दावणं, परिदावणं, विराहणं, उवघादो कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

बे-इंदिया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा कुक्खि-किमि-संख-खुल्लय-वराडय-अक्ख-रिट्ठय-गंडवाल-संबुक्क-सिप्पि, पुलविकाइया एदेसिं उड्डावणं परिदावणं, विराहणं, उवघादो कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

ते-इंदिया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा कुंथूद्वेहिय-विंच्छिय-गोभिंद-गोजुवमक्कुण-पिपीलियाइया एदेसिं उड्डावणं, परिदावणं, विराहणं, उवघादो, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

चउरिंदिया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा दंसमसय-मक्खि-पयंग-कीड-भमर-महुयर-गोमच्छियाइया एदेसिं उड्डावणं, परिदावणं, विराहणं, उवघादो कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

पंचिंदिया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा अंडाइया, पोदाइया, जराइया, रसाइया, संसेदिमा, सम्मुच्छिमा, उब्भेदिमा, उववादिमा, अवि-चउरसीदि-जोणि-पमुहसद-सहस्सेसु एदेसिं उड्डावणं, परिदावणं, विराहणं, उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा, समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥१॥

अहावरे दुव्वे महव्वदे मुसावादादो वेरमणं से कोहेण वा, माणेण वा, मायाए वा, लोहेण वा, राएण वा, दोसेण वा, मोहेण वा, हस्सेण वा, भयेण वा, पदोसेण वा, पमादेण वा, पेम्मेण वा, पिवासेण वा, लज्जेण वा, गारवेण वा, अणादरेण वा, केणवि-कारणेण जादेण वा, सव्वो मुसावादो भासिओ, भासाविओ, भासिज्जंतो वि समणु-मण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥२॥

अहावरे तव्वे महव्वदे अदिण्णा-दाणादो वेरमणं से गामे वा, णयरे वा खेडे वा, कव्वडे वा, मडंवे वा, मंडले वा, पट्टणे वा, दोणमुहे वा, घोसे वा, आसमे वा, सहाए वा, संवाहे वा, सण्णिवेसे वा, तिण्हं वा, कट्ठं वा, वियडिं वा, मणिं वा, एवमाइयं अदिण्णं गिण्हियं, गेण्हावियं, गेण्हिज्जंतं वि समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥३॥

अहावरे चउत्थे महव्वदे मेहुणादो वेरमणं से देविएसु वा, माणुसिएसु वा, तेरिच्छिएसु वा, अचेयणिएसु वा, मणुण्णामणुण्णेसु रूवेसु, मणुण्णामणुण्णेसु सद्देसु, मणुण्णामणुण्णेसु गंधेसु, मणुण्णा-मणुण्णेसु रसेसु, मणुण्णामणुण्णेसु फासेसु, चक्खिंदिय-परिणामे, सोदिंदिय-परिणामे,

घाणिंदिय-परिणामे, जिब्भिंदिय-परिणामे, फासिंदिय-परिणामे, णो-इंदिय-परिणामे, अगुत्तेण अगुत्तिंदिएण, णवविहं बंभचरियं, ण रक्खियं, ण रक्खावियं, ण रक्खिज्जंतो वि समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥४॥

अहावरे पंचमे महव्वदे परिग्गहादो वेरमणं सो वि परिग्गहो दुविहो अब्भंतरो बाहिरो चेदि। तत्थ अब्भंतरो परिग्गहो णाणावरणीयं, दंसणावरणीयं, वेयणीयं, मोहणीयं, आउग्गं, णामं, गोदं, अंतरायं चेदि अट्ठविहो। तत्थ बाहिरो परिग्गहो उवयरण-भंड-फलह-पीढ-कमंडलु-संथार-सेज्ज-उवसेज्ज-भत्तपाणादि-भेदेण अणेयविहो, एदेण परिग्गहेण अट्ठविहं कम्मरयं बद्धं, बद्धावियं, बज्झंतं वि समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥५॥

अहावरे छट्ठे अणुव्वदे राइ-भोयणादो वेरमणं से असणं, पाणं, खाइयं, साइयं चेदि। चउव्विहो आहारो से तित्तो वा, कडुओ वा, कसाइलो वा, अमिलो वा, महुरो वा, लवणो वा, दुच्चिंतिओ, दुब्भासिओ, दुप्परिणामिओ, दुस्सुमिणिओ, रत्तीए भुत्तो, भुंजावियो, भुंज्जिजंतो वि समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥६॥

पंचसमिदीओ-इरियासमिदी, भासासमिदी, एसणा-समिदी, आदाण-णिक्खेवणसमिदी, उच्चार-पस्सवण-खेल-सिंहाणय-वियडि-पइट्ठावण-समिदी चेदि।

तत्थ इरियासमिदी-पुव्वुत्तर-दक्खिण-पच्छिम-चउदिस-विदिसासु विहर-माणेण, जुगंतर-दिट्ठिणा, भव्वेण दट्ठव्वा, डव-डव-चरियाए, पमाददोसेण, पाण-भूद-जीव-सत्ताणं, उवघादो कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥७॥

तत्थ भासासमिदी कक्कसा, कडुआ, परुसा, णिट्ठुरा, परकोहिणी, मज्झंकिसा, अइमाणिणी, अणयंकरा, छेयंकरा, भूयाण-वहंकरा चेदि। दसविहा भासा, भासिया, भासाविया, भासिज्जंतो वि समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥८॥

तत्थ एसणासमिदी अहाकम्मेण वा, पच्छाकम्मेण वा, पुराकम्मेण वा, उद्दिट्ठयडेण वा, णिद्दिट्ठियडेण वा, कीडयडेण वा, साइया, रसाइया, सइंगाला, सधूमिया, अइगिद्धीए, अग्गीव, छण्हं जीव-णिकायाणं, विराहणं, काऊण अपरिसुद्धं, भिक्खं, अण्णं, पाणं, आहारियं, आहाराविय,

आहारिज्जंतं वि समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥९॥

तत्थ आदाण-णिक्खेवण-समिदी चक्कलं वा, फलहं वा, पोत्थयं वा, पीढं वा, कमंडलु वा, वियडिं वा, मणिं वा, एवमाइयं, उवयरणं अप्पडिलेहिऊण गेण्हंतेण वा, ठवंतेण वा, पाण-भूद-जीव-सत्ताणं उवघादो कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥१०॥

तत्थ उच्चार-पस्सवण-खेल-सिंहाणय-वियडि-पइट्ठावणिया समिदी रत्तीए वा, वियाले वा, अचक्खुविसए, अवत्थंडिले, अब्भोवयासे, सणिद्धे, सवीए, सहरिए, एवमाइयासु, अप्पासुग-ट्ठाणेसु पइट्ठावंतेण, पाण-भूद-जीव-सत्ताणं, उवघादो कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥११॥

तिण्णि-गुत्तीओ-मणगुत्तीओ, वचिगुत्तीओ, काय-गुत्तीओ चेदि। तत्थ मणगुत्ती-अट्टज्झाणे, रुद्दज्झाणे, इहलोयसण्णाए, परलोयसण्णाए, आहार-सण्णाए, भय-सण्णाए, मेहुणसण्णाए, परिग्गहसण्णाए, एवमाइयासु जा मणगुत्ती ण रक्खिया, ण रक्खाविया, ण रक्खिज्जंतं वि समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥१२॥

तत्थ वचिगुत्ती-इत्थिकहाए, अत्थकहाए, भत्त-कहाए, रायकहाए, चोरकहाए, वेरकहाए, परपासंडकहाए, एवमाइयासु जा वचिगुत्ती ण रक्खिया, ण रक्खाविया, ण रक्खिज्जंतं वि समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥१३॥

तत्थ कायगुत्ती - चित्तकम्मेसु वा, पोत्तकम्मेसु वा, कट्ठकम्मेसु वा, लेप्पकम्मेसु वा, लयकम्मेसु वा, एवमाइयासु जा कायगुत्ती ण रक्खिया, ण रक्खाविया, ण रक्खिज्जंतं वि समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥१४॥

दोसु अट्ट-रुद्द-संकिलेस-परिणामेसु, तीसु अप्प-सत्थसंकिलेस-परिणामेसु, मिच्छाणाण-मिच्छादंसण-मिच्छाचरित्तेसु, चउसु उवसग्गेसु, चउसु सण्णासु, चउसु पच्चएसु, पंचसु चरित्तेसु, छसु जीवणिकाएसु, छसु आवासएसु, सत्तसु भयेसु, अट्ठसु मएसु अट्ठसु सुद्धीसु , णवसु बंभचेरगुत्तीसु,

दससु समणधम्मेसु, दससु धम्मज्झाणेसु, दससु मुंडेसु, दसविहेसु भत्तिसु, बारसेसु संजमेसु, बावीसाए परीसहेसु, पणवीसाए भावणासु, पणवीसाए किरियासु, अट्ठारससीलसहस्सेसु, चउरासीदिगुण-सयसहस्सेसु, मूलगुणेसु उत्तरगुणेसु, (अट्ठमियम्मि), पक्खियम्मि, (चउमासियम्मि), (संवच्छरियम्मि), अदिक्कमो, वदिक्कमो, अइचारो, अणाचारो, आभोगो, अणाभोगो, जो जादो तं पडिक्कमामि। तस्स मए पडिक्कंतं मे सम्मत्तमरणं, पंडियमरणं, वीरिय-मरणं, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुण-संपत्ति होदु मज्झं।

नमोऽस्तु सर्वातिचार-विशुद्ध्यर्थं सिद्धभक्ति-कायोत्सर्गं करोम्यहम्।

(कायोत्सर्ग करें)

लघुसिद्धभक्ति

सम्मत्त-णाण-दंसण-वीरिय-सुहुमं तहेव अवगहणं।
अगुरु-लहु-मव्वावाहं अट्ठगुणा होंति सिद्धाणं ॥१॥
तवसिद्धे णयसिद्धे संजमसिद्धे चरित्तसिद्धे य।
णाणम्मि दंसणम्मि य सिद्धे सिरसा णमस्सामि ॥२॥

अञ्चलिका

इच्छामि भंते! सिद्धभत्ति-काउस्सग्गो कओ तस्सा-लोचेउं सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचरित्तजुत्ताणं, अट्ठविह-कम्मविप्पमुक्काणं, अट्ठगुण-संपण्णाणं, उड्ढलोय-मत्थयम्मि पइट्ठियाणं तवसिद्धाणं, णयसिद्धाणं, संजम-सिद्धाणं, चरित्तसिद्धाणं, अदीदाणागद-वट्टमाणकालत्तय-सिद्धाणं, सव्व-सिद्धाणं णिच्चकालं अच्चेमि पुज्जेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुणसंपत्ति होदु मज्झं।

नमोऽस्तु सर्वातिचारविशुद्ध्यर्थमालोचना श्रीलघुयोगिभक्ति-कायोत्सर्गं करोम्यहम्।

णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं ॥१॥

(नौ बार णमोकारमन्त्र का जाप)

लघुयोगिभक्ति

प्रावृट्काले सविद्युत्प्रपतित-सलिले वृक्षमूलाधिवासाः,
हेमन्ते रात्रिमध्ये प्रति-विगत-भयाः काष्ठवत्-त्यक्तदेहाः।
ग्रीष्मे सूर्यांशु-तप्ता गिरि-शिखरगताः स्थान-कूटान्तरस्था -
स्ते मे धर्मं प्रदद्युर्मुनिगण-वृषभा मोक्ष-निःश्रेणि-भूताः ॥१॥
गिम्हे गिरि-सिहरत्था-वरिसायाले रुक्ख-मूल-रयणीसु।
सिसिरे बाहिर-सयणा ते साहू वंदिमो णिच्चं ॥२॥
गिरि-कन्दर-दुर्गेषु ये वसन्ति दिगम्बराः।
पाणिपात्र-पुटाहारास्ते यान्ति परमां गतिम् ॥३॥

अञ्चलिका

इच्छामि भंते! योगिभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं अड्ढाइज्जदीव-दोसमुद्देसु पण्णारसकम्मभूमिसु आदावणरुक्खमूल-अब्भोवासठाणमोण-वीरासणेक्क - पासकुक्कुडासण - चउ-छ-पक्ख-खवणादिजोग-जुत्ताणं सव्वसाहूणं णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं ॥

आलोचना

इच्छामि भंते! चरित्तायारो तेरसविहो, परिहाविदो, पंचमहव्वदाणि, पंचसमिदीओ, तिगुत्तीओ चेदि। तत्थ पढमे महव्वदे पाणादिवादादो वेरमणं से पुढवि-काइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, आउकाइया जीवा असंखेज्जा-संखेज्जा, तेउकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, वाउकाइया जीवा असंखेज्जा-संखेज्जा, वणप्फदिकाइया जीवा अणंताणंता हरिया, बीआ, अंकुरा, छिण्णा, भिण्णा, एदेसिं उद्दावणं, परिदावणं, विराहणं उवघादो कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥१॥

बे-इंदिया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा कुक्खि-किमि-संख-खुल्लय-वराडय-अक्ख-रिट्ठय-गंडवाल-संव्वुक, सिप्पि, पुलविकाइया एदेसिं उद्दावणं, परिदावणं, विराहणं, उवघादो कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा,

समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥२॥

ते-इंदिया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा कुंथुद्वेहिय-विंच्छिय-गोभिंद-गोजुव-म्मक्कुण-पिपीलियाइया एदेसिं उद्धावणं, परिदावणं, विराहणं, उवघादो, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥३॥

चउरिंदिया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा दंसमसय-मक्खि-पयंग-कीड-भमर-महुयर-गोमच्छियाइया, एदेसिं उद्धावणं, परिदावणं, विराहणं, उवघादो कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥४॥

पंचिंदिया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा अंडाइया, पोदाइया, जराइया, रसाइया, संसेदिमा, सम्मुच्छिमा, उब्भेदिमा, उववादिमा, अवि-चउरसीदि-जोणि-पमुहसद-सहस्सेसु एदेसिं उद्धावणं, परिदावणं, विराहणं, उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा, समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥५॥

वद - समिदिंदिय - रोधोलोचावासय - मचेल-मण्हाणं।
खिदि-सयण-मदंतवणं ठिदिभोयण-मेयभत्तं च ॥१॥
एदे खलु मूलगुणा समणाणं जिणवरेहिं पण्णत्ता।
एत्थ पमाद-कदादो अइचारादो णियत्तो हं ॥२॥
छेदोवट्ठावणं होदु मज्झं।

पञ्चमहाव्रत-पञ्चसमिति-पञ्चेन्द्रियरोधलोच-षडावश्यकक्रिया-दयोष्टाविंशति-मूलगुणाः,उत्तमक्षमा-मार्दवार्जव-शौचसत्यसंयम-तपस्त्यागा-किञ्चन्यब्रह्मचर्याणि दश-लाक्षणिको धर्मः, अष्टादशशीलसहस्राणि, चतुरशीति- लक्ष-गुणाः, त्रयोदशविधं चारित्रं, द्वादशविधं तपश्चेति। सकलं सम्पूर्णं अर्हत् सिद्धाचार्योपाध्याय-सर्वसाधु-साक्षिकं सम्यक्त्व-पूर्वकं दृढव्रतं सुव्रतं, समारूढं ते मे भवतु ॥१॥

निष्ठापनाचार्य भक्ति

नमोऽस्तु निष्ठापनाचार्यभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम्।

(कायोत्सर्ग)

श्रुतजलधिपारगेभ्यः स्व-पर-मत-विभावना-पटु-मतिभ्यः।
सुचरित-तपो-निधिभ्यो, नमो गुरुभ्यो गुण-गुरुभ्यः ॥१॥

छत्तीस-गुण-समग्गे पंच-विहाचार-करण-संदरिसे।
सिस्साणुग्गह-कुसले, धम्माइरिए सदा वंदे ॥२॥
गुरुभत्ति-संजमेण य तरंति संसारसायरं घोरं।
छिण्णंति अट्ठकम्मं जम्मण-मरणं ण पावेंति ॥३॥
ये नित्यं व्रत-मन्त्र-होम-निरता ध्यानाग्नि-होत्रा-कुलाः,
षट्कर्माभि-रता-स्तपोधन-धनाः साधुक्रियाः साधवः।
शील-प्रावरणा गुण-प्रहरणा-श्चन्द्रार्क-तेजोऽधिका,
मोक्ष-द्वार-कपाट-पाटन-भटाः प्रीणन्तु मां साधवः ॥४॥
गुरवः पान्तु नो नित्यं ज्ञान-दर्शन-नायकाः।
चारित्रार्णव-गम्भीरा मोक्षमार्गोपदेशकाः ॥५॥

इच्छामि भंते! (पक्खियम्मि), (चउमासियम्मि), (संवच्छरियम्मि) आलोचेउं, पंचमहव्वदाणि तत्थ पढमं महव्वदं पाणादिवादादो वेरमणं, विदियं महव्वदं मुसावादादो वेरमणं, तिदियं महव्वदं अदिण्णादाणादो वेरमणं, चउत्थं महव्वदं मेहुणादो वेरमणं, पंचमं महव्वदं परिग्गहादो वेरमणं, छट्ठं अणुव्वदं राइभोयणादो वेरमणं, तीसु गुत्तीसु, णाणेसु, दंसणेसु, चरित्तेसु, बावीसाए परीसहेसु, पण-वीसाए भावणासु, पण-वीसाए किरियासु, अट्ठारस-सील-सहस्सेसु, चउरासीदि-गुण-सय-सहस्सेसु, बारसण्हं संजमाणं, बारसण्हं तवाणं, बारसण्हं अंगाणं, तेरसण्हं चरित्ताणं, चउदसण्हं पुव्वाणं, एयारसण्हं पडिमाणं दसविह-मुंडाणं, दसविह-समण-धम्माणं, दसविह-धम्मज्झाणाणं, णवण्हं बंभचेरगुत्तीणं, णवण्हं णो-कसायाणं, सोलसण्हं कसायाणं, अट्ठण्हं कम्माणं, अट्ठण्हं सुद्धीणं, अट्ठण्हं पवयण-माउयाणं, सत्तण्हं भयाणं, सत्तविहसंसाराणं, छण्हं जीव-णिकायाणं, छण्हं आवासयाणं, पंचण्हं इंदियाणं, पंचण्हं महव्वयाणं, पंचण्हं समिदीणं, पंचण्हं चरित्ताणं, चउण्हं सण्णाणं, चउण्हं पच्चयाणं, चउण्हं उवसग्गाणं, मूलगुणाणं, उत्तरगुणाणं, दिट्ठियाए, पुट्ठियाए, पदोसियाए, परिदावणियाए, से कोहेण वा, माणेण वा, मायाए वा, लोहेण वा, रागेण वा, दोसेण वा, मोहेण वा, हस्सेण वा, भएण वा, पदोसेण वा, पमादेण वा, पिम्मेण वा, पिवासेण वा, लज्जेण वा, गारवेण वा, एदेसिं अच्चासादणाए, तिण्हं

दंडाणं, तिण्हं लेस्साणं, तिण्हं गारवाणं, तिण्हं अप्पसत्थ-संकिलेस-परिणामाणं, दोण्हं अट्टरुद्द-संकिलेस-परिणामाणं, मिच्छाणाण-मिच्छादंसण-मिच्छाचरित्ताणं, मिच्छत्त-पाउग्गं, असंजम-पाउग्गं, कसाय-पाउग्गं, जोगपाउग्गं, अप्पाउग्ग-सेवणदाए, पाउग्ग-गरहणदाए इत्थ मे जो कोई पक्खियम्मि, (चउमासियम्मि), (संवच्छरियम्मि) अदिक्कमो, वदिक्कमो, अइचारो, अणाचारो, आभोगो, अणाभोगो, तस्स भंते! पडिक्कमामि पडिक्कंतं तस्स मे सम्मत्त-मरणं, पंडियमरणं, वीरियमरणं, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुण-संपत्ति होदु मज्झं।

वद-समिदिंदिय-रोधो-लोचावासय-मचेल-मण्हाणं।
खिदि-सयण-मदंतवणं ठिदिभोयण-मेयभत्तं च ॥१॥
एदे खलु मूलगुणा समणाणं जिणवरेहिं पण्णत्ता।
एत्थ पमाद-कदादो अइचारादो णियत्तो हं ॥२॥
छेदोवट्ठावणं होदु मज्झं।

पञ्चमहाव्रत-पञ्चसमिति-पञ्चेन्द्रियरोधलोच-षडावश्यक-क्रिया-दयोष्टा-विंशति-मूलगुणाः, उत्तमक्षमा-मार्दवार्जवशौचसत्यसंयम-तपस्त्यागाकिञ्चन्य-ब्रह्मचर्याणि दश-लाक्षणिको धर्मः, अष्टादश-शीलसहस्राणि, चतुरशीति-लक्ष-गुणाः, त्रयोदशविधं चारित्रं, द्वादशविधं तपश्चेति। सकलं सम्पूर्णं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्याय-सर्वसाधु-साक्षिकं सम्यक्त्वपूर्वकं दृढव्रतं सुव्रतं, समारूढं ते मे भवतु ॥३॥

प्रतिक्रमणभक्तिः

अथ सर्वातिचार-विशुद्ध्यर्थं पाक्षिक (चातुर्मासिक) (वार्षिक) प्रतिक्रमण-क्रियायां कृतदोष-निराकरणार्थं पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्म - क्षयार्थं, भावपूजा-वन्दना-स्तव-समेतं श्रीप्रतिक्रमणभक्ति-कायोत्सर्गं करोम्यहम्।

[इत्युच्चार्य-'णमो अरिहंताणं' इत्यादि दण्डकं पठित्वा कायोत्सर्गं ससूरयः विदध्युः]

णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ॥१॥

चत्तारि मंगलं-अरहंता मंगलं सिद्धा मंगलं साहू मंगलं केवलि-पण्णत्तो धम्मो मंगलं। चत्तारि लोगुत्तमा-अरहंता लोगुत्तमा सिद्धा लोगुत्तमा साहू लोगुत्तमा केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो। चत्तारि सरणं पवज्जामि-अरहंते सरणं पवज्जामि सिद्धे सरणं पवज्जामि साहू सरणं पवज्जामि केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पवज्जामि।

अड्ढाइज्ज-दीव-दो समुद्देसु पण्णारस-कम्म-भूमिसु, जाव-अरहंताणं, भयवंताणं आदियराणं, तित्थयराणं, जिणाणं, जिणोत्तमाणं, केवलियाणं, सिद्धाणं, बुद्धाणं, परिणिव्वुदाणं, अंतयडाणं पार-गयाणं, धम्माइरियाणं, धम्मदेसयाणं, धम्मणायगाणं, धम्म-वर-चाउरंग-चक्क-वट्टीणं, देवाहि-देवाणं, णाणाणं दंसणाणं, चरित्ताणं सदा करेमि किरियम्मं। करेमि भंते! सामाइयं सव्वसावज्ज-जोगं पच्चक्खामि जावज्जीवं तिविहेण मणसा वचसा काएण, ण करेमि ण कारेमि, ण अण्णं करंतं पि समणुमणामि तस्स भंते! अइचारं पडिक्कमामि, णिंदामि, गरहामि अप्पाणं, जाव अरहंताणं भयवंताणं, पज्जुवासं करेमि तावकालं पावकम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि।

(नौ बार णमोकार मन्त्र)

थोस्सामि हं जिणवरे, तित्थयरे केवली अणंतजिणे।
णरपवरलोयमहिए, विहुय-रयमले महप्पण्णे ॥१॥
लोयस्सुज्जोय-यरे, धम्मं तित्थंकरे जिणे वंदे।
अरहंते कित्तिस्से, चउवीसं चेव केवलिणो ॥२॥
उसह-मजियं च वंदे, संभव-मभिणंदणं च सुमइं च।
पउमप्पहं सुपासं, जिणं च चंदप्पहं वंदे ॥३॥
सुविहिं च पुप्फयंतं, सीयल सेयं च वासुपुज्जं च।
विमल-मणंतं भयवं, धम्मं संतिं च वंदामि ॥४॥
कुंथुं च जिणवरिंदं, अरं च मल्लिं च सुव्वयं च णमिं।
वंदामि रिट्ठ-णेमिं, तह पासं वड्ढमाणं च ॥५॥
एवं मए अभित्थुआ, विहुयरयमलापहीण-जरमरणा।
चउवीसं पि जिणवरा, तित्थयरा मे पसीयंतु ॥६॥
कित्तिय वंदिय महिया, एदे लोगोत्तमा जिणा सिद्धा।
आरोग्ग-णाण-लाहं, दिंतु समाहिं च मे बोहिं ॥७॥

चंदेहिं णिम्मल-यरा, आइच्चेहिं अहिय-पयासंता।
सायर-मिव गंभीरा, सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु ॥८॥

गणधरवलय

जिनान् जितारति-गणान् गरिष्ठान्, देशावधीन् सर्वपरावधींश्च।
सत्कोष्ठबीजादि - पदानुसारीन्, स्तुवे गणेशानपि तद्गुणाप्त्यै ॥१॥
सम्भिन्न-श्रोत्रान्वित-सन्मुनीन्द्रान्, प्रत्येक-सम्बोधित-बुद्धधर्मान्।
स्वयं प्रबुद्धांश्च विमुक्तिमार्गान्, स्तुवे गणेशानपि तद्गुणाप्त्यै ॥२॥
द्विधा मनःपर्यय - चित्प्रयुक्तान्, द्वि-पञ्च-सप्त-द्वय-पूर्वसक्तान्।
अष्टाङ्ग-नैमित्तिक - शास्त्रदक्षान्, स्तुवे गणेशानपि तद्गुणाप्त्यै ॥३॥
विकुर्वाणाख्यर्द्धि-महाप्रभावान्, विद्याधरांश्चारण-ऋद्धिप्राप्तान्।
प्रज्ञाश्रितान्नित्य-खगामिनश्च, स्तुवे गणेशानपि तद्गुणाप्त्यै ॥४॥
आशीर्विषान् दृष्टिविषान्मुनीन्द्रानुग्राति-दीप्तोत्तमतप्त-तप्तान्।
महातिघोर-प्रतपःप्रसक्तान्, स्तुवे गणेशानपि तद्गुणाप्त्यै ॥५॥
वन्द्यान् सुरैर्घोर-गुणांश्च लोके, पूज्यान् बुधै-र्घोरपरा-क्रमांश्च।
घोरादि-संसद्गुण-ब्रह्म-युक्तान्, स्तुवे गणेशानपि तद्गुणाप्त्यै ॥६॥
आमर्द्धि-खेलर्द्धि-प्रजल्लविड्द्धि-सर्वर्द्धि-प्राप्तांश्च व्यथादिहन्तॄन्।
मनोवचःकाय-बलोपयुक्तान्, स्तुवे गणेशानपि तद्गुणाप्त्यै ॥७॥
सत्क्षीरसर्पिर्मधुरा-मृतर्द्धीन्, यतीन् वराक्षीण-महानसांश्च।
प्रवर्धमानांस्त्रि-जगत्पूज्यान्, स्तुवे गणेशानपि तद्गुणाप्त्यै ॥८॥
सिद्धालयान् श्रीमहतोऽतिवीरान्, श्रीवर्धमानर्द्धिविबुद्धि-दक्षान्।
सर्वान् मुनीन् मुक्तिवरानृषीन्द्रान्, स्तुवे गणेशानपि तद्गुणाप्त्यै ॥९॥

नृसुर-खचर-सेव्या, विश्व-श्रेष्ठर्द्धिभूषा,
विविध-गुण-समुद्रा, मारमातङ्ग-सिंहाः।
भवजल-निधि-पोता, वन्दिता मे दिशन्तु,
मुनिगणसकलाः श्रीसिद्धिदाः सदृषीन्द्रान् ॥१०॥

(यहाँ मात्र आचार्यश्री निम्नलिखित प्रतिक्रमण दण्डक पढ़ते हैं, साधर्मी मुनिगण कायोत्सर्ग मुद्रा से स्थिर रहकर सुनते हैं।)

प्रतिक्रमण-दण्डकं

णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ॥१॥

णमो जिणाणं, णमो ओहिजिणाणं, णमो परमोहि-जिणाणं, णमो सव्वोहिजिणाणं, णमो अणंतोहिजिणाणं, णमो कोट्ठबुद्धीणं, णमो बीजबुद्धीणं, णमो पादाणुसारीणं, णमो संभिण्णसोदाराणं, णमो सयंबुद्धाणं, णमो पत्तेयबुद्धाणं, णमो बोहिय-बुद्धाणं, णमो उजुमदीणं, णमो विउलमदीणं, णमो दसपुव्वीणं, णमो चउदसपुव्वीणं, णमो अट्ठंगमहाणिमित्तकुसलाणं, णमो विउव्वइड्ढिपत्ताणं, णमो विज्जाहराणं, णमो चारणाणं, णमो पण्णसमणाणं, णमो आगासगामीणं, णमो आसीविसाणं, णमो दिट्ठिविसाणं, णमो उग्ग-तवाणं, णमो दित्त-तवाणं, णमो तत्त-तवाणं, णमो महा-तवाणं, णमो घोरतवाणं, णमो घोरगुणाणं, णमो घोरपरक्कमाणं, णमो घोरगुणबंभयारीणं, णमो आमोसहिपत्ताणं, णमो खेल्लोसहि-पत्ताणं, णमो जल्लोसहिपत्ताणं, णमो विप्पोसहिपत्ताणं, णमो सव्वोसहिपत्ताणं, णमो मणबलीणं, णमो वचिबलीणं, णमो कायबलीणं, णमो खीरसवीणं, णमो सप्पि-सवीणं, णमो महुरसवीणं, णमो अमियसवीणं, णमो अक्खीण-महाणसाणं, णमो वड्ढमाणाणं, णमो सिद्धायदणाणं, णमो भयवदो महदि महावीर-वड्ढमाण-बुद्ध-रिसिणो चेदि।

जस्संतियं धम्म-पहं णियच्छे, तस्संतियं वेणइयं पउं जे।
काएण वाचा मणसा वि णिच्चं, सक्कारए तं सिर-पंचमेण ॥१॥

सुदं मे आउस्संतो! इह खलु समणेण, भयवदो, महदि-महावीरेण, महाकस्सवेण, सव्वण्हुणा, सव्वलोग-दरिसिणा, सदेवासुर-माणुसस्स लोयस्स, आगदिगदि-चवणोववादं, बंधं, मोक्खं, इड्ढिं, ठिदिं, जुदिं, अणुभागं, तक्कं, कलं, मणोमाणसियं, भुत्तं, कयं, पडिसेवियं, आदिकम्मं, अरुहकम्मं, सव्वलोए, सव्वजीवे, सव्वभावे, सव्वं समं जाणंता पस्संता विहरमाणेण, समणाणं, पंचमहव्वदाणि, राइभोयण-वेरमण-छट्ठाणि अणुव्वदाणि, स-भावणाणि, समाउग-पदाणि, स-उत्तर-पदाणि, सम्मं धम्मं उवदेसिदाणि।

तं जहा-पढमे महव्वदे पाणादिवादादो वेरमणं, विदिए, महव्वदे

मुसावादादो वेरमणं, तिदिए महव्वदे अदिण्णादाणादो वेरमणं, चउत्थे महव्वदे मेहुणादो वेरमणं, पंचमे महव्वदे परिग्गहादो वेरमणं, छट्ठे अणुव्वदे राइ-भोयणादो वेरमणं चेदि।

तत्थ पढमे महव्वदे सव्वं भंते! पाणादिवादं पच्चक्खामि जावज्जीवं, तिविहेण-मणसा, वचसा, काएण, से एइंदिया वा, बे-इंदिया वा, ते-इंदिया वा, चउरिंदिया वा, पंचिंदिया वा, पुढवि-काइए वा, आऊ काइए वा, तेऊ-काइए वा, वाउकाइए वा, वणप्फदिकाइए वा, तसकाइए वा, अंडाइए वा, पोदाइए वा, जराइए वा, रसाइए वा, संसेदिमे वा, समुच्छिमे वा, उब्भेदिमे वा, उववादिमे वा, तसे वा, थावरे वा, बादरे वा, सुहुमे वा, पाणे वा, भूदे वा, जीवे वा, सत्ते वा, पज्जत्ते वा, अपज्जत्ते वा, अवि चउरासीदि-जोणि-पमुहसदसहस्सेसु, णेव सयं पाणादिवादिज्ज, णो अण्णेहिं पाणे अदिवादावेज्ज, अण्णेहिं पाणे, अदिवादिज्जंतो वि ण समणुमण्णिज्ज।

तस्स भंते! अइचारं पडिक्कमामि, णिंदामि, गरहामि, अप्पाणं, वोस्सरामि। पुव्वंचिणं भंते! जं पि मए रागस्स वा, दोसस्स वा, मोहस्स वा, वसंगदेण वा सयं पाणे अदिवादिदे, अण्णेहिं पाणे अदिवादाविदे, अण्णेहिं पाणे अदिवादिज्जंते वि समणुमण्णिदे तं वि।

इमस्स णिग्गंथस्स, पवयणस्स, अणुत्तरस्स, केवलियस्स, केवलिपण्णत्तस्स धम्मस्स अहिंसा-लक्खणस्स, सच्चाहिट्ठियस्स, विणय-मूलस्स, खमा-बलस्स, अट्ठारस-सील-सहस्स-परिमंडियस्स, चउरासीदि-गुण-सयसहस्स-विहूसियस्स, णवविह-बंभचेर-गुत्तस्स, णियदि-लक्खणस्स, परिचाग-फलस्स, उवसम-पहाणस्स, खंतिमग्ग-देसयस्स, मुत्तिमग्गपयासयस्स, सिद्धि-मग्गपज्जव-साहणस्स, से कोहेण वा, माणेण वा, मायाए वा, लोहेण वा, अण्णाणेण वा, अदंसणेण वा अवीरिएण वा, असंयमेण वा, असमणेण वा, अणहि-गमणेण वा, अभिमंसिदाए वा, अबोहिदाए वा, रागेण वा, दोसेण वा, मोहेण वा, हस्सेण वा, भएण वा, पदोसेण वा, पमादेण वा, पेम्मेण वा, पिवासेण वा, लज्जेण वा, गारवेण वा, अणादरेण वा, अण्णेण केण वि कारणेण जादेण वा, आलसदाए, बालिसदाए, कम्म-भारिगदाए, कम्मगुरुगदाए, कम्म-दुच्चरिदाए, कम्म-पुरुक्कडदाए, ति-गारव-गुरु-गदाए,

अबहुसुददाए, अविदिदपरमट्ठदाए, तं सव्वं पुव्वं, दुच्चरियं गरहामि। आगमेसिं च अपच्चक्खियं पच्चक्खामि, अणालोचियं आलोचेमि, अणिंदियं णिंदामि, अगरहियं गरहामि, अपडिक्कंतं पडिक्कमामि, विराहणं वोस्सरामि, आराहणं अब्भुट्ठेमि, अण्णाणं वोस्सरामि, सण्णाणं अब्भुट्ठेमि, कुदंसणं वोस्सरामि, सम्मदंसणं अब्भुट्ठेमि, कुचरियं वोस्सरामि, सुचरियं अब्भुट्ठेमि, कुतवं वोस्सरामि, सुतवं अब्भुट्ठेमि, अकरणिज्जं वोस्सरामि, करणिज्जं अब्भुट्ठेमि, अकिरियं वोस्सरामि, किरियं अब्भुट्ठेमि, पाणादिवादं वोस्सरामि, अभयदाणं अब्भुट्ठेमि, मोसं वोस्सरामि, सच्चं अब्भुट्ठेमि, अदिण्णादाणं वोस्सरामि, दिण्णं कप्पणिज्जं अब्भुट्ठेमि, अबंभं वोस्सरामि, बंभचरियं अब्भुट्ठेमि, परिग्गहं वोस्सरामि, अपरिग्गहं अब्भुट्ठेमि, राइभोयणं वोस्सरामि, दिवा-भोयणं अब्भुट्ठेमि, अणेयभत्तं वोस्सरामि, एग-भत्तं पच्चुप्पणं फासुगं अब्भुट्ठेमि, अट्ट-रुद्द-ज्झाणं वोस्सरामि, धम्मसुक्कज्झाणं अब्भुट्ठेमि, किण्ह-णील-काउ-लेस्सं वोस्सरामि, तेउ-पम्म-सुक्कलेस्सं अब्भुट्ठेमि, आरंभं वोस्सरामि, अणारंभं अब्भुट्ठेमि, असंजमं वोस्सरामि, संजमं अब्भुट्ठेमि, सग्गंथं वोस्सरामि, णिग्गंथं अब्भुट्ठेमि, सचेलं वोस्सरामि, अचेलं अब्भुट्ठेमि, अलोचं वोस्सरामि, लोचं अब्भुट्ठेमि, ण्हाणं वोस्सरामि, अण्हाणं अब्भुट्ठेमि, अखिदि-सयणं वोस्सरामि, खिदिसयणं अब्भुट्ठेमि, दंतवणं वोस्सरामि, अदंतवणं अब्भुट्ठेमि, अट्ठिदि-भोयणं वोस्सरामि, ठिदिभोयण-मेग-मत्तं अब्भुट्ठेमि, अपाणिपत्तं वोस्सरामि, पाणिपत्तं अब्भुट्ठेमि, कोहं वोस्सरामि, खंतिं अब्भुट्ठेमि, माणं वोस्सरामि, मद्दवं अब्भुट्ठेमि, मायं वोस्सरामि, अज्जवं अब्भुट्ठेमि, लोहं वोस्सरामि, संतोसं अब्भुट्ठेमि, अतवं वोस्सरामि, दुवादस-विह-तवो-कम्मं अब्भुट्ठेमि। मिच्छत्तं परिवज्जामि, सम्मत्तं उवसंपज्जामि, असीलं परिवज्जामि, सुसीलं उवसंपज्जामि, ससल्लं परिवज्जामि, णिसल्लं उवसंपज्जामि, अविणयं परिवज्जामि, विणयं उवसंपज्जामि, अणाचारं परिवज्जामि, आचारं उवसंपज्जामि, उम्मग्गं परिवज्जामि, जिणमग्गं उवसंपज्जामि, अखंतिं परिवज्जामि, खंतिं उवसंपज्जामि, अगुत्तिं परिवज्जामि, गुत्तिं उवसंपज्जामि, अमुत्तिं परिवज्जामि, सुमुत्तिं उवसंपज्जामि, असमाहिं परिवज्जामि, सुसमाहिं उवसंपज्जामि, ममत्तिं परिवज्जामि, णिम्ममत्तिं उवसंपज्जामि, अभावियं

भावेमि, भावियं ण भावेमि। इमं णिग्गंथं, पवयणं, अणुत्तरं, केवलियं, पडिपुण्णं णेगाइयं सामाइयं संसुद्धं सल्लघट्टाणं सल्लघत्ताणं सिद्धिमग्गं सेढिमग्गं खंतिमग्गं मुत्तिमग्गं पमुत्तिमग्गं मोक्खमग्गं पमोक्खमग्गं णिज्जाणमग्गं णिव्वाणमग्गं सव्वदुक्खं परिहाणिमग्गं, सुचरियपरि-णिव्वाणमग्गं जत्थ ठिया जीवा सिज्झंति बुज्झंति मुंचंति परिणिव्वाणयंति सव्व दुक्खाणमंतं करेंति तं सद्दहामि तं पत्तियामि तं रोचेमि तं फासेमि, इदो उत्तर अण्णं णत्थि ण भूदं ण भविस्सदि कयाचिवा कुदोचिवा, णाणेण वा दंसणेण वा चरित्तेण वा सुत्तेण वा सीलेण वा गुणेण वा तवेण वा णियमेण वा वदेण वा विहारेण वा आलएण वा अज्जवेण वा लाहवेण वा अण्णेण वा वीरियण वा समणोमि संजदोमि उवरदोमि उवसंतोमि उवधिणियडि-माण-माया-मोस-मूरण-मिच्छा-णाण-मिच्छा-दंसण मिच्छाचरित्तं च पडिविरदोमि, सम्मणाण-सम्म-दंसण सम्मचरित्तं च रोचेमि, जं जिणवरेहिं पण्णत्तो जो मए (पक्खिय-चाउम्मासिय-संवच्छरिय) इरियावहि-केसलोचाइ-चारस्स संथारादि-चारस्स पंथादि-चारस्स सव्वादि-चारस्स उत्तमट्ठस्स सम्मचरित्तं च रोचेमि।

पढमे महव्वदे पाणादिवादादो वेरमणं, उवट्ठावण-मंडले, महत्थे, महागुणे, महाणुभावे, महाजसे, महापुरि-साणुचिण्णे, अरहंत-सक्खियं, सिद्ध-सक्खियं, साहु-सक्खियं, अप्पसक्खियं, परसक्खियं, देवता-सक्खियं, उत्तमट्ठम्हि। इदं मे महव्वदं, सुव्वदं, दिढव्वदं होदु, णित्थारयं, पारयं, तारयं, आराहियं चावि ते मे भवदु।

प्रथमं महाव्रतं सर्वेषां व्रतधारिणां सम्यक्त्वपूर्वकं दृढव्रतं सुव्रतं समारूढं ते मे भवतु ॥३॥

णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ॥३॥

अहावरे विदिए महव्वदे सव्वं भंते! मुसावादं पच्चक्खामि, जावज्जीवेण तिविहेण मणसा वचिया काएण, से कोहेण वा, माणेण वा, मायाए वा, लोहेण वा, रागेण वा, दोसेण वा, मोहेण वा, हस्सेण वा, भएण वा, पदोसेण वा, पमादेण वा, पिम्मेण वा, पिवासेण वा, लज्जेण वा, गारवेण

वा, अणादरेण वा, अण्णेण केण वि कारणेण जादेण वा, णेव सयं मोसं भासेज्ज, णो अण्णेहिं मोसं भासाविज्ज, णो अण्णेहिं मोसं भासिज्जंतं वि समणुमण्णिज्ज। तस्स भंते! अइचारं पडिक्कमामि, णिंदामि, गरहामि, अप्पाणं वोस्सरामि।

पुव्विंचणं भंते! जं वि मए रागस्स वा, दोसस्स वा, मोहस्स वा, वसंगदेण सयं मोसं भासियं, अण्णेहिं मोसं भासावियं, अण्णेहिं मोसं भासिज्जंतं वि समणुमण्णिदो तं वि।

इमस्स णिग्गंथस्स, पवयणस्स, अणुत्तरस्स, केवलियस्स, केवलिपण्णत्तस्स धम्मस्स अहिंसा-लक्खणस्स, सच्चाहिट्ठियस्स, विणय-मूलस्स, खमाबलस्स, अट्ठारस-सील-सहस्स-परिमंडियस्स, चउरासीदि-गुण-सयसहस्स-विहूसियस्स, णवविह-बंभचेर-गुत्तस्स, णियदि-लक्खणस्स, परिचाग-फलस्स, उवसम-पहाणस्स, खंतिमग्ग-देसयस्स, मुत्तिमग्गपयासयस्स, सिद्धि-मग्गपज्जव-साहणस्स,..... सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचरित्तं च रोचेमि जं जिणवरेहिं पण्णत्तो, जो मए पक्खिय/चाउमासिय/संवच्छरिय इरियावहि-केस-लोचाइचारस्स, संथारादिचारस्स, पंथादिचारस्स, सव्वादि-चारस्स, उत्तमट्ठस्स सम्मचरित्तं च रोचेमि।

विदिए महव्वदे मुसावादादो वेरमणं, उवट्ठावण-मंडले, महत्थे, महागुणे, महाणुभावे, महाजसे, महा-पुरिसाणुचिण्णे, अरहंत-सक्खियं, सिद्ध-सक्खियं, साहु-सक्खियं, अप्प-सक्खियं, पर-सक्खियं, देवता-सक्खियं, उत्तमट्ठम्मि। इदं मे महव्वदं सुव्वदं, दिढव्वदं होदु णित्थारयं, पारयं, तारयं, आराहियं चावि ते मे भवतु।
द्वितीयं महाव्रतं सर्वेषां व्रतधारिणां सम्यक्त्वपूर्वकं दृढव्रतं सुव्रतं समारूढं ते मे भवतु ॥३॥

णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ॥३॥

अहावरे तिदिए महव्वदे सव्वं भंते! अदिण्णादाणं पच्चक्खामि जावज्जीवं, तिविहेण मणसा वचसा काएण से देसे वा, गामे वा, णयरे वा, खेडे वा, कव्वडे वा, मंडवे वा, मंडले वा, पट्टणे वा, दोणमुहे वा, घोसे वा, आसणे वा, सहाए वा, संवाहे वा, सण्णिवेसे वा, तिणं वा, कट्ठं

वा, वियडिं वा, मणिं वा, खेत्ते वा, खले वा, जले वा, थले वा, पहे वा, उप्पहे वा, रण्णे वा, अरण्णे वा, णट्ठं वा, पमुट्ठं वा, पडिदं वा, अपडिदं वा, सुणिहिदं वा, दुण्णिहिदं वा, अप्पं वा, बहुं वा, अणुयं वा, थूलं वा, सचित्तं वा, अचित्तं वा, मज्झत्थं वा, बहित्थं वा, अविदंतंतरसोहण-णिमित्तं, वि णेव सयं अदत्तं गेण्हिज्ज, णो अण्णेहिं अदत्तं गेण्हाविज्ज णो अण्णेहिं अदत्तं गेण्हिज्जंतं वि समणुमणिज्ज तस्स भंते! अइचारं पडिक्कमामि, णिंदामि, गरहामि, अप्पाणं वोस्सरामि।

पुव्विंचणं भंते! जं पि मए रागस्स वा, दोसस्स वा, मोहस्स वा, वसंगदेण, सयं अदत्तं गेण्हिदं, अण्णेहिं अदत्तं गेण्हाविदं अण्णेहिं अदत्तं गेण्हणिज्जंतं वि समणुमण्णिदो तं वि।

इमस्स णिग्गंथस्स, पवयणस्स, अणुत्तरस्स, केवलियस्स, केवलिपण्णत्तस्स धम्मस्स अहिंसा-लक्खणस्स, सच्चाहिट्ठियस्स, विणय-मूलस्स, खमा-बलस्स, अट्ठारस-सील-सहस्स-परिमंडियस्स, चउरासीदि-गुण-सयसहस्स-विहूसियस्स, णवविह-बंभचेर-गुत्तस्स, णियदि-लक्खणस्स, परिचाग-फलस्स, उवसम-पहाणस्स, खंतिमग्ग-देसयस्स, मुत्तिमग्गपयासयस्स, सिद्धि-मग्गपज्जव-साहणस्स, ... सम्मणाण-सम्म-दंसण-सम्मचरित्तं च रोचेमि जं जिणवरेहिं पण्णत्तो, जो मए पक्खिय/चाउमासिय/संवच्छरिय इरियावहिकेस-लोचाइ-चारस्स, संथारादिचारस्स, पंथादिचारस्स, सव्वादिचारस्स, उत्तमट्ठस्स सम्मचरित्तं च रोचेमि।

तिदिए महव्वदे अदिण्णादाणादो वेरमणं, उवट्ठावण-मंडले, महत्थे, महागुणे, महाणुभावे, महाजसे, महा-पुरिसाणुचिण्णे, अरहंतसक्खियं, सिद्धसक्खियं, साहु-सक्खियं, अप्पसक्खियं, परसक्खियं, देवतासक्खियं, उत्तमट्ठम्मि। इदं मे महव्वदं सुव्वदं, दिढव्वदं होदु णित्थारयं, पारयं, तारयं, आराहियं चावि ते मे भवतु।

तृतीयं महाव्रतं सर्वेषां व्रतधारिणां सम्यक्त्वपूर्वकं दृढव्रतं सुव्रतं समारूढं ते मे भवतु ॥३॥

णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ॥३॥

अहावरे चउत्थे महव्वदे सव्वं भंते! अबंभं पच्चक्खामि, जावज्जीवं तिविहेण मणसा वचसा काएण, से देविएसु वा, माणुसिएसु वा, तिरिच्छिएसु वा, अचेयणिएसु वा, कट्ठ-कम्मेसु वा, चित्त-कम्मेसु वा, पोत्त-कम्मेसु वा, लेप्प-कम्मेसु वा, लय-कम्मेसु वा, सिल्ला-कम्मेसु वा, गिह-कम्मेसु वा, भित्ति-कम्मेसु वा, भेद-कम्मेसु वा, भण्ड-कम्मेसु वा, धादुकम्मेसु वा, दंत-कम्मेसु वा, हत्थ-संघट्टणदाए, पादसंघट्टणदाए, पुग्गलसंघट्टणदाए, मणुण्णा-मणुण्णेसु सद्देसु, मणुण्णामणुण्णेसु रूवेसु, मणुण्णा-मणुण्णेसु गंधेसु, मणुण्णामणुण्णेसु रसेसु, मणुण्णा-मणुण्णेसु फासेसु, सोदिंदियपरिणामे, चक्खिंदियपरिणामे, घाणिंदियपरिणामे, जिब्भिंदिय-परिणामे, फासिंदिय-परिणामे, णो-इंदियपरिणामे, अगुत्तेण, अगुत्तिंदिएण णेव सयं अबंभं सेविज्ज, णो अण्णेहिं अबंभं सेवाविज्ज, णो अण्णेहिं अबंभं सेविज्जंतं वि समणुमणिज्ज तस्स भंते! अइचारं पडिक्कमामि, णिंदामि, गरहामि, अप्पाणं वोस्सरामि।

पुव्विंचणं भंते! जं पि मए रागस्स वा, दोसस्स वा, मोहस्स वा, वसंगदेण, सयं अबंभं सेवियं, अण्णेहिं अबंभं सेवावियं, अण्णेहिं अबंभं सेविज्जंतं वि समणुमण्णिदो तं वि।

इमस्स णिग्गंथस्स, पवयणस्स, अणुत्तरस्स, केवलियस्स, केवलि-पण्णत्तस्स धम्मस्स अहिंसा-लक्खणस्स, सच्चाहिट्ठियस्स, विणय-मूलस्स, खमा-बलस्स, अट्ठारस-सील-सहस्स-परिमंडियस्स, चउरासीदि-गुण-सयसहस्स-विहूसियस्स, णवविह-बंभचेर-गुत्तस्स, णियदि-लक्खणस्स, परिचाग-फलस्स, उवसम-पहाणस्स, खंतिमग्ग-देसयस्स, मुत्तिमग्ग-पयासयस्स, सिद्धि-मग्गपज्जव-साहणस्स,..... सम्मणाण-सम्म-दंसण-सम्मचरित्तं च रोचेमि जं जिणवरेहिं पण्णत्तो, जो मए पक्खिय/चाउमासिय/संवच्छरिय इरियावहि-केस-लोचाइचारस्स, संथारादिचारस्स, पंथादिचारस्स, सव्वादि-चारस्स, उत्तमट्ठस्स सम्मचरित्तं च रोचेमि।

चउत्थे महव्वदे अबंभादो वेरमणं, उवट्ठावण-मंडले, महत्थे, महागुणे, महाणुभावे, महाजसे, महापुरिसाणु-चिण्णे, अरहंत-सक्खियं, सिद्ध-सक्खियं, साहु-सक्खियं, अप्प-सक्खियं, पर-सक्खियं, देवता-सक्खियं, उत्तम-ट्ठम्मि। इदं मे महव्वदं सुव्वदं, दिढव्वदं होदु णित्थारयं, पारयं,

तारयं, आराहियं चावि ते मे भवतु।
चतुर्थं महाव्रतं सर्वेषां व्रतधारिणां सम्यक्त्वपूर्वकं दृढव्रतं सुव्रतं समारूढं ते मे भवतु ॥३॥

णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ॥३॥

अहावरे पंचमे महव्वदे सव्वं भंते! दुविहं परिग्गहं पच्चक्खामि। तिविहेण मणसा वचिया काएण सो परिग्गहो दुविहो अब्भिंतरो, बाहिरो चेदि। तत्थ अब्भिंतरं परिग्गहं–

मिच्छत्त-वेय-राया तहेव हस्सादिया य छद्दोसा।
चत्तारि तह कसाया चउदस अब्भंतरं गंथा ॥१॥

तत्थ बाहिरं परिग्गहं से हिरण्णं वा, सुवण्णं वा, धणं वा, खेत्तं वा, खलं वा, वत्थुं वा, पवत्थुं वा, कोसं वा, कुठारं वा, पुरं वा, अंत-उरं वा, बलं वा, वाहणं वा, सयडं वा, जाणं वा, जपाणं वा, जुगं वा, गद्दियं वा, रहं वा, सदणं वा, सिवियं वा, दासी-दास-गो-महिसी-गवेडयं, मणि-मोत्तिय-संख-सिप्पि-पवालयं, मणिभाजणं वा, सुवण्णभाजणं वा, रजतभाजणं वा, कंसभाजणं वा, लोहभाजणं वा, तंब-भाजणं वा, अंडजं वा, वोडजं वा, रोमजं वा, वक्कलजं वा, चम्मजं वा, अप्पं वा, बहुं वा, अणुं वा, थूलं वा, सचित्तं वा, अचित्तं वा, अमत्थुं वा, बहित्थं वा, अवि बालग्ग-कोडिमित्तं पि णेव सयं असमण-पाउग्गं परिग्गहं-गिण्हिज्ज, णो अण्णेहिं असमण-पाउग्गं परिग्गहं गेण्हाविज्ज, णो अण्णेहिं असमण-पाउग्गं परिग्गहं गिण्हिज्जंतं वि समणुमणिज्ज, तस्स भंते! अइचारं पडिक्कमामि, णिंदामि, गरहामि, अप्पाणं वोस्सरामि।

पुव्विंचणं भंते! जं वि मए रागस्स वा, दोसस्स वा, मोहस्स वा, वसंगदेण, सयं असमण-पाउग्ग परिग्गहं गिण्हियं, अण्णेहिं असमण-पाउग्गं परिग्गहं गेण्हावियं, अण्णेहिं असमण-पाउग्गं परिग्गहं गेण्हिज्जंतं वि समणुमण्णिदं तं वि।

इमस्स णिग्गंथस्स, पवयणस्स, अणुत्तरस्स, केवलियस्स, केवलिपण्णत्तस्स धम्मस्स अहिंसा-लक्खणस्स, सच्चाहिट्ठियस्स, विणय-मूलस्स, खमाबलस्स, अट्ठारस-सील-सहस्स-परिमंडियस्स, चउरासीदि-

गुण-सयसहस्स-विहूसियस्स, णवविह-बंभचेर-गुत्तस्स, णियदि-लक्खणस्स, परिचाग-फलस्स, उवसम-पहाणस्स, खंतिमग्ग-देसयस्स, मुत्तिमग्गपयासयस्स, सिद्धि-मग्गपज्जव-साहणस्स,..... सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचरित्तं च रोचेमि जं जिणवरेहिं पण्णत्तो, जो मए पक्खिय/चाउमासिय/संवच्छरिय इरियावहि-केस-लोचाइचारस्स, संथारादिचारस्स, पंथादिचारस्स, सव्वादिचारस्स, उत्तमट्ठस्स सम्मचरित्तं च रोचेमि।

पंचमे महव्वदे परिग्गहादो वेरमणं, उवट्ठावण-मंडले, महत्थे, महागुणे, महाणुभावे, महाजसे, महापुरिसाणु-चिण्णे, अरहंत-सक्खियं, सिद्ध-सक्खियं, साहु-सक्खियं, अप्प-सक्खियं, पर-सक्खियं, देवता-सक्खियं, उत्तम-ट्ठम्मि। इदं मे महव्वदं सुव्वदं, दिढव्वदं होदु णित्थारयं, पारयं, तारयं, आराहियं चावि ते मे भवतु।

पञ्चमं महाव्रतं सर्वेषां व्रतधारिणां सम्यक्त्वपूर्वकं दृढव्रतं सुव्रतं समारूढं ते मे भवतु ॥३॥

णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ॥३॥

अहावरे छट्ठे अणुव्वदे सव्वं भंते! राइभोयणं पच्चक्खामि जावज्जीवं तिविहेण मणसा वचिया काएण से असणं वा, पाणं वा, खादियं वा, सादियं वा, कडुयं वा, कसायं वा, आमिलं वा, महुरं वा, लवणं वा, अलवणं वा, सचित्तं वा, अचित्तं वा, तं सव्वं चउव्विहं आहारं, णेव सयं रत्तिं भुंजिज्ज, णो अण्णेहिं रत्तिं भुंजाविज्ज, णो अण्णेहिं रत्तिं भुंजिज्जंतं पि समणुमणिज्ज, तस्स भंते! अइचारं पडिक्कमामि, णिंदामि, गरहामि, अप्पाणं वोस्सरामि।

पुव्विंचणं भंते! जं वि मए रागस्स वा, दोसस्स वा, मोहस्स वा, वसंगदेण वा, चउव्विहो आहारो, सयं रत्तिं भुत्तो, अण्णेहिं रत्तिं भुंजाविदो, अण्णेहिं रत्तिं भुंजिज्जंतो वि समणुमण्णिदो तं वि।

इमस्स णिग्गंथस्स, पवयणस्स, अणुत्तरस्स, केवलियस्स, केवलिपण्णत्तस्स धम्मस्स अहिंसा-लक्खणस्स, सच्चाहिट्ठियस्स, विणय-मूलस्स, खमाबलस्स, अट्ठारस-सील-सहस्स-परिमंडियस्स, चउरासीदि-गुण-सयसहस्स-विहूसियस्स, णवविह-बंभचेर-गुत्तस्स, णियदि-लक्खणस्स, परिचाग-फलस्स, उवसम-पहाणस्स, खंतिमग्ग-देसयस्स,

मुत्तिमग्गपयासयस्स, सिद्धि-मग्गपज्जव-साहणस्स,..... सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचरित्तं च रोचेमि जं जिणवरेहिं पण्णत्तो, जो मए पक्खिय/चाउमासिय/संवच्छरिय इरियावहि-केस-लोचाइचारस्स, संथारादिचारस्स, पंथादिचारस्स, सव्वादिचारस्स, उत्तमट्ठस्स सम्मचरित्तं च रोचेमि।

छट्ठे अणुव्वदे राइभोयणादो वेरमणं, उवट्ठावण-मंडले, महत्थे, महागुणे, महाणुभावे, महाजसे, महापुरिसाणु-चिण्णे, अरहंत-सक्खियं, सिद्ध-सक्खियं, साहु-सक्खियं, अप्प-सक्खियं, पर-सक्खियं, देवता-सक्खियं, उत्तमट्ठम्मि। इदं मे अणुव्वदं सुव्वदं, दिढव्वदं होदु णित्थारयं, पारयं, तारयं, आराहियं चावि ते मे भवतु।

षष्ठं अणुव्रतं सर्वेषां व्रतधारिणां सम्यक्त्वपूर्वकं दृढव्रतं सुव्रतं समारूढं ते मे भवतु ॥३॥

णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ॥३॥
चूलियंतु पवक्खामि, भावणा पंचविंसदी।
पंच पंच अणुण्णादा, एक्केक्कम्हि महव्वदे ॥१॥
मणगुत्तो वचिगुत्तो, इरिया-काय-संयदो।
एसणासमिदि-संजुत्तो, पढमं वदमस्सिदो ॥२॥
अकोहणो अलोहो य, भय-हस्स-विवज्जिदो।
अणुवीचि-भास-कुसलो,विदियं वदमस्सिदो ॥३॥
अदेहणं भावणं चावि, उग्गहं य परिग्गहे।
संतुट्ठो भत्तपाणेसु, तिदियं वदमस्सिदो ॥४॥
इत्थिकहा इत्थिसंसग्ग,-हास-खेड-पलोयणे।
णियमम्मि ट्ठिदो णियत्तो,य चउत्थं वदमस्सिदो ॥५॥
सचित्ताचित्त-दव्वेसु, बज्झ-मब्भंतरेसु य।
परिग्गहादो विरदो, पंचमं वदमस्सिदो ॥६॥
धिदिमंतो खमाजुत्तो, झाण-जोग-परिट्ठिदो।
परिसहाण उरं देत्तो, उत्तमं वदमस्सिदो॥७॥
जो सारो सव्वासरेसु, सो सारो एस गोयम!।
सारं झाणंति णामे ण, सव्वं बुद्धेहिं देसिदं ॥८॥

इच्चेदाणि पंचमहव्वदाणि, राइभोयणादो वेरमणं छट्ठाणि, सभावणाणि, समाउग्ग-पदाणि, स उत्तर-पदाणि, सम्मं, धम्मं, अणुपालइत्ता, समणा, भयवंता, णिग्गंथा, होऊण सिज्झंति, बुज्झंति, मुच्चंति, परिणिव्वाणयंति, सव्वदुक्खाणमंतं करेंति, परिविज्जाणंति। तं जहा–

पाणादिवादं च हि मोसगं च, अदत्त-मेहुण्ण-परिग्गहं च।
वदाणि सम्मं अणुपाल-इत्ता, णिव्वाणमग्गं विरदा उवेंति ॥१॥
जाणि काणि वि सल्लाणि, गरहिदाणि जिण-सासणे।
ताणि सव्वाणि वोसरित्ता णिसल्लो विहरदे सया मुणी ॥२॥
उप्पण्णाणुप्पण्णा माया, अणुपुव्वं सो णिहंतव्वा।
आलोयण पडिकमणं, णिंदण गरहणदाए ॥३॥
अब्भुट्ठिद-करणदाए, अब्भुट्ठिद-दुक्कड-णिराकरणदाए।
भवं भाव-पडिक्कमणं, सेसा पुण दव्वदो भणिदा ॥४॥
एसो पडिक्कमणविही, पण्णत्तो जिणवरेहिं सव्वेहिं।
संजम-तव-ट्ठिदाणं, णिग्गंथाणं महरिसीणं ॥५॥
अक्खर-पयत्थ-हीणं, मत्ता-हीणं च जं भवे एत्थ।
तं खमउ णाण-देवय! देउ समाहिं च बोहिं च ॥६॥
काऊण णमोक्कारं, अरहंताणं तहेव सिद्धाणं।
आइरिय-उवज्झायाणं, लोयम्मि य सव्वसाहूणं ॥७॥

इच्छामि भंते! पडिक्कमणमिदं, सुत्तस्स, मूलपदाणं, उत्तरपदाणं मच्चासणदाए तं जहा–

णमोक्कारपदे, अरहंतपदे, सिद्धपदे, आइरियपदे, उवज्झायपदे, साहुपदे, मंगलपदे, लोगोत्तमपदे, सरणपदे, सामाइयपदे, चउवीस-तित्थयरपदे, वंदणपदे, पडिक्कमण-पदे, पच्चक्खाणपदे, काउस्सग्गपदे, असीहियपदे, णिसीहियपदे, अंगंगेसु, पुव्वंगेसु, पइण्णएसु, पाहुडेसु, पाहुडपाहुडेसु, कदकम्मेसु वा, भूदकम्मेसु वा, णाणस्स अइक्कमणदाए, दंसणस्स अइक्कमणदाए, चरित्तस्स अइक्कमणदाए, तवस्स अइक्कमणदाए, वीरियस्स, अइक्कमणदाए, से अक्खरहीणं वा, सरहीणं वा, विंजण-हीणं वा, पदहीणं वा, अत्थहीणं वा गंथहीणं वा, थएसु वा, थुइसु वा, अट्टक्खाणेसु वा, अणियोगेसु वा, अणियोगद्वारेसु वा, जे भावा पण्णत्ता, अरहंतेहिं, भयवंतेहिं, तित्थयरेहिं, आदियरेहिं, तिलोग-णाहेहिं, तिलोगबुद्धेहिं,

तिलोगदरसीहिं, ते सद्दहामि, ते पत्तियामि, ते रोचेमि, ते फासेमि, ते सद्दहंतस्स, ते पत्तयंतस्स, ते रोचयंतस्स, ते फासयंतस्स, जो मए पक्खिओ/चउमासिओ/संवच्छरिओ अदिक्कमो, वदिक्कमो, अइचारो अणाचारो, आभोगो, अणाभोगो, अकालो, सज्झाओ, कओ काले वा, परिहाविदो, अच्छाकारिदं, मिच्छामेलिदं, आमेलिदं वा अण्णहादिण्णं, अण्णहापडिच्छदं, आवासएसु, पडिहीणदाए तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

अह पडिवदाए विदियाए, तदिए, चउत्थीए, पंचमीए, छट्ठीए, सत्तमीए, अट्ठमीए, णवमीए, दसमीए, एयारसीए, बारसीए, तेरसीए, चउद्दसीए, पुण्णमासीए, पण्णरस-दिवसाणं, पण्णरस-राईणं, (चउण्हं मासाणं, अट्ठण्हं पक्खाणं, वीसुत्तरसय-दिवसाणं, वीसुत्तरसय-राईणं) (बारसण्हं-मासाणं, चउवीसण्हं पक्खाणं, तिण्हं छावट्ठि-सय-दिवसाणं, तिण्हिं छावट्ठिसयराइणं) (पंच-वरिसादो) परदो, अब्भंतरादो वा, दोण्हं अट्ठ-रुद्द-संकिलेस-परिणामाणं, तिण्हं अप्पसत्थ-संकिलेस-परिणामाणं, तिण्हं दंडाणं, तिण्हं लेस्साणं, तिण्हं गुत्तीणं, तिण्हं गारवाणं, तिण्हं सल्लाणं, चउण्हं सण्णाणं, चउण्हं कसायाणं, चउण्हं उवसग्गाणं, पंचण्हं महव्वयाणं, पंचण्हं इंदियाणं, पंचण्हं समिदीणं, पंचण्हं चरित्ताणं, छण्हं आवासयाणं, सत्तण्हं भयाणं, सत्तविहसंसाराणं, अट्ठण्हं मयाणं, अट्ठण्हं सुद्धीणं, अट्ठण्हं कम्माणं, अट्ठण्हं पवयण-माउयाणं, णवण्हं बंभचेर-गुत्तीणं, णवण्हं णोकसायाणं, दसविह-मुंडाणं, दसविह-समणधम्माणं, दसविह-धम्मज्झाणाणं, बारसण्हं संजमाणं, बारसण्हं तवाणं, बारसण्हं अंगाणं, तेरसण्हं किरियाणं, चउदसण्हं पुव्वाणं, पण्णरसण्हं पमादाणं, सोलसण्हं कसायाणं, बावीसाए परीसहेसु, पणवीसाए किरियासु, पणवीसाए भावणासु, अट्ठारस-सील-सहस्सेसु, चउरासीदि - गुण-सयसहस्सेसु, मूलगुणेसु, उत्तरगुणेसु, अदिक्कमो, वदिक्कमो, अइचारो, अणाचारो, आभोगो, अणाभोगो, तस्स भंते! अइचारं पडिक्कमामि, पडिक्कंतं, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदं, तस्स भंते! अइचारं पडिक्कमामि, णिंदामि, गरहामि, अप्पाणं वोस्सरामि, जाव अरहंताणं, भयवंताणं, णमोक्कारं करेमि, पज्जुवासं करेमि, ताव कालं पावकम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि।

णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ॥१॥

पढमं ताव सुदं मे आउस्संतो! इह खलु समणेण, भयवदो, महदिमहावीरेण, महाकस्सवेण, सव्वण्हुणाणेण, सव्वलोय-दरसिणा, सावयाणं, साावियाणं, खुड्डुयाणं, खुड्डीयाणं, कारणेण, पंचाणुव्वदाणि, तिण्णि गुणव्वदाणि, चत्तारि सिक्खावदाणि, बारस-विहं गिहत्थधम्मं सम्मं उवदेसियाणि। तत्थ इमाणि पंचाणुव्वदाणि पढमे अणुव्वदे थूलयडे पाणादिवादादो वेरमणं, विदिये अणुव्वदे थूलयडे मुसावादादो वेरमणं, तिदिये अणुव्वदे थूलयडे अदिण्णादा-णादो वेरमणं, चउत्थे अणुव्वदे, थूलयडे सदार-संतोस-परदारा-गमण-वेरमणं, कस्स य पुणु सव्वदो विरदी, पंचमे अणुव्वदे, थूलयडे इच्छा-कद-परिमाणं चेदि, इच्चेदाणि पंच-अणुव्वदाणि।

तत्थ इमाणि तिण्णि गुणव्वदाणि तत्थ पढमे गुणव्वदे दिसि-विदिसि पच्चक्खाणं, विदिये, गुणव्वदे, विविध-अणत्थ-दंडादो वेरमणं, तिदिये गुणव्वदे भोगोपभोग-परिसंखाणं चेदि, इच्चेदाणि तिण्णि गुणव्वदाणि।

तत्थ इमाणि चत्तारि सिक्खावदाणि तत्थ पढमे सामाइयं, विदिये पोसहोवासयं, तिदिये अतिथि-संविभागो, चउत्थे सिक्खावदे पच्छिम-सल्लेहणा-मरणं चेदि। इच्चेदाणि चत्तारि सिक्खावदाणि।

सेअभिमद-जीवाजीव-उवलद्ध-पुण्ण-पाव आसव-बंध-संवर-णिज्जर-मोक्ख-महि-कुसले, धम्माणु-रायरत्तो, पेम्माणुराय-रत्तो, अट्ठि-मज्जाणुराय-रत्तो, मुच्छि-दट्ठे, गिहिदट्ठे, विहिदट्ठे, पालिदट्ठे, सेविदट्ठे, इणमेव णिग्गंथ-गिहिदट्ठे पावयणे, अणुत्तरे, से-अट्ठे, सेवणुट्ठे।

णिस्संकिय णिक्कंखिय णिव्विदिगिंच्छा अमूढदिट्ठी य।
उवगूहण ट्ठिदिकरणं वच्छल्ल-पहावणा य ते अट्ठ ॥१॥
सव्वेदाणि पंचाणुव्वदाणि, तिण्णि गुणव्वदाणि, चत्तारि।
सिक्खावदाणि, बारसविहं गिहत्थ-धम्ममणुपाल-इत्ता ॥२॥
दंसण - वय - सामाइय-पोसह-सचित्त-राइ-भत्तेय।
बंभारंभ-परिग्गह-अणुमणमुद्दिट्ठ देसविरदो य ॥१॥
महु-मंस-मज्ज-जूआ-वेसादि-विवज्जणा सीलो।

पंचाणुव्वय-जुत्तो सत्तेहिं सिक्खावयेहिं संपुण्णो ॥२॥

जो एदाइं वदाइं धरेइ, सावियं-सावियाओ वा, खुड्डुय-खुड्डियाओ वा, दह-अट्ठ-पंच, भवणवासिय-वाणविंतर-जोइसिय-सोहम्मीसाण देवीओ वदिक्कमित्तु उवरिम-अण्णदर-महड्ढियासु देवेसु उववज्जंति।

तं जहा - सोहम्मीसाण-सणक्कुमार-माहिंद-बंभ-बंभुत्तर-लांतव-कापिट्ठ सुक्क-महासुक्क-सतार-सहस्सार-आणत-पाणत-आरण-अच्चुत-कप्पेसु उववज्जंति।

अडयंबरसत्थधरा कडयंगद-बद्धणउडकय-सोहा।
भासुरवर-बोहिधरा देवा य महड्ढिया होंति ॥१॥

उक्कस्सेण दो-तिण्णि भव-गहणाणि, जहण्णेण सत्तट्ठ-भव-गहणाणि, तदो सुमाणुसत्तादो सुदेवत्तं, सुदेवत्तादो सुमाणुसत्तं, तदो साइहत्था, पच्छा णिग्गंथा होऊण, सिज्झंति, बुज्झंति, मुंचंति, परिणिव्वाणयंति, सव्वदुक्खाणमंतं करेंति। जाव अरहंताणं, भयवंताणं, णमोक्कारं करेमि, पज्जुवासं करेमि, तावकालं पावकम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि।

वद-समिदिंदियरोधो लोचावासय-मचेल-मण्हाणं।
खिदि-सयण-मदंतवणं ठिदिभोयण-मेय-भत्तं च ॥१॥
एदे खलु मूलगुणा समणाणं जिणवरेहिं पण्णत्ता।
एत्थ पमाद-कदादो अइचारादो णियत्तो हं ॥२॥
छेदोवट्ठावणं होदु मज्झं।

अथ सर्वातिचारविशुद्ध्यर्थं पाक्षिक/चातुर्मासिक/वार्षिक प्रतिक्रमणक्रियायां कृतदोषनिराकरणार्थं पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं, भाव-पूजा-वन्दना-स्तव-समेतं श्रीनिष्ठितकरण-चन्द्रवीरभक्ति-कायोत्सर्गं करोम्यहम्।

यहाँ आचार्यश्री के साथ-साथ सभी मुनिराजों को निम्नलिखित सामायिक दण्डक, कायोत्सर्ग और थोस्सामि स्तव पढ़कर वीरभक्ति आदि बोलना चाहिए।

श्री वीरभक्ति

(णमो अरहंताणं ..... से वोस्सरामि पर्यन्त सामायिक दण्डक बोलें। पश्चात् पाक्षिक प्रतिक्रमण में ३०० श्वासोच्छ्वास अर्थात् १०० बार पञ्चनमस्कार मंत्र का जाप, चातुर्मासिक प्रतिक्रमण में ४०० श्वासोच्छ्वास अर्थात् १३४ बार पञ्चनमस्कार मन्त्र का जाप और वार्षिक प्रतिक्रमण में ५०० श्वासोच्छ्वास अर्थात्

१६७ बार पञ्चनमस्कार मंत्र का जाप करना चाहिए। पश्चात् चतुर्विंशतिस्तव अर्थात् थोस्सामि बोलना चाहिए।)

चन्द्रप्रभं चन्द्रमरीचिगौरं, चन्द्रं द्वितीयं जगतीव कान्तम्।
वन्देऽभिवन्द्यं महतामृषीन्द्रं, जिनं जितस्वान्त-कषाय-बन्धम् ॥१॥
यस्याङ्ग-लक्ष्मी-परिवेश-भिन्नं, तमस्तमोरेरिव रश्मि-भिन्नम्।
ननाश बाह्यं बहु-मानसं च, ध्यान-प्रदीपातिशयेन भिन्नम् ॥२॥
स्व-पक्ष-सौस्थित्य-मदावलिप्ता, वाक्सिंह-नादै-र्विमदा बभूवुः।
प्रवादिनो यस्य मदार्द्र-गण्डा, गजा यथा केसरिणो निनादैः ॥३॥
यः सर्व-लोके परमेष्ठितायाः, पदं बभूवाद्भुत-कर्म-तेजाः।
अनन्त-धामाक्षर-विश्वचक्षुः, समस्त-दुःख-क्षय-शासनश्च ॥४॥
स चन्द्रमा भव्य-कुमुद्वतीनां, विपन्न-दोषाभ्र-कलङ्कलेपः।
व्याकोश-वाङ्-न्याय-मयूख-मालः, पूयात् पवित्रो भगवान् मनो मे ॥५॥

यः सर्वाणि चराचराणि विविध-द्रव्याणि तेषां गुणान्,
पर्यायानपि भूत-भावि-भवतः सर्वान् सदा सर्वथा।
जानीते युगपत् प्रतिक्षणमतः सर्वज्ञ इत्युच्यते,
सर्वज्ञाय जिनेश्वराय महते वीराय तस्मै नमः ॥१॥
वीरः सर्वसुरासुरेन्द्रमहितो वीरं बुधाः संश्रिताः,
वीरेणाभिहतः स्वकर्मनिचयो वीराय भक्त्या नमः।
वीरात्तीर्थमिदं प्रवृत्तमतुलं वीरस्य घोरं तपो,
वीरे श्रीद्युतिकान्तिकीर्ति-धृतयो हे वीर! भद्रं त्वयि ॥२॥

ये वीरपादौ प्रणमन्ति नित्यं, ध्यानस्थिताः संयम-योगयुक्ताः।
ते वीत-शोका हि भवन्ति लोके, संसार-दुर्गं विषमं तरन्ति ॥३॥

व्रत-समुदय-मूलः संयम-स्कन्ध-बन्धो,
यम-नियम-पयोभि-र्वर्धितः शील-शाखः।
समिति-कलिक-भारो गुप्ति-गुप्त-प्रवालो,
गुण-कुसुम-सुगन्धिः सत्तपश्चित्तपत्रः ॥४॥
शिव-सुख-फलदायी यो दया-छाय-योद्धः,
शुभजन-पथिकानां खेदनोदे समर्थः।

दुरित-रविज-तापं प्रापयन्ननन्तभावं,
स भव-विभव-हान्यैः नोऽस्तु चारित्रवृक्षः ॥५॥
चारित्रं सर्व-जिनैश्चरितं प्रोक्तं च सर्वशिष्येभ्यः।
प्रणमामि पञ्चभेदं पञ्चम-चारित्र-लाभाय ॥६॥
धर्मः सर्व-सुखाकरो हितकरो धर्मं बुधश्चिन्वते,
धर्मेणैव समाप्यते शिव-सुखं धर्माय तस्मै नमः।
धर्मान्नास्त्यपरः सुहृद-भव-भृतां धर्मस्य मूलं दया,
धर्मे चित्तमहं दधे प्रतिदिनं हे धर्म! मां पालय ॥७॥
धम्मो मंगलमुक्किट्ठं, अहिंसा संयमो तवो।
देवा वि तस्स पणमंति जस्स धम्मो सया मणो ॥८॥

अञ्चलिका

इच्छामि भंते! वीरभत्ति काउस्सग्गो तस्सालोचेउं, सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचरित्त-तव-वीरियचारेसु जम-णियम-संजम-सील-मूलुत्तर-गुणेसु सव्वमइचारं, सावज्ज-जोगं पडिविरदोमि, असंखेज्ज-लोग-अज्झवसायठाणाणि, अप्पसत्थ-जोग-सण्णा-णिंदिय-कसाय-गारव किरियासु, मण-वयण-काय-करण-दुप्पणिहाणि, परिचिंतियाणि, किण्हणीलकाउलेस्साओ, विकहापलिकुंचिएण उम्मग्ग-हस्सरदिअरदिसोयभय-दुगुंछ-वेयण-विज्जंभ-जंभाइ-आणि, अट्टरुद्द-संकिलेस-परिणामाणि, परिणामदाणि, अणिहुदकर-चरण-मण-वयण-काय-करणेण, अक्खित्त -बहुलपरायणेण, अपडिपुण्णेण वा, सरक्खरावय-परिसंघाय पडिवत्तिएण, अच्छाकारिदं, मिच्छामेलिदं, आमेलिदं, वा-मेलिदं, अण्णहा-दिण्णं, अण्णहा पडिच्छिदं, आवासएसु परिहीणदाए कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

वद-समिदिंदियरोधो लोचावासय-मचेल-मण्हाणं।
खिदि-सयण-मदंतवणं ठिदिभोयणमेयभत्तं च ॥१॥
एदे खलु मूलगुणा समणाणं जिणवरेहिं पण्णत्ता।
एत्थ पमाद-कदादो अइचारादो णियत्तो हं ॥२॥

छेदोवट्ठावणं होदु मज्झं।

शान्तिचतुर्विंशति-स्तुतिः

अथ सर्वातिचार-विशुद्ध्यर्थं पाक्षिक/चातुर्मासिक/वार्षिक प्रतिक्रमण-क्रियायां कृतदोषनिराकरणार्थं पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकल-कर्म -क्षयार्थं, भावपूजा-वन्दना-स्तव-समेतं श्रीशान्ति-चतुर्विंशति-तीर्थङ्करभक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहम्।

(यहाँ णमो अरहंताणं इत्यादि सामायिक दण्डक बोलें, २७ उच्छ्वासों में कायोत्सर्ग करें)

विधाय रक्षा परतः प्रजानां, राजा चिरं योऽप्रति-मप्रतापः।
व्यधात् पुरस्तात् स्तव एव शान्तिर्मुनि-र्दया-मूर्ति-रिवाघशान्तिम् ॥१॥
चक्रेण यः शत्रु-भयङ्करेण, जित्वा नृपः सर्व-नरेन्द्र-चक्रम्।
समाधि-चक्रेण पुन-र्जिगाय, महोदयो दुर्जय-मोह-चक्रम् ॥२॥
राजश्रिया राजसु राजसिंहो-रराज यो राजसु भोगतन्त्रः।
आर्हन्त्य-लक्ष्म्या पुन-रात्मतन्त्रो, देवासुरोदार-सभे रराज ॥३॥
यस्मिन्नभूद्राजनि राजचक्रं, मुनौ दया-दीधिति-धर्म-चक्रम्।
पूज्ये मुहुः प्राञ्जलि देवचक्रं, ध्यानोन्मुखे ध्वंसि कृतान्तचक्रम् ॥४॥
स्वदोषशान्त्या विहितात्म-शान्तिः, शान्ते-र्विधाता शरणं गतानाम्।
भूयात् भवक्लेश-भयोपशान्त्यैः, शान्ति-र्जिनो मे भगवाञ्छरण्यः ॥५॥

चतुर्विंशतिस्तुति

चउवीसं तित्थयरे उसहाइ-वीर-पच्छिमे वंदे।
सव्वेसिं गुण-गणहरे सिद्धे सिरसा णमंसामि ॥१॥

ये लोकेऽष्टसहस्रलक्षणधरा ज्ञेयार्णवान्तर्गताः
ये सम्यग्भवजालहेतुमथनाश्चन्द्रार्कतेजोऽधिकाः।
ये साध्विन्द्र सुराप्सरोगण-शतैर्गीतप्रणुत्यार्चिता-
स्तान् देवान् वृषभादिवीरचरमान् भक्त्या नमस्याम्यहम् ॥२॥

नाभेयं देवपूज्यं जिनवरमजितं सर्वलोकप्रदीपं,
सर्वज्ञं शम्भवाख्यं मुनिगणवृषभं नन्दनं देवदेवम्।
कर्मारिघ्नं सुबुद्धिं वरकमलनिभं पद्मपुष्पाभिगन्धं,
क्षान्तं दान्तं सुपार्श्वं सकलशशिनिभं चन्द्रनामानमीडे ॥२॥
विख्यातं पुष्पदन्तं भवभयमथनं शीतलं लोकनाथं,
श्रेयान्सं शीलकोशं प्रवरनरगुरुं वासुपूज्यं सुपूज्यम्।

मुक्तं दान्तेन्द्रियाश्वं विमलमृषिपतिं सिंहसैन्यं मुनीन्द्रम्,
धर्मं सद्धर्मकेतुं शमदमनिलयं स्तौमि शान्तिं शरण्यम् ॥३॥
कुन्थुं सिद्धालयस्थं श्रमणपतिमरं त्यक्तभोगेषु चक्रं,
मल्लिं विख्यातगोत्रं खचरगणनुतं सुव्रतं सौख्यराशिम्।
देवेन्द्रार्च्यं नमीशं हरिकुलतिलकं नेमिचन्द्रं भवान्तं,
पार्श्वं नागेन्द्रवन्द्यं शरणमहमितो वर्धमानं च भक्त्या ॥४॥

अञ्चलिका

इच्छामि भंते! चउवीसतित्थयरभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं पंचमहाकल्लाणसंपण्णाणं अट्ठमहापाडिहेर-सहियाणं चउतीसातिसय-विसेससंजुत्ताणं बत्तीसदेविंद-मणिमउडमत्थयमहियाणं बलदेव-वासुदेव-चक्कहर-रिसि-मुणि-जइअणगारोवगूढाणं, थुइ-सय-सहस्स-णिल-याणं उसहाइवीर-पच्छिममंगलमहापुरिसाणं णिच्चकालं अच्चेमि पूजेमि वंदामि णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ती होउ मज्झं।

वद-समिदिंदियरोधो लोचावासय-मचेल-मण्हाणं।
खिदि-सयण-मदंतवणं ठिदिभोयण-मेय-भत्तं च ॥१॥
एदे खलु मूलगुणा समणाणं जिणवरेहिं पण्णत्ता।
एत्थ पमाद-कदादो अइचारादो णियत्तो हं ॥२॥

छेदोवट्ठावणं होदु मज्झं।

चारित्रालोचना सहिता वृहदाचार्यभक्तिः

अथ सर्वातिचार-विशुद्ध्यर्थं चारित्रालोचनाचार्य-भक्ति-कायोत्सर्गं करोम्यहम्।

(यहाँ पूर्ववत् णमो अरहंताणं इत्यादि दण्डक बोलकर कायोत्सर्ग करें, पश्चात् थोस्सामि इत्यादि स्तव बोलकर निम्नलिखित आचार्यभक्ति एवं लघुचारित्रालोचना करें।)

वृहद्-आचार्यभक्ति

सिद्ध-गुण-स्तुति-निरता-नुद्धूत-रुषाग्नि-जाल-बहुल-विशेषान्।
गुप्तिभि-रभिसम्पूर्णान् मुक्ति-युतः, सत्य-वचन-लक्षित-भावान् ॥१॥
मुनि-माहात्म्य-विशेषान् जिन-शासन-सत्प्रदीप-भासुर-मूर्तीन्।
सिद्धिं प्रपित्सुमनसो बद्ध-रजो-विपुल-मूल-घातन-कुशलान् ॥२॥

गुणमणि-विरचित-वपुषः षड्-द्रव्य-विनिश्चितस्य धातृन् सततम्।
रहित-प्रमाद-चर्यान् दर्शनशुद्धान्, गणस्य सन्तुष्टिकरान् ॥३॥
मोह-च्छिदुग्र-तपसः प्रशस्त-परिशुद्ध-हृदय-शोभन-व्यवहारान्।
प्रासुक-निलया-ननघा-नाशा-विध्वंसि-चेतसो-हत-कुपथान् ॥४॥
धारित-विलसन् मुण्डान् वर्जितबहुदण्ड-पिण्ड-मण्डल-निकरान्।
सकल-परीषह-जयिनः क्रियाभि-रनिशं प्रमादतः परिरहितान् ॥५॥
अचलान् व्यपेत-निद्रान् स्थान-युतान् कष्ट-दुष्ट-लेश्या-हीनान्।
विधि-नानाश्रित-वासा-नलिप्त-देहान् विनिर्जितेन्द्रिय-करिणः ॥६॥
अतुला-नुत्कुटिकासान् विविक्त-चित्ता-नखण्डित-स्वाध्यायान्।
दक्षिण-भाव-समग्रान् व्यपगत-मद-राग-लोभ-शठ-मात्सर्यान् ॥७॥
भिन्नार्त-रौद्र-पक्षान् सम्भावित-धर्म-शुक्ल-निर्मल-हृदयान्।
नित्यं पिनद्ध-कुगतीन् पुण्यान् गण्योदयान् विलीनगारव-चर्यान् ॥८॥
तरु-मूल-योग - युक्ता-नवकाशा - ताप - योग - राग - सनाथान्।
बहुजन-हितकर-चर्या-नभया-ननघान् महानुभाव-विधानान् ॥९॥
ईदृश-गुण-सम्पन्नान्-युष्मान्, भक्त्या विशालया स्थिर-योगान्।
विधि-नानारत-मग्र्यान् मुकुली-कृतहस्तकमलशोभितशिरसा ॥१०॥
अभिनौमि सकलकलुष-प्रभवोदय-जन्म-जरा-मरण-बन्धन-मुक्तान्।
शिवमचलमनघ-मक्षय-मव्याहत-मुक्तिसौख्यमस्त्विति सततम् ॥११॥

लघु चारित्रालोचना

इच्छामि भंते! चरित्तायारो, तेरसविहो, परिहाविदो, पंचमहव्वदाणि, पंचसमिदीओ, ति-गुत्तीओ चेदि। तत्थ पढमे महव्वदे पाणादिवादादो वेरमणं से पुढवि-काइया-जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, आउकाइया जीवा असंखेज्जा-संखेज्जा, तेउकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, वाउकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, वणप्फदिकाइया जीवा अणंता-णंता, हरिया, बीआ, अंकुरा, छिण्णा, भिण्णा, एदेसिं उद्दावणं, परिदावणं, विराहणं, उवघादो, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

बे-इंदिया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, कुक्खि, किमि, संख, खुल्लय-वराडय, अक्ख, रिट्ठय, गंडवाल, संबुक्क, सिप्पि, पुलविकाइया एदेसिं उद्दावणं, परिदावणं, विराहणं, उवघादो कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा,

समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

ते-इंदिया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, कुंथुट्टेहिय, विंच्छिय, गोभिंद, गोजुव, मक्कुण, पिपीलियाइया, एदेसिं उद्दावणं, परिदावणं, विराहणं, उवघादो, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

चउरिंदिया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, दंसमसय-मक्खि-पयंग-कीड-भमर-महुयर-गोमच्छियाइया, एदेसिं उद्दावणं, परिदावणं, विराहणं, उवघादो कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

पंचिंदिया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा अंडाइया, पोदाइया, जराइया, रसाइया, संसेदिमा, सम्मुच्छिमा, उब्भेदिमा, उववादिमा, अवि-चउरसीदि-जोणि-पमुहसद-सहस्सेसु एदेसिं उद्दावणं, परिदावणं, विराहणं, उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा, समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥१॥

इच्छामि भंते! आइरियभत्ति-काउस्सग्गो कओ, तस्सालोचेउं, सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचरित्त-जुत्ताणं, पंचविहाचाराणं आइरियाणं, आयारादि-सुद-णाणोवदेस-याणं उवज्झायाणं, ति-रयण-गुण-पालण-रयाणं सव्व-साहूणं, णिच्चकालं अच्चेमि, पुज्जेमि, वंदामि, णमस्सामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होदु मज्झं।

वदसमिदिंदियरोधो लोचावासय-मचेल-मण्हाणं।
खिदि-सयण-मदंतवणं ठिदिभोयणमेय-भत्तं च ॥१॥
एदे खलु मूलगुणा समणाणं जिणवरेहिं पण्णत्ता।
एत्थ पमाद-कदादो अइचारादो णियत्तोऽहं ॥२॥
छेदोवट्ठावणं होदु मज्झं।

बृहदालोचना सहिता मध्यमाचार्यभक्तिः

अथ सर्वातिचार-विशुद्ध्यर्थं बृहदालोचनाचार्य-भक्ति-कायोत्सर्गं करोम्यहम्।

(यहाँ पूर्ववत् णमो अरहंताणं इत्यादि दण्डक बोलकर कायोत्सर्ग करें, पश्चात् थोस्सामि इत्यादि स्तव बोलकर निम्नलिखित देसकुलजाइसुद्धा इत्यादि एवं मध्यम-आचार्य-स्तुति और बृहदालोचना बोलें।)

देसकुलजाइसुद्धा, विसुद्धमणवयणकायसंजुत्ता।
तुम्हं पायपयोरुहमिह मंगलमत्थु मे णिच्चं ॥१॥

सगपरसमयविदण्हू आगमहेदूहिं चावि जाणित्ता।
सुसमत्था जिणवयणे, विणये सत्ताणुरूवेण ॥२॥
बालगुरुवुड्ढसेहे गिलाणथेरे य खमणसंजुत्ता।
वट्टावयगा अण्णे, दुस्सीले चावि जाणित्ता ॥३॥
वदसमिदिगुत्तिजुत्ता मुत्तिपहे ठाविया पुणो अण्णे।
अज्झावयगुणणिलये साहुगुणेणावि संजुत्ता ॥४॥
उत्तमखमाए पुढवी, पसण्णभावेण अच्छजलसरिसा।
कम्मिंधणदहणादो अगणी वाऊ असंगादो ॥५॥
गयणमिव णिरुवलेवा अक्खोहा सायरुव्व मुणिवसहा।
एरिसगुणणिलयाणं, पायं पणमामि सुद्धमणो ॥६॥
संसारकाणणे पुण बंभममाणेहिं भव्वजीवेहिं।
णिव्वाणस्स हु मग्गो लद्धो तुम्हं पसाएण ॥७॥
अविसुद्धलेस्सरहिया, विसुद्धलेस्साहि परिणदा सुद्धा।
रुद्दट्ठे पुण चत्ता धम्मे सुक्के य संजुत्ता ॥८॥
उग्गहईहावायाधारण, गुणसंपदेहिं संजुत्ता।
सुत्तत्थभावणाए भावियमाणेहिं वंदामि ॥९॥
तुम्हं गुणगणसंथुदि, अजाणमाणेण जो मया वुत्तो।
देउ मम बोहिलाहं, गुरुभत्तिजुदत्थओ णिच्चं ॥१०॥

बृहद्-आलोचना

नोट—प्रतिक्रमण पन्द्रह दिन, चार मास और बारह मास में होता है, जब करना हो, तब की अर्थात् उस समय की दिन गणना बोलें।

(इच्छामि भंते! अट्ठमियम्मि आलोचेउं, पण्णरसण्हं दिवसाणं, पण्णरसण्हं राइणं, अब्भंतरदो, पंचविहो आयारो णाणायारो, दंसणायारो, तवायारो, वीरियायारो, चारित्तायारो चेदि ॥१॥)

(इच्छामि भंते! पक्खियम्मि आलोचेउं, पण्णरसण्हं दिवसाणं, पण्णरसण्हं राइणं, अब्भंतरदो, पंचविहो आयारो णाणायारो, दंसणायारो, तवायारो, वीरियायारो, चारित्तायारो चेदि ॥२॥)

(इच्छामि भंते! चउमासियम्मि आलोचेउं, चउण्हं मासाणं, अट्ठण्हं

पक्खाणं, वीसुत्तर-सय-दिवसाणं, वीसुत्तर-सय-राइणं, अब्भंतरदो, पंचविहो आयारो णाणायारो, दंसणायारो, तवायारो, वीरियायारो, चारित्ता-यारो चेदि ॥३॥)

(इच्छामि भंते! संवच्छरियम्मि आलोचेउं, बारसण्हं मासाणं, चउवीसण्हं पक्खाणं, तिण्हं छावट्ठिसय-दिवसाणं, तिण्हं छावट्ठिसय-राइणं, अब्भंतरदो, पंचविहो आयारो णाणायारो, दंसणायारो, तवायारो, वीरियायारो, चारित्तायारो चेदि ॥४॥)

तत्थ णाणायारो काले, विणए, उवहाणे, बहुमाणे, तहेव अणिण्हवणे, विंजण-अत्थतदुभये चेदि। णाणायारो-अट्ठविहो परिहाविदो, से अक्खरहीणं वा, सरहीणं वा, विंजणहीणं वा, पदहीणं वा, अत्थहीणं वा, गंथहीणं वा, थएसु वा, थुइसु वा, अत्थक्खाणेसु वा, अणियोगेसु वा, अणियोगद्वारेसु वा, अकाले-सज्झाओ कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो, काले वा, परिहाविदो, अच्छा-कारिदं वा, मिच्छा-मेलिदं वा, आमेलिदं वा, मेलिदं वा, अण्णहादिण्हं, अण्णहा-पडिच्छिदं, आवासएसु-परिहीणदाए तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥१॥

दंसणायारो अट्ठविहो

णिस्संकिय णिक्कंखिय णिव्विदिगिंच्छा अमूढदिट्ठि य । उवगूहण ठिदिकरणं वच्छल्ल पहावणा चेदि॥१॥

दंसणायारो अट्ठविहो परिहाविदो संकाए, कंखाए, विदिगिंछाए, अण्णदिट्ठीपसंसणदाए, परपासंडपसंसणाए, अणायदण-सेवणाए, अवच्छल्लदाए, अपहावणाए तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥२॥

तवायारो बारसविहो-अब्भंतरो छव्विहो, बाहिरो छव्विहो चेदि। तत्थ बाहिरो अणसणं, आमोदरियं, वित्तिपरिसंखा, रसपरिच्चाओ, सरीरपरिच्चाओ, विवित्त-सयणासणं चेदि। तत्थ अब्भंतरो पायच्छित्तं, विणओ, वेज्जावच्चं, सज्झाओ, झाणं, विउस्सग्गो चेदि। अब्भंतरं-बाहिरं बारसविहं तवोकम्मं ण कदं, णिसण्णेण पडिक्कंतं तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥३॥

वीरियायारो पंचविहो परिहाविदो-वरवीरिय-परिक्कमेण जहुत्तमाणेण, बलेण, वीरिएण, परिक्कमेण णिगूहियं, तवोकम्मं ण कदं णिसण्णेण

पडिक्कंतं तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥४॥

चरित्तायारो तेरसविहो परिहाविदो पंचमहव्वदाणि, पंचसमिदीओ, तिगुत्तीओ चेदि। तत्थ पढमे महव्वदे पाणादिवादादो वेरमणं से पुढविकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, आउकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, तेउकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, वाउकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, वणप्फदिकाइया जीवा अणंताणंता हरिया, बीआ, अंकुरा, छिण्णा, भिण्णा, एदेसिं उद्दावणं, परिदावणं, विराहणं, उवघादो कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

बे-इंदिया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, कुक्खि, किमि, संख, खुल्लय-वराडय, अक्ख, रिट्ठय, गंडवाल, संबुक्क, सिप्पि, पुलविकाइया एदेसिं उद्दावणं, परिदावणं, विराहणं, उवघादो कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

ते-इंदिया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, कुंथुद्देहिय, विंच्छिय, गोभिंद, गोजुव, मक्कुण, पिपीलियाइया, एदेसिं उद्दावणं, परिदावणं, विराहणं, उवघादो, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

चउरिंदिया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, दंसमसय-मक्खि-पयंग-कीड-भमर-महुयर-गोमक्खियाइया एदेसिं उद्दावणं, परिदावणं, विराहणं, उवघादो कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

पंचिंदिया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा अंडाइया, पोदाइया, जराइया, रसाइया, संसेदिमा, सम्मुच्छिमा, उब्भेदिमा, उववादिमा, अवि-चउरसीदि-जोणि-पमुहसद-सहस्सेसु एदेसिं उद्दावणं, परिदावणं, विराहणं, उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा, समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥१॥

वद-समि-दिंदिय रोधो लोचावासय-मचेल-मण्हाणं।
खिदि-सयण-मदंतवणं ठिदि-भोयण-मेय-भत्तं च॥१॥
एदे खलु मूल-गुणा समणाणं जिणवरेहिं पण्णत्ता।
एत्थ पमाद-कदादो अइचारादो णियत्तोहं॥२॥

छेदोवट्ठावणं होदु मज्झं

अथ सर्वातिचार-विशुद्ध्यर्थं क्षुल्लकालोचनाचार्य भक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहम्–

(यहाँ पूर्ववत् ''णमो अरहंताणं'' इत्यादि दण्डक बोलकर कायोत्सर्ग करें, पश्चात् थोस्सामि हं जिणवरे'' इत्यादि स्तव बोलकर नीचे लिखी लघु आचार्य भक्ति पढ़ें।)

प्राज्ञः प्राप्त-समस्त-शास्त्र-हृदयः प्रव्यक्त-लोक-स्थितिः,
प्रास्ताशः प्रतिभा-परः प्रशमवान् प्रागेव दृष्टोत्तरः।
प्रायः प्रश्न-सहः प्रभुः पर-मनोहारी परानिन्दया,
ब्रूयाद्धर्म-कथां गणी गुण-निधिः प्रस्पष्ट-मिष्टाक्षरः॥१॥
श्रुत-मविकलं, शुद्धा वृत्तिः, पर-प्रति-बोधने,
परिणति-रुरूद्योगो मार्ग-प्रवर्तन-सद्-विधौ।
बुध-नुति-रनुत्सेको लोकज्ञता मृदुता-स्पृहा,
यति-पति-गुणा यस्मिन् नन्ये च सोऽस्तु गुरुः सताम्॥२॥
श्रुतजलधिपारगेभ्यः,स्व-पर-मतविभावना पटुमतिभ्यः।
सुचरित-तपोनिधिभ्यो, नमो गुरुभ्यो गुण-गुरुभ्यः ॥३॥
छत्तीस-गुण-समग्गे, पंच-विहाचार-करण-संदरिसे।
सिस्सा-णुग्गह-कुसले, धम्मा-इरिये सदा वंदे ॥४॥
गुरु-भत्ति-संजमेण य, तरंति संसार-सायरं घोरम्।
छिण्णंति अट्ठकम्मं, जम्मण-मरणं ण पावेंति ॥५॥
ये नित्यं-व्रत-मन्त्र-होम-निरता, ध्यानाग्नि-होत्राकुलाः।
षट्कर्माभिरतास्-तपोधनधनाः, साधु-क्रियाः साधवः॥
शील-प्रावरणा-गुण-प्रहरणाश्-चन्द्रार्क -तेजोऽधिकाः।
मोक्ष-द्वार-कपाट-पाटन-भटाः, प्रीणन्तु मां साधवः ॥६॥
गुरवः पान्तु नो नित्यं ज्ञान-दर्शन-नायकाः।
चारित्रार्णवगम्भीरा मोक्षमार्गोपदेशकाः ॥७॥

अञ्चलिका

इच्छामि भंते! आइरियभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं, सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचरित्तजुत्ताणं पंचविहाचाराणं आइरियाणं, आयारादि-सुदणाणो-वदेसयाणं उवज्झायाणं, तिरयणगुणपालणरयाणं सव्वसाहूणं, णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्ख-क्खओ, कम्मक्खओ,

बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुणसंपत्ती होउ मज्झं

वद-समिदिंदिय-रोधो लोचावासय-मचेल-मण्हाणं।
खिदि-सयण-मदंतवणं ठिदिभोयण-मेय-भत्तं च ॥१॥
एदे खलु मूलगुणा समणाणं जिणवरेहिं पण्णत्ता।
एत्थ पमाद-कदादो अइचारादो णियत्तो हं ॥२॥

छेदोवट्ठावणं होदु मज्झं।

अथ सर्वातिचार-विशुद्ध्यर्थं पाक्षिक/चातुर्मासिक/वार्षिक प्रतिक्रमण -क्रियायां कृत-दोष-निराकरणार्थं, पूर्वाचार्यानुक्रमेण, सकल-कर्म-क्षयार्थं, भावपूजा-वन्दना-स्तवसमेतं सिद्धचारित्र-प्रतिक्रमण-निष्ठित-करण-चन्द्रवीर-शान्ति-चतुर्विंशति-तीर्थङ्कर-चारित्रालोचनाचार्य-बृहदा-लोचनाचार्य-मध्य-मालोचनाचार्य-क्षुल्लका-लोचनाचार्य-भक्तीः कृत्वा तद्धीनाधिकत्वादि-दोष-विशुद्ध्यर्थं आत्मपवित्री-करणार्थं, समाधिभक्ति-कायोत्सर्गं करोम्यहम्।

(यहाँ पर आचार्यश्री सहित सर्व साधुगण पूर्ववत् दण्डक आदि बोलकर कायोत्सर्ग करें, पश्चात् चतुर्विंशतिस्तव बोलकर नीचे लिखी समाधि भक्ति पढ़ें।)

समाधिभक्ति

अथेष्टप्रार्थना

प्रथमं करणं चरणं द्रव्यं नमः।
शास्त्राभ्यासो, जिनपतिनुतिः, सङ्गतिः सर्वदार्यैः,
सद्वृत्तानां गुणगणकथा, दोषवादे च मौनम्।
सर्वस्यापि प्रियहितवचो, भावना चात्मतत्त्वे,
सम्पद्यन्तां मम भव भवे, यावदेतेऽपवर्गः ॥१॥
तव पादौ मम हृदये मम हृदयं तव पदद्वये लीनम्।
तिष्ठतु जिनेन्द्र! तावद्यावन्निर्वाणसम्प्राप्तिः ॥२॥
अक्खरपयत्थहीणं मत्ताहीणं च जं मए भणियं।
तं खमउ णाणदेव य मज्झवि दुक्खक्खयं दिंतु ॥३॥

इच्छामि भंते! समाहिभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं रयणत्तय-सरूवपरमप्प-ज्झाण लक्खणं समाहि-भत्तीए णिच्चकालं अंचेमि पूजेमि वंदामि णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगमइगमणं

समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

(यहाँ एक कायोत्सर्ग करें)

(इसके बाद सभी साधुगण निम्नलिखित क्रियानुसार आचार्यश्री को नमस्कार करें।)

अथ अपराह्निक-आचार्य-वन्दनायां प्रतिष्ठापन-सिद्धभक्ति-कायोत्सर्गं करोम्यहम्।

सम्मत्त-णाण-दंसण-वीरिय-सुहुमं तहेव अवगहणं।
अगुरु-लहु-मव्वावाहं अट्ठगुणा होंति सिद्धाणं ॥१॥
तवसिद्धे णयसिद्धे संजमसिद्धे चरित्तसिद्धे य।
णाणम्मि दंसणम्मि य सिद्धे सिरसा णमस्सामि ॥२॥

इच्छामि भंते! सिद्धभत्ति-काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचरित्तजुत्ताणं, अट्ठविहकम्मविप्पमुक्काणं, अट्ठगुण-संपण्णाणं, उड्ढलोय-मत्थयम्मि पइट्ठियाणं तवसिद्धाणं, णयसिद्धाणं, संजम-सिद्धाणं, चरित्तसिद्धाणं, अतीदा-णागद-वट्टमाण-कालत्तय-सिद्धाणं, सव्वसिद्धाणं णिच्चकालं अच्चेमि पुज्जेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिण-गुण-संपत्ति होदु मज्झं।

अथ अपराह्निक-आचार्य-वन्दनायां पूर्वाचार्यानु-क्रमेण सकल कर्म-क्षयार्थं भाव-पूजा-वन्दनास्तवसमेतं श्री श्रुतभक्ति-कायोत्सर्गं करोम्यहम्।

कोटीशतं द्वादश चैव कोट्यो, लक्षाण्यशीति-त्र्यधिकानि चैव।
पञ्चाशदष्टौ च सहस्र-संख्य- मेतच्छ्रुतं पञ्चपदं नमामि ॥१॥
अरहंतभासियत्थं गणहरदेवेहिं गंथियं सम्मं।
पणमामि भत्तिजुत्तो सुदणाण-महोवहिं सिरसा ॥२॥

इच्छामि भंते! सुदभत्ति काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं, अंगोवंगपइण्णए-पाहुड-परियम्म-सुत्त-पढमाणुओग-पुव्वगय-चूलिया चेव सुत्तत्थय-थुइ-धम्म-कहाइयं णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुणसंपत्ती होउ मज्झं।

अथ अपराह्निक-आचार्य-वन्दना-क्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकल-कर्म-क्षयार्थं भाव-पूजावन्दना स्तव-समेतं श्री आचार्यभक्ति-कायोत्सर्गं करोम्यहम्।

श्रुतजलधि-पारगेभ्यः स्व-पर-मत-विभावना-पटु-मतिभ्यः।
सुचरित-तपो-निधिभ्यो, नमो गुरुभ्यो गुण-गुरुभ्यः ॥१॥
छत्तीस-गुण-समग्गे पंच-विहाचार-करण-संदरिसे।
सिस्साणुग्गह-कुसले, धम्माइरिए सदा वंदे ॥२॥
गुरुभत्ति संजमेण य तरंति संसारसायरं घोरं।
छिण्णंति अट्ठकम्मं जम्मण-मरणं ण पावेंति ॥३॥
ये नित्यं व्रत-मन्त्र-होम-निरता ध्यानाग्नि-होत्रा-कुलाः,
षट्कर्माभि-रता-स्तपोधन-धनाः साधुः क्रियाः साधवः।
शील-प्रावरणा गुण-प्रहरणा-श्चन्द्रार्क-तेजोऽधिका,
मोक्ष-द्वार-कपाट-पाटन-भटाः प्रीणन्तु मां साधवः ॥४॥
गुरवः पान्तु नो नित्यं ज्ञान-दर्शन-नायकाः।
चारित्रार्णव-गम्भीरा मोक्षमार्गोपदेशकाः ॥५॥

अञ्चलिका

इच्छामि भंते! आयरियभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं, सम्मणाण सम्मदंसण-सम्मचरित्तजुत्ताणं पंचविहाचाराणं आयरियाणं, आयारादिसुद-णाणोवदेस-याणं उवज्झायाणं, तिरयणगुणपालणरयाणं सव्वसाहूणं, णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्ख-क्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहि-मरणं, जिणगुणसंपत्ती होउ मज्झं।

॥ इति पाक्षिकादि प्रतिक्रमण समाप्तम्॥

प्रायश्चित्त-याचना विधि

हे स्वामिन् पक्षे/चातुर्मासे/संवत्सरे अष्टाविंशति-मूलगुणेषु (आर्यिका-व्रत-क्रियायां) मनसा वचसा कर्मणा कृत-कारितानुमोदनैः आहारे विहारे निहारे च रागेण द्वेषेण मोहेन भयेन लज्जया प्रमादेन वा जागरेण स्वप्ने च ज्ञाताज्ञाता-भावेन अतिक्रम-व्यतिक्रमाति-चारानाचार इत्यादयो दोषा लग्नाः तान् क्षमित्वा प्रायश्चित्त-दानेन शुद्धं करोतु माम्।

ईर्यापथभक्ति

(स्रग्धरा छन्द)

निःसङ्गोऽहं जिनानां सदनमनुपमं त्रिःपरीत्येत्य भक्त्या,
स्थित्वा गत्वा निषद्योच्चरण-परिणतोऽन्तः शनैर्हस्तयुग्मम्।
भाले संस्थाप्य बुद्ध्या मम दुरित-हरं कीर्तये शक्रवन्द्यं,
निन्दादूरं सदाप्तं क्षयरहितममुं ज्ञानभानुं जिनेन्द्रम् ॥१॥

अन्वयार्थ—(अहं) मैं **(निःसंग)** मन-वचन-काय से शुद्ध होकर अथवा संसार सम्बन्धी सुखों की अभिलाषा/इच्छा से रहित, निस्पृह हुआ **(भक्त्या)** भक्ति से **(जिनानां अनुपमं सदनं)** जिनेन्द्र देव के उपमा रहित जिनालय **(एत्य)** आकर **(त्रिःपरीत्य)** तीन प्रदक्षिणा देकर **(स्थित्वा)** खड़ा होकर। पश्चात् **(नत्वा)** नमस्कार करके **(निषद्य)** बैठकर **(अन्तः शनै उच्चरण परिणतः)** मन में धीरे/मन्द स्वर से उच्चारण करता हूँ **(हस्त-युग्मम्)** दोनों हाथों को **(भाले संस्थाप्य)** ललाट पर रखकर **(बुद्ध्या)** बुद्धिपूर्वक **(मम)** मेरे **(दुरितहरं)** पाप को हरने वाले **(शक्रवन्द्यं)** इन्द्रों से वन्दनीय **(निन्दादूरं)** निन्दा से दूर/निर्दोष **(क्षयरहितं)** अविनाशी **(ज्ञानभानुं)** ज्ञानसूर्य **(आप्त)** वीतरागी-सर्वज्ञ-हितोपदेशी ऐसे **(अमुं)** इन जिनेश्वर की **(सदा)** सर्वदा/हमेशा **(कीर्तये)** स्तुति करता हूँ।

(वसन्ततिलका छन्द)

श्रीमत्पवित्रम - कलङ्कमनन्तकल्पं,
स्वायंभुवं सकलमङ्गलमादितीर्थम्।
नित्योत्सवं मणिमयं निलयं जिनानां,
त्रैलोक्यभूषणमहं शरणं प्रपद्ये ॥२॥

अन्वयार्थ—(श्रीमत्) शोभायुक्त, परम ऐश्वर्य सहित **(पवित्रम्)** पवित्र **(अकलङ्कम्)** निर्दोष, कलंक रहित **(अनन्त कल्पम्)** अनन्तकाल जिनकी रचना चली आ रही है **(सकल मंगलम्)** समस्त जीवों के लिए मंगल रूप **(आदितीर्थं)** अद्वितीय तीर्थ स्वरूप **(नित्योत्सवं)** निरन्तर वाले उत्सवों युक्त **(मणिमयं)** मणियों से निर्मित **(त्रैलोक्यभूषणं)** तीन लोकों के आभूषण रूप **(जिनानाम्)** जिनेन्द्रदेव के **(स्वायंभुवं निलयं)** अकृत्रिम आलय-'जिनालयों' की **(शरणं प्रपद्ये)** शरण को प्राप्त होता

हूँ।

(अनुष्टुप् छन्द)

श्रीमत्परमगम्भीर, स्याद्वादामोघलाञ्छनम्।
जीयात् त्रैलोक्यनाथस्य शासनं जिनशासनम् ॥३॥

अन्वयार्थ—(श्रीमत्) अन्तरंग-बहिरंग लक्ष्मी से पूर्ण **(परम-गंभीर)** अत्यन्त गंभीर **(स्याद्वाद-अमोघ-लाञ्छनम्)** स्याद्वाद जिसका सार्थक/ सफल चिह्न है एवं **(त्रैलोक्यनाथस्य शासनम्)** तीन लोक के स्वामी चक्रवर्ती आदि पर जो शासन करने वाला है ऐसा **(जिनशासनं)** जिनशासन **(जीयात्)** जयवन्त रहे।

श्री-मुखालोकनादेव, श्रीमुखालोकनं भवेत्।
आलोकनविहीनस्य, तत् सुखावाप्तयः कुतः? ॥४॥

अन्वयार्थ—(श्रीमुखालोकनात् एव) वीतरागता रूप लक्ष्मी से युक्त जिनेन्ददेव के मुख के देखने से ही **(श्रीमुख अलोकनं)** मुक्तिलक्ष्मी मुख का दर्शन/अवलोकन **(भवेत्)** होता है। **(आलोकनविहीनस्य)** जिनेन्द्रदेव के दर्शन से रहित जीव को **(तत्सुख)** वह सुख **(कुतः)** कैसे **(अवाप्तयः)** प्राप्त हो सकता है?

(वसन्ततिलका छन्द)

अद्याभवत्सफलता नयनद्वयस्य,
देव! त्वदीयचरणाम्बुज वीक्षणेन।
अद्य त्रिलोकतिलक! प्रतिभासते मे,
संसारवारिधिरयं चुलुकप्रमाणः ॥५॥

अन्वयार्थ—(देव!) हे वीतराग देव! **(अद्य)** आज **(त्वदीय चरणाम्बुज-वीक्षणेन)** आपके चरण-कमलों को देखने से/दर्शन से **(मे)** मेरे **(नयन-द्वयस्य)** दोनों नयनों की **(सफलता)** सार्थकता **(अभवत्)** हो गई **(त्रिलोक-तिलक)** हे तीन लोकों के तिलक स्वरूप भगवन्! **(अद्य)** आज **(मे)** मुझे **(अयं संसार-वारिधिः)** यह संसार-सागर **(चुलुक प्रमाणः)** चुल्लुभर **(प्रतिभासते)** जान पड़ता है।

(अनुष्टुप् छन्द)

अद्य मे क्षालितं गात्रं नेत्रे च विमलीकृते ।
स्नातोऽहं धर्मतीर्थेषु जिनेन्द्र! तव दर्शनात् ॥६॥

अन्वयार्थ—(जिनेन्द्र!) हे जिनेन्द्र भगवान् ! **(तव दर्शनात्)** आपके दर्शन से **(अद्य मे गात्र क्षालितं)** आज मेरा शरीर प्रक्षालित हो गया **(नेत्र विमलीकृते)** दोनों नेत्र निर्मल हो गये **(च)** और **(अहं)** मैंने **(धर्मतीर्थेषु)** धर्मतीर्थों में **(स्नातः)** स्नान कर लिया।

(उपजाति छन्द)

नमो नमः सत्त्वहितङ्कराय, वीराय भव्याम्बुजभास्कराय।
अनन्तलोकाय सुरार्चिताय, देवाधिदेवाय नमो जिनाय ॥७॥

अन्वयार्थ—(सत्त्वहितङ्कराय) प्राणीमात्र का हित करने वाले **(भव्य-अम्बुज-भास्कराय)** भव्यरूपी कमलों को सूर्य रूप **(वीराय)** वीर जिन के लिये **(नमः नमः)** बार-बार नमस्कार हो। **(अनन्त लोकाय)** अनन्त पदार्थों को देखने वाले **(सुर अर्चिताय)** देवों के द्वारा पूजित **(देवाधि-देवाय)** देवों के भी देव **(जिनाय)** जिनेन्द्र भगवान् के लिये **(नमः)** नमस्कार हो।

नमो जिनाय त्रिदशार्चिताय, विनष्टदोषाय गुणार्णवाय।
विमुक्तिमार्गप्रतिबोधनाय,देवाधिदेवाय नमो जिनाय ॥८॥

अन्वयार्थ—(त्रिदश अर्चिताय) देवों से पूजित **(विनष्ट दोषाय)** नष्ट हो गए हैं दोष जिनके जो **(गण-अर्णवाय)** गुणों के सागर हैं ऐसे **(जिनाय)** जिनदेव के लिए **(नमः)** नमस्कार हो। **(विमुक्तिमार्ग-प्रतिबोधकाय)** जो विशेष रूप से मुक्ति मार्ग के उपदेश को देने वाले हैं, ऐसे **(देवाधिदेवाय)** देवों के भी देव **(जिनाय)** जिनदेव के लिये **(नमः)** नमस्कार हो।

(वसन्ततिलका छन्द)

देवाधिदेव ! परमेश्वर ! वीतराग !
सर्वज्ञ! तीर्थकर! सिद्ध महानुभाव।
त्रैलोक्यनाथ! जिनपुङ्गव ! वर्धमान!
स्वामिन्! गतोऽस्मि शरणं चरणद्वयं ते ॥९॥

अन्वयार्थ—(देवाधिदेव! परमेश्वर! वीतराग! सर्वज्ञ! तीर्थकर! सिद्ध! महानुभाव! त्रैलोक्यनाथ! जिनपुङ्गव! वर्धमान! स्वामिन्!) हे देवाधि-देव! हे परमेश्वर! हे वीतराग! हे सर्वज्ञ! हे तीर्थंकर! हे सिद्ध! हे

महानुभाव! हे त्रैलोक्यनाथ! हे जिन श्रेष्ठ! हे वर्धमान! हे स्वामिन्! मैं **(ते)** आपके **(चरणद्वयं)** दोनों चरणयुगल की **(शरणं)** शरण को **(गतः अस्मि)** प्राप्त होता हूँ।

(आर्या छन्द)

जितमदहर्षद्वेषा, जितमोहपरिषहाः जितकषायाः ।
जितजन्ममरणरोगा, जितमात्सर्या जयन्तु जिनाः ॥१०॥

अन्वयार्थ—जिन्होंने **(जितमद-हर्ष-द्वेषा)** जीता है मद-हर्ष-द्वेष को **(जित-मोह-परीषहा)** जीता है मोह और परीषहों को **(जितकषायाः)** जीता है कषायों को **(जित-जन्म-मरण-रोगाः)** जीता है जन्म-मरण रूप रोगों को **(जितमात्सर्याः)** जीता है ईर्ष्या भावों को ऐसे **(जिनाः)** जिनेन्द्रदेव **(जयन्तु)** जयवन्त हों।

जयतु जिन वर्धमानस् त्रिभुवन-हित धर्मचक्रनीरजबन्धुः।
त्रिदशपतिमुकुटभासुर, चूडामणिरश्मिरञ्जितारुणचरणः ॥११॥

अन्वयार्थ—जो **(त्रिभुवनहित-धर्मचक्र -नीरजबन्धु)** तीन लोकों के जीवों का हितकारक धर्मचक्र रूपी सूर्य है, जिनके **(अरुण-चरणः)** लाल-लाल चरण **(त्रिदश-पति-मुकुट-भासुर-चूडामणि-रश्मि-रञ्जित)** इन्द्र के मुकुट में दीप्तिमान चूड़ामणि की किरणों से अत्यधिक शोभायमान हैं, ऐसे **(जिनवर्धमानः)** महावीर जिनेन्द्र (जयतु) जयवन्त हों।

(हरिणी छन्द)

जय जय जय त्रैलोक्यकाण्डशोभिशिखामणे,
नुद नुद नुद स्वान्तध्वान्तं जगत्कमलार्क नः।
नय नय नय स्वामिन्! शान्तिं नितान्तमनन्तिमां,
नहि नहि नहि त्राता लोकैकमित्रभवत्परः ॥१२॥

अन्वयार्थ—(त्रैलोक्य-काण्ड-शोभि-शिखामणे!) तीनों लोकों के समूह पर शोभायमान शिखामणि/चूड़ामणि स्वरूप हे भगवान्! **(जय जय-जय)** आपकी जय हो, जय हो, जय हो। **(जगत्कमलार्क)** तीन जगत् के संसारी प्राणियों रूपी कमलों को विकसित करने के लिये सूर्य स्वरूप हे भगवान्! **(नः स्वान्तध्वान्तं)** हमारे हृदय के अन्धकार को

(नुद-नुद-नुद) नष्ट कीजिये, नष्ट कीजिये, नष्ट कीजिये। स्वामिन्! हे स्वामी **(अनन्तिमां शान्तिं)** अविनाशी/शाश्वत शान्ति को **(नितान्तं)** अवश्य ही **(नय-नय-नय)** प्राप्त कराइये, प्राप्त कराइये, प्राप्त कराइये **(लोकैक-मित्र!)** हे लोक के एकमात्र मित्र!**(भवत्परः)** आपसे भिन्न/आपको छोड़कर दूसरा कोई **(त्राता)** रक्षक **(नहि-नहि-नहि)** नहीं है, नहीं है, नहीं है।

(वसन्ततिलका छन्द)

चित्ते मुखे शिरसि पाणिपयोजयुग्मे,
भक्तिं स्तुतिं विनतिमञ्जलिमञ्जसैव।
चेक्रीयते चरिकरीति चरीकरीति,
यश्चर्करीति तव देव ! स एव धन्यः ॥१३॥

अन्वयार्थ—(देव) हे स्वामिन्! **(यः)** जो **(अञ्जसा एव)** यथार्थ रूप से **(चित्ते)** मन में **(तव)** आपकी **(भक्तिं)** भक्ति को **(चेक्रीयते)** करता है। **(मुखे तव स्तुति)** मुख में आपकी स्तुति को **(चरिकरीति)** करता है **(शिरसि तव विनतिं)** शिर पर आपकी विनती को **(चरीकरीति)** करता है **(पाणि-पयोजयुग्मे)** हस्तकमल युगल में **(तव अञ्जलिं चर्करीति)** आपके लिये अञ्जलिबद्ध करता है **(स एव धन्यः)** वही धन्य है।

(मन्दाक्रान्ता छन्द)

जन्मोन्मार्ज्यं भजतु भवतः पादपद्मं न लभ्यम्,
तच्चेत् स्वैरं चरतु न च दुर्देवतां सेवतां सः।
अश्नात्यन्नं यदिह सुलभं दुर्लभं चेन्मुधास्ते,
क्षुद्व्यावृत्यै कवलयति कःकालकूटं बुभुक्षुः ॥१४॥

अन्वयार्थ—यदि किसी जीव को **(जन्म-उन्मार्ज्य)** अपने संसार-भ्रमण से छूटना है/जन्म का मार्जन-निवारण करना है तो **(सः)** वह **(भवतः पाद पद्मं भजतु)** आपके चरण-कमलों की सेवा करे।**(चेत् तत् न लभ्यं)** यदि आपके चरण-कमल प्राप्त न हो सकें तो **(स्वैरं चरतु)** अपनी इच्छानुसार आचरण करे परन्तु **(दुर्देवतां न सेवताम्)** कुदेवों की उपासना न करें। **(बुभुक्षुः)** भूखा मनुष्य **(इह यत् सुलभं)** यहाँ जो

सुलभ है उस **(अन्नं अश्नाति)** अन्न को खाता है **(चेत्)** यदि **(दुर्लभं)** अन्न दुर्लभ **(आस्ते)** है तो **(मुधा क्षुद् व्यावृत्यै)** व्यर्थ ही भूख को दूर करने के लिये **(कालकूट कः)** कालकूट-विष को कौन **(कवलयति बुभुक्षु)** भूखा खाता है ? कोई नहीं।

(शार्दूलविक्रीडित छन्द)

रूपं ते निरुपाधि-सुन्दर-मिदं पश्यन् सहस्रेक्षणः,
प्रेक्षाकौतुककारिकोऽत्र भगवन् नोपैत्यवस्थान्तरम्।
वाणीं गद्गद्यन् वपुः पुलकयन् नेत्रद्वयं श्रावयन्,
मूर्द्धानं नमयन् करौ मुकुलयंश्चेतोऽपि निर्वापयन् ॥१५॥

अन्वयार्थ—[भगवन्!] हे नाथ! **(सहस्त्र-ईक्षण प्रेक्षा कौतुक-कारि)** हजारों नेत्रों से देखने का कुतूहल/उत्कंठा/उत्सुकता करने वाले **(निरुपाधि-सुन्दरं ते इदं रूपं)** उपाधि अर्थात् वस्त्र, आभूषण आदि के बिना ही सुन्दर आपके इस रूप को **(पश्यन्)** देखने वाला **(कः अत्र)** कौन मानव इस जगत् में **(वाणीं गद्गद्यन्)** वाणी को गद्गद् करता हुआ, **(वपुः पुलकयन्)** शरीर को रोमाञ्चित करता हुआ **(नेत्रद्वयं स्त्रावयन्)** दोनों नेत्रों से हर्षाश्रु झराता हुआ **(मूर्धानं नमयन्)** मस्तक को नमाता हुआ **(करौ मुकुलयन्)** दोनों हाथों को जोड़ता हुआ और **(चेतः अपि निर्वापयन्)** चित्त को संतुष्ट करता हुआ **(अवस्थान्तरं न उपैति)** दूसरी अवस्था को प्राप्त नहीं होता? अर्थात् आपके इस रूप को देखकर कौन पुरुष अपनी अवस्था को नहीं बदल लेता?

त्रस्तारातिरिति त्रिकालविदिति त्राता त्रिलोक्या इति,
श्रेयः सूतिरिति श्रियां निधिरिति,श्रेष्ठः सुराणामिति।
प्राप्तोऽहं शरणं शरण्यमगतिस्त्वां तत्-त्यजोपेक्षणम्,
रक्ष क्षेमपदं प्रसीद जिन! किं विज्ञापितै-र्गोपितैः ॥१६॥

अन्वयार्थ—हे भगवान्! **(त्रस्त अराति इति)** आप शत्रुओं को नाश करने वाले हैं, इसलिए **(त्रिकालविद् इति)** आप तीनों लोकों के ज्ञाता हैं, इसलिये **(त्रिलोक्याः त्राता इति)** आप तीन लोकों के रक्षक हैं इसलिये **(श्रेयः सूतिरिति)** आप कल्याण की उत्पत्ति करने वाले हैं इसलिये **(श्रियां निधिरिति)** लक्ष्मी की निधि हैं इसलिये और **(सुराणां**

श्रेष्ठः) देवों में श्रेष्ठ हैं इसलिये **(अगतिः अहं)** अन्य उपाय से रहित ऐसा मैं **(शरण्यं)** शरण देने में निपुण **(क्षेमपदं)** कल्याण/कुशल-मंगल के स्थानभूत **(त्वां शरणं)** आपकी शरण को **(प्राप्तः)** प्राप्त हुआ हूँ **(तत्)** इसलिये **(जिन!)** हे जिनदेव **(उपेक्षण त्यज)** उपेक्षा को छोड़िये **(रक्ष)** मेरी रक्षा कीजिये **(प्रसीद)** प्रसन्न होइये **(विज्ञापितैः गोपितैः किम्)** मेरी इस प्रार्थना को गुप्त रखने से क्या प्रयोजन? अर्थात् इस प्रार्थना को गुप्त रखने से क्या लाभ? आप सर्वज्ञ सभी जानते हैं।

(उपजाति छन्द)

त्रिलोक-राजेन्द्रकिरीटकोटि-प्रभाभिरालीढपदारविन्दम्।
निर्मूलमुन्मूलितकर्मवृक्षं,जिनेन्द्रचन्द्रं प्रणमामि भक्त्या ॥१७॥

अन्वयार्थ—(त्रिलोक-राजेन्द्र-किरीट-कोटि-प्रभाभिः-आलीढ-पदारविन्दम्) तीनों लोकों के अधिपति, राजा, महाराजा और इन्द्रों के करोड़ों मुकुटों की प्रभा से जिनके चरण-कमल सुशोभित हो रहे हैं **(निर्मूलम् उन्मूलित कर्मवृक्षम्)** जिन्होंने कर्मरूपी वृक्ष को जड़ से उखाड़ दिया है या निर्मूल कर **(उखाड़)** दिया है, ऐसे **(जिनेन्द्रचन्दं)** चन्द्रमा के समान शीतलता/शान्ति देने वाले जिनेन्द्र देव को अथवा चन्द्रप्रभ जिनेन्द्र को **(भक्त्या प्रणमामि)** मैं भक्ति से प्रणाम करता हूँ ।

(आर्या छन्द)

करचरणतनुविघाता, दटतो निहितः प्रमादतः प्राणी।
ईर्यापथमिति भीत्या मुञ्चे तद्दोषहान्यर्थम् ॥१८॥

अन्वयार्थ—(प्रमादतः अटतः) प्रमाद से गमन करते हुए मेरे **(कर चरण-तनु-विघातात्)** हाथ-पैर अथवा शरीर के आघात से **(प्राणी निहतः)** प्राणी का घात हुआ है **(इति)** इस प्रकार **(भीत्या)** भय से **(तद्दोषहान्यर्थम्)** उस प्राणीघात से उत्पन्न दोषों की हानि के लिए **(ईर्यापथं)** ईर्यापथ को अर्थात् गमन को **(मुञ्चे)** छोड़ता हूँ।

(वसन्ततिलका छन्द)

ईर्यापथे प्रचलताऽद्य मया प्रमादा-
देकेन्द्रियप्रमुखजीवनिकायबाधा ।

निर्वर्तिता यदि भवेदयुगान्तरेक्षा,
मिथ्या तदस्तु दुरितं गुरुभक्तितो मे ॥१९॥

अन्वयार्थ—(यदि) यदि **(अद्य)** आज **(ईर्यापथे)** मार्ग में **(प्रचलता)** चलते हुए **(मया)** मेरे द्वारा **(प्रमादतः)** प्रमाद से **(एकेन्द्रिय प्रमुख)** एकेन्द्रिय आदि **(जीव निकायबाधा)** जीवों के समूह को पीड़ा **(निर्वर्तिता भवेत्)** की गई हो **(अयुगान्तरेक्षा)** चार हाथ भूमि के अन्तराल को न देखा हो-चार हाथ भूमि देखकर गमन नहीं किया हो तो **(मे तद्दुरितं)** मेरा वह पाप **(गुरुभक्तितः)** गुरु भक्ति से **(मिथ्या)** मिथ्या **(अस्तु)** हो।

पडिक्कमामि भंते ! इरियावहियाए, विराहणाए, अणागुत्ते, अइग्गमणे, णिग्गमणे, ठाणे, गमणे, चंकमणे, पाणुग्गमणे, बीजुग्गमणे, हरिदुग्गमणे, उच्चारपस्सवण-खेल-सिंहाण-वियडिय-पइट्ठावणियाए, जे जीवा एइंदिया वा, वेइंदिया वा, तेइंदिया वा, चउरिंदिया वा, पंचिंदिया वा, णोल्लिदा वा, पेल्लिदा वा, संघट्टिदा वा, संघादिदा वा, उद्दाविदा वा, परि-दाविदा वा, किरिंच्छिदा वा, लेस्सिदा वा, छिंदिदा वा, भिंदिदा वा, ठाणदो वा, ठाण-चंकमणदो वा, तस्स उत्तरगुणं, तस्स पायच्छित्त-करणं तस्स विसोहिकरणं, जाव अरहंताणं, भयवंताणं, णमोक्कारं पज्जुवासं करेमि, ताव कालं, पावकम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि।

अन्वयार्थ—(भंते!) हे भगवन्! **(इरियावहियाए)** ईर्यापथ में **(अणागुत्ते)** मन-वचन-काय की गुप्ति रहित होकर **(विराहणाए)** जो कुछ जीवों की विराधना की है **(पडिक्कमामि)** उसका मैं प्रतिक्रमण करता हूँ! **(अइगमणे)** शीघ्र गमन करने में **(णिग्गमणे)** चलने की प्रथम क्रिया प्रारंभ करने में **(ठाणे)** जहाँ कहीं ठहरने में **(गमणे)** गमन में **(चंकमणे)** हाथ-पैर फैलाने या संकोच करने में **(पाणुग्गमणे)** प्राणियों पर गमन करने में **(बीजग्गमणे)** बीज पर गमन करने में **(हरिदुग्गमणे)** हरितकाय पर गमन करने में **(उच्चार पस्सवण-खेल-सिंहाण-वियडियपइट्ठावणियाए)** मलमूत्र क्षेपण करने में, थूकने में, कफ डालने में, इत्यादि विकृतियों के क्षेपण में। **(जे)** जो **(एइंदिया वा, बेइंदिया वा,**

तेइंदिया वा, चउरिंदिया वा, पंचिंदिया वा) एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, तीन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय **(जीवा)** जीव **(णोल्लिदा वा, पेल्लिदा वा, संघट्टिदा वा, संघादिदा वा परिदाविदा वा, किरिच्छिदा वा, लेस्सिदा वा, छिंदिदा वा भिंरिदा वा हाणदो वा ठाण, चंकमणदो वा)** रोके गये हों, स्वस्थान से दूसरे स्थान रखे गये हों, एक दूसरे की रगड़ से पीड़ित हुए हों, समस्त जीव इकट्ठे एक जगह रखे गये हों, संतापित किये गये हों, चूर्ण कर दिये हों, मूर्छित किये गये हों, टुकड़े-टुकड़े कर दिये हों, विदीर्ण किये हों, अपने ही स्थान पर स्थित हो गमन कर रहे हों ऐसे जीवों की मुझ से **(विराहणाए)** जो कुछ विराधना हुई हो **(तस्स पायच्छिसकरणं)** उसका प्रायश्चित करने के लिये **(तस्स विसोहिकरणं)** उसकी विशुद्धि करने के लिये **(पडिक्कमामि)** मैं प्रतिक्रमण करता हूँ।

(जाव) जब तक मैं **(अरहताणं भयवंताणं णमोक्कारं)** अरहंत भगवन्तों को नमस्कार करता हूँ, **(पज्जुवासं करेमि)** उनकी उपासना करता हूँ **(ताव कालं)** उतने काल तक **(पावकम्मं)** अशुभ कर्मों/पाप कर्मों को **(दुच्चरियं)** अशुभ-चेष्टाओं को **(वोस्सरामि)** छोड़ता हूँ।

ॐ णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ॥३॥

मैं परमात्मा के लिये नमस्कार करता हूँ, तथा अनेकान्त स्वरूप तत्त्वों का निरूपण करने वाले और अत्यन्त शान्त वीतराग परमदेव के लिये मैं नमस्कार करता हूँ।

जाप्यानि। (९ बार)

ॐ नमो परमात्मने नमोऽनेकान्ताय शान्तये।

इच्छामि भंते! इरियावहियस्स आलोचेउं पुव्वुत्तरदक्खिण-पच्छिम-चउदिसु विदिसासु विहरमाणेण जुगंतर दिट्ठिणा, भव्वेण दट्ठव्वा। पमाददोसेण डवडवचरियाए पाण-भूद-जीवसत्ताणं उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो वा तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

अन्वयार्थ—(भंते) हे भगवन्! **(इरियावहियस्स आलोचेउं)** ईर्यापथ के दोषों की आलोचना करने की **(इच्छामि)** इच्छा करता हूँ।

(पुव्वु त्तरदक्खिण-पच्छिम चउदिसुविदिसासु) पूर्व-उत्तर-दक्षिण-पश्चिम चारों दिशाओं व विदिशाओं [आग्नेय, नैऋत्य, वायव्य, ऐशान] में **(विहरमाणेण)** विहार करते हुए **(जुगंतर दिट्ठिणा भव्वेणदट्ठव्वा)** भव्य जीव के द्वारा चार हाथ प्रमाण भूमि को दृष्टि से देखकर चलते हुए **(पमाद दोसेण)** प्रमाद के वश से **(डवडवचरियाए)** जल्दी-जल्दी ऊपर को मुख कर चलने से **(पाण-भूद-जीव-सत्ताणं)** विकलेन्द्रिय, वनस्पतिकायिक, पंचेन्द्रिय व पृथ्वी, जल, अग्नि, वायुकायिक जीवों का **(उवघादो)** उपघात **(कदो वा)** स्वयं किया हो, **(कारिदो वा)** कराया हो या **(कीरंतो व समणुमण्णिदो)** करते हुए की अनुमोदना की हो तो **(तस्स)** तत्सम्बन्धी **(मे)** मेरे **(दुक्कडं)** दुष्कृत्य **(मिच्छा)** मिथ्या हों।

(शार्दूलविक्रीड़ित छन्द)

पापिष्ठेन दुरात्मना जड़धिया, मायाविना लोभिना,
रागद्वेष-मलीमसेन मनसा, दुष्कर्म यन्निर्मितम्।
त्रैलोक्याधिपते! जिनेन्द्र ! भवता श्रीपादमूलेऽधुना,
निन्दापूर्वमहं जहामि सततं निवृत्तये कर्मणाम् ॥१॥

अन्वयार्थ—(त्रैलोक्याधिपते!) हे तीन लोक के अधिपति **(जिनेन्द्र!)** हे जिनेन्द्र देव **(पापिष्ठेन, दुरात्मना, जड़धिया)** मुझ पापी, दुष्ट, मन्दबुद्धि ने **(मायाविना, लोभिना)** मायाचारी लोभी ने **(रागद्वेष-मलीमसेन मनसा)** राग-द्वेष की मलीनता से मलीन मन से **(यत्)** जो **(दुष्कर्म)** पाप कर्म **(निर्मितम्)** किये हैं **(अधुना)** अब **(भवतः श्री पादमूले)** आप श्री जिनदेव के चरण मूल में **(अहं)** मैं **(कर्मणाम् निवर्तये)** कर्मों का क्षय करने के लिये **(सततं)** हमेशा के लिए **(निन्दापूर्वम्)** निन्दा पूर्वक/पश्चात्ताप करता हुआ **(जहामि)** छोड़ता हूँ।

(उपजाति छन्द)

जिनेन्द्रमुन्मूलितकर्मबन्धं, प्रणम्य सन्मार्गकृतस्वरूपम्।
अनन्तबोधादि भवं गुणौघं क्रियाकलापं प्रकटं प्रवक्ष्ये ॥२॥

अन्वयार्थ—जिन्होंने **(कर्मबन्धं उन्मूलित)** चार घातिया कर्म को जड़ से क्षय कर दिया **(सन्मार्गकृतस्वरूपम्)** समीचीन मुक्ति मार्ग अनुसार अपने स्वरूप को प्रकट किया है **(अनन्तबोधादि भवं गुणौघं)**

अनन्त ज्ञान-दर्शन-सुख-वीर्य को धारण करने वाले **(जिनेन्द्रम्)** जिनेन्द्रदेव को **(प्रणम्य)** नमस्कार करके मैं **(क्रियाकलापं प्रकटं प्रवक्ष्ये)** क्रियाकलाप को प्रकट रूप कहूँगा।

अथार्हत्पूजारम्भक्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्म-क्षयार्थं भावपूजावन्दनास्तव-समेतंश्रीमत्सिद्धभक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहम्।

णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं॥

चत्तारि मंगलं-अरहंत मंगलं, सिद्ध मंगलं, साहु मंगलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं। चत्तारि लोगुत्तमा - अरहंत लोगुत्तमा, सिद्ध लोगुत्तमा साहु लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो। चत्तारि सरणं पव्वज्जामि-अरहंते सरणं पव्वज्जामि, सिद्धे सरणं पव्वज्जामि, साहु सरणं पव्वज्जामि, केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि।

अड्ढाइज्ज-दीव-दो समुद्देसु पण्णारस-कम्म-भूमिसु, जाव-अरहंताणं, भयवंताणं आदियराणं, तित्थयराणं, जिणाणं, जिणोत्तमाणं, केवलियाणं, सिद्धाणं, बुद्धाणं, परिणिव्वुदाणं, अंतयडाणं पारगयाणं, धम्माइरियाणं, धम्मदेसयाणं, धम्मणायगाणं, धम्म-वर-चाउरंग-चक्क-वट्टीणं, देवाहि-देवाणं, णाणाणं दंसणाणं, चरित्ताणं सदा करेमि किरियम्मं। करेमि भंते! सामायियं सव्वसावज्ज-जोगं पच्चक्खामि जावज्जीवं तिविहेण मणसा वचसा काएण, ण करेमि ण कारेमि, ण अण्णं करंतं पि समणु-मणामि तस्स भंते! अइचारं पडिक्कमामि, णिंदामि, गरहामि अप्पाणं, जाव अरहंताणं भयवंताणं, पज्जुवासं करेमि तावकालं पावकम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि।

जीवे मरणे, लाहालाहे, संजोग विप्पजोगे य।
बंधुरिसुह दुक्खादो, समदा सामायियं णाम॥

चौबीस तीर्थङ्करों की स्तुति

(आर्या छन्द)

थोस्सामि हं जिणवरे, तित्थयरे केवली अणंतजिणे।
णरपवरलोयमहिए, विहुय-रयमले महप्पण्णे ॥१॥

लोयस्सुज्जोय-यरे, धम्मं तित्थंकरे जिणे वंदे।
अरहंते कित्तिस्से, चउवीसं चेव केवलिणो ॥२॥
उसहमजियं च वंदे, संभव-मभिणंदणं च सुमइं च।
पउमप्पहं सुपासं, जिणं च चंदप्पहं वंदे ॥३॥
सुविहिं च पुप्फयंतं, सीयल सेयं च वासुपुज्जं च।
विमल-मणंतं भयवं, धम्मं संतिं च वंदामि ॥४॥
कुंथुं च जिणवरिंदं, अरं च मल्लिं च सुव्वयं च णमिं।
वंदामि रिट्ठ-णेमिं, तह पासं वड्ढमाणं च ॥५॥
एवं मए अभित्थुआ, विहुयरयमलापहीण-जरमरणा।
चउवीसं पि जिणवरा, तित्थयरा मे पसीयंतु ॥६॥
कित्तिय वंदिय महिया, एदे लोगोत्तमा जिणा सिद्धा।
आरोग्ग-णाण-लाहं, दिंतु समाहिं च मे बोहिं ॥७॥
चंदेहिं णिम्मल-यरा, आइच्चेहिं अहिय-पयासंता।
सायरमिव गंभीरा, सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु ॥८॥
श्रीमते वर्धमानाय, नमो नमित-विद्विषे।
यज्ज्ञानान्तर्गतं भूत्वा, त्रैलोक्यं गोष्पदायते ॥
तव-सिद्धे णय-सिद्धे, संजम-सिद्धे चरित्त-सिद्धे
य। णाणम्मि दंसणम्मि य, सिद्धे सिरसा णमंसामि ॥

इच्छामि भंते! सिद्धभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं, सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचरित्तजुत्ताणं, अट्ठविहकम्म-विप्पमुक्काणं, अट्ठगुण-संपण्णाणं, उड्ढ-लोए-मत्थयम्मि पइट्ठियाणं, तवसिद्धाणं, णयसिद्धाणं, संजमसिद्धाणं, चरित्तसिद्धाणं, अदीदाणागद-वट्टमाण-कालत्तय-सिद्धाणं, सव्वसिद्धाणं णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

❑

श्रावक प्रतिक्रमण

जीवे प्रमादजनिताः प्रचुराः प्रदोषाः,
यस्मात्-प्रतिक्रमणतः प्रलयं प्रयान्ति।
तस्मात्-तदर्थ-ममलं गृहि-बोधनार्थं,
वक्ष्ये विचित्रभवकर्म-विशोधनार्थम् ॥१॥

अर्थ—जीव में प्रमाद जनित अनेक दोष पाये जाते हैं। वे दोष, प्रतिक्रमण करने से क्षय को प्राप्त होते हैं इसलिए अनेक भवों में संचित कर्मरूप दोषों की विशुद्धि के लिए गृहस्थों को समझने के लिए मैं प्रतिक्रमण को कहूँगा।

पापिष्ठेन दुरात्मना जडधिया मायाविना लोभिना,
रागद्वेष-मलीमसेन मनसा दुष्कर्म यन्निर्मितम्।
त्रैलोक्याधिपते! जिनेन्द्र! भवतः, श्रीपाद-मूलेऽधुना,
निन्दा-पूर्व-महं जहामि सततं, वर्वर्तिषुः सत्पथे ॥२॥

अर्थ—हे तीन लोक के अधिपति जिनेन्द्रदेव! अत्यन्त पापी, दुरात्मा, मूर्खबुद्धि, मायावी, लोभी, राग-द्वेष से मलीन मेरे मन ने जो दुष्कर्म उपार्जन किया है उसका निरंतर समीचीन मार्ग में चलने का इच्छुक मैं आप जिनेन्द्र के चरण-कमलों में अब निन्दा अर्थात् स्वसाक्षी से अपने दुष्कृत्यों की निन्दा करता हुआ, त्याग करता हूँ।

खम्मामि सव्वजीवाणं सव्वे जीवा खमंतु मे।
मेत्ती मे सव्वभूदेसु, वेरं मज्झं ण केणवि ॥३॥

अर्थ—सब जीवों को मैं क्षमा करता हूँ, सब जीव मुझे क्षमा करें, सब जीवों में मेरा मैत्रीभाव है, मेरा किसी के भी साथ वैरभाव नहीं है।

राग-बंध-पदोसं च, हरिसं दीण-भावयं।
उस्सुगत्तं भयं सोगं रदिमरदिं च वोस्सरे ॥४॥

अर्थ—राग परिणाम से होने वाले कर्मबंध और द्वेष, हर्ष, दीनभाव, उत्सुकता, भय, शोक, रति और अरति का परित्याग करता हूँ।

राग—इष्ट प्राप्ति में होने वाले परिणाम। **द्वेष—**अनिष्ट संयोग, इष्टवियोग जनित परिणाम। **दीनता—**विषय प्राप्ति के परिणाम। **हर्ष—**मदोन्मत्तता अर्थात् अभिमान से उत्पन्न परिणाम। **भय—**इहलोक-परलोक

सम्बन्धी भय। **शोक**—इष्टवियोग जनित परिणाम। **रति**—पर वस्तु की आकांक्षा रूप मनोविकार। **अरति**—परवस्तु की अनाकांक्षा रूप परिणाम।

हा दुट्ठ-कयं हा दुट्ठ-चिंतियं भासियं च हा दुट्ठं।
अंतो अंतो डज्झमि पच्छत्तावेण वेयंतो ॥५॥

अर्थ—हाय! हाय मैंने दुष्टकर्म किये, हाय! हाय मैंने दुष्ट कर्मों का चिंतन किया और हाय! हाय! मैंने दुष्ट मर्मभेदी वचन कहे, अब मुझे अपने किये कुत्सित कर्मों से बहुत पश्चाताप होता है, मेरा अन्तःकरण अत्यन्त क्लेशित हो रहा है। अर्थात् मैं मन-वचन-काय से किये कुकृत का पश्चाताप करता हूँ, भीतर ही भीतर खेद का अनुभव करता हूँ।

दव्वे खेत्ते काले, भावे य कदाऽवराह-सोहणयं।
णिंदणगरहण-जुत्तो, मणवयकाएण पडिकमणं ॥६॥

अर्थ—द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के निमित्त से की गई किसी जीव की विराधना या प्राणपीड़ा का आत्मनिन्दा या गर्हापूर्वक (दोषों के चिन्तन पूर्वक ग्लानि का होना) मन, वचन, काय की शुद्धि से परित्याग करना प्रतिक्रमण है।

एइंदिया बेइंदिया तेइंदिया चउरिंदिया पंचिंदिया पुढविकाइया-आउकाइया-तेउकाइया-वाउकाइया-वणप्फदि-काइया तसकाइया एदेसिं उद्दावणं परिदावणं विराहणं उवघादो कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

अर्थ—एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, तीनइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय, पृथ्वी-कायिक, जलकायिक, तेजकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक और त्रसकायिक इन जीवों को स्वयं वियोग रूप मारण किया हो, कराया हो, अनुमोदना की हो। इन्हीं जीवों का परितापन अर्थात् संताप किया हो, कराया हो, अनुमोदना की हो। इन्हीं जीवों का विराधन अर्थात् पीड़ा दी हो, दुखी किया हो, कराया हो, अनुमोदना की हो तथा उपघात अर्थात् जीवों को एकदेश या सर्वदेश प्राणरहित किया हो, कराया हो, अनुमोदना की हो वह सब मेरा दुष्कृत्य मिथ्या हो, निरर्थक हो।

दंसण-वयसामाइय-,पोसहसचित्तराइभत्ते य।
बंभारंभ-परिग्गह- अणुमणमुद्दिट्ठ-देसविरदे य ॥

अर्थ—१.दर्शन,२.व्रत, ३.सामायिक,४.प्रोषध,५.सचित्तत्याग, ६. रात्रि-भुक्तित्याग, ७.ब्रह्मचर्य, ८.आरंभत्याग, ९. परिग्रहत्याग, १०. अनुमतित्याग और ११. उद्दिष्टत्याग ये नैष्ठिक श्रावक की ११ प्रतिमा होती हैं।

एयासु जहाकहिद-पडिमासु पमादाइकयाइचार-सोहणट्ठं छेदोवट्ठावणं होदु मज्झं।

अर्थ—इन यथाकथित प्रतिमाओं में प्रमाद से अतिचार, अनाचार रूप दोष लगे हों, उसकी शुद्धि के लिए मैं उपस्थापना करता हूँ।

अरहंतसिद्धआयरियउवज्झायसव्वसाहुसक्खियं, सम्मत्तपुव्वगं, सुव्वदं दिढव्वदं समारोहियं मे भवदु, मे भवदु, मे भवदु।

अर्थ—अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, सर्वसाधु इन पाँच परमेष्ठी की साक्षी से सम्यक्त्व, उत्तम व्रतों की दृढ़ता मुझे हो, मुझे हो, मुझे हो।

अथ देवसिओ (राइओ) पडिक्कमणाए सव्वाइचार-विसोहि-णिमित्तं पुव्वाइरिय-कमेण आलोयण-सिद्ध-भत्ति-काउस्सग्गं करेमि।

अर्थ—अथ (रात्रिक) दैवसिक प्रतिक्रमण में व्रतों में मन-वचन-काय से लगे सर्व अतिचारों की शुद्धि के लिए पूर्व आचार्यों के क्रम से आलोचना सिद्ध भक्ति सम्बन्धी कायोत्सर्ग को मैं करता हूँ।

सामायिक दण्डक

णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ॥

अर्थ—अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और लोकवर्ती सर्व साधु परमेष्ठियों को मेरा नमस्कार हो।

चत्तारि मंगलं, अरहंत मंगलं, सिद्ध मंगलं, साहु मंगलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं। चत्तारि लोगुत्तमा - अरहंत लोगुत्तमा, सिद्ध लोगुत्तमा साहु लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो। चत्तारि सरणं पव्वज्जामि - अरहंत सरणं पव्वज्जामि, सिद्धे सरणं पव्वज्जामि, साहु सरणं पव्वज्जामि, केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि।

अर्थ—लोक में चार मंगल हैं—अरहंत जी, सिद्ध जी, साधु जी और केवली भगवान् के द्वारा कहा गया अहिंसामयी धर्म मंगल है। लोक में चार उत्तम हैं-अरहंत जी, सिद्ध जी, साधु जी और केवली भगवान् के द्वारा कहा गया अहिंसामयी धर्म उत्तम है। लोक में अरहंत, सिद्ध, साधु और केवलीप्रणीत धर्म ही शरण है।

अड्ढाइज्ज-दीव-दो समुद्देसु पण्णारस-कम्म-भूमिसु,जाव-अरहंताणं, भयवंताणं आदियराणं, तित्थयराणं, जिणाणं, जिणोत्तमाणं, केवलियाणं, सिद्धाणं, बुद्धाणं, परिणिव्वुदाणं, अंतयडाणं पार-गयाणं, धम्माइरियाणं, धम्मदेसयाणं, धम्मणाय-गाणं, धम्म-वर-चाउरंग-चक्क-वट्टीणं, देवाहिदेवाणं, णाणाणं दंसणाणं, चरित्ताणं सदा करेमि किरियम्मं।

अर्थ—जम्बूद्वीप, धातकीखण्ड और अर्द्धपुष्कर द्वीप इन ढाईद्वीपों में तथा लवण और कालोदधि समुद्रों में पाँच भरत, पाँच ऐरावत व पाँच विदेह १५ कर्मभूमियों में होने वाले जितने अरहंत आदि तीर्थप्रवर्तक तीर्थंकर, जिनदेव, जिनों में श्रेष्ठ तीर्थंकर केवली, सिद्ध, बुद्ध, मुक्ति प्राप्त सिद्ध, अन्तःकृत-केवली, धर्माचार्य, उपाध्याय, साधु धर्मानुष्ठान करने धर्मनायक उत्कृष्ट धर्मरूपी चतुरंग सेना के अधिपति देवाधिदेव अरहंत देव व ज्ञान दर्शन-चारित्र सम्बन्धी मैं सदा कृतिकर्म करता हूँ।

करेमि भंते! सामाइयं सव्वं सावज्ज-जोगं पच्चक्खामि जावज्जीवं तिविहेण मणसा वचसा काएण, ण करेमि ण कारेमि, ण अण्णं करंतं पि समणुमणामि तस्स भंते! अइचारं पडिक्कमामि, णिंदामि, गरहामि अप्पाणं,जाव अरहंताणं भयवंताणं, पज्जुवासं करेमि तावकालं पावकम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि।

अर्थ—हे भगवन्! मैं सामायिक कालपर्यन्त सब सावद्य योग का त्याग करता हूँ। जीवनपर्यन्त मन-वचन-काय से सावद्य योग का कृत-कारित-अनुमोदना से त्याग करता हूँ। हे भगवन्! अपने व्रत में लगे अतिचारों का प्रतिक्रमण निंदा करता हूँ, गर्हा करता हूँ। जितने काल मैं अरहंत भगवन्तों की उपासना करता हूँ उतने कालपर्यन्त पापकर्मों व दुष्चेष्टाओं का त्याग करता हूँ।

[इस प्रकार दण्डक पढ़कर तीन आवर्त और एक शिरोनति करके, ९ बार णमोकार मन्त्र, २७ श्वासोच्छ्वास में जपें, कायोत्सर्ग करें पश्चात् तीन आवर्त और एक शिरोनति करके चतुर्विंशति स्तव पढ़ें।]

चतुर्विंशतिस्तवः

थोस्सामि हं जिणवरे, तित्थयरे केवली अणंतजिणे।
णरपवरलोयमहिए, विहुय-रयमले महप्पण्णे ॥१॥

अर्थ—मैं जिनेन्द्र, तीर्थंकर, केवली, अनन्तजिन, मनुष्यों में श्रेष्ठ, लोक पूज्य, कर्ममल से रहित महान् आत्माओं की स्तुति करता हूँ।

लोयस्सुज्जोय-यरे, धम्मं तित्थंकरे जिणे वंदे।
अरहंते कित्तिस्से, चउवीसं चेव केवलिणो ॥२॥

अर्थ—लोक को प्रकाशित करने वाले, धर्मतीर्थ को करने वाले जिनदेव की मैं वन्दना करता हूँ। अरहंत परमेष्ठी, चौबीस भगवान् और केवली जिनों का कीर्तन करता हूँ।

उसहमजियं च वंदे, संभव-मभिणंदणं च सुमइं च।
पउमप्पहं सुपासं, जिणं च चंदप्पहं वंदे ॥३॥

अर्थ—मैं आदिनाथ, अजितनाथ, संभवनाथ, अभिनन्दननाथ, सुमतिनाथ, पद्मप्रभ, सुपार्श्वनाथ और चन्द्रप्रभ जिनों की वन्दना करता हूँ।

सुविहिं च पुप्फयंतं, सीयल सेयं च वासुपुज्जं च।
विमल-मणंतं भयवं, धम्मं संतिं च वंदामि ॥४॥

अर्थ—सुविधिनाथ/पुष्पदन्त, शीतलनाथ, श्रेयांसनाथ, वासुपूज्य, विमलनाथ, अनन्तनाथ, धर्मनाथ और शान्तिनाथ भगवान् की मैं वन्दना करता हूँ।

कुंथुं च जिणवरिंदं, अरं च मल्लिं च सुव्वयं च णमिं।
वंदामि रिट्ठ-णेमिं, तह पासं वड्ढमाणं च ॥५॥

अर्थ—कुन्थुनाथ, अरनाथ, मल्लिनाथ, मुनिसुव्रत, नमिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर/वर्धमान जिनों की मैं वन्दना करता हूँ।

एवं मए अभित्थुआ, विहुयरयमलापहीण-जरमरणा।
चउवीसं पि जिणवरा, तित्थयरा मे पसीयंतु ॥६॥

अर्थ—इस प्रकार स्तुति किए गए चौबीस जिनेन्द्र, चौबीस तीर्थंकर जो कर्ममल से रहित हैं तथा जन्म-जरा-मरण से रहित हैं, मुझ पर प्रसन्न हो।

कित्तिय वंदिय महिया, एदे लोगोत्तमा जिणा सिद्धा।
आरोग्ग-णाण-लाहं, दिंतु समाहिं च मे बोहिं ॥७॥

अर्थ—कीर्तन, वंदन, पूजन किये गये ये लोक में उत्तम अरहंत, सिद्ध परमेष्ठी मुझे निर्मल केवलज्ञान का लाभ, बोधि/रत्नत्रय की प्राप्ति और समाधि अर्थात् ध्यान की सिद्धि प्रदान करें।

चंदेहिं णिम्मल-यरा, आइच्चेहिं अहिय-पयासंता।
सायरमिव गंभीरा, सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु ॥८॥

अर्थ—चन्द्रमा के समान निर्मल, सूर्य से भी अधिक प्रकाशमान, सागर के समान गंभीर ऐसे सिद्ध परमेष्ठी मेरे लिए सिद्धि को प्रदान करें।

श्रीमते वर्धमानाय, नमो नमित-विद्विषे।
यज्ज्ञानान्तर्गतं भूत्वा, त्रैलोक्यं गोष्पदायते ॥१॥

अर्थ—जिनके ज्ञान में तीन लोक के समस्त पदार्थ गोखुर (गाय के खुर) के समान झलकते हैं, जिनके चरणों में उपसर्ग करने वाले शत्रु का सिर झुक गया है, ऐसे बाह्य समवसरण लक्ष्मी और अन्तरंग अनन्त चतुष्टय लक्ष्मी के धारक श्री वर्धमान जिन के लिए नमस्कार हो।

लघु सिद्ध भक्ति

तव-सिद्धे णय-सिद्धे, संजम-सिद्धे चरित्त-सिद्धे य।
णाणम्मि दंसणम्मि य, सिद्धे सिरसा णमंसामि ॥२॥

अर्थ—तप सिद्ध, नय सिद्ध, संयम सिद्ध, चरित्र सिद्ध, ज्ञान और दर्शन से सिद्ध पद को प्राप्त हुए सभी सिद्ध परमात्माओं को नमस्कार हो।

इच्छामि भंते! सिद्धभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं, सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचरित्तजुत्ताणं, अट्ठविहकम्मविप्प-मुक्काणं, अट्ठ गुण-संपण्णाणं, उड्ढलोए-मत्थयम्मि पइट्ठियाणं, तवसिद्धाणं, णयसिद्धाणं, संजमसिद्धाणं, चरित्तसिद्धाणं, अदीदाणागद-वट्टमाण-कालत्तय-सिद्धाणं, सव्वसिद्धाणं णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ,

कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुण- संपत्ति होउ मज्झं।

अर्थ—हे भगवन्! मैंने सिद्धभक्ति का कायोत्सर्ग किया, उसकी आलोचना करने की इच्छा करता हूँ। सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन, सम्यक्चारित्र से युक्त आठ प्रकार के कर्मों से रहित, सम्यक्त्व आदि आठ गुणों से सम्पन्न ऊर्ध्वलोक के मस्तक प्रतिष्ठित तपसिद्ध, नयसिद्ध, संयमसिद्ध, चारित्र-सिद्ध, भूत-भविष्यत्-वर्तमान काल त्रयकाल सिद्ध सब सिद्धों की मैं सदा नित्यकाल/प्रतिसमय अर्चना करता हूँ, पूजता हूँ, वन्दना करता हूँ, नमस्कार करता हूँ, मेरे दुःखों का क्षय हो, कर्मों का क्षय हो, बोधि अर्थात् रत्नत्रय की प्राप्ति हो, सुगति में गमन हो और जिनेन्द्र गुण रूप सम्पत्ति मुझे प्राप्त हों।

आलोचना

इच्छामि भंते! देवसिओ (राइयो) आलोचेउं तत्थ—

अर्थ—हे भगवन्! मैं (रात्रिक) दैवसिक सम्बन्धी दोषों की आलोचना करने की इच्छा करता हूँ जैसे—

पंचुंबर सहियाइं, सत्तवि वसणाइं जो विवज्जेइ।
सम्मत्तविसुद्धमई, सो दंसणसावओ भणिओ ॥१॥

अर्थ—जो पाँच उदुम्बर फल-बड़फल, पीपलफल, कठूमर, पाकर और ऊमर सहित सात व्यसन—१. जुआ खेलना, २. मांस खाना, ३. शराब पीना, ४. शिकार करना, ५. वेश्यागमन, ६. चोरी करना और ७. परस्त्री सेवन करना इनका त्यागी है और सम्यक्त्व से विशुद्ध मति हैं, जिससे वह प्रथम दर्शन प्रतिमाधारी श्रावक कहलाता है।

पंच य अणुव्वयाइं, गुणव्वयाइं हवंति तह तिण्णि।
सिक्खावयाइं चत्तारि, जाण विदियम्मि ठाणम्मि ॥२॥

अर्थ—पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत को पालन करना द्वितीय स्थान व्रत प्रतिमा है।

जिणवयण-धम्मचेइय,-परमेट्ठि-जिणालयाण णिच्चंपि।
जं वंदणं तिआलं, कीरइ सामाइयं तं खु ॥३॥

अर्थ—जिनवचन, जिनधर्म, जिनचैत्य, पाँच परमेष्ठी—अरहंत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय और साधु तथा जिन चैत्यालय इन नव देवताओं

की प्रतिदिन तीनों कालों में वन्दना करना वह निश्चय से सामायिक प्रतिमा है। बाह्य आभ्यंतर शुद्धि को धारण कर पूर्व अथवा उत्तर दिशा की तरफ मुख कर, एकान्त निर्भय स्थान में १२ आवर्त को करता हुआ चार प्रणाम चारों दिशा में करें और स्थिर मन-वचन-काय से समतापूर्वक सामायिक करें।

उत्तम-मज्झ-जहण्णं, तिविहं पोसहविहाणमुद्दिट्ठं।
सगसत्तीए मासम्मि, चउसु पव्वेसु कायव्वं ॥४॥

अर्थ—उत्तम, मध्यम और जघन्य तीन प्रकार से प्रोषध विधान कहा गया है। अपनी शक्ति के अनुसार एक माह में चार पर्वों (दो अष्टमी, दो चतुर्दशी) में करना चाहिए।

जं वज्जिजदि हरिदं, तय-पत्त-पवाल-कंदफल-वीयं।
अप्पासुगं च सलिलं, सचित्तणिव्वत्तिमं ठाणं ॥५॥

अर्थ—सचित्त वस्तु, हरित अंकुर पत्र, प्रवाल, कंद, फल-बीज और अप्रासुक जलादि का सेवन नहीं करना सो पञ्चम प्रतिमा है।

मण-वयण-काय-कद-,कारिदाणुमोदेहिं मेहुणं णवधा।
दिवसम्मि जो विवज्जदि, गुणम्मि जो सावओ छट्ठो ॥६॥

अर्थ—मन, वचन, काय, कृत, कारित, अनुमोदना से नवकोटिपूर्वक मैथुन का दिन में त्याग करना सो वह गुणी श्रावक की छठवीं प्रतिमा है।

पुव्वुत्तणव-विहाणं पि, मेहुणं सव्वदा विवज्जंतो।
इत्थिकहादि-णिवित्ती, सत्तमगुणबंभचारी सो ॥७॥

अर्थ—मन, वचन, काय, कृत, कारित, अनुमोदना रूप नव कोटि से हमेशा के लिए स्त्री मात्र का त्याग तथा स्त्री-कथा आदि का भी नवकोटि से त्याग करना सो सप्तम ब्रह्मचर्य प्रतिमा है।

जं किं पि गिहारंभं, बहुथोवं वा सया विवज्जेदि।
आरंभणिवित्तमदी, सो अट्ठम सावओ भणिओ ॥८॥

अर्थ—कुछ भी थोड़ा या बहुत सम्पूर्ण गृहारम्भ/घर सम्बन्धी आरम्भ का सदा के लिए त्याग करना सो आठवीं आरम्भ त्याग प्रतिमा है।

मोत्तूण वत्थमित्तं, परिग्गहं जो विवज्जदे सेसं।
तत्थवि मुच्छं ण करेदि, वियाण सो सावओ णवमो ॥९॥

अर्थ—वस्त्र मात्र को छोड़कर शेष सभी परिग्रहों का जो त्यागी है तथा उन वस्त्रों में भी जो मूर्च्छा को नहीं करता है, वह नवमी परिग्रह त्याग प्रतिमा का धारी श्रावक है।

पुट्ठो वापुट्ठो वा, णियगेहिं परेहिं सग्गिह-कज्जे।
अणुमणणं जो ण कुणदि, वियाण सो सावओदसमो ॥१०॥

अर्थ—जो अपने या दूसरों के गृहकार्य सम्बन्धी आरम्भ में पूछने पर या नहीं भी पूछने पर जो अनुमति नहीं करता है, वह दशमी अनुमति त्याग प्रतिमाधारी श्रावक है।

णवकोडीसु विसुद्धं, भिक्खायरणेण भुंजदे भुंजं।
जायणरहियं जोग्गं, एयारस-सावओ सो दु ॥११॥

अर्थ—नवकोटि से शुद्ध, भिक्षा के आचरणपूर्वक दीनतारहित जो भोजन करता है, वह ग्यारहवीं प्रतिमाधारी श्रावक है।

एयारसम्मि ठाणे, उक्किट्ठो सावओ हवई दुविहो।
वत्थेय-धरो पढमो, कोवीण-परिग्गहो विदिओ ॥१२॥

अर्थ—ग्यारहवीं उद्दिष्टत्याग प्रतिमा स्थान में श्रावक दो प्रकार के हैं—प्रथम खण्ड वस्त्रधारक (चद्दर, लँगोटधारी) दूसरे कोपीन (लँगोट) मात्र परिग्रह धारक।

तव-वय-णियमावासय-, लोचं कारेदि पिच्छ गिण्हेदि।
अणुवेहा-धम्मझाणं, करपत्ते एय-ठाणम्मि ॥१३॥

अर्थ—उत्कृष्ट श्रावक तप, व्रत, नियम, आवश्यकों का पालन करते हुए बारह अनुप्रेक्षा और धर्मध्यान में समय व्यतीत करते हैं। लोच करते हैं। पिच्छि ग्रहण करते हैं तथा करपात्र अर्थात् हाथ में एक बार भोजन करते हैं। (क्षुल्लक थाली, कटोरा आदि में आहार करते हैं तथा ऐलक कर पात्र में ही आहार करते हैं, क्षुल्लक केशलोंच करें या कैंची से बालों को निकाल सकते हैं पर ऐलक के लिए केशलोंच का ही विधान है)

इत्थ मे जो कोई देवसिओ (राइयो) अइचारो अणाचारो तस्स भंते! पडिक्कमामि पडिक्कमं तस्स मे सम्मत्तमरणं, समाहिमरणं, पंडियमरणं, वीरियमरणं, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो

सुगइगमणं समाहिमरणं, जिणगुण-संपत्ति होउ मज्झं।

अर्थ—हे भगवन्! इस प्रकार एक से ग्यारह प्रतिमा पर्यन्त मेरे व्रतों में रात्रि या दिन में जो कोई अतिचार या अनाचार लगा हो, उस दोष की शुद्धि के लिए मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। प्रतिक्रमण करने वाले मेरा सम्यक्त्वपूर्वक मरण हो, समाधिमरण हो, पंडितमरण हो, वीरमरण हो, दुःखों का क्षय हो, बोधि/रत्नत्रय का लाभ हो, सुगति में गमन हो, समाधिमरण हो। जिनेन्द्र गुणों की सम्पत्ति मुझे प्राप्त हो।

दंसण-वय-सामाइय-,पोसह-सचित्त-रायभत्तेय।
बंभारंभ-परिग्गह-, अणुमणमुद्दिट्ठदेसविरदेदे ॥१॥

एयासु जधा-कहिद-पडिमासु पमादाइ-कयाइचार-सोहणं छेदोवट्ठावणं होउ मज्झं।

(अर्थ पूर्व में आ चुका है]

अथ देवसिय (राइय) पडिक्कमणाए, सव्वाइचार विसोहि-णिमित्तं, पुव्वाइरियकमेण पडिक्कमण भत्ति कायोत्सर्गं करोमि।

अर्थ—अब (रात्रिक) दैवसिक प्रतिक्रमण में सर्व अतिचारों की विशुद्धि के निमित्त पूर्व आचार्यों के क्रम से मैं प्रतिक्रमण का कायोत्सर्ग करता हूँ।

(चत्तारि दण्डक पढ़कर नौ बार णमोकार मन्त्र का जाप करके, थोस्सामि स्तव पढ़ें]

प्रतिक्रमणभक्तिः

श्रीपडिक्कमणभत्ति - काउस्सग्गं करेमि -
णमो अरहंताणमित्यादि - थोस्सामीत्यादि।

णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ॥३॥

णमो जिणाणं ३, णमो णिस्सिहीए ३, णमोत्थु दे ३, अरहंत! सिद्ध! बुद्ध ! णीरय ! णिम्मल! सममण ! सुभमण! सुसमत्थ ! समजोग ! समभाव! सल्लघट्टाणं! सल्लघत्ताणं! णिब्भय! णीराय ! णिद्दोस! णिम्मोह! णिम्मम! णिस्संग! णिस्सल्ल! माणमायमोसमूरण, तवप्पहावण, गुणरयण, सीलसायर, अणंत, अप्पमेय, महदि-

महावीर-वड्ढमाण, बुद्धिरिसिणो चेदि णमोत्थु दे णमोत्थु दे णमोत्थु दे।

अर्थ—जिनेन्द्रदेव को तीन बार नमस्कार हो, १७ प्रकार के निषिद्धिका स्थानों को नमस्कार हो, नमस्कार हो, नमस्कार हो। चार घाति को क्षयकारक अरहंत, निःशेष कर्म क्षयकारक सिद्ध, केवलज्ञानी, कर्म ज्ञानावरण दर्शनावरण की रज से रहित, समताधारक, शुभमन, शुभध्यान-धारी परीषह उपसर्गों के सहन में समर्थ, उपशम योग वाले, समभाव वाले अरहंतादि को नमस्कार हो, नमस्कार हो, नमस्कार हो।

हे माया-मिथ्या-निदान शल्य के नाशक, संसारी जीवों के शल्य नाशक, निर्भय, रागरहित, निर्दोष, निर्मोह, निर्मम, निष्परिग्रह, माया मिथ्या-निदान शल्य रहित, मान, माया और झूठ का मर्दन करने वाले हे तप प्रभावक, हे गुणों के स्वामी गुणरत्न, हे शीलसागर, हे अनन्त चतुष्टय धारक, हे अनन्त, हे अप्रमेय, हे पूजनीय महावीर, हे वर्द्धमान, हे बुद्धर्षिन्! आपको नमस्कार हो, नमस्कार हो, नमस्कार हो।

मम मंगलं अरहंता य, सिद्धा य, बुद्धा य, जिणा य, केवलिणो, ओहिणाणिणो, मणपज्जय-णाणिणो, चउदस-पुव्वंगामिणो, सुद-समिदि-समिद्धा य, तवो य, वारसविहो तवसी, गुणाय, गुणवंतो य, महरिसी तित्थं तित्थकरा य, पवयणं पवयणी य, णाणं णाणी य, दंसणं दंसणी य, संजमो संजदा य, विणओ विणीदा य, बंभचेरवासो, बंभचारी य, गुत्तीओ, चेव गुत्तिमंतो य, मुत्तिओ चेव मुत्तिमंतो य, समिदीओ, चेव समिदि मंतो य, सुसमय-परसमय-विदु, खंति खंतिवंतो य, खवगा य, खीणमोहा य खीणवंतोय, बोहिय बुद्धाय, बुद्धिमंतो य, चेइयरुक्खाय चेइयाणि।

अर्थ—अरहंत, सिद्ध, बुद्ध, जिन, केवलज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्यय-ज्ञानी, चौदह पूर्व के ज्ञाता, श्रुत समूह से युक्त बारह प्रकार का तप और तपस्वी, ८४ लाख गुण और गुणवान ऋद्धिधारी मुनि, तीर्थ और तीर्थकर, प्रवचन व प्रवचन के धारी ज्ञान और ज्ञानी, सम्यग्दर्शन और सम्यग्दृष्टि जीव, ब्रह्मचारी आश्रम और ब्रह्मचारी गुप्ति और गुप्ति के धारक, बाह्य-आभ्यन्तर परिग्रह त्याग और त्यागी, समिति और समिति

के धारक, स्वसमय-परसमय के ज्ञाता, क्षमा और क्षमागुण के धारक, क्षपक-श्रेणी और श्रेणी पर चढ़ने वाले बोधित बुद्ध व कोष्ठबुद्धि के धारक तथा चैत्यवृक्ष और चैत्यालय (कृत्रिम-अकृत्रिम) आदि ये सब मेरे लिए मंगलदायक हों।

उड्ढ-मह-तिरियलोए, सिद्धायदणाणि णमंसामि, सिद्धि-णिसीहियाओ, अट्ठावय-पव्वये, सम्मेदे, उज्जंते, चंपाए, पावाए, मज्झिमाए, हत्थिवालियसहाए, जाओ अण्णाओ काओवि णिसीहियाओ जीवलोयम्मि ईसिपब्भारतलगयाणं सिद्धाणं बुद्धाणं कम्मचक्क-मुक्काणं णीरयाणं णिम्मलाणं गुरु-आइरिय-उवज्झायाणं पव्वतित्थेर-कुलयराणं चउवण्णो य समण-संघो य, दससु भरहेरावएसु पंचसु महाविदेहेसु जो लोए संति साहवो संजदा तवसी एदे मम मंगलं पवित्तं एदेहं मंगलं करेमि भावदो विसुद्धो सिरसा अहिवंदिऊण सिद्धे-काऊण अंजलिं मत्थयम्मि तिविहं तिरयणसुद्धो।

अर्थ—ऊर्ध्वलोक, अधोलोक और मध्यलोक, सिद्धायतनों को नमस्कार है, निर्वाण-स्थलों को, अष्टापद कैलाशपर्वत, सम्मेदशिखर, गिरनार, चम्पापुरी, पावापुरी, मध्यमा नगरी हस्तिपालक राजा की सभा में और भी जो कोई निषिद्धिका स्थान हैं, अढ़ाईद्वीप और दो समुद्रों में, ईषत्प्रागभार मोक्षशिला पर स्थित सिद्धों को, बुद्धों को, अष्टकर्मों से रहित, पापरहित, भाव कर्म मल से रहित निर्मल गुरु, आचार्य, उपाध्याय, प्रवर्तक, स्थविर और कुलकर तथा चार प्रकार के श्रमण संघ, ऋषि, यति, मुनि व अनगार, भरत ऐरावत दस क्षेत्रों में, पाँच विदेह क्षेत्रों में और मनुष्य लोक में जो साधु संयमी तपस्वी हैं ये सब मेरा पवित्र मंगल करें, इनको मैं विशुद्ध भाव से मस्तक झुकाकर सिद्धों को नमस्कार करके मस्तक पर अँजुली रखकर मन-वचन-काय की शुद्धि से नमस्कार करता हूँ, इस प्रकार में मंगल करता हूँ।

पडिक्कमामि भंते! दंसणपडिमाए, संकाए, कंखाए, विदिगिंच्छाए, परपासंडाण, पसंसणाए, पसंथुए, जो मए देवसिओ (राइओ) अइचारो, मणसा, वचसा, काएण, कदो वा, कारिदो वा,

कीरंतो वा, समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥१॥

अर्थ—हे भगवन्! मैं व्रतों में लगे दोषों का पश्चातापपूर्वक प्रतिक्रमण करता हूँ। दर्शनप्रतिमा में **शंका—**जिनेन्द्रकथित मार्ग में शंका, **कांक्षा—**शुभाचरण पालन कर संसार, शरीर, भोगों की इच्छा रूप निदान, **जुगुप्सा—**धर्मात्माओं के मलिन शरीर को देखकर ग्लानि करना। परपांखडियों की प्रशंसा-मिथ्या मार्ग व उनके सेवन करने वालों की प्रशंसा की हो, स्तुति की हो इस पर मेरे द्वारा जो भी दिन या रात्रि सम्बन्धी अतिचार, अनाचार मन से, वचन से, काय से, स्वयं किये हों, कराये हों, करते हुए की अनुमोदना की हो तो तत्सम्बन्धी मेरे समस्त दुष्कृत्य निरर्थक हों, मिथ्या हों। मैं समस्त दोषों की आलोचना करता हूँ, पश्चाताप करता हूँ।

पडिक्कमामि भंते! वदपडिमाए पढमे थूलयडे हिंसा-विरदिवदे-वहेण वा, बंधेण वा, छेएण वा, अइभारारोहणेण वा, अण्णपाण-णिरोहणेण वा, जो मए देवसिओ (राइयो) अइचारो, मणसा, वचसा, काएण, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥२-१॥

अर्थ—हे भगवन्! मैं अपने कृत दोषों की आलोचना करता हुआ प्रतिक्रमण करता हूँ। दूसरी व्रत प्रतिमा में स्थूल हिंसा त्याग व्रत में वध से या बंध से, छेदन या अतिभारारोपण या अन्नपाननिरोध करने से अर्थात् जीवों को मैंने बाँधा हो, मारा हो, अंगोपांग का छेदन किया हो, शक्ति से अधिक बोझा लादा हो और अन्न-पान निरोध किया हो। मेरे द्वारा रात्रि या दिन में व्रतों में अतिचार, अनाचार, मन-वचन-काय से किये गये हों, कराये गये हों अथवा करते हुए की अनुमोदना की गई हो तो वे सब दुष्कृत्य मेरे निरर्थक हों, मिथ्या हों।

पडिक्कमामि भंते! वदपडिमाए विदिए थूलयडे असच्च-विरदिवदेमिच्छोवदेसेण वा, रहोअब्भक्खाणेण वा, कूडलेहण-करणेण वा, णासापहारेण वा सायारमंतभेएण वा, जो मए देवसिओ (राइओ) अइचारो, मणसा, वचसा, काएण, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥२-२॥

अर्थ—हे भगवन्! दूसरी प्रतिमा में स्थूल असत्य विरति त्याग व्रत

में लगे दोषों का मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। मिथ्या उपदेश देने से, एकान्त में कही गई बात को प्रकट कर देने से, झूठे दस्तावेज आदि लिखने से, दूसरों की धरोहर हरण करने से, किसी के द्वारा इंगित चेष्टा से उसके अभिप्राय को प्रकट कर देने से इत्यादि प्रकार से स्थूल सत्याणुव्रत में दिन या रात में अतिचार-अनाचार मन, वचन, काय, कृत, कारित, अनुमोदना से हुए हों वे सभी व्रत सम्बन्धी मेरे दुष्कृत निरर्थक हों।

पडिक्कमामि भंते! वदपडिमाए तिदिये थूलयडे थेणविरदिवदे थेणपओगेण वा थेण-हरियादाणेण वा, विरुद्धरज्जा-इक्कमणेण वा, हीणाहियमाणुम्माणेण वा, पडिरूवय ववहारेण वा, जो मए देवसिओ (राइओ) अइचारो, मणसा, वचसा, काएण, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥२-३॥

अर्थ—हे भगवन्! मैं कृतकर्मों का प्रतिक्रमण करता हूँ अर्थात् पश्चाताप पूर्वक अपने व्रतों में लगे दोषों की आलोचना करता हूँ। दूसरी प्रतिमा के अन्तर्गत अचौर्याणुव्रत में दिन या रात्रि में मन-वचन-काय-कृत-कारित-अनुमोदना से चोरी करने के प्रयोग को बतलाया हो (अर्थात् स्वयं तो चोरी नहीं की परन्तु दूसरों को ऐसा व्यापार बताना जिससे वह चोरी करे) चोर से अपहरण किये द्रव्य को ग्रहण किया हो, राज्य के विरुद्ध कार्य किया हो अर्थात् राज्य के विरुद्ध वस्तु, टिकट आदि दिया हो, टैक्स चुराना आदि किया हो, राजा की आज्ञा का भंग किया हो, तौलने के बाँट आदि कम या ज्यादा रखे हों और अधिक मूल्य की वस्तु में कम मूल्य की वस्तु मिलाकर दी हो, इस प्रकार व्रत सम्बन्धी मेरे सब अतिचार-अनाचार रूप दोष निरर्थक हों, मेरे व्रत सम्बन्धी पाप मिथ्या हों।

पडिक्कमामि भंते! वद पडिमाए चउत्थे थूलयडे अबंभविरदि-वदे-परविवाहकरणेण वा, इत्तरियागमणेण वा, परिग्गहिदा-परिग्गहिदा-गमणेण वा, अणंगकीडणेण वा, कामतिव्वा-भिणिवेसेण वा, जो मए देवसिओ (राइओ) अइचारो मणसा, वचसा, काएण, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥२-४॥

अर्थ—हे भगवन्! मैं द्वितीय प्रतिमा के अन्तर्गत चौथे स्थूल ब्रह्मचर्य अणुव्रत में लगे दोषों का प्रतिक्रमण करता हूँ। द्वितीय प्रतिमा में चौथे स्थूल ब्रह्मचर्य व्रत में दूसरे का विवाह कराया हो, इत्वरिका (व्यभिचारिणी स्त्री) के घर आना-जाना रूप व्यवहार रखा हो, अपरिग्रहीत कुमारिका और परिग्रहीत वेश्या सधवा विधवा स्त्रियों के साथ व्यवहार रखा हो, इनके साथ कामवासना से व्यवहार किया हो, काम-सेवन के अंगों को छोड़कर अन्य अंगों से काम चेष्टा की हो, काम के तीव्र विकार से लोलुपता की हो अथवा घृणित परिणाम किये हों, मन से, वचन से, काय से, कृत, कारित, अनुमोदना से दिन या रात में व्रत सम्बन्धी दोषों की मैं आलोचना करता हूँ मेरे व्रत सम्बन्धी पाप मिथ्या हों, निरर्थक हों।

पडिक्कमामि भंते! वदपडिमाए पंचमे थूलयडे परिग्गहपरिमाणवदे-खेत्तवत्थूणं परिमाणाइक्कमणेण वा, हरिण्ण-सुवण्णाणं परिमाणा-इक्कमणेण वा धणधण्णाणं परिमाणा-इक्कमणेण वा, दासीदासाणं परिमाणाइक्कमणेण वा, कुप्पभांडपरिमाणाइक्कमणेण वा, जो मए देवसिओ (राइयो) अइचारो मणसा, वचसा, काएण, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥२-५॥

अर्थ—हे भगवन्! मैं दूसरी प्रतिमा के अन्तर्गत परिग्रहपरिमाण अणुव्रत में लगे दोषों का प्रतिक्रमण करता हूँ। द्वितीय व्रत प्रतिमा में स्थूल परिग्रह परिमाण व्रत में क्षेत्र, मकान आदि के परिमाण का अतिक्रमण करने से, धन-गाय, बैल आदि धान्य, गेहूँ, चना आदि परिमाण का अतिक्रमण करने से चाँदी-सोना के परिमाण का अतिक्रमण करने से या दासी-दास के परिमाण का अतिक्रमण करने से या कुप्य-वस्त्र, बर्तन आदि समस्त परिग्रह का अतिक्रमण करने से जो भी मेरे द्वारा दिन या रात्रि में मन से, वचन से, काय से, कृत, कारित, अनुमोदना से व्रत सम्बन्धी अतिचार अनाचार हुआ, वह सब मेरा पाप मिथ्या हो।

पडिक्कमामि भंते! वदपडिमाए पढमे गुणव्वदे-उड्ढवइक्कमणेण वा, अहोवइक्कमणेण वा, तिरियवइक्कमणेण वा, खेत्तवद्धिएण वा, अंतराधाणेण वा, जो मए देवसिओ (राइओ)

अइचारो मणसा, वचसा, काएण, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा समणु-मण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥२-६-१॥

अर्थ—हे भगवन्! मैं द्वितीय प्रतिमा के मध्य प्रथम गुणव्रत-दिग्व्रत में लगे अतिचार-अनाचार आदि दोषों का प्रतिक्रमण करता हूँ। दूसरा व्रत प्रतिमा में प्रथम गुणव्रत में ऊर्ध्व दिशा में गमन की सीमा उल्लंघन किया हो, अधोदिशा में गमन की सीमा का उल्लंघन किया हो, तिर्यक् दिशा में गमन की सीमा का उल्लंघन किया हो, सीमित क्षेत्र में वृद्धि की हो या दशों दिशा सम्बन्धी की गई मर्यादा को भूल गया हो इस प्रकार दिन या रात्रि में व्रत सम्बन्धी दोष अतिचार-अनाचार मन से, वचन से, काय से किया हो, कराया हो, या करने वालों की अनुमोदना की हो तो मेरा व्रत सम्बन्धी दोष/ पाप मिथ्या हो, निरर्थक हो।

पडिक्कमामि भंते! वद पडिमाए विदिए गुणव्वदे:-आणयणेण वा, विणिजोगेण वा, सद्दाणुवाएण वा, रूवाणुवाएण वा, पुग्गल-खेवेण वा, जो मए देवसिओ (राइओ) अइचारो मणसा, वचसा, काएण, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥२-७-२॥

अर्थ—हे भगवन्! द्वितीय व्रत प्रतिमा में दूसरे गुणव्रत-देशव्रत में लगे दोषों की विशुद्धि के लिए मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। द्वितीय व्रत प्रतिमा गुणव्रत के भेद देशव्रत में मर्यादा के बाहर से वस्तु मँगाई हो, बाँधी गई सीमा से बाहर वस्तु भेजी हो, शब्दों के इशारे से मर्यादा के बाहर से अपना कार्य सिद्ध किया हो, रूप दिखाकर मर्यादा के बाहर से अपना कार्य सिद्ध किया हो, कंकर, पत्थर आदि फेंककर मर्यादा के बाहर अपना कार्य किया हो इस प्रकार मेरे द्वारा जो भी दिन या रात्रि में मन से, वचन से, काय से कृत, कारित, अनुमोदना से व्रत सम्बन्धी अतिचार, अनाचार हुआ हो तो वह मेरा व्रत सम्बन्धी पाप मिथ्या हो, निरर्थक हो।

पडिक्कमामि भंते ! वदपडिमाए तिदिए गुणव्वदे:-कंदप्पेण वा, कुकुवेएण वा, मोक्खरिएण वा, असमक्खियाहिकरणेण वा, भोगोपभोगाणत्थकेण वा जो मए देवसिओ (राइओ) अइचारो मणसा, वचसा, काएण, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा

समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥२-८-३॥

अर्थ—हे भगवन्! मैं द्वितीय प्रतिमा तीसरे गुणव्रत अनर्थदण्ड में लगे दो का प्रतिक्रमण करता हूँ। अनर्थदण्डविरति व्रत में कंदर्प से अर्थात् उदय स्मित से हँसी से, ठट्ठा से, कौत्कुच्य अर्थात् कुत्सित भाषण किया हो, शरीर की खोटी चेष्टा की हो, मौखर्य यानि बिना प्रयोजन बकवाद किया हो, व्यर्थ संभाषण किया हो, असमीक्ष्याधिकरण यानि बिना सोना विचार के कार्य किया हो, भोगोपभोग की सामग्री का अनर्थ बिना प्रयोजन अधिक संग्रह किया हो इस प्रकार मेरे द्वारा दिन में या रात्रि में व्रत सम्बन्धी में जो भी अतिचार मन-वचन-काय-कृत-कारित-अनुमोदना से हए हों तत्सम्बन्धी मेरे दुष्कृत/पाप मिथ्या हों?

पडिक्कमामि भंते! वदपडिमाए पढमे सिक्खावदे-फासिंदिय-भोगपरिमाणाइक्कमणेण वा, रसणिंदिय भोगपरिमाणा इक्कमणेण वा, घाणिंदिय भोगपरिमाणा इक्कमणेण वा, चक्खिंदिय-भोगपरिमाणाइक्कमणेण वा, सवणिंदिय भोग-परिमाणा-इक्कमणेण वा, जो मए देवसिओ (राइओ) अइचारो मणसा, वचसा, काएण, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥२-९-१॥

अर्थ—हे भगवन्! द्वितीय व्रत प्रतिमा में प्रथम शिक्षाव्रत में लगे अतिचार आदि दोषों का प्रतिक्रमण करता हूँ। प्रथम शिक्षाव्रत में स्पर्शेन्द्रिय सम्बन्धी भोगपरिमाण के अतिक्रमण से, रसना इन्द्रिय सम्बन्धी भोग परिमाण के अतिक्रमण से, घ्राण इन्द्रिय सम्बन्धी भोग परिमाण के अतिक्रमण से, चक्षु इन्द्रिय सम्बन्धी भोग परिमाण के अतिक्रमण से, श्रोत्रेन्द्रिय सम्बन्धी भाग परिमाण के अतिक्रमण से मेरे द्वारा दिन या रात्रि में जो भी व्रत संबधा अतिचार मन से, वचन से, काय से, कृत, कारित, अनुमोदना से हुआ तत्सम्बन्धी मेरा दुष्कृत्य मिथ्या हो। जो एक बार भोगा जाता है वह भोग कहलाता है।

पडिक्कमामि भंते! वदपडिमाए विदियसिक्खावदे फासिंदिय-परिभोगपरिमाणाइक्कमणेण वा, रसणिंदिय परिभोगपरिमाणा इक्कमणेण वा, घाणिंदियपरिभोगपरिमाणाइक्कमणेण वा,

चक्खिंदियपरिभोग-परिमाणा-इक्कमणेण वा, सवणिंदिय-परिभोग-परिमाण इक्कमणेण वा, जो मए देवसिओ (राइओ) अइचारो मणसा, वचसा, काएण, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा समणु -मण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥२-१०-२॥

अर्थ—हे भगवन्! द्वितीय व्रत प्रतिमा में द्वितीय शिक्षाव्रत परिभोगपरिमाण व्रत में लगे अतिचार आदि दोषों का प्रतिक्रमण करता हूँ। स्पर्शेन्द्रिय सम्बन्धी परिभोग परिमाण के अतिक्रमण से, रसनेन्द्रिय सम्बन्धी परिभोग-परिमाण के अतिक्रमण से, घ्राणेन्द्रिय सम्बन्धी परिभोगपरिमाण के अतिक्रमण से, चक्षु इन्द्रिय सम्बन्धी परिभोगपरिमाण के अतिक्रमण से या श्रोत्र (कर्ण) इन्द्रिय सम्बन्धी परिभोग परिमाण के अतिक्रमण से मेरे द्वारा जो भी दिन या रात्रि में अतिचार मन से, वचन से, काय से, स्वयं किया हो, दूसरों से कराया हो तो परिभोगपरिमाणव्रत सम्बन्धी मेरे दुष्कृत/पाप मिथ्या हों।

पडिक्कमामि भंते! वदपडिमाए तिदिए सिक्खावदे-सचित्त-णिक्खेवेण वा, सचित्तपिहाणेण वा, परउवएसेण वा, कालाइक्कमणेण वा, मच्छरिएण वा, जो मए देवसिओ (राइओ) अइचारो मणसा, वचसा, काएण, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा समणु-मण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥२-११-३॥

अर्थ—हे भगवन्! व्रत प्रतिमा में तीसरा शिक्षाव्रत है अतिथिसंविभाग उसमें सचित्त (योनिभूत) वस्तु में प्रासुक पदार्थ को रखा हो, सचित्त से ढका हो, पर के उपदेश से या अन्य का द्रव्य अपना कहकर दिया हो, दान देने के समय का उल्लंघन किया हो, दान देते समय अन्य दाताओं से मात्सर्य किया हो इत्यादि अनेक प्रकार से मेरे द्वारा दिन या रात्रि में जो भी अतिचार मन से, वचन से, काय से, कृत, कारित, अनुमोदना से हुए हों तो व्रत सम्बन्धी मेरे पाप मिथ्या हों।

पडिक्कमामि भंते! वदपडिमाए चउत्थे सिक्खावदे-जीविदा-संसणेण वा, मरणासंसणेण वा, मित्ताणुराएण वा, सुहाणुबंधेण वा, णिदाणेण वा, जो मए देवसिओ (राइओ) अइचारो मणसा, वचसा, काएण, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा समणुमण्णिदो,

तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥२-१२-४॥

अर्थ—हे भगवन्! व्रत प्रतिमा में चौथे शिक्षाव्रत समाधिमरण व्रत में जीवित रहने की आशा से, शीघ्र मरण की आशा या मरण का, करना या मैं मर जाऊँगा क्या? आदि परिणामों से संक्लेश रखता इष्ट-मित्रजनों से प्रेम रखना, सुखानुबन्ध अर्थात् पूर्व में भोगे हुए भोर का स्मरण करना और व्रतादि का पालन कर सांसारिक सुखों की इच्छा करना रूप निदान से जो भी मेरे द्वारा दिन में या रात्रि में अतिचार मन से, वचन से स्वयं किया गया हो, कराया गया हो या करते हुए की अनुमोदना की गई हो तो समाधिमरण व्रत सम्बन्धी मेरे दोष/पाप मिथ्या हो।

पडिक्कमामि भंते! सामाइयपडिमाए-मणदुप्पणि धाणेण वा, वायदुप्पणिधाणेण वा, कायदुप्पणिधाणेण वा, अणादरेण वा, सदि-अणुवट्ठावणेण वा, जो मए देवसिओ (राइओ) अइचारो मणसा, वचसा, काएण, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥३॥

अर्थ—हे भगवन्! सामायिक प्रतिमा व्रत पालन में लगे दोषों का मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। सामायिक प्रतिमा (तीसरी) के पालने में मन के दुष्प्रणिधान अर्थात् मन की अस्थिरता, वचन दुष्प्रणिधान अर्थात् वचनों के उच्चारण में शीघ्रता या मंदता या अशुद्धि की हो, काय दुष्प्रणिधान अर्थात् काय की चंचलता की हो-एक आसन से निश्चलतापूर्वक बैठकर निर्विकार सामायिक न कर काय की दुष्प्रवृत्ति की हो, शरीर के अंग-उपांगों को चलायमान किया हो, सामायिक अनादर से की हो, सामायिक पाठ का विस्मरण किया हो इत्यादि मेरे द्वारा जो भी कोई दिन या रात्रि में अतिचार मन से, वचन से, काय से स्वयं किया गया हो, कराया गया हो या करते हुए का अनुमोदना की गई हो तो सामायिक व्रत प्रतिमा सम्बन्धी मेरा दुष्कृत/पाप मिथ्या हो।

पडिक्कमामि भंते! पोसहपडिमाए-अप्पडिवेक्खिया-पमज्जियो-सग्गेण वा, अप्पडिवेक्खियाप मज्जियादाणेण वा, अप्पडिवेक्खिया-पमज्जिया संथारोवक्कमणेण वा, आवस्सयाणा-दरेण वा, सदि-अणुवट्ठावणेण वा, जो मए देवसिओ (राइओ)

अइचारो मणसा, वचसा, काएण, कदो वा कारिदो वा, कीरंतो वा समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥४॥

अर्थ—हे भगवन्! चतुर्थ प्रोषध प्रतिमा के पालन करने में लगे दोषों का मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। प्रोषध प्रतिमा को पालते हुए जीव-जन्तुओं को बिना देखे ही अथवा भूमि प्रदेश का जीव-जन्तु रहित है या नहीं शोधन किये बिना ही मल-मूत्र का क्षेपण किया हो अथवा पूजा के उपकरण आदि बिना शोधे उपयोग किये हों, बिना देखे शोधी भूमि में ही वस्तु धरी हो और बिना शोधे उपकरण, पुस्तक, पीछी (कोमल वस्त्र की पीछी), कमंडलु आदि उपयोगी वस्तुएँ ग्रहण की हों, बिना देखे, बिना शोधे संस्तर, चटाई-पाटा आदि बिछाये हों, देव-पूजा, गुरुपास्ति आदि षट् आवश्यक कर्तव्यों में हानि या अनादर किया हो, सामायिक, पूजन, स्तव आदि का विस्मरण किया हो इत्यादि, जो भी दोष मेरे द्वारा दिन या रात्रि में स्वयं किये गये हों, कराये गये हों या अनुमोदना की गई हो, सामायिक प्रतिमा व्रत सम्बन्धी मेरे पाप मिथ्या हों।

पडिक्कमामि भंते! सचित्तविरदिपडिमाए - पुढविकाइआ जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, आउकाइआ जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, तेउकाइआ जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, वाउकाइआ जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, वणप्फदिकाइआ जीवा अणंता-णंता, हरिया, बीया, अंकुरा, छिण्णा भिण्णा, एदेसिं उद्दावणं, परिदावणं, विराहणं, उवघादो, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥५॥

अर्थ—हे भगवन्! सचित्तत्याग नामक पंचम प्रतिमा में लगे दोषों का मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। सचित्तविरति त्याग प्रतिमा को पालने में मेरे द्वारा असंख्यातासंख्यात पृथ्वीकायिक जीवों का, असंख्यातासंख्यात जलकायिक जीवों का, असंख्यातासंख्यात तेजस्कायिक (अग्निकायिक) जीवों का, असंख्यातासंख्यात वायुकायिक जीवों का और अनन्तानन्त वनस्पति-कायिक जीवों में हरित, बीज, अंकुर का छेदन-भेदन किया हो, इन जीवों को उत्तापन/त्रास दिया हो, पीड़ित किया हो, विराधन किया हो या उपघात किया हो, कराया हो या करते हुए की अनुमोदना की हो तो

व्रत सम्बन्धी मेरे दोष/पाप मिथ्या हों।

पडिक्कमामि भंते ! राइभत्तपडिमाए-णवविहबंभ-चरियस्स दिवा जो मए देवसिओ (राइओ) अइचारो अणाचारो, मणसा, वचसा, काएण, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥६॥

अर्थ—हे भगवन्! मैं रात्रिभुक्ति नामक छठी प्रतिमा में लगे दोषों का प्रतिक्रमण करता हूँ। रात्रिभुक्ति त्याग प्रतिमा व्रत में दिन में नव प्रकार ब्रह्मचर्य में मेरे द्वारा अतिचार मन से, वचन से, काय से किया गया को कराया गया हो अथवा करते हुए की अनुमोदना की गई हो तो रात्रि-भुक्ति त्याग या दिवामैथुन त्याग प्रतिमा सम्बन्धी मेरे पाप मिथ्या हों।

पडिक्कमामि भंते! बंभपडिमाए-इत्थिकहायत्तणेण वा, इत्थि-मणोहरांगणिरक्खणेण वा, पुव्वरयाणुस्सरणेण वा, कामकोवण-रसासेवणेण वा, सरीरमंडणेण वा, जो मए देवसिओ (राइओ) अइचारो अणाचारो मणसा, वचसा, काएण, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥७॥

अर्थ—हे भगवन्! ब्रह्मचर्य प्रतिमा के पालन में लगे दोषों का मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। ब्रह्मचर्य प्रतिमा व्रत में स्त्रियों में राग बढ़ाने वाली कथाओं को कहा हो, स्त्रियों के मनोहर अंगों का निरीक्षण किया हो, पूर्व में भोगे हुए भोगों का स्मरण किया हो या कामोत्पादक गरिष्ठ रसों का सेवन किया हो या शरीर का शृंगार किया हो इस प्रकार मेरे द्वारा दिन या रात्रि में जो भी अतिचार मन से, वचन से, काय से किया हो, करवाया या करते हुए की अनुमोदना की हो तो ब्रह्मचर्य प्रतिमा के व्रत सम्बन्धी मेरे दोष/पाप मिथ्या हों।

पडिक्कमामि भंते! आरंभविरदि-पडिमाए-कसाय-वसंगएण वा, जो मए देवसिओ (राइओ) आरम्भो, मणसा, वचसा, काएण, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥८॥

अर्थ—हे भगवन्! आरंभत्याग नामक आठवीं प्रतिमा के व्रत पालन में लग दोषों का में प्रतिक्रमण करता हूँ। आरंभत्याग प्रतिमा में

कषाय के वश से मेरे द्वारा जो भी आरंभ दिन या रात्रि में मन-वचन-काय या कृत-कारित-अनुमोदना से हुआ हो तो उस आरंभत्याग व्रत सम्बन्धी मेरे पाप मिथ्या हो।

पडिक्कमामि भंते! परिग्गहविरदि-पडिमाए-वत्थमेत्त-परिग्गहादो अवरम्मि परिग्गहे मुच्छापरिणामे जो मए देवसिओ (राइओ) अइचारो अणाचारो मणसा, वचसा, काएण, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥९॥

अर्थ—हे भगवन्! परिग्रहत्याग प्रतिमा के पालन में लगे दोषों का मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। परिग्रहत्याग प्रतिमा व्रत में वस्त्र मात्र परिग्रह से भिन्न दूसरे परिग्रह में मूर्च्छा परिणाम होने से मेरे द्वारा जो भी दिन या रात्रि में अतिचार-अनाचार मन से, वचन से, काय से, कृत-कारित-अनुमोदना से हुआ हो तो व्रत सम्बन्धी मेरा दोष मिथ्या हो।

पडिक्कमामि भंते! अणुमणविरदिपडिमाए जं किं पि अणुमणणं पुट्ठापुट्ठेण कदं वा, कारिदं वा, कीरंतो वा समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥१०॥

अर्थ—हे भगवन्! अनुमतिविरत दसवीं प्रतिमा के पालन में लगे दोषों का मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। अनुमतित्याग प्रतिमा में जो अन्य के द्वारा पूछने या नहीं पूछने पर भी जो कुछ भी मेरे द्वारा अनुमति दी गई हो, दिलाई गई हो या अनुमोदना की गई हो तो मेरे सभी पाप मिथ्या हों।

पडिक्कमामि भंते! उद्दिट्ठ-विरदिपडिमाए उद्दिट्ठदोस-बहुलं अहोरदियं आहारयं वा आहारावियं वा आहारिज्जंतं वा समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥११॥

अर्थ—हे भगवन्! मैं उद्दिष्टत्याग ग्यारहवीं प्रतिमा के पालन में लगे दोषों का मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। उद्दिष्टत्याग प्रतिमा व्रत में उद्दिष्ट दोष से युक्त आहार को मैंने किया हो, उद्दिष्ट दोष से दूषित आहार दूसरों को कराया हो या उद्दिष्ट दोष से दूषित आहार को करने की अनुमति दी हो तो उस व्रत सम्बन्धी मेरा पाप मिथ्या हो।

निर्ग्रन्थ पद की वांछा

इच्छामि भंते! इमं णिग्गंथं पवयणं अणुत्तरं केवलियं, पडिपुण्णं, णेगाइयं, सामाइयं, संसुद्धं, सल्लघट्टाणं, सल्लघत्ताणं, सिद्धिमग्गं, सेढिमग्गं, खंतिमग्गं, मुत्तिमग्गं, पमुत्तिमग्गं, मोक्खमग्गं, पमोक्ख-मग्गं, णिज्जाणमग्गं, णिव्वाणमग्गं, सव्वदुःखपरिहाणिमग्गं, सुचरियपरि-णिव्वाणमग्गं, अवितहं, अविसंति-पवयणं, उत्तमं तं सद्दहामि, तं पत्तियामि, तं रोचेमि, तं फासेमि, इदोत्तरं अण्णं णत्थि, ण भूदं, ण भविस्सदि, णाणेण वा, दंसणेण वा, चरित्तेण वा, सुत्तेण वा, इदो जीवा सिज्झंति, बुज्झंति, मुच्चंति, परिणिव्वाणयंति, सव्व-दुक्खाण-मंतं करेंति, पडिवियाणंति, समणोमि संजदोमि, उवरदोमि, उवसंतोमि, उवधि-णियडि-माण-माया-मोसमूरण-मिच्छाणाण-मिच्छादंसण-मिच्छा-चरित्तं च पडिविरदोमि, सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचरित्तं च रोचेमि, जं जिणवरेहिं पण्णत्तो, इत्थ मे जो कोई देवसिओ (राइओ) अइचारो अणाचारो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

अर्थ—हे भगवन्! इस निर्ग्रंथ लिंग की मैं इच्छा करता हूँ। यह निर्ग्रंथ लिंग मोक्ष प्राप्ति का उपाय साक्षात् कारण है। यह अनुत्तर है अर्थात् इस निर्ग्रंथ लिंग से भिन्न दूसरा कोई उत्कृष्ट मोक्षमार्ग नहीं है। केवली सम्बन्धी अर्थात् केवली कथित है। सम्पूर्ण कर्मों का क्षय करने में समर्थ है नैकायिक अर्थात् रत्नत्रय के निकाय से संबंध रखने वाला है, सामायिक रूप है, परम उदासीनता रूप तथा सर्वसावद्य योग का अभाव होने से यह ही सामायिक है। शुद्ध है। माया-मिथ्या-निदान शल्यों से दुखी जीवों के शल्य का नाश करने वाला है। सिद्धि का मार्ग है, श्रेणी का मार्ग है, शान्ति और क्षमा का मार्ग है, उत्कृष्ट मार्ग है, मोक्ष का मार्ग, अरहंत सिद्ध अवस्था की प्राप्ति का उपाय है, चतुर्गति भ्रमण के अभाव का मार्ग है निर्वाण का मार्ग है, सर्व दुखों के नाश का मार्ग है, सुचारित्र के द्वारा निर्वाण-प्राप्ति का मार्ग है, निर्विवाद रूप से निर्ग्रंथ लिंग से मुक्ति होती है, मोक्षार्थी इसी लिंग का आश्रय लेते हैं यह लिंग सर्वज्ञ प्रणीत है उस उत्तम लिंग की में श्रद्धा करता हूँ, रुचि करता है, उसी को प्राप्त होता हूँ।

इससे भिन्न अन्य कोई मोक्ष का हेतु नहीं है, न भूत में था और न भविष्य में होगा। ज्ञान-दर्शन-चारित्र व श्रुत का ज्ञापक होने से इस निर्ग्रंथ लिंग से जीव सिद्ध अवस्था को प्राप्त करते हैं, केवलज्ञान को प्राप्त कर मुक्त हो, कर्मों से रहित होते हैं। कृतकृत्य हो जाते हैं, सब दुखों का अन्त करते हैं। निर्ग्रंथ लिंग के द्वारा ही समस्त पदार्थों को जानते हैं। मैं श्रमण होता हूँ, संयत होता हूँ, विषय भोगों से उपरत होता हूँ, उपशांत होता हूँ। परिग्रह, निकृति/वंचना मान, माया, कुटिलता, असत्य भाषण, मिथ्याज्ञान, मिथ्यादर्शन, मिथ्याचारित्र इनसे विरत होता हूँ। सम्यग्ज्ञान, दर्शन, चारित्र में श्रद्धा करता हूँ। जिनेन्द्रदेव के द्वारा कहे गये जो तत्त्व हैं उन्हीं की मैं श्रद्धा करता हूँ इस प्रकार मेरे द्वारा दिन-रात्रि की क्रियाओं में जो कोई अतिचार-अनाचार हुए हों तत्सम्बन्धी मेरे समस्त पाप मिथ्या हों।

इच्छामि भंते! वीर-भत्ति-काउस्सग्गं करेमि जो मए देवसिओ (राइयो) अइचारो, अणाचारो, आभोगो, अणाभोगो, काइओ, वाइओ, माणसिओ, दुच्चरिओ, दुच्चारिओ, दुब्भासिओ, दुप्परिणामिओ, णाणे, दंसणे, चरित्ते, सुत्ते, सामाइए, एयारसण्हं-पडिमाणं विराहणाए, अट्ठविहस्स कम्मस्स-णिग्घादणाए, अण्णहा उस्सासिदेण वा, णिस्सासिदेण वा, उम्मिस्सिदेण वा, णिम्मिस्सिदेण वा, खासिदेण वा, छिंकिदेण वा, जंभाइदेण वा, सुहुमेहिंअंग-चलाचलेहिं, दिट्ठि-चलाचलेहिं,एदेहिं सव्वेहिं, असमाहिं-पत्तेहिं, आयारेहिं, जाव अरहंताणं, भयवंताणं, पज्जुवासं करेमि, तावकायं पावकम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि।

अर्थ—हे भगवन्! मैं प्रतिक्रमण में लगे अतिचारों की आलोचना करने की इच्छा करता हूँ। मेरे द्वारा दिन या रात्रि की क्रियाओं में अतिचार-अनाचार आभोग अनाभोग कायिक, वाचिक, मानसिक दुश्चिंतन हुआ हो, दुश्चरित्र हुआ हो। दुर्वचनों का उच्चारण हुआ हो, खोटे परिणाम हुए हों, ज्ञान में, दर्शन में, चारित्र में, सूत्र में, सामायिक में, ग्यारह प्रतिमाओं की विराधना की हो, आठ कर्मों का नाश करने वाली क्रियाओं के प्रयत्न करने में, श्वासोच्छ्वास में नेत्रों की टमकार से, खाँसने से, छींकने से, जंभाई लेने से, सूक्ष्म अंगों के हलन-चलन करने से, दृष्टि को चलायमान

करने से इत्यादि अशुभ क्रियाओं से सूत्र पाठ आदि क्रियाओं का विस्मरण किया हो, अन्यथा प्ररूपणा की हो, असमाधि को प्राप्त कराने वाली क्रियाओं के आचरण से जो दोष लगा हो तो मैं इस प्रतिक्रमण संबंधी कायोत्सर्ग करता हूँ और जब तक अरहंत भगवन्तों की पर्युपासना मैं करता हूँ तब तक पाप कर्म रूप दुश्चरित्र का त्याग करता हूँ।

दंसण-वय-सामाइय-, पोसहसचित्तराइभत्ते य।
बंभारंभपरिग्गह-, अणुमण-मुद्दिट्ठदेसविरदे दे ॥१॥

एयासु जधा कहिद पडिमासु पमादाइ कयाइचार सोहणट्ठं छेदोवट्ठावणं होदु मज्झं। अरहंत-सिद्ध-आयरिय-उवज्झाय-सव्व-साहु-सक्खियं, सम्मत्त-पुव्वगं, सुव्वदं दिढव्वदं समारोहियं मे भवदु, मे भवदु, मे भवदु।

अथ देवसिओ (राइओ) पडिक्कमणाए सव्वाइचार विसोहि-णिमित्तं, पुव्वाइरियकमेण णिष्ठितकरणवीरभत्ति काउस्सगं करेमि।

अर्थ—अब दैवसिक (रात्रिक) प्रतिक्रमण सर्व अतिचार की विशुद्धि के निमित्त पूर्वाचार्यों के क्रम से निष्ठितकरण वीरभक्ति के कायोत्सर्ग को मैं करता हूँ।

इस प्रकार विज्ञापन करके णमो अरहंताणं इत्यादि दंडक को पढ़कर कायोत्सर्ग करें। पश्चात् थोस्सामि इत्यादि स्तव को पढ़ें।

(दिन सम्बन्धी प्रतिक्रमण हो तो छत्तीस बार णमोकार मंत्र का तथा रात्रि सम्बन्धी हो तो अठारह बार जाप करें।)

यः सर्वाणि चराचराणि विधिवद्, द्रव्याणि तेषां गुणान्,
पर्यायानपि भूत-भावि-भवतः, सर्वान् सदा सर्वदा।
जानीते युगपत् प्रतिक्षण-मतः, सर्वज्ञ इत्युच्यते,
सर्वज्ञाय जिनेश्वराय महते, वीराय तस्मै नमः ॥१॥

अर्थ—जो सम्पूर्ण चेतन-अचेतन विधिवत् द्रव्यों को और उनके गुणों को भूत-भावी-वर्तमान सम्पूर्ण पर्यायों में सदा सर्वकाल प्रतिसमय में एक साथ जानता है अतः वह सर्वज्ञ कहे जाते हैं, उन सर्वज्ञ जिनेश्वर भगवान् महावीर के लिए नमस्कार हो।

वीरः सर्व-सुराऽसुरेन्द्र-महितो, वीरं बुधाः संश्रिता,
वीरेणाभिहतः स्व-कर्म-निचयो, वीराय भक्त्या नमः।

वीरात् तीर्थ-मिदं-प्रवृत्त मतुलं, वीरस्य घोरं तपो,
वीरे श्रीद्युतिकान्तिकीर्तिधृतयो, हे वीर! भद्रं त्वयि ॥२॥

अर्थ—वीर भगवान् सभी सुर-असुरों तथा इन्द्रों से पूजित हैं, ज्ञानीजन वीर प्रभु का आश्रय लेते हैं, वीर भगवान् ने कर्मसमूह को नष्ट कर दिया है, वीर प्रभु को भक्ति से नमस्कार हो, वीरप्रभु से ही यह अनुपम तीर्थ प्रवृत्त हुआ है, वीर भगवान् का तप उत्कृष्ट है, वीर भगवान् में अन्तरंग-अनंत चतुष्टय और बाह्य में समवसरण आदि लक्ष्मी, तेज, कान्ति, यश और धैर्यता गुण विद्यमान है। हे वीर भगवान्! आप ही कल्याणकारी हैं।

ये वीरपादौ प्रणमन्ति नित्यं, ध्यानस्थिताः संयम-योग-युक्ताः।
ते वीतशोका हि भवन्ति लोके, संसारदुर्गं विषमं तरन्ति ॥३॥

अर्थ—जो भव्य पुरुष ध्यान में स्थित होकर संयम व योग से सहित होते हुए प्रतिदिन वीर भगवान् के दोनों चरण-कमलों को नमस्कार करते हैं वे संसार में निश्चित रूप से शोक-मुक्त होते हैं तथा विषम संसार अटवी से तिरकर मुक्त हो जाते हैं।

व्रत-समुदय-मूलः संयम-स्कन्ध-बन्धो,
यम नियमपयोभिर्वर्धितः शील-शाखः।
समिति-कलिक-भारो गुप्ति-गुप्त-प्रवालो,
गुण-कुसुमसुगन्धिः सत्-तपश्चित्र-पत्रः ॥४॥
शिव-सुख-फलदायी यो दया-छाययौघः,
शुभजन-पथिकानां खेदनोदे समर्थः।
दुरित-रविज- तापं प्रापयन्नन्त-भावं,
स भव-विभव-हान्यै नोऽस्तु चारित्र-वृक्षः ॥५॥

अर्थ—व्रतों का समूह जिसकी जड़ है, संयम जिसका स्कन्ध बंध है, यम-नियम रूपी जल के द्वारा जो वृद्धि को प्राप्त है, १८ हजार शील जिसकी शाखा है, पाँच समिति रूपी कलिकाएँ भार हैं, तीन गुप्तियाँ जिसमें प्रवाल हैं, मूल और उत्तरगुण श्रावक अपेक्षा ८ मूलगुण, १२ उत्तर गुण जिसके पुष्पों की सुगंधी है, समीचीन तप चित्र-विचित्र पत्ते हैं जो मोक्ष रूपी फल को देने वाला है, दयारूपी छाया समूह से युक्त है, शुभोपयोग में दत्तचित्त पथिकों के खेद को दूर करने में समर्थ है, पापरूपी

सूर्य से उत्पन्न ताप को नाश करने वाला है वह चारित्ररूपी वृक्ष हमारे संसार रूप वैभव के नाश के लिए हो।

चारित्रं सर्वजिनैश्, चरितं प्रोक्तं च सर्व-शिष्येभ्यः।
प्रणमामि पञ्च-भेदं, पञ्चम-चारित्र-लाभाय ॥६॥

अर्थ—सब तीर्थंकरों के द्वारा जिस चारित्र का आचरण किया गया तथा समस्त शिष्यों के लिए जिस चारित्र का उपदेश दिया गया उस सामायिक छेदोपस्थापना आदि पाँच भेद युक्त चारित्र को मैं पंचम यथाख्यातचारित्र की प्राप्ति के लिए नमस्कार करता हूँ।

धर्मः सर्व-सुखाकरो हितकरो, धर्मं बुधाश्चिन्वते,
धर्मेणैव समाप्यते शिव-सुखं, धर्माय तस्मै नमः।
धर्मान्नास्त्यपरः सुहृद्भव-भृतां, धर्मस्य मूलं दया,
धर्मे चित्तमहं दधे प्रतिदिनं, हे धर्म, मां पालय ॥७॥

अर्थ—सब सुखों की खानि, हित को करने वाला धर्म है। बुद्धिमान लोग धर्म का संचय करते हैं। धर्म के द्वारा ही मोक्ष-सुख प्राप्त होता है। इसलिए उस धर्म को नमस्कार हो। संसारी प्राणियों का धर्म से भिन्न अन्य कोई दूसरा मित्र नहीं है। धर्म की जड़ दया है। मैं प्रतिदिन धर्म में मन को लगाता हूँ। हे धर्म, मेरी रक्षा करो।

धम्मो मंगल-मुक्किट्ठं अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तस्स पणमंति जस्स धम्मे सया मणो ॥८॥

अर्थ—अहिंसा संयम तप रूप धर्म मंगल कहा गया है जिसका मन सदा धर्म में लगा रहता है उसे देव भी नमस्कार करते हैं।

इच्छामि भंते! पडिक्कमणाइचारमालोचेउं तत्थ देसासिआ, असणासिआ ठाणासिआ कालासिआ मुद्वासिआ, काउ-सग्गासिआ पणमासिआ आवत्तासिआ पडिक्कमणाए तत्थसु आवासएसु परिहीणदा जो मए अच्चासणा मणसा, वचसा, काएण, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ॥९॥

अर्थ—हे भगवन्! मैं वीरभक्ति सम्बन्धी कायोत्सर्ग करने की इच्छा करता हूँ। उसमें देश के आश्रय से, आसन के आश्रय से, स्थान के

आश्रय से, काल के आश्रय से, मुद्रा के आश्रय से, कायोत्सर्ग के आश्रय से, नमस्कारादि विधि के आश्रय से, आवर्त आदि, से प्रतिक्रमण में, उनमें आवश्यक कर्मों के करने में मेरे द्वारा हीनता, अत्यासादना मन से, वचन से, काय से, की गई हो, कराई गई हो अथवा करने वाले की अनुमोदना की गई हो तो वीर भक्ति सम्बन्धी मेरे पाप मिथ्या हों।

दंसण-वयसामाइय-,पोसह-सचित्त- राइभत्ते य ।
बंभारंभपरिग्गह-,अणुमणमुद्दिट्ठ-देसविरदे य ॥१॥

एयासु जधा कहिद - पडिमासु पमादाइ - कयाइचार - सोहणट्ठं छेदोवट्ठावणं होउ मज्झं। अरहंत - सिद्ध - आयरिय - उवज्झाय - सव्वसाहु-सक्खियं, सम्मत्तपुव्वगं, सुव्वदं दिढव्वदं समारोहियं मे भवदु, मे भवदु, मे भवदु।

अथ देवसिओ (राइओ) पडिक्कमणाए सव्वाइचार - विसोहि - णिमित्तं, पुव्वाइरिय - कमेण चउवीसतित्थयरभत्ति - कायोत्सर्गं करोमि।

अर्थ— अब मैं दैवसिक-रात्रिक प्रतिक्रमण में लगे सब अतिचार रूप दोषों की विशुद्धि के निमित्त पूर्वाचार्यों के क्रम से चतुर्विंशति तीर्थंकर भक्ति सम्बन्धी कायोत्सर्ग को करता हूँ।

[णमो अरहंताणं इत्यादि दंडक पढ़कर ९ बार णमोकार मन्त्र पढ़ें। पश्चात् थोस्सामि स्तव पढ़कर चौबीस तीर्थङ्कर भगवान् की भक्ति पढ़ें।]

चउवीसं तित्थयरे उसहाइ-वीर-पच्छिमे वंदे।
सव्वेसिं गुण-गण-हरे सिद्धे सिरसा णमंसामि ॥१॥

अर्थ—वृषभदेव को आदि लेकर अन्तिम तीर्थंकर महावीरपर्यन्त चौबीस तीर्थंकरों को मैं नमस्कार करता हूँ। समस्त मुनिराज, गणधर और सिद्ध परमात्माओं को सिर झुकाकर नमस्कार करता हूँ।

ये लोकेऽष्ट - सहस्र -, लक्षणधरा, ज्ञेयार्णवान्तर्गता,
ये सम्यग्भवजाल-हेतुमथनाश्चन्द्रार्कतेजोऽधिकाः ॥२॥

अर्थ—जो लोक में १००८ लक्षणों के धारक हैं, जो समीचीन कारण हैं, संसाररूपी जाल स्वरूप मिथ्यादर्शन, ज्ञान, चारित्र के नाशक के चन्द्र और सूर्य से भी अधिक तेजस्वी हैं।

ये साध्विन्द्रसुराप्सरो-गण-शतै, गीत-प्रणुत्यार्चितास्,
तान्देवान्वृषभादिवीर-चरमान्भक्त्या नमस्याम्यहम् ॥३॥

अर्थ—गणधर, मुनिवर, इन्द्र, देव तथा सैंकड़ों अप्सराओं के समूह से जिनकी स्तुति की गई है, पूजा की गई है उन वृषभनाथ जी को आदि ले अन्तिम महावीरपर्यन्त २४ तीर्थंकर देवों को मैं भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूँ।

नाभेयं देवपूज्यं, जिनवरमजितं, सर्वलोक- प्रदीपं,
सर्वज्ञं शम्भवाख्यं, मुनि - गण - वृषभं, नन्दनं देव-देवं ।
कर्मारिघ्नं सुबुद्धिं, वरकमल-निभं, पद्मपुष्पाभिगन्धं,
क्षान्तं दान्तं सुपार्श्वं, सकलशशिनिभं, चन्द्रनामानमीडे ॥४॥

अर्थ—जिनों में श्रेष्ठ, देवों से पूज्य, नाभिराजा के पुत्र आदिनाथ जी की, उत्कृष्ट दीप सम, त्रैलोक्यप्रकाशक अजितनाथ जिनेन्द्र की, त्रिकालवर्ती समस्त पदार्थों, उनके गुण व पर्यायों को युगपत् जानने वाले संभव जिनेन्द्र की, मुनियों के समूह में श्रेष्ठ देवाधिदेव अभिनन्दन की, कर्मशत्रु नाशक सुमति जिनेन्द्र की, कमल सम आभा व सुगंधित शरीर के धारक पत्र पद्मप्रभ जिनेन्द्र क्षमायुक्त, सहिष्णु जितेन्द्रिय सुपार्श्व जिनेन्द्र की पूर्ण चन्द्रमा के कांति के धारक चन्द्रप्रभ भगवान् की में स्तुति करता हूँ।

विख्यातं पुष्पदन्तं, भवभय-मथनं शीतलं, लोक-नाथं,
श्रेयांसं शील-कोशं, प्रवर-नर-गुरुं, वासुपूज्यं सुपूज्यं।
मुक्तं दान्तेन्द्रियाश्वं, विमलमृषिपतिं सिंहसैन्यं, मुनीन्द्रं,
धर्मं सद्धर्मकेतुं, शमदमनिलयं, स्तौमि शान्तिं, शरण्यम् ॥५॥

अर्थ— प्रसिद्धि प्राप्त पुष्पदन्त जी की संसार के भय के नाशक शीतल जिनेन्द्र की, शील के समुद्र श्रेयांसनाथ जी की सौ इन्द्रों से पूज्य श्रेष्ठ जनों के गुरु वासुपूज्य की घातिया कर्मों से रहित, इन्द्रियविजेता विमलनाथ भगवान् ऋद्धिधारी मुनियों के स्वामी अनन्तनाथ भगवान् की, रत्नत्रय की ध्वजा स्वरूप धर्मनाथ जी की और साम्यभाव के खजाने, संसार-दुःखों से पीड़ित, जीवों के शरणभूत शान्तिनाथ भगवान् की मैं स्तुति करता हूँ।

कुन्थुं सिद्धालयस्थं, श्रमणपतिमरं, त्यक्तभोगेषु चक्रं,
मल्लिं विख्यातगोत्रं, खचरगणनुतं, सुव्रतं सौख्यराशिं।
देवेन्द्रार्च्यं नमीशं, हरिकुल-तिलकं, नेमिचन्द्रं भवान्तं,
पार्श्वं नागेन्द्रवन्द्यं, शरणमहमितो, वर्धमानं च भक्त्या ॥६॥

अर्थ—सिद्धालय में स्थित कुन्थुनाथ भगवान् की, हस्तगत चक्ररत्न के त्यागी अर जिनेन्द्र की, प्रसिद्ध इक्ष्वाकुवंशोत्पन्न मल्लि जिनेन्द्र, विद्याधरों के समूह से नमस्कृत सुख की राशि मुनिसुव्रतनाथ जी की, देवों से पूज्य नमि जिनेन्द्र की, भव का अन्त करने वाले हरिवंश के तिलकस्वरूप नेमिनाथ जी, धरणेन्द्र वंदित पार्श्वनाथ जी और वर्धमान जिनेन्द्र की मैं भक्ति से शरण को प्राप्त होता हूँ।

इच्छामि भंते! चउवीस-तित्थयर-भत्ति-काउस्सग्गो कओ, तस्सालोचेउं, पंच-महाकल्लाण-संपण्णाणं, अट्ठ-महा-पाडिहेर-सहियाणं, चउतीसाऽतिसयविसेस-संजुत्ताणं, बत्तीस-देवेंद-मणिमय-मउड-मत्थय-महिदाणं, बलदेव-वासुदेव-चक्कहर-रिसि-मुणि-जइ-अणगारोव-गूढाणं, थुइसयसहस्स-णिलयाणं, उसहाइ- वीर-पच्छिम- मंगल- महा-पुरिसाणं, णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो सुगइगमणं, समाहि-मरणं, जिण-गुणसंपत्ति होउ मज्झं।

अर्थ—भंते! हे भगवन्! चौबीस तीर्थंकर भक्ति का कायोत्सर्ग मैंने किया। मैं तत्सम्बन्धी आलोचना करने की इच्छा करता हूँ। पञ्चकल्याणक से सम्पन्न, आठ प्रातिहार्यों से युक्त, बत्तीस देवेन्द्रों के मणिमय मुकुटों से सुशोभित, बलदेव, वासुदेव, चक्रवर्ती, ऋषि, यति, मुनि व अनगार से पूजित लाखों स्तुतियों के खजाने श्री वृषभदेव से लेकर महावीरपर्यन्त मंगलमय महापुरुषों की मैं हमेशा अर्चना, पूजा, वन्दना करता हूँ, नमस्कार करता हूँ। मेरे दुःखों का, कर्मों का क्षय हो, मुझे बोधि की प्राप्ति हो, सुगति में गमन हो, समाधिमरण हो, जिनेन्द्र गुणों की सम्पत्ति मुझे प्राप्त हो।

दंसण-वय-सामाइय-, पोसह-सचित्तराइभत्ते य।
बंभारंभ-परिग्गह-, अणुमणमुद्दिट्ठ देस- विरदे दे ॥
एयासु जधा कहिदपडिमासु पमादाइकदादिचार-सोहणट्ठं

छेदोवट्ठावणं होदु मज्झं। अरहंत-सिद्ध-आयरिय-उवज्झाय-सव्वसाहु-सक्खियं सम्मत्त-पुव्वगं सुव्वदं दिढव्वदं समारोहियं मे भवदु, मे भवदु, मे भवदु।

अथ देवसिओ (राइओ) पडिक्कमणाए सव्वाइचार-विसोहि-णिमित्तं पुव्वाइरियकमेण आलोयण श्रीसिद्ध भक्ति-पडिक्कमण-भक्ति-णिट्ठिद-करण वीरभक्ति-चउवीस-तित्थयर-भक्ति कृत्वा तद्धीनाधिकत्वादि-दोष-परिहारार्थं सकल-दोष-निराकरणार्थं सर्वमलातिचार-विशुद्ध्यर्थं आत्म-पवित्रीकरणार्थं समाधिभत्तिं काउस्सग्गं करेमि।

अर्थ—मैं अब दिन या रात्रि में प्रतिक्रमण में लगे सर्व अतिचारों की विशुद्धि के निमित्त पूर्व आचार्यों के क्रम से आलोचना सिद्धभक्ति, प्रतिक्रमणभक्ति, निष्ठितकरण वीरभक्ति, चतुर्विंशति भक्ति करके उनमें हीनाधिक दोषों के परिहार के लिए, सकल दोषों का निराकरण करने के लिए सर्व मल व अतिचारों की शुद्धि के लिए, आत्मा को पवित्र करने के लिए समाधिभक्ति सम्बन्धी कायोत्सर्ग को करता हूँ।

(नौ बार णमोकार मन्त्र का जाप करें।)

अथेष्ट-प्रार्थना

प्रथमं करणं चरणं द्रव्यं नमः।

अर्थ—प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग को नमस्कार हो।

शास्त्राभ्यासो जिन-पति-नुतिः, सङ्गतिः सर्वदार्यैः,
सद्वृत्तानां गुण-गण-कथा, दोष-वादे च मौनम्।
सर्वस्यापि प्रिय-हित-वचो, भावना चात्म-तत्त्वे,
सम्पद्यन्तां मम भव-भवे, यावदेतेऽपवर्गः ॥१॥

अर्थ— हे भगवन्! मुझे जब तक मोक्ष की प्राप्ति न होवे तब तक भव-भव में शास्त्रों का पठन-मनन-चिंतन, जिन-चरणों को नमन, सज्जनों की संगति, सच्चारित्रवानों के गुणों की कथा, परदोष-कथन में मौन, विवाद में मौन, सब जीवों के साथ प्रिय व हितकर वचन, अपने

आत्मस्वरूप की भावना इन सबकी मुझे प्राप्ति हो।

तव पादौ मम हृदये, मम हृदयं तव पदद्वये लीनम्।
तिष्ठतु जिनेन्द्र! तावद् यावन् निर्वाण-सम्प्राप्तिः ॥२॥

अर्थ—हे जिनेन्द्र! मुझे जब तक मुक्ति प्राप्त न हो तब तक आपके दोनों चरण-कमल मेरे हृदय में विराजमान रहें, मेरा हृदय आपके चरण-कमलों में लीन रहे।

अक्खर-पयत्थ-हीणं, मत्ताहीणं च जं मए भणियं।
तं खमउ णाणदेव! य, मज्झवि दुक्खक्खयं दिंतु ॥३॥

अर्थ—हे कैवल्यज्योतिमयी ज्ञानदेव! मेरे द्वारा जो भी अक्षर मात्रा-पद अर्थ में हीनाधिक कहा गया हो उसे क्षमा कीजिये और मेरे दुखों का क्षय कीजिये।

इच्छामि भंते! समाहिभत्ति-काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं, रयणत्तय-सरूव-परमप्पज्झाण-लक्खण-समाहि भत्तीए णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुण-संपत्ति होउ मज्झं।

अर्थ—हे भगवन्! मैंने समाधिभक्ति का कायोत्सर्ग किया, तत्सम्बन्धी आलोचना करने की मैं इच्छा करता हूँ। मैं रत्नत्रयस्वरूप परमात्मा का ध्यान है लक्षण जिसका ऐसी समाधिभक्ति की सदा अर्चना, पूजा करता हूँ, वन्दना करता हूँ, नमस्कार करता हूँ, मेरे दुःखों का क्षय हो, कर्मों का क्षय हो, रत्नत्रय का लाभ हो, सुगति में गमन हो, सम्यक् प्रकार आधिव्याधि-उपाधिरहित समाधिपूर्वक मरण हो मुझे जिनेन्द्रदेव के गुणरूप सम्पत्ति की प्राप्ति हो।

[इति श्रावक प्रतिक्रमण समाप्तं]

❑ ❑ ❑

सिद्धभक्ति

(स्रग्धरा)

सिद्धानुद्धूत-कर्मप्रकृति-समुदयान् साधितात्म-स्वभावान्
वन्दे सिद्धि - प्रसिद्ध्यै तदनुपम-गुण-प्रग्रहाकृष्टि-तुष्टः।
सिद्धिः स्वात्मोपलब्धिः प्रगुण-गुण-गणोच्छादि-दोषापहाराद्
योग्योपादान-युक्त्या दृषद इह यथा हेम-भावोपलब्धिः ॥१॥

अन्वयार्थ—(तत्-अनुपम-गुण-प्रग्रह-आकृष्टि-तुष्टः) मैं (पूज्यपाद आचार्य) उन सिद्धों के अनुपम गुण रूपी रस्सी से आकृष्ट हो सन्तुष्ट होता हुआ **(सिद्धि-प्रसिद्ध्यै)** उसी सिद्धि की प्राप्ति के लिए **(सिद्धान्)** उन सिद्धों की **(वन्दे)** वन्दना करता हूँ **(उद्धूत-कर्म-प्रकृति-समुदयान्)** जिन्होंने कर्मप्रकृतियों के समूह को धो दिया है **(साधितात्म-स्वभावान्)** जिन्होंने अपने-आत्म स्वभाव को प्राप्त कर लिया है। **(प्रगुण-गुण-गणोच्छादि-दोषापहारात्)** उत्कृष्ट गुण समूह को आच्छादित करने वाले दोषों के दूर हो जाने से **(स्वात्मोपलब्धिः)** अपने आत्मा की उपलब्धि होना **(सिद्धिः)** सिद्धि कहलाती है। **(यथा)** जिस प्रकार **(इह)** इस लोक में **(योग्योपादान-युक्त्या)** योग्य उपादान से सहित होने से **(दृषदः)** स्वर्णपाषाण की **(हेम-भावोपलब्धिः)** सुवर्ण भाव से उपलब्धि होती है।

नाभावः सिद्धि-रिष्टा, न निज-गुण-हतिस्तत् तपोभिर्न युक्ते-
रस्त्यात्मानादिबद्धः स्वकृतजफलभुक्तत्क्षयान् मोक्षभागी।
ज्ञाता द्रष्टा स्वदेह-प्रमिति-रुपसमाहार-विस्तार-धर्मा
ध्रौव्योत्पत्ति-व्ययात्मा, स्वगुणयुत इतो, नान्यथा साध्यसिद्धिः ॥२॥

अन्वयार्थ—(अभावः) आत्मा का अभाव है, ऐसी **(सिद्धिः)** सिद्धि **(न इष्टा)** इष्ट नहीं है। **(निजगुणहतिः)** अपने गुणों का नाश **(तत्तपोभिः)** उन तप आदि के द्वारा भी **(न)** नहीं होता है, **(न युक्तेः)** क्योंकि यह युक्ति से सिद्ध नहीं है। **(आत्मा)** आत्मा **(अस्ति)** है। **(अनादिबद्धः)** वह अनादिकाल से बद्ध है। **(स्वकृतजफलभुक्)** वह अपने कर्म से उत्पन्न फलों का भोक्ता है। **(तत्क्षयात्)** उन कर्मों के क्षय से **(मोक्षभागी)** मोक्ष को प्राप्त होता है। **(ज्ञाता-द्रष्टा)** वह आत्मा ज्ञान दर्शन स्वभाव वाला

है। **(स्वदेह-प्रमितिः)** वह आत्मा अपने शरीर प्रमाण है। **(उपसमाहार-विस्तार-धर्मा)** वह संकोच-विस्तार स्वभाव वाला है। **(ध्रौव्योत्पत्ति-व्ययात्मा)** वह ध्रौव्य, उत्पाद, व्यय रूप है। **(स्वगुण-युतः)** वह अपने गुणों से सहित है। **(इतः अन्यथा)** इससे अन्य प्रकार से **(साध्य-सिद्धिः न)** साध्य की सिद्धि नहीं है।

स त्वन्तर्बाह्य - हेतु - प्रभव-विमल-सद्दर्शन-ज्ञान-चर्या-सम्पद्धेति-प्रघात-क्षत-दुरिततया व्यञ्जिताचिन्त्य-सारैः।
कैवल्यज्ञानदृष्टि-प्रवर-सुख-महावीर्य - सम्यक्त्वलब्धि-ज्योतिर्वातायनादि-स्थिर-परमगुणै - रद्भुतैर्भासमानः ॥३॥

अन्वयार्थ—(तु) तथा **(स)** वह आत्मा **(अन्तर्बाह्य-हेतु-प्रभव-विमल-सद्दर्शन-ज्ञान-चर्यासंपत्-हेति-प्रघात-क्षत-दुरिततया)** अन्तरङ्ग-बहिरङ्ग कारणों से उत्पन्न निर्मल-सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की सम्पत्तिरूपी शस्त्र के तीव्र घात से पाप कर्मों के क्षय हो जाने से **(व्यञ्जिता-चिन्त्यसारैः)** अचिन्त्य सार (फल) प्रकट होने के साथ **(कैवल्यज्ञानदृष्टि-प्रवर-सुख-महावीर्य-सम्यक्त्वलब्धि-ज्योतिर्वातायनादिस्थिर-परमगुणैः-अद्भुतैः)** केवलज्ञान, केवलदर्शन, उत्कृष्टसुख, महाशक्ति, सम्यक्त्व, लब्धि, भामण्डल, चँवर आदि अद्भुत उत्कृष्ट गुणों से **(भासमानः)** शोभायमान होता है।

जानन् पश्यन् समस्तं सम-मनुपरतं सम्प्रतृप्यन् वितन्वन्
धुन्वन् ध्वान्तं नितान्तं निचित-मनुसभं प्रीणयन्नीशभावम्।
कुर्वन् सर्व-प्रजाना-मपर-मभिभवन् ज्योति-रात्मानमात्मा
आत्मन्येवात्मनाऽसौ क्षण-मुपजनयन् सत्स्वयम्भूः प्रवृत्तः ॥४॥

अन्वयार्थ— (समं) एक साथ **(समस्तं)** समस्त पदार्थों को **(जानन् पश्यन्)** जानते देखते हुए **(अनुपरतं)** निरन्तर **(सम्प्रतृप्यन्)** सुख से सन्तुष्ट होते हुए **(वितन्वन्)** विस्तार को प्राप्त करते हुए **(नितान्तं निचितं)** अत्यन्त खचित **(ध्वान्तं)** मोह अन्धकार को **(धुन्वन्)** दूर करते हुए **(अनुसभं)** सम्पूर्ण सभा को **(प्रीणयन्)** प्रसन्न करते हुए **(सर्वप्रजानां)** समस्त प्रजा का **(ईशभावं)** स्वामित्व **(कुर्वन्)** करते हुए **(अपरं ज्योतिः)** तथा अन्य प्रकाशमान पदार्थों की ज्योति को **(अभिभवन्)** तिरस्कृत करते

हुए **(हि)** निश्चय से **(आत्मानं)** आत्मा को **(आत्मनि)** आत्मा में **(एव)** ही **(आत्मना)** अपनी आत्मा के द्वारा **(उपजनयन्)** प्राप्त करते हुए **(क्षणं)** क्षण भर में **(असौ आत्मा)** वह आत्मा **(सत् स्वयम्भूः)** समीचीन स्वयम्भू **(प्रवृत्तः)** हो जाता है। क्या करते हुए वह स्वयम्भू हुए हैं, यह कहते हैं।

छिन्दन् शेषानशेषान्- निगल-बल-कलींस्तै-रनन्त-स्वभावैः सूक्ष्मत्वाग्र्यावगाहा- गुरु-लघुक-गुणैः, क्षायिकैः शोभमानः। अन्यैश्चान्य-व्यपोह- प्रवण-विषय-सम्प्राप्ति-लब्धि-प्रभावै- रूर्ध्वं व्रज्यास्वभावात् समय-मुपगतो धाम्नि सन्तिष्ठतेऽग्र्ये ॥५॥

अन्वयार्थ—वह आत्मा **(शेषान्)** शेष बची **(अशेषान्)** समस्त **(निगल-बल-कलीन्)** बेड़ी के समान बलवान कर्म प्रकृतियों को **(छिन्दन्)** नष्ट करते हुए **(तैः अनन्तस्वभावैः)** उस अनन्त स्वभाव के साथ **(क्षायिकैः)** क्षायिक **(सूक्ष्मत्वाग्र्या-वगाहा-गुरुलघुकगुणैः)** सूक्ष्मत्व, अग्र्यावगाह, अगुरुलघु गुणों से **(च)** एवं **(अन्यैः)** अन्य **(अन्यव्यपोह-प्रवण-विषय-सम्प्राप्ति-लब्धि-प्रभावैः)** अवशिष्ट इतर कर्म प्रकृतियों के विनाश से स्वात्मा को प्राप्ति की महिमा के प्रभाव से **(शोभमानः)** शोभित होता है। **(ऊर्ध्वं व्रज्यास्वभावात्)** ऊर्ध्वगमन स्वभाव से **(समय-मुपगतः)** एक समय में **(अग्र्ये धाम्नि)** लोक के अग्र स्थान पर **(सन्तिष्ठते)** स्थित हो जाता है।

अन्याकाराप्ति-हेतु-र्न च भवति परो येन तेनाल्प-हीनः प्रागात्मोपात्त-देह- प्रति-कृति रुचिराकार एव ह्यमूर्तः। क्षुत्-तृष्णा-श्वास-कास-ज्वरमरण-जरानिष्ट-योग-प्रमोह- व्यापत्याद्युग्र-दुःख-प्रभवभवहतेः कोऽस्य सौख्यस्य माता ॥६॥

अन्वयार्थ— (येन) चूँकि वह सिद्ध भगवान् **(परः)** दूसरे किसी **(अन्याकाराप्तिहेतुः)** अन्य आकार की प्राप्ति में कारण **(न च)** नहीं **(भवति)** होता है **(तेन)** इसलिए **(अल्पहीनः)** वे कुछ कम **(प्राक्-आत्म-उपात्त-देह-प्रतिकृति-रुचिरा-कारः एव)** पहले प्राप्त शरीर की प्रतिकृति रूप मनोहर आकार वाले ही होते हैं। **(हि अमूर्तः)** वे निश्चय से अमूर्तिक होते हैं। **(क्षुत्-तृष्णा-श्वास-कास-ज्वर-**

मरणजरा-निष्ट-योग-प्रमोह-व्यापत्त्या-द्युग्र-दुःख-प्रभव-भव-हतेः) भूख, प्यास, श्वास, खाँसी, ज्वर, मरण, बुढ़ापा, अनिष्ट, संयोग, तीव्र मोह, व्यापत्ति आदि उग्र दुःखों से उत्पन्न संसार का नाश हो जाने से **(अस्य सौख्यस्य)** इन सिद्ध भगवान् के सुख को **(माता)** जानने वाला **(कः)** कौन है ? अर्थात् कोई नहीं।

आत्मोपादान-सिद्धं, स्वय-मतिशय-वद्- वीत-बाधं विशालं,
वृद्धि-ह्रास-व्यपेतं विषय-विरहितं निःप्रतिद्वन्द्व-भावम्।
अन्य-द्रव्यानपेक्षं निरुपममपितं शाश्वतं सर्व-कालं
उत्कृष्टानन्त-सारं परम-सुखमतस्तस्य सिद्धस्य जातम् ॥७॥

अन्वयार्थ— (अतः) इसलिए **(तस्य सिद्धस्य)** उन सिद्ध भगवान् का **(परमसुखं)** श्रेष्ठ सुख **(आत्मोपादानसिद्धं)** अपने आत्म उपादान से उत्पन्न हुआ है **(स्वयमतिशयवत्)** स्वयं अतिशय वाला है **(वीतबाधं)** बाधा से रहित है **(विशालं)** बहुत विस्तृत है **(वृद्धिह्रास-व्यपेतं)** हीनाधिकता से रहित है, **(विषयविरहितं)** विषयों से रहित है **(निःप्रति-द्वन्द्वभावं)** प्रतिपक्षी भाव से रहित है **(अन्यद्रव्यानपेक्षं)** अन्य द्रव्य की अपेक्षा नहीं रखने वाला है, **(निरुपमं)** उपमा रहित है **(अमितं)** माप रहित है **(शाश्वतं)** स्थायी है **(सर्वकालं)** हमेशा रहने वाला **(उत्कृष्टानन्तसारं)** उत्कृष्ट-अनन्त सार वाला **(जातम्)** होता है। उनका सुख किन विशिष्टताओं वाला है, यह कहते हैं–

नार्थः क्षुत्-तृट्-विनाशाद्, विविध-रसयुतै- रन्न-पानै-रशुच्या
नास्पृष्टे-र्गन्ध-माल्यै- र्न हि मृदुशयनै-र्ग्लानि-निद्राद्यभावात्।
आतङ्कार्ते-रभावे तदुपशमन- सद्- भेषजानर्थतावद्
दीपानर्थक्य-वद् वा व्यपगत-तिमिरे दृश्यमाने समस्ते ॥८॥

अन्वयार्थ—(क्षुत्-तृट्-विनाशात्) भूख-प्यास का नाश हो जाने से **(विविधरसयुतैः)** अनेक प्रकार के रसों से युक्त **(अन्नपानैः)** भोजन-पानी का **(न अर्थः)** कोई प्रयोजन नहीं है। **(अशुच्या)** अशुचि से **(अस्पृष्टेः)** स्पर्श न होने से **(गन्धमाल्यैः)** गन्धमाला से **(न)** कोई अर्थ नहीं है। **(ग्लानिनिद्राद्यभावात्)** घृणा, निद्रा आदि का अभाव होने से **(मृदुशयनैः)** कोमल शय्या से **(न हि)** कोई प्रयोजन नहीं है। **(वा)** जिस

प्रकार **(आतङ्कार्ते-रभावे)** रोगजन्य पीड़ा का अभाव होने से **(तदुपशमन-सद्भेषजानर्थतावत्)** उसे शान्त करने वाली अच्छी औषधि अप्रयोजन की तरह है। **(व्यपगततिमिरे)** अन्धकार के मिट जाने पर **(समस्ते दृश्यमाने)** समस्त पदार्थ दिखाई देने से **(दीपानर्थक्यवत्)** दीपक भी निरर्थक के समान है।

तादृक्-सम्पत्-समेता विविध-नय-तपः-संयम-ज्ञान-दृष्टि - चर्या-सिद्धाः समन्तात् प्रवितत्-यशसो विश्व-देवाधि-देवाः। भूता भव्या भवन्तः सकल-जगति ये स्तूयमाना विशिष्टैस् तान् सर्वान् नौम्यनन्तान् निजिगमिषुरं तत्स्वरूपं त्रिसन्ध्यम् ॥९॥

अन्वयार्थ— (ये) जो **(तादृक्-सम्पत-समेताः)** उपर्युक्त सम्पत्ति से सहित हैं **(विविध-नय-तपः संयम-ज्ञान-दृष्टि-चर्या-सिद्धाः)** जो अनेक प्रकार के नय, तप, संयम, ज्ञान, सम्यग्दर्शन और चारित्र से सिद्ध हुए हैं **(समन्तात् प्रविततयशसः)** जिनका यश सब ओर फैला है **(विश्व-देवाधिदेवाः)** जो समस्त देवों के भी देव हैं, **(भूताः)** जो भूतकाल में हो चुके हैं **(भव्याः)** जो भविष्य में होने योग्य हैं **(भवन्तः)** और जो वर्तमान में हो रहे हैं, **(सकलजगति)** समस्त संसार में जो **(विशिष्टैः)** विशिष्ट पुरुषों से **(स्तूयमानाः)** स्तुति को प्राप्त हुए हैं **(तान् सर्वान् अनन्तान्)** उन समस्त अनन्त सिद्धों को **(तत्स्वरूपं)** उनके स्वरूप को **(अरं)** शीघ्र ही **(निजिगमिषुः)** प्राप्त करने का इच्छुक मैं **(त्रिसन्ध्यम्)** तीनों संध्याओं में **(नौमि)** नमस्कार करता हूँ।

कृत्वा कायोत्सर्गं चतुरष्ट-दोष-विरहितं सुपरिशुद्धम्। अतिभक्तिसम्प्रयुक्तो यो वन्दते स लघु लभते परमसुखम् ॥१०॥

अन्वयार्थ—(अतिभक्तिसम्प्रयुक्तः) अत्यन्त भक्ति से प्रेरित हुआ **(यः)** जो **(चतुरष्टदोष-विरहितं)** बत्तीस दोषों से रहित **(सुपरिशुद्धं)** अतिशय शुद्ध निर्दोष **(कायोत्सर्गं कृत्वा)** कायोत्सर्ग करके **(वन्दते)** वन्दना करता है **(स)** वह **(लघु)** शीघ्र ही **(परमसुखम्)** श्रेष्ठ सुख को **(लभते)** प्राप्त होता है।

इच्छामि भंते। सिद्धभत्ति-काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं सम्म-णाण-सम्मदंसण-सम्मचरित्त-जुत्ताणं, अट्ठविहकम्म-विप्प-मुक्काणं, अट्ठगुण-संपण्णाणं, उड्ढलोयमत्थयम्मि पइट्ठियाणं, तवसिद्धाणं, णयसिद्धाणं, संजमसिद्धाणं, चरित्तसिद्धाणं, अतीताणागद-वट्टमाण-कालत्तय-सिद्धाणं, सव्व-सिद्धाणं, णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइ-गमणं, समाहि-मरणं, जिणगुण-संपत्ति होउ मज्झं।

अन्वयार्थ—(भंते!) हे भगवन्! **सिद्धभत्ति-काउस्सग्गो कओ** सिद्धभक्ति करके जो कायोत्सर्ग किया **(तस्स आलोचेउं इच्छामि)** उसमें लगे दोषों की आलोचना करने की मैं इच्छा करता हूँ **(सम्म-णाण-सम्मदंसण-सम्मचरित्त-जुत्ताणं)** जो सिद्ध भगवान् सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र से युक्त हैं (**अट्ठविह कम्ममुक्काणं)** आठ प्रकार के कर्मों से रहित हैं (**अट्ठगुणसंपण्णाणं)** आठ गुणों से सम्पन्न हैं **(उड्ढलोय-मत्थयम्मि पइट्ठियाणं)** ऊर्ध्वलोक के मस्तक पर जाकर विराजमान हैं **(तवसिद्धाणं)** तप सिद्धों को **(णयसिद्धाणं)** नय सिद्धों को **(संजम-सिद्धाणं)** संयम सिद्धों को **(चरित्तसिद्धाणं)** चारित्र सिद्धों को **(अतीता-णागद-वट्टमाण-कालत्तय-सिद्धाणं)** भूत-भविष्य व वर्तमान तीनों कालों में होने वाले सिद्धों को **(सव्व-सिद्धाणं)** समस्त सिद्ध परमात्माओं को **(सया णिच्चकालं)** सदा काल **(अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि)** अर्चा करता हूँ, पूजा करता हूँ, वंदना करता हूँ, नमस्कार करता हूँ **(दुक्खक्खओ)** मेरे दुःखों का क्षय हो **(कम्मक्खओ)** मेरे कर्मों का क्षय हो **(बोहिलाओ)** मुझे बोधि का लाभ हो (**सुगइगमणं)** मेरा सुगति में गमन हो **(समाहिमरणं)** मेरा समाधिमरण हो तथा **(जिणगुण-संपत्ति होउ मज्झं)** जिनेन्द्र भगवान् के गुण रूपी सम्पत्ति मुझे प्राप्ति हो।

❑ ❑ ❑

श्रुतभक्ति

स्तोष्ये सञ्ज्ञानानि परोक्षप्रत्यक्षभेदभिन्नानि।
लोकालोकविलोकन-लोलितसल्लोक-लोचनानि सदा ॥१॥

अन्वयार्थ—(लोकालोक-विलोकन-लोलित-सल्लोक-लोचनानि) जो लोक और अलोक को देखने में उत्कण्ठित हैं, ऐसे सत्पुरुषों के नेत्र स्वरूप **(परोक्ष-प्रत्यक्षभेदभिन्नानि)** परोक्ष और प्रत्यक्ष भेद वाले **(सञ्ज्ञानानि)** सम्यग्ज्ञानों की **(सदा)** हमेशा **(स्तोष्ये)** मैं स्तुति करूँगा।

अभिमुखनियमितबोधन - माभिनिबोधिक-मनिन्द्रियेन्द्रियजम्।
बह्वाद्यवग्रहादिककृत - षट्त्रिंशत् - त्रिशत-भेदम् ॥२॥
विविधर्द्धिबुद्धि-कोष्ठस्फुट - बीजपदानुसारि-बुद्ध्यधिकं।
सम्भिन्न-श्रोतृ-तया, सार्धं श्रुत-भाजनं वन्दे ॥३॥

अन्वयार्थ—(अभिमुखनियमित-बोधनं) जो अभिमुख हुए नियमित विषय को जानता है **(अनिन्द्रियेन्द्रियजं)** जो मन और इन्द्रियों से उत्पन्न होता है **(बह्वाद्यवग्रहा-दिक-कृत-षट्त्रिंशत्-त्रिशतभेदम्)** जो बहु आदि पदार्थ और अवग्रह आदिज्ञान के द्वारा तीन सौ छत्तीस भेद वाला है **(विविधर्द्धि बुद्धि-कोष्ठ-स्फुट-बीज-पदानुसारि-बुद्ध्यधिकम्)** जो अनेक ऋद्धियों से युक्त बुद्धि, कोष्ठ, स्फुट बीज, पदानुसारी बुद्धि से परिपूर्ण है **(सम्भिन्नश्रोतृतया सार्धं)** तथा संभिन्न श्रोतृ ऋद्धि से सहित है **(श्रुतभाजनं)** जो श्रुत ज्ञान का आधार है **(आभिनिबोधिकं)** ऐसे मतिज्ञान की **(वन्दे)** मैं वन्दना करता हूँ।

श्रुतमपि जिनवर-विहितं गणधररचितं द्व्यनेकभेदस्थम्।
अङ्गाङ्ग-बाह्य-भावित-मनन्त-विषयं नमस्यामि ॥४॥

अन्वयार्थ— (जिनवरविहितं) जिनेन्द्र भगवान् के द्वारा कहे हुए **(गणधर-रचितं)** गणधर देव द्वारा रचित **(द्व्यनेकभेदस्थम्)** दो और अनेक भेदों में स्थित **(अङ्गाङ्गबाह्यभावित-मनन्तविषयं)** अंग और अंग बाह्य से युक्त अनन्त विषय वाले **(श्रुतमपि)** श्रुतज्ञान को भी **(नमस्यामि)** मैं नमस्कार करता हूँ।

पर्यायाक्षर-पद-सङ्घात-प्रतिपत्तिकानुयोग - विधीन्।
प्राभृतक-प्राभृतकं प्राभृतकं वस्तु-पूर्वं च ॥५॥
तेषां समासतोऽपि च विंशतिभेदान् समश्नुवानं तत्।
वन्दे द्वादशधोक्तं गभीर-वर-शास्त्र-पद्धत्या ॥६॥

अन्वयार्थ—(पर्यायाक्षर-पद-सङ्घात-प्रतिपत्तिका-नुयोग-विधीन्) पर्याय, अक्षर, पद, संघात, प्रतिपत्तिक, अनुयोग विधि को **(च)** और **(प्राभृतक-प्राभृतकं)** प्राभृतक-प्राभृतक **(प्राभृतकं)** प्राभृतक **(वस्तु-पूर्वं)** वस्तु, पूर्व **(तेषां समासतः अपि च)** उन्हीं के समास से होने वाले भेद मिलकर **(विंशतिभेदान्)** बीस भेदों को **(समश्नुवानं)** व्याप्त करने वाले तथा **(गभीर-वर-शास्त्र-पद्धत्या)** गंभीर-श्रेष्ठ शास्त्र की पद्धति से **(द्वादशधा)** बारह प्रकार के **(उक्तं)** कहे हुए **(तत्)** उस श्रुत की **(वन्दे)** मैं वन्दना करता हूँ।

आचारं सूत्रकृतं स्थानं समवाय-नामधेयं च।
व्याख्या-प्रज्ञप्तिं च ज्ञातृकथोपासकाध्ययने ॥७॥
वन्देऽन्तकृद्दश-मनुत्तरोपपादिकदशं दशावस्थम्।
प्रश्नव्याकरणं हि विपाकसूत्रं च विनमामि ॥८॥

अन्वयार्थ— (आचारं) आचारांङ्ग **(सूत्रकृतं)** सूत्रकृताङ्ग **(स्थानं)** स्थानाङ्ग **(च)** और **(समवायनामधेयं)** समवाय नाम का अङ्ग **(व्याख्या-प्रज्ञप्तिं)** व्याख्या प्रज्ञप्ति अंग **(च)** तथा **(ज्ञातृकथोपासकाध्ययने)** ज्ञातृकथाङ्ग, उपासकाध्ययन अङ्ग **(अन्तकृद्दशं)** अन्तकृद्दशाङ्ग **(अनुत्तरोपपादिकदशं)** तथा अनुत्तरोपपादिक दशाङ्ग की **(दशावस्थं)** दश संख्या सहित **(वन्दे)** मैं वन्दना करता हूँ। **(प्रश्नव्याकरणं)** प्रश्नव्याकरणाङ्ग **(च)** और **(विपाकसूत्रं)** विपाक सूत्र को मैं **(हि)** निश्चय से **(विनमामि)** नमस्कार करता हूँ।

परिकर्म च सूत्रं च स्तौमि प्रथमानुयोगपूर्वगते।
सार्द्धं चूलिकयापि च पञ्चविधं दृष्टिवादं च ॥९॥

अन्वयार्थ—(परिकर्म च) परिकर्म **(सूत्रं च)** सूत्र **(प्रथमानुयोगपूर्वगते)** प्रथमानुयोग, पूर्वगत **(च चूलिकया सार्द्धं)** चूलिका के साथ **(पञ्चविधं दृष्टिवादं चापि)** पाँच प्रकार के दृष्टिवाद अङ्ग की **(स्तौमि)** मैं स्तुति

करता हूँ।

पूर्वगतं तु चतुर्दशधोदित-मुत्पादपूर्व-माद्यमहम्।
आग्रायणीय-मीडे पुरु-वीर्यानुप्रवादं च ॥१०॥
सन्ततमहमभिवन्दे तथास्ति-नास्ति प्रवादपूर्वं च।
ज्ञानप्रवाद-सत्यप्रवाद-मात्मप्रवादं च ॥११॥
कर्मप्रवाद-मीडेऽथ प्रत्याख्यान-नामधेयं च।
दशमं विद्याधारं पृथुविद्यानुप्रवादं च ॥१२॥
कल्याणनामधेयं प्राणावायं क्रियाविशालं च।
अथ लोकबिन्दुसारं वन्दे लोकाग्रसारपदम् ॥१३॥

अन्वयार्थ—(पूर्वगतं) पूर्वगत **(तु)** तो **(चतुर्दशधा)** चौदह प्रकार का **(उदितं)** कहा है। **(आद्यं)** उसमें पहले **(उत्पादपूर्वं)** उत्पाद पूर्व की **(आग्रायणीयं)** आग्रायणीय पूर्व को **(च)** और **(पुरुवीर्यानुप्रवादं)** वीर्यानुप्रवाद की **(अहं)** मैं **(ईडे)** स्तुति करता हूँ। **(तथा)** तथा **(अस्ति-नास्ति-प्रवादपूर्वं)** अस्ति नास्ति प्रवाद पूर्व की, **(ज्ञानप्रवाद-सत्यप्रवादं च)** ज्ञानप्रवाद, सत्यप्रवाद पूर्व को **(च)** और **(आत्मप्रवादं)** आत्मप्रवाद की **(सन्ततं)** निरन्तर **(अहं)** मैं **(अभिवन्दे)** वन्दना करता हूँ। **(अथ)** फिर **(कर्मप्रवादं)** कर्म प्रवाद, **(प्रत्याख्यान-नामधेयं च)** प्रत्याख्यान नाम के पूर्व की और **(विद्याधारं)** विद्याओं के आधारभूत **(दशमं)** दशवे **(पृथु-विद्यानुप्रवादं च)** विस्तृत विद्यानुप्रवाद की **(ईडे)** मैं स्तुति करता हूँ। **(अथ)** पश्चात् **(कल्याणनामधेयं)** कल्याण नामका पूर्व **(प्राणावायं)** प्राणावाय पूर्व **(क्रियाविशालं च)** क्रिया विशाल और **(लोकाग्रसारपदं)** लोक के अग्रभाग मोक्ष का सारभूत **(लोकबिन्दुसारं)** लोकबिन्दुसार पूर्व की **(वन्दे)** मैं वन्दना करता हूँ।

दश च चतुर्दश चाष्टावष्टादश च द्वयोर्द्विषट्कं च।
षोडश च विंशतिं च त्रिंशतमपि पञ्चदश च तथा ॥१४॥
वस्तूनि दश दशान्येष्वनुपूर्वं भाषितानि पूर्वाणाम्।
प्रतिवस्तु प्राभृतकानि विंशतिं विंशतिं नौमि ॥१५॥

अन्वयार्थ—(दश) दश **(च चतुर्दश)** चौदह **(च अष्टौ)** आठ **(अष्टादश**

च) अठारह, **(द्वयोः)** दो पूर्वों की **(द्विषट्कं च)** बारह बारह **(षोडश च)** सोलह **(विंशतिं च)** बीस **(त्रिंशतमपि)** तीस **(पञ्चदश च)** पन्द्रह **(तथा)** तथा **(अन्येषु)** अन्य शेष में **(दश-दश)** दस-दस **(वस्तूनि)** वस्तुएँ **(अनुपूर्वं)** क्रम से **(पूर्वाणां)** पूर्वों की **(भाषितानि)** कहीं हैं। **(प्रतिवस्तु)** वस्तु के **(प्राभृतकानि)** प्राभृतक **(विंशतिं विंशतिं)** बीस-बीस हैं, इन सभी को मैं **(नौमि)** नमस्कार करता हूँ।

पूर्वान्तं ह्यपरान्तं ध्रुव-मध्रुव-च्यवन-लब्धि-नामानि।
अध्रुव-सम्प्रणिधिं चाप्यर्थं भौमावयाद्यं च ॥१६॥
सर्वार्थकल्पनीयं ज्ञानमतीतं त्वनागतं कालम्।
सिद्धि-मुपाध्यं च तथा चतुर्दशवस्तूनि द्वितीयस्य ॥१७॥

अन्वयार्थ—(पूर्वान्तं) पूर्वान्त **(हि अपरान्तं)** अपरान्त **(ध्रुवं)** ध्रुव **(अध्रुवच्यवन-लब्धिनामानि)** अध्रुव, च्यवनलब्धि **(अध्रुवसम्प्रणिधिं)** अध्रुवसम्प्रणिधि **(चापि)** और **(अर्थं)** अर्थ **(भौमावयाद्यं च)** भौमावयाद्य **(सर्वार्थकल्पनीयं)** सर्वार्थकल्पनीय **(ज्ञानं)** ज्ञान **(अतीतं तु अनागतं कालं)** अतीत काल, अनागत काल **(सिद्धिं)** सिद्धि **(उपाध्यं च तथा)** तथा उपाध्य **(द्वितीयस्य)** द्वितीय पूर्व की **(चतुर्दशवस्तूनि)** चौदह वस्तुएँ हैं।

पञ्चमवस्तु-चतुर्थं - प्राभृतकस्यानुयोग-नामानि।
कृतिवेदने तथैव स्पर्शन-कर्मप्रकृतिमेव ॥१८॥
बन्धन - निबन्धन - प्रक्रमानुपक्रम - मथाभ्युदय-मोक्षौ।
संक्रमलेश्ये च तथा लेश्यायाः कर्मपरिणामौ ॥१९॥
सात-मसातं दीर्घं ह्रस्वं भवधारणीय-संज्ञं च।
पुरुपुद्गलात्मनाम च निधत्तमनिधत्तमभिनौमि ॥२०॥
सनिकाचितमनिकाचित-मथकर्मस्थितिक-पश्चिमस्कन्धौ।
अल्पबहुत्वं च यजे तद्द्वाराणां चतुर्विंशम् ॥२१॥

अन्वयार्थ—(पञ्चमवस्तुचतुर्थं प्राभृतकस्य) पंचम वस्तु के चतुर्थ प्राभृतक के **(अनुयोग- नामानि)** अनुयोग नाम इस प्रकार हैं। **(कृतिवेदने)** कृति, वेदना **(तथैव)** तथा **(स्पर्शनकर्मप्रकृतिं एव)** स्पर्शन, कर्म प्रकृति **(बन्धननिबन्धनप्रक्रमानुपक्रमं)** बन्धन, निबन्धन, प्रक्रम, अनुपक्रम

(अथ) और **(अभ्युदयमोक्षौ)** अभ्युदय, मोक्ष **(संक्रमलेश्ये)** संक्रम, लेश्या **(तथा च)** तथा **(लेश्यायाः कर्मपरिणामौ)** लेश्याकर्म, लेश्या परिणाम **(सातमसातं)** सातु असात **(दीर्घं)** दीर्घ **(ह्रस्वं)** ह्रस्व **(भव-धारणीयसंज्ञं च)** भवधारणीय **(पुरुपुद्गलात्मनाम च)** श्रेष्ठ पुद्गलात्म **(निधत्तं अनिधत्तं)** निधत्त, अनिधत्त को **(अभिनौमि)** मैं नमस्कार करता हूँ। **(अथ)** फिर **(सनिकाचितं अनिकाचितं)** निकाचित सहित की, अनिकाचित की **(कर्मस्थितिकपश्चिमस्कन्धौ)** कर्म स्थिति, पश्चिमस्कन्ध **(च)** और **(तद्द्वाराणां चतुर्विंशं)** इन चौबीस अनुयोग द्वारों के **(अल्पबहुत्वं च)** अल्प बहुत्व की **(यजे)** मैं पूजा करता हूँ।

कोटीनां द्वादशशतमष्टापञ्चाशतं सहस्राणाम्।
लक्षत्र्यशीतिमेव च पञ्च च वन्दे श्रुतपदानि ॥२२॥

अन्वयार्थ– (द्वादशशतं कोटीनां) एक सौ बारह करोड़ **(लक्षत्र्यशीतिं एव)** तेरासी लाख **(अष्टापञ्चाशतं सहस्राणां)** अट्ठावन हजार **(च)** और **(पञ्च च)** पाँच **(श्रुतपदानि)** श्रुत के पदों की **(वन्दे)** मैं वन्दना करता हूँ।

षोडशशतं चतुस्त्रिंशत् कोटीनां त्र्यशीति-लक्षाणि।
शतसंख्याष्टासप्तति- मष्टाशीतिं च पदवर्णान् ॥२३॥

अन्वयार्थ– (षोडशशतं चतुस्त्रिंशत् कोटीनां) सोलह सौ चौंतीस करोड़ **(त्र्यशीति-लक्षाणि)** तेरासी लाख **(शतसंख्याष्टा सप्ततिं)** अठहत्तर सौ **(अष्टाशीतिं च)** अठासी **(पदवर्णान्)** प्रत्येक पद की/वर्ण संख्या की मैं स्तुति करता हूँ।

सामायिकं चतुर्विंशति-स्तवं वन्दनां प्रतिक्रमणम्।
वैनयिकं कृतिकर्म च पृथुदशवैकालिकं च तथा ॥२४॥
वर-मुत्तराध्ययन-मपि कल्पव्यवहार-मेव-मभिवन्दे।
कल्पाकल्पं स्तौमि महाकल्पं पुण्डरीकं च ॥२५॥
परिपाट्या प्रणिपतितोऽस्म्यहं महापुण्डरीकनामैव।
निपुणान्यशीतिकं च प्रकीर्णकान्यङ्ग-बाह्यानि ॥२६॥

अन्वयार्थ–(सामायिकं) सामायिक **(चतुर्विंशतिस्तवं)** चतुर्विंशति स्तवन **(वन्दनां)** वन्दना **(प्रतिक्रमणं)** प्रतिक्रमण **(वैनयिकं)** वैनयिक

(कृतिकर्म च) कृतिकर्म **(पृथुदश-वैकालिकं)** महान दशवैकालिक **(तथा च)** तथा **(वरं उत्तराध्ययनं अपि)** श्रेष्ठ उत्तराध्ययन को भी **(कल्पव्यहारं एवं)** और कल्पव्यवहार की भी मैं **(अभिवन्दे)** वन्दना करता हूँ। **(कल्पाकल्पं)** कल्पाकल्प **(महाकल्पं)** महाकल्प **(पुण्डरीकं च)** और पुण्डरीक की **(स्तौमि)** मैं स्तुति करता हूँ। **(महापुण्डरीकनाम एव)** महापुण्डरीक **(अशीतिकं)** और अशीतिक ये सभी **(निपुणानि)** सूक्ष्म अर्थ के प्रतिपादक **(प्रकीर्णकानि च अङ्गबाह्यानि)** प्रकीर्णक अंगबाह्य हैं। **(परिपाट्या)** क्रम से **(अहं)** मैं **(प्रणिपतितः अस्मि)** इन अंगों को प्रणाम करता हूँ।

पुद्गल-मर्यादोक्तं प्रत्यक्षं सप्रभेद-मवधिं च।
देशावधि - परमावधि - सर्वावधि-भेद-मभिवन्दे ॥२७॥

अन्वयार्थ— (पुद्गलमर्यादोक्तं) जिस ज्ञान में पुद्गल द्रव्य की मर्यादा कही है **(प्रत्यक्षं)** जो प्रत्यक्ष है। **(सप्रभेदं)** जो अनेक भेदों सहित हैं, **(देशावधि-परमावधि-सर्वावधि-भेदं च)** देशावधि, परमावधि तथा सर्वावधि भेद वाले उस **(अवधिं)** अवधिज्ञान की मैं **(अभिवन्दे)** वन्दना करता हूँ।

परमनसि स्थितमर्थं मनसा परिविद्य मन्त्रि-महितगुणम्।
ऋजुविपुल-मतिविकल्पं स्तौमि मनःपर्ययज्ञानम् ॥२८॥

अन्वयार्थ—(परमनसि) दूसरे के मन में **(स्थितं अर्थं)** स्थिति अर्थ को **(मनसा)** मन के द्वारा **(परिविद्य)** जानकर **(मन्त्रिमहितगुणं)** महर्षियों से पूजित गुण वाले **(ऋजुविपुलमतिविकल्पं)** ऋजुमति और विपुलमति भेद वाले **(मनःपर्ययज्ञानं)** मनःपर्ययज्ञान की **(स्तौमि)** मैं स्तुति करता हूँ।

क्षायिकमनन्तमेकं त्रिकाल-सर्वार्थ-युगपदवभासम्।
सकल-सुख-धाम सततं वन्देऽहं केवलज्ञानम् ॥२९॥

अन्वयार्थ— (क्षायिकं) जो क्षायिक है **(अनन्तं)** अनन्त है **(एकं)** एक है, **(त्रिकाल-सर्वार्थयुगपदवभासं)** तीन काल के समस्त पदार्थों को एक साथ जानता है। **(सकलसुखधाम)** समस्त सुखों का स्थान हैं। **(केवलज्ञानं)** ऐसे केवलज्ञान की **(अहं)** मैं **(सततं)** निरन्तर **(वन्दे)** वन्दना करता हूँ।

एवमभिष्टुवतो मे ज्ञानानि समस्त-लोक-चक्षूंषि।
लघु भवताज्ज्ञानर्द्धि-र्ज्ञानफलं सौख्य-मच्यवनम् ॥३०॥

अन्वयार्थ–(एवं) इस प्रकार **(समस्तलोकचक्षूंषि ज्ञानानि)** समस्त लोक को देखने के लिए नेत्र स्वरूप पाँचों ज्ञान की **(मे अभिष्टुवतः)** मुझ स्तुति करने वाले को **(ज्ञानर्द्धिः)** ज्ञान की ऋद्धि तथा **(ज्ञानफलं)** ज्ञान का फल **(अच्यवनं सौख्यं)** अविनाशी सुख **(लघु)** शीघ्र **(भवतात्)** होवे।

अञ्चलिका

इच्छामि भंते ! सुदभत्ति-काउस्सग्गो कओ तस्सा-लोचेउं, अंगोवंग-पइण्णए-पाहुडय-परियम्म-सुत्त-पढमाणिओग-पुव्वगय-चूलिया चेव सुत्तत्थय-थुइ-धम्मकहाइयं णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुण-संपत्ति होउ मज्झं।

अन्वयार्थ–(भंते!) हे भगवन्! मैंने **(सुदभत्ति-काउस्सग्गो कओ)** श्रुत भक्ति सम्बन्धी कायोत्सर्ग किया है **(तस्स आलोचेउं इच्छामि)** उसकी आलोचना करने की मैं इच्छा करता हूँ **(अंगोवंग-पइण्णए)** अङ्ग, उपाङ्ग, प्रकीर्णक **(पाहुडय)** प्राभृत **(परियम्म)** परिकर्म **(सुत्त)** सूत्र **(पढमाणि-ओग)** प्रथमानुयोग **(पुव्वगय)** पूर्वगत **(चूलिया)** चूलिका **(चेव)** तथा **(सुत्तत्थयथुइ)** सूत्र, स्तव, स्तुति व **(धम्मकहाइय)** धर्मकथा आदि **(णिच्चकालं)** नित्यकाल **(अंचेमि)** अर्चा करता हूँ **(पूजेमि)** पूजा करता हूँ **(वंदामि)** वंदना करता हूँ **(णमंसामि)** नमस्कार करता हूँ **(दुक्खक्खओ)** मेरे दुःखों का क्षय हो **(कम्मक्खओ)** मेरे कर्मों का क्षय हो **(बोहिलाओ)** मुझे बोधि का लाभ हो (**सुगइगमणं)** मेरा सुगति में गमन हो **(समाहिमरणं)** मेरा समाधिमरण हो तथा **(जिणगुण-संपत्ति होउ मज्झं)** जिनेन्द्र भगवान् के गुण रूपी सम्पत्ति मुझे प्राप्ति हो।

❑ ❑ ❑

चारित्रभक्ति

येनेन्द्रान् भुवन-त्रयस्य विलसत्-केयूर-हाराङ्गदान्
भास्वन्-मौलि - मणिप्रभा - प्रविसरोत्-तुङ्गोत्तमाङ्गान्नतान्।
स्वेषां पाद-पयोरुहेषु मुनयश् चक्रुः प्रकामं सदा
वन्दे पञ्चतयं तमद्य निगदन्-नाचार-मभ्यर्चितम् ॥१॥

अन्वयार्थ—(येन) जिसके द्वारा **(विलसत्केयूरहाराङ्गदान्)** शोभायमान हार और आभूषणों से सहित तथा **(भास्वन्मौलिमणिप्रभा-प्रविसरोत्-तुङ्गोत्तमाङ्गान्)** चमकते हुए मुकुटों की मणियों की प्रभा के प्रसार से ऊँचे उठे मस्तकों से सहित **(भुवनत्रयस्य)** तीन लोकों के **(इन्द्रान्)** इन्द्रों को **(मुनयः)** मुनिजन **(सदा)** हमेशा **(प्रकामं)** अच्छी तरह **(स्वेषां)** अपने **(पादपयोरुहेषु)** चरण कमलों में **(नतान् चक्रुः)** नम्रीभूत किये थे **(अद्य)** आज **(पंचतयं)** पाँच प्रकार के **(तं)** उस **(अभ्यर्चितं)** पूजनीय **(आचारं)** आचार का **(निगदन्)** कथन करता हुआ **(वन्दे)** मैं उसकी वन्दना करता हूँ।

अर्थ-व्यञ्जन-तद्द्वया-विकलता - कालोपधा-प्रश्रयाः
स्वाचार्याद्यनपह्नवो बहु-मतिश् चेत्यष्टधा व्याहृतम्।
श्रीमज्ज्ञाति-कुलेन्दुना भगवता तीर्थस्य कर्त्राऽञ्जसा
ज्ञानाचार-महं त्रिधा प्रणिपता-म्युद्धूतये कर्मणाम् ॥२॥

अन्वयार्थ— (अर्थ-व्यञ्जन तद्द्वयाविकलता) अर्थ अविकलता, व्यंजन, अविकलता तथा दोनों की अविकलता **(कालोपधाप्रश्रयाः)** काल, उपधा, विनय **(स्वाचार्याद्यनपह्नवः)** अपने आचार्य आदि का नाम नहीं छिपाना **(बहुमतिः च)** और बहुमान **(इति)** इस प्रकार **(अष्टधा)** आठ प्रकार से **(श्रीमज्ज्ञातिकुलेन्दुना)** श्रीमान् ज्ञाति वंश के चन्द्रमा **(भगवता तीर्थस्य)** भगवान महावीर जो कि तीर्थ के **(कर्त्रा)** कर्ता **(अञ्जसा)** स्पष्ट रूप से हैं उनके द्वारा **(व्याहृतं)** कहे गये **(ज्ञानाचारं)** ज्ञानाचार को **(कर्मणां)** कर्मों के **(उद्धूतये)** क्षय के लिए **(त्रिधा)** मन-वचन-काय तीन प्रकार से **(अहं)** मैं **(प्रणिपतामि)** नमस्कार करता हूँ।

शङ्का - दृष्टि - विमोह - काङ्क्षणविधि -व्यावृत्ति-सन्नद्धतां
वात्सल्यं विचिकित्सना-दुपरतिं धर्मोपबृंह-क्रियाम्।

शक्त्या शासन-दीपनं हित-पथाद् भ्रष्टस्य संस्थापनं
वन्दे दर्शन-गोचरं सुचरितं मूर्ध्ना नमन्नादरात् ॥३॥

अन्वयार्थ—(शङ्कादृष्टिविमोहकाङ्क्षणविधि-व्यावृत्ति-सन्नद्धतां) शंका और दर्शन मूढ़ता से रहित, आकांक्षा विधि से रहित होकर तत्पर होना **(वात्सल्यं)** वात्सल्य होना **(विचिकित्सनात् उपरतिं)** जुगुप्सा से दूर होना **(धर्मोपबृंहक्रियां)** धर्म बढ़ने की क्रिया करना **(शक्त्या)** शक्ति अनुसार **(शासनदीपनं)** शासन को दिखाना **(हितपथाद्)** हित पथ से **(भ्रष्टस्य)** भ्रष्ट हुए को **(संस्थापनं)** पुनः स्थापित करना ऐसे **(दर्शनगोचरं)** सम्यग्दर्शन के विषयभूत **(सुचरितं)** श्रेष्ठ आचार की **(आदरात्)** आदरपूर्वक **(मूर्ध्ना नमन्)** शिर से नमन करता हुआ **(वन्दे)** मैं वन्दना करता हूँ।

एकान्ते शयनोपवेशन-कृतिः सन्तापनं तानवं
संख्या-वृत्ति-निबन्धना-मनशनं विष्वाण-मर्द्धोदरम्।
त्यागं चेन्द्रिय-दन्तिनो मदयतः स्वादो रसस्यानिशं
षोढा बाह्यमहं स्तुवे शिवगति- प्राप्त्यभ्युपायं तपः ॥४॥

अन्वयार्थ—(एकान्ते) एकान्त में **(शयनोपवेशनकृतिः)** शयन करना, बैठना **(तानवं सन्तापनं)** शरीर सम्बन्धी तप करना **(संख्या वृत्तिनिबन्धनां)** वृत्ति की संख्या **(अनशनं)** अनशन **(अर्द्धोदरं विष्वाणं)** अर्ध उदर भोजन करना **(च)** और **(इन्द्रियदन्तिनः मदयतः)** इन्द्रियरूपी हाथियों को उन्मत्त करने वाले **(रसस्य स्वादोः)** रस के स्वाद का **(अनिशं)** सदा **(त्यागं)** त्याग करना इस प्रकार **(शिवगतिप्राप्त्यभ्युपायं)** शिवगति की प्राप्ति के उपायभूत **(षोढा)** छह प्रकार के **(बाह्यं तपः)** बाह्य तप की **(अहं)** मैं **(स्तुवे)** स्तुति करता हूँ।

स्वाध्यायः शुभकर्मणश्च्युतवतः सम्प्रत्यवस्थापनं
ध्यानं व्यापृति-रामयाविनि गुरौ वृद्धे च बाले यतौ।
कायोत्सर्जन-सत्क्रिया विनयइत्येवं तपः षड्विधं,
वन्देऽभ्यन्तर - मन्तरङ्ग - बलवद्-विद्वेषि-विध्वंसनम् ॥५॥

अन्वयार्थ— (स्वाध्यायः) स्वाध्याय करना **(शुभकर्मणः च्युतवतः)** शुभकर्म से च्युत हुए अपने को **(सम्प्रत्यवस्थापनं)** पुनः सम्यक् प्रकार से स्थापित करना **(ध्यानं)** ध्यान **(आमयाविनि)** रोगी **(गुरौ)** गुरु में

(च) और **(वृद्धे बाले यतौ)** वृद्ध तथा बालयति में **(व्यापृतिः)** सेवा कार्य **(कायोत्सर्जनसत्क्रिया)** कायोत्सर्ग क्रिया **(विनयः)** विनय **(इति एवं)** इस प्रकार से **(षड्विधं तपः)** छह प्रकार के **(अभ्यन्तरं)** अन्तरंग तप की मैं **(वन्दे)** वन्दना करता हूँ। **(अन्तरङ्ग-बलवद्विद्वेषिविध्वंसनं)** अन्तरंग के बलवान शत्रुओं को नष्ट करने वाला यह तप है।

सम्यग्ज्ञान-विलोचनस्य दधतः श्रद्धान-मर्हन्मते,
वीर्यस्या-विनि-गूहनेन तपसि, स्वस्य प्रयत्नाद्यतेः।
या वृत्तिस्तरणीव नौरविवरा, लध्वी भवोदन्वतो,
वीर्याचारमहं तमूर्जितगुणं, वन्दे सता-मर्चितम् ॥६॥

अन्वयार्थ—(अर्हन्मते) अरिहन्त भगवान् के मत में **(सम्यग्ज्ञान-विलोचनस्य)** सम्यग्ज्ञान रूपी नेत्र सहित **(श्रद्धानं दधतः)** श्रद्धान को धारण करने वाले **(यतेः)** यति के **(स्वस्य वीर्यस्य)** अपनी शक्ति को **(अविनिगूहनेन)** नहीं छिपाने से **(प्रयत्नात्)** प्रयत्न पूर्वक **(तपसि)** तप में **(या वृत्तिः)** जो प्रवृत्ति है वह **(भवोदन्वतः)** संसार सागर से **(तरणी)** पार करने वाली **(अविवरा)** छिद्ररहित **(लध्वी)** छोटी **(नौः इव)** नाव के समान है। **(तं)** उस **(ऊर्जितगुणं)** उत्कृट गुण सहित **(सतां अर्चितं)** सज्जनों से पूज्य **(वीर्याचारं)** वीर्याचार की **(अहं)** मैं **(वन्दे)** वन्दना करता हूँ।

तिस्रः सत्तम - गुप्तयस्तनुमनो - भाषानिमित्तोदयाः
पञ्चेर्यादि-समाश्रयाः समितयः पञ्चव्रतानीत्यपि।
चारित्रोपहितं त्रयोदशतयं पूर्वं न दृष्टं परै-
राचारं परमेष्ठिनो जिनपतेर् वीरं नमामो वयम् ॥७॥

अन्वयार्थ— (तनुमनोभाषानिमित्तोदयाः) शरीर, मन और वचन के निमित्त से होने वाली **(तिस्त्रः)** तीन **(सत्तमगुप्तयः)** श्रेष्ठ गुप्तियाँ **(ईर्यादि-समाश्रयाः)** ईर्यापथ आदि के आश्रय से **(पञ्चसमितयः)** पंच समितियाँ **(अपि)** और **(पञ्चव्रतानि)** पाँच महाव्रत **(इति)** इस प्रकार **(त्रयोदशतयं)** तेरह प्रकार का **(चारित्रोपहतं)** चारित्र सहित **(आचारं)** आचार को **(वयं)** हम **(नमामः)** नमस्कार करते हैं। जो **(परमेष्ठिनः)** अर्हन्त परमेष्ठी **(जिनपतेः)** जिनेन्द्र देव वीतराग **(वीरं)** महावीर भगवान् से **(परैः)** अन्य

तीर्थंकर के द्वारा **(पूर्वं)** पहले **(न दृष्टं)** नहीं देखा गया है।

आचारं सह-पञ्चभेद-मुदितं तीर्थं परं मङ्गलं,
निर्ग्रन्थानपि सच्चरित्र-महतो वन्दे समग्रान्यतीन्।
आत्माधीन - सुखोदया - मनुपमां लक्ष्मी-मविध्वंसिनीं,
इच्छन्केवल-दर्शना-वगमन - प्राज्य-प्रकाशोज्ज्वलाम् ॥८॥

अन्वयार्थ–(आत्माधीनसुखोदयां) आत्माधीन सुख के उदय सहित **(अनुपमां)** अनुपम **(केवलदर्शनावगमनप्राज्यप्रकाशोज्ज्वलां)** केवल-दर्शन, केवलज्ञान रूपी उत्कृष्ट प्रकाश से प्रकाशित **(अविध्वंसिनीं)** अविनाशी **(लक्ष्मीं)** लक्ष्मी की **(इच्छन्)** इच्छा करता हुआ मैं **(परं तीर्थं मङ्गलं)** उत्कृष्ट तीर्थ मंगल रूप **(उदितं)** कहे गये **(सह पञ्चभेदं)** पाँच भेद सहित **(आचारं)** आचार को तथा **(सच्चरित्रमहतः)** सम्यक् चारित्र से महान् **(समग्रान्)** समस्त **(निर्ग्रन्थान्)** निर्ग्रन्थ **(यतीन्)** यतियों की **(अपि)** भी **(वन्दे)** मैं वन्दना करता हूँ।

अज्ञानाद्य-दवीवृतं नियमिनोऽवर्तिष्यहं चान्यथा
तस्मिन् नर्जित-मस्यति प्रतिनवं चैनो निराकुर्वति।
वृत्ते सप्ततयीं निधिं सुतपसा-मृद्धिं नयत्यद्भुतं
तन्मिथ्या गुरुदुष्कृतं भवतु मे स्वं निन्दतो निन्दितम् ॥९॥

अन्वयार्थ–(अज्ञानात्) अज्ञान से **(नियमिनः)** मुनि को **(अन्यथा)** अन्य प्रकार **(यत् अवीवृतं)** यदि प्रवर्तन कराया हो **(च अहं)** और यदि मैंने अन्यथा **(अवर्तिषि)** प्रवृत्ति की हो तो **(तस्मिन्)** उस प्रवृत्ति में **(अर्जितं)** संचित **(एनः)** पाप को **(अस्यति)** नष्ट करने वाले **(च)** और **(प्रतिनवं)** नवीन पाप को **(निराकुर्वति)** दूर करने वाले **(सुतपसां)** श्रेष्ठ तपस्वियों की **(अद्भुतं)** आश्चर्यकारी **(निधिं)** निधि रूप **(सप्ततयीं ऋद्धिं)** सात प्रकार की ऋद्धि को **(नयति)** प्राप्त कराने वाले **(वृत्ते)** चारित्र में **(स्वं)** अपने आपकी **(निन्दतः)** निन्दा करने वाले **(मे)** मेरे **(तत्)** वह **(गुरु)** महा **(निन्दितं)** गर्हित **(दुष्कृतं)** पाप **(मिथ्या)** **(भवतु)** मिथ्या होवें।

संसार-व्यसना-हति-प्रचलिता नित्योदय-प्रार्थिनः
प्रत्यासन्न-विमुक्तयः सुमतयः शान्तैनसः प्राणिनः।

मोक्षस्यैव कृतं विशालमतुलं सोपान-मुच्चैस्तरा,
मारोहन्तु चरित्र-मुत्तम-मिदं जैनेन्द्र-मोजस्विनः ॥१०॥

अन्वयार्थ—(संसारव्यसनाहतिप्रचलिताः) जो संसार रूपी दुःखों से आहत होने से विचलित हैं **(नित्योदयप्रार्थिनः)** हमेशा उदय रूप मोक्ष के प्रार्थी हैं **(प्रत्यासन्नविमुक्तयः)** जिन्हें निकट में मुक्ति प्राप्त होने वाली है **(सुमतयः)** जो श्रेष्ठ बुद्धि वाले हैं **(शान्तैनसः)** जिनके पाप शान्त हो गये हैं ऐसे **(ओजस्विनः प्राणिनः)** ओजस्वी प्राणियों के **(मोक्षस्य एव कृतं)** मोक्ष के लिए बताये गये **(विशालं)** विस्तृत **(अतुलं)** अतुलनीय **(उच्चैः)** ऊँची **(सोपानं)** सीढ़ी रूप **(जैनेन्द्रं)** जिनेन्द्र भगवान् का कहे हुए **(इदं)** इस **(उत्तमं चरित्रं)** उत्तम चारित्र पर **(तरां आरोहन्तु)** अच्छी तरह आरोहण करो।

अञ्चलिका

इच्छामि भंते! चारित्तभत्ति काउस्सग्गो कओ, तस्स आलोचेउं सम्म-णाणजोयस्स सम्मत्ताहि-ट्ठियस्स, सव्वपहाणस्स, णिव्वाण-मग्गस्स, कम्मणिज्जरफलस्स, खमाहारस्स, पंच-महव्वय-संपण्णस्स, तिगुत्तिगुत्तस्स, पंचसमिदिजुत्तस्स, णाणज्झाणसाहणस्स, समया इव पवेसयस्स सम्मचारित्तस्स णिच्चकालं, अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहि-मरणं, जिणगुण-संपत्ति होउ मज्झं।

अन्वयार्थ—(भंते!) हे भगवन्! मैंने **(चारित्तभत्ति काउस्सग्गो कओ)** चारित्र भक्ति का कायोत्सर्ग किया है **(तस्स आलोचेउं)** उस सम्बन्धी आलोचना करने की **(इच्छामि)** इच्छा करता हूँ **(सम्म-णाणजोयस्स)** सम्यग्ज्ञान रूपी प्रकाश से सहित **(सम्मत्ताहि-ट्ठियस्स)** सम्यग्दर्शन से अधिष्ठित **(सव्वपहाणस्स)** सबमें प्रधान **(णिव्वाण-मग्गस्स)** निर्वाण का मार्ग **(कम्मणिज्जरफलस्स)** कर्म निर्जरा फल युक्त **(खमाहारस्स)** क्षमा का आधार **(पंच-महव्वय-संपण्णस्स)** पाँच महाव्रतों से सम्पन्न **(तिगुत्ति-गुत्तस्स)** तीन गुप्तियों से रक्षित **(पंचसमिदिजुत्तस्स)** पाँच समितियों से युक्त **(णाणज्झाणसाहणस्स)** ज्ञान-ध्यान का साधन **(समया इव पवेसयस्स)** आगम आदि में प्रवेश कराने वाला **(सम्मचारित्तस्स)**

सम्यक्चारित्र की मैं **(णिच्चकालं)** नित्यकाल **(अंचेमि)** अर्चा करता हूँ **(पूजेमि)** पूजा करता हूँ **(वंदामि)** वंदना करता हूँ **(णमंसामि)** नमस्कार करता हूँ **(दुक्खक्खओ)** मेरे दुःखों का क्षय हो **(कम्मक्खओ)** मेरे कर्मों का क्षय हो **(बोहिलाओ)** मुझे बोधि का लाभ हो (**सुगइगमणं**) मेरा सुगति में गमन हो **(समाहिमरणं)** मेरा समाधिमरण हो तथा **(जिणगुण-संपत्ति होउ मज्झं)** जिनेन्द्र भगवान् के गुण रूपी सम्पत्ति मुझे प्राप्ति हो।

योगिभक्ति

जातिजरो-रुरोग-मरणातुर - शोकसहस्र - दीपिताः,
दुःसह-नरक-पतनसन्त्रस्तधियः प्रतिबुद्ध-चेतसः।
जीवितमम्बु-बिन्दुचपलं, तडिदभ्र-समा विभूतयः,
सकलमिदं विचिन्त्यमुनयः प्रशमाय वनान्त-माश्रिताः ॥१॥

अन्वयार्थ—(जातिजरोरुरोगमरणातुर-शोक-सहस्र-दीपिताः) जो जन्म, जरा, विशाल रोग, मरण से पीड़ित हजारों शोकों से प्रज्वलित हैं **(दुःसह-नरक-पतन-संत्रस्तधियः)** अत्यन्त दुःसह नरक में पतन से जिनकी बुद्धि भयभीत है **(प्रतिबुद्धचेतसः)** जिनका चित्त जागृत है **(मुनयः)** ऐसे मुनि **(जीवितं)** जीवन को **(अम्बुबिन्दुचपलं)** जल की बूँद के समान चंचल तथा **(विभूतयः)** वैभव को **(तडिदभ्रसमाः)** बिजली और मेघ के समान **(सकलं इदं)** यह सब **(विचिन्त्य)** विचार करके **(प्रशमाय)** प्रशम भाव के लिए **(वनान्तं आश्रिताः)** वन के निकट पहुँच जाते हैं।

व्रतसमिति-गुप्तिसंयुताः शिवसुखमाधाय मनसि वीतमोहाः।
ध्यानाध्ययनवशङ्गताः विशुद्धये कर्मणां तपश्चरन्ति ॥२॥

अन्वयार्थ— (व्रतसमिति-गुप्ति-संयुताः) जो व्रत, समिति और गुप्ति से सहित हैं **(वीतमोहाः)** मोह रहित हैं **(ध्यान-अध्ययन-वशङ्गताः)** जो ध्यान अध्ययन के वशीभूत हैं ऐसे मुनि **(मनसि)** मन में **(शिवसुखं)** मोक्ष सुख को **(आधाय)** धारण करके **(कर्मणां विशुद्धये)** कर्मों की विशुद्धि के लिए **(तपश्चरन्ति)** तप करते हैं।

दिनकर-किरण-निकर-सन्तप्त-शिला-निचयेषु निस्पृहाः
मलपटला-वलिप्ततनवः शिथिलीकृत-कर्मबन्धनाः।

व्यपगत - मदन - दर्प-रतिदोष-कषाय - विरक्त - मत्सराः
गिरिशिखरेषु चण्डकिरणाभि-मुखस्थितयो दिगम्बराः ॥३॥

अन्वयार्थ—(दिनकर-किरण-निकर-सन्तप्त-शिला-निचयेषु) सूर्य की किरणों के समूह से तपी हुई शिला समूह पर **(गिरिशिखरेषु)** पर्वत के शिखरों पर **(निस्पृहाः)** आकांक्षा रहित **(मलपटलावलिप्ततनवः)** मल के पटल से लिप्त शरीरधारी **(शिथिलीकृतकर्मबन्धनाः)** कर्म बन्धन को शिथिल करते हुए **(व्यपगतमदनदर्परति-दोष-कषाय-विरक्त-मत्सराः)** काम, अहंकार रति, दोष, कषाय, विशेष राग तथा मात्सर्य से रहित **(दिगम्बराः)** दिगम्बर मुनि **(चण्डकिरणाभि-मुखस्थितयः)** सूर्य के अभिमुख स्थित होते हैं।

सज्ज्ञानामृतपायिभिः क्षान्तिपयः-सिञ्च्यमानपुण्यकायैः।
धृतसंतोषच्छत्रकैः तापस्तीव्रोऽपि सह्यते मुनीन्द्रैः ॥४॥

अन्वयार्थ—(सज्ज्ञानामृतपायिभिः) ज्ञानरूपी अमृत का पान करने वाले **(क्षान्तिपयः सिञ्च्यमानपुण्यकायैः)** क्षमारूपी जल से सिंचित पुण्य काय वाले तथा **(धृतसंतोषच्छत्रकैः)** सन्तोषरूपी छत्र को धारण किये **(मुनीन्द्रैः)** मुनिराजों के द्वारा **(तीव्रः अपि तापः)** यह तीव्र ताप भी **(सह्यते)** सहन किया जाता है।

शिखिगल - कज्जलालिमलिनै - र्विबुधाधिपचाप-चित्रितैः
भीम-रवैर्विसृष्ट-चण्डाशनि शीतल-वायु-वृष्टिभिः।
गगनतलं विलोक्य जलदैः स्थगितं सहसा तपोधनाः
पुनरपि तरुतलेषु विषमासु निशासु विशङ्कमासते ॥५॥

अन्वयार्थ—(शिखिगल-कज्जलालिमलिनैः) मयूर कण्ठ, काजल और भ्रमर के समान काले **(विबुधाधिपचापचित्रितैः)** इन्द्रधनुष से विचित्र **(भीमरवैः)** भयंकर गर्जना के साथ **(विसृष्टचण्डाशनिशीतलवायु-वृष्टिभिः)** प्रचण्ड बिजली एवं शीतल वायु की वर्षा के द्वारा **(जलदैः)** मेघों से **(स्थगितं)** रुका हुआ **(गगनतलं)** आकाश तल **(विलोक्य)** देखकर **(तपोधनाः)** तपस्वी जन **(सहसा)** अचानक ही **(विषमासु निशासु)** विषम रात्रियों में **(तरुतलेषु)** वृक्ष के नीचे **(पुनरपि)** फिर भी **(विशङ्कं)** निश्चिन्त हो **(आसते)** रह जाते हैं।

जलधारा-शरताडिता न चलन्ति चरित्रतः सदा नृसिंहाः।
संसारदुःखभीरवः परीषहाराति-घातिनः प्रवीरा ॥६॥

अन्वयार्थ—(जलधाराशरताडिताः) जलधारारूपी बाणों से ताड़ित **(संसार-दुःखभीरवः)** संसार के दुःखों से डरे हुए **(परीषहारातिघातिनः)** परीषहरूपी शत्रुओं का घात करने वाले **(प्रवीराः)** महावीर **(नृसिंहाः)** नरश्रेष्ठ **(चरित्रतः)** चारित्र से **(सदा)** कभी भी **(न चलन्ति)** चलायमान नहीं होते हैं।

अविरतबहल - तुहिनकण - वारिभिरङ्गिप - पत्रपातनै-
रनवरतमुक्त-सीत्कारवैः परुषैरथानिलैः शोषितगात्रयष्टयः।
इह श्रमणा धृति-कम्बला-वृताः शिशिर-निशां
तुषार-विषमां गमयन्ति चतुःपथे स्थिताः ॥७॥

अन्वयार्थ—(अथ) तथा **(अविरतबहलतुहिनकणवारिभिः)** अत्यधिक ओसकण से मिश्रित जल सहित **(अङ्गिप-पत्रपातनैः)** वृक्षों के पत्तों से गिर रहे **(अनवरतमुक्तसीत्कारवैः)** निरन्तर सी-सी शब्दों को छोड़ने वाले **(परुषैः)** कठोर **(अनिलैः)** वायु से **(शोषितगात्रयष्टयः)** जिनका शरीर सूख गया है **(श्रमणाः)** ऐसे श्रमण **(धृतिकम्बलावृताः)** धैर्यरूपी कम्बल को ओढ़े हुए **(इह)** यहाँ **(चतुःपथे स्थिताः)** चौराहे पर स्थित होकर **(तुषारविषमां)** हिमपात से विषम **(शिशिरनिशां)** शीतकाल की रात्रि को **(गमयन्ति)** व्यतीत करते हैं।

इति योगत्रयधारिणः सकलतपशालिनः प्रवृद्धपुण्यकायाः।
परमानन्दसुखैषिणः समाधिमग्र्यं दिशन्तु नो भदन्ताः ॥८॥

अन्वयार्थ—(इति) इस प्रकार **(योगत्रयधारिणः)** तीनों योगों को धारण करने वाले **(सकलतपःशालिनः)** समस्त तपों से युक्त **(प्रवृद्धपुण्य-कायाः)** पुण्यरूपी शरीर को बढ़ाने वाले **(परमानन्दसुखैषिणः)** परमानन्द सुख के इच्छुक **(भदन्ताः)** श्रेष्ठ मुनिराज **(नः)** हमको **(अग्र्यं)** उत्कृष्ट **(समाधिं)** समाधि **(दिशन्तु)** प्रदान करें।

क्षेपकश्लोकः (अनुष्टुप् छन्द)

योगीश्वरान् जिनान् सर्वान् योग-निर्धूत-कल्मषान्।
योगैस्त्रिभि - रहं वन्दे, योग - स्कन्ध प्रतिष्ठितान् ॥१॥

अन्वयार्थ—(योग-निर्धूत-कल्मषान्) धर्म्यध्यान शुक्लध्यान रूप योग से पापरूपी कल्मष को नष्ट करने वाले **(योग-स्कन्ध प्रतिष्ठितान्)** धर्म्यध्यान शुक्लध्यान से प्रतिष्ठित/सुशोभित **(सर्वान्)** सभी **(जिनान्)** जिनों को **(योगीश्वरान्)** योगीश्वरों को **(अहं)** मैं **(त्रिभिः योगैः)** मन-वचन-काय तीन योगों के द्वारा **(वन्दे)** नमस्कार करता हूँ।

(स्रग्धरा छन्द)

प्रावृट्-काले सविद्युत्प्रपतित-सलिले वृक्षमूलाधिवासाः।
हेमन्ते रात्रि-मध्ये, प्रति-विगतभयाः काष्ठवत्त्यक्तदेहाः॥१॥
ग्रीष्मे सूर्यांशुतप्ता, गिरि-शिखर-गताः स्थानकूटान्तरस्थाः।
ते मे धर्म प्रदद्युर्मुनि - गणवृषभा मोक्षनिःश्रेणिभूताः ॥२॥

अन्वयार्थ—(प्रावृट्-काले) वर्षाकाल में **(सविद्युत्प्रपतित-सलिले)** बिजली की कड़कड़ाहट के साथ जलवृष्टि होने पर **(वृक्षमूलाधिवासाः)** वृक्ष के नीचे अधिवास किया/योग धारण किया **(हेमन्ते रात्रि-मध्ये)** शीत/ठंडी/हेमन्त ऋतु में रात्रि के समय **(प्रति-विगतभया)** भय से रहित हो **(काष्ठवत्त्यक्तदेहाः)** काष्ठ/लकड़ी समान हो अपने शरीर से मोह को त्याग कर अभ्रावकाश धारण करते हुए **(ग्रीष्मे)** ग्रीष्म ऋतु में **(सूर्यांशु-तप्ता)** जब सूर्य की किरणें संतप्त हों **(गिरि-शिखर-गताः स्थान-कूटान्तरस्थाः)** पर्वत के शिखर पर ऊँची टेकरी पर जहाँ गर्मी अधिक हो, खड़े रहकर वहाँ योग धारण कर तपश्चरण करते हुए **(मोक्ष-निःश्रेणिभूताः)** मुनि समूह में श्रेष्ठ हुए हैं **(ते)** वे मुनिश्रेष्ठ **(मे)** मुझे/मेरे लिए **(धर्मं प्रदद्युः)** प्रकृष्ट हितकर धर्म देवें।

(आर्या छन्द)

गिम्हे गिरि-सिहरत्था, वरिसायाले-रुक्खमूलरयणीसु।
सिसिरे वाहिरसयणा, ते साहू वंदिमो णिच्चं ॥३॥

अन्वयार्थ—(गिम्हे गिरि-सिहरत्था) ग्रीष्मकाल में पर्वत के शिखर पर **(वरिसायाले-रुक्खमूल)** वर्षाकाल में वृक्ष के नीचे **(सिसिरे)** ठंडी/शीतऋतु में **(रयणीसु)** रात्रि में **(वाहिरसयणा)** खुले मैदान में ध्यान करते हैं **(ते साहू)** उन साधुजनों की **(णिच्चं)** नित्य **(वंदिमो)** वन्दना करता हूँ।

(अनुष्टुप् छन्द)

गिरि-कन्दर-दुर्गेषु, ये वसंति दिगम्बराः।
पाणिपात्र पुटाहारास्, ते यांति परमां गतिम्॥४॥

अन्वयार्थ–(ये) जो **(दिगम्बरा)** दिगम्बर/वीतरागी/निर्ग्रन्थ साधु **(गिरि-कन्दर-दुर्गेषु)** गिरि/पर्वतों में, पर्वतों की कन्दराओं में और भीषण जंगलों में **(वसंति)** रहते हैं **(पाणिपात्र पुटाहाराः)** हाथरूपी पात्र की अञ्जुली में आहार लेते हैं **(ते)** वे **(परमां गतिम्)** उत्तम गति को **(यांति)** जाते हैं।

अञ्चलिका

इच्छामि भंते। योगिभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं अड्ढाइज्ज-दीवदोसमुद्देसु, पण्णारस - कम्मभूमिसु आदावण - रुक्खमूल-अब्भोवासठाणमोण-वीरासणेक्कपास कुक्कुडासण-चउछपक्ख-खवणादिजोगजुत्ताणं, सव्वसाहूणं णिच्चकालं, अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

अन्वयार्थ–(भंते) हे भगवन्! मैंने **(योगिभत्तिकाउस्सग्गो कओ)** योगी भक्ति का कायोत्सर्ग किया है **(तस्स आलोचेउं)** उसकी आलोचना करने **(इच्छामि)** इच्छा करता हूँ। **(अड्ढाइज्ज-दीवदोसमुद्देसु)** अढाईद्वीप, दो समुद्रों में **(पण्णारस-कम्मभूमिसु)** पन्द्रह कर्मभूमियों में **(आदावण - रुक्खमूल-अब्भोवासठाणमोण-वीरासणेक्कपास कुक्कुडासण-चउछपक्ख-खवणादिजोगजुत्ताणं, सव्वसाहूणं)** आतापन योग, वृक्षमूल योग, अभ्रावकाश योग, मौन, वीरासन, एक पार्श्व में रहना, कुक्कुटासन के साथ चार, छह, पक्ष के उपवास आदि योग से युक्त सर्व साधुओं की **(णिच्चकालं)** नित्य सदा काल **(अंचेमि)** अर्चना करता हूँ **(पूजेमि)** पूजा करता हूँ **(वंदामि)** मैं वन्दना करता हूँ **(णमंसामि)** नमस्कार करता हूँ **(दुक्खक्खओ)** मेरे दुःखों का क्षय हो **(कम्मक्खओ)** मेरे कर्मों का क्षय हो **(बोहिलाओ)** मुझे बोधि का लाभ हो (**सुगइगमणं)** मेरा सुगति में गमन हो **(समाहिमरणं)** मेरा समाधिमरण हो तथा **(जिणगुण-संपत्ति होउ मज्झं)** जिनेन्द्र भगवान् के गुण रूपी सम्पत्ति मुझे प्राप्ति हो।

आचार्यभक्ति

सिद्ध-गुण-स्तुति निरता नुद्धूतरुषाग्नि-जालबहुलविशेषान्।
गुप्ति-भिरभि-सम्पूर्णान् मुक्तियुतः सत्यवचनलक्षितभावान् ॥१॥
मुनि-माहात्म्य-विशेषान् जिनशासन-सत्प्रदीप-भासुरमूर्तीन्।
सिद्धिं प्रपित्-सुमनसो बद्धरजोविपुल-मूलघातन-कुशलान् ॥२॥

अन्वयार्थ—(सिद्धगुणस्तुतिनिरतान्) जो सिद्धप्रभु के गुणों की स्तुति में लीन हैं **(उद्धूत-रुषाग्निजालबहुल-विशेषान्)** जिन्होंने क्रोधरूपी अग्नि समूह की बहुत विशेषताओं को नष्ट कर दिया है **(गुप्तिभिः अभिसम्पूर्णान्)** जो गुप्तियों से परिपूर्ण हैं **(मुक्तियुतः)** जो मुक्ति से बंधे हैं **(सत्यवचन-लक्षितभावान्)** सत्य वचन से जिनके भाव पहचाने जाते हैं **(मुनिमाहात्म्य-विशेषान्)** जो मुनि के माहात्म्य से विशिष्ट हैं **(जिनशासनसत्प्रदीप-भासुरमूर्तीन्)** जिनशासनरूपी समीचीन दीपक से जिनका शरीर प्रकाशमान है **(सिद्धिं प्रपित्सुमनसः)** जिनका मन सिद्धि की प्राप्ति का इच्छुक है **(बद्धरजो-विपुल-मूलघातन-कुशलान्)** जो बँधी हुई कर्म रज की विशाल जड़ को नष्ट करने में कुशल हैं।

गुणमणि-विरचितवपुषः षड्द्रव्यविनिश्चितस्य धातॄन्सततम्।
रहित-प्रमादचर्यान् दर्शन-शुद्धान् गणस्य सन्तुष्टि करान् ॥३॥

अन्वयार्थ— (गुणमणि-विरचितवपुषः) जिनका शरीर गुणरूपी मणियों से बना है **(षड्द्रव्यविनिश्चतस्य)** छह द्रव्यों के निश्चय को **(सततं)** निरन्तर **(धातॄन्)** धारण करते हैं **(रहित-प्रमादचर्यान्)** जो प्रमाद चर्या से रहित हैं **(दर्शनशुद्धान्)** जो सम्यग्दर्शन से शुद्ध हैं तथा **(गणस्य)** गण को **(सन्तुष्टिकरान्)** सन्तुष्टि कराने वाले हैं।

मोहच्छिदुग्र-तपसः प्रशस्त-परिशुद्धहृदयशोभन-व्यवहारान्।
प्रासुक-निलयाननघानाशाविध्वंसि-चेतसो हतकुपथान् ॥४॥

अन्वयार्थ—(मोहच्छिदुग्रतपसः) जो मोह का नाश करने वाला उग्र तप करते हैं **(प्रशस्त-परिशुद्धहृदयशोभनव्यवहारान्)** प्रशस्त और शुद्ध हृदय से जिनका व्यवहार शोभित होता है **(प्रासुक-निलयान्)** जो प्रासुक स्थान में रहते हैं **(अनघान्)** जो पाप रहित हैं **(आशा-विध्वंसि-**

चेतसः) जिनका चित्त आशा-इच्छा का नाशक है **(हतकुपथान्)** जो कुमार्ग के नाशक हैं।

धारित-विलसन्मुण्डान्वर्जित-बहुदण्ड-पिण्डमण्डल-निकरान्।
सकलपरीषहजयिनः क्रियाभिरनिशं प्रमादतःपरिरहितान् ॥५॥

अन्वयार्थ—(धारितविलसन्-मुण्डान्) जो शोभायमान मुण्ड को धारण करते हैं **(वर्जितबहुदण्डपिण्डमण्डलनिकरान्)** बहुत दण्ड के धारक मण्डल समूह से जो दूर रहते हैं **(सकलपरीषहजयिनः)** जो समस्त परीषहों के विजेता हैं **(अनिशं)** हमेशा **(प्रमादतः)** प्रमाद से होने वाली **(क्रियाभिः)** क्रियाओं से **(परिरहितान्)** जो रहित हैं।

अचलान् व्यपेतनिद्रान् स्थानयुतान्कष्टदुष्टलेश्या - हीनान्।
विधिनानाश्रितवासा नलिप्तदेहान् विनिर्जितेन्द्रियकरिणः ॥६॥

अन्वयार्थ— (अचलान्) जो अचल हैं **(व्यपेतनिद्रान्)** निद्रारहित हैं **(स्थानयुतान्)** कायोत्सर्ग से युक्त हैं **(कष्टदुष्टलेश्याहीनान्)** कष्टकारी दुष्ट लेश्याओं से रहित हैं **(विधिनानाश्रित-वासान्)** जो विधि पूर्वक अनेक आश्रित स्थानों पर वास करते हैं **(अलिप्तदेहान्)** देह के लेप से रहित हैं **(विनिर्जितेन्द्रिय-करणः)** जिन्होंने इन्द्रियरूपी हाथियों को जीत लिया है।

अतुला-नुत्कुटिका-सान्विविक्त-चित्तान-खण्डित-स्वाध्यायान्।
दक्षिण-भावसमग्रान् व्यपगत-मदरागलोभ-शठमात्सर्यान् ॥७॥

अन्वयार्थ—(अतुलान्) जो अतुल हैं **(उत्कुटिकासान्)** उत्कुट आसन लगाते हैं **(विविक्त-चित्तान्)** जिनका चित्त पवित्र है **(अखण्डित-स्वाध्यायान्)** जिनका स्वाध्याय अखण्ड है **(दक्षिणभावसमग्रान्)** जो उत्कृष्ट भावों से पूर्ण हैं **(व्यपगतमद-राग-लोभ-शठ-मात्सर्यान्)** जो मद, राग, लोभ, शठता और मात्सर्य से रहित हैं।

भिन्नार्तरौद्र-पक्षान् सम्भावित-धर्मशुक्ल-निर्मल-हृदयान्।
नित्यं पिनद्धकुगतीन् पुण्यान् गण्योदयान् विलीनगारवचर्यान् ॥८॥

अन्वयार्थ—(भिन्नार्त-रौद्रपक्षान्) आर्त्त, रौद्रध्यान के पक्ष से रहित हैं **(सम्भावित-धर्म शुक्लनिर्मलहृदयान्)** अच्छी तरह से भावित धर्म-शुक्ल-ध्यान से जिनका हृदय निर्मल है **(नित्यं)** हमेशा के लिए **(पिनद्ध-**

कुगतीन्) कुगतियों को जिन्होंने रोक दिया है **(पुण्यान्)** जो पुण्य रूप हैं **(गण्योदयान्)** जिनका अभ्युदय गणनीय है **(विलीन-गारव-चर्यान्)** जिनकी चर्या गारव रहित है।

तरुमूल-योगयुक्ता - नवकाशाताप - योगराग-सनाथान्।
बहुजन-हितकर-चर्यानभया - ननघान्महानुभाव - विधानान् ॥९॥

अन्वयार्थ—(तरुमूलयोगयुक्तान्) जो वृक्षमूल में योग धारण करते हैं **(अवकाशा-तापयोग-रागसनाथान्)** जो अभ्रावकाश, आताप योग के राग से सहित हैं **(बहुजनहितकरचर्यान्)** बहुत जनों का हित करने वाली जिनकी चर्या है **(अभयान्)** जो भय रहित हैं **(अनघान्)** पाप रहित हैं **(महानुभाव-विधानान्)** जो महानुभाव को धारण करते हैं।

ईदृशगुण-सम्पन्नान् युष्मान्भक्त्या-विशालया - स्थिरयोगान्।
विधिनानारत-मग्र्यान्मुकुलीकृतहस्त-कमलशोभितशिरसा ॥१०॥
अभिनौमि-सकलकलुष-प्रभवोदय-जन्मजरामरण-बन्धन मुक्तान्।
शिवमचलमनघमक्षयमव्याहतमुक्ति-सौख्यमस्त्विति सततम् ॥११॥

अन्वयार्थ—(ईदृशगुणसम्पन्नान्) इस प्रकार के गुणों से सम्पन्न **(स्थिर-योगान्)** स्थिर योग के धारक **(अग्रयान्)** प्रमुख और **(सकल-कलुष-प्रभवोदय-जन्म-जरामरण-बन्धन मुक्तान्)** समस्त कलुष परिणाम से उत्पन्न उदय प्राप्त जन्म, बुढ़ापा, मरण के बन्धन से मुक्त **(युष्मान्)** आप आचार्यदेव को **(विशालया भक्त्या)** बहुत भक्ति से **(विधिना)** विधि पूर्वक **(अनारतं)** सदा **(मुकुलीकृत-हस्तकमलशोभित-शिरसा)** अञ्जलिबद्ध हस्त कमल से शोभित शिर से **(अभिनौमि)** मैं नमस्कार करता हूँ **(इति)** इस प्रकार मुझे **(शिवं)** कल्याणप्रद **(अचलं)** अचल **(अनघं)** पाप रहित **(अक्षयं)** क्षय रहित **(अव्याहतमुक्तिसौख्यं)** निर्बाध मोक्ष सुख **(सततं)** सदा **(अस्तु)** होवे।

क्षेपकश्लोकानिः

(आर्या छन्द)

श्रुतजलधि-पारगेभ्यः,स्व-पर-मत-विभावना-पटुमतिभ्यः।
सुचरित-तपोनिधिभ्यो, नमो गुरुभ्यो गुण-गुरुभ्यः॥१॥

अन्वयार्थ—जो **(श्रुतजलधि-पारगेभ्यः)** श्रुतज्ञानरूपी समुद्र के पारगामी

(स्व-पर-मत-विभावना-पटुमतिभ्यः) स्वमत और परमत के विशेष विचार करने में कुशल **(सुचरित-तपोनिधिभ्यो)** सम्यक्चारित्र और तप के खजाने **(गुण-गुरुभ्यः)** गुणों में महान् ऐसे **(गुरुभ्यो नमः)** गुरुओं के लिए नमस्कार हो।

छत्तीस-गुण-समग्गे, पंच-विहाचार-करण-संदरिसे।
सिस्साणुग्गह-कुसले, धम्माइरिये सदा वंदे ॥२॥

अन्वयार्थ—जो **(छत्तीस-गुण-समग्गे)** छत्तीस गुणों से परिपूर्ण **(पंच-विहाचार-करण-संदरिसे)** पाँच प्रकार के आचार और क्रियाओं के पालक/संदर्शक/उपदेशक **(सिस्साणुग्गह-कुसले)** शिष्यों के उपकार करने में चतुर ऐसे **(धम्माइरिये)** धर्माचार्य की मैं **(सदा)** सदा **(वंदे)** वंदना करता हूँ।

गुरु-भत्ति-संजमेण य, तरन्ति संसार-सायरं घोरं ।
छिण्णंति अट्ठकम्मं, जम्मण-मरणं ण पावेंति ॥३॥

अन्वयार्थ—(गुरु-भत्ति-संजमेण) गुरुभक्ति में मन की एकाग्रता से **(घोरं)** भयंकर **(संसार-सायरं)** संसाररूपी सागर को **(तरन्ति)** तैरते हैं **(अट्ठकम्मं)** आठ कर्मों को **(छिण्णंति)** छेदते हैं **(च)** और **(जम्मण-मरणं)** जन्म-मरण को **(ण पावेंति)** नहीं पाते।

ये नित्यं व्रत-मंत्र-होम-निरता, ध्यानाग्नि-होत्राकुलाः।
षट्कर्माभिरतास्तपोधन-धनाः, साधु-क्रियाः साधवः॥
शील-प्रावरणा गुण-प्रहरणाश्-चन्द्रार्क -तेजोऽधिकाः।
मोक्ष-द्वार-कपाट-पाटन-भटाः, प्रीणंतु मां साधवः॥५॥

अन्वयार्थ—(ये) जो **(नित्यं)** प्रतिदिन **(व्रत-मंत्र-होम-निरताः)** व्रतरूपी मंत्र वाले हवन में लीन **(ध्यानाग्नि-होत्राकुलाः)** ध्यानरूपी अग्नि में कर्मरूपी हव्य/साकल्य से व्याप्त अर्थात् ध्यानरूपी अग्नि में यज्ञ करने वाले **(षट्कर्माभिरताः)** सामायिक आदि छह आवश्यक कर्मों में लीन **(तपोधन-धनाः)** तपरूप धन वाले **(साधु-क्रियाः)** साधुओं की क्रियाओं को करने वाले **(साधवः)** साधुगण आचार्य परमेष्ठी होते हैं।

(शील-प्रावरणाः) अठारह हजार शीलरूपी वस्त्रों के धारक **(गुण-प्रहरणाः)** चौरासी लाख उत्तरगुणरूपी अस्त्र-शस्त्र वाले **(चन्द्रार्क-**

तेजोऽधिकाः) चन्द्र और सूर्य से भी अधिक तेज वाले **(मोक्ष-द्वार-कपाट-पाटन-भटाः)** मोक्षरूपी महल के द्वारों के दरवाजों को खोलने में सुभट/योद्धा ऐसे **(साधवः)** साधु/साधक आचार्य परमेष्ठी **(मां)** मुझको **(प्रीणंतु)** प्रसन्न/संतुष्ट करें।

गुरवः पान्तु नो नित्यं ज्ञान-दर्शन - नायकाः।
चारित्रार्णव - गम्भीरा मोक्ष - मार्गोपदेशकः॥५॥

अन्वयार्थ—जो **(ज्ञान-दर्शन-नायकाः)** ज्ञान और दर्शन के स्वामी **(चारित्रार्णव-गम्भीरा)** चारित्र में सागर के समान गंभीर और **(मोक्ष-मार्गोपदेशकः)** मोक्षमार्ग का उपदेश देने वाले ऐसे **(गुरवः)** दीक्षा दायक गुरु आचार्यदेव **(नः)** हमारी **(नित्यं)** हमेशा **(पान्तु)** रक्षा करें।

(शार्दूलविक्रीडित छन्द)

प्राज्ञः प्राप्त-समस्त शास्त्र हृदयः, प्रव्यक्तलोकस्थितिः,
प्रास्ताशः प्रतिभा-पर प्रशमवान्, प्रागेव दृष्टोत्तरः।
प्रायः प्रश्न-सहः प्रभुः परमनो, हारी परानिन्दया,
ब्रूयाद्धर्मकथां गणी गुणनिधिः, प्रस्पष्ट मिष्टाक्षरः॥६॥

अन्वयार्थ—जो **(प्राज्ञः)** बुद्धिमान हैं **(प्राप्त-समस्त शास्त्र हृदयः)** समस्त शास्त्रों के रहस्य के ज्ञाता हैं **(प्रव्यक्तलोकस्थितिः)** लोकव्यवहार के उत्तम रीति से जानने वाले अथवा लोक स्थिति के प्रकट ज्ञाता है **(प्रास्ताशः)** संसार में निस्पृह हैं **(प्रतिभा-परः)** समयानुसार द्रव्य-क्षेत्र-काल के परख/आगे-आगे होने वाले शुभाशुभ को जानने में प्रतिभासम्पन्न **(प्रशमवान्)** राग-द्वेष रहित **(प्रागेव दृष्टोत्तरः)** प्रश्नों के उत्तर पहले ही जिनके मन में तैयार रहते हैं **(प्रायः प्रश्नसहः)** किसी के द्वारा बहुत प्रश्नों के पूछे जाने पर भी जिन्हें कभी क्रोध नहीं आता **(प्रभुः)** सब लोगों पर जिनका प्रभाव है **(परमनोहारी)** दूसरों के मन को जो हरने वाले हैं **(पर अनिन्दया)** दूसरों में निन्दा से रहित हैं **(धर्मकथां ब्रूयाद्)** धर्मकथा को कहने वाले हैं **(गुणनिधिः)** गुणों के खानि हैं **(प्रस्पष्ट मिष्टाक्षरः)** अच्छी तरह स्पष्ट व मधुर वाणी जिनकी है ऐसे गुणों से युक्त **(गणी)** आचार्य परमेष्ठी होते हैं।

(हरिणी छन्द)

श्रुत-मविकलं शुद्धा वृत्तिः पर-प्रति-बोधने,
परिणति-रुरुद्योगो मार्ग-प्रवर्तन सद्विधौ।
बुधनुति-रनुत्सेको, लोकज्ञता मृदुताऽस्पृहा,
यतिपतिगुणा यस्मिन्नन्ये च सोऽस्तु गुरुः सताम्॥७॥

अन्वयार्थ—(श्रुतं अविकलं) पूर्ण ज्ञान **(शुद्धा वृत्तिः)** शुद्ध आचरण **(पर प्रतिबोधने वृत्ति)** दूसरों को उपदेश देने में प्रवृत्ति **(परिणतिरुरुद्योगो मार्ग प्रवर्तन सद्विधौ)** भव्यजीवों को समीचीन मार्ग में लगाने में विशेष पुरुषार्थ करना **(बुधनुतिः)** विद्वानों से पूज्य **(अनुत्सेकः)** मार्दव भावी **(लोकज्ञता)** लोकव्यवहार के ज्ञाता **(मृदुता)** कोमलता **(अस्पृहा)** निस्पृहता **(गुणा)** गुण **(यस्मिन्)** जिनमें हैं **(यतिपति सः)** वह मुनियों का स्वामी **(सताम् गुरुः)** सज्जनों का गुरु है **(न अन्ये च)** और अन्य नहीं।

विशुद्धवंशः परमाभिरूपो जितेन्द्रियो धर्मकथाप्रसक्तः।
सुखर्द्धिलाभेष्वविसक्त चित्तोबुधैः सदाचार्य इति प्रशस्तः॥८॥

अन्वयार्थ—जो **(विशुद्धवंशः)** विशुद्ध वंश में उत्पन्न हुए हैं **(परमाभि-रूपो)** सुन्दर, सुडौल रूप के धारक हैं **(जितेन्द्रियः)** इन्द्रिय-विजेता हैं **(धर्म-कथाप्रसक्तः)** धर्मकथाओं के उपदेश में रत हैं **(सुख-ऋद्धि-लाभेषु-विसक्त-चित्तः)** सुख, ऋद्धि/ऐश्वर्य आदि के लाभों में जिनके मन में आसक्ति/इच्छा उत्पन्न नहीं होती है ऐसे यति **(सदाचार्य)** सच्चे आचार्य हैं **(इति)** इस प्रकार **(बुधैः)** बुद्धिमानों के द्वारा **(प्रशस्तः)**कहा गया है।

विजित - मदन - केतुं निर्मलं निर्विकारं,
रहित - सकल - सङ्गं संयमासक्त चित्तं।
सुनय - निपुण - भावं ज्ञाततत्त्वप्रपञ्चं,
जनन-मरण-भीतं सद्गुरुं नौमि नित्यम्॥९॥

अन्वयार्थ—जिनने **(विजितमदनकेतुं)** कामदेव की ध्वजा को जीत लिया है **(निर्मलं)** शुद्ध हैं **(निर्विकारं)** विकाररहित हैं **(रहित-सकल सङ्गं)** समस्त परिग्रह से रहित हैं **(संयमासक्त चित्तम्)** संयम में जिसका

चित्त आसक्त है **(सुनय-निपुण-भावं)** समीचीन नयों के वर्णन करने में जो चतुर हैं **(ज्ञाततत्त्वप्रपञ्चम्)** जान लिया है तत्त्वों के विस्तार को जिसने **(जननमरणभीतं)** जन्म-मरण से जो भयभीत हैं उन **(सद्गुरुं)** सच्चे गुरु को **(नित्यं)** सदाकाल **(नौमि)** मैं नमस्कार करता हूँ।

सम्यग्दर्शन मूलं, ज्ञानस्कन्धं चरित्र-शाखाढ्यम्।
मुनिगणविहगाकीर्णमाचार्य महाद्रुमं वन्दे ॥१०॥

अन्वयार्थ—(सम्यग्दर्शनमूलं) सम्यग्दर्शन जिसकी जड़ है **(ज्ञानं स्कन्ध)** ज्ञान जिसका स्कन्ध है **(चारित्रशाखाढ्यम्)** चारित्ररूपी शाखा से जो युक्त है (**मुनिगण-विहगाकीर्णं)** मुनिसमूहरूपी पक्षियों से जो युक्त हैं उन **(आचार्यमहाद्रुमम्)** आचार्यरूप महावृक्ष को **(वन्दे)** मैं नमस्कार करता हूँ।

अञ्चलिका

इच्छामि भंते! आइरियभत्ति-काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचारित्तजुत्ताणं पंचविहाचाराणं आइरियाणं, आयारादि -सुद-णाणोवदेसयाणं उवज्झायाणं, तिरयण-गुणपालण-रयाणं सव्वसाहूणं, णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुण-संपत्ति होउ मज्झं।

अन्वयार्थ—(भंते) हे भगवन्! मैंने **(आइरियभत्ति-काउस्सग्गो कओ)** आचार्य भक्ति का कायोत्सर्ग किया **(तस्स आलोचेउं)** उसकी आलोचना करने की **(इच्छामि)** इच्छा करता हूँ। (**सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्म-चारित्तजुत्ताण)** सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र से युक्त **(पंचविहाचाराणं आइरियाणं)** पाँच प्रकार के आचार के पालक आचार्य परमेष्ठी **(आयारादि-सुद-णाणोवदेसयाणं उवज्झायाणं)** आचाराङ्ग आदि श्रुतज्ञान का उपदेश देने वाले उपाध्याय परमेष्ठी **(तिरयण-गुणपालण-रयाणं)** रत्नत्रय और गुणों के पालन में रत **(सव्वसाहूणं)** सर्वसाधुजन की मैं **(णिच्चकालं)** नित्य सदा काल **(अंचेमि)** अर्चना करता हूँ **(पूजेमि)** पूजा करता हूँ **(वंदामि)** मैं वन्दना करता हूँ **(णमंसामि)** नमस्कार करता हूँ **(दुक्खक्खओ)** मेरे दुःखों का क्षय हो **(कम्मक्खओ)**

मेरे कर्मों का क्षय हो **(बोहिलाओ)** मुझे बोधि का लाभ हो (**सुगइगमणं)** मेरा सुगति में गमन हो **(समाहिमरणं)** मेरा समाधिमरण हो तथा **(जिणगुण-संपत्ति होउ मज्झं)** जिनेन्द्र भगवान् के गुण रूपी सम्पत्ति मुझे प्राप्ति हो।

❑ ❑ ❑

पञ्चमहागुरुभक्ति

श्रीमदमरेन्द्र - मुकुट - प्रघटित - मणि - किरणवारि - धाराभिः।
प्रक्षालित-पद-युगलान् प्रणमामि जिनेश्वरान् भक्त्या ॥१॥

अन्वयार्थ—(श्रीमदमरेन्द्र-मुकुट-प्रघटित-मणि-किरण-वारि-धाराभिः) शोभा सम्पन्न अमरेन्द्र के मुकुटों में लगी मणियों की किरणरूपी जलधारा से **(प्रक्षालित-पद-युगलान्)** जिनके चरण युगल धुले हैं ऐसे **(जिनेश्वरान्)** जिनेश्वर को **(भक्त्या)** भक्ति से **(प्रणमामि)** मैं प्रणाम करता हूँ।

अष्टगुणैः समुपेतान् प्रणष्ट-दुष्टाष्टकर्म-रिपुसमितीन्।
सिद्धान् सतत-मनन्तान् नमस्करोमीष्ट-तुष्टि संसिद्धयै ॥२॥

अन्वयार्थ—(अष्टगुणैः) आठ गुणों से **(समुपेतान्)** युक्त **(प्रणष्ट-दुष्टाष्ट-कर्मरिपु-समितीन्)** दुष्ट-अष्ट कर्म-शत्रु के समूह को नष्ट किया है जिन्होंने ऐसे **(अनन्तान् सिद्धान्)** अनन्त सिद्धों को **(इष्ट-तुष्टिसंसिद्धयै)** इष्ट-सन्तोष की सिद्धि के लिए **(सततम्)** हमेशा **(नमस्करोमि)** नमस्कार करता हूँ।

साचार-श्रुत-जलधीन् - प्रतीर्य शुद्धोरुचरण-निरतानाम्।
आचार्याणां पदयुग - कमलानि दधे शिरसि मेऽहम् ॥३॥

अन्वयार्थ—(साचार-श्रुतजलधीन्) आचार सहित श्रुत सागर को **(प्रतीर्य)** तैरकर **(शुद्धोरुचरणनिरतानां)** शुद्ध, महान चारित्र में निरत **(आचार्याणां)** आचार्यों के **(पदयुगकमलानि)** चरण युगलकमल को **(मे शिरसि)** अपने शिर पर **(अहं दधे)** मैं धारण करता हूँ।

मिथ्यावादि-मद्रोग्र-ध्वान्त-प्रध्वंसि-वचन-सन्दर्भान्।
उपदेशकान् प्रपद्ये मम दुरितारि-प्रणाशाय ॥४॥

अन्वयार्थ—(मिथ्यावादि-मदोग्र-ध्वान्त-प्रध्वंसि-वचन-सन्दर्भान्)

मिथ्या-वादियों के गर्वरूपी उग्र अन्धकार के नाशक वचनों के सन्दर्भ वाले **(उपदेश-कान्)** उपदेशकों को मैं **(मम)** अपने **(दुरितारिप्रणाशाय)** पाप शत्रु का नाश करने के लिए **(प्रपद्ये)** प्राप्त होता हूँ।

सम्यग्दर्शन - दीप - प्रकाशका मेय-बोध-सम्भूताः।
भूरि-चरित्र-पताकास् ते साधु-गणास्तु मां पान्तु ॥५॥

अन्वयार्थ—(सम्यग्दर्शन-दीप-प्रकाशकाः) जो सम्यग्दर्शनरूपी दीपक को प्रकाशित करने वाले हैं **(मेय-बोध-सम्भूताः)** जो व्यापक ज्ञान से सम्पन्न हैं **(भूरिचरित्रपताकाः)** जो उत्कृष्ट चारित्र की ध्वजा हैं **(ते साधुगणाः)** वह साधुगण **(तु)** ही **(मां पान्तु)** मेरी रक्षा करें।

जिनसिद्ध-सूरिदेशक - साधु-वरानमल-गुण-गणोपेतान्।
पञ्चनमस्कारपदैस् त्रिसन्ध्य-मभिनौमि मोक्षलाभाय ॥६॥

अन्वयार्थ—(अमल-गुण-गणोपेतान्) निर्मल गुण-गण से युक्त **(जिन-सिद्ध-सूरि-देशक-साधुवरान्)** जिन, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और उत्कृष्ट साधुओं को **(मोक्षलाभाय)** मोक्ष की प्राप्ति के लिए **(पञ्च-नमस्कारपदैः)** पञ्च नमस्कार पदों के द्वारा **(त्रिसन्ध्यम्)** तीनों संध्याओं में **(अभिनौमि)** नमस्कार करता हूँ।

एष पञ्चनमस्कारः सर्व-पापप्रणाशनः।
मङ्गलानां च सर्वेषां प्रथमं मङ्गलं मतम् ॥७॥

अन्वयार्थ—(एष पञ्चनमस्कारः) यह पञ्च नमस्कार **(सर्वपाप प्रणाशनः)** सभी पापों का नाशक **(च सर्वेषां मङ्गलानां)** और सभी मंगलों में **(प्रथमं)** पहला **(मङ्गलं मतं)** मंगल माना है।

अर्हत्सिद्धाचार्यो-पाध्यायाः सर्वसाधवः।
कुर्वन्तु मङ्गलाः सर्वे निर्वाण-परमश्रियम् ॥८॥

अन्वयार्थ—(अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायाः सर्वसाधवः) अर्हन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और समस्त साधु **(मङ्गलाः)** मंगल रूप हैं **(सर्वे)** यह सभी **(निर्वाणपरमश्रियं)** निर्वाणरूपी उत्कृष्ट लक्ष्मी को **(कुर्वन्तु)** करें।

सर्वान्-जिनेन्द्र-चन्द्रान् सिद्धानाचार्य पाठकान्-साधून्।
रत्नत्रयं च वन्दे रत्नत्रय-सिद्धये भक्त्या ॥९॥

अन्वयार्थ—(सर्वान् जिनेन्द्रचन्द्रान्) सभी जिनेन्द्र चन्द्रों को **(सिद्धान्)**

सिद्ध को **(आचार्यपाठकान्)** आचार्य, उपाध्यायों को **(साधून्)** और साधुओं को **(च रत्नत्रयं)** तथा रत्नत्रय को **(रत्नत्रय-सिद्धये)** रत्नत्रय की सिद्धि के लिए **(भक्त्या)** भक्ति से **(वन्दे)** नमस्कार करता हूँ।

पान्तु श्रीपाद-पद्मानि पञ्चानां परमेष्ठिनाम्।
लालितानि सुराधीश-चूड़ामणि - मरीचिभिः ॥१०॥

अन्वयार्थ—(सुराधीश-चूड़ामणि-मरीचिभिः) इन्द्र के चूड़ामणि की किरणों से **(लालितानि)** सेवित **(पञ्चानां परमेष्ठिनां)** पाँचों परमेष्ठियों के **(श्रीपाद-पद्मानि)** श्री चरण कमल **(पान्तु)** रक्षा करें।

प्रातिहार्यैर्जिनान् सिद्धान् गुणैः सूरीन् स्वमातृभिः।
पाठकान् विनयैः साधून् योगाङ्गैः-रष्टभिः स्तुवे ॥११॥

अन्वयार्थ—(जिनान्) जिनेन्द्र भगवान् की **(प्रातिहार्यैः)** प्रतिहार्यों से **(सिद्धान्)** सिद्धों की **(गुणैः)** गुणों से **(सूरीन्)** आचार्यों को **(स्वमातृभिः)** अपनी मातृकाओं से **(पाठकान्)** उपाध्यायों को **(विनयैः)** विनय से **(साधून्)** साधुओं को **(अष्टभिः)** आठ **(योगाङ्गैः)** योगों से **(स्तुवे)** स्तुति करता हूँ।

अञ्चलिका

इच्छामि भंते! पंचमहागुरु-भत्ति-काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं, अट्ठ-महा-पाडिहेर-संजुत्ताणं अरहंताणं, अट्ठगुण-संपण्णाणं, उड्ढलोय-मत्थयम्मि पइट्ठियाणं सिद्धाणं, अट्ठ-पवयण-माउया-संजुत्ताणं आइरियाणं, आयारादि सुदणाणोवदेसयाणं उवज्झायाणं, ति-रयण-गुण पालणरदाणं सव्वसाहूणं, णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिण-गुणसंपत्ति होउ मज्झं।

अन्वयार्थ—(भंते!) हे भगवन्! मैंने **(पंचमहागुरु-भत्ति-काउस्सग्गो कओ)** पंच महागुरु भक्ति का कायोत्सर्ग किया है **(तस्स आलोचेउं)** उसकी मैं आलोचना करने की **(इच्छामि)** इच्छा करता हूँ **(अट्ठ-महा-पाडिहेर-संजुत्ताणं अरहंताणं)** अष्ट-महा प्रातिहार्यों से युक्त अरहन्त **(अट्ठगुण-संपण्णाणं)** अष्ट गुणों से सम्पन्न तथा **(उड्ढलोय-मत्थयम्मि पइट्ठियाणं सिद्धाणं)** ऊर्ध्व लोक के मस्तक पर प्रतिष्ठित सिद्ध **(अट्ठ-**

पवयण-माउया-संजुत्ताणं आइरियाणं) अष्ट प्रवचन मातृकाओं से युक्त आचार्य **(आयारादि सुदणाणोवदेसयाणं उवज्झायाणं)** आचारांग आदि श्रुतज्ञान का उपदेश देने वाले उपाध्याय और **(तिरयण-गुण पालणरदाणं सव्वसाहूणं)** रत्नत्रय गुणों के पालन में रत सभी साधु परमेष्ठी की मैं **(सया)** सदा **(णिच्चकालं)** नित्य सदा काल **(अंचेमि)** अर्चना करता हूँ **(पूजेमि)** पूजा करता हूँ **(वंदामि)** मैं वन्दना करता हूँ **(णमंसामि)** नमस्कार करता हूँ **(दुक्खक्खओ)** मेरे दुःखों का क्षय हो **(कम्मक्खओ)** मेरे कर्मों का क्षय हो **(बोहिलाओ)** मुझे बोधि का लाभ हो (**सुगइगमणं)** मेरा सुगति में गमन हो **(समाहिमरणं)** मेरा समाधिमरण हो तथा **(जिणगुण-संपत्ति होउ मज्झं)** जिनेन्द्र भगवान् के गुण रूपी सम्पत्ति मुझे प्राप्ति हो।

शान्तिभक्ति

न स्नेहाच्छरणं प्रयान्ति भगवन्! पादद्वयं ते प्रजाः
हेतुस्तत्र विचित्र-दुःखनिचयः संसार - घोरार्णवः।
अत्यन्त-स्फुरदुग्र - रश्मिनिकर-व्याकीर्ण-भूमण्डलो,
ग्रैष्मः कारयतीन्दु-पादसलिलच्-छायानुरागं रविः ॥१॥

अन्वयार्थ—(भगवन्) हे भगवन् **(प्रजाः)** यह भव्य लोग **(स्नेहात्)** स्नेह से **(ते)** आपके **(पादद्वयं)** दोनों चरणों की **(शरणं)** शरण को **(न प्रयान्ति)** प्राप्त नहीं होते हैं **(तत्र)** उसमे **(विचित्रदुःख-निचयः)** विचित्रदुःख समूह से युक्त **(संसार-घोरार्णवः)** संसाररूपी भयङ्कर समुद्र **(हेतुः)** कारण है क्योंकि **(अत्यन्तस्फुरदुग्र-रश्मि-निकर-व्याकीर्ण-भूमण्डलः)** अत्यन्त दैदीप्यमान उग्र किरण समूह से पृथ्वीतल को व्याप्त करने वाला **(ग्रैष्मः रविः)** ग्रीष्मकालीन सूर्य **(इन्दुपाद-सलिल-च्छायानुरागं)** चन्द्रकिरण, पानी तथा छाया से अनुराग **(कारयति)** करा देता है।

क्रुद्धाशीर्विष-दष्ट - दुर्जय - विष - ज्वालावली - विक्रमो
विद्या-भेषज-मन्त्र-तोय-हवनै- र्याति प्रशान्तिं यथा।
तद्वत्ते चरणारुणाम्बुज-युगस्तोत्रोन्मुखानां नृणां
विघ्नाः कायविनायकाश्च सहसा शाम्यन्त्यहो विस्मयः ॥२॥

अन्वयार्थ—(यथा) जिस प्रकार **(क्रूद्धाशी-र्विष-दष्ट-दुर्जय-विष-ज्वालावली-विक्रमः)** क्रूद्ध आशीःविष सर्प से डसे मनुष्य को दुर्जय विष-ज्वाला समूह का प्रभाव **(विद्या-भेषज-मन्त्र-तोयहवनैः)** विद्या, औषधि, मन्त्र, पानी, हवन के द्वारा **(प्रशान्तिं याति)** शान्ति को प्राप्त हो जाता है। **(तद्वत्)** उसी प्रकार **(ते)** आपके **(चरणारुणाम्बुज-युगस्तोत्रोन्मुखानां)** चरणरूपी लाल कमल युगल की स्तुति में उन्मुख हुए **(नृणां)** मनुष्यों के **(विघ्नाः)** विघ्न **(कायविनायकाः च)** और शरीर सम्बन्धी रोग **(सहसा)** शीघ्र ही **(शाम्यन्ति)** शान्त हो जाते हैं। **(अहो! विस्मयः)** यह बड़ा आश्चर्य है।

सन्तप्तोत्तम - काञ्चन - क्षितिधर-श्रीस्पर्द्धि-गौरद्युते
पुंसां त्वच्चरण-प्रणाम-करणात् पीडाः प्रयान्ति क्षयम्।
उद्यद्भास्कर - विस्फुरत्कर - शत - व्याघात - निष्कासिता
नाना देहि विलोचन-द्युतिहरा शीघ्रं यथा शर्वरी ॥३॥

अन्वयार्थ—(सन्तप्तोत्तम-काञ्चन-क्षितिधर-श्रीस्पर्धि-गौरद्युते) तपे हुए श्रेष्ठ स्वर्ण पर्वत की शोभा से स्पर्धा करने वाले पीत कान्ति युक्त जिनेश्वर **(त्वच्चरण-प्रणाम-करणात्)** आपके चरणों में प्रणाम करने से **(पुंसां)** मनुष्यों की **(पीडाः)** पीड़ाएँ **(तथा)** उसी तरह **(क्षयं प्रयान्ति)** क्षय को प्राप्त हो जाती हैं **(यथा)** जिस तरह **(उद्यद्-भास्कर-विस्फुरत्-कर-शत-व्याघात-निष्कासिता)** उदय हुए सूर्य की स्फुरायमान सैकड़ों किरणों के आघात से निकली हुई **(नाना देहि-विलोचन-द्युतिहरा)** अनेक प्राणियों के नेत्रों की कान्ति को हरने वाली **(शर्वरी)** रात्रि **(शीघ्रं)** शीघ्र ही क्षय को प्राप्त हो जाती है।

त्रैलोक्येश्वर-भङ्ग-लब्ध-विजया - दत्यन्त - रौद्रात्मकान्
नाना - जन्म-शतान्तरेषु पुरतो जीवस्य संसारिणः।
को वा प्रस्खलतीह केन विधिना कालोग्र-दावानलान्
न स्याच्चेत्तव पाद-पद्म-युगल-स्तुत्यापगा-वारणम् ॥४॥

अन्वयार्थ—(त्रैलोक्येश्वर-भङ्ग-लब्ध-विजयात्) तीन लोक के स्वामियों के नाश से विजय प्राप्त करने से **(अत्यन्त-रौद्रात्मकात्)** अत्यन्त रौद्रात्मक **(कालोग्र-दावानलात्)** काल रूपी उग्र दावानल से

(नानाजन्म-शतान्तरेषु) अनेक प्रकार के सैकड़ों जन्मों के बीच **(इह)** इस जगत् में **(कः वा केन विधिना)** कौन, किस विधि से **(प्रस्खलति)** बचा सकता है ? **(चेत्)** यदि **(संसारिणः जीवस्य)** संसारी जीव के **(पुरतः)** आगे **(तव)** आपके **(पाद-पद्म-युगल-स्तुत्यापगा)** चरण युगल की स्तुतिरूपी नदी **(वारणं न)** निवारण करने वाली नहीं होती।

लोकालोक-निरन्तर-प्रविततज्ञानैक-मूर्त्ते विभो!
नाना-रत्न-पिनद्ध-दण्ड-रुचिर-श्वेतात-पत्रत्रय।
त्वत्पाद-द्वय-पूत-गीत-रवतः शीघ्रं द्रवन्त्यामयाः
दर्पाध्मात-मृगेन्द्रभीम-निनदाद् वन्या यथा कुञ्जराः ॥५॥

अन्वयार्थ—(लोकालोक-निरन्तर-प्रविततज्ञानैक-मूर्ते) लोक और अलोक में निरन्तर फैले हुए ज्ञान की एक मूर्ति स्वरूप भगवन् **(नानारत्न-पिनद्ध-दण्ड-रुचिर-श्वेतातपत्रत्रय)** अनेक रत्नों से जड़ित दण्ड से मनोहर सफेद तीन छत्रों के धारक **(विभो!)** हे प्रभो! **(त्वत्पाद-द्वय-पूत-गीत-रवतः)** आपके चरण युगल में पवित्र गीत के शब्दों से **(आमयाः)** रोग **(तथा)** उसी तरह **(शीघ्रं)** शीघ्र **(द्रवन्ति)** दूर हो जाते हैं **(यथा)** जिस प्रकार **(दर्पाध्मात-मृगेन्द्र-भीम-निनदात्)** दर्प युक्त सिंह के भयानक निनाद से **(वन्याः कुञ्जराः)** जंगली हाथी चले जाते हैं।

दिव्य-स्त्री-नयनाभिराम विपुल-श्रीमेरु-चूडामणे
भास्वद्-बाल-दिवाकर-द्युति-हर-प्राणीष्ट-भामण्डल।
अव्याबाध-मचिन्त्य-सार-मतुलं त्यक्तोपमं शाश्वतं।
सौख्यं त्वच्चरणारविन्द-युगल-स्तुत्यैव संप्राप्यते ॥६॥

अन्वयार्थ—(दिव्यस्त्रीनयनाभिराम!) हे देवांगनाओं के नयन वल्लभ! **(विपुल-श्रीमेरु-चूडामणे!)** विपुल वैभव के श्रेष्ठ चूड़ामणि! **(भास्वद्-बाल-दिवाकर-द्युतिहर-प्राणीष्ट-भामण्डल!)** सुशोभित बाल भानु की कान्ति को हरने वाले प्राणियो को इष्ट भामण्डल स्वरूप भगवन्! **(त्वच्चरणार-विन्दयुगल-स्तुत्या एव)** आपके चरण कमल युगल की स्तुति से ही **(अव्याबाधं)** अव्याबाध **(अचिन्त्यसारं)** अचिन्त्य सारभूत **(अतुलं)** अतुलनीय **(त्यक्तोपमं)** उपमा रहित **(शाश्वतं)** शाश्वत **(सौख्यं)**

सुख **(संप्राप्यते)** प्राप्त होता है।

यावन्नोदयते प्रभापरिकरः श्रीभास्करो भासयंस्
तावद् धारयतीह पङ्कज-वनं निद्रातिभार-श्रमम्।
यावत्त्वच्चरण-द्वयस्य भगवन्! न स्यात् प्रसादोदयस् -
तावज्जीव-निकाय एष वहति प्रायेण पापं महत् ॥७॥

अन्वयार्थ—(प्रभापरिकरः) प्रभा मण्डल से सहित **(श्रीभास्करः)** शोभायमान सूर्य **(भासयन्)** प्रकाश देता हुआ **(यावन् न उदयते)** जब तक उदित नहीं होता **(तावत्)** तब तक **(इह)** इस लोक में **(पङ्कजवनं)** कमल वन **(निद्रातिभार-श्रमं)** निद्रा के अति भार वाले श्रम को **(धारयति)** धारण करता है। उसी प्रकार **(भगवन्)** हे भगवन् **(यावत्)** जब तक **(त्वच्चरण-द्वयस्य)** आपके दोनों चरणों के **(प्रसादोदयः)** प्रसाद का उदय **(न स्यात्)** नहीं होता है **(तावत्)** तब तक **(एष जीव-निकायः)** यह जीव समूह **(प्रायेण)** प्रायः **(पापं महत्)** महान् पाप को **(वहति)** धारण करता है।

शान्तिं शान्तिजिनेन्द्र-शान्तमनसस् त्वत्पाद-पद्माश्रयात्
सम्प्राप्ताः पृथिवी-तलेषु बहवः शान्त्यर्थिनः प्राणिनः।
कारुण्यान् मम भाक्तिकस्य च विभो!दृष्टिं प्रसन्नां कुरु
त्वत्पादद्वय-दैवतस्य गदतः शान्त्यष्टकं भक्तितः ॥८॥

अन्वयार्थ—(पृथिवी-तलेषु) इस पृथ्वी तल पर **(शान्तमनसः)** शान्त मन वाले **(शान्त्यर्थिनः)** शान्ति से प्रयोजन वाले के इच्छुक **(बहवः प्राणिनः)** बहुत से प्राणी **(शान्ति-जिनेन्द्र!)** हे शान्तिनाथ जिनेन्द्र! **(त्वत्पाद-पद्मा-श्रयात्)** आपके चरण कमलों के आश्रय से **(शान्तिं संप्राप्ताः)** शान्ति को प्राप्त हुए हैं। **(विभो!)** हे भगवन् **(त्वत्पाद-द्वय-दैवतस्य)** आपके चरण-युगल ही जिसे आराध्य हैं ऐसे **(मम भाक्तिकस्य)** मुझ भक्त का **(च)** तथा **(भक्तितः)** भक्ति से **(शान्त्यष्टकं गदतः)** शान्त्यष्टक पढ़ने वाले को **(कारुण्यात्)** करुणा से **(प्रसन्नां)** प्रसन्न **(दृष्टिं)** दृष्टि **(कुरु)** करो।

शान्तिजिनं शशि-निर्मल-वक्त्रं शीलगुण-व्रतसंयमपात्रम्।
अष्टशतार्चित-लक्षणगात्रं नौमि जिनोत्तममम्बुजनेत्रम् ॥९॥

अन्वयार्थ—(शशि-निर्मल-वक्त्रं) चन्द्रमा के समान निर्मल मुख, **(शील-गुण-व्रत-संयम-पात्रं)** शील, गुण, व्रत, संयम के आधार **(अष्ट-शतार्चित-लक्षण-गात्रं)** एक सौ आठ लक्षणों से सुशोभित शरीर वाले **(जिनोत्तमं)** जिनदेवों में श्रेष्ठ **(अम्बुजनेत्रं)** कमल सम नेत्र वाले **(शान्तिजिनं)** शान्तिनाथ जिनेन्द्र को **(नौमि)** मैं नमस्कार करता हूँ।

पञ्चममीप्सित-चक्रधराणां पूजितमिन्द्र-नरेन्द्रगणैश्च।
शान्तिकरं गणशान्तिमभीप्सुः षोडशतीर्थकरं प्रणमामि ॥१०॥

अन्वयार्थ—(ईप्सित-चक्रधराणां) इच्छित चक्रवर्तियों में **(पञ्चमं)** जो पाँचवें चक्रवर्ती हैं। **(इन्द्रनरेन्द्र-गणैश्च)** इन्द्र और नरेन्द्रों के समूह से **(पूजितं)** पूजित **(शान्तिकरं)** शान्ति को करने वाले **(षोडश तीर्थकरं)** सोलहवें तीर्थंकर को **(गणशान्तिं अभीप्सुः)** गण की शान्ति का इच्छुक **(प्रणमामि)** मैं नमस्कार करता हूँ।

दिव्यतरुः सुर-पुष्प-सुवृष्टि - र्दुन्दुभिरासन-योजन-घोषौ।
आतपवारण-चामरयुग्मे यस्य विभाति च मण्डलतेजः ॥११॥
तं जगदर्चित-शान्ति-जिनेन्द्रं शान्तिकरं शिरसा प्रणमामि।
सर्वगणाय तु यच्छतु शान्तिं मह्यमरं पठते परमां च ॥१२॥

अन्वयार्थ—(यस्य) जिनके **(दिव्यतरुः)** अशोकवृक्ष **(सुर-पुष्प-सुवृष्टिः)** देवों के द्वारा उत्तम पुष्पवृष्टि **(दुन्दुभिः)** दुन्दुभिवादन **(आसन-योजन-घोषौ)** सिंहासन और एक योजन तक दिव्यध्वनि **(आतप-वारण-चामर युग्मे)** छत्र, चमरयुगल **(च मण्डलतेजः)** और भामण्डल का तेज **(विभाति)** सुशोभित है **(तं)** उन **(जगदर्चित-शान्ति-जिनेन्द्रं)** जगत् पूज्य शान्ति जिनेन्द्र को जो कि **(शान्तिकरं)** शान्ति करने वाले हैं **(शिरसा)** शिर झुकाकर **(प्रणमामि)** नमस्कार करता हूँ। **(सर्वगणाय)** समस्त संघ के लिए **(शान्तिं यच्छतु)** शान्ति प्रदान करें। **(तु)** और **(पठते मह्यं)** मुझ पढ़ने वाले को **(अरं)** शीघ्र **(परमां च)** उत्कृष्ट शान्ति दीजिए।

येऽभ्यर्चिता मुकुट-कुण्डल-हार-रत्नैः,
शक्रादिभिः सुरगणैः स्तुत-पादपद्माः।

ते मे जिनाः प्रवर-वंश-जगत्प्रदीपास्
तीर्थङ्कराः सतत शान्तिकरा भवन्तु ॥१३॥

अन्वयार्थ— (ये) जो **(शक्रादिभिः)** इन्द्रादि के **(मुकुट-कुण्डल-हार-रत्नैः)** मुकुट-कुण्डल-हार और रत्नों से **(अभ्यर्चिताः)** पूजित हैं। **(सुरगणैः)** देवसमूह से **(स्तुत-पाद-पद्माः)** जिनके चरणकमल स्तुत हैं। **(प्रवर-वंश-जगत्प्रदीपाः)** श्रेष्ठ वंश और जगत् के प्रदीप **(ते जिनाः)** वह जिनदेव **(तीर्थङ्कराः)** तीर्थंकर **(मे)** मेरे लिए **(सतत-शान्तिकराः भवन्तु)** हमेशा शान्ति करने वाले होवे।

संपूजकानां प्रतिपालकानां यतीन्द्र-सामान्य-तपोधनानाम्।
देशस्य राष्ट्रस्य पुरस्य राज्ञः करोतु शान्तिं भगवान् जिनेन्द्रः ॥१४॥

अन्वयार्थ—(संपूजकानां) सम्यक् प्रकार से पूजा करने वालों को **(प्रति-पालकानां)** प्रतिपालको को **(यतीन्द्र-सामान्य-तपोधनानां)** यतीन्द्र और सामान्य तपस्वी को **(देशस्य)** देश को **(राष्ट्रस्य)** राष्ट्र को **(पुरस्य राज्ञः)** नगर और राजा को **(भगवान् जिनेन्द्रः)** जिनेन्द्र भगवान् **(शान्तिं करोतु)** शान्ति करें।

क्षेमं सर्वप्रजानां, प्रभवतु बलवान् धार्मिको भूमिपालः
काले काले च सम्यग् वितरतु मघवा व्याधयो यान्तु नाशम्।
दुर्भिक्षं चौरिमारिः क्षणमपि जगतां मास्मभूज्जीव-लोके
जैनेन्द्रं धर्मचक्रं प्रभवतु सततं सर्व-सौख्य-प्रदायि ॥१५॥

अन्वयार्थ—(सर्वप्रजानां क्षेमं) समस्त प्रजा का कल्याण हो **(भूमिपालः बलवान्)** राजा बलवान् **(धार्मिकः प्रभवतु)** तथा धार्मिक हो **(काले-काले च)** समय-समय पर **(सम्यग् मघवा वितरतु)** समीचीन मेघ वर्षा हो, **(व्याधयः नाशं यान्तु)** रोग नाश को प्राप्त हो **(जीवलोके)** जीव लोक में **(दुर्भिक्षं चौरमारिः)** दुर्भिक्ष, चोरी, मारी आदि रोग **(जगतां)** संसार मे **(मास्म भूत्-क्षणमपि)** क्षण भर भी न हो। **(जैनेन्द्रं धर्मचक्रं)** जिनेन्द्र भगवान् का धर्म चक्र **(सततं)** सतत **(सर्वसौख्यप्रदायि)** सर्व सुखदायी **(प्रभवतु)** होवे।

तद् द्रव्यमव्ययमुदेतु शुभःस देशः,
सन्तन्यतां प्रतपतां सततं स कालः।

भावः स नन्दतु सदा यदनुग्रहेण,
रत्नत्रयं प्रतपतीह मुमुक्षुवर्गे ॥१६॥

अन्वयार्थ–(तद् द्रव्यं) वह द्रव्य **(अव्ययं)** अविनाशी **(उदेतु)** होवे **(सः देशः)** वह देश **(शुभः)** शुभ का **(सन्तन्यतां)** विस्तार करे **(सततं)** निरंतर **(सः कालः)** वह काल **(प्रतपताम्)** समृद्धि करे **(सदा)** हमेशा **(स भावः)** वह भाव रहे **(यदनुग्रहेण)** जो अनुग्रह से **(नन्दतु)** वृद्धिंगत **(इह)** इस लोक में **(मुमुक्षुवर्गे)** मुमुक्षु वर्ग में **(रत्नत्रयं)** रत्नत्रय **(प्रतपति)** फैलता रहे।

अनुष्टुप्

प्रध्वस्त - घाति - कर्माणः केवल-ज्ञानभास्कराः।
कुर्वन्तु जगतां शान्तिं वृषभाद्या जिनेश्वराः ॥१७॥

अन्वयार्थ–(प्रध्वस्तघातिकर्माणः) घातिकर्म का नाश करने वाले **(केवलज्ञानभास्कराः)** केवलज्ञान रूपी सूर्य **(वृषभाद्या जिनेश्वराः)** वृषभ आदि जिनेश्वर **(जगतां)** जगत् में **(शान्तिम्)** शान्ति **(कुर्वन्तु)** करें।

क्षेपक श्लोकानि

शान्ति शिरोधृत जिनेश्वर शासनानां,
शान्तिः निरन्तर तपोभव भावितानां।
शान्तिः कषाय जय जृम्भित वैभवानां,
शान्तिः स्वभाव महिमानमुपागतानाम् ॥१॥

अन्वयार्थ–(जिनेश्वर शासनानाम्) जिनेन्द्रदेव की आज्ञा को **(शिरोधृत)** मस्तक पर धारण करने वालों को **(शान्तिः)** शान्ति प्राप्ति हो **(निरन्तर तपोभव भावितानाम्)** अखण्ड तपश्चरण कर मोक्ष की आराधना करने वालों को **(शान्तिः)** शान्ति प्राप्त हो/कल्याण हो **(कषाय जय जृम्भित वैभवानाम्)** कषायों को जीतकर आत्मिक वैभव से शोभायमान मुनियों को **(शान्तिः)** समता रस की प्राप्ति हो **(स्वभाव महिमानमुपागतानाम्)** आत्मा के स्वभाव की महिमा को प्राप्त ऐसे यतियों को **(शान्तिः)** सिद्ध अवस्था प्राप्त हो/उनका कल्याण हो।

जीवन्तु संयम सुधारस पान तृप्ता,
नन्दन्तु शुद्धं सहसोदय सुप्रसन्नाः।

सिद्ध्यन्तु सिद्धि सुख सङ्गकृताभियोगाः,
तीव्रं तपन्तु जगतां त्रितयेऽर्हदाज्ञा ॥२॥

अन्वयार्थ–(संयम सुधारस पानतृप्ता) संयम रूपी अमृत को पीकर तृप्त हुए मुनिवर्ग **(जीवन्तु)** सदा जीवन्त रहें **(शुद्ध सहसोदय सुप्रसन्नाः)** शुद्ध आत्मतत्त्व की जागृति से प्रसन्नता को प्राप्त मुनि जन **(नन्दन्तु)** आनन्द को प्राप्त हों **(सिद्धि सुख सङ्गकृताभियोगाः)** सिद्धि लक्ष्मी के सुख के लिए किया है पुरुषार्थ/उद्योग जिनने वे उसके माहात्म्य से **(सिद्ध्यन्तु)** सिद्धि को प्राप्त हों **(त्रितये)** तीन लोक में **(अर्हत् आज्ञा)** अर्हन्त देव की आज्ञा उनका शासन **(जगतां)** सर्वत्र/पृथ्वी तल पर **(तीव्रं तपन्तु)** विशेष प्रभाव प्रकट हो।

शान्तिः शं तनुतां समस्त जगतः, संगच्छतां धार्मिकैः।
श्रेयः श्री परिवर्धतां नयधरा, धुर्यो धरित्रीपतिः॥
सद्वियारसमुद्गिरन्तु कवयो, नानाप्यघस्यास्तु मां।
प्रार्थ्यं वा कियदेक एव, शिवकृद्धर्मो जयत्वर्हताम्॥३॥

अन्वयार्थ–(शान्तिः) शान्तिनाथ तीर्थंकर **(समस्त जगतः तनुतां)** सम्पूर्ण जगत् के प्राणियों को **(शं संगच्छतां)** सुखी करो **(धार्मिकैः)** धर्मात्मा जीवों को **(श्रेयः श्री परिवर्धतां)** कल्याणकारी स्वर्ग-मुक्ति लक्ष्मी प्रदान करो **(नयधरा)** नीति की जगत् में बाढ़ हो **(धरित्रीपतिः धुर्यो)** राजा पराक्रमी-शूर-वीर हो **(सद्वियारसम् उद्गिरन्तु कवयो)** विद्वत् जनों में समीचीन/उत्तम विद्या [लोक में] प्रसार करो **(नाम अपि अघस्य आस्तु मां)** पाप का नाम भी देखने का न रहे/पाप का समूल नाश हो **(वा)** और **(प्रार्थ्यं कियत्)** माँगने के लिए क्या **(एक एव)** एक ही हो **(अर्हताम्)** जिनेश्वर का **(शिवकृत् धर्मः)** मोक्षदायक धर्म **(जयतु)** जयवन्त हो।

अञ्चलिका

इच्छामि भंते! संतिभत्ति-काउस्सग्गो कओ, तस्सालोचेउं, पंच-महा-कल्लाण-संपण्णाणं अट्ठ-महापाडिहेर-सहियाणं चउतीसातिसय-विसेस-संजुत्ताणं, बत्तीस-देवेंद-मणिमय-मउड-मत्थय-महियाणं बलदेव - वासुदेव - चक्कहर-रिसि-मुणि-जदि-अणगारोवगूढाणं,

थुइ-सय-सहस्स-णिलयाणं, उसहाइ-वीर-पच्छिम-मंगल-महा-पुरिसाणं णिच्चकालं, अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाओ, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुण-संपत्ति होउ मज्झं।

अन्वयार्थ—(भंते!) हे भगवन्! मैंने **(संतिभत्ति-काउस्सग्गो कओ)** शान्तिभक्ति का कायोत्सर्ग किया **(तस्स आलोचेउं)** तत्सम्बन्धी आलोचना करने की **(इच्छामि)** इच्छा करता हूँ। जो **(पंचमहाकल्लाण-संपण्णाणं)** पाँच महाकल्याणकों से सम्पन्न हैं **(अट्ठ-महापाडिहेर-सहियाणं)** अष्ट महा प्रातिहार्यों से सहित हैं **(चउतीसातिसय-विसेस-संजुत्ताणं)** चौंतीस अतिशय विशेष से सहित हैं **(बत्तीस-देवेंद-मणिमय-मउड-मत्थय-महियाणं)** बत्तीस देवेन्द्रों के मणि युक्त माथे पर लगे मुकुटों से जो पूजित हैं **(बलदेव-वासुदेव-चक्कहर-रिसि-मुणि-जदि-अणगारोवगूढाणं)** बलदेव, वासुदेव, चक्रवर्ती, ऋषि, मुनि, यति और अनगार से घिरे हुए हैं, **(थुइ-सय-सहस्स-णिलयाणं)** लाखों स्तुतियों के जो निलय हैं ऐसे **(उसहाइ-वीर-पच्छिम-मंगल-महा-पुरिसाणं)** ऋषभ आदि अन्तिम महावीर तक मंगल महापुरुषों की मैं **(णिच्चकालं)** नित्य सदा काल **(अंचेमि)** अर्चना करता हूँ **(पूजेमि)** पूजा करता हूँ **(वंदामि)** मैं वन्दना करता हूँ **(णमंसामि)** नमस्कार करता हूँ **(दुक्खक्खओ)** मेरे दुःखों का क्षय हो **(कम्मक्खओ)** मेरे कर्मों का क्षय हो **(बोहिलाओ)** मुझे बोधि का लाभ हो (**सुगइगमणं**) मेरा सुगति में गमन हो **(समाहिमरणं)** मेरा समाधिमरण हो तथा **(जिणगुण-संपत्ति होउ मज्झं)** जिनेन्द्र भगवान् के गुण रूपी सम्पत्ति मुझे प्राप्ति हो।

❑ ❑ ❑

समाधिभक्ति

स्वात्माभिमुख-संवित्ति-लक्षणं श्रुत-चक्षुषा।
पश्यन्पश्यामि देव त्वां केवलज्ञान-चक्षुषा॥

अन्वयार्थ—(देव) हे देव! **(श्रुतचक्षुषा)** श्रुतज्ञानरूपी नेत्र से **(स्वात्माभि-मुख-संवित्ति-लक्षणं)** स्वात्मा के अभिमुख संवेदन के लक्षण को **(पश्यन्)** देखता हुआ **(त्वां)** हे भगवन् आपको **(केवलज्ञानचक्षुषा)**

केवलज्ञान की आँख से **(पश्यामि)** देखता हूँ।

शास्त्राभ्यासो जिनपति-नुतिः सङ्गतिः सर्वदार्यैः।
सद्वृत्तानां गुणगण-कथा दोषवादे च मौनम् ॥१॥
सर्वस्यापि प्रिय-हित-वचो भावना चात्मतत्त्वे।
सम्पद्यन्तां मम भव-भवे यावदेतेऽपवर्गः ॥२॥

अन्वयार्थ—(शास्त्राभ्यासः) शास्त्र का अभ्यास हो **(जिनपतिनुतिः)** जिनेन्द्रदेव को नमस्कार हो **(सर्वदा)** हमेशा **(आर्यैः सङ्गतिः)** आर्य पुरुषों की संगति हो **(सद्वृत्तानां)** समीचीन चारित्र वालो के **(गुण-गणकथा)** गुण समूह की कथा हो **(दोषवादे च)** और दोषों के कहने में **(मौनम्)** मौन हो **(सर्वस्य अपि)** सभी से **(प्रियहितवचः)** प्रिय, हित वचन कहूँ **(च)** और **(आत्मतत्त्वे)** आत्म तत्त्व में **(भावना)** भावना हो। **(मम)** मुझे **(भव-भवे)** प्रत्येक भव में **(एते)** ये चीजें **(सम्पद्यन्ताम्)** प्राप्त होवे **(यावत्)** जब तक कि **(अपवर्गः)** मोक्ष न होवे।

जैनमार्ग-रुचिरन्यमार्ग-निर्वेगता जिनगुण-स्तुतौ मतिः।
निष्कलंकविमलोक्तिभावनाः सम्भवन्तु मम जन्मजन्मनि ॥३॥

अन्वयार्थ— (मम) मुझे **(जन्मजन्मनि)** जन्म जन्म में **(जैन-मार्ग-रुचिः)** जैन मार्ग में रुचि **(अन्यमार्गनिर्वेगता)** अन्य मार्ग में निर्वेगता **(जिनगुण-स्तुतौ)** जिनदेव के गुणों की स्तुति में **(मतिः)** बुद्धि तथा **(निष्कलंक-विमलोक्ति-भावनाः)** निष्कलंक, निर्मल जिनवाणी में भावना **(सम्भवन्तु)** होवे।

गुरुमूले यति-निचिते - चैत्यसिद्धान्त वार्धिसद्घोषे।
मम भवतु जन्मजन्मनि संन्यसनसमन्वितं मरणम् ॥४॥

अन्वयार्थ—(गुरुमूले) गुरु चरणों में **(यतिनिचिते)** यतियों के समूह में **(चैत्य-सिद्धान्त-वार्धि-सद्घोषे)** चैत्य और सिद्धान्त समुद्र का समीचीन घोष होने वाले स्थान पर **(संन्यसन-समन्वितं)** संन्यास के साथ **(मम)** मेरा **(जन्म-जन्मनि)** जन्म-जन्म में **(मरणम्)** मरण **(भवतु)** होवे।

जन्म - जन्म - कृतं - पापं जन्मकोटि - समार्जितम्।
जन्म - मृत्यु - जरा - मूलं हन्यते जिनवन्दनात् ॥५॥

अन्वयार्थ—(जिनवन्दनात्) जिनदेव की वन्दना से **(जन्म-जन्मकृतम्)**

जन्म, जन्म में किए **(जन्म-कोटि-समार्जितम्)** तथा करोड़ों जन्मों में अर्जित किए **(पापं)** पाप **(जन्म-मृत्यु-जरा-मूलं)** और जन्म, मृत्यु, बुढ़ापे को मूल जड़ **(हन्यते)** नष्ट हो जाती है।

आबाल्याज्जिनदेवदेव! भवतः श्रीपादयोः सेवया,
सेवासक्त-विनेयकल्प-लतया कालोऽद्ययावद्गतः।
त्वां तस्याः फलमर्थये तदधुना प्राणप्रयाणक्षणे,
त्वन्नाम-प्रतिबद्ध-वर्णपठने कण्ठोऽस्त्व-कुण्ठो मम ॥६॥

अन्वयार्थ–(जिन) हे जिन भगवान् **(देवदेव!)** हे देवों के देव! **(आबाल्यात्)** बाल्यावस्था से **(अद्ययावद्)** आज तक **(भवतः)** आपके **(श्रीपादयोः)** श्री चरणों की **(सेवासक्त-विनेय-कल्पलतया)** सेवा में आसक्त शिष्यों को कल्पलता सम **(सेवया)** सेवा से **(कालः गतः)** काल व्यतीत हुआ है **(अधुना)** आज **(तस्याः)** उस सेवा का **(तत्फलम्)** वह फल **(त्वाम्)** आपसे **(अर्थये)** चाहता हूँ कि **(प्राणप्रयाणक्षणे)** प्राणों के निकलते समय **(त्वन्नाम-प्रतिबद्ध-वर्ण-पठने)** आपके नाम से सहित अक्षरों के पढ़ने में **(मम)** मेरा **(कण्ठो)** गला **(अकुण्ठः अस्तु)** कुण्ठित न हो।

तव पादौ मम हृदये मम हृदयं तव पदद्वये लीनम्।
तिष्ठतु जिनेन्द्र! तावद् यावन्निर्वाण-सम्प्राप्तिः ॥७॥

अन्वयार्थ–(जिनेन्द्र!) हे जिनेन्द्र भगवन् **(तव)** आपके **(पादौ)** दोनों चरण **(मम)** मेरे **(हृदये)** हृदय में और **(मम)** मेरा **(हृदयं)** हृदय **(तव)** आपके **(पदद्वये)** दोनों चरणों में **(लीनं)** लीन **(तावत्)** तब तक **(तिष्ठतु)** रहे **(यावत्)** जब तक कि **(निर्वाण-सम्प्राप्तिः)** निर्वाण की प्राप्ति न होवे।

एकापि समर्थेयं जिनभक्तिर्दुर्गतिं निवारयितुम्।
पुण्यानि च पूरयितुं दातुं मुक्तिश्रियं कृतिनः ॥८॥

अन्वयार्थ–(एका) एक **(अपि)** ही **(इयं)** यह **(जिनभक्तिः)** जिनभक्ति **(दुर्गतिं)** दुर्गति को **(निवारयितुं)** रोकने में **(समर्था)** समर्थ है **(च)** तथा **(पुण्यानि)** पुण्य को **(पूरयितुं)** पूरने में समर्थ है और **(कृतिनः)** पुण्यशाली को **(मुक्तिश्रियं)** मुक्ति लक्ष्मी **(दातुं)** देने के लिए समर्थ है।

पंच अरिंजयणामे पंच य मदि-सायरे जिणे वंदे।
पंच जसोयरणामे पंच य सीमंदरे वंदे ॥९॥

अन्वयार्थ– (पंच अरिंजयणामे) अरिंजय नाम से पाँच **(पंच य मदिसायरे जिणे)** पाँच मतिसागर नाम में स्थित जिन की **(वंदे)** मैं वन्दना करता हूँ **(पंच जसोहरणामे)** यशोधर नाम से पाँच **(पंच य सीमंदरे)** सीमंधर नाम से पाँच जिनों की **(वंदे)** मैं वन्दना करता हूँ।

रयणत्तयं च वंदे चउवीस जिणे च सव्वदा वंदे।
पंचगुरूणं वंदे चारणचरणं सदा वंदे ॥१०॥

अन्वयार्थ–(रयणत्तयं च) रत्नत्रय की **(वंदे)** मैं वन्दना करता हूँ **(चउवीसजिणे च)** चौबीस जिनों की **(सव्वदा)** सर्व काल **(वंदे)** वन्दना करता हूँ **(पंच गुरूणं)** पंच गुरुओं की **(वंदे)** मैं वन्दना करता हूँ **(चारणचरणं)** चारण ऋद्धिधारी मुनि के चरणों की **(सदा)** सदा **(वंदे)** वन्दना करता हूँ।

अर्हमित्यक्षरं ब्रह्म - वाचकं परमेष्ठिनः।
सिद्धचक्रस्य सद्बीजं सर्वतः प्रणिदध्महे ॥११॥

अन्वयार्थ– (सिद्धचक्रस्य) सिद्ध समूह का और **(परमेष्ठिनः)** सिद्ध परमेष्ठी का **(सद्बीजं)** समीचीन बीज **(ब्रह्मवाचकं)** ब्रह्म वाचक **(अर्हम्)** अर्ह **(इति)** इस प्रकार के **(अक्षरम्)** अक्षर को **(सर्वतः)** सब ओर से **(प्रणिदध्महे)** मैं ध्यान करता हूँ।

कर्माष्टक - विनिर्मुक्तं मोक्षलक्ष्मी - निकेतनम्।
सम्यक्त्वादि - गुणोपेतं सिद्धचक्रं नमाम्यहम् ॥१२॥

अन्वयार्थ– (अहं) मैं **(कर्माष्टकविनिर्मुक्तं)** आठ कर्मों से रहित **(मोक्षलक्ष्मीनिके तनम्)** मोक्ष लक्ष्मी के निवास स्थान **(सम्यक्त्वादिगुणोपेतम्)** सम्यक्त्व आदि गुणों से सहित **(सिद्धचक्रं)** सिद्ध समूह को **(नमामि)** नमस्कार करता हूँ।

आकृष्टिं सुरसम्पदां विदधते मुक्तिश्रियो वश्यता-
मुच्चाटं विपदां चतुर्गतिभुवां विद्वेषमात्मैनसाम्।
स्तम्भं दुर्गमनं प्रति-प्रयततो मोहस्य सम्मोहनं
पायात्पञ्च-नमस्क्रियाक्षरमयी साराधना देवता ॥१३॥

अन्वयार्थ—(पञ्चनमस्क्रियाक्षरमयी) पञ्चनमस्कार मन्त्र के अक्षरमयी **(सा)** वह **(आराधना देवता)** पूज्य देवी **(पायात्)** मेरी रक्षा करें जिस मन्त्र के अक्षर **(सुरसम्पदां)** सुर सम्पदा को **(आकृष्टिं)** आकृष्ट **(विदधते)** करते हैं **(मुक्तिश्रियो)** मुक्ति लक्ष्मी का **(वश्यतां)** वशीकरण करते हैं **(चतुर्गतिभुवां)** चार गति की **(विपदाम्)** विपदाओं का **(उच्चाटं)** उच्चाटन करते हैं **(आत्मैनसां)** आत्मा के पापों का **(विद्वेषम्)** विद्वेष करते हैं। **(दुर्गमनं प्रति)** दुर्गमन के प्रति **(प्रयततः)** प्रयत्न करने वाले को **(स्तम्भं)** स्तम्भन करते हैं **(मोहस्य)** मोह का **(सम्मोहनम्)** सम्मोहन करते हैं।

अनन्तानन्त - संसार - सन्ततिच्छेद-कारणम्।
जिनराज - पदाम्भोज - स्मरणं शरणं मम ॥१४॥

अन्वयार्थ—(अनन्तानन्त-संसार-सन्ततिच्छेदकारणम्) अनन्तानन्त संसार की परम्परा को नाश का कारण **(जिनराज-पदाम्भोजस्मरणं)** जिनेन्द्र भगवान के चरण कमलों का स्मरण ही **(मम)** मेरे लिए **(शरणम्)** शरण है।

अन्यथा शरणं नास्ति त्वमेव शरणं मम।
तस्मात् कारुण्यभावेन रक्ष रक्ष जिनेश्वर! ॥१५॥

अन्वयार्थ— (जिनेश्वर!) हे जिनेश्वर **(मम)** मुझे **(शरणं)** शरण **(अन्यथा)** अन्य प्रकार की **(नास्ति)** नहीं है **(त्वम् एव शरणं)** आप ही शरण हैं **(तस्मात्)** इसलिए **(कारुण्यभावेन)** करुणा भाव से **(रक्ष, रक्ष)** रक्षा करो, रक्षा करो।

न हि त्राता न हि त्राता न हि त्राता जगत्त्रये।
वीतरागात्परो देवो न भूतो न भविष्यति ॥१६॥

अन्वयार्थ— (जगत्त्रये) तीन जगत् में **(त्राता)** रक्षक **(न हि)** नहीं है **(त्राता न हि)** रक्षक नहीं है **(त्राता न हि)** रक्षक नहीं है। **(वीतरागात्)** वीतराग से **(परः)** बढ़कर अन्य **(देवः)** देव **(न भूतः)** न हुआ है **(न भविष्यति)** न होगा।

जिनेभक्ति - र्जिनेभक्ति - र्जिनेभक्ति-र्दिने दिने।
सदा मेऽस्तु सदा मेऽस्तु सदा मेऽस्तु भवे भवे ॥१७॥

अन्वयार्थ—(दिने दिने) प्रतिदिन **(भवे भवे)** प्रत्येक भव में **(जिने)**

भगवान् में **(भक्तिः)** भक्ति **(जिने भक्तिः)** जिनेन्द्र भगवान् में भक्ति **(जिने भक्तिः)** जिनेन्द्र भगवान् में भक्ति **(सदा)** सदा **(मे अस्तु)** मेरी रहे **(सदा)** सदा **(मे अस्तु)** मेरी रहे **(सदा)** सदा **(मे अस्तु)** मेरी बनी रहे।

याचेऽहं याचेऽहं जिन! तव चरणारविन्दयोर्भक्तिम्।
याचेऽहं याचेऽहं पुनरपि तामेव तामेव ॥१८॥

अन्वयार्थ– (जिन!) हे जिनदेव **(तव)** आपके **(चरणारविन्दयोः)** चरण कमलों की **(भक्तिं)** भक्ति की **(याचेऽहं)** मैं याचना करता हूँ **(याचेऽहं)** मैं याचना करता हूँ **(पुनरपि)** पुनः **(तामेव)** उसी भक्ति की **(तामेव)** उसी भक्ति की **(याचेऽहं)** मैं याचना करता हूँ **(याचेऽहं)** मैं याचना करता हूँ।

विघ्नौघाः प्रलयं यान्ति शाकिनी - भूत - पन्नगाः।
विषं निर्विषतां याति स्तूयमाने जिनेश्वरे ॥१९॥

अन्वयार्थ–(जिनेश्वरे) जिनेश्वर की **(स्तूयमाने)** स्तुति किये जाने पर **(विघ्नौघाः)** विघ्न समूह **(शाकिनीभूत-पन्नगाः)** शाकिनी, भूत, सर्प **(प्रलयं)** प्रलय को **(यान्ति)** प्राप्त हो जाते हैं। **(विषं)** तथा विष **(निर्विषताम्)** निर्विषपने को **(याति)** प्राप्त हो जाता है।

अञ्चलिका

इच्छामि भंते! समाहिभत्ति काउस्सग्गो कओ, तस्सालोचेउं, रयणत्तय-सरूवपरमप्पज्झाण-लक्खणं समाहि-भत्तीए णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाओ, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुण-संपत्ति होउ मज्झं।

अन्वयार्थ–(भंते!) हे भगवन्! मैंने **(समाहिभत्ति काउस्सग्गो कओ)** समाधिभक्ति का कायोत्सर्ग किया है **(तस्स आलोचेउं)** उस सम्बन्धी आलोचना करने की **(इच्छामि)** इच्छा करता हूँ **(रयणत्तय-सरूव-परमप्पज्झाण-लक्खणं समाहि-भत्तीए)** रत्नत्रय स्वरूप परमात्मा के ध्यान रूप लक्षण वाली समाधि भक्ति के द्वारा मैं **(णिच्चकालं)** नित्य सदा काल **(अंचेमि)** अर्चना करता हूँ **(पूजेमि)** पूजा करता हूँ **(वंदामि)** मैं वन्दना करता हूँ **(णमंसामि)** नमस्कार करता हूँ **(दुक्खक्खओ)** मेरे दुःखों का क्षय हो **(कम्मक्खओ)** मेरे कर्मों का क्षय हो **(बोहिलाओ)** मुझे

बोधि का लाभ हो (**सुगइगमणं**) मेरा सुगति में गमन हो (**समाहिमरणं**) मेरा समाधिमरण हो तथा (**जिणगुण-संपत्ति होउ मज्झं**) जिनेन्द्र भगवान् के गुण रूपी सम्पत्ति मुझे प्राप्ति हो।

❑ ❑ ❑

निर्वाणभक्ति

विबुधपति-खगपति-नरपति - धनदोरग - भूतयक्षपतिमहितम्।
अतुलसुख-विमलनिरुपम-शिवमचलमनामयं हि सम्प्राप्तम् ॥१॥
कल्याणैः संस्तोष्ये पञ्चभिरनघं त्रिलोक परमगुरुम्।
भव्यजनतुष्टि-जननैर्दुरवापैः सन्मतिं भक्त्या ॥२॥

अन्वयार्थ—(विबुधपति-खगपति-नरपति-धनदोरग-भूत-यक्ष-पतिमहितं) देवेन्द्र, विद्याधर, राजा, कुबेर, धरणेन्द्र, भूत और यक्ष के इन्द्र से जो पूजित है जो **(अचलं)** अचल **(अनामयं)** नीरोग **(अतुलसुख-विमलनिरुपमशिवं)** अनुपम सुख, निर्मल, निरुपम सुख को **(हि)** निश्चय से **(संप्राप्तं)** प्राप्त हैं **(अनघं)** जो पाप रहित हैं **(त्रिलोकपरमगुरुं)** तीन लोक के परम गुरु हैं **(सन्मतिं)** ऐसे सन्मति भगवान् की **(भक्त्या)** भक्ति से **(भव्यजनतुष्टिजननैः)** भव्यजनों को सन्तोष उत्पन्न करने वाले **(दुरवापैः)** दुर्लभ की **(भक्त्या)** भक्ति से **(पञ्चभिः कल्याणैः)** पाँच कल्याणों के द्वारा **(संस्तोष्ये)** स्तुति करूँगा।

आषाढसुसितषष्ठ्यां हस्तोत्तरमध्यमाश्रिते शशिनि।
आयातः स्वर्गसुखं भुक्त्वा पुष्पोत्तराधीशः ॥३॥
सिद्धार्थनृपतितनयो भारतवास्ये विदेहकुण्डपुरे।
देव्यां प्रियकारिण्यां सुस्वप्नान् सम्प्रदर्श्य विभुः॥४॥

अन्वयार्थ—(आषाढ-सुसित-षष्ठ्यां) आषाढ़ शुक्ला षष्ठी के दिन **(शशिनि)** चन्द्रमा के **(हस्तोत्तरमध्यमाश्रिते)** हस्त और उत्तरा नक्षत्रं के मध्य स्थित होने पर **(पुष्पोत्तराधीशः)** पुष्पोत्तर विमान के इन्द्र **(विभुः)** भगवान् का जीव **(स्वर्गसुखं)** स्वर्ग के सुख को **(भुक्त्वा)** भोगकर **(भारतवास्ये)** भारत वर्ष में **(विदेहकुण्डपुरे)** विदेहदेश के कुण्डपुर में **(सुस्वप्नान्)** उत्तम स्वप्नों को **(संप्रदर्श्य)** दिखाकर **(प्रियकारिण्यां**

देव्यां) प्रियकारिणी देवी में **(सिद्धार्थ-नृपतितनयः)** सिद्धार्थ राजा के पुत्र **(आयातः)** आये।

चैत्रसितपक्षफाल्गुनि-शशाङ्कयोगे दिने त्रयोदश्याम्।
जज्ञे स्वोच्चस्थेषु ग्रहेषु सौम्येषु शुभलग्ने ॥५॥
हस्ताश्रिते शशाङ्के चैत्रज्योत्स्ने चतुर्दशी दिवसे।
पूर्वाह्णे रत्नघटैर्विबुधेन्द्राश्चक्रुरभिषेकम् ॥६॥

अन्वयार्थ—(चैत्रसितपक्षफाल्गुनिशशाङ्कयोगे) चैत्र शुक्ल पक्ष के उत्तरा फाल्गुनि चन्द्र योग में **(दिने त्रयोदश्यां)** त्रयोदशी के दिन **(सौम्येषु ग्रहेषु)** जब सभी ग्रह सौम्य थे **(स्वोच्चस्थेषु)** और अपने उच्च स्थान पर थे **(शुभलग्ने)** तब शुभ लग्न में **(जज्ञे)** प्रभु का जन्म हुआ था। **(चैत्रज्योत्स्ने)** चैत्रमास की चाँदनी में **(हस्ताश्रिते शशाङ्के)** हस्तनक्षत्र पर चन्द्रमा होने पर **(चतुर्दशीदिवसे)** चौदस के दिन **(पूर्वाह्णे)** प्रातःकाल में **(रत्नघटैः)** रत्नों के घड़ों से **(विबुधेन्द्राः)** देवेन्द्रों ने **(अभिषेकं)** अभिषेक **(चक्रुः)** किया।

भुक्त्वा कुमारकाले त्रिंशद्वर्षाण्यनन्त-गुणराशिः।
अमरोपनीतभोगान् सहसाभिनिबोधितोऽन्येद्युः ॥७॥
नानाविधरूपचितां विचित्रकूटोच्छ्रितां मणिविभूषाम्।
चन्द्रप्रभाख्यशिविकामारुह्य पुराद्विनिःक्रान्तः ॥८॥
मार्गशिरकृष्णदशमी-हस्तोत्तर-मध्यमाश्रिते सोमे।
षष्ठेन त्वपराह्णे भक्तेन जिनः प्रववाज ॥९॥

अन्वयार्थ—(कुमारकाले) कुमार काल में **(त्रिंशत् वर्षाणि)** तीस वर्ष तक **(अमरोपनीत-भोगान्)** देवों से प्राप्त भोगों को **(भुक्त्वा)** भोगकर **(अनन्त-गुणराशिः)** अनन्त गुणों की राशि भगवान् महावीर **(सहसा)** अचानक **(अभिनिबोधितः)** प्रतिबोध को प्राप्त हुए। **(अन्येद्युः)** दूसरे दिन **(नानाविध-रूपचितां)** अनेक प्रकार के रूपों से युक्त **(विचित्र-कूटोच्छ्रितां)** विचित्र कूटों से ऊँची **(मणिविभूषां)** मणियों से सजी **(चन्द्रप्रभाख्य-शिविकां)** चन्द्रप्रभा नाम की शिविका में **(आरुह्य)** आरूढ़ होकर **(पुरात्)** नगरी से **(विनिष्क्रान्तः)** बाहर निकल गये। **(मार्गशिर-कृष्णदशमी-हस्तोत्तरमध्यमाश्रिते सोमे)** मगसिर कृष्णा

दशमी के दिन जब चन्द्रमा हस्त और उत्तरा नक्षत्र के मध्य था **(षष्ठेन भक्तेन)** छह भुक्ति के त्याग के साथ **(अपराह्ने तु)** अपराह्न समय में **(जिनः)** जिनदेव **(प्रवव्राज)** दीक्षित हुए।

ग्रामपुरखेट कर्वट-मटम्ब घोषाकरान्प्रविजहार।
उग्रैस्तपो - विधानैर्द्वादश - वर्षाण्यमर - पूज्यः ॥१०॥
ऋजु-कूलायास्तीरे शालद्रुम-संश्रिते शिलापट्टे।
अपराह्ने षष्ठेनास्थितस्य खलु जृम्भिकाग्रामे ॥११॥
वैशाखसित-दशम्यां हस्तोत्तर-मध्यमाश्रिते चन्द्रे।
क्षपक-श्रेण्यारूढ-स्योत्पन्नं केवलज्ञानम् ॥१२॥

अन्वयार्थ— **(अमरपूज्यः)** देवों से पूज्य महावीर स्वामी **(उग्रैः तपो-विधानैः)** उग्र तपश्चरण से **(द्वादश वर्षाणि)** बारह वर्ष तक **(ग्राम-पुर-खेट-कर्वट-मटम्ब-घोषाकरान्)** ग्राम, पुर, खेट, कर्वट, मटम्ब, घोष और आकर में **(प्रविजहार)** विहार किया। **(ऋजुकूलायाः तीरे)** ऋजुकूला नदी के तट पर **(जृम्भिकाग्रामे)** जृंभिका ग्राम में **(शालद्रुमसंश्रिते शिला-पट्टे)** शालवृक्ष के नीचे शिलापट्ट पर **(अपराह्ने)** अपराह्नकाल में **(खलु)** निश्चित ही **(षष्ठेन)** छह मुक्ति तीन उपवास लेकर **(आस्थितस्य)** स्थित हुए, तब उनको **(क्षपक-श्रेण्यारूढस्य)** क्षपक श्रेणी पर आरूढ़ जिन को **(वैशाख-सितदशम्यां)** वैशाख शुक्ला दशमी के दिन **(हस्तोत्तर-मध्यमाश्रिते चन्द्रे)** हस्त और उत्तरा नक्षत्र के मध्य चन्द्र के होने पर **(केवलज्ञानं)** केवलज्ञान **(उत्पन्नं)** उत्पन्न हुआ।

अथ भगवान् संप्रापद्-दिव्यं वैभारपर्वतं रम्यम् ।
चातुर्वर्ण्यसुसङ्घस्तत्राभूद् गौतम-प्रभृतिः ॥१३॥
छत्राशोकौ घोषं सिंहासन-दुन्दुभी-कुसुमवृष्टिम्।
वरचामर-भामण्डल-दिव्यान्यन्यानि चावापत् ॥१४॥
दशविधमनगाराणा-मेकादशधोत्तरं तथा धर्मम्।
देशयमानो व्यवहरंस्-त्रिंशद्वर्षाण्यथ जिनेन्द्रः ॥१५॥

अन्वयार्थ—(अथ) फिर **(भगवान्)** भगवान् **(रम्यं)** रम्य **(दिव्यं)** दिव्य **(वैभारपर्वतं)** वैभार पर्वत पर **(सम्प्रापत्)** पहुँचे। **(तत्र)** वहाँ **(गौतम-प्रभृतिः चातुर्वर्ण्यसुसंघः)** गौतम आदि चातुर्वर्ण्य संघ **(अभूत्)** एकत्र

हुआ। **(छत्राशोकौ)** छत्र, अशोकवृक्ष **(घोषं)** दिव्यध्वनि **(सिंहासन-दुन्दुभी कुसुमवृष्टिं)** सिंहासन, दुन्दुभि पुष्पवृष्टि **(वरचामरभामण्डल-दिव्यानि)** श्रेष्ठ चँवर, दिव्य भामण्डल **(च अन्यानि)** तथा अन्य दिव्य वस्तुएँ **(अवापत्)** प्राप्त की। **(अथ)** तब **(जिनेन्द्रः)** जिनेन्द्र भगवान् ने **(दशविधं)** दश प्रकार के **(अनगाराणां धर्मं)** मुनि धर्म का **(तथा)** तथा **(एका-दशधा)** ग्यारह प्रकार के **(उत्तरं)** सागारधर्म का **(देशयमानः)** उपदेश देते हुए **(त्रिंशद्-वर्षाणि)** तीस वर्ष तक **(व्यवहरन्)** विहार किया।

पद्मवनदीर्घिकाकुल-विविधद्रुमखण्डमण्डिते रम्ये।
पावानगरोद्याने व्युत्सर्गेण स्थितः स मुनिः ॥१६॥
कार्तिककृष्ण-स्यान्ते स्वातावृक्षे निहत्य कर्मरजः।
अवशेषं सम्प्रापद् व्यजरामरमक्षयं सौख्यम् ॥१७॥

अन्वयार्थ—(सः मुनिः) वह मुनिराज **(पद्मवन-दीर्घिकाकुल-विविध-द्रुमखण्डमण्डिते)** कमलवन, वापिका समूह और अनेक प्रकार के वृक्ष समूह से सुशोभित **(रम्ये)** रमणीय **(पावानगरोद्याने)** पावानगर के उद्यान में **(व्युत्सर्गेण स्थितः)** कायोत्सर्ग से स्थित हुए। **(कार्तिक-कृष्णस्य अन्ते)** कार्तिक कृष्ण पक्ष के अन्त में **(स्वातावृक्षे)** स्वाति नक्षत्र में **(अवशेषं कर्मरजः)** अवशिष्ट कर्म धूलि को **(निहत्य)** नष्ट करके **(व्यजरामरं अक्षयं)** अजर-अमर-अक्षय **(सौख्यं)** सुख को **(सम्प्राप्त्)** प्राप्त किये।

परिनिर्वृतं जिनेन्द्रं ज्ञात्वा विबुधाह्यथाशु चागम्य।
देवतरुरक्तचन्दन - कालागुरु - सुरभिगोशीर्षैः ॥१८॥
अग्नीन्द्राज्जिनदेहं मुकुटानलसुरभि-धूपवरमाल्यैः।
अभ्यर्च्य गणधरानपि गतां दिवं खं च वनभवने ॥१९॥

अन्वयार्थ—(अथ) फिर **(जिनेन्द्रं परिनिर्वृतं)** जिनेन्द्रदेव का निर्वाण **(ज्ञात्वा)** जानकर **(विबुधाः)** देव लोग **(आशु च)** शीघ्र ही **(आगम्य)** आकर **(देवतरु-रक्तचन्दन-कालागुरु-सुरभिगोशीर्षैः)** देवदारु, लाल चन्दन, कालागुरूधूप और सुगन्धित गोशीर्ष चन्दन से **(अग्नीन्द्रात्)** इन्द्र की अग्नि से तथा **(मुकुटानल -सुरभिधूपवरमाल्यैः)** मुकुट की अग्नि,

सुगन्धित धूप और उत्तम मालाओं से **(जिनदेहं)** जिनेन्द्रदेव के शरीर की **(अभ्यर्च्य)** पूजा करके **(गणधरान् अपि)** गणधरों की भी पूजा करके **(दिवं खं च वनभवने गताः)** स्वर्ग, आकाश, वन तथा भवन में चले गये।

इत्येवं भगवति वर्धमान चन्द्रे यः स्तोत्रं पठति सुसन्ध्ययो-र्द्वयोर्हि।
सोऽनन्तं परम-सुखं नृदेवलोके भुक्त्वान्ते शिवपदमक्षयं प्रयाति ॥२०॥

अन्वयार्थ– (इति एवं भगवति वर्धमानचन्द्रे)। इस प्रकार भगवान् वर्धमान रूप चन्द्रमा के विषय मे **(स्तोत्रं)** इस स्तोत्र को **(यः)** जो **(द्वयोः सुसंध्ययोः हि)** दोनों संध्याओं में **(पठति)** पढ़ता है **(सः)** वह **(नृदेवलोके)** मनुष्य और देव लोक में **(परमसुखं)** उत्तम सुख को **(भुक्त्वा)** भोगकर **(अन्ते)** अन्त में **(अक्षयं अनन्तं शिवपदं)** अक्षय, अनन्त, मोक्षपद को **(प्रयाति)** प्राप्त होता है।

यत्रार्हतां गणभृतां श्रुत-पारगाणां
निर्वाण-भूमि-रिह भारतवर्ष-जानाम्।
तामद्य शुद्ध-मनसा क्रियया वचोभिः
संस्तोतु-मुद्यतमतिः परिणौमि भक्त्या ॥२१॥

अन्वयार्थ– (इह) इस लोक में **(यत्र)** जहाँ **(भारतवर्षजानां)** भारतवर्ष में उत्पन्न **(अर्हतां)** अरिहन्त **(गणभृतां)** गणधर **(श्रुतपारगाणां)** और श्रुत के पारगामियों की **(निर्वाणभूमिः)** निर्वाणभूमि है **(तां अद्य)** उसको आज **(शुद्धमनसा क्रियया वचोभिः)** शुद्धमन, क्रिया और वचनों से **(संस्तोतुं)** स्तुति करने के लिए **(उद्यतमतिः)** मैं उद्यत बुद्धि वाला **(भक्त्या)** भक्ति से **(परिणौमि)** नमस्कार करता हूँ।

कैलाशशैल-शिखरे परि-निर्वृतोऽसौ
शैलेशिभाव-मुपपद्य वृषो महात्मा।
चम्पापुरे च वसुपूज्य-सुतः सुधीमान्
सिद्धिं परामुपगतो गतरागबन्धः ॥२२॥

अन्वयार्थ–(असौ महात्मा वृषः) यह महात्मा वृषभदेव **(कैलास-शैलशिखरे)** कैलाश पर्वत के शिखर पर **(शैलेशिभावं उपपद्य)** शैलेशि भाव को प्राप्त करके **(परिनिर्वृतः)** निर्वाण को प्राप्त हुए। **(च)** और

(वसुपूज्यसुतः) वसुपूज्य के पुत्र वासुपूज्य भगवान् **(सुधीमान्)** श्रेष्ठ बुद्धि के धारक **(चम्पापुरे)** चम्पापुरी में **(गतरागबन्धः)** रागबन्ध से रहित हो **(परां सिद्धिं)** उत्कृष्ट सिद्धि को **(उपगतः)** प्राप्त हुए।

यत्प्रार्थ्यते शिवमयं विबुधेश्वराद्यैः
पाखण्डिभिश्च परमार्थ-गवेष-शीलैः।
नष्टाष्ट कर्म समये तदरिष्टनेमिः
सम्प्राप्तवान् क्षितिधरे वृहदूर्जयन्ते ॥२३॥

अन्वयार्थ–(विबुधेश्वराद्यैः) इन्द्र आदि के द्वारा **(परमार्थगवेषशीलैः)** परमार्थ की खोज करने वाले **(पाखण्डिभिः च)** साधुओं के द्वारा **(यत् शिवं)** जिस कल्याण की **(प्रार्थ्यते)** प्रार्थना की जाती है **(तत्)** वह कल्याण **(अयं अरिष्टनेमिः)** यह अरिष्ट नेमिनाथ **(वृहद् ऊर्जयन्ते)** विशाल ऊर्जयन्त **(क्षितिधरे)** पर्वत पर **(नष्टाष्टकर्मसमये)** अष्टकर्मों के नाश के समय **(सम्प्राप्तवान्)** प्राप्त हुए।

पावापुरस्य बहिरुन्नत - भूमि-देशे
पद्मोत्पला-कुलवतां सरसां हि मध्ये।
श्रीवर्द्धमान - जिनदेव इति प्रतीतो
निर्वाणमाप भगवान्प्रविधूतपाप्मा ॥२४॥

अन्वयार्थ–(पावापुरस्य) पावापुरी के **(बहिः)** बाहर **(पद्मोत्पला-कुलवतां)** कमल और उत्पल फूल से भरे **(सरसां हि मध्ये)** सरोवर के बीच **(उन्नत-भूमिदेशे)** ऊँचे भूमि स्थान पर **(श्रीवर्धमानजिनदेव इति प्रतीतः)** श्रीवर्धमान जिन देव इस नाम से प्रसिद्ध **(भगवान्)** भगवान् **(प्रविधूतपाप्मा)** पाप रहित हो **(निर्वाणं आप)** निर्वाण को प्राप्त हुए।

शेषास्तु ते जिनवरा जित-मोह-मल्ला
ज्ञानार्कभूरिकिरणै - रवभास्य लोकान्।
स्थानं परं निरव - धारित - सौख्यनिष्ठं
सम्मेदपर्वततले समवापुरीशाः ॥२५॥

अन्वयार्थ–(ते शेषाः) वे शेष **(ईशाः)** भगवान् **(जिनवराः तु)** जिनं श्रेष्ठ भी **(जित-मोहमल्लाः)** मोहमल्ल को जीतते हुए **(ज्ञानार्क-भूरिकिरणैः)** ज्ञानरूपी सूर्य की किरणों से **(लोकान्)** लोकों को

(अवभास्य) प्रकाशित करके **(सम्मेदपर्वततले)** सम्मेदपर्वत पर से **(निरवधारित-सौख्यनिष्ठं)** असीम सुख सम्पन्न **(परं स्थानं)** उत्कृष्ट स्थान को **(समवापुः)** प्राप्त किये थे।

आद्यश्चतु - र्दश-दिनै-र्विनिवृत्तयोगः
षष्ठेन निष्ठित - कृतिर्जिन - वर्द्धमानः।
शेषा विधूत-घनकर्म-निबद्धपाशाः
मासेन ते यतिवरास्त्वभवन्वियोगाः ॥२६॥

अन्वयार्थ—(आद्यः) आदि भगवान् **(चतुर्दशदिनैः)** चौदह दिन तक **(विनिवृत्तयोगः)** योग निरोध धारण किये **(जिनवर्धमानः)** वर्धमान जिन **(षष्ठेन)** वेला से **(निष्ठितकृतिः)** निष्ठापन किये **(शेषाः यतिवराः)** अवशिष्ट यतिवर **(मासेन तु)** एक मास तक योग निरोध से **(विधूत-घनकर्मनिबद्धपाशाः)** घनीभूत कर्म के बंधे जाल को नष्ट करके **(वियोगाः अभवन्)** योग रहित हो गये।

माल्यानि वाक्स्तुतिमयैः कुसुमैः सुदृब्धा-
न्यादाय मानस - करै - रभितः किरन्तः।
पर्येम आदृति - युता भगवन्निषद्याः
सम्प्रार्थिता वयमिमे परमां गतिं ताः ॥२७॥

अन्वयार्थ—(वाक्स्तुतिमयैः कुसुमैः) वचन रूपी स्तुति के फूलों से **(सुदृब्धानि माल्यानि)** गूंथी हुई मालाओं को **(मानसकरैः)** मन रूपी हाथों से **(आदाय)** लेकर **(अभितः किरन्तः)** सब ओर फैलाते हुए **(वयं इमे)** हम ये **(आदृति-युताः)** आदर सहित हो **(ताः भगवन्निषद्याः)** उन भगवान् की निषद्या की **(पर्येम)** प्रदक्षिणा करते हैं **(परमां गतिं)** और परम गति की **(सम्प्रार्थिताः)** प्रार्थना करते हैं।

शत्रुञ्जये नगवरे दमितारि-पक्षाः
पण्डोः सुताः परम-निर्वृति-मभ्युपेताः।
तुंग्यां तु सङ्गरहितो बलभद्रनामा,
नद्यास्तटे जितरिपुश्च सुवर्णभद्रः ॥२८॥
द्रोणीमति प्रवर - कुण्डल मेंढ्रके च
वैभार-पर्वत-तले वर-सिद्धकूटे।

ऋष्यद्रिके च विपुलाद्रि-बलाहके च
विन्ध्ये च पोदनपुरे वृष-दीपके च ॥२९॥
सह्याचले च हिमवत्यपि सुप्रतिष्ठे
दण्डात्मके गजपथे पृथु-सार-यष्टौ।
ये साधवो हतमलाः सुगतिं प्रयाताः
स्थानानि तानि जगति प्रथितान्यभूवन् ॥३०॥

अन्वयार्थ—(शत्रुञ्जये नगवरे) शत्रुञ्जय पर्वत पर **(दमितारिपक्षाः)** शत्रु पक्ष का दमन करने वाले **(पण्डोः सुताः)** पाण्डुपुत्र **(परमनिर्वृतिं)** परमसुख को **(अभ्युपेताः)** प्राप्त हुए **(तुङ्ग्यां)** तुंगीगिरि से। **(तु)** तो **(बलभद्रनामा)** बलभद्र **(सङ्गरहितः)** निर्वाण गए **(जितरिपुः च)** शत्रु विजेता **(सुवर्णभद्रः)** सुवर्णभद्र **(नद्याः तटे)** नदी के तट से **(द्रोणीमति)** द्रोणगिरि **(प्रवर-कुण्डल-मेंढ्रके च)** श्रेष्ठकुण्डलगिरि,मुक्तागिरि **(वैभारपर्वततले)** वैभार पर्वत से **(वरसिद्धकूटे)** उत्कृष्ट सिद्धकूट से **(ऋष्यद्रिके च)** ऋषि/श्रमण पर्वत से **(विपुलाद्रिबलाहके च)** विपुलाचल, बलाहक पर्वत से **(विन्ध्ये)** विन्ध्याचल से **(पोदनपुरे च)** पोदनपुर से **(वृषदीपके च)** जो कि धर्म का प्रकाशक है **(सह्याचले च)** सह्याचल पर्वत से **(सुप्रतिष्ठे हिमवति अपि)** अत्यन्त प्रतिष्ठित हिमालय पर से भी **(दण्डात्मके गजपथे)** दण्डाकार गजपंथा से **(पृथुसारयष्टौ)** पृथुसार यष्टि पर से **(ये साधवः)** जो साधु **(हतमलाः)** मल रहित हो **(सुगतिं प्रयाताः)** सुगति को प्राप्त हुए हैं **(जगति)** इस जगत् में **(तानि स्थानानि)** वह स्थान **(प्रथितानि)** प्रसिद्ध **(अभूवन्)** हुए हैं।

इक्षोर्विकार - रसपृक्त - गुणेन लोके
पिष्टोऽधिकां मधुरता - मुपयाति यद्वत्।
तद्वच्च पुण्यपुरुषै - रुषितानि नित्यं
स्थानानि तानि जगतामिह पावनानि ॥३१॥

अन्वयार्थ—(यद्वत्) जिस प्रकार **(लोके)** लोक में **(इक्षोः)** इक्षु से **(विकाररस-पृक्त-गुणेन)** बने रस से मिले गुणों से **(पिष्टः)** आटा **(अधिकां मधुरतां)** अत्यधिक मधुरता को **(उपयाति)** प्राप्त होता है **(तद्वत् च)** उसी प्रकार **(पुण्यपुरुषैः उषितानि)** पुण्य पुरुषों के द्वारा रहे

गए **(तानि स्थानानि)** वे स्थान **(इह जगतां)** इस संसार में **(नित्यं)** हमेशा के लिए **(पावनानि)** पावन हो जाते हैं।

इत्यर्हतां शमवतां च महामुनीनां
प्रोक्ता मयात्र परिनिर्वृति-भूमिदेशाः।
ते मे जिना जितभया मुनयश्च शान्ताः
दिश्यासुराशु सुगतिं निरवद्यसौख्याम् ॥३२॥

अन्वयार्थ—(इति) इस प्रकार **(मया)** मेरे द्वारा **(अत्र)** यहाँ **(अर्हतां)** अरिहन्तों **(शमवतां च महामुनीनां)** शान्ति को प्राप्त महामुनीश्वरों की **(परिनिर्वृति-भूमिदेशाः)** परिनिर्वाण भूमि के स्थान **(प्रोक्ताः)** कहे गये हैं **(ते जितभयाः)** वे भय को जीतने वाले **(जिनाः)** जिन देव **(शान्ताः मुनयः च)** और शान्त मुनिजन **(आशु)** शीघ्र ही **(निरवद्यसौख्यां)** निर्दोष सुख वाली **(सुगतिं)** सुगति को **(मे)** मुझे **(दिश्यासुः)** प्रदान करें।

क्षेपक श्लोकानि

कैलाशाद्रौ मुनीन्द्रः पुरुरपदुरितो मुक्तिमाप प्रणूतः।
चंपायां वासुपूज्यस्-त्रिदशपतिनुतो नेमिरप्यूर्जयंते ॥१॥
पावायां वर्धमानस् त्रिभुवन-गुरवो विंशतिस्तीर्थनाथाः।
सम्मेदाग्रे-प्रजग्मुर्ददतु विनमतां निवृतिं नो जिनेन्द्राः॥२॥

अन्वयार्थ—(अपदुरितः) पापों से मुक्त **(प्रणूतः)** नमस्कार को प्राप्त **(मुनीन्द्रः पुरु)** मुनियों के स्वामी पुरुदेव ऋषभनाथ स्वामी **(कैलाशाद्रौ)** कैलाश पर्वत पर **(मुक्तिम् आप)** मुक्ति को पधारे **(त्रिदशपतिनुतः वासुपूज्य चंपायां)** इन्द्रों के द्वारा नमस्कृत वासुपूज्य भगवान् चम्पापुर से मोक्ष पधारे **(नेमिः अपि ऊर्जयन्ते)** श्री नेमिनाथ भगवान् ऊर्जयन्त-गिरनार पर्वत से मोक्ष पधारे **(पावायां वर्धमानः)** श्री वर्धमान स्वामी पावापुरी से मुक्त हुए तथा **(त्रिभुवनगुरवः विंशतिः तीर्थनाथाः)** तीन लोकों के गुरु शेष २० तीर्थंकर **(सम्मेदाग्रे प्रजग्मुः)** सम्मेदाचल-सम्मेदशिखर से मुक्ति को प्राप्त हुए **(जिनेन्द्राः)** ये सभी २४ तीर्थंकर भगवान् **(विनमतां नः)** नमस्कार करने वाले हम सबको **(निवृत्तिं ददतु)** निर्वाण पद देवें।

गौर्गजोश्वः कपिः कोकः सरोजः स्वस्तिकः शशी।
मकरः श्रीयुतो वृक्षो गण्डो महिष-सूकरौ ॥३॥
सेधावज्र-मृगच्छागाः पाठीनः कलशस्तथा।
कच्छपश्चोत्पलं शङ्खो नाग-राजश्च केसरी ॥४॥
शान्ति-कुन्थवर-कौरव्या यादवौ नेमि-सुव्रतौ।
उग्रनाथौ पार्श्ववीरौ शेषा इक्ष्वाकुवंशजाः ॥५॥

अन्वयार्थ– (गौः) बैल **(गजः)** हाथी **(अश्वः)** घोड़ा **(कपिः)** बन्दर **(कोकः)** चकवा **(सरोजः)** कमल **(स्वस्तिकः)** स्वस्तिक **(शशी)** चन्द्रमा **(मकरः)** मगरमच्छ **(श्रीयुतः वृक्षः)** कल्पवृक्ष **(गण्डः)** गैंडा **(महिष-सूकरौ)** भैंसा, सूकर **(सेधा)** सेही **(वज्र-मृगच्छागाः)** वज्रदण्ड, हिरण, बकरा **(पाठीनः)** मछली **(तथा कलशः)** तथा कलश **(कच्छपः च)** कछुआ **(उत्पलं)** नील कमल **(शङ्खः)** शंख **(नागराजः च)** सर्प **(केसरी)** सिंह। ये चौबीस तीर्थंकरों के चिह्न हैं।

(शान्ति-कुन्थवर-कौरव्या) शांति, कुन्थु और अरनाथ तीर्थंकर कौरववंशी हैं **(नेमि-सुव्रतौ)** नेमिनाथ और मुनिसुव्रत **(यादवौ)** यादव वंशी हैं **(पार्श्ववीरौ)** पार्श्व और वीरनाथ **(उग्रनाथौ)** उग्र तथा नाथ वंशी हैं **(शेषाः)** शेष तीर्थंकर **(इक्ष्वाकुवंशजाः)** इक्ष्वाकु वंश में उत्पन्न हुए हैं।

अञ्चलिका

इच्छामि भंते! परिणिव्वाणभत्ति काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं, इमम्मि अवसप्पिणीए, चउत्थसमयस्स, पच्छिमे भाए, आउट्ठमासहीणे वासचउक्कम्मि सेसकालम्मि, पावाए णयरीए, कत्तियमासस्स किण्हचउद्दसिए रत्तीए, सादीए णक्खत्ते, पच्चूसे, भयवदो महदि महावीरो वड्ढमाणो सिद्धिं गदो, तिसुवि लोएसु, भवणवासिय-वाणविंतर-जोयिसिय-कप्पवासियत्ति चउव्विहा देवा सपरिवारा दिव्वेण ण्हाणेण, दिव्वेण गंधेण, दिव्वेण अक्खेण, दिव्वेण पुप्फेण, दिव्वेण धूवेण, दिव्वेण चुण्णेण, दिव्वेण दीवेण, दिव्वेण वासेण, णिच्चकालं अच्चंति, पूजंति, वंदंति, णमंसंति, परिणिव्वाण-महाकल्लाणपुज्जं करंति। अहमवि इह संतो तत्थ संताइयं णिच्चकालं, अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि,

दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं जिणगुण-संपत्ति होउ मज्झं।

अन्वयार्थ—(भंते!) हे भगवन्! मैंने **(परिणिव्वाणभत्ति काउस्सग्गो कओ)** निर्वाण भक्ति सम्बन्धी कायोत्सर्ग किया है (**तस्सालोचेउं इच्छामि)** उसकी आलोचना करने की इच्छा करता हूँ **(इमम्मि अवसप्पिणीए, चउत्थसमयस्स, पच्छिमे भाए)** इस अवसर्पिणी सम्बन्धी चतुर्थकाल के पिछले भाग में **(आउट्ठमासहीणे वासचउक्कम्मि सेसकालम्मि)** साढ़े तीन माह कम चार वर्ष शेष रहने पर **(कत्तियमासस्स किण्ह-चउद्दसिए रत्तीए, सादीए णक्खत्ते, पच्चूसे, भयवदो महदि महावीरो वड्ढमाणो सिद्धिं गदो)** पावानगरी में कार्तिकमास की कृष्ण चतुर्दशी की रात्रि में स्वाति नक्षत्र के रहते हुए प्रभात काल में भगवान् महति महावीर वर्धमान निर्वाण को प्राप्त हुए [उसके उपलक्ष्य में] **(तिसुवि लोएसु, भवणवासिय-वाणविंतर-जोयिसिय-कप्पवासियत्ति चउव्विहा देवा सपरिवारा)** तीनों लोकों में जो भवनवासी, वाण-व्यन्तर, ज्योतिषी और कल्पवासी के भेद से चार प्रकार के देव परिवार सहित **(दिव्वेण ण्हाणेण, दिव्वेण गंधेण, दिव्वेण अक्खेण, दिव्वेण पुप्फेण, दिव्वेण धूवेण, दिव्वेण चुण्णेण, दिव्वेण दीवेण, दिव्वेण वासेण)** दिव्य स्नान, दिव्य सुगंधित पदार्थ, दिव्य अक्षत, दिव्य पुष्प, दिव्य धूप, दिव्य चूर्ण, दिव्य दीपक, विशेष सुगंधित पदार्थ के द्वारा **(णिच्चकालं अच्चंति, पूजंति, वंदंति, णमंसंति, परिणिव्वाण-महाकल्लाणपुज्जं करंति)** निरन्तर उनकी अर्चा करते हैं, पूजा करते हैं, वंदना करते हैं, नमस्कार करते हैं और निर्वाण नामक महाकल्याणक की पूजा करते हैं **(अहं अवि इह संतो तत्थ संताइयं)** मैं भी यहाँ रहते हुए वहाँ स्थित [उन निर्वाण क्षेत्रों की] **(णिच्चकालं)** नित्य सदा काल **(अंचेमि)** अर्चना करता हूँ **(पूजेमि)** पूजा करता हूँ **(वंदामि)** मैं वन्दना करता हूँ **(णमंसामि)** नमस्कार करता हूँ **(दुक्खक्खओ)** मेरे दुःखों का क्षय हो **(कम्मक्खओ)** मेरे कर्मों का क्षय हो **(बोहिलाओ)** मुझे बोधि का लाभ हो **(सुगइगमणं)** मेरा सुगति में गमन हो **(समाहिमरणं)** मेरा समाधिमरण हो तथा **(जिणगुण-संपत्ति होउ मज्झं)** जिनेन्द्र भगवान् के गुण रूपी सम्पत्ति मुझे प्राप्ति हो।

नन्दीश्वरभक्ति

त्रिदशपतिमुकुटतटगतमणि - गणकर - निकर - सलिलधाराधौत-
क्रमकमलयुगलजिनपतिरुचिरप्रतिबिम्बविलयविरहितनिलयान् ॥१॥
निलयानहमिह महसां सहसा प्रणिपतन - पूर्वमवनौम्यवनौ।
त्रय्यां त्रय्या शुद्ध्या निसर्ग - शुद्धान्विशुद्धये घनरजसाम् ॥२॥

अन्वयार्थ—(त्रिदशपति-मुकुट-तट-गत-मणि-गण-कर-निकर-सलिल-धारा-धौत-क्रमकमल-युगल-जिनपति-रुचिर-प्रतिबिम्ब-विलय-विरहित-निलयान्) इन्द्रों के मुकुटों के किनारे में लगी मणि समूह की किरणों के समूहरूपी जल की धारा से धुले हुए चरण कमल युगल वाले जिन देव की मनोहर प्रतिमाओं के नाश रहित मन्दिरों को **(इह त्रय्यां)** जो कि इन तीनों लोकों में **(महसां निलयान्)** प्रकाश के पुञ्ज हैं और **(निसर्गशुद्धान्)** स्वभाव से शुद्ध हैं उन्हें **(सहसा)** शीघ्र ही **(अवनौ)** पृथ्वी पर **(प्रणिपतनपूर्वं)** प्रणाम पूर्वक **(त्रय्या शुद्ध्या)** तीन प्रकार की शुद्धि से **(घनरजसां)** घनीभूत-कर्म धूलि की **(विशुद्धये)** विशुद्धि के लिए **(अहं अवनौमि)** नमस्कार करता हूँ।

भावनसुर-भवनेषु द्वासप्तति-शत-सहस्र-संख्याभ्यधिकाः।
कोट्यः सप्त प्रोक्ता भवनानां भूरि-तेजसां भुवनानाम् ॥३॥

अन्वयार्थ—(भावनसुरभवनेषु) भवनवासी देवों के भवनों में **(भूरि-तेजसां)** अत्यधिक तेज स्वरूप **(भवनानां)** भवनों की **(भुवनानां)** लोक में **(सप्तकोट्यः)** सात करोड़ **(द्वासप्तति-शतसहस्रसंख्याभ्यधिकाः)** बहत्तर लाख से अधिक संख्या **(प्रोक्ताः)** कही है।

त्रिभुवन-भूत-विभूनां संख्यातीतान्यसंख्य-गुण-युक्तानि।
त्रिभुवनजननयनमनःप्रियाणिभवनानि भौम-विबुध-नुतानि ॥४॥

अन्वयार्थ—(त्रिभुवन-भूत-विभूनां) तीन लोक के जीवों के स्वामी के **(भवनानि)** जिनगृह **(संख्यातीतानि)** असंख्यात हैं, जो कि **(असंख्य-गुण-युक्तानि)** असंख्य गुणों से युक्त हैं, **(त्रिभुवन-जन-नयन-मनः प्रियाणि)** तीन लोक के प्राणियों के नेत्र और मन को प्रिय लगने वाले हैं। **(भौम-विबुधनुतानि)** तथा व्यन्तर देवों के द्वारा स्तुत हैं।

यावन्ति सन्ति कान्त-ज्योति-र्लोकाधिदेवताभिनुतानि।
कल्पेऽनेक-विकल्पे कल्पातीतेऽहमिन्द्र-कल्पानल्पे ॥५॥
विंशतिरथ त्रिसहिता सहस्र-गुणिता च सप्तनवतिः प्रोक्ता।
चतुरधिकाशीतिरतः पञ्चक-शून्येन विनिहतान्यनघानि ॥६॥

अन्वयार्थ—(यावन्ति) जितने भी ज्योतिष्क देवों के विमान **(सन्ति)** हैं वे **(कान्त-ज्योतिर्लोकाधिदेवताभिनुतानि)** वे सुन्दर ज्योतिर्लोक के देवताओं से स्तुत हैं। **(अनेकविकल्पे कल्पे)** अनेक भेद वाले कल्पों में तथा **(कल्पातीते)** कल्पातीत **(अनल्पे)** विस्तृत **(अहमिन्द्रकल्पे)** अहमिन्द्रों के कल्पों में **(अनघानि)** पाप को नष्ट करने वाले **(सहस्त्रगुणिता सप्तनवतिः)** सन्तानवे हजार **(चतुःअधिकाशीतिः)** चौरासी **(पञ्चक-शून्यानि)** लाख **(अथ)** तथा **(त्रिसहिता विंशतिः)** तेईस **(अतः)** इसलिए **(प्रोक्ता)** कहे हैं।

अष्टापञ्चाशदतश्-चतुःशतानीह मानुषे क्षेत्रे।
लोकालोक-विभाग-प्रलोकनाऽऽलोक-संयुजां जय-भाजाम् ॥७॥

अन्वयार्थ—(इह मानुषे क्षेत्रे) इस मनुष्य क्षेत्र में **(लोकालोक-विभाग-प्रलोकनालोक-संयुजां)** लोक और अलोक के विभाजन को देखने वाले प्रकाश से युक्त **(जयभाजां)** विजय को प्राप्त जिनालयों की संख्या **(अष्टापञ्चाशत्-अतः-चतुःशतानि)** इस प्रकार चार सौ अठ्ठावन हैं।

नव-नव-चतुःशतानि च सप्त च नवतिः सहस्र-गुणिताः षट् च।
पञ्चाशत्पञ्च-वियत् प्रहताः पुनरत्र कोट्योऽष्टौ प्रोक्ताः ॥८॥
एतावन्त्येव सता-मकृत्रिमाण्यथ जिनेशिनां भवनानि।
भुवन-त्रितये त्रिभुवन-सुर-समिति-समर्च्यमान-सत्प्रतिमानि ॥९॥

अन्वयार्थ—(अष्टौकोट्यः) आठ करोड़ **(पञ्चवियत् प्रहताः)** पाँच शून्यों से गुणित **(षट्पञ्चाशत् च)** छप्पन अर्थात् छप्पन लाख **(पुनः)** तथा **(च सहस्त्रगुणिताः सप्तनवतिः)** संतानवे हजार **(चतुःशतानि)** चार सौ **(च नव नव)** इक्यासी **(प्रोक्ताः)** कही है। **(अथ)** तथा **(सतां जिनेशिनां)** पूज्य जिनेशों के **(एतावन्ति एव)** इतने ही **(अकृत्रिमाणि भवनानि)** अकृत्रिम भवन **(अत्र भुवनत्रितये)** यहाँ तीन लोक में हैं। **(त्रिभुवन-सुरसमिति-समर्च्यमान-सत्प्रतिमानि)** ये भवन तीन लोक

के देवों के समूह से पूजित प्रशस्त प्रतिमा वाले हैं।

वक्षार - रुचक - कुण्डल - रौप्य - नगोत्तर - कुलेषुकारनगेषु।
कुरुषु च जिनभवनानि त्रिशतान्यधिकानि तानि षड्विंशत्या ॥१०॥

अन्वयार्थ—(वक्षार-रुचक-कुण्डल-रौप्यनगोत्तर-कुलेषु-कार-नगेषु) वक्षार, रुचक, कुण्डलगिरि, विजयार्ध पर्वत, मानुषोत्तर, कुलाचल, इष्वाकर पर्वतों पर **(कुरुषु च)** और देवकुरु, उत्तर कुरु में **(षड्विंशत्या तानि अधिकानि त्रिशतानि)** छब्बीस अधिक तीन सौ **(जिन-भवनानि)** जिन भवन हैं।

नन्दीश्वर-सद्द्वीपे, नन्दीश्वर-जलधि-परिवृते धृत-शोभे।
चन्द्रकर-निकर-सन्निभ-रुन्द्र-यशोवितत-दिङ्-मही-मण्डलके ॥११॥
तत्रत्याञ्जन - दधिमुख - रतिकर - पुरुनग-वराख्य-पर्वतमुख्याः।
प्रतिदिश-मेषा-मुपरि त्रयो-दशेन्द्रार्चितानि जिनभवनानि ॥१२॥

अन्वयार्थ—(नन्दीश्वर-जलधि-परिवृते) नन्दीश्वर सागर से घिरे हुए **(धृतशोभे)** शोभा को धारण करने वाले **(चन्द्रकर-निकर-संनिभ-रुन्द्रयशो-वितत- दिङ्मही-मण्डलके)** चन्द्रमा की किरणों के समूह के समान विस्तृत यश से व्याप्त दिशा-भूमण्डल से सहित **(नन्दीश्वर-सद्द्वीपे)** नन्दीश्वर द्वीप में **(प्रतिदिशं)** प्रत्येक दिशा में **(तत्रत्यांजन-दधिमुख-रतिकर-पुरु-नगवराख्य-पर्वत-मुख्याः)** वहाँ के अञ्जन-गिरि, दधिमुख और रतिकर ये श्रेष्ठ पर्वतों में कहे जाने वाले मुख्य पर्वत हैं। **(एषां)** इनके **(उपरि)** ऊपर **(इन्द्रार्चितानि)** इन्द्रों से पूजित **(त्रयोदश-जिनभवनानि)** तेरह जिन भवन हैं।

आषाढ-कार्तिकाख्ये फाल्गुनमासे च शुक्लपक्षेऽष्टम्याः।
आरभ्याष्ट - दिनेषु च सौधर्म - प्रमुखविबुधपतयो भक्त्या ॥१३॥
तेषु महामह - मुचितं प्रचुराक्षत - गन्ध - पुष्प - धूपै - र्दिव्यैः।
सर्वज्ञ - प्रतिमाना - मप्रतिमानां प्रकुर्वते सर्व-हितम् ॥१४॥

अन्वयार्थ—(आषाढ-कार्तिकाख्ये फाल्गुनमासे च) आषाढ़, कार्तिक और फाल्गुन मास में **(शुक्लपक्षे)** शुक्ल पक्ष में **(अष्टम्याः आरभ्य)** अष्टमी से आरम्भ कर **(अष्टदिनेषु च)** आठ दिनों में **(सौधर्म-प्रमुख-विबुधपतयः)** सौधर्म इन्द्र की प्रमुखता से देवगण **(भक्त्या)** भक्ति

पूर्वक **(तेषु)** उन चैत्यालयों में **(दिव्यैः)** दिव्य **(प्रचुराक्षत-गन्ध-पुष्प-धूपैः)** प्रचुर मात्रा में अक्षत, गन्ध, पुष्प और धूप से **(अप्रतिमानां)** अप्रतिम **(सर्वज्ञप्रतिमानां)** सर्वज्ञप्रतिमाओं की **(सर्वहितं)** सबका हित करने वाली **(उचितं)** योग्य **(महामहं)** महामह नाम की पूजा **(प्रकुर्वते)** करते हैं।

भेदेन वर्णना का सौधर्मः स्नपन - कर्तृता - मापन्नः।
परिचारक-भावमिताः शेषेन्द्रारुन्द्रचन्द्र-निर्मलयशसः ॥१५॥
मङ्गल-पात्राणि पुनस्तद्-देव्यो बिभ्रतिस्म शुभ्र-गुणाढ्याः।
अप्सरसो नर्तक्यः शेष-सुरास्तत्र लोकनाव्यग्रधियः ॥१६॥

अन्वयार्थ—(भेदेन वर्णना का?) अलग-अलग वर्णन से क्या ? **(सौधर्मः)** सौधर्म इन्द्र **(स्नपनकर्तृतां आपन्नः)** अभिषेक के कर्तापन को प्राप्त होता है। **(रुन्द्र-चन्द्र-निर्मल-यशसः)** चन्द्रमा के समान विस्तृत, निर्मल यश वाले **(शेषेन्द्राः)** शेष इन्द्र **(परिचारकभावं इताः)** सहयोग भाव को प्राप्त होते हैं। **(पुनः)** और **(शुभ्रगुणाढ्याः)** उज्ज्वल गुणों से सहित **(तद्देव्यः)** उनकी देवियाँ **(मङ्गलपात्राणि)** मंगल पात्रों को **(बिभ्रति स्म)** धारण करती है **(अप्सरसः)** अप्सरायें **(नर्तक्यः)** नर्तकी और **(शेषसुराः)** शेष देव **(तत्र)** वहाँ **(लोकनाव्यग्रधियः)** देखने में व्यग्रचित्त रहते हैं।

वाचस्पति-वाचामपि गोचरतां संव्यतीत्य यत्-क्रममाणम्।
विबुधपति-विहित-विभवं मानुषमात्रस्य कस्य शक्तिः स्तोतुम् ॥१७॥

अन्वयार्थ—(यत्) जो पूजन **(विबुधपतिविहित-विभवं)** इन्द्रों के वैभव से सम्पन्न होती है, जो **(वाचस्पति-वाचां अपि)** बृहस्पति के वचनों की भी **(गोचरतां)** विषयता को **(संव्यतीत्य)** उल्लंघन करके **(क्रममाणं)** प्रवृत्त होती है, उसकी **(स्तोतुं)** स्तुति करने के लिए **(कस्य)** किस **(मानुषमात्रस्य)** मनुष्य मात्र की **(शक्तिः)** सामर्थ्य हो सकती है ?

निष्ठापित-जिनपूजाश्-चूर्ण-स्नपनेन दृष्टविकृतविशेषाः।
सुरपतयो नन्दीश्वर-जिनभवनानि प्रदक्षिणीकृत्य पुनः ॥१८॥
पञ्चसु मन्दरगिरिषु श्रीभद्रशालनन्दन-सौमनसम्।
पाण्डुकवनमिति तेषु प्रत्येकं जिनगृहाणि चत्वार्येव ॥१९॥

तान्यथ परीत्य तानि च नमसित्वा कृतसुपूजनास्तत्रापि।
स्वास्पदमीयुः सर्वे स्वास्पदमूल्यं स्वचेष्टया संगृह्य ॥२०॥

अन्वयार्थ—(चूर्णस्नपनेन) चूर्ण के अभिषेक से **(दृष्ट-विकृत-विशेषाः)** जो विशेष विकृत दिखाई दे रहे हैं ऐसे **(सुरपतयः)** देवेन्द्र **(निष्ठापित-जिनपूजाः)** जिनेन्द्र भगवान् की पूजा को पूर्ण करते हुए **(नन्दीश्वर-जिन-भवनानि)** नन्दीश्वर के जिनालयों की **(प्रदक्षिणीकृत्य)** प्रदक्षिणा करके **(पुनः)** फिर **(पञ्चसु मन्दरगिरिषु)** पाँचों मेरु पर्वतों पर **(श्री-भद्रशाल-नन्दन-सौमनसं)** श्री भद्रशाल, नन्दन, सौमनस **(पाण्डुकवनं)** और पाण्डुकवन **(इति तेषु)** इस प्रकार इन वनों में **(प्रत्येकं)** प्रत्येक के **(जिनगृहाणि)** जिनालय **(चत्वारि एव)** चार-चार हैं। **(अथ)** फिर **(तानि परीत्य)** उन जिनालयों की परिक्रमा करके **(तानि च नमसित्वा)** उन्हें नमस्कार करके **(तत्र अपि)** वहाँ भी **(कृतसुपूजनाः)** अच्छी तरह पूजा किये हुए **(सर्वे)** सभी देव **(स्वचेष्टया)** अपनी चेष्टा से **(स्वास्पदमूल्यं)** अपने पुण्य मूल को **(संगृह्य)** ग्रहण करके **(स्वास्पदं)** अपने स्थानों पर **(ईयुः)** चले जाते हैं।

सहतोरणसद्वेदी - परीतवनयाग - वृक्ष - मानस्तम्भ-ध्वजपंक्तिदशकगोपुर - चतुष्टयत्रितय-शाल-मण्डप-वर्यैः ॥२१॥
अभिषेकप्रेक्षणिका क्रीडनसङ्गीतनाटका-लोकगृहैः।
शिल्पिविकल्पित-कल्पन-सङ्कल्पातीत-कल्पनैः समुपेतैः ॥२२॥
वापी - सत्पुष्करिणी - सुदीर्घिकाद्यम्बुसंश्रितैः समुपेतैः।
विकसितजल-रुहकुसुमैर्नभस्यमानैः शशिग्रहर्क्षैः शरदि ॥२३॥
भृङ्गाराब्दक - कलशा - द्युपकरणैरष्टशतक - परिसंख्यानैः।
प्रत्येकं चित्रगुणैः कृतझणझणनिनद - वितत - घण्टाजालैः ॥२४॥
प्रभ्राजन्ते नित्यं हिरण्मयानीश्वरेशिनां भवनानि।
गन्धकुटीगतमृगपति विष्टर-रुचिराणिविविध-विभव-युतानि ॥२५॥

अन्वयार्थ—(सह-तोरण-सद्वेदी-परीत-वनयागवृक्ष-मानस्तम्भ-ध्वज-पंक्तिदशक-गोपुर-चतुष्टय-त्रितय-शाल-मण्डपवर्यैः) तोरणों सहित समीचीन वेदी से घिरे हुए उपवन, चैत्यवृक्ष, मानस्तम्भ, ध्वजों की दश-दश पंक्तियाँ, चार गोपुरों से सहित तीन परिधियों वाले श्रेष्ठ प्राकार

मण्डपों से **(शिल्पि-विकल्पित-कल्पन-संकल्पातीत-कल्पनैः)** शिल्पियों से कल्पित संकल्पातीत कल्पनाओं से **(समुपेतैः)** सहित **(अभिषेक-प्रेक्षणिका-क्रीडन-सङ्गीत-नाटका-लोकगृहैः)** अभिषेक दर्शिका, क्रीड़ा, संगीत और नाटक देखने के गृहों से सहित **(विकसित-जलरुह-कुसुमैः)** खिले हुए कमलफूलों से **(शरदि)** शरद ऋतु में **(शशिग्रहर्क्षैः)** चन्द्रमा, ग्रह, ताराओं से **(नभस्यमानैः)** आकाश के समान दिखने वाले **(वापी सत्पुष्करिणी-सुदीर्घिकाद्यम्बुसंश्रितैः)** वापी, तालाब, सुन्दर दीर्घिका आदि जल के आश्रय से **(समुपेतैः)** युक्त **(प्रत्येकं)** प्रत्येक **(अष्टशतक-परिसंख्यानैः)** एक सौ आठ संख्या में **(भृङ्गाराब्दककलशाद्यु-पकरणैः)** झारी, दर्पण, कलश आदि उपकरण **(चित्रगुणैः)** विचित्र गुणों के साथ **(कृत-झण-झण-निनद-विततघण्टा-जालैः)** बड़े-बड़े घण्टा के समूहों ने जहाँ झन-झन शब्द किया है। ऐसे **(ईश्वरेशिनां)** देवाधिदेव के **(हिरण्मयानि)** स्वर्णमय **(गन्धकुटीगत-मृगपति-विष्टर-रुचिराणि)** गन्धकुटी पर सिंहासन की शोभा सहित **(विविध-विभव-युतानि)** अनेक प्रकार के वैभवों से युक्त **(भवनानि)** जिनालय **(नित्यं)** हमेशा **(प्रभ्राजन्ते)** शोभित होते हैं।

येषु-जिनानां प्रतिमाः पञ्चशत-शरासनोच्छ्रिताः सत्प्रतिमाः।
मणिकनक-रजतविकृता दिनकरकोटि-प्रभाधिक-प्रभदेहाः ॥२६॥
तानि सदा वन्देऽहं भानुप्रतिमानि यानि कानि च तानि।
यशसां महसां प्रतिदिश-मतिशयशोभाविभाञ्जि पापविभञ्जि ॥२७॥

अन्वयार्थ— (येषु) जिन मन्दिरों में **(पञ्चशत-शरासनोच्छ्रिताः)** पाँच सौ धनुष ऊँची (सत्प्रतिमाः) सुन्दर प्रतिमा **(मणि-कनक-रजत-विकृताः)** मणि, स्वर्ण, चाँदी से बनी **(दिनकर-कोटि-प्रभाधिक- प्रभदेहाः)** करोड़ों सूर्यों की प्रभा से अधिक प्रभा युक्त देह वाली **(जिनानां प्रतिमाः)** जिनेन्द्र भगवान् की प्रतिमाएँ होती हैं। **(तानि सदा अहं वन्दे)** उनकी मैं सदा वन्दना करता हूँ। **(प्रतिदिशं)** प्रत्येक दिशा में **(यशसां महसां)** यश और तेज की **(अतिशय-शोभा-विभाञ्जि)** अत्यधिक शोभा से युक्त **(पाप विभञ्जि)** पाप को नष्ट करने वाले **(भानु-प्रतिमानि)** सूर्य के

समान **(यानि कानि च)** जो कोई भी जिन मन्दिर हैं **(तानि)** उनको **(अहं वन्दे)** मैं वन्दना करता हैं।

सप्तत्यधिक - शतप्रिय - धर्मक्षेत्रगत - तीर्थकर - वर - वृषभान्।
भूतभविष्यत्संप्रति-काल-भवान् भवविहानये विनतोऽस्मि ॥२८॥

अन्वयार्थ— (भूत-भविष्यत्सम्प्रति-काल-भवान्) अतीत, अनागत और वर्तमान काल में होने वाले **(सप्तत्यधिक-शत-प्रिय-धर्मक्षेत्रगत-तीर्थंकरवर-वृषभान्)** एक सौ सत्तर प्रियधर्म क्षेत्रों में स्थित अतिशय श्रेष्ठ तीर्थंकरों को **(भवविहानये)** संसार के विनाश के लिए **(विनतः अस्मि)** मैं नमस्कार करता हूँ।

अस्यामवसर्पिण्यां वृषभजिनः प्रथमतीर्थकर्ता भर्ता।
अष्टापदगिरिमस्तक-गतस्थितो मुक्तिमाप पापान्मुक्तः ॥२९॥

अन्वयार्थ—(अस्यां अवसर्पिण्यां) इस अवसर्पिणी में **(वृषभजिनः)** वृषभ भगवान् **(प्रथमतीर्थकर्ता)** प्रथम तीर्थ के कर्ता तथा **(भर्ता)** पालक हुए हैं। **(अष्टापद-गिरि-मस्तक-गत-स्थितः)** अष्टापद पर्वत के शिखर पर जाकर स्थित हो **(पापात् मुक्तः)** पाप से मुक्त हो **(मुक्तिं आप)** मुक्ति को प्राप्त हुए।

श्रीवासुपूज्यभगवान् शिवासु पूजासु पूजितस्त्रिदशानाम्।
चम्पायां दुरित-हरः परमपदं प्रापदापदा-मन्तगतः ॥३०॥

अन्वयार्थ—(शिवासु पूजासु) कल्याणकारी पूजाओं में **(त्रिदशानां पूजितः)** देवपूजित **(श्रीवासुपूज्यभगवान्)** श्रीवासुपूज्य तीर्थंकर **(आपदां अन्तगतः)** आपत्तियों के अन्त को प्राप्त हो **(दुरितहरः)** पापों के नाशक **(चम्पायां)** चम्पा नगरी में **(परमपदं)** उत्कृष्ट स्थान को **(प्रापत्)** प्राप्त हुए।

मुदितमतिबलमुरारि-प्रपूजितो जितकषायरिपुरथ जातः।
वृहदूर्जयन्त-शिखरे शिखामणिस्त्रिभुवनस्य-नेमिर्भगवान् ॥३१॥

अन्वयार्थ—(अथ) तथा **(मुदितमति-बल-मुरारि-प्रपूजितः)** प्रसन्नमति बलभद्र और नारायण से पूजित **(जितकषायरिपुः)** कषाय शत्रुओं को जीतने वाले **(बृहत्-ऊर्जयन्त-शिखरे)** विशाल गिरनारपर्वत पर **(नेमिः भगवान्)** नेमिनाथ भगवान् **(त्रिभुवनस्य)** तीन लोक के **(शिखामणिः**

जातः) शिखामणि हुए।

पावापुरवरसरसां मध्यगतः सिद्धिवृद्धितपसां महसाम्।
वीरो नीरदनादो भूरि-गुणश्चारु- शोभमास्पद-मगमत् ॥३२॥

अन्वयार्थ—(सिद्धि-वृद्धि-तपसां) सिद्धि, वृद्धि, तप **(महसां)** और तेज वाले **(पावापुर-वरसरसां)** पावापुर के उत्कृष्ट सरोवरों के **(मध्यगतः)** मध्य में स्थित हो **(चारुशोभं)** उत्कृष्ट शोभा से युक्त **(आस्पदं)** मोक्ष स्थान को **(अगमत्)** प्राप्त हुए। वह **(वीरः)** वीर भगवान् **(भूरिगुणः)** अनेक गुणों से युक्त **(नीरदनादः)** मेघ के समान शब्द वाले थे।

सम्मदकरिवन-परिवृत-सम्मेदगिरीन्द्रमस्तके विस्तीर्णे।
शेषा ये तीर्थकराः कीर्तिभृतः प्रार्थितार्थसिद्धिमवापन् ॥३३॥

अन्वयार्थ—(कीर्तिभृतः) कीर्ति को धारण करने वाले **(शेषाः ये)** शेष जो **(तीर्थकराः)** तीर्थंकर हैं वह **(सम्मद-करिवन-परिवृत-सम्मेद-गिरीन्द्र-मस्तके)** मद सहित हाथियों वाले वन से घिरे हुए सम्मेद पर्वत के शिखर से **(विस्तीर्णे)** जो कि विशाल है, वहाँ से **(प्रार्थितार्थसिद्धिं)** इच्छित अर्थ की सिद्धि को **(अवापन्)** प्राप्त हुए।

शेषाणां केवलिना- मशेषमतवेदिगणभृतां साधूनां।
गिरितलविवरदरीसरि-दुरुवनतरु-विटपिजलधि-दहनशिखासु ॥३४॥
मोक्षगतिहेतु-भूत-स्थानानि सुरेन्द्ररुन्द्र-भक्तिनुतानि।
मङ्गलभूतान्येता-न्यङ्गीकृत-धर्मकर्मणामस्माकम् ॥३५॥

अन्वयार्थ—(शेषाणां केवलिनां) शेष केवली भगवान् **(अशेषमत-वेदि-गणभृतां)** समस्त मतों को जानने वाले गणधर परमेष्ठी **(साधूनां)** साधुओं के **(गिरितल-विवर-दरीसरि-दुरुवनतरु-विवरविटपि-जलाधि-दहन-शिखासु)** पर्वत की तलहटी, छिद्र, गुफा, दुर्गमवन, वृक्ष की कोटर, अटवी, सागर तथा अग्नि की शिखा में **(सुरेन्द्ररुन्द्र-भक्ति-नुतानि)** इन्द्र के द्वारा अत्यधिक भक्ति से स्तुत **(मोक्षगतिहेतुभूत-स्थानानि)** मोक्ष गति के कारणभूत स्थान **(अङ्गीकृतधर्म-कर्मणां)** धर्म-कर्म को अंगीकार करने वाले **(अस्माकं)** हमारे लिए **(एतानि)** ये **(मङ्गलभूतानि)** मंगल स्वरूप हैं।

जिनपतयस्तत् - प्रतिमा - स्तदालयास्तन्निषद्यका - स्थानानि।
ते ताश्च ते च तानि च भवन्तु भवघात - हेतवो भव्यानाम् ॥३६॥

अन्वयार्थ—(जिनपतयः) जिनेन्द्रदेव **(तत्प्रतिमाः)** उनकी प्रतिमाएँ **(तदालयाः)** उनके मन्दिर **(तन्निषद्यका-स्थानानि)** और उनकी निषीधिका स्थान **(ते ताः च ते च तानि च)** वह जिन देव, जिन प्रतिमा, जिन मन्दिर, जिन निषीधिकाएँ **(भव्यानां)** भव्य जीवों को **(भव-घात-हेतवः)** संसार के घात के हेतु **(भवन्तु)** होवे।

सन्ध्यासु तिसृषु नित्यं पठेद्यदि स्तोत्र-मेतदुत्तम-यशसाम्।
सर्वज्ञानां सार्वं लघु लभते श्रुतधरेडितं पद-ममितम् ॥३७॥

अन्वयार्थ—(उत्तमयशसां) उत्तम यश वाले **(सर्वज्ञानां)** सर्वज्ञों का **(एतत् सार्वं स्तोत्रं)** यह सर्वहितकारी स्तोत्र **(नित्यं)** हमेशा जो **(तिसृषु संध्यासु)** तीनों संध्याओं में **(यदि)** यदि **(पठेत्)** पढ़ता है **(लघु)** तो शीघ्र ही वह **(श्रुतधरेडितं)** श्रुतधरों से स्तुत **(अमितं पदं)** अपरिमित पद को **(लभते)** प्राप्त कर लेता है।

नित्यं निःस्वेदत्वं निर्मलता क्षीर - गौर - रुधिरत्वं च।
स्वाद्याकृति-संहनने सौरूप्यं सौरभं च सौलक्ष्यम् ॥३८॥
अप्रमित-वीर्यता च प्रिय - हित - वादित्व-मन्यदमित-गुणस्य।
प्रथिता दशसंख्याताः स्वतिशय-धर्माः स्वयं-भुवो देहस्य ॥३९॥

अन्वयार्थ—(नित्यं) हमेशा **(निःस्वेदत्वं)** पसीने का अभाव **(निर्मलता)** मल से रहित शरीर **(क्षीर-गौर-रुधिरत्वं च)** दूध के समान श्वेत रक्त होना **(स्वाद्याकृति-संहनने)** श्रेष्ठ संस्थान और प्रथम संहनन **(सौरूप्यं)** सुन्दर रूप **(सौरभं च)** सुरभित शरीर **(सौलक्ष्यं)** उत्तम लक्षण होना **(अप्रमित-वीर्यता)** अतुल बल **(प्रियहितवादित्वं)** प्रिय और हितकारी वचनं **(अन्यत् च)** अन्य भी **(अमितगुणस्य)** अपरिमित गुण वाले **(स्वयम्भुवः)** स्वयंभू को **(देहस्य)** देह के **(दश संख्याताः)** दश संख्या में **(स्वतिशय-धर्माः)** अतिशय गुण **(प्रथिताः)** प्रसिद्ध है।

गव्यूति-शत-चतुष्टय- सुभिक्षतागगनगमनमप्राणिवधः।
भुक्त्युपसर्गाभाव - श्चतुरास्यत्वं च सर्व-विद्येश्वरता ॥४०॥
अच्छायत्व - मपक्ष्म - स्पन्दश्च सम-प्रसिद्ध-नख-केशत्वम्।

स्वतिशय-गुणा भगवतो घाति-क्षयजा भवन्ति तेऽपि दशैव ॥४१॥

अन्वयार्थ—(गव्यूति-शत-चतुष्टय-सुभिक्षता) चार सौ कोस तक सुभिक्ष होना **(गगन-गमनं)** आकाश में गमन होना **(अप्राणिवधः)** किसी भी प्राणी का वध नहीं होना **(भुक्त्युपसर्गाभावः)** भोजन और उपसर्ग का अभाव **(चतुरास्यत्वं च)** चार मुख होना **(सर्वविद्येश्वरता)** सभी विद्याओं का स्वामी होना **(अच्छायत्वं)** छाया नहीं पड़ना **(अपक्ष्मस्पन्दः च)** स्पन्दन रहित नेत्र को पलक होना **(समप्रसिद्ध-नखकेशत्वं)** नख और केशों का समान रहना **(घातिक्षयजाः)** घाति कर्म के क्षय से उत्पन्न **(भगवतः)** भगवान् के **(ते अपि दश एव)** वे भी दस ही **(स्वतिशयगुणाः)** श्रेष्ठ अतिशय गुण **(भवन्ति)** हैं।

सार्वार्ध-मागधीया भाषा मैत्री च सर्व-जनता-विषया।
सर्वर्तु-फल-स्तबक-प्रवाल-कुसुमोपशोभित-तरु-परिणामाः ॥४२॥
आदर्शतल-प्रतिमा रत्नमयी जायते मही च मनोज्ञा।
विहरण-मन्वेत्यनिलः परमानन्दश्च भवति सर्व-जनस्य ॥४३॥

अन्वयार्थ—(सार्वार्ध-मागधीया भाषा) सबका हित करने वाली अर्धमागधी भाषा **(सर्वजनताविषया मैत्री च)** समस्त जनसमूह में मैत्री भाव **(सर्वर्तुफल-स्तबक-प्रवाल-कुसुमोपशोभिततरुपरिणामाः)** सभी ऋतुओं के फल, गुच्छे, किसलय और पुष्पों से सुशोभित वृक्षों का परिणमन **(आदर्शतलप्रतिमा)** दर्पणतल के समान **(रत्नमयी)** रत्न निर्मित **(मनोज्ञा मही च जायते)** मनोहर पृथ्वी हो जाती है। **(अनिलः)** वायु **(विहरणं अन्वेति)** विहार के अनुकूल चलती है। **(सर्वजनस्य परमानन्दः च भवति)** सभी लोगों को परमानन्द होता है।

मरुतोऽपि सुरभि-गन्ध-व्यामिश्रा योजनान्तरं भूभागम्।
व्युपशमित-धूलि-कण्टक-तृण-कीटक-शर्करोपलं प्रकुर्वन्ति ॥४४॥
तदनु स्तनितकुमारा विद्युन्माला-विलास-हास-विभूषाः।
प्रकिरन्ति सुरभि-गन्धिं गन्धोदक-वृष्टि-माज्ञया त्रिदशपतेः ॥४५॥

अन्वयार्थ—(मरुतः अपि) वायुकुमार देव भी **(सुरभि-गन्ध-व्यामिश्रा)** सुरभित गन्ध से मिली हुई **(योजनान्तरं भूभागं)** एक योजन तक के भूखण्ड को **(व्युपशमित-धूलि-कण्टक-तृण-कीटकशर्करोपलं)**

धूलि, काँटे, तृण, कीड़े, कंकड़, पत्थर से रहित **(प्रकुर्वन्ति)** करते हैं। **(तदनु)** इसके बाद **(स्तनितकुमाराः)** मेघकुमार जाति के देव **(विद्युन्माला-विलास-हास-विभूषाः)** बिजली के चमकरूपी हास की शोभा से विभूषित **(त्रिदशपतेः आज्ञया)** इन्द्र की आज्ञा से **(सुरभिगन्धिं)** सुरभित गन्ध वाली **(गन्धोदकवृष्टिं)** सुगन्धित जल की वर्षा **(प्रकिरन्ति)** करते हैं।

वर-पद्मराग-केसर-मतुल-सुख-स्पर्श-हेम-मय-दल-निचयम्।
पादन्यासे पद्मं सप्त पुरः पृष्ठतश्च सप्त भवन्ति ॥४६॥

अन्वयार्थ—(पादन्यासे) भगवान् के चरण रखने पर **(वरपद्मराग-केसरं)** उत्कृष्ट पद्मराग के समान केसर से सहित **(अतुलसुख-स्पर्श-हेम-मय-दल-निचयं)** अतुलसुख के स्पर्श वाले स्वर्ण मय पत्र समूह वाला **(पद्मं)** कमल के रूप **(सप्तपुरः)** सात कमल आगे **(सप्त पृष्ठतः च)** और सात कमल पीछे **(भवन्ति)** होते हैं।

फलभार - नम्र - शालि - ब्रीह्यादि-समस्त-सस्य-धृत-रोमाञ्चा।
परिहृषितेव च भूमि - स्त्रिभुवननाथस्य वैभवं पश्यन्ती ॥४७॥

अन्वयार्थ—(त्रिभुवननाथस्य) तीनलोक के नाथ के **(वैभवं)** ऐश्वर्य को **(पश्यन्ती)** देखती हुई **(भूमिः)** पृथ्वी **(परिहृषिता इव)** हर्षित हुई की तरह मानो **(फलभार-नम्रशालिब्रीह्यादि-समस्त-सस्यधृत-रोमाञ्चा)** फलों के भार से नम्र शालि, ब्रीहि आदि समस्त धान्यों से पुलकित हो रही थी।

शरदुदय-विमल-सलिलं सर इव गगनं विराजते विगतमलम्।
जहति च दिशस्तिमिरिकां विगतरजः प्रभृति-जिह्मताभावं सद्यः ॥४८॥

अन्वयार्थ— (विगतमलं) मलरहित **(गगनं)** आकाश **(शरदुदय-विमल-सलिलं)** शरद ऋतु के उदय से निर्मल जल वाले **(सर इव)** सरोवर की तरह **(विराजते)** सुशोभित होता है। **(च)** और **(दिशः)** दिशाएँ **(सद्यः)** शीघ्र ही **(विगतरजः प्रभृति-जिह्मता-भावं)** धूलि आदि धुंधले भाव से रहित **(तिमिरिकां)** अन्धकार को **(जहति)** छोड़ देती हैं।

एतेतेति त्वरितं ज्योति- र्व्यन्तर-दिवौकसा-ममृतभुजः।
कुलिशभृदाज्ञापनया कुर्वन्त्यन्ये समन्ततो व्याह्वानम् ॥४९॥

अन्वयार्थ—(कुलिशभृत्-आज्ञापनया) इन्द्र की आज्ञा से **(अन्ये अमृत-**

भुजः) अन्यदेव लोग **(त्वरितं)** शीघ्र **(एत-एत इति)** आओ-आओ इस प्रकार **(ज्योति-र्व्यन्तर-दिवौकसां)** ज्योतिषी, व्यन्तर और वैमानिक देवों को **(समन्ततः)** सब ओर से **(व्याह्वानं)** बुलावा **(कुर्वन्ति)** करते हैं।

स्फुर-दरसहस्र-रुचिरं विमल-महारत्न-किरण-निकर-परीतम्।
प्रहसित-किरण-सहस्र-द्युति-मण्डल-मग्रगामि धर्म-सुचक्रम् ॥५०॥

अन्वयार्थ— (स्फुरत्-अर-सहस्र-रुचिरं) स्फुरायमान हजारों आरों से सुशोभित **(विमलमहा-रत्नकिरण-निकर-परीतं)** निर्मल, महा रत्नों की किरणों के समूह से व्याप्त और **(प्रहसित-किरण-सहस्रद्युतिमण्डलं)** सूर्य के आभा मण्डल की हँसी उड़ाने वाला **(धर्म-सुचक्रं)** श्रेष्ठ धर्मचक्र **(अग्रगामि)** आगे चलता है।

इत्यष्ट-मङ्गलं च स्वादर्श - प्रभृति भक्तिराग - परीतैः।
उपकल्प्यन्ते त्रिदशै - रेतेऽपि - निरुपमातिविशेषाः ॥५१॥

अन्वयार्थ— (इति) इस प्रकार **(स्वादर्शप्रभृति अष्टमङ्गलं च)** उत्तम-दर्पण आदि अष्ट-मङ्गल द्रव्य और **(एतेऽपि निरुपमातिविशेषाः)** ये अनुपम अतिशय **(भक्तिरागपरीतैः)** भक्ति, राग से भरे **(त्रिदशैः)** देवों के द्वारा **(उपकल्प्यन्ते)** रचे जाते हैं।

वैडूर्य-रुचिर - विटप - प्रवाल-मृदु - पल्लवोपशोभित-शाखः।
श्रीमानशोक-वृक्षो वर-मरकत-पत्र-गहन-बहलच्छायः ॥५२॥

अन्वयार्थ— (वैडूर्य-रुचिर-विटप-प्रवाल-मृदु-पल्लवोपशोभित-शाखः) वैडूर्य मणि से मनोहर वृक्ष, प्रवाल, कोमल पल्लव और शोभित शाखायें सहित **(वर-मरकत-पत्र-गहन-बहलच्छायः)** श्रेष्ठ मरकत मणि से बने सघन छाया युक्त **(श्रीमान् अशोकवृक्षः)** शोभा सम्पन्न अशोक वृक्ष होता है।

मन्दार - कुन्द - कुवलय - नीलोत्पल-कमल-मालती-बकुलाद्यैः।
समद-भ्रमर-परीतै-र्व्यामिश्रा पतति कुसुम-वृष्टि-र्नभसः ॥५३॥

अन्वयार्थ—(मन्दार-कुन्द-कुवलय-नीलोत्पल-कमल-मालती-बकुलाधैः) मन्दार, कुन्द, कुवलय, नीलकमल, लाल कमल, मालती और बकुल आदि से **(समद-भ्रमर-परीतैः व्यामिश्रा)** मद सहित भौरों

से व्याप्त हो मिली हुई **(कुसुमवृष्टिः)** पुष्प वर्षा **(नभसः)** आकाश से **(पतति)** गिरती है।

कटक-कटि-सूत्र-कुण्डल-केयूर-प्रभृति-भूषिताङ्गौ स्वंगौ।
यक्षौ कमल-दलाक्षौ परि-निक्षिपतः सलील-चामर-युगलम् ॥५४॥

अन्वयार्थ—(कटक-कटिसूत्र-कुण्डल-केयूर-प्रभृति-भूषिताङ्गौ) वलय, कटिसूत्र, कुण्डल, बाजुबन्द आदि से विभूषित शरीर वाले **(स्वङ्गौ)** सुन्दर शरीर से युक्त तथा **(कमल-दलाक्षौ)** कमल पत्र के समान नेत्र वाले **(यक्षौ)** दो यक्ष **(सलीलचामरयुगलं)** लीला सहित युगल चामर को **(परिनिक्षिपतः)** ढोरते हैं।

आकस्मिक-मिव युगपद्-दिवसकर-सहस्र-मपगत-व्यवधानम्।
भामण्डल-मविभावित-रात्रिञ्दिव-भेद-मतितरामाभाति ॥५५॥

अन्वयार्थ— (आकस्मिकं युगपत् -दिवसकर-सहस्त्रं इव) आकस्मिक उदित हुए एक साथ हजारों सूर्य के समान **(अपगतव्यवधानं)** व्यवधान रहित **(अविभावित-रात्रिंदिवभेदं)** रात-दिन के भेद को विलुप्त करने वाला **(भामण्डलं)** भामण्डल **(अतितरां आभाति)** अत्यन्त सुशोभित होता है।

प्रबल-पवनाभिघात - प्रक्षुभित - समुद्र - घोष - मन्द्र - ध्वानम्।
दन्ध्वन्यते सुवीणा-वंशादि-सुवाद्य-दुन्दुभिस्तालसमम् ॥५६॥

अन्वयार्थ—(प्रबल-पवनाभिघात-प्रक्षुभित-समुद्रघोष-मन्द्रध्वानं) प्रबल वायु के ताडन से क्षुभित समुद्र के घोष के समान गम्भीर ध्वनि वाला **(सुवीणा-वंशादि-सुवाद्य-दुन्दुभिः)** अच्छी वीणा, वंशी आदि श्रेष्ठ वाद्यों, दुन्दुभि के साथ **(तालसमं)** ताल के अनुसार **(दन्ध्वन्यते)** बार-बार ध्वनि होती है।

त्रिभुवन-पतिता-लाञ्छन-मिन्दुत्रय-तुल्य-मतुल-मुक्ता-जालम्।
छत्रत्रयं च सुबृहद्-वैडूर्य-विक्लृप्त-दण्ड-मधिक-मनोज्ञम् ॥५७॥

अन्वयार्थ—(त्रिभुवन-पतिता-लाञ्छनं) तीन लोक के स्वामित्व का चिह्न-स्वरूप **(इन्दुत्रयतुल्यं)** तीन चन्द्रमा के समान **(अतुलमुक्ता-जालं)** अनुपम मोतियों के समूह युक्त **(सुबृहद्-वैडूर्य-विक्लृप्तदण्डं)** बहुत विशाल नील-मणि से निर्मित दण्ड सहित **(अधिक मनोज्ञं)** अत्यधिक

सुन्दर **(छत्रत्रयं च)** तीन छत्र होते हैं।

ध्वनिरपि योजनमेकं प्रजायते श्रोतृ-हृदयहारि-गंभीरः।
ससलिल-जलधर-पटल-ध्वनितमिव प्रविततान्त-राशावलयम् ॥५८॥

अन्वयार्थ—(श्रोतृ-हृदयहारि-गभीरः) कर्ण और हृदय को हरण करने वाली गम्भीर **(ध्वनिः अपि)** दिव्यध्वनि भी **(एकं योजनं)** एक योजन तक **(प्रजायते)** होती है। **(स-सलिल-जलधर-पटल-ध्वनितमिव)** जल सहित मेघ समूह की ध्वनि के समान **(प्रविततान्तरा-शावलयं)** तथा दिशाओं के अन्तराल को व्याप्त करने वाली वह ध्वनि होती है।

स्फुरितांशु-रत्न-दीधिति- परिविच्छुरिताऽमरेन्द्र-चापच्छायम्।
ध्रियतेमृगेन्द्रवर्यैः-स्फटिकशिला-घटित-सिंह-विष्टर-मतुलम् ॥५९॥

अन्वयार्थ—(स्फुरितांशु-रत्न-दीधिति-परिविच्छुरिता-मरेन्द्र-चाप-च्छायं) दैदीप्यमान किरणों वाले रत्न की किरणों से इन्द्रधनुष की कान्ति को चित्रित करने वाला **(अतुलं)** अनुपम **(स्फटिक-शिलाघटित-सिंह-विष्टरं)** स्फटिक शिला से बना सिंहासन होता है, जिसे कि **(मृगेन्द्रवर्यैः ध्रियते)** श्रेष्ठ सिंह धारण करते हैं।

यस्येह चतुस्त्रिंशत्- प्रवर-गुणाः प्रातिहार्य-लक्ष्म्यश्चाष्टौ।
तस्मै नमो भगवते, त्रिभुवन-परमेश्वरार्हते गुण-महते ॥६०॥

अन्वयार्थ—(यस्य) जिन भगवान् के **(इह)** इस लोक में **(चतुस्त्रिंशत्-प्रवर गुणाः)** चौंतीस उत्कृष्ट गुण **(प्रातिहार्यलक्ष्म्यः च अष्टौ)** और अष्ट प्रातिहार्य लक्ष्मी होती हैं **(तस्मै)** उन **(गुणमहते)** गुणों से महान् **(भगवते)** भगवान् **(त्रिभुवन-परमेश्वरार्हते)** तीन लोक के परमेश्वर अर्हन्त परमेष्ठी को **(नमः)** नमस्कार हो।

क्षेपक-श्लोकाः

गत्वा क्षितेर्वियति पंचसहस्त्रदण्डान्,
सोपान - विंशति - सहस्त्र - विराजमाना।
रेजे सभा धनद यक्षकृता यदीया,
तस्मै नमस्त्रिभुवनप्रभवे जिनाय ॥१॥

अन्वयार्थ—(वियति) आकाश में **(क्षितेः)** पृथ्वी से **(पंचसहस्त्रदण्डान्)** पाँच हजार धनुष (ऊपर) **(गत्वा)** जाकर **(सोपान-विंशति सहस्त्र**

विराजमाना) बीस हजार सीढ़ियाँ सुन्दर हैं ऐसी **(यदीया)** जिनकी **(सभा)** समवसरण सभा **(धनद यक्षकृता)** कुबेर रचित हैं उस सभा में **(रेजे)** शोभायमान **(तस्मै)** उन **(त्रिभुवन प्रभवे)** तीन लोक के नाथ **(जिनाय)** जिनेश्वर के लिए **(नमः)** नमस्कार हो।

सालोऽथ वेदिरथ वेदिरथोऽपि सालो,
वेदिश्च साल इह वेदिरथोऽपि सालः।
वेदिश्च भाति सदसि क्रमतो यदीये,
तस्मै नमस्त्रिभुवनप्रभवे जिनाय॥२॥

अन्वयार्थ—(यदीये) जिनके समवसरण में **(सालः)** कोट पश्चात् **(वेदिः)** वेदी **(अथ)** पश्चात् **(वेदिरतः अपि सालः)** पुनः वेदी और फिर शाल/कोट **(च)** और **(वेदिः)** वेदी **(शाल)** कोट **(इह)** इस प्रकार **(वेदिरथोऽपि शालः)** पुनः वेदी फिर शाल **(च)** और **(वेदिः)** वेदी **(क्रमतः)** क्रम से **(भाति सदसि)** सभा में शोभायमान है **(तस्मै)** उन **(त्रिभुवन प्रभवे)** तीन लोक के नाथ **(जिनाय)** जिनदेव के लिए **(नमः)** नमस्कार हो।

प्रासाद-चैत्य-निलयाः परिखात-बल्ली,
प्रोद्यान - केतुसुरवृक्ष - गृहाङ्ग गणाश्च।
पीठत्रयं सदसि यस्य सदा विभाति,
तस्मै नमस्त्रिभुवन-प्रभवे जिनाय ॥३॥

अन्वयार्थ—(प्रासाद) महल **(चैत्यनिलया)** चैत्यालय **(परिखा)** खातिका **(अथ)** पश्चात् **(वल्लि)** लता **(प्रोद्यान)** उद्यान **(केतु)** ध्वजा **(सुरवृक्ष)** कल्पवृक्ष **(च)** और **(गृहाङ्गणाः)** गृहसमूह **(पीठत्रयं)** तीन पीठ **(यस्य)** जिनकी **(सदसि)** सभा में **(सदा)** हमेशा **(विभाति)** शोभायमान हैं **(तस्मै)** उन **(त्रिभुवन प्रभवे)** तीन भुवन के स्वामी **(जिनाय)** जिनेन्द्रदेव के लिए **(नमः)** नमस्कार है।

माला-मृगेन्द्र - कमलाम्बर-वैनतेय,
मातङ्ग-गोपतिरथाङ्ग-मयूर हंसाः।
यस्य ध्वजा विजयिनो भुवने विभान्ति,
तस्मै नमस्त्रिभुवनप्रभवे जिनाय ॥४॥

अन्वयार्थ—(यस्य विजयिनः) जिन जितेन्द्रिय अरहंत देव का समवसरण

(माला-मृगेन्द्र-कमलाम्बर-वैनतेय, मातङ्ग-गोपतिरथाङ्ग-मयूर हंसाः) माला, मृगेन्द्र, कमल, वस्त्र, गरुड़, हस्ति, बैल, चक्रवाल/चकवा पक्षी, मोर व हंस इन चिह्नों युक्त १० प्रकार की **(ध्वजा)** ध्वजाओं से **(भुवने)** लोक में **(विभान्ति)** सुशोभित हैं **(तस्मै)** उन **(त्रिभुवनप्रभवे)** तीन लोक के स्वामी **(जिनाय)** जिनदेव के लिए **(नमः)** नमस्कार हो।

निर्ग्रन्थ-कल्प-वनिता-व्रतिका भ-भौम,
नागस्त्रियो भवन-भौम-भ-कल्पदेवाः।
कोष्ठस्थिता नृ-पशवोऽपि नमन्ति यस्य,
तस्मै नमस्त्रि-भुवन-प्रभवे जिनाय ॥५॥

अन्वयार्थ—(यस्य) जिनके चरण-कमलों में **(कोष्ठस्थिता)** बारह सभाओं में स्थित **(निर्ग्रन्थ-कल्प-वनिता-व्रतिका भभौम नागस्त्रियो भवन-भौम-भ-कल्पदेवाः नृपशवः अपि)** १. मुनि, २. कल्पवासिनी देवियाँ, ३. आर्यिका, ४. ज्योतिषी देवियाँ, ५. व्यन्तर देवियाँ, ६. भवनवासी देवियाँ, ७. भवनवासी देव, ८. व्यन्तर देव, ९. ज्योतिषी देव, १०. कल्पवासी देव, ११. मनुष्य और १२. तिर्यञ्च भी (नामान्त) नमस्कार करते हैं **(तस्मै)** उन **(त्रिभुवन-प्रभवे)** तीन लोक के स्वामी **(जिनाय)** जिनेन्द्रदेव के लिए **(नमः)** नमस्कार हो।

भाषा - प्रभा - वलयविष्टर - पुष्पवृष्टिः,
पिण्डिद्रुमस्त्रि - दशदुन्दुभि-चामराणि।
छत्रत्रयेण सहितानि लसन्ति यस्य,
तस्मै नमस्त्रि-भुवनप्रभवे जिनाय ॥६॥

अन्वयार्थ—(यस्य) जो जिनेन्द्रदेव **(भाषा-प्रभावलयविष्टर-पुष्पवृष्टिः पिण्डिद्रुमः त्रिदशदुन्दुभि-चामराणि-छत्रत्रयेण)** दिव्यध्वनि, भामण्डल, सिंहासन, पुष्पवृष्टि, अशोकवृक्ष, देवदुंदुभि, ६४ चँवर, तीन छत्र रूप आठ प्रातिहार्यों से **(सहितानि)** सहित हो **(लसंति)** शोभा को प्राप्त हो रहे हैं **(तस्मै)** उन **(त्रिभुवनप्रभवे)** तीन लोक के नाथ **(जिनाय)** जिनेन्द्रदेव के लिए **(नमः)** नमस्कार हो।

भृङ्गार - ताल - कलश-ध्वजसुप्रतीक,
श्वेतातपत्र - वरदर्पण-चामराणि।

प्रत्येक-मष्टशतकानि विभान्ति यस्य,
तस्मै नमस्त्रि-भुवन-प्रभवे जिनाय ॥७॥

अन्वयार्थ—(यस्य) जो त्रिलोकीनाथ **(भृङ्गार-ताल-कलश-ध्वज-सुप्रतीक श्वेतातपत्र-वरदर्पण-चामराणि)** झारी, पंखा, कलश, ध्वजा, स्वस्तिक, सफेद तीन छत्र, श्रेष्ठ दर्पण, ६४ चँवर; इन **(प्रत्येकम्-अष्टशतकानि)** प्रत्येक मंगल द्रव्य १०८-१०८ से **(विभान्ति)** शोभा को प्राप्त है **(तस्मै)** उन **(त्रिभुवन-प्रभवे)** तीन लोक के नाथ **(जिनाय)** जिनदेव के लिए **(नमः)** नमस्कार हो।

स्तंभप्रतोलि -निधिमार्गतडाग-वापी,
क्रीडादिधूप - घट - तोरण - नाट्य-शालाः।
स्तूपाश्च चैत्य-तरवो विलसन्ति यस्य,
तस्मै नमस्त्रि भुवनप्रभवे जिनाय ॥८॥

अन्वयार्थ—(यस्य) जिनकी समवसरण सभा में **(स्तंभप्रतोलि-निधि-मार्गतडाग-वापी क्रीडादिधूप-घट -तोरण-नाट्य-शालाः स्तूपाः च चैत्यतरवः)** मानस्तम्भ, गोपुर, नवनिधि, मार्ग/रास्ते, तालाब, वापिका, क्रीड़ा पर्वत, धूपघट, तोरण, नाट्यशालाएँ और अनेक प्रकार के स्तूप तथा चैत्यवृक्ष **(विलसन्ति)** शोभा को प्राप्त हो रहे हैं **(तस्मै)** उन **(त्रिभुवन-प्रभवे)** तीन लोक के स्वामी **(जिनाय)** जिनेन्द्रदेव के लिए **(नमः)** नमस्कार हो।

सेनापति-स्थपति - हर्म्यपति-द्विपाश्च,
स्त्रीचक्रचर्म - मणिकाकिणिका - पुरोघाः।
छत्रासि-दण्डपतयः प्रणमन्ति यस्य,
तस्मै नमस्त्रिभुवनप्रभवे जिनाय॥९॥

अन्वयार्थ—(सेनापति-स्थपति-हर्म्यपति-द्विपाश्च, स्त्रीचक्रचर्म-मणिकाकिणिका-पुरोघाः छत्रासि-दण्डपतयः) सेनापति, स्थपति/उत्तम कारीगर, हर्म्य पति/घर का सभी हिसाब आदि रखने वाला, हाथ, घोड़ा, स्त्री रत्न/चक्रवर्ती की पट्टरानी, सुदर्शनचक्र, चर्मरत्न, चूड़ामणिरत्न, काकिणी रत्न, पुरोहित रत्न, छत्र, तलवार और दण्ड इन १४ रत्नों के स्वामी चक्रवर्ती भी **(यस्य प्रणमन्ति)** जिनको नमस्कार करते हैं **(तस्मै)**

उन **(त्रिभुवन-प्रभवे)** तीन लोक के स्वामी **(जिनाय)** जिनदेव के लिए **(नमः)** नमस्कार हो।

पद्मः कालो महाकालः सर्वरत्नश्च पाण्डुक-
नैसर्पो माणवः शङ्खः पिङ्गलो निधयो नव।
एतेषां पतयः प्रणमन्ति यस्य,
तस्मै नमस्त्रिभुवनप्रभवे जिनाय॥१०॥

अन्वयार्थ—(पद्मः कालः महाकालः सर्वरत्नः च पाण्डुकः नैसर्पः माणवः शङ्खः पिङ्गलः) पद्म, महापद्म, काल, महाकाल, सर्वरत्न, पाण्डुक, नैसर्प, माणव, शंख, पिंगला ये **(नवनिधयः)** नव निधियाँ हैं **(एतेषां पतयः)** इन निधियों के स्वामी चक्रवर्ती **(यस्य)** जिनके चरणों में **(प्रणमन्ति)** नमस्कार करते हैं **(तस्मै)** उन **(त्रिभुवन-प्रभवे)** तीन लोक के नाथ **(जिनाय)** जिनेन्द्रदेव के लिए **(नमः)** नमस्कार हो।

खवियघणघाइकम्मा चउतीसातिसयविसेसपंचकल्लाणा।
अट्ट-वर-पाडिहेरा अरिहंता मंगला मज्झं ॥११॥

अन्वयार्थ—(खवियघणघाइकम्मा) क्षय कर दिया है अत्यन्त दुष्ट ऐसे घातिया कर्मों का समूह जिसने जो **(चउतीसातिसयविसेस-पंच-कल्लाणा)** चौंतीस अतिशय विशेष व गर्भादि पंचकल्याणक से युक्त हैं **(अरिहंता)** अर्हन्त परमेष्ठी **(मज्झं)** मेरे लिए **(मंगला)** मंगल करो।

अञ्चलिका

इच्छामि भंते! णंदीसरभत्ति काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं णंदीसर-दीवम्मि, चउदिस विदिसासु अंजण-दधिमुह-रदिकर-पुरुणगवरेसु जाणि जिणचेइयाणि ताणि सव्वाणि तिसुवि लोएसु भवणवासिय-वाणविंतर-जोइसिय-कप्पवासिय-त्ति चउविहा देवा सपरिवारा दिव्वेहिं गंधेहिं, दिव्वेहिं पुप्फेहिं, दिव्वेहिं धूवेहिं, दिव्वेहिं चुण्णेहिं, दिव्वेहिं ण्हाणेहिं, दिव्वेहिं वासेहिं, आसाढ-कत्तियफागुण-मासाणं अट्ठमिमाइं काऊण जाव पुण्णिमंति णिच्चकालं अच्चंति, पुज्जंति, वंदंति, णमंसंति। णंदीसर-महाकल्लाणपुज्जं करंति अहमवि इह संतो तत्थसंताइयं णिच्चकालं अच्चेमि, पुज्जेमि, वंदामि, णमस्सामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं,

समाहिमरणं, जिणगुण-संपत्ति होउ मज्झं।

अन्वयार्थ—(भंते!) हे भगवन्! **(णंदीसरभत्ति काउस्सग्गो कओ)** मैंने नन्दीश्वर भक्ति सम्बन्धी कायोत्सर्ग किया है **(तस्स आलोचेउं इच्छामि)** तत्सम्बन्धी आलोचना करने की इच्छा करता हूँ। **(णंदीसर-दीवम्मि)** नन्दीश्वर द्वीप में **(चउदिस विदिसासु)** चारों दिशाओ, विदिशाओं में **(अंजण-दधिमुह-रदिकर-पुरुणगवरेसु)** अंजनगिरि, दधिमुख व रतिकर नामक श्रेष्ठ पर्वतों में **(जाणि जिणचेइयाणि)** जितनी जिन प्रतिमाएँ हैं **(ताणि सव्वाणि)** उन सबको **(तिसुवि लोएसु)** त्रिलोकवर्ती **(भवण-वासिय-वाणविंतर-जोइसिय-कप्पवासिय-त्ति चउविहा देवा सपरिवारा)** भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी और कल्पवासी ये चार प्रकार के देव परिवार सहित **(दिव्वेहिं गंधेहिं, दिव्वेहिं पुप्फेहिं, दिव्वेहिं धूवेहिं, दिव्वेहिं चुण्णेहिं, दिव्वेहिं ण्हाणेहिं, दिव्वेहिं वासेहिं)** दिव्यगन्ध दिव्य-पुष्प, दिव्यधूप, दिव्यचूर्ण, दिव्य सुगंधित पदार्थ और दिव्य अभिषेक के द्वारा **(आसाढ-कत्तियफागुण मासाणं अट्ठमिमाइं काऊण जाव पुण्णिमंति)** आषाढ़, कार्तिक और फाल्गुन मास की अष्टमी से लेकर पूर्णिमा पर्यन्त **(णिच्चकालं अच्चंति, पुज्जंति, वंदंति, णमंसंति णंदीसर-महाकल्लाणपुज्जं करंति)** नित्यकाल अर्चा करते हैं, पूजा करते हैं, वंदना करते हैं, नमस्कार करते हैं तथा नन्दीश्वर द्वीप महान् उत्सव करते हैं **(अहं अवि)** मैं भी **(इह संतो)** यहाँ रहता हुआ **(तत्थ संताइयं)** वहाँ स्थित जिन चैत्यालय प्रतिमाओं की **(णिच्चकालं अच्चेमि, पुज्जेमि, वंदामि, णमस्सामि)** नित्य काल अर्चा करते हैं, पूजा करते हैं, वंदना करते हैं, नमस्कार करते हैं(**दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुण-संपत्ति होउ मज्झं)** मेरे दुःखों का क्षय हो, कर्मों का क्षय हो, रत्नत्रय की प्राप्ति हो, सुगति में गमन हो, समाधिमरण हो और जिनेन्द्र भगवान् के गुण रूप सम्पत्ति की मुझे प्राप्ति हो।

❑ ❑ ❑

चैत्यभक्ति

[टीकाकार का मङ्गलाचरण]

श्री - गौतमादिपद-मद्भुतपुण्यबन्ध-
मुद्योतिताखिल - ममोघमघप्रणाशम्।
वक्ष्ये जिनेश्वरमहं प्रणिपत्य तथ्यं
निर्वाणकारणमशेष-जगद्धितार्थम् ॥

अन्वयार्थ– (श्री गौतमादिपद-मद्भुतपुण्यबन्ध) श्री गौतम आदि गणधरों के द्वारा की गई महावीर भगवान् की 'जयति भगवान्' इस श्लोक से की गई स्तुति अद्भुत पुण्यबन्ध को करने वाली है **(अखिलं अमौघम् अघ प्रणाशम्)** सम्पूर्ण पाप समूह को नाश करने वाली है **(तथ्यं उद्योतिता)** सत्य को प्रकाशन करने वाली है **(अहं)** मैं संस्कृत टीकाकार **(निर्वाणकारणम्)** मुक्ति के कारण **(अशेष जगत् हितार्थम्)** सम्पूर्ण जगत्/संसारी जीवों के हितकारक **(जिनेश्वरं प्रणिपत्य)** जिनेन्द्रदेव को नमस्कार करके **(वक्ष्ये)** उस स्तुति की टीका कहूँगा।

जयति भगवान् हेमाम्भोज-प्रचार-विजृम्भिता-
वमर-मुकुटच्छायोद्गीर्ण - प्रभा - परिचुम्बितौ।
कलुष-हृदया मानोद्भ्रान्ताः परस्पर-वैरिणः,
विगत-कलुषाः पादौ-यस्य प्रपद्य विशश्वसुः ॥१॥

अन्वयार्थ–(यस्य) जिनके **(पादौ)** दोनों चरण **(हेमाम्भोज-प्रचार-विजम्भितौ)** स्वर्ण कमल पर, चलने से खिलते हैं **(अमर-मुकुटच्छायोद्-गीर्ण-प्रभा-परिचुम्बितौ)** जो देवों के मुकुटों की छाया से निकली प्रभा से युक्त हैं **(प्रपद्य)** उन चरणों को प्राप्त करके **(कलुष-हृदयाः)** कलुषित हृदय वाले **(मानोदभ्रान्ताः)** मान से उदभ्रान्त **(परस्पर-वैरिणः)** परस्पर वैरभाव वाले **(विगतकलुषाः)** पाप से रहित हो **(विशश्वसुः)** विश्वास करने लगते थे **(भगवान्)** वह भगवान् **(जयति)** जयवन्त रहे।

तदनु जयति श्रेयान्-धर्मः प्रवृद्ध-महोदयः
कुगति-विपथ-क्लेशाद्योऽसौ विपाशयति प्रजाः।
परिणत - नयस्याङ्गी - भावाद्विविक्त - विकल्पितम्

भवतु भवतस्त्रातृ त्रेधा जिनेन्द्र-वचोऽमृतम् ॥२॥

अन्वयार्थ— (तदनु) इसके बाद **(यः श्रेयान्)** जो श्रेष्ठ हैं **(प्रवृद्धमहोदयः)** जिसका अभ्युदय बढ़ा हुआ है तथा जो **(प्रजाः)** प्रजा को **(कुगति-विपथ-क्लेशात्)** कुगतियों के कुमार्ग रूपी क्लेश से **(विपाशयति)** छुड़ाता है **(असौ धर्मः)** वह धर्म **(जयति)** जयवन्त है। **(परिणतनयस्य)** विवक्षित नय के **(अङ्गीभावात्)** स्वीकार करने से **(विविक्त-विकल्पितं)** विकल्प रहित **(अमृतं)** अमृत तुल्य **(त्रेधा)** तीन प्रकार के **(जिनेन्द्रवचः)** जिनेन्द्र भगवान् के वचन **(भवतः)** संसार से **(त्रातृ भवतु)** रक्षा करने वाले हो।

तदनु जयताज्जैनी वित्तिः प्रभङ्ग-तरङ्गिणी
प्रभव - विगम - ध्रौव्य - द्रव्य - स्वभाव-विभाविनी।
निरुपम-सुखस्येदं द्वारं विघट्य निरर्गलम्
विगत-रजसं मोक्षं देयान् निरत्यय-मव्ययम् ॥३॥

अन्वयार्थ— (तदनु) इसके बाद **(जैनी वित्तिः)** जिनेन्द्र भगवान् का केवलज्ञान **(जयतात्)** जयवन्त होवे **(प्रभङ्गतरङ्गिणी)** जो कि अनेक भंगों से तरङ्गायित है **(प्रभव-विगम-ध्रौव्य-द्रव्य-स्वभाव-विभाविनी)** उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य रूप द्रव्य स्वभाव को कहने वाली है। **(इदं)** यह **(निरुपमसुखस्य)** अनुपम सुख का **(द्वारं)** द्वार **(विघट्य)** खोलकर **(निरर्गलं)** अर्गला रहित **(विगतरजसं)** कर्म रज रहित **(निरत्ययं)** नाश रहित **(अव्ययं)** अव्यय **(मोक्षं)** मोक्ष **(देयात्)** देवे।

अर्हत्सिद्धाचार्यो - पाध्यायेभ्यस्तथा च साधुभ्यः।
सर्व - जगद् - वन्द्येभ्यो नमोऽस्तु सर्वत्र सर्वेभ्यः ॥४॥

अन्वयार्थ—(सर्वत्र) सब जगह विराजमान **(सर्वजगद्-वन्द्येभ्यः)** समस्त संसार से वन्दनीय **(सर्वेभ्यः)** समस्त **(अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायेभ्यः)** अर्हन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय के लिए **(तथा च)** और **(साधुभ्यः)** साधु के लिए **(नमः अस्तु)** नमस्कार होवे।

मोहादि-सर्व-दोषारि- घातकेभ्यः सदा हत-रजोभ्यः।
विरहित-रहस्कृतेभ्यः पूजार्हेभ्यो नमोऽर्हद्भ्यः ॥५॥

अन्वयार्थ— (मोहादि-सर्व-दोषारि-घातकेभ्यः) मोह आदि समस्त

दोष रूपी शत्रुओं का नाश करने वाले **(हतरजोभ्यः)** रज के नाशक **(विरहित-रहस्-कृतेभ्यः)** अन्तराय से रहित **(पूजार्हेभ्यः)** पूजा योग्य **(अर्हद्भ्यः)** अरहन्तों के लिए **(सदा)** हमेशा **(नमः)** नमस्कार हो।

क्षान्त्यार्जवादि-गुण-गण सुसाधनं सकल-लोक-हित-हेतुम्।
शुभ-धामनि धातारं वन्दे धर्मं जिनेन्द्रोक्तम् ॥६॥

अन्वयार्थ– (क्षान्त्यार्जवादि-गुण-गण-सुसाधनं) जो क्षमा, आर्जव आदि गुणसमूह का साधन है **(सकललोक-हित हेतुं)** जो समस्तलोक के हित का कारण है **(शुभधामनि)** जो शुभ धाम में **(धातारं)** रखने वाला है **(जिनेन्द्रोक्तं धर्मं)** उन जिनेन्द्र देव के कहे धर्म की **(वन्दे)** मैं वन्दना करता हूँ।

मिथ्याज्ञानतमोवृत - लोकैकज्योतिरमित-गमयोगि।
साङ्गोपाङ्ग-मजेयं जैनं वचनं सदा वन्दे ॥७॥

अन्वयार्थ–(मिथ्याज्ञान-तमोवृत-लोकैक-ज्योतिः) मिथ्याज्ञानरूपी अन्धकार से घिरे लोक की एक ज्योतिस्वरूप **(अमितगमयोगि)** अपरिमित श्रुतज्ञान से जिसका सम्बन्ध है **(अजेयं)** जो अजेय है **(साङ्गोपाङ्गं)** अंग और उपांग से सहित है **(जैनं वचनं)** जिनेन्द्रदेव के उन वचनों को **(सदा वन्दे)** मैं हमेशा नमस्कार करते हैं।

भवन-विमान-ज्योति - र्व्यन्तर-नरलोक विश्व-चैत्यानि।
त्रिजग-दभिवन्दितानां वन्दे त्रेधा जिनेन्द्राणाम् ॥८॥

अन्वयार्थ– (त्रिजगदभिवन्दितानां) तीन लोक से वन्दनीय **(जिनेन्द्राणां)** जिनेन्द्र देव के **(भवनविमान-ज्योति-र्व्यन्तर-नरलोक-विश्वचैत्यानि)** भवनवासी, वैमानिक, ज्योतिष्क, व्यन्तर तथा मनुष्य लोक के समस्त चैत्यों को **(त्रेधा)** तीन प्रकार से **(वन्दे)** वन्दना करता हूँ।

भुवन-त्रयेऽपि भुवन - त्रयाधिपाभ्यर्च्य-तीर्थ-कर्तृणाम्।
वन्दे भवाग्नि-शान्त्यै विभवाना-मालया-लीस्ताः ॥९॥

अन्वयार्थ–(भुवनत्रयेऽपि) तीनलोक में भी **(विभवानां)** संसार रहित **(भुवनत्रया-धिपाभ्यर्च्यतीर्थकर्तृणां)** तीन लोक के अधिपतियों से पूज्य तीर्थंकरों के **(ताः)** उन **(आलयालीः)** जिनालय की पंक्तियों की

(भवाग्निशान्त्यै) संसाररूपी अग्नि की शान्ति के लिए **(वन्दे)** मैं वन्दना करता हूँ।

इति पञ्च-महापुरुषाः प्रणुता जिनधर्म-वचन-चैत्यानि।
चैत्यालयाश्च विमलां दिशन्तु बोधिं बुध-जनेष्टाम् ॥१०॥

अन्वयार्थ— (इति) इस प्रकार **(प्रणुताः)** स्तुति को प्राप्त **(पञ्च-महापुरुषाः)** पाँच महापुरुष **(जिनधर्मवचनचैत्यानि)** जिन धर्म, जिन वचन और जिन चैत्य **(चैत्यालयाः च)** और चैत्यालय **(बुधजनेष्टां)** ज्ञानी जनों को इष्ट **(विमलां बोधिं)** निर्मल ज्ञान **(दिशन्तु)** हमें प्रदान करें।

अकृतानि कृतानि - चाप्रमेय - द्युतिमन्ति द्युतिमत्सु मन्दिरेषु।
मनुजामर-पूजितानि वन्दे प्रतिबिम्बानि जगत्त्रये जिनानाम् ॥११॥

अन्वयार्थ— (जगत्त्रये) तीन लोक में **(द्युतिमत्सु)** अपरिमित कान्ति वाले **(मन्दिरेषु)** मन्दिरों में **(जिनानां)** जिनदेव की **(मनुजामर-पूजितानि)** मनुष्य और देवों से पूजित **(अप्रमेय-द्युतिमन्ति)** अपरिमित कान्तियुक्त **(अकृतानिकृतानि च)** अकृत्रिम और कृत्रिम **(प्रतिबिम्बानि)** प्रतिबिम्बों की **(वन्दे)** मैं वन्दना करता हूँ।

द्युति-मण्डल-भासुराङ्ग-यष्टीः प्रतिमा अप्रतिमा जिनोत्तमानाम्।
भुवनेषु विभूतये प्रवृत्ता वपुषा प्राञ्जलिरस्मि वन्दमानः ॥१२॥

अन्वयार्थ— (भुवनेषु) तीन लोक में **(विभूतये)** वैभव के लिए **(वपुषा)** शरीर से **(प्रवृत्ताः)**, प्रवृत्त हुई **(द्युति-मण्डल-भासुराङ्गयष्टीः)** कान्ति-समूह से भासुर शरीर यष्टि वाली **(अप्रतिमाः)** अतुलनीय **(जिनोत्तमानां प्रतिमाः)** जिन श्रेष्ठ की प्रतिमाओं को **(प्राञ्जलिः)** अञ्जलि जोड़कर **(वन्दमानः अस्मि)** वन्दना करता हूँ।

विगतायुधविक्रिया-विभूषाः प्रकृतिस्थाः कृतिनां जिनेश्वराणाम्।
प्रतिमाः प्रतिमागृहेषु कान्त्याऽप्रतिमाः कल्मषशान्तयेऽभिवन्दे ॥१३॥

अन्वयार्थ—(कृतिनां) पुण्यमय **(जिनेश्वराणां)** जिनेश्वरों की **(प्रतिमा-गृहेषु)**जिनालयों में जो **(विगतायुध-विक्रिया-विभूषाः)** आयुध, विक्रिया और आभूषणों से रहित **(प्रकृतिस्थाः)** स्वभाव में स्थित **(कान्त्या अप्रतिमाः)** कान्ति से अप्रतिम **(प्रतिमाः)** प्रतिमाओं को **(कल्मष-**

शान्तये) पापों की शान्ति के लिये **(अभिवन्दे)** नमस्कार करता हूँ।

कथयन्ति कषाय-मुक्ति-लक्ष्मीं परया शान्ततया भवान्तकानाम्।
प्रणमाम्यभिरूपमूर्तिमन्ति प्रतिरूपाणि विशुद्धये जिनानाम् ॥१४॥

अन्वयार्थ—(परया) उत्कृष्ट **(शान्ततया)** शान्ति से **(कषाय-मुक्तिलक्ष्मीं)** कषाय मुक्ति से लक्ष्मी की प्राप्ति को **(कथयन्ति)** जो कहते हैं ऐसे **(भवान्तकानां)** संसार का अन्त करने वाले **(जिनानां)** जिनेन्द्र के **(अभिरूप-मूर्तिमन्ति)** सुन्दर मूर्तिमान **(प्रतिरूपाणि)** प्रतिबिम्बों को **(विशुद्धये)** विशुद्धि के लिए **(प्रणमामि)** नमस्कार करता हूँ।

यदिदं मम सिद्धभक्ति-नीतं सुकृतं दुष्कृतवर्त्मरोधि तेन।
पटुना जिनधर्म एव भक्तिर्भव-ताज्जन्मनि जन्मनि स्थिरा मे ॥१५॥

अन्वयार्थ—(यत् इदं) जो यह **(मम)** मेरा **(सुकृतं)** पुण्य है वह **(सिद्ध-भक्तिनीतं)** सिद्धभक्ति से प्राप्त है तथा **(दुष्कृत-वर्त्मरोधि)** वह पाप मार्ग को रोकने वाला है **(तेन पटुना)** उस प्रबल पुण्य से **(मे भक्तिः)** मेरी भक्ति **(जिनधर्म एव)** जिनधर्म में ही **(जन्मनि जन्मनि)** जन्म-जन्म में **(स्थिरा भवतात्)** स्थिर होवे।

अर्हतां सर्व - भावानां दर्शन -ज्ञान-सम्पदाम्।
कीर्तयिष्यामि चैत्यानि यथाबुद्धि विशुद्धये ॥१६॥

अन्वयार्थ— (सर्वभावानां) सभी भावों को जानने वाले **(दर्शन-ज्ञान-सम्पदां)** दर्शन-ज्ञान रूपी सम्पत्ति से सहित **(अर्हतां)** अरिहन्तों के **(चैत्यानि)** चैत्यों को **(विशुद्धये)** विशुद्धि की प्राप्ति के लिए **(यथाबुद्धि)** बुद्धि के अनुसार **(कीर्तयिष्यामि)** स्तुति करूँगा।

श्रीमद्-भावन - वासस्थाः स्वयं भासुर-मूर्तयः।
वन्दिता नो विधेयासुः प्रतिमाः परमां गतिम् ॥१७॥

अन्वयार्थ— (श्रीमद्भावनवासस्थाः) श्रीयुत भवनवासी देवों के भवनों में स्थित **(स्वयं भासुरमूर्तयः)** स्वभाव से ही प्रकाशमान शरीर वाली **(प्रतिमाः)** प्रतिमायें **(वन्दिताः)** वन्दित हैं **(नः)** वह हमारे लिए **(परमां गतिं)** उत्कृष्ट गति को **(विधेयासुः)** करें।

यावन्ति सन्ति लोकेऽस्मिन्नकृतानि कृतानि च।
तानि सर्वाणि चैत्यानि वन्दे भूयांसि भूतये ॥१८॥

अन्वयार्थ— (अस्मिन् लोके) इस लोक में **(यावन्ति)** जितनी भी **(अकृतानि कृतानि च)** अकृत्रिम और कृत्रिम **(भूयांसि)** बहुत से **(चैत्यानि)** चैत्य **(सन्ति)** हैं **(तानि सर्वाणि)** उन सभी को **(भूतये)** वैभव की प्राप्ति के लिए **(वन्दे)** वन्दना करता हूँ।

ये व्यन्तर - विमानेषु स्थेयांसः प्रतिमागृहाः।
ते च संख्या-मतिक्रान्ताः सन्तु नो दोष-विच्छिदे ॥१९॥

अन्वयार्थ- (व्यन्तरविमानेषु) व्यन्तरदेवों के विमानों में **(ये)** जो **(प्रतिमागृहाः)** चैत्यालय **(स्थेयांसः)** स्थित रहने वाले अर्थात् अकृत्रिम हैं **(ते च)** वह **(संख्यां अतिक्रान्ताः)** संख्या से अतीत हैं। वह **(नः)** हमारे **(दोषविच्छिदे)** दोषों के नाश के लिए **(सन्तु)** होवे।

ज्योतिषा-मथ लोकस्य भूतयेऽद्भुतसम्पदः।
गृहाः स्वयम्भुवः सन्ति विमानेषु नमामि तान् ॥२०॥

अन्वयार्थ—(अथ) अब **(ज्योतिषां लोकस्य)** ज्योतिर्लोक के **(विमानेषु)** विमानों में **(स्वयम्भुवः)** अकृत्रिम **(गृहाः)** गृह **(सन्ति)** हैं **(अद्भुतसम्पदः)** वह अद्भुत सम्पदा वाले हैं **(भूतये)** वैभव की प्राप्ति के लिए **(तान्)** उनको **(नमामि)** मैं नमस्कार करता हूँ।

वन्दे सुर-किरीटाग्र - मणिच्छाया-भिषेचनम्।
याः क्रमेणैव सेवन्ते तदर्च्चाः सिद्धि-लब्धये ॥२१॥

अन्वयार्थ— (याः) जो प्रतिमाएँ **(सुर-किरीटाग्र-मणिच्छाया-भिषेचनम्)** वैमानिक देवों के मुकुटाग्र को मणियों की छाया के अभिषेक को **(क्रमेण एव)** चरणों से ही **(सेवन्ते)**सेवा को प्राप्त हैं **(तदर्च्चाः)** उन प्रतिमाओं की पूजा **(सिद्धिलब्धये)** सिद्धि की प्राप्ति के लिए है उन्हें **(वन्दे)** मैं नमस्कार करता हूँ।

इति स्तुति पथातीत - श्रीभृता - मर्हतां मम।
चैत्यानामस्तु संकीर्तिः सर्वास्रव - निरोधिनी ॥२२॥

अन्वयार्थ—(इति) इस प्रकार **(स्तुतिपथातीत-श्री भृतां)** स्तुति मार्ग से अतीत शोभा को धारण करने वाले **(अर्हतां)** अर्हन्तों की **(चैत्यानां)** प्रतिमाओं की **(सङ्कीर्तिः)** स्तुति **(मम)** मेरे **(सर्वास्त्रव-निरोधिनी)** समस्त आस्रव को रोकने वाली **(अस्तु)** होवे।

अर्हन् - महा - नदस्य त्रिभुवन-भव्यजन-तीर्थ-यात्रिक-दुरित-प्रक्षालनैककारण-मतिलौकिक-कुहक-तीर्थ-मुत्तम तीर्थम् ॥२३॥

अन्वयार्थ—(अर्हन्महानदस्य) अरिहन्त रूप महानद का **(उत्तम-तीर्थ)** उत्तम तीर्थ **(त्रिभुवनभव्यजनतीर्थ-यात्रिक-दुरित-प्रक्षालनैक-कारणं)** तीन लोक के भव्य जीवरूपी तीर्थ यात्रियों के पाप धोने का एक कारण है तथा **(अतिलौकिक-कुहक-तीर्थम्)** लौकिक जनों के दम्भपूर्ण तीर्थों से दूर है।

लोकालोक - सुतत्त्व - प्रत्यव-बोधन-समर्थ-दिव्यज्ञान-प्रत्यह-वहत्प्रवाहं व्रत-शीलामल-विशाल-कूल-द्वितयम् ॥२४॥

अन्वयार्थ—(लोकालोक-सुतत्त्व-प्रत्यवबोधन-समर्थ-दिव्यज्ञान-प्रत्यह-वहत्प्रवाहं) लोक, अलोक के श्रेष्ठ तत्त्व का ज्ञान कराने में समर्थ दिव्य ज्ञान का प्रतिदिन जिसमें प्रवाह बह रहा है **(व्रत-शीलामलविशाल-कूल-द्वितयं)** व्रत और शील रूपी निर्मल विशाल दो कूल जिसमें हैं।

शुक्लध्यान-स्तिमित - स्थित-राजद्राज - हंसराजित-मसकृत्।
स्वाध्याय-मन्द्रघोषं नानागुण-समितिगुप्ति-सिकतासुभगम् ॥२५॥

अन्वयार्थ—(शुक्लध्यान-स्तिमित-स्थित-राजद्-राजहंस-राजितं) शुक्ल-ध्यान में निश्चल बैठे शोभित हो रहे राजहंसों से जो सुशोभित है। **(असकृत्)** बार-बार **(स्वाध्याय-मन्द्र-घोषं)** जिसमें स्वाध्याय का गम्भीर घोष हो रहा है **(नानागुण-समिति-गुप्ति-सिकता-सुभगम्)** तथा जो अनेक गुण, समिति, गुप्ति रूपी बालू समूह से मनोहर है।

क्षान्त्यावर्त-सहस्रं सर्वदया-विकच-कुसुम-विलसल्लतिकम्।
दुःसहपरीषहाख्य - द्रुततर - रङ्गत्तरङ्ग- भङ्गुर-निकरम् ॥२६॥

अन्वयार्थ—(क्षान्त्यावर्त-सहस्रं) जिसमें क्षमारूपी हजारों भँवर हैं, **(सर्वदया-विकच-कुसुमविलसल्लतिकम्)** सभी जीवों परदया रूपी खिले हुए फूलों से विलसित लतायें हैं, **(दुःसह-परीषहाख्यद्रुततर-रङ्ग-त्तरङ्ग-भङ्गुर-निकरम्)** जहाँ दुःसह परीषह नाम की अति तीव्र चलती हुई तरङ्गों का विनश्वर समूह है।

व्यपगत-कषाय-फेनं राग-द्वेषादि-दोष-शैवल-रहितम्।
अत्यस्तमोहकर्दम-मतिदूर-निरस्त-मरण-मकर-प्रकरम् ॥२७॥

अन्वयार्थ—(व्यपगत-कषायफेनं) वह तीर्थ कषायरूपी फेन से रहित है **(राग-द्वेषादि-दोष-शैवलरहितं)** राग, द्वेष आदि दोषरूपी शैवाल से रहित है, **(अत्यस्त-मोह-कर्दमं)** वहाँ मोहरूपी कीचड़ दूर हो। चुका है, **(अतिदूर-निरस्त-मरण-मकर-प्रकरम्)** वहाँ मरणरूपी मगरों का समूह बहुत दूर तक हटा दिया है।

ऋषि-वृषभस्तुति-मन्द्रोद्रेकित-निर्घोष-विविध-विहग-ध्वानम्।
विविधतपोनिधिपुलिनं सास्रव-संवरणनिर्जरा-निःस्रवणम् ॥२८॥

अन्वयार्थ—(ऋषि-वृषभ-स्तुति-मन्द्रोद्रेकित-निर्घोष-विविध-विहग-ध्वानं) श्रेष्ठ ऋषियों की स्तुति के गम्भीर-शब्द ही जिसमें अनेक प्रकार के पक्षियों के शब्द हैं। **(विविधतपोनिधि-पुलिनं)** अनेक प्रकार के मुनि ही जहाँ पुल हैं। **(सास्रव-संवरण-निर्जरा-निःस्रवणम्)** जो आस्रव का संवरण करने वाला तथा निर्जरा रूपी निकासी से सहित है।

गणधर - चक्र - धरेन्द्र - प्रभृति - महा - भव्यपुण्डरीकैः पुरुषैः।
बहुभिः स्नातं भक्त्या कलिकलुषमलापकर्षणार्थ-ममेयम् ॥२९॥

अन्वयार्थ— (गणधर-चक्रधरेन्द्र-प्रभृति-महाभव्य-पुण्डरीकैः) गणधर, चक्री, इन्द्र आादि महाभव्य, श्रेष्ठ **(बहुभिः पुरुषैः)** बहुत से पुरुषों ने **(कलि-कलुष-मलापकर्षणार्थं)** कलि काल के कलुष, मल को दूर करने के लिए **(भक्त्या)** भक्ति से **(स्नातं)** स्नान किया है **(अमेयं)** तथा वह तीर्थ अपरिमित है।

अवतीर्णवतः स्नातुं ममापि दुस्तर-समस्त-दुरितं दूरम्।
व्यपहरतु परम-पावन-मनन्यजय्यस्वभाव-भावगम्भीरम् ॥३०॥

अन्वयार्थ—(परमपावनं) वह तीर्थ परम पवित्र **(अनन्यजय्य-स्वभाव-भाव-गम्भीरं)** अन्य के द्वारा अजेय स्वभाव भाव से गम्भीर है **(स्नातुं)** उसमें स्नान करने के लिए **(मम अवतीर्णवतः)** मुझ उतरे हुए के **(अपि)** भी **(दुस्तर-समस्त-दुरितं)** बड़े कठिन सभी पाप **(दूरं व्यपहरतु)** दूर से ही नष्ट होवे।

अताम्र-नयनोत्पलं सकल-कोप-वह्ने-र्जयात्,
कटाक्ष - शर - मोक्ष - हीन - मविकारतोद्रेकतः।

विषाद-मद-हानितः प्रहसितायमानं सदा,
मुखं कथयतीव ते हृदय-शुद्धि-मात्यन्तिकीम् ॥३१॥

अन्वयार्थ— (सकल-कोप-वह्ने-र्जयात्) समस्त क्रोधरूपी अग्नि को जीत लेने से **(अताम्रनयनोत्पलं)** जिनके नयन कमल लाल नहीं हैं। **(अविकार-तोद्रेकतः)** विकार का उद्रेक नहीं होने से **(कटाक्षशर-मोक्ष-हीनं)** जो कटाक्ष बाणों को छोड़ने से रहित हैं। **(विषाद-मद-हानितः)** विषाद और मद की हानि हो जाने से **(सदा)** हमेशा **(प्रहसितायमानं)** जो प्रसन्न जान पड़ता है **(मुखं)** ऐसा मुख **(ते)** आपकी **(आत्यन्तिकीं)** अत्यधिक **(हृदयशुद्धिं)** हृदय शुद्धि को **(कथयति इव)** मानो कह रहा है।

निराभरण - भासुरं विगत - राग - वेगोदयात्,
निरम्बर - मनोहरं प्रकृति - रूप - निर्दोषतः।
निरायुध - सुनिर्भयं विगत - हिंस्य - हिंसा - क्रमात्,
निरामिष-सुतृप्ति-मद् विविधवेदनानां क्षयात् ॥३२॥

अन्वयार्थ—(विगत-राग-वेगोदयात्) राग के वेग का उदय समाप्त हो जाने से **(निराभरणभासुरं)** आप बिना आभूषण के ही देदीप्यमान हैं। **(प्रकृतिरूप-निर्दोषतः)** प्रकृति रूप को निर्दोष धारण करने से **(निरम्बर-मनोहरं)** आप बिना वस्त्र के मनोहर हैं **(विगत-हिंस्य-हिंसा-क्रमात्)** हिंस्य और हिंसा का क्रम दूर हो जाने से **(निरायुध-सुनिर्भयं)** बिना आयुध के आप निर्भय हैं **(विविध-वेदनानांक्षयात्)** अनेक प्रकार की वेदना का क्षय हो जाने से **(निरामिष-सुतृप्तिमद्)** निराहार रहकर भी परम तृप्ति से युक्त हैं।

मितस्थिति-नखाङ्गजं गत-रजोमल-स्पर्शनं।
नवाम्बुरुह - चन्दन - प्रतिम - दिव्य - गन्धोदयम्।
रवीन्दु-कुलिशादि-दिव्य - बहुलक्षणालङ्कृतम्।
दिवाकर-सहस्र-भासुर-मपीक्षणानां प्रियम् ॥३३॥

अन्वयार्थ—(मित-स्थिति-नखाङ्गजं) जिनके शरीर में नख और केश अपने प्रमाण में स्थित हैं **(गतरजोमल-स्पर्शनं)** जहाँ रज और मल का स्पर्श नहीं होता है। **(नवाम्बु-रुह-चन्दन-प्रतिम-दिव्य-गन्धोदयं)** नए

कमल और चन्दन के समान दिव्य रूप का उदय है। **(रवीन्दु-कुलिशादि-दिव्य-बहुलक्षणालंकृतं)** जो सूर्य, चन्द्र तथा वज्र आदि दिव्य अनेक लक्षणों से अलंकृत हैं। **(दिवाकर-सहस्त्र-भासुरमपि)** हजारों सूर्यों के समान दैदीप्यमान होने पर भी **(ईक्षणानां प्रियम्)** आँखों के लिए प्रिय हैं।

हितार्थ-परिपन्थिभिः प्रबल - राग - मोहादिभिः
कलङ्कितमना जनो यदभिवीक्ष्य शोशुद्ध्यते।
सदाभिमुख-मेव यज्जगति पश्यतां सर्वतः।
शरद्-विमल-चन्द्रमण्डलमिवोत्थितं दृश्यते ॥३४॥

अन्वयार्थ— (हितार्थ-परिपन्थिभिः) हित-प्रयोजन के विरोधी **(प्रबल-राग-मोहादिभिः)** प्रबल राग, मोह आादि से **(कलङ्कितमनाः)** कलंकित मन वाला **(जनः)** मनुष्य भी **(यत् अभिवीक्ष्य)** जिन्हें देखकर **(शोशुद्ध्यते)** अत्यन्त शुद्ध हो जाता है। **(जगति)** संसार में **(उत्थितं)** उठे हुए **(शरद्विमल-चन्द्रमण्डलं इव)** शरद् ऋतु के निर्मल चन्द्र मण्डल की तरह **(सर्वतः पश्यतां)** सब ओर से देखने वालों को **(यत् सदाभिमुखं एव)** जो सदा अपने सम्मुख ही **(दृश्यते)** दिखाई देते हैं।

तदेत - दमरेश्वर - प्रचल - मौलि - माला-मणि-
स्फुरत् - किरण - चुम्बनीय - चरणारविन्द-द्वयम्।
पुनातु भगवज्जिनेन्द्र! तव रूप - मन्धीकृतं
जगत्-सकल-मन्यतीर्थ-गुरु-रूप - दोषोदयैः ॥३५॥

अन्वयार्थ— (भगवज्जिनेन्द्र!) हे जिनेन्द्र भगवन्! **(तव)** आपका **(एतत् तद् रूपं)** यह वह रूप **(अमरेश्वर-प्रचल-मौलि-माला-मणि-स्फुरत्-किरण-चुम्बनीय-चरणारविन्द-द्वयं)** जिसमें इन्द्रों के चंचल मुकुटों की माला में लगी मणियों से स्फुरायमान किरणों से जिनके दोनों चरण कमल चुम्बित हो रहे हैं। **(अन्यतीर्थ-गुरु-रूप-दोषोदयैः)** अन्य तीर्थ, अन्य गुरु, अन्य रूप के दोषों के उदय से **(अन्धीकृतं)** अन्ध हुए **(सकलं जगत्)** समस्त संसार को **(पुनातु)** पवित्र करें।

क्षेपक

मानस्तम्भाः सरांसि प्रविमलजल - सत्खातिका पुष्पवाटी,
प्राकारो नाट्यशाला द्वितयमुपवनं वेदिकान्तर्ध्वजाद्याः।

शालः कल्पद्रुमाणां सुपरिवृत्तवनं स्तूपहर्म्यावली च,
प्राकारः स्फाटिकोन्त-र्नृसुरमुनिसभा पीठिकाग्रे स्वयम्भूः ॥३७॥

अन्वयार्थ—(मानस्तम्भाः) मानस्तम्भ **(सरांसि)** सरोवर **(प्रविमल-जल-सत्खातिका)** निर्मल जल से भरी खातिकाएँ **(पुष्पवाटी)** लता ग्रह **(प्राकारः)** कोट **(उपवनं)** उपवन भूमि **(नाट्यशाला द्वितयं)** दो-दो नाट्यशालाएँ **(वेदिकान्तर्ध्वाजाद्याः)** वेदिकाओं के अन्दर ध्वजा आदि भूमि **(शालः)** धूलिशाल कोट **(कल्पद्रुमाणां)** कल्पवृक्षों का **(सुपरिवृत-वनं)** अच्छी तरह घिरा वन **(च स्तूपहर्म्यावली)** और स्तूपभवन की पंक्तियाँ **(प्राकारः)** धूलिशाल कोट **(स्फाटिकः)** जो कि स्फटिक का बना हुआ है। **(अन्तर्नृसुरमुनिसभा)** जिसके अन्दर मनुष्य, देव, मुनियों की सभा **(पीठिकाग्रे)** पीठिका के आगे **(स्वयम्भूः)** स्वयम्भू भगवान् बैठे हैं।

वर्षेषु वर्षान्तरपर्वतेषु नन्दीश्वरे यानि च मन्दरेषु।
यावन्ति चैत्यायतनानि लोके सर्वाणि वन्दे जिनपुङ्गवानाम् ॥३८॥

अन्वयार्थ—(वर्षेषु) क्षेत्रों में **(वर्षान्तरपर्वतेषु)** क्षेत्र के मध्य पर्वतों में **(नन्दीश्वरे)** नन्दीश्वर द्वीप में **(च)** और **(मन्दरेषु)** मन्दर पर्वतों पर **(यानि)** जो **(यावन्ति)** जितने **(जिनपुङ्गवानां)** जिनेन्द्र देव के **(लोके)** इस लोक में **(चैत्यायतनानि)**चैत्यालय हैं **(सर्वाणि)** उन सभी की **(वन्दे)** मैं वन्दना करता हूँ।

अवनि - तल - गतानां कृत्रिमाऽकृत्रिमाणां,
वन - भवन - गतानां दिव्य - वैमानिकानाम्।
इह मनुज-कृतानां देव - राजा-र्चितानां,
जिनवर - निलयानां भावतोऽहं स्मरामि ॥३९॥

अन्वयार्थ—(अवनितलगतानां) पृथ्वी तल पर स्थित **(कृत्रिमा-कृत्रिमाणां)** कृत्रिम, अकृत्रिम **(वनभवनगतानां)** व्यन्तर और भवनवासी देवों के **(दिव्य-वैमानिकानां)** दिव्य-वैमानिक देवों के विमान में स्थित **(इह)** इस लोक में **(मनुजकृतानां)** मनुष्यों द्वारा बनाए हुए **(देव-राजार्चितानां)** देव और राजाओं से पूजित **(जिनवरनिलयानां)** जिनदेव के मन्दिरों को **(अहं)** मैं **(भावतः)** भाव से **(स्मरामि)** स्मरण करता हूँ।

जम्बू-धातकि-पुष्करार्ध-वसुधा - क्षेत्रत्रये ये भवांश्-
चन्द्राम्भोज शिखण्डिकण्ठकनक-प्रावृड्घनाभा जिनाः।
सम्यग्ज्ञान - चरित्र - लक्षणधरा दग्धाष्ट - कर्मेन्धनाः,
भूतानागत-वर्तमान-समये तेभ्यो जिनेभ्यो नमः ॥४०॥

अन्वयार्थ—(ये जिनाः) जो जिनेन्द्र **(जम्बूधातकिपुष्करार्धवसुधाक्षेत्रत्रये भवाः)** जम्बूद्वीप, धातकीखण्ड, अर्धपुष्कर भूमि इन तीन क्षेत्रों में हुए हैं **(चन्द्राम्भोज-शिखण्डि-कण्ठ-कनक-प्रावृड्घनाभाः)** जो चन्द्र, कमल, मयूरकण्ठ, स्वर्ण, मेघ की आभा वाले हैं **(सम्यग्ज्ञानचरित्रलक्षणधराः)** जो सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र के लक्षण को धारण करने वाले हैं **(दग्धाष्टकर्मेन्धनाः)** जो अष्ट कर्मरूपी ईन्धन को जलाने वाले हैं। **(भूताना-गत-वर्तमानसमये)** भूत-भविष्यत्-वर्तमान समय में होने वाले हैं **(तेभ्यः जिनेभ्यः)** उन जिनेन्द्रदेव के लिए **(नमः)** नमस्कार हो।

श्रीमन्मेरौ कुलाद्रौ रजतगिरिवरे शाल्मलौ जम्बुवृक्षे,
वक्षारे चैत्यवृक्षे रतिकर-रुचके कुण्डले मानुषाङ्के।
इष्वाकारेऽञ्जनाद्रौ दधिमुखशिखरे व्यन्तरे स्वर्गलोके,
ज्योतिर्लोकेऽभिवन्दे भवनमहितले यानि चैत्यालयानि ॥४१॥

अन्वयार्थ—(श्रीमन्मेरौ) श्री सम्पन्न मेरुपर्वत पर **(कुलाद्रौ)** कुलाचल पर्वत पर **(रजतगिरिवरे)** विजयार्ध पर्वत पर **(शाल्मलौ)** शाल्मलि वृक्ष पर **(जम्बुवृक्षे)** जम्बुवृक्ष पर **(वक्षारे)** वक्षार पर्वत पर **(चैत्यवृक्षे)** चैत्यवृक्ष पर **(रतिकररुचके)** रतिकर और रुचक पर्वत पर **(कुण्डले)** कुण्डलगिरि पर **(मानुषाङ्के)** मानुषोत्तर पर्वत पर **(इष्वाकारे)** इष्वाकार पर्वत पर **(अञ्जनाद्रौ)** अञ्जनगिरि पर **(दधिमुखशिखरे)** दधिमुख पर्वत पर **(व्यन्तरे)** व्यन्तरों के यहाँ **(स्वर्गलोके)** स्वर्ग लोक में **(ज्योतिर्लोके)** ज्योतिषी देवों के यहाँ **(अहितले)** नागलोक में **(भवनं)** जिन भवनों की **(यानि चैत्यालयानि)** और जो चैत्यालय हैं **(अभिवन्दे)** उनकी मैं वन्दना करता हूँ।

देवा - सुरेन्द्र - नर - नाग-समर्चितेभ्यः,
पाप - प्रणाशकर - भव्य-मनोहरेभ्यः।

घण्टा - ध्वजादिपरिवारविभूषितेभ्यो,
नित्यं नमो जगति सर्वजिनालयेभ्यः ॥४२॥

अन्वयार्थ—(देवासुरेन्द्रनरनागसमर्चितेभ्यः) देव-असुरेन्द्र, मनुष्य, धरणेन्द्र से पूजित **(पाप-प्रणाशकरभव्यमनोहरेभ्यः)** पाप के नाशक और भव्यों का मन हरने वाले **(घण्टा-ध्वजादि-परिवारविभूषितेभ्यः)** घण्टा, ध्वजा आदि तथा परिवार से विभूषित **(सर्वजिनालयेभ्यः)** सर्वजिनालयों की **(जगति)** जगत् में **(नित्यं नमः)** मैं नित्य नमस्कार करता हूँ।

अञ्चलिका

इच्छामि भंते! चेइय-भत्ति-काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं। अहलोय-तिरियलोय-उड्ढलोयम्मि, किट्टिमाकिट्टिमाणि जाणि जिणचेइयाणि ताणि सव्वाणि तीसु वि लोएसु भवणवासिय-वाणविंतर-जोइसिय-कप्पवासियत्ति चउविहा देवा सपरिवारा दिव्वेण ण्हाणेण, दिव्वेण गंधेण, दिव्वेण अक्खेण, दिव्वेण पुप्फेण, दिव्वेण चुण्णेण, दिव्वेण दीवेण, दिव्वेण धूवेण, दिव्वेण वासेण, णिच्चकालं अंचंति, पुज्जंति, वंदंति, णमंसंति अहमवि इह संतो तत्थ संताइं णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुण- संपत्ति होउ मज्झं।

अन्वयार्थ—(भंते!) हे भगवन्! मैंने **(चेइय-भत्ति-काउस्सग्गो कओ)** चैत्यभक्ति सम्बन्धी कायोत्सर्ग किया है **(तस्स आलोचेउं)** उस सम्बन्धी आलोचना करने की **(इच्छामि)** इच्छा करता हूँ **(अहलोय-तिरियलोय-उड्ढलोयम्मि)** अधोलोक, मध्यलोक तथा ऊर्ध्वलोक में **(जाणि)** जितने **(किट्टिमाकिट्टिमाणि)** कृत्रिम अकृत्रिम **(जिणचेइयाणि)** जिन चैत्यालय हैं **(ताणि सव्वाणि)** उन सबकी **(तीसु वि लोएसु)** तीनों लोकों में रहने वाले **(भवणवासिय-वाणविंतर-जोइसिय-कप्पवासियत्ति)** भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी और कल्पवासी इस प्रकार **(चउविहा देवा सपरिवारा)** चार प्रकार के देव अपने परिवार सहित **(दिव्वेण ण्हाणेण, दिव्वेण गंधेण, दिव्वेण अक्खेण, दिव्वेण पुप्फेण, दिव्वेण चुण्णेण, दिव्वेण दीवेण, दिव्वेण धूवेण, दिव्वेण वासेण)** दिव्य जल, दिव्य

गन्ध, दिव्य अक्षत, दिव्य पुष्प, दिव्य नैवेद्य, दिव्य दीप, दिव्य धूप, विशेष सुगंधित पदार्थ के द्वारा **(णिच्चकालं)** सदा काल **(अंचंति, पुज्जंति, वंदंति, णमंसंति)** अर्चना करते हैं, पूजा करते हैं, वन्दना करते हैं, नमस्कार करते हैं (**अहमवि**) मैं भी **(इह संतो)** यहाँ ही रहकर **(तत्थ संताइं)** उन समस्त चैत्यालयों की **(णिच्चकालं)** सदाकाल **(अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि)** अर्चा करता हूँ, पूजा करता हूँ, वन्दना करता हूँ, नमस्कार करता हूँ **(दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुण-संपत्ति होउ मज्झं)** मेरे दुःखों का क्षय हो, कर्मों का क्षय हो, रत्नत्रय की प्राप्ति हो, सुगति में गमन हो, समाधिमरण हो और जिनेन्द्र भगवान् के गुणों की मुझे प्राप्ति हो।

❑ ❑ ❑

धर्म आराधना

तन पिंजरे से, प्राण पखेरू, जब बाहर उड़ जावे।
घरवाली द्वारे तक जावे, बेटा अगनि लगावे॥
रोने वाले रोते जावें, जाने वाला जावे।
सुन्दर काया भी मरघट में, राख - राख हो जावे॥१॥

आशा पल - पल बढ़ती जावे, आयु घटती जावे।
काया निशिदिन जर्जर होवे, माया बढ़ती जावे॥
आज सरीखा मंगल अवसर, कल आवे ना आवे।
किधर जिन्दगी के किस डग पर, क्या घटना घट जावे॥२॥

आप अकेला आवे प्राणी, आप अकेला जावे।
ना कछु लावे ना ले जावे, तो भी मन भरमावे॥
करनी का परिणाम जगत् में, आप अकेला पावे।
आप अकेला बैरागी बन, मोक्ष महापद पावे॥३॥

मङ्गलाष्टकम्

[अर्हन्तो भगवन्त इन्द्र-महिताः सिद्धाश्च सिद्धीश्वराः,
आचार्या जिनशासनोन्नतिकराः पूज्या उपाध्यायकाः।
श्रीसिद्धान्त-सुपाठका मुनिवराः रत्नत्रयाराधकाः,
पञ्चैते परमेष्ठिनः प्रतिदिनं, कुर्वन्तु ते मङ्गलम् ॥]

अन्वयार्थ—(इन्द्र-महिताः) इन्द्रों द्वारा पूजित **(अर्हन्तः भगवन्तः)** अर्हन्त भगवान् **(च)** और **(सिद्धीश्वराः)** सिद्धि के स्वामी **(सिद्धाः)** सिद्ध भगवान् **(जिन-शासनोन्नतिकराः)** जिनशासन की उन्नति करने वाले **(आचार्याः)** आचार्य परमेष्ठी **(श्रीसिद्धान्त-सुपाठकाः)** श्री युक्त सिद्धान्त को अच्छी तरह से पढ़ाने वाले **(पूज्या उपाध्यायकाः)** पूज्य उपाध्याय परमेष्ठी **(रत्नत्रया-राधकाः)** रत्नत्रय के आराधक **(मुनिवराः)** साधु परमेष्ठी **(एते पञ्च)** ये पाँच **(परमेष्ठिनः)** परमेष्ठी **(प्रतिदिनं)** प्रतिदिन **(ते मङ्गलम्)** तुम्हारा मङ्गल **(कुर्वन्तु)** करें।

श्रीमन्नम्र-सुरासुरेन्द्र - मुकुट-प्रद्योत-रत्नप्रभा-,
भास्वत्पादनखेन्दवः प्रवचनाम्भोधीन्दवः स्थायिनः।
ये सर्वे जिन-सिद्ध-सूर्यनुगतास्ते पाठकाः साधवः,
स्तुत्या योगिजनैश्च पञ्चगुरवः कुर्वन्तु ते मङ्गलम् ॥१॥

अन्वयार्थ—(श्रीमन्नम्र-सुरासुरेन्द्र-मुकुट-प्रद्योत-रत्नप्रभा-भास्वत्-पाद-नखेन्दवः) लक्ष्मी से संयुक्त नम्रीभूत देवेन्द्रों और असुरेन्द्रों के मुकुटों के चमकदार रत्नों की कांति से सुशोभित चरणों के नखरूपी चन्द्रमा हैं जिनके और **(प्रवचनाम्भोधीन्दवः)** जो प्रवचनरूपी समुद्र को वृद्धिंगत करने के लिए चन्द्रमा के समान हैं **(स्थायिनः)** जो अपने स्वरूप में स्थित रहते हैं **(योगिजनैः स्तुत्या)** योगीजनों के द्वारा स्तुति को प्राप्त **(जिनसिद्ध-सूरि-अनुगताः)** अर्हन्त, सिद्ध, सूरि—आचार्य के अनुगामी **(पाठकाः)** उपाध्याय और **(साधवः)** साधुजन **(ये सर्वे)** ये सभी **(ते मङ्गलम्)** तुम्हारा मंगल **(कुर्वन्तु)** करें।

सम्यग्दर्शन-बोध-वृत्तममलं रत्नत्रयं पावनं,
मुक्ति-श्री- नगराधिनाथ - जिनपत्युक्तोपवर्गप्रदः।

धर्मः सूक्तिसुधा च चैत्यमखिलं चैत्यालयं श्रयालयं,
प्रोक्तं च त्रिविधं चतुर्विधममी कुर्वन्तु ते मङ्गलम् ॥२॥

अन्वयार्थ—(अमलम्) निर्मल **(सम्यग्दर्शन-बोध-वृत्तं त्रिविधं)** सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र रूप तीन प्रकार का **(पावनम् रत्नत्रयम्)** पवित्र रत्नत्रय **(मुक्तिश्री नगराधिनाथ जिनपति उक्तः)** मुक्तिरूपी लक्ष्मी के नगर के स्वामी जिनेन्द्रदेव के द्वारा कहा गया **(अपवर्ग-प्रदः)** मोक्ष को देने वाला **(धर्मः)** जिनधर्म, **(सूक्तिसुधा)** शास्त्ररूपी अमृत/जिनागम, **(अखिलम् चैत्यम्)** समस्त जिन प्रतिमाएँ **(च)** और **(श्रयालयं चैत्यालयं)** वैभव/शोभा के स्थान चैत्यालय **(चतुर्विधम्)** चार प्रकार **(प्रोक्तं)** कहे गये **(अमी)** ये सभी **(ते मङ्गलम्)** तुम्हारा मंगल **(कुर्वन्तु)** करें।

नाभेयादि-जिनाधिपास्त्रिभुवनख्याताश्चतुर्विंशतिः,
श्रीमन्तो भरतेश्वरप्रभृतयो, ये चक्रिणो द्वादश।
ये विष्णु-प्रतिविष्णु-लाङ्गलधराः सप्तोतरा विंशतिस्-
त्रैकाल्ये प्रथितास्त्रिषष्टिपुरुषाः कुर्वन्तु ते मङ्गलम् ॥३॥

अन्वयार्थ—(त्रिभुवनख्याताः) तीनों लोकों में विख्यात **(नाभेयादि-जिनाधिपाः)** नाभिपुत्र ऋषभादि जिनस्वामी **(चतुर्विंशतिः)** चौबीस तीर्थङ्कर **(श्रीमन्तः)** लक्ष्मीवान **(यः)** जो **(भरतेश्वरप्रभृतयः)** भरतेश्वरादि **(द्वादश-चक्रिणः)** १२ चक्रवर्ती **(यः विष्णु-प्रतिविष्णु-लाङ्गलधराः)** जो ९ नारायण, ९ प्रतिनारायण, ९ बलभद्र **(सप्तोतराविंशतिः)** सात अधिक बीस अर्थात् सत्ताईस इस प्रकार **(त्रैकाल्ये)** तीनों कालों में **(प्रथिताः)** प्रसिद्ध **(त्रिषष्टि पुरुषाः)** त्रेसठ शलाका पुरुष **(ते मङ्गलम्)** तुम्हारा मंगल **(कुर्वन्तु)** करें।

ये सर्वौषधिऋद्धयः सुतपसो वृद्धिङ्गताः पञ्च ये,
ये चाष्टाङ्गमहानिमित्तकुशला येऽष्टौविधाश्चारिणः।
पञ्चज्ञानधरास्त्रयोऽपि बलिनो ये बुद्धिऋद्धीश्वराः,
सप्तैते सकलार्चिता गणभृतः कुर्वन्तु ते मङ्गलम् ॥४॥

अन्वयार्थ—(ये सुतपसः) जो श्रेष्ठ तप से **(वृद्धिङ्गताः)** वृद्धि को प्राप्त **(पञ्च)** पाँच **(सर्वौषधि ऋद्धयः)** सर्वौषधि ऋद्धि के धारी **(च)** और **(यः अष्टाङ्ग-महानिमित्तकुशलाः)** जो अष्टांग महानिमित्तों में कुशल **(च अष्टौ)**

और आठ **(विधाश्चारिणः)** आकाश आदि चारण ऋद्धियों के धारक **(पञ्च-ज्ञानधराः)** पाँच प्रकार के ज्ञानऋद्धिधारी **(त्रयः बलिनः अपि)** तीन प्रकार के बल ऋद्धि वाले **(यः बुद्धि-ऋद्धीश्वराः)** जो बुद्धि ऋद्धि के स्वामी **(एते सप्त)** ये सात **(सकलार्चिता गणभृतः)** सभी के द्वारा पूजित श्रेष्ठ गणधरदेव/मुनिजन **(ते मङ्गलम्)** तुम्हारा मंगल **(कुर्वन्तु)** करें।

कैलासे वृषभस्य निर्वृतिमही, वीरस्य पावापुरे,
चम्पायां वसुपूज्यतुग्जिनपतेः, सम्मेदशैलेऽर्हताम्।
शेषाणामपि चोर्जयन्तशिखरे, नेमीश्वरस्यार्हतो,
निर्वाणावनयः प्रसिद्धविभवाः कुर्वन्तु ते मङ्गलम् ॥५॥

अन्वयार्थ—(कैलासे) कैलास पर्वत पर **(वृषभस्य)** ऋषभदेव की **(निर्वृतिमही)** निर्वाणभूमि है **(वीरस्य)** महावीर स्वामी की निर्वाणभूमि **(पावापुरे)** पावापुर में है **(वसुपूज्यतुग्जिनपतेः)** वसुपूज्य राजा के पुत्र वासुपूज्य की निर्वाणभूमि **(चम्पायाम्)** चम्पापुर में है **(अर्हतः नेमीश्वरस्य)** अरिहंत नेमिनाथ भगवान् की निर्वाणभूमि **(ऊर्जयन्तशिखरे)** ऊर्जयन्तपर्वत पर **(च)** और **(शेषाणाम् अर्हताम् अपि)** शेष तीर्थंकरों की भी **(प्रसिद्ध-विभवाः)** प्रसिद्ध वैभववाली **(निर्वाण-अवनयः)** निर्वाणभूमियाँ **(सम्मेद-शैले)** सम्मेदशिखर पर हैं **(ते मङ्गलम्)** तुम्हारा मंगल **(कुर्वन्तु)** करें।

ज्योतिर्व्यन्तर-भावनामरगृहे मेरौ कुलाद्रौ स्थिताः,
जम्बु-शाल्मलिचैत्यशाखिषु तथा वक्षार-रूप्याद्रिषु।
इष्वाकारगिरौ च कुण्डलनगे द्वीपे च नन्दीश्वरे,
शैले ये मनुजोत्तरे जिनगृहाः कुर्वन्तु ते मङ्गलम् ॥६॥

अन्वयार्थ—(ज्योतिर्व्यन्तर-भावन-अमरगृहे) ज्योतिषियों, व्यन्तरों, भवनवासियों और वैमानिक देवों के निवास स्थान में **(मेरौ कुलाद्रौ स्थिताः)** मेरुओं पर, कुलाचलों में स्थित **(जम्बु-शाल्मलिचैत्यशाखिषु)** जम्बूवृक्ष, शाल्मलिवृक्ष, चैत्यवृक्ष की शाखाओं पर **(तथा वक्षार-रूप्याद्रिषु)** तथा वक्षारगिरि, विजयार्ध पर्वतों पर **(इष्वाकारगिरौ)** इष्वाकार/बाण के आकार वाले पर्वत पर **(च कुण्डलनगे)** और कुण्डल पर्वत पर **(च नन्दीश्वरे द्वीपे)** और नन्दीश्वर द्वीप में **(मनुजोत्तरे शैले)** मानुषोत्तर पर्वत पर **(ये जिनगृहाः)** जो जिन चैत्यालय हैं **(ते मङ्गलम्)** तुम्हारा मंगल

(कुर्वन्तु) करें।

[सर्पो हारलता भवत्यसि-लता सत्पुष्पदामायते,
सम्पद्येत रसायनं विषमपि प्रीतिं विधत्ते रिपुः।
देवा यान्ति वशं प्रसन्नमनसः किं वा बहु ब्रूमहे,
धर्मादेव नभोऽपि वर्षति नगैः कुर्वन्तु ते मङ्गलम् ॥]

अन्वयार्थ–(धर्मात् एव) धर्म के प्रभाव से ही **(सर्पो हारलता)** सर्प गले का हार **(भवति)** हो जाता है। **(असिलता)** तलवार **(सत्पुष्पदामायते)** सुंदर पुष्पों की माला बन जाती है। **(विषं अपि)** विष भी **(रसायनं)** अमृत **(सम्पद्येत)** हो जाता है। **(रिपुः)** शत्रु **(प्रीतिं विधत्ते)** प्रीति को धारण करता है। **(प्रसन्नमनसः)** प्रसन्न मन से **(देवाः)** देवगण **(वशं)** वश में **(यान्ति)** हो जाते हैं। **(वा)** और **(किं बहु ब्रूमहे)** बहुत क्या कहें **(धर्मात्)** उस धर्म से **(नभः अपि)** आकाश भी **(नगैः)** रत्नों से **(वर्षति)** बरसता है अर्थात् आकाश से रत्नों की वर्षा होने लगती है। वह धर्म **(ते मङ्गलम्)** तुम्हारा मंगल **(कुर्वन्तु)** करें।

यो गर्भावतरोत्सवो भगवतां जन्माभिषेकोत्सवो,
यो जातः परिनिष्क्रमेण विभवो यः केवलज्ञानभाक्।
यः कैवल्यपुरप्रवेशमहिमा संभावितः स्वर्गिभिः,
कल्याणानि च तानि पञ्च सततं कुर्वन्तु ते मङ्गलम् ॥७॥

अन्वयार्थ–(यः भगवताम्) जो भगवानों के **(गर्भावतरोत्सवः)** गर्भ-कल्याणक का उत्सव **(जन्माभिषेकोत्सवः)** जन्मकल्याणक का उत्सव **(यः परिनिष्क्रमेण विभवः जातः)** जो तपकल्याणक उत्सव के द्वारा वैभव हुआ **(यः केवल-ज्ञानभाक्)** जो केवलज्ञानकल्याणक को प्राप्त हुए **(च)** और **(यः कैवल्यपुर-प्रवेशमहिमा)** जो कैवल्यपुर मोक्ष में प्रवेश की महिमा अर्थात् निर्वाण कल्याणक **(स्वर्गिभिः)** देवों के द्वारा **(यः संभावितः)** जो पूजा की गई **(तानि पञ्च)** वे पाँचों **(कल्याणानि)** कल्याणक **(ते सततम्)** तुम्हारा हमेशा **(मङ्गलम्)** मंगल **(कुर्वन्तु)** करें।

इत्थं श्री जिनमंगलाष्टकमिदं सौभाग्य-संपत्प्रदं,
कल्याणेषु महोत्सवेषु सुधियस्तीर्थंकराणामुषः।

ये शृण्वन्ति पठन्ति तैश्चसुजनैर्धर्मार्थकामान्विता,
लक्ष्मीराश्रयते व्यपायरहिता निर्वाणलक्ष्मीरपि ॥८॥

अन्वयार्थ–(इत्थम्) इस प्रकार **(सौभाग्य संपत्प्रदम्)** सौभाग्य रूपी सम्पत्ति के प्रदाता **(इदं श्री जिनमंगलाष्टकम्)** इस श्री जिन मंगलाष्टक को **(सुधियः)** विद्वान् **(तीर्थंकराणाम्)** तीर्थंकरों के **(कल्याणेषु महोत्सवेषु)** कल्याणक महोत्सवों में **(यः)** जो **(उषः)** प्रातःकाल **(शृण्वन्ति च पठन्ति)** सुनते और पढ़ते हैं **(तैः सुजनैः)** उन सज्जनों के द्वारा **(धर्मार्थकामान्विता)** धर्म, अर्थ और काम से सहित **(लक्ष्मीः आश्रयते)** लक्ष्मी प्राप्त की जाती है और **(व्यपायरहिता)** विनाश रहित अर्थात् अविनश्वर **(निर्वाणलक्ष्मीः अपि)** मोक्ष लक्ष्मी भी **(आश्रयते)** प्राप्त करते हैं।

❑ ❑ ❑

सुप्रभातस्तोत्रम्

यत्स्वर्गावतरोत्सवे यदभवज्जन्माभिषेकोत्सवे,
यद्दीक्षाग्रहणोत्सवे यदखिलज्ञानप्रकाशोत्सवे ।
यन्निर्वाणगमोत्सवे जिनपतेः पूजाद्भुतं तद्भवैः,
सङ्गीतस्तुतिमङ्गलैः प्रसरतां मे सुप्रभातोत्सवः॥१॥

अन्वयार्थ–(जिनपतेः) जिनेन्द्र भगवान् के **(यत्स्वर्गावतरोत्सवे)** जो स्वर्ग से गर्भ में आने के समय किये गये उत्सव में **(यत् जन्माभिषेकोत्सवे)** जो जन्माभिषेक के समय किये गये उत्सव में **(यत् दीक्षाग्रहणोत्सवे)** जो दीक्षा ग्रहण के समय किये गये उत्सव में **(यत् अखिलज्ञानप्रकाशोत्सवे)** जो केवलज्ञान प्रकट होने के समय किये गये उत्सव में **(यत् निर्वाण-गमोत्सवे)** तथा जो मोक्ष प्राप्ति के समय किये गये उत्सव में **(अद्भुतं पूजा अभवत्)** आश्चर्यकारी पूजा हुई थी **(तद्भवैः)** उसमें होने वाले **(सङ्गीत-स्तुति-मङ्गलैः)** गाने, बजाने, नाचने वा गुणानुवादरूप मंगलों के द्वारा **(मे सुप्रभातोत्सवः)** मेरा सुप्रभात का उत्सव **(प्रसरतां)** विस्तार को प्राप्त हो।

श्रीमन्नतामरकिरीटमणिप्रभाभि -
रालीढपादयुग! दुर्धर-कर्मदूर!

श्रीनाभिनन्दन! जिनाजित! शम्भवाख्य!
त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम् ॥२॥

अन्वयार्थ—(श्रीमन्नतामरकिरीटमणि-प्रभाभिः) श्रीमान् नम्रीभूत देवों के मुकुट-मणियों की कान्ति से **(आलीढपादयुग!)** व्याप्त दोनों चरण वाले **(दुर्धरकर्मदूर!)** दुर्धर कर्मों से दूर **(श्रीनाभिनन्दन!)** हे श्री नाभिराज के पुत्र आदिनाथ! **(जिनाजित!)** हे इन्द्रियविजयी अजितनाथ जिनेन्द्र! और **(सम्भ-वाख्य!)** हे शंभव नाम वाले जिन! **(त्वद्ध्यानतः)** आपके ध्यान से **(मम)** मेरा **(सततं)** हमेशा **(सुप्रभातम्)** सुप्रभात (अस्तु) हो।

छत्रत्रय - प्रचल - चामर-वीज्यमान!,
देवाभिनन्दनमुने! सुमते! जिनेन्द्र!
पद्मप्रभारुण - मणि - द्युति -भासुराङ्ग!,
त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम् ॥३॥

अन्वयार्थ—(छत्रत्रय-प्रचल-चामर-वीज्यमान) तीन छत्र और ढुरते हुए चञ्चल चँवरों वाले **(देव! अभिनंदनमुने!)** हे देवाधिदेव अभिनंदन मुनीन्द्र! **(सुमते जिनेन्द्र!)** हे सुमतिनाथ जिनेन्द्र भगवन्! तथा **(अरुण-मणि-द्युति-भासुराङ्ग!)** पद्मराग मणि की लाल कान्ति के समान चमकदार है शरीर जिनका ऐसे **(पद्मप्रभ!)** हे पद्मप्रभ जिनेन्द्र! **(त्वद्-ध्यानतः)** आपके ध्यान से **(मम)** मेरा **(सततं)** हमेशा **(सुप्रभातम्)** सुप्रभात (अस्तु) हो।

अर्हन् ! सुपार्श्व ! कदलीदलवर्णगात्र!
प्रालेय - तार - गिरि-मौक्तिक-वर्णगौर!
चन्द्रप्रभ! स्फटिक-पाण्डुर-पुष्पदन्त!
त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम् ॥४॥

अन्वयार्थ—(कदली-दल-वर्ण-गात्र!) केले के पत्ते के समान हरे रंग के शरीर वाले **(सुपार्श्व! अर्हन्!)** हे सुपार्श्वनाथ! अर्हन्! **(प्रालेय-तार-गिरि-मौक्तिक-वर्ण-गौर)** हिमगिरि रजतगिरि और मोती के समान सफेद रंग वाले **(चन्द्रप्रभ!)** हे चन्द्रप्रभ जिनेन्द्र! **(स्फटिक-पाण्डुर-पुष्पदन्त!)** स्फटिक के समान निर्मल सफेद रंग वाले हे पुष्पदन्त जिनेन्द्र! **(त्वद्-ध्यानतः)** आपके ध्यान से **(मम)** मेरा **(सततं)** हमेशा

(सुप्रभातम्) सुप्रभात (अस्तु) हो।

सन्तप्त-काञ्चनरुचे! जिनशीतलाख्य!
श्रेयन्! विनष्ट-दुरिताष्ट-कलङ्क-पङ्क!
बन्धूक-बन्धुररुचे! जिनवासुपूज्य!
त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम् ॥५॥

अन्वयार्थ–(सन्तप्त-काञ्चनररुचे!) तपाये हुए स्वर्ण के समान कान्ति के धारक **(जिनशीतलाख्य!)** हे इन्द्रियविजयी शीतलनाथ नामक जिनेन्द्र! **(विनष्ट-दुरिताष्ट-कलङ्क-पङ्क!)** नष्ट किया है पापरूप आठ प्रकार के कर्म-कलंकरूपी कीचड़ को जिन्होंने ऐसे **(श्रेयन्!)** हे श्रेयोनाथ जिनेन्द्र! **(बन्धूक-बन्धुररुचे!)** तथा बन्धूक पुष्प/दुपहरी के फूल के समान लाल कान्ति वाले ऐसे **(जिन वासुपूज्य!)** हे इन्द्रियविजयी वासुपूज्य जिनेन्द्र! **(त्वद्-ध्यानतः)** आपके ध्यान से **(मम)** मेरा **(सततं)** हमेशा **(सुप्रभातम्)** सुप्रभात (अस्तु) हो।

उद्दण्ड-दर्पक-रिपो! विमलामलाङ्ग !,
स्थेमन्ननन्तजिदनन्त - सुखाम्बुराशे!
दुष्कर्म - कल्मष - विवर्जित - धर्मनाथ!
त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम् ॥६॥

अन्वयार्थ–(उद्दण्ड-दर्पक-रिपो!) उद्दण्ड/अतिमानी कामदेव के शत्रु अर्थात् कामविजयी **(विमलामलाङ्ग!)** निर्मल शरीर के धारक हे विमलनाथ भगवन्! **(अनन्त-सुखाम्बुराशे!)** अनन्तसुख के समुद्र **(स्थेमन्ननन्तजित्!)** स्थिर / धैर्यशाली ऐसे हे अनन्तजित् भगवन्! **(दुष्कर्म-कल्मष-विवर्जित-धर्मनाथ!)** दुष्टकर्मरूपी कालुषता से रहित ऐसे हे धर्मनाथ जिनेन्द्र! **(त्वद्ध्यानतः)** आपके ध्यान से **(मम)** मेरा **(सततं)** हमेशा **(सुप्रभातम्)** सुप्रभात (अस्तु) हो।

देवामरीकुसुमसन्निभ! शान्तिनाथ!,
कुन्थो! दयागुण - विभूषण - भूषिताङ्ग!
देवाधिदेव! भगवन्नरतीर्थनाथ!,
त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम् ॥७॥

अन्वयार्थ–(अमरी-कुसुमसन्निभ!) अमरी नामक वृक्ष के फूल के

समान पीत वर्ण वाले **(देव! शान्तिनाथ!)** हे देवाधिदेव! शान्तिनाथ भगवन्! **(दयागुण-विभूषण-भूषिताङ्ग !)** दयागुणरूपी भूषण से विभूषित है शरीर जिनका ऐसे **(कुन्थो!)** हे कुन्थुनाथ जिनेन्द्र! **(तीर्थनाथ!)** आगम व रत्नत्रय धर्मरूप तीर्थ के स्वामी **(देवाधिदेव!)** देवों के देव **(भगवन् अर!)** हे भगवन् अरनाथ! **(त्वद्ध्यानतः)** आपके ध्यान से **(मम)** मेरा **(सुप्रभातम्)** सुप्रभात **(सततं)** हमेशा (अस्तु) हो।

यन्मोह-मल्ल-मद-भञ्जन-मल्लिनाथ!,
क्षेमङ्करावितथ - शासन - सुव्रताख्य!
सत्संपदा प्रशमितो नमिनामधेय!,
त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम् ॥८॥

अन्वयार्थ—(यत्) जो **(मोह-मल्ल-मद-भञ्जन-मल्लिनाथ!)** मोह-रूपी मल्ल के मद का नाश करने वाले ऐसे हे मल्लिनाथ भगवन्! **(क्षेमङ्कर-वितथ-शासन-सुव्रताख्य!)** कल्याणकारी सत्य-शासन है जिनका ऐसे हे मुनिसुव्रत नाम वाले भगवन्! **(सत्संपदा)** श्रेष्ठ सम्पत्ति से **(प्रशमितः)** परम शान्त अवस्था को प्राप्त **(नमिनामधेय)** हे नमिनाथ नामक तीर्थंकर! **(त्वद्ध्यानतः)** आपके ध्यान से **(मम)** मेरा **(सुप्रभातम्)** सुप्रभात **(सततं)** हमेशा (अस्तु) हो।

तापिच्छगुच्छ - रुचिरोज्ज्वल-नेमिनाथ!,
घोरोपसर्गविजयिन्! जिनपार्श्वनाथ!
स्याद्वाद-सूक्ति-मणि-दर्पण! वर्धमान!,
त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम् ॥९॥

अन्वयार्थ—(तापिच्छगुच्छ-रुचिरोज्ज्वल-नेमिनाथ!) तमालवृक्षों के समूह के समान सुन्दर कान्ति के धारक हे नेमिनाथ भगवन्! **(घोरोपसर्ग-विजयिन्)** भयंकर उपसर्ग को जीतने वाले **(जिन! पार्श्वनाथ!)** हे इन्द्रियविजयी पार्श्वनाथ भगवन्! तथा **(स्याद्वाद-सूक्ति-मणि-दर्पण!)** स्याद्वाद सिद्धान्त-रूपी मणिदर्पणस्वरूप **(वर्धमान!)** हे वर्द्धमान जिनेन्द्र! **(त्वद्-ध्यानतः)** आपके ध्यान से **(मम)** मेरा **(सुप्रभातम्)** सुप्रभात **(सततं)** हमेशा (अस्तु) हो।

प्रालेय - नील - हरितारुण - पीत-भासं,
यन्मूर्तिमव्यय-सुखावसथं मुनीन्द्राः।
ध्यायन्ति सप्तति-शतं जिनवल्लभानां,
त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम् ॥१०॥

अन्वयार्थ—(अव्ययं) अविनाशी **(सुखावसथं)** सुख के स्थान **(सप्तति-शतं)** एक सौ सत्तर **(जिनवल्लभानां)** जिनेन्द्र तीर्थंकरों के **(यन्मूर्तिम्)** जिस शरीर को **(मुनीन्द्राः)** मुनिराज **(प्रालेय-नील-हरितारुण-पीत-भासं)** बर्फ के समान सफेद, नीले, हरे, लाल एवं पीली कांति वाले **(ध्यायन्ति)** ध्यान करते हैं ऐसे हे भगवन् **(त्वद्-ध्यानतः)** आपके ध्यान से **(मम)** मेरा **(सुप्रभातम्)** सुप्रभात **(सततं)** हमेशा (अस्तु) हो।

सुप्रभातं सुनक्षत्रं, माङ्गल्यं परिकीर्तितम् ।
चतुर्विंशतितीर्थानां, सुप्रभातं दिने दिने ॥११॥

अन्वयार्थ—(दिने दिने) प्रत्येक दिन **(चतुर्विंशतितीर्थानां)** चौबीस तीर्थंकरों का **(सुप्रभातं)** अच्छा प्रातःकाल हो **(सुप्रभातं)** वह प्रातःकाल **(सुनक्षत्रं)** उत्तम नक्षत्ररूप **(माङ्गल्यं)** मंगल स्वरूप **(परिकीर्तितम्)** कहा गया है।

सुप्रभातं सुनक्षत्रं, श्रेयः प्रत्यभिनन्दितम्।
देवता ऋषयः सिद्धाः, सुप्रभातं दिने दिने ॥१२॥

अन्वयार्थ—सभी **(देवता)** अर्हन्तदेव **(ऋषयः)** मुनिजन और **(सिद्धाः)** सिद्ध भगवान् **(दिने दिने)** प्रत्येक दिन **(सुप्रभातं)** सुप्रभात रूप हैं तथा **(सुप्रभातं)** वह सुप्रभात **(सुनक्षत्रं)** उत्तम नक्षत्ररूप तथा **(श्रेयः)** कल्याणकारी **(प्रत्यभिनन्दितम्)** माना गया है।

सुप्रभातं तवैकस्य, वृषभस्य महात्मनः।
येन प्रवर्तितं तीर्थं, भव्यसत्त्वसुखावहम् ॥१३॥

अन्वयार्थ—(येन) जिन्होंने **(भव्यसत्त्वसुखावहम्)** भव्यजीवों को सुख देने वाले **(तीर्थं प्रवर्तितं)** धर्मतीर्थ को चलाया **(तव एकस्य)** आप अद्वितीय/प्रधान **(महात्मनः वृषभस्य)** महान् आत्मा वृषभनाथ भगवान् का **(सुप्रभातं)** उत्तम प्रातःकाल हो।

सुप्रभातं जिनेन्द्राणां, ज्ञानोन्मीलितचक्षुषां ।
अज्ञानतिमिरान्धानां,नित्यमस्तमितो रविः ॥१४॥

अन्वयार्थ–(नित्यम्) हमेशा **(स्तमितः रविः)** अस्त हो गया है ज्ञानरूपी सूर्य जिनका ऐसे **(अज्ञानतिमिरान्धानां)** अज्ञानरूपी अन्धकार से अन्धे मनुष्यों की **(ज्ञानोन्मीलितचक्षुषाम्)** आँखों को ज्ञान से खोलने वाले **(जिनेन्द्राणां)** जिनेन्द्र भगवन्तों का **(सुप्रभातं)** सुप्रभात हो।

सुप्रभातं जिनेन्द्रस्य, वीरः कमललोचनः।
येन कर्माटवी दग्धा, शुक्लध्यानोग्रवह्निना ॥१५॥

अन्वयार्थ–(कमललोचनः) कमल के समान नेत्र वाले **(वीरः)** महावीर प्रभु **(येन)** जिन्होंने **(शुक्लध्यानोग्रवह्निना)** शुक्लध्यानरूपी तेज/तीव्र अग्नि के द्वारा **(कर्माटवी दग्धा)** कर्मरूपी जंगल को जला दिया **(जिनेन्द्रस्य)** ऐसे उन जिनेन्द्र भगवान का **(सुप्रभातं)** सुप्रभात हो।

सुप्रभातं सुनक्षत्रं, सुकल्याणं सुमङ्गलम्।
त्रैलोक्यहितकर्तृणां, जिनानामेव शासनम् ॥१६॥

अन्वयार्थ–(त्रैलोक्यहितकर्तृणां) तीन लोक का हित करने वाले **(जिनानाम्)** जिनेन्द्र भगवान् का **(शासनम् एव)** शासन ही **(सुप्रभातं)** शुभ प्रभातरूप **(सुनक्षत्रं)** शुभ नक्षत्ररूप **(सुकल्याणं)** शुभ कल्याणरूप और **(सुमंगलम्)** शुभ मंगलरूप है।

❑ ❑ ❑

दर्शनपाठ

दर्शनं देव देवस्य, दर्शनं पापनाशनम्।
दर्शनं स्वर्ग सोपानं, दर्शनं मोक्षसाधनम् ॥१॥

अन्वयार्थ–(देव देवस्य) देवों के भी देव देवाधिदेव का **(दर्शनं)** दर्शन/अवलोकन **(पाप-नाशनम्)** पापों का नाश करने वाला **(दर्शनं)** दर्शन **(स्वर्ग-सोपानं)** स्वर्ग की सीढ़ी और **(दर्शनं)** दर्शन **(मोक्ष-साधनम्)** मोक्ष का साधन है।

दर्शनेन जिनेन्द्राणां, साधूनां वन्दनेन च।
न चिरं तिष्ठति पापं, छिद्रहस्ते यथोदकम् ॥२॥

अन्वयार्थ–(जिनेन्द्राणां) जिनेन्द्रदेव के **(दर्शनेन)** दर्शन से **(च)** और **(साधूनां)** साधुओं की **(वन्दनेन)** वंदना से **(पापं)** पाप **(चिरं)** अधिक समय तक **(न तिष्ठति)** नहीं ठहरते **(यथा)** जिस प्रकार **(छिद्रहस्ते)** छिद्र सहित हाथों में **(उदकम्)** जल (ज्यादा देर तक नहीं ठहरता) अर्थात् नष्ट हो जाता है।

वीतराग मुखं दृष्ट्वा, पद्म-राग-समप्रभम्।
जन्मजन्मकृतं पापं, दर्शनेन विनश्यति ॥३॥

अन्वयार्थ–(पद्मरागसमप्रभम्) पद्मराग मणि के समान प्रभायुक्त **(वीतराग मुखं)** वीतराग भगवान् के मुख को **(दृष्ट्वा)** देखकर **(जन्मजन्मकृतं)** जन्म-जन्मान्तर में किए **(पापं)** पाप **(दर्शनेन)** दर्शन करने से **(विनश्यति)** नष्ट हो जाते हैं।

दर्शनं जिनसूर्यस्य, संसारध्वान्त-नाशनम्।
बोधनं चित्तपद्मस्य,समस्तार्थप्रकाशनम् ॥४॥

अन्वयार्थ–(जिनसूर्यस्य) जिनेन्द्ररूपी सूर्य का **(दर्शनं)** दर्शन **(संसार-ध्वान्त-नाशनम्)** संसार सम्बन्धी अंधकार का नाश करने वाला, **(चित्त-पद्मस्य बोधनं)** मनरूपी कमल का विकासक तथा **(समस्तार्थ-प्रकाशनम्)** समस्त पदार्थों का प्रकाशक है।

दर्शनं जिनचन्द्रस्य, सद्धर्मामृतवर्षणम् ।
जन्मदाह-विनाशाय, वर्धनं सुखवारिधेः ॥५॥

अन्वयार्थ–(जिनचन्द्रस्य) जिनेन्द्ररूपी चन्द्रमा का **(दर्शनं)** दर्शन

(जन्मदाह-विनाशाय) जन्मरूपी ताप को नाश करने के लिए **(सुख-वारिधेः)** सुखरूपी समुद्र की **(वर्धनम्)** वृद्धि करने वाला और **(सद्धर्मामृत-वर्षणम्)** समीचीन-धर्मरूपी अमृत की वर्षा करने वाला है।

जीवादितत्त्व - प्रतिपादकाय, सम्यक्त्वमुख्याष्टगुणार्णवाय।
प्रशान्तरूपाय दिगम्बराय, देवाधिदेवाय नमो जिनाय ॥६॥

अन्वयार्थ—(जीवादितत्त्व-प्रतिपादकाय) जीवादि सात तत्त्वों के प्रतिपादक **(सम्यक्त्वमुख्याष्टगुणार्णवाय)** सम्यक्त्वादि आठ मुख्य गुणों के समुद्र **(प्रशान्तरू पाय)** प्रशान्तरूप **(दिगम्बराय)** दिगम्बर **(देवाधिदेवाय)** देवाधि अर्हन्त प्रभु **(जिनाय)** जिनेन्द्रदेव के लिए **(नमः)** नमस्कार हो।

चिदानन्दैक-रूपाय, जिनाय परमात्मने ।
परमात्म-प्रकाशाय, नित्यं सिद्धात्मने नमः॥७॥

अन्वयार्थ—(चिदानन्दैक-रूपाय) आत्मानन्द स्वरूप **(जिनाय)** कर्मों को जीतने वाले जिनेन्द्र **(परमात्मने)** उत्कृष्ट आत्मा **(परमात्म प्रकाशाय)** परम आत्म तत्त्व के प्रकाशक **(सिद्धात्मने)** सिद्ध आत्मा के लिए **(नित्यं)** हमेशा **(नमः)** नमस्कार हो ।

अन्यथा शरणं नास्ति, त्वमेव शरणं मम ।
तस्मात् कारुण्यभावेन,रक्ष रक्ष जिनेश्वर! ॥८॥

अन्वयार्थ—(अन्यथा) आपके सिवाय अन्य कोई **(शरणं नास्ति)** शरण नहीं है **(त्वम् एव)** आप ही **(मम शरणं)** मेरे लिए शरण हैं **(तस्मात्)** इसलिए **(कारुण्यभावेन)** दया भाव से **(मम रक्ष रक्ष जिनेश्वर)** हे जिनेन्द्र देव! मेरी रक्षा करो, मेरी रक्षा करो।

न हि त्राता न हि त्राता, न हि त्राता जगत्त्रये।
वीतरागात् परो देवो, न भूतो न भविष्यति ॥९॥

अन्वयार्थ—(जगत्त्रये) तीन लोक में **(वीतरागत्परः देवः)** वीतराग अर्हन्त देव के सिवाय और कोई **(न हि त्राता)** रक्षा करने वाला नहीं है **(न हि त्राता)** रक्षा करने वाला नहीं है **(न हि त्राता)** रक्षा करने वाला नहीं है **(न भूतो)** न भूतकाल में हुआ **(न भविष्यति)** और न आगे होगा।

जिने भक्ति र्जिने भक्ति, र्जिने भक्ति र्दिने दिने ।
सदा मेऽस्तु सदा मेऽस्तु, सदा मेऽस्तु भवे भवे ॥१०॥

अन्वयार्थ–(दिने दिने भवे भवे) प्रतिदिन भव-भव में **(मे जिने भक्तिः)** मेरी जिनेन्द्र भगवान् में भक्ति **(सदा मेऽस्तु)** सदा होवे **(मे जिने भक्तिः)** मेरी जिनेन्द्र भगवान् में भक्ति **(सदा मेऽस्तु)** सदा होवे **(मे जिने भक्तिः)** मेरी जिनेन्द्र भगवान् में भक्ति **(सदा मेऽस्तु)** सदा होवे।

जिनधर्म-विनिर्मुक्तो, मा भवेच्चक्रवर्त्यपि।
स्याच्चेटोऽपि दरिद्रोऽपि, जिनधर्मानुवासितः ॥११॥

अन्वयार्थ–(जिनधर्म-विनिर्मुक्तः) जिनधर्म से रहित **(चक्रवर्त्यपि)** चक्रवर्ती भी **(मा भवेत्)** नहीं होऊँ **(स्यात् चेटोऽपि)** भले ही दास भी हो जाऊँ **(दरिद्रोऽपि)** दरिद्र/गरीब भी हो जाऊँ, किन्तु मेरा जीवन **(जिनधर्मानु-वासितः)** जिनधर्म से सुवासित हो।

जन्म जन्म कृतं पापं, जन्मकोटि-मुपार्जितम् ।
जन्म-मृत्यु-जरा-रोगं,हन्यते जिनदर्शनात् ॥१२॥

अन्वयार्थ–(जिनदर्शनात्) जिनेन्द्र भगवान् के दर्शन से **(जन्म जन्म कृतम्)** जन्म-जन्मान्तर में किये गये **(जन्मकोटि-मुपार्जितम्)** करोड़ों जन्मों में उपार्जित **(पापम्)** पाप और **(जन्म-मृत्यु-जरारोग)** जन्म-मरण-बुढ़ापारूपी रोग को **(हन्यते)** नष्ट करता है।

अद्याभवत् सफलता नयनद्वयस्य।
देव ! त्वदीय-चरणाम्बुज वीक्षणेन॥
अद्य त्रिलोक-तिलक ! प्रतिभासते मे।
संसार-वारिधिरयं चुलुकप्रमाणः॥१३॥

अन्वयार्थ–(देव!) हे जिनदेव! **(त्वदीय)** आपके **(चरणाम्बुज-वीक्षणेन)** चरण कमल के देखने से **(अद्य)** आज **(मे नयनद्वयस्य)** मेरे दोनों नयन की **(सफलता अभवत्)** सफलता हुई **(त्रिलोक-तिलक)** हे तीन लोक के तिलक स्वरूप! **(अद्य मे)** आज मेरा **(अयं)** यह **(संसार-वारिधिः)** संसाररूपी समुद्र **(चुलुकप्रमाणः)** चुल्लु प्रमाण **(प्रतिभासते)** लगता है/प्रतिभासित होता है।

वीतरागस्तोत्रम्

शिवं शुद्धबुद्धं परं विश्वनाथं, न देवो न बन्धुर्न कर्मा न कर्त्ता।
न अङ्गं न सङ्गं न स्वेच्छा न कायं, चिदानन्दरूपं नमो वीतरागम् ॥१॥
अन्वयार्थ—जो **(न देवः)** न देव **(न बन्धुः)** न कुटुम्बी **(न कर्मा)** न कर्म **(न कर्ता)** न कर्ता **(न अङ्गं)** न शरीर के अवयव **(न सङ्गं)** न परिग्रह **(न स्वेच्छा)** न अपनी इच्छा और **(न कायं)** न शरीररूप हैं ऐसे **(शिवं)** कल्याण स्वरूप **(शुद्धबुद्धं)** कर्मों से रहित निर्मल केवलज्ञान स्वरूप **(परं)** उत्कृष्ट और **(विश्वनाथं)** तीनों लोकों का स्वामी **(चिदानन्दरूपं)** आत्मानन्द स्वरूप **(वीतरागम् नमः)** वीतराग देव को मैं नमस्कार करता हूँ।

न बन्धो न मोक्षो न रागादिदोषः, न योगं न भोगं न व्याधिर्न शोकः।
न कोपं न मानं न माया न लोभं, चिदानन्दरूपं नमो वीतरागम्॥२॥
अन्वयार्थ—जो **(न बन्धो)** न बन्ध **(न मोक्षो)** न मोक्ष **(न रागादिदोषः)** न राग आदि दोष **(न योगं)** न मनादि योग **(न भोगं)** न भोग **(न व्याधिः)** न रोग **(न शोकः)** न शोक **(न कोपं)** न क्रोध **(न मानं)** न मान **(न माया)** न माया **(न लोभं)** न लोभ स्वरूप हैं ऐसे **(चिदानन्दरूपं)** चैतन्य के आनन्द स्वरूप **(वीतरागम्)** वीतराग देव को मैं **(नमः)** नमस्कार करता हूँ।

न हस्तौ न पादौ न घ्राणं न जिह्वा,न चक्षुर्न कर्णं न वक्त्रं न निद्रा।
न स्वामी न भृत्यः न देवो न मर्त्यः, चिदानन्दरूपं नमो वीतरागम्॥३॥
अन्वयार्थ—जो **(न हस्तौ)** न हाथ **(न पादौ)** न पैर **(न घ्राणं)** न नाक **(न जिह्वा)** न जीभ **(न चक्षुः)** न नेत्र **(न कर्णं)** न कान **(न वक्त्रं)** न मुँह **(न निद्रा)** न निद्रा स्वरूप हैं और **(न स्वामी)** न मालिक **(न भृत्यः)** न नौकर **(न देवः)** न देवगति के देव **(न मर्त्यः)** न मनुष्य हैं ऐसे **(चिदानन्दरूपं)** आत्मा के आनन्द स्वरूप **(वीतरागम्)** वीतराग देव को मैं **(नमः)** नमस्कार करता हूँ।

न जन्म न मृत्यु र्न मोहं न चिंता, न क्षुद्रो न भीतो न कार्श्यं न तन्द्रा।
न स्वेदं न खेदं न वर्णं न मुद्रा, चिदानन्दरूपं नमो वीतरागम् ॥४॥

अन्वयार्थ—जो **(न जन्म)** न जन्म **(न मृत्युः)** न मरण **(न मोहं)** न मोह **(न चिंता)** न चिन्ता है **(न क्षुद्रो)** न छोटे **(न भीतो)** न भयभीत **(न काश्यं)** न कृश **(न तन्द्रा)** न प्रमादी **(न स्वेदं)** न पसीना **(न खेदं)** न दुखरूप **(न वर्णं)** न रंग व **(न मुद्रा)** न चिह्नरूप हैं ऐसे **(चिदानन्दरूपं)** आत्मा के आनन्द स्वरूप **(वीतरागम्)** वीतराग देव को मेरा **(नमः)** नमस्कार हो।

त्रिदण्डे! त्रिखण्डे! हरे! विश्वनाथं, हृषीकेश! विध्वस्त-कर्मादिजालम्।
न पुण्यं न पापं न चाक्षादि-गात्रं, चिदानन्दरूपं नमो वीतरागम्॥५॥

अन्वयार्थ—**(त्रिदण्डे!)** हे तीन दण्ड के धारी **(त्रिखण्डे! हरे!)** तीन खण्ड के अधिपति सर्व दुखहारी नारायण **(हृषीकेश!)** इन्द्रियों के स्वामी जितेन्द्रिय आप **(विश्वनाथं)** विश्व के स्वामी **(विध्वस्त-कर्मादि-जालम्)** कर्म के समूह को नाश करने वाले **(न पुण्यं)** न पुण्यरूप **(न पापं)** न पापरूप **(च)** और **(न अक्षादि-गात्रं)** न नेत्रादि शरीर स्वरूप हैं ऐसे **(चिदानन्द-रूपं)** चैतन्य के आनन्द स्वरूप **(वीतरागम्)** वीतराग देव को मेरा **(नमः)** नमस्कार हो।

न बालो न वृद्धो न तुच्छो न मूढो, न स्वेदं न भेदं न मूर्तिर्न स्नेहः।
न कृष्णं न शुक्लं न मोहं न तन्द्रा, चिदानन्दरूपं नमो वीतरागम्॥६॥

अन्वयार्थ—जो **(न बालो)** न बालक **(न वृद्धो)** न वृद्ध **(न तुच्छो)** न हीन **(न मूढो)** न मूर्ख **(न स्वेदं)** न पसीना वाले **(न भेदं)** न भेदरूप **(न मूर्तिः)** न मूर्तिक **(न स्नेहः)** न स्नेह वाले **(न कृष्णं)** न काले **(न शुक्लं)** न गोरे **(न मोहं)** न मोही और **(न तन्द्रा)** न तन्द्रारूप हैं ऐसे **(चिदानन्दरूपं)** आत्मा के आनन्द स्वरूप **(वीतरागम्)** वीतराग देव को मेरा **(नमः)** नमस्कार हो।

न आद्यं न मध्यं न अन्तं न चान्यत्,न द्रव्यं न क्षेत्रं न कालो न भावः।
न शिष्यो गुरुर्नापि हीनं न दीनं, चिदानन्दरूपं नमो वीतरागम् ॥७॥

अन्वयार्थ—जो **(न आद्यं)** न आदि **(न मध्यं)** न मध्य **(न अन्तं)** न अन्त स्वरूप **(न अन्यत्)** न दूसरे रूप **(न द्रव्यं)** न द्रव्य **(न क्षेत्रं)** न क्षेत्र **(न कालो)** न काल **(न भावः)** न भाव **(न शिष्यो)** न शिष्य **(न गुरु)** न गुरु **(अपि हीनं न दीनं)** न हीन न दीन ही हैं ऐसे **(चिदानन्द-रूपं)**

आत्मा के आनन्द स्वरूप **(वीतरागम्)** वीतरागदेव को मेरा **(नमः)** नमस्कार हो।

इदं ज्ञानरूपं स्वयं तत्त्ववेदी, न पूर्णं न शून्यं न चैत्य-स्वरूपम्।
न चान्यो न भिन्नं न परमार्थमेकं, चिदानन्दरूपं नमो वीतरागम्॥८॥

अन्वयार्थ—(इदं) यह आत्मा **(स्वयं)** स्वयं **(ज्ञानरूपं)** ज्ञान स्वरूप है **(तत्त्ववेदी)** तत्त्वों को जानने वाली है **(न पूर्णं)** न पूर्ण **(न शून्यं)** न शून्य **(न चैत्य-स्वरूपम्)** न प्रतिमारूप है **(च न अन्यो)** और न दूसरा **(न भिन्नं)** न अलग **(न परमार्थं)** न परमार्थरूप **(न एकं)** न एकरूप है ऐसे **(चिदानन्द-रूपं)** आत्मा के आनन्द स्वरूप **(वीतरागम्)** वीतराग देव को मैं **(नमः)** नमस्कार हो।

आत्माराम - गुणाकरं गुणनिधिं, चैतन्यरत्नाकरं,
सर्वे भूत-गतागते सुखदुःखे, ज्ञाते त्वयि सर्वगे,
त्रैलोक्याधिपते स्वयं स्वमनसा, ध्यायन्ति योगीश्वराः,
वन्दे तं हरिवंशहर्ष-हृदयं, श्रीमान् हृदाभ्युद्यताम् ॥९॥

अन्वयार्थ—(त्वयि सर्वगे) आप सर्वज्ञ में **(सर्वे भूत-गतागते)** सम्पूर्ण भूत, वर्तमान और भविष्यत् काल सम्बन्धी **(सुखदुःखे ज्ञाते)** सुख-दुख को जान लेने पर **(स्वयं)** स्वतः **(योगीश्वराः)** मुनीश्वर गणधर देव **(स्वमनसा)** अपने मन से **(ध्यायन्ति)** आपका ध्यान करते हैं **(आत्माराम-गुणाकरं)** आत्मारूपी बगीचे में गुणों की खान **(गुणनिधिं)** गुणों के भण्डार **(चैतन्य-रत्नाकरं)** चैतन्यरूपी समुद्र **(तं)** उन **(हरिवंश-हर्ष-हृदयं)** हरिवंश के हर्ष के हृदय/मुख्य कारण श्री मुनिसुव्रतनाथ और श्री नेमिनाथ वीतरागदेव की मैं **(हृदा)** हृदय से **(वन्दे)** वन्दना/नमस्कार करता हूँ **(श्रीमान्)** अन्तरंग बहिरंग लक्ष्मी सम्पन्न **(त्रैलोक्याधिपते!)** हे तीनों लोकों के स्वामी **(अभ्युद्यताम्)** मुझे अपने निकटवर्ती करें।

❑ ❑ ❑

परमानन्दस्तोत्रम्

परमानन्द-संयुक्तं, निर्विकारं निरामयम्।
ध्यानहीना न पश्यन्ति, निजदेहे व्यवस्थितम् ॥१॥

अन्वयार्थ—(परमानन्द-संयुक्तं) परम आनन्द से युक्त **(निर्विकारं)** राग-द्वेषादि विकारीभावों से रहित निर्विकार **(निरामयम्)** निरामय/जन्म-जरा-मृत्युरूपी रोग से रहित **(निजदेहे व्यवस्थितम्)** स्वयं अपने शरीर में स्थित आत्मा को **(ध्यानहीनाः)** ध्यान से रहित व्यक्ति **(न पश्यन्ति)** नहीं देखते हैं।

अनन्तसुख-सम्पन्नं, ज्ञानामृत-पयोधरम्।
अनन्तवीर्य-सम्पन्नं, दर्शनं परमात्मनः ॥२॥

अन्वयार्थ—(परमात्मनः) उत्कृष्ट आत्मा/परमात्मा का **(दर्शनं)** देखना/अनुभव करना **(अनन्तसुखसम्पन्नं)** अनन्तसुख सहित **(ज्ञानामृत-पयोधरम्)** ज्ञानामृतरूपी मेघ वाला **(अनन्तवीर्यसम्पन्नं)** अनन्तबल से युक्त है।

निर्विकारं निराबाधं, सर्वसङ्गविवर्जितम्।
परमानन्दसम्पन्नं, शुद्धचैतन्यलक्षणम् ॥३॥

अन्वयार्थ—वह परमात्मा **(निर्विकारं)** विकार से रहित **(निराबाधं)** बाधा से रहित **(सर्वसङ्ग-विवर्जितम्)** सम्पूर्ण बाह्य-अंतरंग परिग्रह से रहित **(परमानन्द-सम्पन्नं)** परमानन्द से संयुक्त और **(शुद्धचैतन्यलक्षणम्)** शुद्ध चैतन्यरूप लक्षणवाला है।

उत्तमा स्वात्मचिन्ता स्याद्, देह-चिन्ता च मध्यमा।
अधमा कामचिन्ता स्यात्, पर-चिन्ताधमाधमा ॥४॥

अन्वयार्थ—(स्वात्मचिन्ता) अपने आत्मा की चिंता करना **(उत्तमा)** उत्कृष्ट है **(देह-चिन्ता)** शरीर की चिंता करना **(मध्यमा)** मध्यम है **(कामचिन्ता)** विषय-भोग की चिन्ता करना **(अधमा)** जघन्य है **(पर-चिन्ता)** दूसरों की चिंता करना **(अधमाधमा)** जघन्य से जघन्य है।

निर्विकल्प - समुत्पन्नं, ज्ञानमेव सुधारसम्।
विवेकमञ्जलिं कृत्वा, तत्पिबन्ति तपस्विनः ॥५॥

अन्वयार्थ–(तपस्विनः) साधुजन **(निर्विकल्पसमुत्पन्नं)** विकल्प से रहित होने पर उत्पन्न होने वाले **(तत्)** उस **(ज्ञानम् सुधारसम् एव)** ज्ञानरूपी अमृतरस को ही **(विवेकमञ्जलिं)** विवेकरूपी अञ्जुलि को **(कृत्वा)** बनाकर **(पिबन्ति)** पीते हैं।

सदानन्दमयं जीवं, यो जानाति स पण्डितः।
स सेवते निजात्मानं, परमानन्दकारणम् ॥६॥

अन्वयार्थ–(यः) जो निश्चय से **(जीवं)** जीव को **(सदानन्दमयं)** सदा आनन्द में लीन **(जानाति)** जानता है **(सः पण्डितः)** वह पण्डित है **(सः)** वह **(परमानन्दकारणम्)** परम आनन्द का कारण **(निजात्मानं)** अपनी आत्मा का **(सेवते)** सेवन करता है।

नलिन्यां च यथा नीरं, भिन्नं तिष्ठति सर्वदा।
अयमात्मा स्वभावेन,देहे तिष्ठति निर्मलः ॥७॥

अन्वयार्थ–(यथा) जिस प्रकार **(नलिन्यां)** कमलिनी में **(नीरं)** जल **(सर्वदा)** हमेशा **(भिन्नं)** अलग रहता है उसी प्रकार **(अयं आत्मा स्वभावेन)** यह आत्मा स्वभाव से **(देहे)** शरीर में **(निर्मलः)** कर्ममल से स्वच्छ **(तिष्ठति)** रहता है।

द्रव्यकर्ममलैर्मुक्तं, भावकर्मविवर्जितम्।
नोकर्मरहितं विद्धि, निश्चयेन चिदात्मनः ॥८॥

अन्वयार्थ–(निश्चयेन) निश्चय से **(चिदात्मनः)** इस चेतन आत्मा का स्वरूप **(द्रव्यकर्म-मलैर्मुक्तं)** ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्मरूपी मलों से रहित **(भावकर्म-विवर्जितम्)** रागादि भावकर्मों से रहित और **(नोकर्मरहितं)** शरीरादि नोकर्मों से रहित **(विद्धि)** जानो।

आनन्दं ब्रह्मणो रूपं, निजदेहे व्यवस्थितम्।
ध्यानहीना न पश्यन्ति, जात्यन्धा इव भास्करम् ॥९॥

अन्वयार्थ–(इव जात्यन्धाः) जैसे जन्म से अन्धे मनुष्य **(भास्करम्)** सूर्य को **(न पश्यन्ति)** नहीं देखते/जानते हैं वैसे **(निजदेहे व्यवस्थितम्)** अपने शरीर में स्थित **(ब्रह्मणः)** आत्मा के **(आनन्दं रूपं)** आनन्द स्वरूप को **(ध्यानहीना न पश्यन्ति)** ध्यान से रहित जीव नहीं देखते/जानते हैं ।

तद्ध्यानं क्रियते भव्यै,-र्मनो येन विलीयते।
तत्क्षणं दृश्यते शुद्धं,चिच्चमत्कारलक्षणम् ॥१०॥

अन्वयार्थ—(भव्यैः) भव्यजीवों के द्वारा **(तद्ध्यानं)** उस आनन्द स्वरूप परमात्मा का ध्यान **(क्रियते)** किया जाता है **(येन)** जिससे **(मनः)** मन **(विलीयते)** उसी में विलीन हो जाता है और **(तत्क्षणं)** उसी समय **(चित्-चमत्कार-लक्षणम्)** चैतन्य चमत्कार लक्षण वाला **(शुद्धं)** शुद्ध आत्मतत्त्व **(दृश्यते)** दिखाई देता है/अनुभव में आता है।

ये ध्यानलीना मुनयः प्रधाना,-स्ते दुःखहीना नियमाद्भवन्ति।
सम्प्राप्य शीघ्रं परमात्मतत्त्वं, व्रजन्ति मोक्षं क्षणमेकमेव ॥११॥

अन्वयार्थ—(ये) जो **(प्रधानाः मुनयः)** श्रेष्ठ मुनि **(ध्यानलीनाः)** ध्यान में लीन होते हैं **(ते)** वे **(नियमात्)** नियम से **(दुखहीनाः)** दुखों से रहित **(भवन्ति)** होते हैं तथा **(शीघ्रं)** जल्दी से **(परमात्मतत्त्वं)** परमात्मतत्त्व को **(सम्प्राप्य)** प्राप्तकर **(एकं क्षणं एव)** एक क्षण में ही **(मोक्षं)** मोक्ष को **(व्रजन्ति)** प्राप्त करते हैं/जाते हैं।

आनन्दरूपं परमात्मतत्त्वं, समस्त-सङ्कल्प-विकल्प-मुक्तम्।
स्वभावलीना निवसन्ति नित्यं,जानाति योगी स्वयमेवतत्त्वम् ॥१२॥

अन्वयार्थ—(समस्त-सङ्कल्प-विकल्प-मुक्तम्) सम्पूर्ण संकल्प-विकल्पों से रहित **(आनन्दरूपं)** आनन्दरूप **(परमात्मतत्त्वं)** परमात्मतत्त्व को **(योगी)** योगी **(नित्यं)** हमेशा **(जानाति)** जानता है इसलिए **(स्वभाव-लीनाः)** स्वभाव में लीन योगिजन **(स्वयमेव)** स्वयं ही **(तत्त्वम्)** आत्मस्वभाव में **(निवसन्ति)** निवास करते हैं।

चिदानन्दमयं शुद्धं, निराकारं निरामयम्।
अनन्तसुखसम्पन्नं सर्वसङ्गविवर्जितम् ॥१३॥
लोकमात्रप्रमाणोऽयं, निश्चये न हि संशयः।
व्यवहारे तनूमात्रः कथितः परमेश्वरैः ॥१४॥

अन्वयार्थ—(परमेश्वरैः) तीर्थंकर भगवन्तों के द्वारा **(अयं)** यह आत्मा **(निश्चये)** निश्चयनय की विवक्षा में **(निराकारं)** आकार रहित **(निरामयम्)** व्याधि रहित **(अनन्तसुख-सम्पन्नं)** अनन्तसुख से युक्त **(सर्वसङ्ग-विवर्जितम्)** सम्पूर्ण अन्तरंग व बहिरंग परिग्रह से रहित **(चिदानन्दमयं)**

आत्मानन्दरूप **(शुद्धं)** समस्त कर्ममल से रहित पवित्र **(लोकमात्रप्रमाणः)** लोक के बराबर परिमाण वाला और **(व्यवहारे)** व्यवहारनय की विवक्षा में **(तनूमात्रः)** शरीर के बराबर **(कथितः)** कहा गया है इसमें **(हि)** नियम से **(न संशयः)** संशय नहीं है।

यत्क्षणं दृश्यते शुद्धं, तत्क्षणं गतविभ्रमः।
स्वस्थचित्तः स्थिरीभूत्वा, निर्विकल्पसमाधिना ॥१५॥

अन्वयार्थ–(निर्विकल्पसमाधिना) विकल्प रहित ध्यान के द्वारा यह आत्मा **(यत्क्षणं)** जिस समय **(स्वस्थचित्तः)** स्वस्थ मन होता हुआ **(स्थिरीभूत्वा)** स्थिर होकर **(शुद्धं)** शुद्ध आत्मस्वरूप को **(दृश्यते)** देखता है **(तत्क्षणं)** उसी समय **(गतविभ्रमः)** आत्म विषयक भ्रम से दूर हो जाता है।

स एव परमं ब्रह्म, स एव जिनपुङ्गवः।
स एव परमं तत्त्वं, स एव परमो गुरुः ॥१६॥

अन्वयार्थ–(सः) वह आत्मा **(एव)** ही **(परमं ब्रह्म)** परम ब्रह्म है **(सः)** वह आत्मा **(एव)** ही **(जिनपुङ्गवः)** जिन श्रेष्ठ है **(सः)** वह आत्मा **(एव)** ही **(परमं तत्त्वं)** परम तत्त्वरूप है **(सः)** वह आत्मा **(एव)** ही **(परमः गुरुः)** उत्कृष्ट गुरु है।

स एव परमं ज्योतिः, स एव परमं तपः।
स एव परमं ध्यानं, स एव परमात्मनः॥१७॥

अन्वयार्थ–(सः) वह आत्मा **(एव)** ही **(परमं ज्योतिः)** परमं ज्योति/केवलज्ञानस्वरूप है **(सः)** वह आत्मा **(एव)** ही **(परमं तपः)** इच्छा निरोधरूप उत्कृष्ट तप है **(सः)** वह आत्मा **(एव)** ही **(परमं ध्यानं)** उत्कृष्ट शुक्लध्यान है **(सः)** वह आत्मा **(एव)** ही **(परमात्मनः)** परमात्मा का स्वरूप है।

स एव सर्व-कल्याणं, स एव सुखभाजनम्।
स एव शुद्ध-चिद्रूपं, स एव परमं शिवः ॥१८॥

अन्वयार्थ–(सः एव) वही आत्मा **(सर्व-कल्याणं)** सब कल्याणस्वरूप **(सः एव)** वही आत्मा **(सुखभाजनम्)** सुख प्राप्त करने वाली **(सः एव**

शुद्ध-चिद्रूपं) वही शुद्ध ज्ञानदर्शन चेतनारूप है **(सः एव)** वही आत्मा **(परमं शिवः)** उत्कृष्ट मोक्ष स्वरूप है।

स एव परमानन्दः, स एव सुखदायकः।
स एव परमज्ञानं, स एव गुणसागरः ॥१९॥

अन्वयार्थ–(सः एव) वही आत्मा **(परमानन्दः)** उत्कृष्ट आनन्दरूप है **(सः एव)** वही आत्मा **(सुखदायकः)** सुखों को देने वाली है **(सः एव)** वही आत्मा **(परमज्ञानं)** उत्कृष्ट केवलज्ञानरूप **(सः एव)** वही आत्मा **(गुण-सागरः)** गुणों का समुद्र है।

परमाह्लाद-सम्पन्नं, रागद्वेषविवर्जितम्।
सोऽहं तं देहमध्येषु, यो जानाति स पण्डितः ॥२०॥

अन्वयार्थ–(सः अहं) वह मैं **(परमाह्लाद-सम्पन्नं)** उत्कृष्ट आनन्द से युक्त **(रागद्वेषविवर्जितम्)** राग-द्वेष से रहित हूँ ऐसा **(यः)** जो **(देहमध्येषु)** कार्मण तैजस औदारिकादि शरीरों में स्थित **(तं)** उस आत्मा को **(जानाति)** जानता है **(सः पण्डितः)** वही पण्डित/ज्ञानी है।

आकाररहितं शुद्धं, स्वस्वरूप-व्यवस्थितम्।
सिद्धमष्टगुणोपेतं, निर्विकारं निरञ्जनम् ॥२१॥
तत्सदृशं निजात्मानं, प्रकाशाय महीयसे।
सहजानन्दचैतन्यं, यो जानाति स पण्डितः ॥२२॥

अन्वयार्थ–(शुद्धं) द्रव्यकर्म, भावकर्म और शरीरादि नोकर्म से रहित शुद्ध **(आकाररहितं)** आकार रहित **(स्व-स्वरूप-व्यवस्थितम्)** अपने स्वरूप में स्थित **(अष्टगुणोपेतं)** अष्ट गुणों से युक्त **(निर्विकारं)** विकार रहित **(निरंजनम्)** कर्म कालिमा से रहित निरंजन **(सिद्धं)** सिद्धों को **(महीयसे)** महान्/विशाल **(प्रकाशाय)** केवलज्ञानरूपी प्रकाश के लिए **(यः)** जो **(सहजानन्दचैतन्यं)** सहजानन्दरूप चैतन्य **(निजात्मानं)** अपनी आत्मा को **(तत्सदृशं)** उन सिद्धों समान **(जानाति)** जानता है **(सः पण्डितः)** वह पण्डित है।

पाषाणेषु यथा हेम, दुग्धमध्ये यथा घृतम्।
तिलमध्ये यथा तैलं, देहमध्ये तथा शिवः ॥२३॥

अन्वयार्थ–(यथा) जैसे **(पाषाणेषु)** पत्थरों में **(हेम)** सोना **(यथा)**

जैसे **(दुग्धमध्ये)** दूध में **(घृतम्)** घी **(यथा)** जैसे **(तिलमध्ये)** तिलों में **(तैलं)** तेल **(तथा)** वैसे **(देहमध्ये)** शरीर में **(शिवः)** परमात्मा है ।

काष्ठमध्ये यथा वह्निः, शक्तिरूपेण तिष्ठति।
अयमात्मा शरीरेषु, यो जानाति स पण्डितः ॥२४॥

अन्वयार्थ—(यथा) जैसे **(काष्ठमध्ये)** लकड़ी में **(वह्निः)** अग्नि **(शक्ति-रूपेण)** शक्तिरूप से **(तिष्ठति)** रहती है वैसे ही **(अयं)** यह **(आत्मा)** आत्मा **(शरीरेषु)** शरीरों में **(तिष्ठति)** रहती है ऐसा **(यः)** जो **(जानाति)** जानता है **(स पण्डितः)** वह पण्डित/ज्ञानी है।

गोम्मटेस-थुदि

उपेन्द्रवज्रा

विसट्ट-कंदोट्ट - दलाणुयारं, सुलोयणं चंद-समाण तुंडं।
घोणा-जियं चम्पय-पुप्फसोहं, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं॥१॥

अन्वयार्थ—जिनके **(सुलोयणं)** सुन्दर नेत्र **(विसट्ट-कंदोट्ट-दलाणुयारं)** विकसित नीलकमल के दल (भीतरी भाग) का अनुशरण करने वाले हैं **(तुंडं)** मुख **(चंद-समाण)** चन्द्रमा के समान सौम्य है तथा **(चम्पय-पुप्फसोहं)** चम्पक पुष्प की शोभा को जिनकी **(घोणा-जियं)** नासिका ने जीत लिया है **(तं)** उन **(गोम्मटेसं)** गोम्मट (चामुण्डराय) के स्वामी बाहुबली को **(णिच्चं)** सदा **(पणमामि)** मैं नेमिचन्द्राचार्य प्रणाम करता हूँ।

अच्छाय-सच्छं जलकंत गंडं, आबाहु दोलंत सुकण्णपासं।
गइंद-सुंडुज्जल बाहुदंडं, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं ॥२॥

अन्वयार्थ—जिनके **(गंडं)** कपोल (गाल) **(जलकंत)** जल के समान स्वच्छ कान्ति वाले **(सुकण्ण-पासं)** सुन्दर दोनों कान **(आबाहु दोलंत)** कन्धों तक दोलायित/लम्बे **(बाहुदंडं)** दोनों भुजाएँ **(गइंद-सुंडुज्जल)** गजराज की सूंड़ के समान सुन्दर लंबी थी **(तं)** उन **(अच्छाय-सच्छं)** आकाश के समान निर्मल **(गोम्मटेसं)** गोम्मट (चामुण्डराय) के स्वामी बाहुबली को **(णिच्चं)** सदा **(पणमामि)** मैं नेमिचन्द्राचार्य प्रणाम करता हूँ।

सुकंठ-सोहा जियदिव्वसंखं, हिमालयुद्दाम-विसाल-कंधं।
सुपेक्खणिज्जायल सुट्ठुमज्झं, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं ॥३॥

अन्वयार्थ—(सुकंठ-सोहा) मनोहारी कंठ की शोभा से जिन्होंने **(जिय-दिव्व संखं)** अनुपम शंख की शोभा को जीत लिया है **(हिमालयुद्दाम-विसाल-कंधं)** हिमालय के समान उन्नत कंधे और विशाल हृदय वाले हैं तथा जिनका **(सुट्ठुमज्झं)** सुन्दर मध्यभाग/कटिप्रदेश **(सुपेक्ख-णिज्जायल)** अच्छी तरह से देखने योग्य और निश्चल है **(तं) उन (गोम्मटेसं)** गोम्मट (चामुण्डराय) के स्वामी बाहुबली को **(णिच्चं)** सदा **(पणमामि)** मैं नेमिचन्द्राचार्य प्रणाम करता हूँ।

विंज्झायलग्गे पविभासमाणं, सिहामणि सव्व-सुचेदियाणं।
तिलोय-संतोसय-पुण्णचंदं, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं ॥४॥

अन्वयार्थ—(सव्व-सुचेदियाणं) सभी सुन्दर चैत्यों के **(सिहामणि)** शिखामणि तथा **(विंज्झायलग्गे)** विन्ध्यगिरि के अग्रभाग/शिखर में **(पविभासमाणं)** प्रकाशमान/शोभायमान **(तिलोय-संतोसय-पुण्णचंदं)** तीन लोक के जीवों को आनन्द देने में पूर्ण चन्द्रमास्वरूप **(तं) उन (गोम्मटेसं)** गोम्मट (चामुण्डराय) के स्वामी बाहुबली को **(णिच्चं)** सदा **(पणमामि)** मैं नेमिचन्द्राचार्य प्रणाम करता हूँ।

लया - समक्कंत - महासरीरं, भव्वावलीलद्ध-सुकप्परुक्खं।
देविंदविंदच्चिय-पायपोम्मं, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं ॥५॥

अन्वयार्थ—(लया-समक्कंत-महासरीरं) लताओं से व्याप्त विशाल शरीर वाले **(भव्वावलीलद्ध-सुकप्परुक्खं)** भव्यसमूह के लिये प्राप्त हुए श्रेष्ठ कल्पवृक्ष स्वरूप तथा **(देविंदविंदच्चिय-पायपोम्मं)** देवेन्द्रों के द्वारा अर्चित/पूजित चरणकमल वाले **(तं) उन (गोम्मटेसं)** गोम्मट (चामुण्डराय) के स्वामी बाहुबली को **(णिच्चं)** सदा **(पणमामि)** मैं नेमिचन्द्राचार्य प्रणाम करता हूँ।

दियंबरो जो ण च भीइजुत्तो, ण चांबरे सत्तमणो विसुद्धो।
सप्पादि-जंतुप्फुसदो ण कंपो, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं ॥६॥

अन्वयार्थ—(जो दियंबरो) जो दिगम्बर हैं **(भीइजुत्तो)** भय युक्त **(ण)** नहीं हैं अर्थात् निर्भय हैं **(च)** और **(अंबरे)** वस्त्र में **(सत्तमणो ण)**

आसक्त मन वाले नहीं हैं **(विशुद्धो)** विशुद्ध हैं **(च)** और **(सप्पादि-जंतुप्फुसदो)** सर्पादि जंतुओं के स्पर्श से भी **(कंपो ण)** कम्पायमान नहीं हैं **(तं) उन (गोम्मटेसं)** गोम्मट (चामुण्डराय)के स्वामी बाहुबली को **(णिच्चं)** सदा **(पणमामि)** मैं नेमिचन्द्राचार्य प्रणाम करता हूँ।

आसां ण जो पोक्खदि सच्छदिट्ठि, सोक्खे ण वंछा हयदोसमूलं।
विरायभावं भरहे विसल्लं, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं ॥७॥

अन्वयार्थ—(जो सच्छदिट्ठि) जो निर्मल समदृष्टि **(आसां)** आशा-तृष्णा को **(पोक्खदि ण)** पुष्ट नहीं करते **(हयदोसमूलं)** दोषों के मूल कारण (मोह) को नष्ट करने वाले **(सोक्खे)** इन्द्रिय सुख में **(वंछा ण)** इच्छा रहित **(विरायभावं)** विरागभाव वाले और **(भरहे)** भरत (भाई) में **(विसल्लं)** शल्य रहित हैं **(तं) उन (गोम्मटेसं)** गोम्मट (चामुण्डराय) के स्वामी बाहुबली को **(णिच्चं)** सदा **(पणमामि)** मैं नेमिचन्द्राचार्य प्रणाम करता हूँ।

उपाहिमुत्तं धण-धाम-वज्जियं, सुसम्मजुत्तं मय-मोह-हारयं।
वस्सेय-पज्जंतुववास-जुत्तं, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं ॥८॥

अन्वयार्थ—जो **(उपाहिमुत्तं)** उपाधियों/वस्त्राभूषणों/संयोगों से रहित **(धण-धाम-वज्जियं)** धन मकानादि बाह्य परिग्रह रहित **(सुसम्मजुत्तं)** समताभाव सहित **(मय-मोह-हारयं)** मद व मोह को हरण/नष्ट करने वाले तथा **(वस्सेय-पज्जंतुववास-जुत्तं)** एक वर्ष पर्यन्त उपवास धारण करने वाले **(तं) उन (गोम्मटेसं)** गोम्मट (चामुण्डराय) के स्वामी बाहुबली को **(णिच्चं)** सदा **(पणमामि)** मैं नेमिचन्द्राचार्य प्रणाम करता हूँ।

❑ ❑ ❑

पञ्चमहागुरु भक्ति

मणुय - णाइंद-सुर-धरिय-छत्तत्तया,
पंचकल्लाण-सोक्खावली-पत्तया।
दंसणं णाण झाणं अणंतं बलं,
ते जिणा दिंतु अम्हं वरं मंगलं ॥१॥

अन्वयार्थ—(मणुयणाइंद-सुर-धरियछत्तत्तया) मनुजेन्द्र / चक्रवर्ती, नागेन्द्र/धरणेन्द्र और सुरेन्द्रों द्वारा जिन पर तीन छत्र लगाये गये हैं तथा **(पंचकल्लाण-सोक्खावली-पत्तया)** पंचकल्याणकों के सुख समूह को प्राप्त **(ते जिणा)** वे जिनवर अरहंत भगवान् **(अम्हं)** हमारे लिये **(वरं मंगलं)** श्रेष्ठ मंगलमय **(अणंतं दंसणं णाण बलं)** अनंतदर्शन, अनंतज्ञान, अनंतबल और **(झाणं)** उत्कृष्ट शुक्लध्यान को **(दिंतु)** देवें।

जेहिं झाणग्गि-वाणेहिं अइ-दिड्ढयं,
जम्म - जर - मरण - णयरत्तयं दड्ढयं।
जेहिं पत्तं सिवं सासयं ठाणयं,
ते महं दिंतु सिद्धा वरं णाणयं ॥२॥

अन्वयार्थ—(जेहिं) जिन्होंने **(झाणग्गि-बाणेहिं)** ध्यानरूपी अग्निबाणों द्वारा **(अइ-दिड्ढयं)** अत्यन्त दृढ़ **(जम्म-जर-मरण-णयरत्तयं)** जन्म-जरा/ बुढ़ापा और मरणरूपी तीनों नगरों को **(दड्ढयं)** जलाया **(जेहिं)** जिन्होंने **(सासयं सिवं)** शाश्वत शिव **(ठाणयं पत्तं)** स्थान को प्राप्त किया **(ते सिद्धा)** वे सिद्ध भगवान् **(महं)** मुझे **(वरं णाणयं)** उत्तम ज्ञान को **(दिंतु)** देवें।

पंचहाचार - पंचग्गि - संसाहया,
वारसंगाइ-सुअ-जलहि-अवगाहया।
मोक्ख-लच्छी महंती महं ते सया,
सूरिणो दिंतु मोक्खं गयासं गया ॥३॥

अन्वयार्थ—(पंचहाचार-पंचग्गि-संसाहया) जो पंचाचाररूपी पंचाग्नि तपों के सम्यक् साधक **(वारसंगाइ-सुअ-जलहि-अवगाहया)** द्वादशांग आदि श्रुतरूपी सागर में अवगाहन करने वाले तथा **(गयासं मोक्खं गया)** सम्पूर्ण आशाओं परिग्रहों से रहित मोक्ष को प्राप्त **(ते सूरिणो)** वे

आचार्य **(महं)** मुझे **(सया)** सदा **(महंती मोक्ख-लच्छी)** महान् मोक्षलक्ष्मी को **(दिंतु)** देवें।

घोर - संसार - भीमाडवी - काणणे,
तिक्ख - वियराल - णह - पाव-पंचाणणे।
णट्ठ - मग्गाण जीवाण पह - देसिया,
वंदिमो ते उवज्झाय अम्हे सया ॥४॥

अन्वयार्थ—(तिक्ख-वियराल-णह-पाव-पंचाणणे)तीक्ष्ण विकराल नख सहित पैर वाले पापरूपी सिंहों से व्याप्त **(घोर-संसार-भीमाडवी-काणणे)** घोर संसाररूपी भयंकर अटवी, बीहड़ वन में **(णट्ठ-मग्गाण)** मार्ग भूले हुए **(जीवाण)** जीवों को जो **(पह-देसिया)** मार्ग के उपदेशक/मार्गदर्शक हैं **(ते उवज्झाय)** उन उपाध्याय परमेष्ठी की **(अम्हे)** हम **(सया)** सदा **(वंदिमो)** वंदना करते हैं।

उग्ग-तव-चरण-करणेहिं झीणंगया,
धम्म - वरझाण - सुक्केक्क - झाणंगया।
णिब्भरं तव-सिरीए समालिंगया,
साहवो ते महं मोक्ख-पह-मग्गया ॥५॥

अन्वयार्थ—(उग्ग-तव-चरण-करणेहिं) उग्र तपश्चरण तेरह प्रकार का चारित्र और तेरह प्रकार की क्रियाओं के करने से **(झीणंगया)** क्षीणता को प्राप्त शरीर वाले **(धम्मवरझाणसुक्केक्क-झाणंगया)** धर्मरूप उत्तम-ध्यान तथा शुक्लरूप मुख्य ध्यान को प्राप्त **(तव-सिरीए)** तपरूपी लक्ष्मी से **(णिब्भरं समालिंगया)** अत्यन्त आलिंगित **(ते साहवो)** वे साधुगण **(महं)** मेरे लिए **(मोक्ख-पह-मग्गया)** मोक्षमार्ग के मार्गदर्शक/देने वाले हों।

एण थोत्तेण जो पंच-गुरु वंदए,
गुरुय-संसार-घण-वेल्लि सो छिंदए ।
लहइ सो सिद्धिसोक्खाइं वर (बहु) माणणं,
कुणइ कम्मिंधणं पुंजपज्जालणं ॥६॥

अन्वयार्थ—(एण थोत्तेण) इस स्तोत्र के द्वारा **(जो)** जो **(पंच-गुरु)** पञ्च-गुरुओं/पञ्च-परमेष्ठियों की **(वंदए)** वंदना करता है **(सो)** वह

(गुरुय-संसार-घण-वेल्लि) गुरु/भारी/अनन्त संसाररूपी सघन बेल को **(छिंदए)** काट डालता है और **(सो)** वह **(वरमाणणं)** उत्तम जनों के द्वारा मान्य **(सिद्धि -सोक्खाइं)** मोक्ष के सुखों को **(लहइ)** प्राप्त होता है तथा **(कम्मिंधणं पुंज-पज्जालणं)** कर्मरूपी ईंधन के समूह को भस्म **(कुणइ)** करता है।

अरुहा सिद्धाइरिया, उवज्झाया साहु पंच-परमेट्ठी।
एयाण णमोयारा, भवे भवे मम सुहं दिंतु ॥७॥

अन्वयार्थ–(अरुहा) जन्म से रहित अरहंत **(सिद्धाइरिया)** सिद्ध, आचार्य **(उवज्झाया)** उपाध्याय और **(साहु)** साधु ये **(पंच-परमेट्ठी)** पाँच परमेष्ठी हैं **(एयाण)** इनके **(णमोयारा)** नमस्कार **(मम)** मुझे **(भवे भवे)** भव-भव में **(सुहं)** सुख को **(दिंतु)** देवें।

❑ ❑ ❑

शान्तिनाथ स्तवन

समग्रतत्त्व दर्पणम्, विमुक्ति मार्गघोषकम्।
कषायमोहमोचकं, नमामि शान्ति जिनवरम् ॥१॥
त्रिलोकवन्द्यभूषणं, भवाब्धि नीरशोषणं।
जितेन्द्रियम् अजं जिनं, नमामि शान्तिजिनवरम् ॥२॥
अखण्डखण्डगुणधरं, प्रचण्डकाम खण्डनम्।
सुभव्यपद्मदिनकरं, नमामि शान्तिजिनवरम् ॥३॥
एकान्तवादमतहरं, सुस्याद्वाद कौशलं।
मुनीन्द्र - वृन्दसेवितं, नमामि शान्तिजिनवरम् ॥४॥
नृपेन्द्र - चक्र - मण्डनं, प्रकर्म - चक्र - चूरणं ।
सुधर्मचक्रचालकं, नमामि शान्तिजिनवरम् ॥५॥
अग्रन्थ नग्न केवलं, सुमोक्ष धाम केतनं ।
अनिष्टघनप्रभञ्जनं, नमामि शान्तिजिनवरम् ॥६॥
महाश्रमणमकिञ्चनं, अकामकामपदधरं ।
सुतीर्थ कर्तृषोडशं, नमामि शान्तिजिनवरम् ॥७॥
महाव्रतन्धरं वरं, दया क्षमा गुणाकरं ।
सुदृष्टिज्ञानव्रतधरं, नमामि शान्तिजिनवरम् ॥८॥

चौबीस तीर्थङ्कर स्तुति

उपजातिछन्दः

येन स्वयं बोधमयेन लोका, आश्वासिताः केचन वित्तकार्ये।
प्रबोधिताः केचन मोक्षमार्गे, तमादिनाथं प्रणमामि नित्यम् ॥१॥

अन्वयार्थ—(स्वयं बोधमयेन) स्वयं उत्पन्न हुए अपने ज्ञान से **(येन)** जिन्होंने **(केचन लोकाः)** किन्हीं लोगों को **(वित्तकार्ये)** आजीविका के कार्यों में **(आश्वासिताः)** आश्वस्त/प्रोत्साहित किया **(केचन लोकाः)** किन्हीं लोगों को **(मोक्षमार्गे)** मोक्षमार्ग में **(प्रबोधिताः)** प्रबुद्ध/जागृत किया **(तम्)** उन **(आदिनाथं)** आदिनाथ जिनेन्द्र को **(नित्यम्)** सदा **(प्रणमामि)** मैं प्रणाम/ नमस्कार करता हूँ।

इन्द्रादिभिः क्षीरसमुद्र-तोयैः, संस्नापितो मेरुगिरौ जिनेन्द्रः।
यः कामजेता जनसौख्यकारी, तं शुद्ध-भावादजितं नमामि ॥२॥

अन्वयार्थ—(यः) जो **(कामजेता)** काम को जीतने वाले **(जन-सौख्यकारी)** प्राणीमात्र को सुख प्रदान करने वाले **(जिनेन्द्रः)** जिनेन्द्र भगवान् **(इन्द्रादिभिः)** इन्द्र आदि के द्वारा **(क्षीरसमुद्र-तोयैः)** क्षीरसागर के जल से **(मेरुगिरौ)** सुमेरुपर्वत पर **(संस्नापितः)** अभिषेक को प्राप्त हुए **(तं)** उन **(अजितम्)** अजितनाथ भगवान् को **(शुद्धभावात्)** शुद्धभाव से **(नमामि)** मैं नमस्कार करता हूँ।

ध्यान-प्रबन्ध-प्रभवेन येन, निहत्य कर्म-प्रकृतीः समस्ताः।
मुक्ति-स्वरूपा-पदवीं प्रपेदे, तं शंभवं नौमि महानुरागात् ॥३॥

अन्वयार्थ—(येन) जिन्होंने **(ध्यान-प्रबन्ध-प्रभवेन)** ध्यान के निरन्तर प्रभाव से **(समस्ताः कर्म-प्रकृतीः)** सम्पूर्ण कर्म प्रकृतियों को **(निहत्य)** नष्ट करके **(मुक्ति-स्वरूपा-पदवीं)** मोक्षस्वरूप पदवी/स्थान को **(प्रपेदे)** प्राप्त किया **(तं)** उन **(शंभवं)** शंभवनाथ जिनवर को **(महानुरागात्)** बड़े अनुराग से **(नौमि)** मैं नमस्कार करता हूँ।

स्वप्ने यदीया जननी क्षपायां, गजादि-वह्नयन्तमिदं ददर्श।
यत्तात इत्याह गुरुः परोऽयं, नौमि प्रमोदादभिनन्दनं तम् ॥४॥

अन्वयार्थ—(यदीया) जिनकी **(जननी)** माता ने **(क्षपायां)** रात्रि में **(स्वप्ने)** स्वप्न में **(इदम् गजादि-वह्नयन्तम्)** ये हाथी से लेकर अग्नि

तक सोलह स्वप्ने **(ददर्श)** देखे **(यत् तातः)** जिनके पिता ने **(अयं)** ये **(परः गुरुः)** श्रेष्ठ गुरु हैं **(इति आह)** इस प्रकार बतलाया था **(तं अभिनंदनं)** उन अभिनंदननाथ जिनेश्वर को **(प्रमोदात्)** हर्ष से **(नौमि)** मैं नमस्कार करता हूँ।

कुवादि-वादं जयतः महान्तं, नय-प्रमाणैर्वचनै-र्जगत्सु।
जैनं मतं विस्तरितं च येन, तं देव-देवं सुमतिं नमामि ॥५॥

अन्वयार्थ—(येन) जिन्होंने **(महान्तं)** बड़े-बड़े **(कुवादि-वादं)** कुवादियों के वादों को **(नय-प्रमाणैः)** नय और प्रमाणरूपी **(वचनैः)** वचनों के द्वारा **(जयतः)** विजय से **(च)** और **(जगत्सु)** त्रिलोकों में **(जैनं मतं)** जिनशासन को **(विस्तरितं)** विस्तारित किया **(तं देवदेवम्)** उन देवों के देव/देवाधिदेव **(सुमतिं)** सुमतिनाथ जिन को **(नमामि)** मैं नमस्कार करता हूँ।

यस्यावतारे सति पितृधिष्ण्ये, ववर्ष रत्नानि हरेर्निदेशात्।
धनाधिपः षण्णव-मासपूर्वं, पद्मप्रभं तं प्रणमामि साधुम् ॥६॥

अन्वयार्थ—(यस्य) जिनके **(अवतारे सति)** जन्म होने पर **(हरेः निदेशात्)** इन्द्र की आज्ञा से **(धनाधिपः)** धन के अधिपति कुबेर ने **(पितृधिष्ण्ये)** पिता के घर के प्रांगण में **(षण्णव-मासपूर्वं)** पन्द्रह महीने पहले **(रत्नानि)** रत्नों को **(ववर्ष)** वर्षाया **(तं)** उन **(पद्मप्रभं)** पद्मप्रभ भगवान् को **(प्रणमामि)** मैं प्रणाम करता हूँ।

नरेन्द्र-सर्पेश्वर-नाकनाथाः(थैः), वाणीं भवन्तीं जगृहे स्वचित्ते।
यस्यात्मबोधः प्रथितः सभाया,-महं सुपार्श्वं ननु तं नमामि ॥७॥

अन्वयार्थ—(भवन्तीं) जिनकी **(वाणीं)** दिव्यध्वनि को **(नरेन्द्र-सर्पेश्वर-नाकनाथाः(थैः))** नरेन्द्र, धरणेन्द्र और देवेन्द्रों ने **(स्वचित्ते)** अपने चित्त में **(जगृहे)** ग्रहण/धारण किया और **(यस्य)** जिनका **(आत्मबोधः)** आत्मज्ञान **(सभायाम्)** समवसरण सभा में **(प्रथितः)** विस्तरित/प्रसिद्ध हुआ **(ननु)** निश्चय से **(तं सुपार्श्वं)** उन सुपार्श्वनाथ जिन को **(अहं नमामि)** मैं नमस्कार करता हूँ।

सत्प्रातिहार्यातिशय-प्रपन्नो, गुण-प्रवीणो हत-दोष-सङ्गः।
यो लोक-मोहान्धतमःप्रदीपः, चन्द्रप्रभं तं प्रणमामि भावात् ॥८॥

अन्वयार्थ—(यः) जो **(सत्प्रातिहार्यातिशयप्रपन्नः)** सुन्दर प्रातिहार्यरूप अतिशयों को प्राप्त **(गुणप्रवीणः)** गुणों में चतुर **(हतदोष-सङ्गः)** दोषों की संगति को नष्ट करने वाले **(लोक-मोहान्धतमःप्रदीपः)** जीवों के मोहरूपी महान अंधकार को दूर करने के लिए अलौकिक दीपक स्वरूप केवलज्ञानी **(तं चन्द्रप्रभं)** उन चन्द्रप्रभ भगवान् को **(भावात्)** भावपूर्वक **(प्रणमामि)** मैं नमस्कार करता हूँ।

गुप्तित्रयं पञ्च-महाव्रतानि, पञ्चोपदिष्टाः समितिश्च येन।
बभाण यो द्वादशधा तपांसि, तं पुष्पदन्तं प्रणमामि देवम् ॥९॥

अन्वयार्थ—(येन) जिन्होंने **(गुप्तित्रयं)** तीन गुप्तियाँ **(पञ्च-महाव्रतानि)** पाँच महाव्रत **(पञ्च समितिः)** पाँच समितियाँ **(उपदिष्टाः)** कहीं और **(यः)** जिन्होंने **(द्वादशधा)** बारह प्रकार के **(तपांसि)** तपों को **(बभाण)** कहा **(तं)** उन **(पुष्पदन्तं देवम्)** पुष्पदंत देव को **(प्रणमामि)** मैं प्रणाम करता हूँ।

ब्रह्म-व्रतान्तो जिन-नायकेनोत्तम-क्षमादिर्दशधापि धर्मः।
येन प्रयुक्तो व्रत-बन्ध-बुद्ध्या, तं शीतलं तीर्थकरं नमामि ॥१०॥

अन्वयार्थ—(येन) जिन **(जिननायकेन)** जिनों में प्रधान/जिनवर ने **(व्रत-बन्ध-बुद्ध्या)** व्रतों को धारण की बुद्धि से **(उत्तमक्षमादिः)** उत्तमक्षमा आदि **(ब्रह्म-व्रतान्तः)** ब्रह्मचर्यव्रत पर्यन्त **(दशधा धर्मः अपि)** दश प्रकार का धर्म भी **(प्रयुक्तः)** प्रयोग में लाए **(तं)** उन **(शीतलं)** शीतलनाथ **(तीर्थकरं)** तीर्थंकर को **(नमामि)** मैं नमस्कार करता हूँ।

गणे जनानन्दकरे धरान्ते, विध्वस्त-कोपे प्रशमैक-चित्ते।
यो द्वादशाङ्ग-श्रुतमादिदेश, श्रेयांसमानौमि जिनं तमीशम् ॥११॥

अन्वयार्थ—(यः) जिन्होंने **(विध्वस्त-कोपे)** क्रोध के नाश होने पर अर्थात् क्षमाशील होने पर और **(प्रशमैक-चित्ते)** प्रशान्तरूप एकाग्रचित्त होने पर **(धरान्ते)** पृथ्वी के मध्य में **(जनानन्दकरे)** प्राणियों को आनन्द करने वाले **(गणे)** बारहगण से युक्त समवसरण सभा में **(द्वादशाङ्गश्रुतम्)** बारह अंगरूप श्रुत को **(आदिदेशः)** उपदेशित किया/कहा **(तं)** उन **(श्रेयांसं ईशम्)** श्रेयोनाथ **(जिनं)** जिनेश्वर को **(आनौमि)** मैं सब ओर से नमस्कार करता हूँ।

मुक्त्यङ्गनायै रचिता विशाला, रत्नत्रयी-शेखरता च येन।
यत्कण्ठमासाद्य बभूव श्रेष्ठा, तं वासुपूज्यं प्रणमामि वेगात् ॥१२॥

अन्वयार्थ—(येन) जिन्होंने **(मुक्त्यङ्गनायैः)** मुक्तिरूपी वधू के लिये **(विशाला)** विशाल **(रत्नत्रयी-शेखरता)** रत्नत्रयरूपी मुकुट **(रचिता)** निर्मित किया/ बनाया **(च)** और **(यत्कण्ठं)** जिनके कण्ठ को **(आसाद्य)** प्राप्तकर **(श्रेष्ठा)** वह मुक्तिरूपी वधु श्रेष्ठ/उत्तम **(बभूव)** हो गई **(तं)** उन **(वासुपूज्यं)** वासुपूज्य जिनेन्द्र को **(वेगात्)** शीघ्रता से **(प्रणमामि)** मैं नमस्कार करता हूँ।

ज्ञानी विवेकी परमस्वरूपी, ध्यानी व्रती प्राणि-हितोपदेशी।
मिथ्यात्वघाती शिवसौख्यभोजी, बभूव यस्तं विमलं नमामि ॥१३॥

अन्वयार्थ—(यः) जो **(ज्ञानी)** ज्ञानवान् **(विवेकी)** विवेकवान् **(परम-स्वरूपी)** उत्कृष्ट आत्मस्वरूप के धारी **(ध्यानी)** ध्यानी **(व्रती)** व्रतधारी **(प्राणि-हितोपदेशी)** प्राणियों के हितोपदेशक **(मिथ्यात्वघाती)** मिथ्यात्व को नष्ट करने वाले और **(शिवसौख्यभोजी)** मोक्षसुख के भोगी **(बभूव)** हुए **(तं)** उन **(विमलं)** विमलनाथ को **(नमामि)** मैं नमस्कार करता हूँ।

आभ्यन्तरं बाह्यमनेकधा यः, परिग्रहं सर्वमपाचकार।
यो मार्ग-मुद्दिश्य हितं जनानां,वन्दे जिनं तं प्रणमाम्यनन्तम् ॥१४॥

अन्वयार्थ—(यः) जिन्होंने **(जनानां हितं)** सब जीवों के हितरूप **(मार्गम् उद्दिश्य)** मार्ग को लक्ष्य कर **(आभ्यन्तरं)** आभ्यन्तर/भीतरी और **(बाह्यम्)** बाह्य/बाहरी **(अनेकधा)** अनेक प्रकार के **(सर्वपरिग्रहं)** सभी परिग्रह को **(अपाचकार)** त्यागा **(तं)** उन **(अनन्तं जिनं)** अनन्तनाथ जिनेन्द्र को **(प्रणमामि वन्दे)** मैं प्रणाम व वन्दना करता हूँ।

सार्द्धं पदार्था नव-सप्त-तत्त्वैः, पञ्चास्तिकायाश्च न कालकायाः।
षड्द्रव्यनिर्णीति-रलोकयुक्ति-र्येनोदिता तं प्रणमामि धर्मम् ॥१५॥

अन्वयार्थ—(येन) जिन्होंने **(सप्त-तत्त्वैः)** सात तत्त्वों के **(सार्द्धं)** साथ **(नव पदार्थाः)** नौ पदार्थों **(पञ्चास्तिकायाः)** पाँच अस्तिकायों **(कालकायाःन)** काल द्रव्य काय वाली नहीं हैं अर्थात् एक प्रदेशी हैं ऐसी **(षड्द्रव्यनिर्णीतिः)** छह द्रव्यों का निर्णय **(च)** और **(अलोकयुक्तिः)** अलोकाकाश का औचित्य **(उदिता)** कहा **(तं)** उन **(धर्मम्)** धर्मनाथ जिन

को **(प्रणमामि)** मैं नमस्कार करता हूँ।

यः चक्रवर्ती भुवि पञ्चमोऽभूच्छ्रीनन्दनो द्वादशको गुणानाम्।
निधिः प्रभुः षोडशको जिनेन्द्रस्तं शान्तिनाथं प्रणमामि भेदात् ॥१६॥

अन्वयार्थ–(यः) जो **(भुवि)** पृथ्वी पर **(गुणानाम्)** अनेक गुणों के और **(निधि-प्रभुः)** निधियों के स्वामी **(पञ्चमः)** पाँचवें **(चक्रवर्ती)** चक्रवर्ती **(द्वादशकः)** बारहवें **(श्रीनन्दनः)** कामदेव **(षोडशकः)** सोलहवें **(जिनेन्द्रः)** कषाय और इन्द्रिय विजेता तीर्थंकर **(अभूत्)** हुए **(तं)** उन **(शान्तिनाथं)** शान्तिनाथ को **(भेदात्)** तीर्थंकर आदि पदों के अनुसार पृथक्-पृथक् **(प्रणमामि)** प्रणाम करता हूँ।

प्रशंसितो यो न बिभर्ति हर्षं, विरोधितो यो न करोति रोषम्।
शीलव्रताद् ब्रह्मपदं गतो यस्तं कुन्थुनाथं प्रणमामि हर्षात् ॥१७॥

अन्वयार्थ–(यः) जो **(प्रशंसितः)** प्रशंसित होते हुए **(हर्षं)** हर्ष को **(न बिभर्ति)** धारण नहीं करते और **(विरोधितः)** निन्दित होते हुए **(रोषं)** क्रोध को **(न करोति)** नहीं करते तथा **(यः)** जो **(शीलव्रताद्)** शीलव्रत से **(ब्रह्मपदं)** ब्रह्म/मोक्षपद को **(गतः)** प्राप्त हुए **(तं)** उन **(कुन्थुनाथं)** कुन्थुनाथ को **(हर्षात्)** आनन्द से **(प्रणमामि)** मैं नमस्कार करता हूँ।

न संस्तुतो न प्रणतः सभायां, यः सेवितोऽन्तर्गणपूरणाय।
पदाच्युतैः केवलिभिर्जिनस्य, देवाधिदेवं प्रणमाम्यरं तम् ॥१८॥

अन्वयार्थ–(यः) जो **(सभायां)** समवसरण सभा में **(पदाच्युतैः)** अविनाशी पद प्राप्त **(केवलिभिः)** अन्य केवली भगवन्तों के द्वारा **(न संस्तुतः)** न स्तुति को प्राप्त हुए **(न प्रणतः)** न नमस्कृत हुए किन्तु **(अन्तर्गणपूरणाय)** अन्तर्गण की पूर्ति के लिए **(जिनस्य)** तीर्थंकर जिनेन्द्रदेव का **(सेवितः)** सेवन/आश्रय हुआ **(तं)** उन **(देवाधिदेवं)** देवाधिदेव **(अरं)** अरनाथ जिन को **(प्रणमामि)** मैं नमस्कार करता हूँ।

रत्नत्रयं पूर्व-भवान्तरे यो, व्रतं पवित्रं कृतवानशेषम्।
कायेन वाचा मनसा विशुद्ध्या, तं मल्लिनाथं प्रणमामि भक्त्या ॥१९॥

अन्वयार्थ–(यः) जिन्होंने **(पूर्व-भवान्तरे)** पूर्वभव में **(मनसा वाचा कायेन)** मन, वचन, काय से **(विशुद्ध्या)** विशुद्धि द्वारा **(पवित्रं)** पवित्र **(रत्नत्रयं व्रतं)** सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्ररूप व्रत को **(अशेषम्)** पूरी तरह

(कृतवान्) पालन किया **(तं मल्लिनाथं)** उन मल्लिनाथ भगवान् को **(भक्त्या)** भक्ति से **(प्रणमामि)** मैं प्रणाम करता हूँ।

ब्रुवन्नमः सिद्ध-पदाय वाक्य-मित्य-ग्रहीद्यः स्वयमेव लोचम्।
लौकान्तिकेभ्यः स्तवनं निशम्य,वन्दे जिनेशं मुनिसुव्रतं तम् ॥२०॥

अन्वयार्थ–(यः) जिन्होंने **(लौकान्तिकेभ्यः)** लौकान्तिक देवों के द्वारा **(स्तवनं)** स्तुति को **(निशम्य)** सुनकर **(सिद्ध-पदाय)** सिद्धपद के वास्ते सिद्ध पद के धारी सिद्धों के लिए **(नमः)** नमस्कार हो **(इति)** इस प्रकार **(वाक्यम् ब्रुवन्)** वाक्य को बोलते हुए **(स्वयमेव)** स्वयं ही **(लोचम्)** केशलोंच को **(अग्रहीत्)** ग्रहण किया **(तं मुनिसुव्रतं)** उन मुनिसुव्रतनाथ **(जिनेशं)** जिनेश्वर को **(वन्दे)** मैं प्रणाम करता हूँ।

विद्यावते तीर्थकराय तस्मादाहार-दानं ददतो विशेषात्।
गृहे नृपस्याजनि रत्नवृष्टिः, स्तौमि प्रमाणान्नयतो नमिं तम् ॥२१॥

अन्वयार्थ–(विद्यावते) चार ज्ञानधारी **(तीर्थकराय)** तीर्थंकर के लिए **(विशेषात्)** श्रावक के श्रद्धा आदि सात गुण और पड़गाहन आदि नवधाभक्ति की विशेषता से **(आहारदानं)** आहारदान को **(ददतः)** देते हुए **(नृपस्य)** राजा के **(गृहे)** घर में **(रत्नवृष्टिः)** रत्नों की वर्षा **(अजनि)** हुई **(तस्मात्)** इसलिए **(तं)** उन **(नमिं)** नमिनाथ भगवान् की **(प्रमाणात्)** प्रमाण/ सामान्य/समग्ररूप से और **(नयतः)** नय/विशेष/ पृथक्रूप से **(अहं)** मैं **(स्तौमि)** स्तुति करता हूँ।

राजीमतीं यः प्रविहाय मोक्षे, स्थितिं चकारापुनरागमाय।
सर्वेषु जीवेषु दयां दधानस्तं नेमिनाथं प्रणमामि भक्त्या ॥२२॥

अन्वयार्थ–(सर्वेषु) सभी **(जीवेषु)** जीवों पर **(दयां दधानः)** दया को धारण करते हुए **(यः)** जिन्होंने **(अपुनरागमाय)** पुनरागमन से रहित मोक्ष के लिये **(राजीमतीं)** सुन्दर राजमति को **(प्रविहाय)** छोड़कर **(मोक्षे)** मोक्ष में **(स्थितिं)** स्थिरतारूप निवास को **(चकार)** किया **(तं)** उन **(नेमिनाथं)** नेमिनाथ भगवान् को **(भक्त्या)** भक्ति से **(प्रणमामि)** मैं प्रणाम करता हूँ।

सर्पाधिराजः कमठारितो यै,-र्ध्यानस्थितस्यैव फणावितानैः।
यस्योपसर्गं निरवर्तयत्तं, नमामि पार्श्वं महतादरेण ॥२३॥

अन्वयार्थ—(ध्यानस्थितस्य) ध्यान में बैठे हुए **(यस्य)** जिनके **(कमठारितः)** कमठ वैरी के द्वारा किए गए **(उपसर्ग)** उपसर्ग को **(सर्पाधिराजः)** नागेन्द्र/ धरणेन्द्र ने **(यैः फणावितानैः)** जिन फणों के विस्तार/फैलाव द्वारा **(एव)** ही **(निरवर्तयत्)** निवारण किया **(तं)** उन **(पार्श्वं)** पार्श्वनाथ भगवान् को **(महता आदरेण)** बड़े आदरभाव से **(नमामि)** मैं नमस्कार करता हूँ।

भवार्णवे जन्तु-समूह-मेन-माकर्षयामास हि धर्म-पोतात्।
मज्जन्तमुद्वीक्ष्य य एनसापि, श्री-वर्द्धमानं प्रणमाम्यहं तम् ॥२४॥

अन्वयार्थ—(एनसा) पाप से **(भवार्णवे)** संसाररूपी समुद्र में **(मज्जन्तं)** डूबते हुए **(एनम् जन्तु-समूहं)** इस प्राणी समूह को **(उद्वीक्ष्य)** देखकर **(धर्म-पोतात्)** धर्मरूपी जहाज से **(यः)** जिन्होंने **(हि)** निश्चित ही **(आकर्षया-मास)** खींच लिया/बाहर निकाल लिया **(तं)** उन **(श्री वर्द्धमानं)** अन्तरंग व बहिरंग लक्ष्मी से वृद्धि को प्राप्त वर्द्धमान भगवान् को **(अपि)** भी **(अहं)** मैं **(प्रणमामि)** नमस्कार करता हूँ।

शार्दूलविक्रीडितछन्दः

यो धर्मं दशधा करोति पुरुषः, स्त्री वा कृतोपस्कृतं,
सर्वज्ञ-ध्वनि-सम्भवं त्रिकरण,-व्यापार-शुद्ध्यानिशम्।
भव्यानां जयमालया विमलया, पुष्पाञ्जलिं दापयन्,
नित्यं स श्रियमातनोति सकलां, स्वर्गापवर्ग-स्थितिम् ॥२५॥

अन्वयार्थ—(यः पुरुषः वा स्त्री) जो पुरुष या स्त्री **(भव्यानां कृतोपस्कृतं)** भव्यपुरुषों के किए गये उपकार को **(नित्यं)** सदा **(विमलया जय-मालया)** निर्मल गुणानुवाद के साथ **(पुष्पाञ्जलिं दापयन्)** पुष्पाञ्जलि समर्पण करता हुआ **(त्रिकरण-व्यापार-शुद्ध्या)** मन, वचन और काय की प्रवृत्ति की शुद्धि से **(सर्वज्ञध्वनि-संभवं)** सर्वज्ञ की दिव्यध्वनि से उत्पन्न **(दशधा धर्मम्)** दस प्रकार के धर्म को **(अनिशं करोति)** निरन्तर करता है/पालता है **(सः)** वह **(स्वर्गापवर्ग-स्थितम्)** स्वर्ग और मोक्ष में स्थित **(सकलां श्रियम्)** समस्त लक्ष्मी को **(आतनोति)** विस्तारित करता है/प्राप्त करता है।

❑ ❑ ❑

भक्तामरस्तोत्रम्

(वसन्ततिलका छन्द)

भक्तामर-प्रणतमौलि -मणिप्रभाणा-
मुद्योतकं दलित-पाप-तमो - वितानम्।
सम्यक् प्रणम्य जिन - पाद - युगं युगादा-
वालम्बनं भव-जले पततां जनानाम्॥१॥
यः संस्तुतः सकल -वाङ्मय - तत्त्व-बोधा-
दुद्भूत-बुद्धि - पटुभिः सुर - लोक - नाथैः।
स्तोत्रैर्जगत्- त्रितय - चित्त - हरैरुदारैः,
स्तोष्ये किलाहमपि तं प्रथमं जिनेन्द्रम् ॥२॥
(युग्मं)

अन्वयार्थ—(भक्तामर-प्रणत-मौलि-मणि-प्रभाणाम्) भक्त देवों के झुके हुए मुकुटों के रत्नों की कान्ति के **(उद्योतकम्)** बढ़ाने वाले **(दलितपाप-तमोवितानम्)** नष्ट कर दिया पापरूपी अन्धकार के विस्तार को जिन्होंने **(च)** और **(युगादौ)** युग के प्रारम्भ में **(भवजले)** संसाररूप जल में **(पतताम्)** गिरते हुए **(जनानाम्)** प्राणियों के **(आलम्बनम्)** सहारा देने वाले **(जिनपाद-युगम्)** जिनेन्द्र भगवान् के दोनों चरणों को **(सम्यक्)** भली भाँति **(प्रणम्य)** नमस्कार करके **(यः)** जो **(सकल-वाङ्मय-तत्त्व-बोधात्)** समस्त द्वादशांग के यथार्थ ज्ञान से **(उद्भूत-बुद्धिपटुभिः)** उत्पन्न हुई बुद्धि से चतुर **(सुरलोक-नाथैः)** इन्द्रों के द्वारा **(जगत्-त्रितय-चित्त-हरैः)** तीन लोक के प्राणियों के चित्त को हरने वाले **(च)** और **(उदारैः)** उत्कृष्ट **(स्तोत्रैः)** स्तोत्रों से **(संस्तुतः)** स्तुत किए गए थे **(तम्)** उन **(प्रथमम्)** प्रथम **(जिनेन्द्रम्)** जिनेन्द्र आदिनाथ की **(अहम् अपि)** मैं भी **(किल)** निश्चय से **(स्तोष्ये)** स्तुति करूँगा।

बुद्ध्या विनापि विबुधार्चित-पाद-पीठ !
स्तोतुं समुद्यत - मतिर्विगत - त्रपोऽहम्।
बालं विहाय जल-संस्थित-मिन्दु-बिम्ब-
मन्यः क इच्छति जनः सहसा ग्रहीतुम् ॥३॥

अन्वयार्थ–(विबुधार्चित-पादपीठ!) देवों के द्वारा पूजित है पादपीठ-पैरों के रखने की चौकी / सिंहासन जिनकी ऐसे हे जिनेश! **(विगतत्रपः)** निर्लज्ज/लज्जा रहित **(अहम्)** मैं **(बुद्ध्या विना अपि)** बुद्धि के बिना भी **(स्तोतुम्)** स्तुति करने के लिए **(समुद्यतमतिः)** तत्पर बुद्धि वाला हो रहा हूँ **(यतः)** क्योंकि **(बालम्)** बालक–मूर्ख को **(विहाय)** छोड़कर **(अन्यः)** दूसरा **(कः जनः)** कौन मनुष्य **(जलसंस्थितम्)** जल में प्रतिबिम्बित **(इन्दुबिम्बम्)** चन्द्रमण्डल को **(सहसा)** बिना विचारे शीघ्रता से **(ग्रहीतुम्)** पकड़ने की **(इच्छति)** इच्छा करता है अर्थात् कोई भी नहीं।

वक्तुं गुणान् गुण-समुद्र! शशाङ्क-कान्तान् ,
कस्ते क्षमः सुरगुरु-प्रतिमोऽपि बुद्ध्या ।
कल्पान्त -काल - पवनोद्धत- नक्र- चक्रं,
को वा तरीतुमलमम्बुनिधिं भुजाभ्याम्॥४॥

अन्वयार्थ–(गुण-समुद्र!) हे गुणों के सागर! **(बुद्ध्या)** बुद्धि के द्वारा **(सुरगुरु-प्रतिमः अपि)** बृहस्पति के समान भी **(कः)** कौन पुरुष **(ते)** आपके **(शशाङ्क-कान्तान्)** चन्द्रमा के समान सुन्दर **(गुणान्)** गुणों को **(वक्तुम्)** कहने के लिए **(क्षमः)** समर्थ है? अर्थात् कोई नहीं **(वा)** अथवा **(कल्पान्त-काल-पवनोद्धत-नक्रचक्रम्)** प्रलयकाल की वायु के द्वारा प्रचण्ड है मगरमच्छों का समूह जिसमें ऐसे **(अम्बुनिधिम्)** समुद्र को **(भुजाभ्याम्)** भुजाओं के द्वारा **(तरीतुम्)** तैरने के लिए/पार करने के लिए **(कः अलम्)** कौन समर्थ है? अर्थात् कोई नहीं।

सोऽहं तथापि तव भक्ति - वशान्मुनीश !
कर्तुं स्तवं विगत - शक्ति - रपि प्रवृत्तः।
प्रीत्यात्म - वीर्य - मविचार्य मृगी मृगेन्द्रम्
नाभ्येति किं निज-शिशोः परिपालनार्थम्॥५॥

अन्वयार्थ–(मुनीश!) हे मुनियों के ईश! **(तथापि)** तो भी **(सः अहम्)** वह मैं अल्पज्ञ **(विगतशक्तिः अपि)** शक्तिरहित होता हुआ भी **(भक्ति-वशात्)** भक्ति के वश से **(तव)** आपकी **(स्तवम्)** स्तुति को **(कर्तुम्)** करने के लिए **(प्रवृत्तः)** तैयार हुआ हूँ **(यथा)** जैसे **(मृगी)** हिरणी **(आत्मवीर्यम् अविचार्य)** अपनी शक्ति का विचार न कर केवल **(प्रीत्या)**

स्नेह के द्वारा **(निजशिशोः)** अपने बच्चे की **(परिपालनार्थम्)** रक्षा के लिए **(किम्)** क्या **(मृगेन्द्रम् न अभ्येति)** सिंह के सामने नहीं जाती? अर्थात् जाती है।

अल्प-श्रुतं श्रुतवतां परिहासधाम,
त्वद्-भक्तिरेव मुखरीकुरुते बलान्माम्।
यत्कोकिलः किल मधौ मधुरं विरौति,
तच्चाम्र - चारु -कलिका-निकरैक-हेतु ॥६॥

अन्वयार्थ–(अल्पश्रुतम्) अल्पज्ञानी अतएव **(श्रुतवताम्)** विद्वानों की **(परिहासधाम)** हँसी के स्थानरूप **(माम्)** मुझको **(त्वद्भक्तिः एव)** आपकी भक्ति ही **(बलात्)** बलपूर्वक **(मुखरी-कुरुते)** वाचाल कर रही है **(किल)** निश्चय से **(मधौ)** वसन्त ऋतु में **(कोकिलः)** कोयल **(यत्)** जो **(मधुरम् विरौति)** मीठे शब्द करती है **(तत्)** वह **(आम्रचारु-कलिका-निकरैक-हेतु)** आम की सुन्दर मँजरी के समूह के कारण ही करती है।

त्वत्संस्तवेन भव - सन्तति - सन्निबद्धं,
पापं क्षणात्क्षयमुपैति शरीरभाजाम् ।
आक्रान्त - लोक- मलि-नील-मशेष-माशु,
सुर्यांशु- भिन्न-मिव शार्वर-मन्धकारम् ॥७॥

अन्वयार्थ–(त्वत्संस्तवेन) आपकी स्तुति से **(शरीरभाजाम्)** प्राणियों के **(भवसन्तति-सन्निबद्धम्)** अनेक भवों के बँधे हुए **(पापम्)** पाप कर्म, **(आक्रान्तलोकम्)** सम्पूर्ण लोक में व्याप्त **(अलिनीलम्)** भौंरे के समान काले **(सूर्यांशुभिन्नम्)** सूर्य की किरणों से खण्डित **(शार्वरम्)** रात्रि सम्बन्धी **(अशेषम्)** समस्त **(अन्धकारम् इव)** अन्धकार की तरह **(क्षणात्)** क्षण भर में **(आशु)** शीघ्र ही **(क्षयम्)** विनाश को **(उपैति)** प्राप्त हो जाते हैं।

मत्वेति नाथ! तव संस्तवनं मयेद -
मारभ्यते तनु - धियाऽपि तव प्रभावात् ।
चेतो हरिष्यति सतां नलिनी - दलेषु,
मुक्ता-फल-द्युति-मुपैति ननूद-बिन्दुः॥८॥

अन्वयार्थ—(नाथ) हे स्वामिन्! **(इति मत्वा)** ऐसा मानकर **(मया तनुधिया अपि)** मुझ मन्द बुद्धि के द्वारा भी **(तव)** आपका **(इदम्)** यह **(संस्तवनम्)** सम्यक् स्तवन **(आरभ्यते)** प्रारम्भ किया जाता है जो कि **(तव प्रभावात्)** आपके प्रभाव से **(सताम्)** सज्जनों के **(चेतः)** चित्त को **(हरिष्यति)** हरेगा **(ननु)** निश्चय से **(उदबिन्दुः)** जल की बूँद **(नलिनी-दलेषु)** कमलिनी के पत्तों पर **(मुक्ताफलद्युतिम् उपैति)** मोती जैसी कान्ति को प्राप्त होती है।

आस्तां तव स्तवन-मस्त - समस्त - दोषं,
त्वत्सङ्कथाऽपि जगतां दुरितानि हन्ति ।
दूरे सहस्रकिरणः कुरुते प्रभैव,
पद्माकरेषु जलजानि विकासभाञ्जि ॥९॥

अन्वयार्थ—(अस्तसमस्तदोषम्) सम्पूर्ण दोषों से रहित **(तव स्तवनम्)** आपका स्तवन **(आस्ताम्)** दूर रहे, किन्तु **(त्वत्सङ्कथा अपि)** आपकी पवित्र कथा भी **(जगताम्)** जगत् के जीवों के **(दुरितानि)** पापों को **(हन्ति)** नष्ट कर देती है **(सहस्रकिरणः)** सूर्य **(दूरे 'अस्ति')** दूर रहता है, पर उसकी **(प्रभा एव)** प्रभा ही **(पद्माकरेषु)** तालाबों में **(जलजानि)** कमलों को **(विकासभाञ्जि)** विकसित **(कुरुते)** कर देती है।

नात्यद्भुतं भुवन-भूषण ! भूत - नाथ!
भूतैर्गुणैर्भुवि भवन्त - मभिष्टुवन्तः।
तुल्या भवन्ति भवतो ननु तेन किं वा,
भूत्याश्रितं य इह नात्मसमं करोति ॥१०॥

अन्वयार्थ—(भुवनभूषण!) हे संसार के भूषण! **(भूतनाथ!)** हे प्राणियों के स्वामी! **(भूतैः)** सच्चे **(गुणैः)** गुणों के द्वारा **(भवन्तम् अभिष्टुवन्तः)** आपकी स्तुति करने वाले पुरुष **(भुवि)** पृथ्वी पर **(भवतः)** आपके **(तुल्याः)** बराबर **(भवन्ति)** हो जाते हैं **('इदम्' अत्यद्-भुतम् न)** यह अति आश्चर्य की बात नहीं है **(वा)** अथवा **(ननु)** निश्चय से **(तेन)** उस स्वामी से **(किम्)** क्या प्रयोजन है? **(यः)** जो **(इह)** इसलोक में **(आश्रितम्)** अपने आधीन पुरुष को **(भूत्या)** सम्पत्ति के द्वारा **(आत्मसमम्)** अपने बराबर **(न करोति)** नहीं करता।

दृष्ट्वा भवन्त - मनिमेष - विलोकनीयं,
नान्यत्र - तोष - मुपयाति जनस्य चक्षुः।
पीत्वा पयः शशिकर - द्युति -दुग्ध-सिन्धोः,
क्षारं जलं जलनिधे रसितुं क इच्छेत्?॥११॥

अन्वयार्थ–(अनिमेषविलोकनीयम्) बिना पलक झपकाये एकटक देखने के योग्य **(भवन्तम्)** आपको **(दृष्ट्वा)** देखकर **(जनस्य)** मनुष्यों के **(चक्षुः)** नेत्र **(अन्यत्र)** दूसरी जगह **(तोषम्)** सन्तोष को **(न उपयाति)** प्राप्त नहीं होते **(शशिकरद्युति-दुग्धसिन्धोः)** चन्द्रमा की किरणों के समान कान्ति वाले क्षीर समुद्र के **(पयः)** पानी को **(पीत्वा)** पीकर **(कः)** कौन पुरुष **(जलनिधेः)** समुद्र के **(क्षारम्)** खारे **(जलम्)** पानी को **(रसितुम् इच्छेत्)** पीने की इच्छा करेगा? अर्थात् कोई नहीं।

यैः शान्त-राग-रुचिभिः परमाणुभिस्त्वम्,
निर्मापितस् - त्रिभुवनैक - ललाम -भूत !
तावन्त एव खलु तेऽप्यणवः पृथिव्यां,
यत्ते समान-मपरं न हि रूप-मस्ति॥१२॥

अन्वयार्थ–(त्रिभुवनैकललामभूत!) हे त्रिभुवन के एक आभूषण! **(त्वम्)** आप **(यैः)** जिन **(शान्तरागरुचिभिः)** शान्त हो गई है रागादि दोषों की इच्छा जिनकी ऐसे **(परमाणुभिः)** परमाणुओं के द्वारा **(निर्मापितः)** रचे गये हैं **(खलु)** निश्चय से **(पृथिव्याम्)** पृथ्वी पर **(ते अणवः अपि)** वे अणु भी **(तावन्तः एव 'बभूवुः')** उतने ही थे **(यत्)** क्योंकि **(ते समानम्)** आपके समान **(अपरम्)** दूसरा **(रूपम्)** रूप **(नहि)** नहीं **(अस्ति)** है।

वक्त्रं क्व ते सुर-नरोरग - नेत्र - हारि,
निःशेष - निर्जित - जगत्-त्रितयोपमानम् ।
बिम्बं कलङ्क - मलिनं क्व निशाकरस्य,
यद्वासरे भवति पाण्डु-पलाश-कल्पम्॥१३॥

अन्वयार्थ–(सुरनरोरगनेत्रहारि) देव, मनुष्य तथा धरणेन्द्रों के नेत्रों को हरण करने वाला एवं **(निःशेष-निर्जित-जगत्-त्रितयोपमानम्)**

सम्पूर्णरूप से जीत लिया है तीनों जगत् की उपमाओं को जिसने ऐसा **(ते वक्त्रम्)** आपका मुख **(क्व)** कहाँ? और **(कलङ्कमलिनम्)** कलंक से मलीन **(निशाकरस्य)** चन्द्रमा का **('तद्' बिम्बम्)** वह मण्डल **(क्व)** कहाँ? **(यत्)** जो **(वासरे)** दिन में **(पलाशकल्पम्)** ढाक के पत्ते की तरह **(पाण्डु)** फीका **(भवति)** हो जाता है।

सम्पूर्ण-मण्डल - शशाङ्क - कलाकलाप-
शुभ्रा गुणास् - त्रिभुवनं तव लङ्घयन्ति।
ये संश्रितास् - त्रिजगदीश्वरनाथ - मेकम्,
कस्तान् निवारयति सञ्चरतो यथेष्टम्॥१४॥

अन्वयार्थ—(सम्पूर्णमण्डलशशाङ्क-कलाकलाप-शुभ्राः) पूर्ण चन्द्रबिम्ब की कलाओं के समूह के समान स्वच्छ **(तव)** आपके **(गुणाः)** गुण **(त्रिभुवनम्)** तीनों लोकों को **(लङ्घयन्ति)** लाँघ रहे हैं सो ठीक ही है, क्योंकि **(ये)** जो **(एकम्)** मुख्य **(त्रिजगदीश्वर-नाथम्)** तीनों लोकों के नाथों के नाथ के **(संश्रिताः)** आश्रित हैं **(तान्)** उन्हें **(यथेष्टम्)** इच्छानुसार **(संचरतः)** घूमते हुए **(कः)** कौन **(निवारयति)** रोक सकता है? अर्थात् कोई नहीं।

चित्रं किमत्र यदि ते त्रिदशाङ्ग -नाभिर्-
नीतं मनागपि मनो न विकार - मार्गम् ।
कल्पान्त -काल - मरुता चलिताचलेन,
किं मन्दराद्रि-शिखरं चलितं कदाचित्॥१५॥

अन्वयार्थ—(यदि) यदि **(ते)** आपका **(मनः)** मन **(त्रिदशाङ्ग-नाभिः)** देवांगनाओं के द्वारा **(मनाक् अपि)** थोड़ा भी **(विकारमार्गम्)** विकार भाव को **(न नीतम्)** प्राप्त नहीं कराया जा सका है **(तर्हि)** तो **(अत्र)** इस विषय में **(चित्रम् किम्)** आश्चर्य ही क्या है? **(चलिता-चलेन)** पहाड़ों को हिला देने वाली **(कल्पान्तकाल-मरुता)** प्रलयकाल की पवन के द्वारा **(किम्)** क्या? **(कदाचित्)** कभी **(मन्दराद्रिशिखरम्)** मेरुपर्वत का शिखर **(चलितम्)** हिलाया गया है? अर्थात् नहीं।

निर्धूम - वर्ति - रपवर्जित-तैल - पूरः,
कृत्स्नं जगत्त्रय - मिदं प्रकटी-करोषि।

गम्यो न जातु मरुतां चलिता-चलानाम्,
दीपोऽपरस्त्व-मसि नाथ! जगत्प्रकाशः॥१६॥

अन्वयार्थ—(नाथ!) हे स्वामिन्! आप **(निर्धूमवर्तिः)** धुँआ तथा बत्ती से रहित निर्दोष प्रवृत्ति वाले और **(अपवर्जिततैलपूरः)** तैल से शून्य **(भूत्वा अपि)** होकर भी **(इदम्)** इस **(कृत्स्नम्)** समस्त **(जगत् त्रयम्)** त्रिभुवन को **(प्रकटीकरोषि)** प्रकाशित कर रहे हो तथा **(चलिताचलानाम्)** पहाड़ों को हिला देने वाली **(मरुताम्)** वायु के भी **(जातु)** कभी **(गम्यः न)** गम्य नहीं हो अर्थात् वायु बुझा नहीं सकती इस तरह **(त्वम्)** आप **(जगत्प्रकाशः)** संसार को प्रकाशित करने वाले **(अपरः दीपः)** अपूर्व दीपक **(असि)** हो।

नास्तं कदाचिदुपयासि न राहुगम्यः,
स्पष्टीकरोषि सहसा युगपज् - जगन्ति।
नाम्भोधरोदर -निरुद्ध - महा - प्रभावः,
सूर्यातिशायि-महिमासि मुनीन्द्र! लोके॥१७॥

अन्वयार्थ—(मुनीन्द्र!) हे मुनियों के इन्द्र **(त्वम्)** तुम **(कदाचित्)** कभी **(न अस्तम् उपयासि)** न अस्त होते हो **(न राहुगम्यः)** न राहु के द्वारा ग्रसे जाते हो और **(न अम्भोधरोदर-निरुद्धमहा-प्रभावः)** न मेघों के द्वारा आपका महाप्रभाव निरुद्ध होता है तथा **(युगपत्)** एक साथ **(जगन्ति)** तीनों लोकों को **(सहसा)** शीघ्र ही **(स्पष्टीकरोषि)** प्रकाशित करते हो **(इति)** इस तरह आप **(लोके)** इस संसार में **(सूर्यातिशायिमहिमा असि)** सूर्य से भी अधिक महिमा वाले हो।

नित्योदयं दलित - मोह - महान्धकारं,
गम्यं न राहु-वदनस्य न वारिदानाम्।
विभ्राजते तव मुखाब्ज-मनल्पकान्ति,
विद्योतयज्-जगदपूर्व-शशाङ्क -बिम्बम्॥१८॥

अन्वयार्थ—(नित्योदयम्) हमेशा उदय रहने वाला **(दलितमोह-महान्धकारम्)** मोहरूपी अन्धकार को नष्ट करने वाला **(राहुवदनस्य न गम्यम्)** राहु के मुख के द्वारा ग्रसे जाने के अयोग्य **(वारिदानां न गम्यम्)** मेघों के द्वारा छिपाने के अयोग्य **(अनल्पकान्ति)** अधिक कान्ति वाला

और **(जगत्)** संसार को **(विद्योतयत्)** प्रकाशित करने वाला **(तव)** आपका **(मुखाब्जम्)** मुखकमलरूपी **(अपूर्व-शशाङ्कबिम्बम्)** अपूर्व चन्द्रमण्डल **(विभ्राजते)** शोभित होता है।

किं शर्वरीषु शशिनाह्नि विवस्वता वा,
युष्मन्मुखेन्दु - दलितेषु तमःसु नाथ!
निष्पन्न -शालि-वन -शालिनि जीव-लोके,
कार्यं कियज्जल-धरै-र्जलभार-नम्रैः॥१९॥

अन्वयार्थ—(नाथ!) हे स्वामिन्! **(तमःसु)** अन्धकार के **(युष्मन्मुखेन्दु दलितेषु)** आपके मुखचन्द्र द्वारा नष्ट हो जाने पर **(शर्वरीषु)** रात में **(शशिना)** चन्द्रमा से **(वा)** अथवा **(अह्नि)** दिन में **(विवस्वता)** सूर्य से **(किम्)** क्या प्रयोजन है? **(निष्पन्नशालिवनशालिनि)** पके हुए धान्य के खेतों से शोभायमान **(जीव-लोके)** संसार में **(जलभारनम्रैः)** पानी के भार से झुके हुए **(जलधरैः)** मेघों से **(कियत्)** कितना **(कार्यम्)** काम रह जाता है।

ज्ञानं यथा त्वयि विभाति कृतावकाशं,
नैवं तथा हरि - हरादिषु नायकेषु।
तेजः स्फुरन्मणिषु याति यथा महत्त्वं,
नैवं तु काच-शकले किरणाकुलेऽपि॥२०॥

अन्वयार्थ—(कृतावकाशम्) अवकाश को प्राप्त **(ज्ञानम्)** ज्ञान **(यथा)** जिस तरह **(त्वयि)** आपमें **(विभाति)** शोभायमान होता है **(एवं तथा)** उस तरह **(हरिहरादिषु)** विष्णु, शंकर आदि **(नायकेषु)** देवों में **(न 'विभाति')** शोभायमान नहीं होता **(तेजः)** तेज **(स्फुरन्मणिषु)** चमकते हुए मणियों में **(यथा)** जैसे **(महत्त्वम्)** महत्त्व को **(याति)** प्राप्त होता है **(तु)** निश्चय से **(एवं)** वैसे महत्त्व को **(किरणाकुले अपि)** किरणों से व्याप्त भी **(काचशकले)** काँच के टुकड़े में **(न 'याति')** नहीं प्राप्त होता।

मन्ये वरं हरि - हरा - दय एव दृष्टा,
दृष्टेषु येषु हृदयं त्वयि तोषमेति।
किं वीक्षितेन भवता भुवि येन नान्यः,
कश्चिन्मनो हरति नाथ! भवान्तरेऽपि॥२१॥

अन्वयार्थ–(नाथ!) हे स्वामिन् ! **(मन्ये)** मैं मानता हूँ कि **(दृष्टाः)** देखे गये **(हरिहरादयः एव)** विष्णु, महादेव आदि देव ही **(वरम्)** अच्छे हैं **(येषु दृष्टेषु 'सत्सु')** जिनके देखे जाने पर **(हृदयम्)** मन **(त्वयि)** आपके विषय में **(तोषम्)** सन्तोष को **(एति)** प्राप्त हो जाता है **(वीक्षितेन)** देखे गये **(भवता)** आपसे **(किम्)** क्या लाभ है? **(येन)** जिससे कि **(भुवि)** पृथ्वी पर **(अन्यः कश्चित्)** कोई दूसरा देव **(भवान्तरे अपि)** जन्मान्तर में भी **(मनः)** चित्त को **(न हरति)** नहीं हर पाता।

स्त्रीणां शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रान्,
नान्या सुतं त्वदुपमं जननी प्रसूता।
सर्वा दिशो दधति भानि सहस्र-रश्मिं,
प्राच्येव दिग्जनयति स्फुरदंशुजालम् ॥२२॥

अन्वयार्थ–(स्त्रीणाम् शतानि) स्त्रियों के शतक अर्थात् सैकड़ों स्त्रियाँ **(शतशः)** सैकड़ों **(पुत्रान्)** पुत्रों को **(जनयन्ति)** पैदा करती हैं, परन्तु **(त्वदुपमम्)** आप जैसे **(सुतम्)** पुत्र को **(अन्या)** दूसरी **(जननी)** माँ **(न प्रसूता)** पैदा नहीं कर सकी **(भानि)** नक्षत्रों को **(सर्वाः दिशः)** सब दिशाएँ **(दधति)** धारण करती हैं, परन्तु **(स्फुरदंशुजालम्)** चमक रहा है किरणों का समूह जिसका ऐसे **(सहस्ररश्मिम्)** सूर्य को **(प्राची दिक् एव)** पूर्व दिशा ही **(जनयति)** प्रकट करती है।

त्वामा-मनन्ति मुनयः परमं पुमान्स-
मादित्य - वर्ण - ममलं तमसः पुरस्तात्।
त्वामेव सम्य - गुपलभ्य जयन्ति मृत्युं,
नान्यः शिवः शिवपदस्य मुनीन्द्र! पन्थाः॥२३॥

अन्वयार्थ–(मुनीन्द्र!) हे मुनियों के नाथ! **(मुनयः)** तपस्वीजन! **(त्वाम्)** आपको **(आदित्यवर्णं अमलम्)** सूर्य की तरह तेजस्वी, निर्मल और **(तमसः पुरस्तात्)** मोहान्धकार से परे रहने वाले **(परमं पुमांसम्)** परम पुरुष **(आमनन्ति)** मानते हैं वे **(त्वाम् एव)** आपको ही **(सम्यक्)** अच्छी तरह से **(उपलभ्य)** प्राप्त कर **(मृत्युम्)** मृत्यु को **(जयन्ति)** जीतते हैं इसके सिवाय **(शिवपदस्य)** मोक्षपद का **(अन्यः)** दूसरा **(शिवः)** अच्छा **(पन्थाः)** रास्ता **(न अस्ति)** नहीं है।

त्वा - मव्ययं विभु-मचिन्त्य-मसंख्य-माद्यं,
ब्रह्माण-मीश्वर - मनंत - मनङ्ग - केतुम्।
योगीश्वरं विदित - योग - मनेक-मेकं,
ज्ञान-स्वरूप-ममलं प्रवदन्ति सन्तः॥२४॥

अन्वयार्थ—(सन्तः) सज्जन-पुरुष **(त्वाम्)** आपको **(अव्ययम्)** अविनाशी **(विभुम्)** विभु, **(अचिन्त्यम्)** अचिन्त्य, (**असंख्यम्)** असंख्य, **(आद्यम्)** आद्य **(ब्रह्माणम्)** ब्रह्मा, **(ईश्वरम्)** ईश्वर, **(अनंतम्)** अनन्त, **(अनङ्गकेतुम्)** अनंगकेतु **(योगीश्वरम्)** योगीश्वर **(विदितयोगम्)** विदित योग, **(अनेकम्)** अनेक, **(एकम्)** एक **(ज्ञानस्वरूपम्)** ज्ञानस्वरूप और **(अमलम्)** अमल **(प्रवदन्ति)** कहते हैं।

बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चित - बुद्धि - बोधात्,
त्वं शङ्करोऽसि भुवन-त्रय - शङ्करत्वात् ।
धातासि धीर ! शिव - मार्ग-विधेर्विधानाद्,
व्यक्तं त्वमेव भगवन्! पुरुषोत्तमोऽसि॥२५॥

अन्वयार्थ—(विबुधार्चितबुद्धिबोधात्) देव अथवा विद्वानों के द्वारा पूजित बुद्धि-ज्ञान वाले होने से **(त्वम् एव)** आप ही **(बुद्धः)** बुद्ध हैं। **(भुवनत्रय-शङ्करत्वात्)** तीनों लोकों में शान्ति करने के कारण **(त्वम् एव)** आप ही **(शङ्करः असि)** शंकर हो **(धीर!)** हे धीर! **(शिवमार्ग-विधेर्विधानात्)** मोक्षमार्ग की विधि के करने से **(त्वमेव)** आप ही **(धाता असि)** ब्रह्मा हो और **(भगवन् !)** हे स्वामिन्! **(त्वमेव)** आप ही **(व्यक्तम्)** स्पष्ट रूप से **(पुरुषोत्तमः असि)** मनुष्यों में उत्तम अथवा नारायण हो।

तुभ्यं नमस् - त्रिभुवनार्ति - हराय नाथ!
तुभ्यं नमः क्षिति - तलामल - भूषणाय।
तुभ्यं नमस् - त्रिजगतः परमेश्वराय,
तुभ्यं नमो जिन! भवोदधि-शोषणाय॥२६॥

अन्वयार्थ— (नाथ!) हे स्वामिन्! **(त्रिभुवनार्तिहराय)** तीनों लोकों के दुःखों के हरने वाले **(तुभ्यम्)** आपके लिए **(नमः 'अस्तु')** नमस्कार हो, **(क्षिति-तलामलभूषणाय)** पृथ्वी तल के निर्मल आभूषण स्वरूप **(तुभ्यम्)** आपके लिए **(नमः 'अस्तु')** नमस्कार हो, **(त्रिजगतः)** तीनों

जगत् के **(परमेश्वराय)** परमेश्वरस्वरूप **(तुभ्यम्)** आपके लिए **(नमः 'अस्तु')** नमस्कार हो और **(जिन!)** हे जिनेन्द्रदेव! **(भवोदधि-शोषणाय)** संसार समुद्र के सुखाने वाले **(तुभ्यम्)** आपके लिए **(नमः 'अस्तु')** नमस्कार हो।

को विस्मयोऽत्र यदि नाम गुणै-रशेषैस्,
त्वं संश्रितो निरवकाशतया मुनीश !
दोषैरुपात्त - विविधा-श्रय-जातगर्वैः,
स्वप्नान्तरेऽपि न कदाचिदपीक्षितोऽसि॥२७॥

अन्वयार्थ—(मुनीश!) हे मुनियों के स्वामी **(यदि नाम)** यदि **(निरवकाश-तया)** अन्य जगह स्थान न मिलने के कारण **(त्वम्)** आप **(अशेषैः)** समस्त **(गुणैः)** गुणों के द्वारा **(संश्रितः)** आश्रित हुए हो और **(उपात्त-विविधाश्रय-जातगर्वैः)** प्राप्त हुए अनेक आधार से उत्पन्न हुआ है अहंकार जिनको ऐसे **(दोषैः)** दोषों के द्वारा **(स्वप्नान्तरे अपि)** स्वप्न के मध्य में भी **(कदाचित् अपि)** कभी भी **(न ईक्षितः असि)** नहीं देखे गये हो **[तर्हि]** तो **(अत्र)** इस विषय में **(कः विस्मयः)** क्या आश्चर्य है? कुछ नहीं।

उच्चै - रशोक - तरु - संश्रितमुन्मयूख -
माभाति रूपममलं भवतो नितान्तम्।
स्पष्टोल्लसत्-किरण-मस्त-तमो-वितानम्,
बिम्बं रवेरिव पयोधर - पार्श्ववर्ति ॥२८॥

अन्वयार्थ—(उच्चैरशोकतरुसंश्रितम्) ऊँचे अशोक वृक्ष के नीचे स्थित तथा **(उन्मयूखम्)** जिसकी किरणें ऊपर को फैल रही हैं, ऐसा **(भवतः)** आपका **(अमलम् रूपम्)** उज्ज्वल रूप **(स्पष्टोल्लसत्किरणम्)** स्पष्टरूप से शोभायमान हैं किरणें जिसकी और **(अस्त-तमो-वितानम्)** नष्ट कर दिया है अन्धकार का समूह जिसने ऐसे **(पयोधर-पार्श्ववर्ति)** मेघ के पास में स्थित **(रवेः बिम्बम् इव)** सूर्य के बिम्ब की तरह **(नितान्तम्)** अत्यन्त **(आभाति)** शोभित होता है।

सिंहासने मणि - मयूख - शिखा - विचित्रे,
विभ्राजते तव वपुः कनकावदातम्।

बिम्बं वियद् - विलस - दंशुलता - वितानं।
तुङ्गोदयाद्रि - शिरसीव सहस्र-रश्मेः ॥२९॥

अन्वयार्थ—(मणि-मयूख-शिखा-विचित्रे) रत्नों की किरणों के अग्रभाग से चित्र विचित्र **(सिंहासने)** सिंहासन पर **(तव)** आपका **(कनकावदातम्)** सुवर्ण की तरह उज्ज्वल **(वपुः)** शरीर **(तुङ्गोदयाद्रि-शिरसि)** ऊँचे उदयाचल के शिखर पर **(वियद्-विलसदंशुलता-वितानम्)** आकाश में शोभायमान है किरणरूपी लताओं का समूह है जिसका ऐसे **(सहस्त्ररश्मेः)** सूर्य के **(बिम्बम् इव)** मण्डल की तरह **(विभ्राजते)** शोभायमान हो रहा है।

कुन्दावदात -चल -चामर - चारु - शोभं,
विभ्राजते तव वपुः कलधौत - कान्तम्।
उद्यच्छशाङ्क- शुचिनिर्झर - वारि - धार-
मुच्चैस्तटं सुरगिरेरिव शातकौम्भम् ॥३०॥

अन्वयार्थ—(कुन्दावदात-चलचामर-चारुशोभम्) कुन्द के फूल के समान स्वच्छ हिलते हुए चँवरों की सुन्दर शोभा से युक्त **(कलधौत-कान्तम्)** सुवर्ण के समान कान्ति वाला **(तव)** आपका **(वपुः)** शरीर **(उद्यच्छशाङ्क-शुचिनिर्झर-वारिधारम्)** उदीयमान चन्द्रमा के समान निर्मल झरनों की जलधारा से युक्त **(सुरगिरेः)** सुमेरु पर्वत के **(शात-कौम्भम्)** स्वर्णमयी **(उच्चैस्तटम् इव)** ऊँचे तट के समान **(विभ्राजते)** शोभायमान होता है।

छत्र - त्रयं तव विभाति शशाङ्क - कान्त-
मुच्चैः स्थितं स्थगित-भानुकर-प्रतापम्।
मुक्ता-फल -प्रकर -जाल - विवृद्ध-शोभं,
प्रख्यापयत् त्रिजगतः परमेश्वरत्वम्॥३१॥

अन्वयार्थ—(शशाङ्ककान्तम्) चन्द्रमा के समान सुन्दर **(स्थगित-भानु-कर-प्रतापम्)** रोक दिया है सूर्य की किरणों के सन्ताप को जिसने तथा **(मुक्ता-फल-प्रकर-जाल-विवृद्ध-शोभम्)** मोतियों के समूह वाली झालर से बढ़ रही है शोभा जिनकी ऐसे **(तव उच्चैः स्थितम्)** आपके ऊपर स्थित **(छत्रत्रयम्)** तीन छत्र **(त्रिजगतः)** तीन जगत् के **(परमेश्वरत्वम्)** स्वामित्व को **(प्रख्यापयत् 'इव')** प्रकट करते हुए की तरह **(विभाति)**

शोभायमान होते हैं।

गम्भीर - तार - रव - पूरित - दिग्विभागस्-
त्रैलोक्यलोक-शुभ - सङ्गम - भूति - दक्षः।
सद्धर्म- राज-जय - घोषण- घोषकः सन्,
खे दुंदुभि-र्ध्वनति ते यशसः प्रवादी॥३२॥

अन्वयार्थ–(गम्भीर-तार-रव-पूरित दिग्विभागः) गम्भीर और उच्च शब्द से पूर दिया है दिशाओं के विभाग को जिसने, ऐसा **(त्रैलोक्य-लोक-शुभ-सङ्गम-भूतिदक्षः)** तीनों लोकों के जीवों को शुभ समागम की सम्पत्ति देने में समर्थ और **(सद्धर्म-राज-जय घोषण-घोषकः)** समीचीन जैनधर्म के स्वामी की जयघोषणा को घोषित करने वाला **(दुन्दुभिः)** दुन्दुभि बाजा **(ते)** आपके **(यशसः)** यश का **(प्रवादी सन्)** कथन करता हुआ **(खे)** आकाश में **(ध्वनति)** शब्द करता है।

मन्दार - सुन्दर - नमेरु - सुपारिजात-
सन्तानकादि - कुसुमोत्कर - वृष्टि - रुद्धा।
गन्धोद - बिन्दु - शुभ-मन्द - मरुत्प्रपाता,
दिव्या दिवः पतति ते वचसां ततिर्वा॥३३॥

अन्वयार्थ–(गन्धोदबिन्दु-शुभमन्दमरुत्प्रपाता) सुगन्धित जल की बूँदों और सुखकर मन्द हवा के साथ गिरने वाली **(उद्धा)** श्रेष्ठ और **(दिव्या)** मनोहर **(मन्दार-सुन्दर-नमेरु-सुपारिजात-सन्तानकादि-कुसुमोत्कर-वृष्टिः)** मन्दार, सुन्दर, नमेरु, पारिजात, सन्तानक आदि कल्पवृक्षों के फूलों के समूहों की वर्षा **(ते)** आपके **(वचसाम्)** वचनों की **(ततिः वा)** पंक्ति की तरह **(दिवः)** आकाश से **(पतति)** पड़ती है/ गिरती है।

शुम्भत्-प्रभा - वलय-भूरि-विभा-विभोस्ते,
लोकत्रये द्युतिमतां द्युति - माक्षिपन्ती।
प्रोद्यद् - दिवाकर - निरन्तर - भूरि - संख्या,
दीप्त्या जयत्यपि निशामपि सोम-सौम्याम् ॥३४॥

अन्वयार्थ–(लोकत्रये) तीनों लोकों में **(द्युतिमताम्)** कान्तिमान् पदार्थों की **(द्युतिम्)** कान्ति को **(आक्षिपन्ती)** तिरस्कृत करने वाली **(प्रोद्यद्-दिवाकर-निरन्तर-भूरिसंख्या)** उदित होते हुए सूर्यों की निरन्तर भारी

संख्या वाली **(दीप्त्या अपि)** कान्ति से भी और **(सोमसौम्याम्)** चन्द्रमा के समान सुन्दर **(ते विभोः!)** हे प्रभो! आपके **(शुम्भत्-प्रभावलय-भूरिविभा)** देदीप्यमान भामण्डल की विशाल कान्ति **(निशाम् अपि)** रात्रि को भी **(जयति)** जीत रही है।

स्वर्गापवर्ग - गम - मार्ग - विमार्गणेष्टः,
सद्धर्म-तत्त्व - कथनैक-पटुस् - त्रिलोक्याः।
दिव्य - ध्वनि-र्भवति ते विशदार्थ - सर्व-
भाषा-स्वभाव-परिणाम-गुणैः प्रयोज्यः॥३५॥

अन्वयार्थ—(ते) आपकी **(दिव्यध्वनिः)** दिव्यध्वनि **(स्वर्गापवर्ग-गममार्ग-विमार्गणेष्टः)** स्वर्ग और मोक्ष को जाने वाले मार्ग के खोजने के लिए इष्ट **(त्रिलोक्याः)** तीनों लोकों के जीवों को **(सद्धर्म-तत्त्व-कथनैक-पटुः)** समीचीन धर्मतत्त्व के कथन करने में अत्यन्त समर्थ और **(विशदार्थ-सर्वभाषा-स्वभाव-परिणाम-गुणैः प्रयोज्यः)** स्पष्ट अर्थ वाली सम्पूर्ण भाषाओं में परिवर्तित होने वाले स्वाभाविक गुण से सहित **(भवति)** होती है।

उन्निद्र - हेम -नव - पङ्कज-पुञ्ज - कान्ति-,
पर्युल् -लसन् - नख -मयूख-शिखाभिरामौ।
पादौ पदानि तव यत्र जिनेन्द्र ! धत्तः,
पद्मानि तत्र विबुधाः परिकल्पयन्ति॥३६॥

अन्वयार्थ—(जिनेन्द्र!) हे जिनेन्द्रदेव! **(उन्निद्र-हेम-नव-पङ्कज-पुञ्ज-कान्ति-पर्युल्लसन्-नखमयूख-शिखाभिरामौ)** खिले हुए सुवर्ण के नवीन कमल समूह के समान कान्ति के द्वारा सब ओर से शोभायमान नखों की किरणों के अग्रभाग से सुन्दर **(तव)** आपके **(पादौ)** दोनों चरण **(यत्र)** जहाँ **(पदानि)** कदम **(धत्तः)** रखते हैं **(तत्र)** वहाँ **(विबुधाः)** देव गण **(पद्मानि)** कमलों को **(परिकल्पयन्ति)** रच देते हैं।

इत्थं यथा तव विभूतिरभूज् - जिनेन्द्र !
धर्मोपदेशन - विधौ न तथा परस्य।
यादृक् प्रभा दिनकृतः प्रहतान्धकारा,
तादृक् कुतो ग्रह-गणस्य विकासिनोऽपि॥३७॥

अन्वयार्थ–(जिनेन्द्र!) हे जिनदेव! **(इत्थं)** इस प्रकार **(धर्मोपदेशन-विधौ)** धर्मोपदेश के कार्य में **(यथा)** जैसी **(तव)** आपकी **(विभूतिः)** विभूति **(अभूत्)** हुई **(तथा)** वैसी **(परस्य)** किसी दूसरे की **(न 'अभूत्')** नहीं हुई **(प्रहतान्धकारा)** अन्धकार को नष्ट करने वाली **(यादृक्)** जैसी **(प्रभा)** कान्ति **(दिनकृतः)** सूर्य की **('भवति')** होती है **(तादृक्)** वैसी **(विकाशिनः अपि)** प्रकाशमान भी **(ग्रहगणस्य)** अन्य ग्रहों की **(कुतः)** कहाँ से हो सकती है? अर्थात् नहीं हो सकती।

श्च्योतन्-मदाविल-विलोल-कपोल-मूल-
मत्त- भ्रमद् - भ्रमर - नाद -विवृद्ध-कोपम्।
ऐरावताभमिभ - मुद्धत - मापतन्तं
दृष्ट्वा भयं भवति नो भवदाश्रितानाम्॥३८॥

अन्वयार्थ–(भवदाश्रितानाम्) आपके आश्रित मनुष्यों को **(श्च्योतन्-मदा-विल-विलोल-कपोलमूल-मत्तभ्रमद्भ्रमर-नाद-विवृद्ध-कोपम्)** झरते हुए मद जल से मलिन और चञ्चल गालों के मूल भाग में पागल हो घूमते हुए भौंरों के शब्द से बढ़ गया है क्रोध जिसका ऐसे **(ऐरावताभम्)** ऐरावत की तरह **(उद्धतम्)** उद्दण्ड **(आपतन्तम्)** सामने आते हुए **(इभम्)** हाथी को **(दृष्ट्वा)** देखकर **(भयम्)** डर **(नो भवति)** नहीं होता।

भिन्नेभ -कुम्भ -गल -दुज्ज्वल-शोणिताक्त-
मुक्ता - फल-प्रकर-भूषित - भूमि - भागः।
बद्ध - क्रमः क्रम - गतं हरिणाधिपोऽपि,
नाक्रामति क्रम-युगाचल-संश्रितं ते॥३९॥

अन्वयार्थ–(भिन्नेभ-कुम्भ-गल-दुज्ज्वल-शोणिताक्त-मुक्ता-फल-प्रकर-भूषित-भूमिभागः) विदारे हुए हाथी के गण्डस्थल से गिरते हुए उज्ज्वल तथा खून से भीगे हुए मोतियों के समूह के द्वारा भूषित किया है पृथ्वी का भाग जिसने ऐसा तथा **(बद्धक्रमः)** छलांग मारने के लिए तैयार **(हरिणाधिपः अपि)** सिंह भी **(क्रमगतम्)** अपने पाँवों के बीच आये हुए **(ते)** आपके **(क्रम-युगाचल-संश्रितम्)** चरण युगलरूप पर्वत का आश्रय लेने वाले पुरुष पर **(न आक्रामति)** आक्रमण नहीं करता।

कल्पान्त - काल-पवनोद्धत - वह्नि - कल्पं,
दावानलं ज्वलित-मुज्ज्वल-मुत्स्फुलिङ्गम्।
विश्वं जिघत्सुमिव सम्मुख - मापतन्तं,
त्वन्नाम-कीर्तन-जलं शमयत्यशेषम्॥४०॥

अन्वयार्थ—(त्वन्नामकीर्तनजलम्) आपके नाम का यशोगानरूपी जल **(कल्पान्तकाल-पवनोद्धत-वह्नि-कल्पम्)** प्रलयकाल की वायु से प्रचण्ड अग्नि के तुल्य **(ज्वलितम्)** प्रज्वलित **(उज्ज्वलम्)** उज्ज्वल और **(उत्स्फुलिङ्गम्)** जिससे तिलंगे ऊपर की ओर निकल रहे हैं, ऐसी तथा **(विश्वं जिघत्सुम् इव)** संसार को भक्षण करने की इच्छा रखने वाले की तरह **(सम्मुखम्)** सामने **(आपतन्तम्)** आती हुई **(दावानलम्)** वन की अग्नि को **(अशेषम्)** सम्पूर्ण रूप से **(शमयति)** बुझा देता है।

रक्तेक्षणं समद - कोकिल - कण्ठ - नीलं,
क्रोधोद्धतं फणिन - मुत्फण - मापतन्तम्।
आक्रामति क्रम - युगेण निरस्त-शङ्कस्,
त्वन्नाम -नाग - दमनी हृदि यस्य पुंसः॥४१॥

अन्वयार्थ—(यस्य) जिस **(पुंसः)** पुरुष के **(हृदि)** हृदय में **(त्वन्नाम-नागदमनी)** आपके नामरूपी नागदमनी-नागवशीकरण औषध **[अस्ति]** मौजूद है **[सः]** वह पुरुष **(रक्तेक्षणम्)** लाल-लाल आँखों वाले **(समद-कोकिल-कण्ठ-नीलम्)** मद युक्त कोयल के कण्ठ की तरह काले **(क्रोधोद्धतम्)** क्रोध से उद्दण्ड और **(उत्फणम्)** ऊपर को फण उठाये हुए **(आपतन्तम्)** सामने आते हुए **(फणिनम्)** साँप को **(निरस्तशङ्कः 'सन्')** शंका रहित होता हुआ **(क्रमयुगेण)** दोनों पाँवों से **(आक्रामति)** लाँघ जाता है।

वल्गत् - तुरङ्ग - गज - गर्जित - भीमनाद-
माजौ बलं बलवता - मपि भूपतीनाम्।
उद्यद् - दिवाकर - मयूख - शिखापविद्धं,
त्वत्कीर्तनात्तम - इवाशु भिदामुपैति॥४२॥

अन्वयार्थ—(त्वत्कीर्तनात्) आपके यशोगान से **(आजौ)** युद्धक्षेत्र में **(वल्गत्तुरङ्ग-गजगर्जित-भीमनादम्)** उछलते हुए घोड़े और हाथियों की

गर्जना से भयंकर है शब्द जिसमें ऐसी **(बलवताम्)** पराक्रमी **(भूपतीनाम् अपि)** राजाओं की भी **(बलम्)** सेना **(उद्यद्-दिवाकर-मयूख-शिखा-पविद्धम्)** उगते हुए सूर्य की किरणों के अग्रभाग से वेधे गये **(तमः इव)** अन्धकार की तरह **(आशु)** शीघ्र ही **(भिदाम्)** विनाश को **(उपैति)** प्राप्त हो जाती है।

कुन्ताग्र - भिन्न -गज - शोणित - वारिवाह-
वेगावतार - तरणातुर - योध - भीमे।
युद्धे जयं विजित - दुर्जय - जेय - पक्षास्,
त्वत्पाद-पङ्कज-वनाश्रयिणो लभन्ते ॥४३॥

अन्वयार्थ—(त्वत्पाद-पङ्कज-वनाश्रयिणः) आपके चरणरूप कमलों के वन का आश्रय लेने वाले पुरुष **(कुन्ताग्र-भिन्न-गज-शोणित-वारिवाह-वेगावतार-तरणातुर-योध-भीमे)** भालों के अग्रभाग से विदारे गये हाथियों के खूनरूपी जल के प्रवाह को वेग से उतरने और तैरने में व्यग्र योद्धाओं के द्वारा भयंकर **(युद्धे)** युद्ध में **(विजित-दुर्जय-जेय-पक्षाः)** जीत लिया है कठिनाई से जीतने योग्य शत्रुओं के पक्ष को जिन्होंने ऐसे होते हुए **(जयम्)** विजय **(लभन्ते)** पाते हैं।

अम्भोनिधौ क्षुभित - भीषण - नक्र - चक्र-
पाठीन-पीठ - भय - दोल्वण - वाडवाग्नौ।
रङ्गत्तरङ्ग - शिखर - स्थित - यान - पात्रास्,
त्रासं विहाय भवतः स्मरणाद् व्रजन्ति ॥४४॥

अन्वयार्थ—(क्षुभितभीषणनक्रचक्र पाठीनपीठभय-दोल्वण-वाड-वाग्नौ) क्षोभ को प्राप्त हुए भयंकर मगरमच्छों के समूह और मछलियों के द्वारा भय पैदा करने वाले तथा विकराल है बड़वानल जिसमें ऐसे **(अम्भोनिधौ)** समुद्र में **(रङ्गत्तरङ्ग-शिखरस्थित-यानपात्राः)** चञ्चल लहरों के अग्रभाग पर स्थित है जहाज जिनका ऐसे मनुष्य **(भवतः)** आपके **(स्मरणात्)** स्मरण से **(त्रासम्)** भय को **(विहाय)** छोड़कर **(व्रजन्ति)** गमन/यात्रा करते हैं।

उद्भूत - भीषण-जलोदर - भार - भुग्नाः,
शोच्यां दशा-मुपगताश्-च्युत-जीविताशाः।

त्वत्पाद - पङ्कज - रजोऽमृत - दिग्ध-देहा,
मर्त्या भवन्ति मकर-ध्वज-तुल्यरूपाः॥४५॥

अन्वयार्थ—(उद्भूत-भीषण-जलोदर-भारभुग्नाः) उत्पन्न हुए भयंकर जलोदर रोग के भार से झुके हुए **(शोच्यां दशाम्)** शोचनीय अवस्था को **(उपगताः)** प्राप्त और **(च्युतजीविताशाः)** छोड़ दी है जीवन की आशा जिन्होंने ऐसे **(मर्त्याः)** मनुष्य **(त्वत्पाद-पङ्कज-रजोऽमृत-दिग्धदेहाः)** आपके चरण कमलों की धूलिरूप अमृत से लिप्त शरीर होते हुए **(मकरध्वज-तुल्यरूपाः)** कामदेव के समान रूप वाले **(भवन्ति)** हो जाते हैं।

आपाद - कण्ठमुरु - शृङ्खल - वेष्टिताङ्गा,
गाढम् बृहन् - निगड - कोटिनिघृष्ट-जङ्घाः।
त्वन्-नाम-मन्त्र-मनिशम् मनुजाः स्मरन्तः,
सद्यः स्वयं विगत-बन्ध-भया भवन्ति॥४६॥

अन्वयार्थ—(आपादकण्ठम्) पाँव से लेकर कण्ठपर्यन्त **(उरु-शृङ्खल-वेष्टिताङ्गाः)** बड़ी-बड़ी साँकलों से जकड़ा हुआ है शरीर जिनका ऐसे और **(गाढं)** अत्यन्त कसकर बाँधी गईं **(बृहन्-निगड-कोटि-निघृष्ट-जङ्घाः)** बड़ी-बड़ी बेड़ियों के अग्रभाग से घिस गई हैं जाँघें जिनकी ऐसे **(मनुजाः)** मनुष्य **(अनिशम्)** निरन्तर **(त्वन्नाम-मन्त्रम्)** आपके नामरूपी मन्त्र को **(स्मरन्तः)** स्मरण करते हुए **(सद्यः)** शीघ्र ही **(स्वयम्)** अपने आप **(विगत-बन्धभयाः)** बंधन के भय से रहित **(भवन्ति)** हो जाते हैं।

मत्तद्विपेन्द्र - मृगराज - दवानलाहि-
संग्राम - वारिधि - महोदर -बन्ध-नोत्थम्।
तस्याशु नाश - मुपयाति भयं भियेव,
यस्तावकं स्तव-मिमं मतिमान-धीते॥४७॥

अन्वयार्थ—(यः) जो **(मतिमान्)** बुद्धिमान् मनुष्य **(तावकम्)** आपके **(इमम्)** इस **(स्तवम्)** स्तोत्र को **(अधीते)** पढ़ता है **(तस्य)** उसका **(मत्तद्विपेन्द्र-मृगराज-दवानलाहि-संग्राम-वारिधि-महोदर-बन्ध-नोत्थम्)** मत्त हाथी, सिंह, वनाग्नि, साँप, युद्ध, समुद्र, जलोदर और बन्धन आदि से उत्पन्न हुआ **(भयम्)** डर **(भिया इव)** मानों भय से ही

(आशु) शीघ्र **(नाशम्)** विनाश को **(उपयाति)** प्राप्त हो जाता है।

स्तोत्रस्रजं तव जिनेन्द्र ! गुणैर्निबद्धां,
भक्त्या मया विविध-वर्ण-विचित्र-पुष्पाम्।
धत्ते जनो य इह कण्ठगतामजस्रं,
तं 'मानतुङ्ग'-मवशा समुपैति लक्ष्मीः॥४८॥

अन्वयार्थ–(जिनेन्द्र!) हे जिनेन्द्रदेव! **(इह)** इस संसार में **(यः जनः)** जो मनुष्य **(मया)** मेरे द्वारा **(भक्त्या)** भक्तिपूर्वक **(गुणैः)** प्रसाद, माधुर्य, ओज आदि गुणों से [माला के पक्ष में-डोरे से] **(निबद्धाम्)** रची गई [माला पक्ष में-गूँथी गई] **(विविधवर्ण-विचित्रपुष्पाम्)** अनेक प्रकार के सुन्दर वर्णरूपी विविध प्रकार के पुष्पों वाली [माला पक्ष में-अच्छे रंग वाले कई तरह के फूलों से सहित] **(तव)** आपकी **(स्तोत्रस्त्रजम्)** स्तोत्ररूपी माला को **(अजस्रम्)** हमेशा **(कण्ठगताम् धत्ते)** कण्ठ में धारण करता है **(तम्)** उस **(मानतुङ्गम्)** सम्मान से उन्नत पुरुष को [अथवा स्तोत्र के रचने वाले मानतुंग आचार्य को] **(अवशा लक्ष्मीः)** स्वतन्त्र स्वर्ग-मोक्षादि की विभूति **(समुपैति)** प्राप्त होती है।

❑ ❑ ❑

आचार्य श्री जिनसेन स्वामी का उपदेश

जिस पूजा, तप, स्वाध्याय के द्वारा वट-वृक्ष के समान विशाल फल की प्राप्ति होती है, उस पुण्य कार्य को ख्याति सम्मान की चाह के लिए किया जाना उतना ही मूर्खतापूर्ण कार्य है, जितना कि–

एक गिलास छाछ (मही) की इच्छा रखते हुए, बदले में हीरा दे देना।

बर्तन माँजने के लिए मोतियों को जलाकर भस्म तैयार कर देना।

ज्वार की खेती की रक्षा के लिए, चंदन की बाड़ी लगा देना।

फटे कपड़े को सिलने के लिए नौलखा हार को तोड़कर, उसमें से धागा निकाल लेना।

कल्याणमन्दिरस्तोत्रम्

कल्याण - मन्दिर - मुदार - मवद्य भेदि,
भीताभय - प्रदमनिन्दित - मङ्घ्रि-पद्मम्।
संसार - सागर - निमज्जदशेष - जन्तु-,
पोतायमान - मभिनम्य जिनेश्वरस्य॥१॥
यस्य स्वयं सुरगुरु - र्गरिमाम्बु-राशेः।
स्तोत्रं सुविस्तृत-मति-र्न विभु-र्विधातुम्॥
तीर्थेश्वरस्य कमठ-स्मय - धूमकेतोस्-।
तस्याह-मेष किल संस्तवनं करिष्ये॥२॥

अन्वयार्थ—(कल्याणमंदिरम्) कल्याणों के मंदिर **(उदारम्)** दाता या महान् **(अवद्यभेदि)** पापों को नष्ट करने वाले **(भीताभयप्रदम्)** संसार से डरे हुए जीवों को अभयपद देने वाले **(अनिन्दितं)** प्रशंसनीय **(संसार-सागर-निमज्ज-दशेषजन्तुपोतायमानम्)** संसाररूपी समुद्र में डूबते हुए समस्त जीवों के लिए जहाज के समान **(जिनेश्वरस्य)** जिनेन्द्र भगवान् के **(अङ्घ्रिपद्मम्)** चरण-कमलों को **(अभिनम्य)** नमस्कार करके **(गरिमाम्बुराशेः)** गौरव के समुद्र-स्वरूप **(यस्य)** जिन पार्श्वनाथ की **(स्तोत्रम् विधातुम्)** स्तुति करने के लिए **(स्वयं सुविस्तृतमतिः)** स्वयं विशाल बुद्धि वाले **(सुरगुरुः)** बृहस्पति भी **(विभुः)** समर्थ **(न 'अस्ति')** नहीं है **(कमठ-स्मयधूमकेतोः)** कमठ का मान भस्म करने के लिए अग्निस्वरूप **(तस्य तीर्थेश्वरस्य)** उन पार्श्वनाथ भगवान् की **(किल)** आश्चर्य है कि **(एषः अहं)** यह मैं **(संस्तवनम् करिष्ये)** स्तुति करूँगा।

सामान्यतोऽपि तव वर्णयितुं स्वरूप-
मस्मादृशाः कथमधीश भवन्त्यधीशाः ।
धृष्टोऽपि कौशिक-शिशुर्यदि वा दिवान्धो,
रूपं प्ररूपयति किं किल घर्म-रश्मेः?॥३॥

अन्वयार्थ—(अधीश!) हे स्वामिन्! **(सामान्यतः अपि)** साधारण रीति से भी **(तव)** आपके **(स्वरूपं)** स्वरूप को **(वर्णयितुं)** वर्णन करने के लिए **(अस्मादृशाः)** मुझ जैसे मनुष्य **(कथम्)** कैसे **(अधीशा)** समर्थ

(भवन्ति) हो सकते हैं? अर्थात् नहीं हो सकते हैं **(यदि वा)** अथवा **(दिवान्धः)** दिन में अन्धा रहने वाला **(कौशिकशिशुः)** उल्लू का बच्चा **(धृष्टः अपि 'सन्')** धीठ होता हुआ भी **(किम्)** क्या **(घर्मरश्मेः)** सूर्य के **(रूपम्)** रूप की **(प्ररूपयति किल)** वर्णन कर सकता है? अर्थात् नहीं कर सकता।

मोह - क्षयादनुभवन् - नपि नाथ! मर्त्यो,
नूनं गुणान् गणयितुं न तव क्षमेत।
कल्पान्त-वान्त-पयसः प्रकटोऽपि यस्मान्,
मीयेत केन जलधेर्ननु रत्नराशिः॥४॥

अन्वयार्थ—(नाथ!) हे नाथ! **(मर्त्यः)** मनुष्य **(मोहक्षयात्)** मोहनीयकर्म के क्षय से **(अनुभवन् अपि)** अनुभव करता हुआ भी **(तव)** आपके **(गुणान्)** गुणों को **(गणयितुम्)** गिनने के लिए **(नूनम्)** निश्चय करके **(न क्षमेत)** समर्थ नहीं हो सकता **(यस्मात्)** क्योंकि **(कल्पान्त-वान्तपयसः)** प्रलयकाल के समय जिसका पानी बाहर हो गया है ऐसे **(जलधेः)** समुद्र की **(प्रकटः अपि)** प्रकट हुई भी **(रत्नराशिः)** रत्नों की राशि **(ननु केन मीयेत)** किसके द्वारा गिनी जा सकती है? अर्थात् किसी के द्वारा नहीं।

अभ्युद्यतोऽस्मि तव नाथ ! जडा-शयोऽपि,
कर्तुं स्तवं लसदसंख्य - गुणाकरस्य।
बालोऽपि किं न निजबाहुयुगं वितत्य,
विस्तीर्णतां कथयति स्वधियाम्बुराशेः॥५॥

अन्वयार्थ—(नाथ) हे नाथ! **('अहम्' जडाशयः अपि)** मैं मूर्ख भी **(लस-दसंख्यगुणाकरस्य)** सुशोभित असंख्यात गुणों की खानि स्वरूप **(तव)** आपके **(स्तवम् कर्तुम्)** स्तवन करने के लिए **(अभ्युद्यतः अस्मि)** तैयार हुआ हूँ, क्योंकि **(बालः अपि)** बालक भी **(स्वधिया)** अपनी बुद्धि के अनुसार **(निजबाहुयुगम्)** अपने दोनों हाथों को **(वितत्य)** फैलाकर **(किम्)** क्या **(अम्बुराशेः)** समुद्र के **(विस्तीर्णताम्)** विस्तार को **(न कथयति)** नहीं कहता? अर्थात् कहता है।

ये योगिना-मपि न यान्ति, गुणास्तवेश!,
वक्तुं कथं भवति तेषु ममावकाशः?।
जाता तदेव-मसमीक्षित - कारितेयं,
जल्पन्ति वा निज-गिरा ननु पक्षिणोऽपि ॥६॥

अन्वयार्थ—(ईश!) हे भगवन्! **(तव)** आपके **(ये गुणाः)** जो गुण **(योगिनाम् अपि)** योगियों को भी **(वक्तुम्)** कहने के लिए **(न यान्ति)** नहीं प्राप्त होते अर्थात् जिनका कथन योगीजन भी नहीं कर सकते **(तेषु)** उनमें **(मम)** मेरा **(अवकाशः)** अवकाश **(कथम् भवति)** कैसे हो सकता है? अर्थात् मैं उन्हें कैसे वर्णन कर सकता हूँ? **(तत्)** इसलिए **(एवम् इयम्)** इस प्रकार मेरा यह **(असमीक्षितकारिता जाता)** बिना विचारे काम करता हुआ **(वा)** अथवा **(पक्षिणः अपि)** पक्षी भी **(निजगिरा)** अपनी वाणी से **(जल्पन्ति ननु)** बोला करते हैं।

आस्ता-मचिन्त्य-महिमा जिन ! संस्तवस्ते,
नामापि पाति भवतो भवतो जगन्ति।
तीव्रातपोपहत - पान्थजनान् निदाघे-
प्रीणाति पद्मसरसः सरसोऽनिलोऽपि ॥७॥

अन्वयार्थ—(जिन!) हे जिनेन्द्र! **(अचिन्त्यमहिमा)** अचिन्त्य है महिमा जिसकी, ऐसा **(ते)** आपका **(संस्तवः)** स्तवन **(आस्ताम्)** दूर रहे, **(भवतः)** आपका **(नाम अपि)** नाम भी **(जगन्ति)** जीवों को **(भवतः)** संसार से **(पाति)** बचा लेता है, क्योंकि **(निदाघे)** ग्रीष्मकाल में **(तीव्रातपोपहत-पान्थजनान्)** तीव्र घाम से सताये हुए पथिकजनों को **(पद्मसरसः)** कमलों के सरोवर का **(सरसः)** शीतल **(अनिलः अपि)** पवन भी **(प्रीणाति)** संतुष्ट करता है।

हृद्-वर्तिनि त्वयि विभो! शिथिली-भवन्ति,
जन्तोः क्षणेन निबिडा अपि कर्मबन्धाः।
सद्यो भुजङ्गम-मया इव मध्यभाग-,
मभ्यागते वन-शिखण्डिनि चन्दनस्य ॥८॥

अन्वयार्थ—(विभो!) हे स्वामिन्! **(त्वयि)** आपके **(हृद्वर्तिनि 'सति')** हृदय में मौजूद रहते हुए **(जन्तोः)** जीवों के **(निबिडाः कर्मबन्धाः अपि)**

सघन कर्मों के बन्धन भी **(क्षणेन)** क्षणभर में **(वनशिखण्डिनि अभ्यागते)** वन मयूर के आने पर **(चन्दनस्य मध्यभागम् 'सति')** चन्दन-वृक्ष के मध्यभाग में **(भुजङ्गम-मयाः इव)** सर्पों के बंधनरूप कुण्डलियों के समान **(सद्यः)** शीघ्र ही **(शिथिलीभवन्ति)** ढीले पड़ जाते हैं।

मुच्यन्त एव मनुजाः सहसा जिनेन्द्र!
रौद्रैरुपद्रव - शतैस्त्वयि वीक्षितेऽपि।
गो-स्वामिनि स्फुरित - तेजसि दृष्टमात्रैः,
चौरै-रिवाशु पशवः प्रपलायमानैः॥९॥

अन्वयार्थ—(जिनेन्द्र!) हे जिनेन्द्र! **(स्फुरिततेजसि)** पराक्रमी **(गोस्वामिनि दृष्टमात्रे)** राजा के दिखते ही **(आशु)** शीघ्र ही **(प्रपलाय-मानैः)** भागते हुए **(चौरैः)** चोरों के द्वारा **(पशवः इव)** पशुओं की तरह **(त्वयि वीक्षिते अपि)** आपके दिखते ही/आपके दर्शन करते ही **(मनुजाः)** मनुष्य **(रौद्रैः)** भयङ्कर **(उपद्रवशतैः)** सैकड़ों उपद्रवों के द्वारा **(सहसा एव)** शीघ्र ही **(मुच्यन्ते)** छोड़ दिये जाते हैं।

त्वं तारको जिन! कथं भविनां त एव,
त्वामुद् - वहन्ति हृदयेन यदुत्तरन्तः।
यद्वा दृतिस्तरति यज्जल-मेष नून-,
मन्तर्गतस्य मरुतः स किलानुभावः॥१०॥

अन्वयार्थ—(जिन) हे जिनेन्द्रदेव! **(त्वम्)** आप **(भविनाम्)** संसारी जीवों के **(तारकः कथम्)** तारने वाले कैसे हो सकते हैं ? **(यत्)** क्योंकि **(उत्तरन्तः)** संसार-समुद्र से पार होते हुए **(ते एव)** वे संसारी जीव ही **(हृदयेन)** हृदय से **(त्वाम्)** आपको **(उद्वहन्ति)** तिरा ले जाते हैं। **(यद्वा)** अथवा ठीक ही है **(दृतिः)** मसक **(यत्)** जो **(जलम् तरति)** जल में तैरती है **(सः एषः)** वह यह **(नूनम्)** निश्चय से **(अन्तर्गतस्य)** भीतर स्थित **(मरुतः)** हवा का **(किल अनुभावः)** निश्चित ही प्रभाव है।

यस्मिन् हर - प्रभृतयोऽपि हत-प्रभावाः,
सोऽपि त्वया रतिपतिः क्षपितः क्षणेन।

विध्यापिता हुतभुजः पयसाथ येन,
पीतं न किं तदपि दुर्धर-वाडवेन ॥११॥

अन्वयार्थ–(यस्मिन्) जिसके विषय में **(हरप्रभृतयः अपि)** विष्णु-महादेव आदि भी **(हतप्रभावाः 'जाताः')** प्रभाव रहित हो गए हैं **(सः)** वह **(रतिपतिः अपि)** कामदेव भी **(त्वया)** आपके द्वारा **(क्षणेन)** क्षणमात्र में **(क्षपितः)** नष्ट कर दिया गया **(अथ)** अथवा ठीक है कि **(येन पयसा)** जिस जल के द्वारा **(हुतभुजः विध्यापिताः)** अग्नि बुझायी जाती है **(तत् अपि)** वह जल भी **(दुर्द्धरवाडवेन)** प्रचण्ड बड़वानल से **(किम्)** क्या **(न पीतम्)** नहीं पिया गया? अर्थात् पिया गया।

स्वामिन्! - ननल्प - गरिमाणमपि प्रपन्नाः,
त्वां जन्तवः कथमहो हृदये दधानाः।
जन्मोदधिं लघु तरन्त्यति - लाघवेन,
चिन्त्यो न हन्त महतां यदि वा प्रभावः॥१२॥

अन्वयार्थ–(स्वामिन्!) हे प्रभो! **(अहो)** आश्चर्य है कि **(अनल्प-गरिमाणम् अपि)** अधिक गौरव से युक्त भी विरोध पक्ष में–अत्यन्त वजनदार **(त्वाम्)** आपको **(प्रपन्नाः)** प्राप्त हो **(हृदये दधानाः)** हृदय में धारण करने वाले **(जन्तवः)** प्राणी **(जन्मोदधिम्)** संसार-समुद्र को **(अतिलाघवेन)** बहुत ही लघुता से **(कथम्)** कैसे **(लघु तरन्ति)** शीघ्र तर जाते हैं **(यदि वा)** अथवा **(हन्त)** हर्ष है कि **(महताम्)** महापुरुषों का **(प्रभावः)** प्रभाव **(चिन्त्यः)** चिन्तन के योग्य **(न भवति)** नहीं होता है।

क्रोधस्त्वया यदि विभो! प्रथमं निरस्तो,
ध्वस्तास्तदा वद कथं किल कर्मचौराः।
प्लोषत्यमुत्र यदि वा शिशिरापि लोके,
नीलद्रुमाणि विपिनानि न किं हिमानी॥१३॥

अन्वयार्थ–(विभो) हे प्रभो! **(यदि)** यदि **(त्वया)** आपके द्वारा **(क्रोधः)** क्रोध **(प्रथमम्)** पहले ही **(निरस्तः)** नष्ट कर दिया गया था, **(तदा)** तो फिर **(वद)** कहिए कि आपने **(कर्मचौराः)** कर्मरूपी चोर **(कथम्)** कैसे **(ध्वस्ताः किल)** नष्ट किए? **(यदि वा)** अथवा **(अमुत्र लोके)** इसलोक में **(हिमानी)** बर्फ-तुषार **(शिशिरापि)** ठण्डा होने पर भी **(किम्)** क्या

(नीलद्रुमाणि) हरे-हरे हैं वृक्ष जिनमें ऐसे **(विपिनानि)** वनों को **(न प्लोषति)** नहीं जला देता है? अर्थात् जला देता है/मुरझा देता है।

त्वां योगिनो जिन! सदा परमात्मरूप,
मन्वेषयन्ति हृदयाम्बुज - कोशदेशे॥
पूतस्य निर्मल-रुचेर्यदि वा किमन्य,
दक्षस्य सम्भव-पदं ननु कर्णिकायाः॥१४॥

अन्वयार्थ—(जिन!) हे जिन! **(योगिनः)** ध्यान करने वाले मुनीश्वर **(सदा)** हमेशा **(परमात्मरूपम्)** परमात्म-स्वरूप **(त्वाम्)** आपको **(हृदयाम्बुज-कोशदेशे)** अपने हृदयरूप कमल के मध्यभाग में **(अन्वेषयन्ति)** खोजते हैं **(यदि वा)** अथवा ठीक है कि **(पूतस्य निर्मलरुचेः)** पवित्र और निर्मल कान्ति वाले **(अक्षस्य)** कमल के बीज का अथवा शुद्धात्मा का **(सम्भवपदम्)** उत्पत्ति स्थान अथवा खोज करने का स्थान **(कर्णिकायाः अन्यत्)** कमल की कर्णिका/डण्ठल को छोड़कर अथवा हृदय-कमल की कर्णिका को छोड़कर **(अन्यत् किम् ननु)** दूसरा क्या हो सकता है?

ध्यानाज्जिनेश! भवतो भविनः क्षणेन,
देहं विहाय परमात्म-दशां व्रजन्ति॥
तीव्रानलादुपल-भावमपास्य लोके,
चामीकरत्वमचिरादिव धातु-भेदाः॥१५॥

अन्वयार्थ—(जिनेश!) हे जिनेश! **(लोके)** लोक में **(इव)** जैसे **(तीव्रानलात्)** तीव्र अग्नि के सम्बन्ध से **(धातुभेदाः)** अनेक धातुएँ **(उपलभावम्)** पत्थररूप पूर्वपर्याय को **(अपास्य)** छोड़कर **(अचिरात्)** शीघ्र ही **(चामीकरत्वम्)** सुवर्ण पर्याय को **(व्रजन्ति)** प्राप्त होती हैं उसी तरह **(भविनः)** संसार के प्राणी **(भवतः)** आपके **(ध्यानात्)** ध्यान से **(देहम्)** शरीर को **(विहाय)** छोड़कर **(क्षणेन)** क्षणभर में **(परमात्म-दशाम्)** परमात्मा की अवस्था को **(व्रजन्ति)** प्राप्त होते हैं।

अन्तः सदैव जिन! यस्य विभाव्यसे त्वम्,
भव्यैः कथं तदपि नाशयसे शरीरम्?।
एतत्स्वरूपमथ मध्य-विवर्तिनो हि,
यद्विग्रहं प्रशमयन्ति महानुभावाः॥१६॥

अन्वयार्थ–(जिन!) हे जिनेन्द्र! **(भव्यैः)** भव्यजीवों के द्वारा **(यस्य)** जिस शरीर के **(अन्तः)** भीतर **(त्वम्)** आप **(सदैव)** हमेशा **(विभाव्यसे)** ध्याये जाते हैं **(तत्)** उस **(शरीरम् अपि)** शरीर को ही आप **(कथम्)** क्यों **(नाशयसे)** नष्ट करा देते हैं? **(अथ)** अथवा **(एतत् स्वरूपम्)** यह स्वभाव ही है **(यत्)** कि **(मध्यविवर्तिनः)** मध्यस्थ-बीच में रहने वाले और राग-द्वेष से रहित **(महानुभावाः)** महापुरुष **(विग्रहम्)** विग्रह शरीर और द्वेष को **(प्रशमयन्ति)** शान्त करते हैं।

आत्मा मनीषिभि-रयं त्वदभेद-बुद्ध्या
ध्यातो जिनेन्द्र! भवतीह भवत्प्रभावः।
पानीय - मप्यमृत - मित्यनुचिन्त्यमानं,
किन्नाम नो विष-विकार-मपाकरोति॥१७॥

अन्वयार्थ–(जिनेन्द्र!) हे जिनेन्द्र! **(मनीषिभिः)** बुद्धिमानों के द्वारा **(त्वदभेद-बुद्ध्या)** ''आपसे अभिन्न है'' ऐसी बुद्धि से **(ध्यातः)** ध्यान किया गया **(अयम् आत्मा)** यह आत्मा **(भवत्प्रभावः)** आप ही के समान प्रभाव वाला **(भवति)** हो जाता है **(अमृतम् इति अनुचिन्त्यमानम्)** यह अमृत है, इस तरह निरन्तर चिन्तन किया जाने वाला **(पानीयम् अपि)** पानी भी **(किम्)** क्या **(विषविकारम्)** विष के विकार को **(नो अपाकरोति नाम)** दूर नहीं करता? अर्थात् करता है?

त्वामेव वीत - तमसं परवादिनोऽपि,
नूनं विभो! हरिहरादिधिया प्रपन्नाः।
किं काच-कामलिभिरीश! सितोऽपि शङ्खो,
नो गृह्यते विविध-वर्ण-विपर्ययेण॥१८॥

अन्वयार्थ–(विभो!) हे स्वामिन्! **(परवादिनः अपि)** अन्य मतावलम्बी पुरुष भी **(वीततमसम्)** अज्ञान अन्धकार से रहित **(त्वाम् एव)** आपको ही **(नूनम्)** निश्चय से **(हरिहरादिधिया)** विष्णु, महादेवादि की कल्पना से **(प्रपन्नाः)** प्राप्त होते हैं/पूजते हैं **(किम्)** क्या **(ईश!)** हे विभो! **(काच-कामलिभिः)** जिनकी आँख पर रंगदार चश्मा है अथवा जिन्हें पीलिया रोग हो गया है, ऐसे पुरुषों के द्वारा **(शङ्खः सितः अपि)** शंख सफेद होने पर भी **(विविधवर्ण-विपर्ययेण)** अनेक प्रकार के विपरीत वर्णों से **(नो गृह्यते)** ग्रहण नहीं किया जाता है? अर्थात् किया जाता है।

धर्मोपदेश - समये सविधानु - भावा-,
दास्तां जनो भवति ते तरुरप्यशोकः।
अभ्युद्गते दिनपतौ समहीरुहोऽपि।
किं वा विबोधमुपयाति न जीवलोकः॥१९॥

अन्वयार्थ—(धर्मोपदेशसमये) धर्मोपदेश के समय **(ते)** आपकी **(सविधानु -भावात्)** समीपता के प्रभाव से **(जनः आस्ताम्)** मनुष्य तो दूर रहे **(तरुः अपि)** वृक्ष भी **(अशोकः)** अशोक/शोक रहित **(भवति)** हो जाता है। **(वा)** अथवा **(दिनपतौ अभ्युद्गते 'सति')** सूर्य के उदय होने पर **(समहीरुहः अपि जीवलोकः)** वृक्षों सहित समस्त जीवलोक **(किम्)** क्या **(विबोधम्)** विकास/विशेष ज्ञान को **(न उपयाति)** नहीं प्राप्त होते अर्थात् होते हैं।

चित्रं विभो! कथमवाङ्मुख - वृन्तमेव।
विष्वक् पतत्य-विरला सुर-पुष्प-वृष्टिः॥
त्वद्गोचरे सुमनसां यदि वा मुनीश!
गच्छन्ति नूनमध एव हि बन्धनानि॥२०॥

अन्वयार्थ—(विभो!) हे स्वामिन्! **(चित्रम्)** आश्चर्य है कि **(विष्वक्)** सब ओर **(अविरला)** व्यवधान रहित **(सुरपुष्पवृष्टिः)** देवों के द्वारा की हुई पुष्पों की वर्षा **(अवाङ्मुखवृन्तम् एव)** नीचे डण्ठल और ऊपर को है पांखुरी जिसकी ऐसी ही **(कथम्)** क्यों **(पतति)** गिरती है? **(यदि वा)** अथवा ठीक ही है कि **(मुनीश!)** हे मुनियों के नाथ! **(त्वद्गोचरे)** आपके समीप **(सुमनसाम्)** पुष्पों अथवा विद्वानों के **(बन्धनानि)** डंठल अथवा कर्मों के बन्धन **(नूनम् हि)** निश्चय से **(अधः एव गच्छन्ति)** नीचे को ही जाते हैं।

स्थाने गभीर - हृदयोदधि - सम्भवायाः,
पीयूषतां तव गिरः समुदीरयन्ति।
पीत्वा यतः परम - सम्मद - सङ्ग - भाजो,
भव्या व्रजन्ति तरसाप्यजरा-मरत्वम्॥२१॥

अन्वयार्थ—(गभीरहृदयोदधिसम्भवायाः) गम्भीर हृदयरूपी समुद्र से पैदा हुई **(तव)** आपकी **(गिरः)** वाणी के **(पीयूषताम्)** अमृतपने को

लोग **(स्थाने)** ठीक ही **(समुदीरयन्ति)** प्रकट करते हैं **(यतः)** क्योंकि **(भव्याः)** भव्यजीव **(ताम् पीत्वा)** उसे पीकर **(परमसम्मदसङ्गभाजः 'सन्तः')** परमसुख के भागी होते हुए **(तरसा अपि)** बहुत ही शीघ्र **(अजरामरत्वम्)** अजर-अमरपने को **(व्रजन्ति)** प्राप्त होते हैं।

स्वामिन्! सुदूरमवनम्य समुत्पतन्तो,
मन्ये वदन्ति शुचयः सुरचामरौघाः।
येऽस्मै नतिं विदधते मुनिपुङ्गवाय,
ते नून मूर्ध्वगतयः खलु शुद्धभावाः॥२२॥

अन्वयार्थ–(स्वामिन्!) हे स्वामिन्! **(मन्ये)** मैं मानता हूँ कि **(सुदूरम्)** नीचे को बहुत दूर तक **(अवनम्य)** नम्रीभूत होकर **(समुत्पतन्तः)** ऊपर को आते हुए **(शुचयः)** पवित्र **(सुरचामरौघाः)** देवों के चँवर-समूह **(वदन्ति)** लोगों से कह रहे हैं कि **(ये)** जो **(अस्मै मुनिपुङ्गवाय)** इन श्रेष्ठ मुनीन्द्र को **(नतिम्)** नमस्कार **(विदधते)** करते हैं, **(ते)** वे **(नूनम्)** निश्चय से **(शुद्धभावाः)** विशुद्ध परिणाम वाले होकर **(ऊर्ध्वगतयः)** ऊर्ध्वगति वाले **(खलु भवन्ति)** सचमुच हो जाते हैं अर्थात् स्वर्ग/मोक्ष को प्राप्त होते हैं।

श्यामं गभीर - गिर - मुज्ज्वल - हेमरत्न-
सिंहासनस्थमिह भव्य - शिखण्डिनस्त्वाम्।
आलोकयन्ति रभसेन नदन्त - मुच्चैश्-,
चामीकराद्रि-शिरसीव नवाम्बुवाहम्॥२३॥

अन्वयार्थ–(इह) इसलोक में **(श्यामम्)** श्याम वर्ण **(गभीर-गिरम्)** गम्भीर दिव्यध्वनि युक्त और **(उज्ज्वलहेमरत्नसिंहासनस्थं)** उज्ज्वल स्वर्ण से निर्मित रत्नों से जड़ित सिंहासन पर स्थित **(त्वाम्)** आपको **(भव्य-शिखण्डिनः)** भव्यजीवरूपी मयूर **(चामीकराद्रिशिरसि)** सुवर्णमय मेरुपर्वत के शिखर पर **(उच्चैः नदन्तम्)** उच्च स्वर से गरजते हुए **(नवाम्बुवाहम् इव)** नूतन मेघ की तरह **(रभसेन)** अति उत्सुकता से **(आलोकयन्ति)** देखते हैं।

उद्गच्छता तव शिति - द्युति - मण्डलेन,
लुप्तच्छदच्छवि - रशोक - तरुर्बभूव।

सान्निध्यतोऽपि यदि वा तव वीतराग!,
नीरागतां व्रजति को न सचेतनोऽपि ॥२४॥

अन्वयार्थ–(उद्गच्छता) स्फुरायमान **(तव)** आपके **(शितिद्युति-मण्डलेन)** श्याम प्रभामण्डल के द्वारा **(अशोकतरुः)** अशोकवृक्ष **(लुप्तच्छदच्छविः)** कान्तिहीन पत्रों वाला **(बभूव)** हो गया **(यदि वा)** अथवा **(वीतराग!)** हे राग-द्वेष रहित देव! **(तव सान्निध्यतः अपि)** आपकी समीपता मात्र से ही **(कः सचेतनः अपि)** कौन पुरुष सचेतन भी **(नीरागताम्)** राग/ललाई से रहितपने अथवा अनुराग के अभाव को **(न व्रजति)** नहीं प्राप्त होता? अर्थात् प्राप्त होता है।

भो भोः प्रमाद-मवधूय भजध्वमेन-,
मागत्य निर्वृतिपुरीं प्रति सार्थवाहम्।
एतन् निवेदयति देव! जगत्त्रयाय,
मन्ये नदन्नभिनभः सुर दुन्दुभिस्ते॥२५॥

अन्वयार्थ–(देव!) हे देव! **(मन्ये)** मैं समझता हूँ कि **(अभिनभः)** आकाश में सब ओर **(नदन्)** शब्द करती हुई **(ते)** आपकी **(सुर दुन्दुभिः)** देवों के द्वारा बजाई गई दुन्दुभि **(जगत्त्रयाय)** तीन लोकों के जीवों को **(एतत् निवेदयति)** यह सूचित करती है कि **(भोः भोः)** रे प्राणियों! **(प्रमादम् अवधूय)** प्रमाद को छोड़कर **(निर्वृतिपुरीम् प्रति सार्थवाहम्)** मोक्षपुरी को जाने में अगुवा **(एनं)** इन पार्श्वनाथ भगवान् को **(आगत्य)** आकर **(भजध्वम्)** भजो/सेवा करो।

उद्योतितेषु भवता भुवनेषु नाथ!
तारान्वितो विधुरयं विहताधिकारः।
मुक्ता - कलाप - कलितोल्लसितातपत्र-,
व्याजात्त्रिधा धृततनुर्ध्रुवमभ्युपेतः॥२६॥

अन्वयार्थ–(नाथ!) हे नाथ! **(भवता भुवनेषु उद्योतितेषु 'सत्सु')** आपके द्वारा तीनों लोकों के प्रकाशित होने पर **(विहताधिकारः)** अपने अधिकार से भ्रष्ट तथा **(मुक्ताकलाप-कलितोल्लसितातपत्र-व्याजात्)** मोतियों के समूह से सहित अतएव शोभायमान सफेद छत्र के छल से **(तारान्वितः)** ताराओं से वेष्टित **(अयम् विधुः)** यह चन्द्रमा **(त्रिधा**

धृततनुः) तीन-तीन शरीर धारण कर **(ध्रुवम्)** निश्चय से **(त्वाम् अभ्युपेतः)** आपकी सेवाओं में प्राप्त हुआ है।

स्वेन प्रपूरित - जगत्त्रयपिण्डितेन,
कान्ति - प्रताप-यशसामिव सञ्चयेन।
माणिक्य हेम-रजत - प्रविनिर्मितेन,
सालत्रयेण भगवन्नभितो विभासि॥२७॥

अन्वयार्थ–(भगवन्) हे भगवन्! आप **(अभितः)** चहुँ ओर **(प्रपूरित-जगत्त्रय-पिण्डितेन)** भरे हुए तीनों जगत् के पिण्ड अवस्था को प्राप्त **(स्वेन कान्ति-प्रताप-यशसाम् सञ्चयेन इव)** अपने कान्ति, प्रताप और यश के समूह के समान **(माणिक्यहेमरजतप्रविनिर्मितेन)** माणिक्य, सुवर्ण और चाँदी से बने हुए **(सालत्रयेण)** तीनों कोटों से **(विभासि)** शोभायमान होते हैं।

दिव्यस्रजो जिन! नमत्त्रिदशाधि पाना-
मुत्सृज्य रत्नरचितानपि मौलिबन्धान्।
पादौ श्रयन्ति भवतो यदि वा परत्र,
त्वत्सङ्गमे सुमनसो न रमन्त एव॥२८॥

अन्वयार्थ–(जिन!) हे जिनेन्द्र! **(दिव्यस्रजः)** दिव्य पुष्पों की मालाएँ **(नमत् त्रिदशाधिपानाम्)** नमस्कार करते हुए इन्द्रों के **(रत्नरचितान् अपि मौलि-बन्धान्)** रत्नों से बने हुए मुकुटों के बंधनों को भी **(उत्सृज्य)** छोड़कर **(भवतः पादौ श्रयन्ति)** आपके चरणों का आश्रय लेती हैं **(यदि वा)** अथवा ठीक है कि **(त्वत्सङ्गमे 'सति')** आपका समागम होने पर **(सुमनसः)** पुष्प मालाएँ या उत्तम हृदय वाले मनुष्य **(परत्र)** किसी दूसरी जगह **(न एव रमन्ते)** नहीं रमण करते हैं।

त्वं नाथ! जन्मजलधेर्विपराङ्मुखोऽपि,
यत्तारयस्यसुमतो निजपृष्ठलग्नान्।
युक्तं हि पार्थिवनृपस्य सतस्तवैव,
चित्रं विभो! यदसि कर्मविपाकशून्यः॥२९॥

अन्वयार्थ–(नाथ!) हे नाथ! **(त्वम्)** आप **(जन्म-जलधेः)** संसाररूप समुद्र से **(विपराङ्मुखः अपि सन्)** पराङ्मुख होते हुए भी **(यत्)** जो

(निज-पृष्ठलग्नान्) अपने पीछे लगे हुए अनुयायी **(असुमतः)** जीवों को **(तारयसि)** तार देते हो **('तत्')** वह **(पार्थिवनृपस्य सतः)** राजाधिराज अथवा मिट्टी के पके हुए घड़े की तरह परिणमन करने वाले **(तव)** आपको **(युक्तम् एव)** उचित ही है, परन्तु **(विभो)** हे प्रभो! **(तत् चित्रम्)** वह आश्चर्य की बात है **(यत्)** जो आप **(कर्मविपाकशून्यः असि)** कर्मों के उदयरूप पाक क्रिया से रहित हो।

विश्वेश्वरोऽपि जनपालक! दुर्गतस्त्वम्,
किं वाक्षरप्रकृतिरप्यलिपिस्त्वमीश!।
अज्ञान - वत्यपि सदैव कथञ्चिदेव,
ज्ञानं त्वयि स्फुरति विश्वविकासहेतुः॥३०॥

अन्वयार्थ—(जनपालक!) हे जीवों के रक्षक! **(त्वम्)** आप **(विश्वेश्वरः अपि दुर्गतः)** तीन लोक के स्वामी होकर भी दरिद्र हैं, **(किं वा)** और **(अक्षर-प्रकृतिः अपि त्वम् अलिपिः)** अक्षरस्वभाव होकर भी लेखन क्रिया से रहित हैं **(ईश!)** हे स्वामिन्! **(कथञ्चित्)** किसी प्रकार से **(अज्ञान-वति अपि त्वयि)** अज्ञानवान् होने पर भी आपमें **(विश्व-विकासहेतुः ज्ञानम् सदा एव स्फुरति)** सब पदार्थों को प्रकाशित करने वाला ज्ञान हमेशा स्फुरायमान रहता है।

प्राग्भार-सम्भृत-नभांसि रजांसि रोषा-,
दुत्थापितानि कमठेन शठेन यानि।
छायापि तैस्तव न नाथ! हता हताशो,
ग्रस्तस्त्वमीभिरयमेव परं दुरात्मा ॥३१॥

अन्वयार्थ—(नाथ) हे स्वामिन्! **(शठेन कमठेन)** दुष्ट कमठ के द्वारा **(रोषात्)** क्रोध से **(प्राग्भार-सम्भृतनभांसि)** सम्पूर्णरूप से आकाश को व्याप्त करने वाली **(यानि)** जो **(रजांसि)** धूल **(उत्थापितानि)** आपके ऊपर उड़ाई गई थी **(तैः तु)** उससे तो **(तव)** आपकी **(छाया अपि)** छाया भी **(न हता)** नहीं नष्ट हुई थी **(परम्)** किन्तु **(अयमेव दुरात्मा)** यही दुष्ट **(हताशः)** हताश हो **(अमीभिः)** इन कर्मरूप रजों से **(ग्रस्तः)** जकड़ा गया था।

यद्गर्जदूर्जित - घनौघ - मदभ्रभीम्,
भ्रश्यत्तडिन्मुसल - मांसल - घोरधारम्॥
दैत्येन मुक्तमथ दुस्तरवारि दध्रे,
तेनैव तस्य जिन! दुस्तरवारिकृत्यम् ॥३२॥

अन्वयार्थ–(अथ) और **(जिन!)** हे जिनेश्वर! **(दैत्येन)** उस कमठ ने **(गर्जदूर्जितघनौघम्)** खूब गरज रहे हैं बलिष्ठ-मेघ-समूह जिसमें **(भ्रश्यत्-तडित्)** गिर रही है बिजली जिसमें और **(मुसलमांसल-घोर-धारम्)** मूसल के समान बड़ी मोटी है धारा जिसमें ऐसा तथा **(अदभ्रभीमम्)** अत्यन्त भयंकर **(यत्)** जो **(दुस्तर-वारि)** अथाह जल **(मुक्तम्)** वर्षाया था, **(तेन)** उस जलवृष्टि से **(तस्य एव)** उस कमठ ने ही अपने लिए **(दुस्तरवारिकृत्यम् दध्रे)** तीक्ष्ण तलवार के कार्य को धारण किया अर्थात् उससे वह कमठ स्वयं ही घायल हो गया।

ध्वस्तोर्ध्व-केश-विकृताकृति - मर्त्य-मुण्ड-
प्रालम्बभृद्भयद - वक्त्र - विनिर्यदग्निः।
प्रेतव्रजः प्रति भवन्तमपीरितो यः,
सोऽस्याभवत्प्रतिभवं भवदुःखहेतुः॥३३॥

अन्वयार्थ–(ध्वस्तोर्ध्वकेशविकृताकृतिमर्त्यमुण्ड-प्रालम्बभृद्) मुंडे हुए तथा विकृत आकृति वाले नर कपालों की माला को धारण करने वाला और **(भयद-वक्त्रविनिर्यदग्निः)** जिसके भयंकर मुख से अग्नि निकल रही है, ऐसा **(यः)** जो **(प्रेतव्रजः)** पिशाचों का समूह **(भवन्तम् प्रति)** आपके प्रति **(ईरितः)** प्रेरित किया गया था-दौड़ाया गया था **(सः)** वह **(अस्य)** उस असुर को **(प्रतिभवम्)** प्रत्येक भव में **(भव-दुःखहेतुः)** संसार के दुखों का कारण **(अभवत्)** हुआ था।

धन्यास्त एव भुवनाधिप! ये त्रिसन्ध्य-
माराधयन्ति विधिवद् विधुतान्य-कृत्याः।
भक्त्योल्लसत्पुलक - पक्ष्मल - देह - देशाः,
पादद्वयं तव विभो! भुवि जन्मभाजः॥३४॥

अन्वयार्थ–(भुवनाधिप!) हे त्रिलोकीनाथ! **(ये)** जो **(जन्म-भाजः)** प्राणी, **(विधुतान्यकृत्याः)** जिन्होंने अन्य काम छोड़ दिए हैं और **(भक्त्या)**

भक्ति से **(उल्लसत्-पुलक-पक्ष्मल-देहदेशाः 'सन्तः')** प्रकट हुए रोमाञ्च से जिनके शरीर का प्रत्येक अवयव व्याप्त है, ऐसे होते हुए **(विधिवत्)** विधिपूर्वक **(त्रिसन्ध्यम्)** तीनों कालों में **(तव)** आपके **(पादद्वयम् आराधयन्ति)** चरणयुगल की आराधना करते हैं **(विभो!)** हे स्वामिन्! **(भुवि)** संसार में **(ते एव)** वे ही **(धन्याः)** धन्य हैं।

अस्मिन्नपार - भव - वारि - निधौ मुनीश!,
मन्ये न मे श्रवण - गोचरतां गतोऽसि।
आकर्णिते तु तव गोत्र - पवित्र - मन्त्रे,
किं वा विपद्-विषधरी सविधं समेति॥३५॥

अन्वयार्थ–(मुनीश!) हे मुनीन्द्र! **(मन्ये)** मैं समझता हूँ कि **(अस्मिन् अपारभव-वारिनिधौ)** इस अपार संसाररूप समुद्र में कभी भी आप **(मे)** मेरे **(श्रवणगोचरतां न गतः असि)** कानों की विषयता को प्राप्त नहीं हुए हो क्योंकि **(तु)** निश्चय से **(तव गोत्रपवित्रमन्त्रे आकर्णिते 'सति')** आपके नामरूपी पवित्र मन्त्र के सुने जाने पर **(विपद्-विषधरी)** विपत्तिरूपी नागिन **(किम् वा)** क्या **(सविधम्)** समीप **(समेति)** आती है? अर्थात् नहीं।

जन्मान्तरेऽपि तव पादयुगं न देव!,
मन्ये मया महितमीहित - दान - दक्षम्।
तेनेह जन्मनि मुनीश! पराभवानां,
जातो निकेतनमहं मथिताशयानाम्॥३६॥

अन्वयार्थ–(देव!) हे देव! **(मन्ये)** मैं मानता हूँ कि मैंने **(जन्मान्तरे अपि)** दूसरे जन्म में भी **(ईहितदानदक्षम्)** मनोवांछित फल देने में समर्थ **(तव पादयुगम्)** आपके चरणयुगल **(न महितम्)** नहीं पूजे, **(तेन)** उसी से **(इह जन्मनि)** इस भव में **(मुनीश!)** हे मुनीश! **(अहम्)** मैं **(मथिताशयानाम्)** हृदयभेदी-मनोरथों को नष्ट करने वाले **(पराभवानाम्)** तिरस्कारों का **(निकेतनम्)** घर **(जातः)** हुआ हूँ।

नूनं न मोह - तिमिरावृतलोचनेन,
पूर्वं विभो! सकृदपि प्रविलोकितोऽसि।

मर्माविधो विधुरयन्ति हि मामनर्थाः,
प्रोद्यत्प्रबन्ध - गतयः कथमन्यथैते॥३७॥

अन्वयार्थ—(विभो) हे स्वामिन्! **(मोहतिमिरावृतलोचनेन)** मोहरूपी अन्धकार से आच्छादित हैं नेत्र जिसके ऐसे **(मया)** मेरे द्वारा आप **(पूर्वम्)** पहले कभी **(सकृद् अपि)** एक बार भी **(नूनम्)** निश्चय से **(प्रविलोकितः न असि)** अच्छी तरह अवलोकित नहीं हुए हो अर्थात् मैंने आपके दर्शन नहीं किए **(अन्यथा हि)** नहीं तो जो **(प्रोद्यत्प्रबन्धगतयः)** जिनमें कर्मबन्ध की गति बढ़ रही है ऐसे **(एते)** ये **(मर्माविधः)** मर्मभेदी **(अनर्थाः)** अनर्थ **(माम्)** मुझे **(कथम्)** क्यों **(विधुरयन्ति)** दुखी करते ?

आकर्णितोऽपि महितोऽपि निरीक्षतोऽपि,
नूनं न चेतसि मया विधृतोऽसि भक्त्या।
जातोऽस्मि तेन जनबान्धव! दुःखपात्रं,
यस्मात् क्रियाः प्रतिफलन्ति न भावशून्याः॥३८॥

अन्वयार्थ—अथवा **(जनबान्धव!)** हे जगत् बन्धु! **(मया)** मेरे द्वारा आप **(आकर्णितः अपि)** सुने हुए भी हैं **(महितः अपि)** पूजित भी हुए हैं और **(निरीक्षितः अपि)** अवलोकित भी हुए हैं अर्थात् मैंने आपका नाम भी सुना है, पूजा भी की है और दर्शन भी किए हैं, फिर भी **(नूनम्)** निश्चय है कि **(भक्त्या)** भक्तिपूर्वक **(चेतसि)** चित्त में **(न विधृतः असि)** धारण नहीं किए गए हो **(तेन)** उसी से मैं **(दुःखपात्रम् जातः अस्मि)** दुखों का पात्र हो रहा हूँ **(यस्मात्)** क्योंकि **(भावशून्याः)** भाव रहित **(क्रियाः)** क्रियाएँ **(न प्रतिफलन्ति)** सफल नहीं होतीं।

त्वं नाथ! दुःखि-जन-वत्सल! हे शरण्य!
कारुण्य-पुण्य-वसते! वशिनां वरेण्य!।
भक्त्या नते मयि महेश! दयां विधाय,
दुःखाङ्कुरोद्दलन-तत्परतां विधेहि ॥३९॥

अन्वयार्थ—(नाथ!) हे नाथ! **(दुःखिजनवत्सल!)** दुखियों पर प्रेम करने वाले! **(हे शरण्य!)** हे शरणागत प्रतिपालक! **(कारुण्य-पुण्यवसते!)** हे दया की पवित्र भूमि! **(वशिनाम् वरेण्य!)** हे जितेन्द्रियों में श्रेष्ठ! और **(महेश!)** हे महेश्वर! **(भक्त्या)** भक्ति में **(नते मयि)** नम्रीभूत मुझ पर

(दयाम् विधाय) दया करके **(दुःखाङ्कुरोद्दलन-तत्परताम्)** मेरे दुखांकुर के नाश करने में तत्परता/ तल्लीनता **(विधेहि)** कीजिए।

निःसंख्य - सार - शरणं शरणं शरण्य-,
मासाद्य सादित - रिपुः प्रथिता वदानम्!
त्वत्पाद - पङ्कजमपि प्रणिधान - वन्ध्यो,
वन्ध्योऽस्मि चेद्भुवन-पावन! हा हतोऽस्मि॥४०॥

अन्वयार्थ—(भुवनपावन!) हे संसार को पवित्र करने वाले भगवन्! **(निःसंख्य-सारशरणम्)** असंख्यात श्रेष्ठ पदार्थों के घर की **(शरणम्)** रक्षा करने वाले **(शरण्यम्)** शरणागत प्रतिपालक और **(सादितरिपु प्रथिता-वदानम्)** कर्म-शत्रुओं के नाश से प्रसिद्ध है पराक्रम जिनका ऐसे **(त्वत्पाद-पङ्कजम्)** आपके चरणकमलों को **(आसाद्य अपि)** पाकर भी **(प्रणिधान-वन्ध्यः)** उनके ध्यान से रहित हुआ मैं **(वन्ध्यः अस्मि)** अभागा-फलहीन हूँ और **(तत्)** उससे **(हा)** खेद है कि मैं **(हतः अस्मि)** नष्ट हुआ जा रहा हूँ/कर्म मुझे दुखी कर रहे हैं।

देवेन्द्रवन्द्य! विदिताखिल - वस्तुसार!
संसारतारक! विभो! भुवनाधिनाथ!।
त्रायस्व देव! करुणा-ह्रद! मां पुनीहि,
सीदन्त-मद्य भयद-व्यसनाम्बुराशेः॥४१॥

अन्वयार्थ—(देवेन्द्रवन्द्य!) हे इन्द्रों के वन्दनीय! **(विदिताखिल-वस्तुसार!)** हे सब पदार्थों के रहस्य को जानने वाले **(संसारतारक!)** संसार सागर से तारने वाले! **(विभो)** हे प्रभो! **(भुवनाधिनाथ!)** हे तीनों लोक के स्वामिन्! **(करुणाह्रद!)** हे दया के सरोवर! **(देव!)** देव! **(अद्य)** आज **(सीदन्तम्)** दुखी होते हुए **(माम्)** मुझको **(भयद-व्यसनाम्बुराशेः)** भयंकर दुखों के सागर से **(त्रायस्व)** बचाओ और **(पुनीहि)** पवित्र करो।

यद्यस्ति नाथ! भवदङ्घ्रि - सरोरुहाणां,
भक्तेः फलं किमपि सन्तत - सञ्चितायाः।
तन्मे त्वदेक-शरणस्य शरण्य! भूयाः,
स्वामी! त्वमेव भुवनेऽत्र भवान्तरेऽपि॥४२॥

अन्वयार्थ—(नाथ!) हे नाथ! **(त्वदेकशरणस्य)** केवल आप ही की है शरण जिसको ऐसे **(मे)** मुझे **(सन्ततसञ्चिताया:)** चिरकाल से एकत्रित हुई **(भवद् अङ्घ्रिसरोरुहाणाम्)** आपके चरण कमलों की **(भक्ते:)** भक्ति का **(यदि)** यदि **(किमपि फलम् अस्ति)** कुछ भी फल है **(तत्)** तो उससे **(शरण्य!)** हे शरणागत प्रतिपालक! **(त्वम् एव)** आप ही **(अत्र भुवने)** इहलोक में और **(भवान्तरे अपि)** परलोक में भी **(मे स्वामी)** मेरे स्वामी **(भूया:)** होवें।

इत्थं समाहित - धियो विधिवज्जिनेन्द्र !
सान्द्रोल्लसत्पुलक-कञ्चुकिताङ्ग - भागा:।
त्वद्बिम्ब - निर्मल-मुखाम्बुज - बद्धलक्ष्या:,
ये संस्तवं तव विभो! रचयन्ति भव्या:॥४३॥

अन्वयार्थ—(जिनेन्द्र!) हे जिनेन्द्र! **(ये भव्या:)** जो भव्यजन **(इत्थम्)** इस तरह **(समाहितधिय:)** सावधान बुद्धि से युक्त हो **(त्वद् बिम्बनिर्मल-मुखाम्बुजबद्धलक्ष्या:)** आपके निर्मल मुखकमल की ओर अपलक लक्ष्य करके **(सान्द्र-उल्लसत्पुलककञ्चुकिताङ्गभागा:)** सघन-रूप से उठे हुए रोमांचों से व्याप्त शरीर के अवयव जिनके ऐसे **(सन्त:)** होते हुए **(विधिवत्)** विधिपूर्वक **(तव)** आपका **(संस्तवम्)** स्तवन **(रचयन्ति)** रचते हैं।

जननयनकुमुदचन्द्र! प्रभास्वरा: स्वर्गसम्पदो भुक्त्वा।
ते विगलित-मल-निचया अचिरान् मोक्षं प्रपद्यन्ते॥४४॥

अन्वयार्थ—(ते) वे **(जननयनकुमुदचन्द्र!)** हे प्राणियों के नेत्ररूपी कुमुदों-कमलों को विकसित करने के लिए चन्द्रमा की तरह शोभायमान देव! **(प्रभास्वरा:)** देदीप्यमान **(स्वर्गसम्पद:)** स्वर्ग की विभूतियों को **(भुक्त्वा)** भोगकर **(विगलितमलनिचया: 'सन्त:')** कर्मरूपी मल-समूह से रहित हो **(अचिरात्)** शीघ्र ही **(मोक्षम् प्रपद्यन्ते)** मुक्ति को प्राप्त करते हैं।

❑ ❑ ❑

एकीभावस्तोत्रम्

एकीभावं गत इव मया यः स्वयं कर्मबन्धो
घोरं दुःखं भवभवगतो दुर्निवारः करोति।
तस्याप्यस्य त्वयि जिनरवे भक्तिरुन्मुक्तये चेत्
जेतुं शक्यो भवति न तया कोऽपरस्तापहेतुः॥१॥

अन्वयार्थ–(जिनरवे) हे जिनसूर्य! **(मया-सह)** मेरी आत्मा के साथ **(स्वयं)** अपने आप **(एकीभावं)** तन्मयता को **(गत इव)** प्राप्त हुए की तरह **(दुर्निवारः)** बड़ी कठिनाई से दूर करने योग्य **(यः)** जो **(कर्मबन्धः)** कर्मबंध **(भव-भवगतः 'सन्')** प्रत्येक पर्याय में साथ जाता हुआ **(घोरम्)** भयानक **(दुःखम्)** दुख को **(करोति)** करता है। **(त्वयि)** आपके विषय में होने वाली **(भक्तिः)** भक्ति अनुराग विशेष **(चेत्)** यदि **(तस्य अपि अस्य उन्मुक्तये)** उस कर्मबन्ध और इस दुख के भी छुड़ाने–दूर करने के लिए है **(तर्हि)** तो फिर **(तया)** उस भक्ति के द्वारा **(अपरः)** दूसरा **(कः)** कौन **(तापहेतुः)** सन्ताप का कारण **(जेतुं शक्यः न भवति)** जीता नहीं जा सकता ? अर्थात् अवश्य जीता जा सकता है।

ज्योतीरूपं दुरितनिवहध्वान्तविध्वन्सहेतुं
त्वामेवाहुर्जिनवर! चिरं तत्त्व-विद्याभियुक्ताः।
चेतोवासे भवसि च मम स्फारमुद्भासमान-
स्तस्मिन्नंहः कथमिव तमो वस्तुतो वस्तुमीष्टे॥२॥

अन्वयार्थ–(हे जिनवर!) कर्म शत्रुओं को जीतने वालों में श्रेष्ठ हे जिनेन्द्र! जबकि **(तत्त्वविद्याभियुक्ताः)** तत्त्व विद्या को जानने वाले ऋषि गण **(चिरं)** बहुत समय से **(त्वाम् एव)** आपको ही **(दुरित-निवहध्वान्त-विध्वन्सहेतुम्)** पापसमूहरूपी अन्धकार के नाश करने में कारणभूत **(ज्योती-रूपम्)** तेजरूप ज्ञानस्वरूप **(आहुः)** कहते हैं **(च)** और आप **(मम)** मेरे **(चेतोवासे)** मनरूपी मन्दिर में **(स्फारं)** अत्यन्तरूप से निरन्तर **(उद्भासमानः)** प्रकाशमान **(भवसि)** हो रहे हो तब **(तस्मिन्)** उस मन मन्दिर में **(वस्तुतः)** निश्चय से **(अंहः तमः)** पापरूपी अन्धकार **(वस्तुं)** निवास करने के लिए–ठहरने के लिए **(कथं इव)** किस तरह **(ईष्टे)** समर्थ हो सकता है? अर्थात् नहीं हो सकता।

आनन्दाश्रु-स्नपितवदनं गद्गदं चाभिजल्पन्
यश्चायेत त्वयि दृढमनाः स्तोत्रमन्त्रैर्भवन्तम्।
तस्याभ्यस्तादपि च सुचिरं देहवल्मीकमध्यान्-
निष्कास्यन्ते विविध-विषमव्याधयः काद्रवेयाः॥३॥

अन्वयार्थ—हे जिनेन्द्र! **(आनन्दाश्रुस्नपितवदनं च गद्गदं)** आनन्दाश्रुओं– हर्षरूपी आँसुओं से मुख को प्रक्षालित करता हुआ और अव्यक्त ध्वनि से **(अभिजल्पन्)** स्तुति करता हुआ **(यः)** जो मनुष्य **(स्वयं)** आपमें **(दृढमनाः)** स्थिर चित्त होकर **(स्तोत्रमन्त्रैः)** स्तवनरूप मंत्रों से **(भवन्तम्)** आपको **(अयेत्)** पूजता है–स्तुति करता है। **(तस्य)** उसके **(सुचिरम्)** चिरकाल से **(अभ्यस्तात् अपि)** परिचित भी **(देहवल्मीकमध्यात्)** शरीररूपी वामी के मध्य से–बीच से **(विविध-विषमव्याधयः)** अनेकप्रकार के कठिन रोगरूपी **(काद्रवेयाः)** साँप **(निष्कास्यन्ते)** बाहर निकाल दिए जाते हैं।

प्रागेवेह त्रिदिवभवनादेष्यता भव्यपुण्यात्-
पृथ्वीचक्रं कनकमयतां देव! निन्येत्वयेदम्।
ध्यानद्वारं ममरुचिकरं स्वान्तगेहं प्रविष्टस्-
तत्किं चित्रं जिन! वपुरिदं यत्सुवर्णी-करोषि॥४॥

अन्वयार्थ—**(देव!)** हे भगवन्! **(भव्यपुण्यात्)** भव्य जीवों के पुण्य के द्वारा **(इह)** यहाँ पर **(त्रिदिवभवनात्)** स्वर्ग लोक से माता के गर्भ में **(एष्यता)** आने वाले **(त्वया)** आपके द्वारा **(प्राक्एव)** पहले ही जब **(इदम्)** यह **(पृथ्वीचक्रम्)** भूमण्डल पृथ्वी–मण्डल **(कनकमयतां)** सुवर्ण-मयता को **(निन्ये)** प्राप्त कराया गया था। तब **(जिन!)** हे जिनेन्द्र! **(ध्यानद्वारं)** ध्यानरूपी दरवाजे से युक्त **(मम)** मेरे **(रुचिकरम्)** सुन्दर **(स्वान्तगेहं)** मनरूप मन्दिर में **(प्रविष्टः)** प्रविष्ट हुए **(इदं वपुः)** कुष्ठरोग से पीड़ित मेरे इस शरीर को **(यत्)** जो **('त्वम्')** आप **(सुवर्णीकरोषि)** सुवर्णमय कर रहे हो **(तत्किंचित्रम्)** उसमें क्या आश्चर्य है? अर्थात् कुछ नहीं।

लोकस्यैकस्त्वमसि भगवन्! निर्निमित्तेन बन्धुस्-
त्वय्येवासौ सकलविषया शक्तिरप्रत्यनीका।

भक्तिस्फीतां चिरमधिवसन्मामिकां चित्तशय्यां
मय्युत्पन्नं कथमिव ततः क्लेशयूथं सहेथाः॥५॥

अन्वयार्थ–(भगवन्!) हे भगवन्! जब **(त्वम्)** आप **(लोकस्य)** संसार के प्राणियों के **(निर्निमित्तेन)** स्वार्थ रहित–बिना किसी प्रयोजन के **(एकः)** अद्वितीय **(बन्धुः असि)** बन्धु–हित करने वाले हो और **(असौ)** यह **(सकल-विषयाशक्तिः)** सब पदार्थों को विषय करने वाली शक्ति भी **(त्वयि)** आपमें ही **(अप्रत्यनीका)** बाधा रहित है। **(ततः)** तब **(भक्तिस्फीताम्)** भक्ति के द्वारा विस्तृत **(मामिकां)** मेरी **(चित्तशय्याम्)** मनरूपी पवित्र शय्या पर **(अधिवसन्)** निवास करने वाले आप **(मयि उत्पन्नम्)** मुझमें उत्पन्न हुए **(क्लेशयूथम्)** दुख समूह को **(कथं एव)** किस तरह **(सहेथाः)** सहन करोगे अर्थात् नहीं करोगे।

जन्माटव्यां कथमपि मया देव! दीर्घं भ्रमित्वा,
प्राप्तैवेयं तव नयकथा स्फारपीयूषवापी।
तस्या मध्ये हिमकर-हिमव्यूहशीतेनितान्तं,
निर्मग्नं मां न जहति कथं दुःख-दावोपतापाः॥६॥

अन्वयार्थ–(देव!) हे स्वामिन्! **(मया)** मेरे द्वारा **(जन्माटव्यां)** संसाररूपी अटवी में **(दीर्घं)** बहुत काल तक **(भ्रमित्वा)** घूमकर अथवा घूमने के बाद **(तव)** आपकी **(इयम्)** यह **(नयकथा)** स्याद्वादनय कथारूपी **(स्फार-पीयूषवापी)** बड़ी भारी अमृत रस से भरी हुई बावड़ी **(कथं अपि)** किसी तरह बड़े कष्ट से **(प्राप्ता एव)** प्राप्त ही कर ली गई है। फिर भी **(हिमकर-हिमव्यूहशीते)** चन्द्रमा और बर्फ के समूह से भी शीतल **(तस्याः)** उसके **(मध्ये)** बीच में **(नितान्तम्)** अत्यन्तरूप से **(निर्मग्नं)** डूबे हुए **(माम्)** मुझको **(दुःख-दावोपतापाः)** दुखरूपी दावानल के सन्ताप **(कथं न जहति)** क्यों नहीं छोड़ते हैं?

पादन्यासादपि च पुनतो यात्रया ते त्रिलोकीं,
हेमाभासो भवति सुरभिः श्रीनिवासश्च पद्मः।
सर्वाङ्गेण स्पृशति भगवंस्त्वय्यशेषं मनो मे,
श्रेयः किं तत्स्वयमहरहर्यन्नमामभ्युपैति॥७॥

अन्वयार्थ–हे जिनेन्द्र! **(यात्रया)** विहार के द्वारा **(त्रिलोकीम्)** तीनों

लोकों को **(पुनतः)** पवित्र करने वाले **(ते)** आपके **(पादन्यासात् अपि)** चरणों के रखने मात्र से ही जब **(पद्म)** कमल **(हेमाभासः)** सुवर्ण-सी कान्ति वाला **(सुरभिः)** सुगन्धित **(च)** और **(श्रीनिवासः)** लक्ष्मी का गृह-शोभा का स्थान हो जाता है। तब **(हे भगवन्!)** हे स्वामिन्! **(त्वयि मे अशेषम् मनः सर्वाङ्गेण स्पृशति 'सति')** आप में मेरे समस्त मन को सर्व अंगों के द्वारा स्पर्श करने पर **(तत्)** वह **(किं श्रेयः?)** कौन-सा कल्याण है **(यत्)** जो **(माम्)** मुझे **(अहरहः)** प्रतिदिन **(स्वयं)** अपने आप **(न अभ्युपैति)** प्राप्त नहीं होता है।

पश्यन्तं त्वद्वचनममृतं भक्तिपात्र्या पिबन्तं,
कर्मारण्यात्-पुरुष-मसमानन्दधाम प्रविष्टम्।
त्वां दुर्वारस्मरमदहरं त्वत्प्रसादैक भूमिं-,
क्रूराकाराः कथमिव रुजाकण्टका निर्लुठन्ति॥८॥

अन्वयार्थ—हे नाथ! **(कर्मारण्यात्)** कर्मरूपी वन से **(असमानन्द-धाम-प्रविष्टम्)** अनुपम सुख के स्थान मोक्ष में प्रविष्ट हुए तथा **(दुर्वारस्मर-मदहरं)** दुर्जय कामदेव के मद को हरण करने वाले आपको **(पश्यन्तं)** देखने वाले और **(भक्तिपात्र्या)** भक्तिरूपी कटोरों से **(त्वद्वचनं अमृतं पिबन्तं)** आपके वचनरूपी अमृत को पीने वाले अतएव **(त्वत्प्रसादैकभूमिम्)** आपकी प्रसन्नता के स्थानभूत **(पुरुषं)** पुरुष को **(क्रूराकाराः)** भयंकर आकार वाले **(रुजाकण्टकाः)** रोगरूपी काँटें **(कथमिव?)** किस तरह **(निर्लुठन्ति)** सता सकते हैं—पीड़ा दे सकते हैं? अर्थात् नहीं दे सकते।

पाषाणात्मा तदितरसमः केवलं रत्नमूर्ति-
र्मानस्तम्भो भवति च परस्तादृशो रत्नवर्गः।
दृष्टि-प्राप्तो हरति स कथं मानरोगं नराणां,
प्रत्यासत्तिर्यदि न भवतस्तस्य तच्छक्तिहेतुः॥९॥

अन्वयार्थ—हे देव! **(पाषाणात्मा)** पत्थररूप **(मानस्तम्भः)** मानस्तम्भ **(तदितरसमः)** अन्य पत्थर के स्तम्भ समान ही है **(केवलम्)** सिर्फ **(रत्नमूर्तिः)** रत्नमयी है परन्तु **(परः रत्नवर्गः)** दूसरे रत्नों का समूह वैसा ही है—ऐसा होने पर **(यदि)** अगर **(तस्य)** उस मानस्तम्भ की **(तत्शक्ति-**

हेतुः) वैसी शक्ति में कारण-स्वरूप **(भवतः)** आपकी **(प्रत्यासत्तिः)** निकटता न होती तो **(सः)** वह मानस्तम्भ **(दृष्टिप्राप्तः)** देखने मात्र से ही **(नराणाम्)** मनुष्यों के **(मानरोगं)** मान-अहंकाररूपी रोग को **(कथं हरति?)** कैसे हर सकता है? अर्थात् नहीं हर सकता।

हृद्यः प्राप्तो मरुदपि भवन्मूर्तिशैलोपवाही,
सद्यः पुंसां निरवधिरुजा धूलिबन्धं धुनोति।
ध्यानाहूतो हृदयकमलं यस्य तु त्वं प्रविष्टस्-
तस्याशक्यः क इह भुवने देव! लोकोपकारः॥१०॥

अन्वयार्थ-(देव!) हे स्वामिन्! जब **(भवन्मूर्तिशैलोपवाही)** आपके शरीररूपी पर्वत के पास से बहने वाली **(हृद्यः)** मनोहर **(मरुत् अपि)** हवा भी **(प्राप्तः 'सन्')** प्राप्त होती हुई **(पुंसां)** पुरुषों के **(निरवधिरुजा-धूलिबन्धम्)** अपरिमित रोगरूपी धूली के संसर्ग को **(सद्यः)** शीघ्र ही **(धुनोति)** दूर कर देती है। **(तु)** तब **(ध्यानाहूतः)** ध्यान के द्वारा बुलाये गए **(त्वम्)** आप **(यस्य)** जिसके **(हृदयकमलं)** हृदयरूपी कमल में **(प्रविष्टः)** प्रविष्ट हुए हैं **(तस्य)** उस पुरुष को **(इहभुवने)** इस संसार में **(कः)** कौन-सा **(लोकोपकारः)** लोगों का उपकार **(अशक्यः)** अशक्य है-नहीं करने योग्य है। अर्थात् कोई भी नहीं।

जानासि त्वं मम भव-भवे यच्च यादृक्च दुःखं,
जातं यस्य स्मरणमपि मे शस्त्रवन्निष्पिनष्टि।
त्वं सर्वेशः सकृप इति च त्वामुपेतोऽस्मि भक्त्या,
यत्कर्तव्यं तदिह विषये देव एव प्रमाणम् ॥११॥

अन्वयार्थ-(देव!) हे भगवन्! **(मम)** मुझे **(भवभवे)** प्रत्येक पर्याय में **(यत् च यादृक् च)** जो और जैसा-जिस तरह का **(दुःखम्)** दुख-कष्ट **(जातम्)** प्राप्त हुआ है **(तत् त्वं जानासि)** उसको आप जानते ही हैं और **(यस्य)** जिसका **(स्मरणं अपि)** स्मरण भी **(मे)** मेरे लिए **(शस्त्रवत्)** शस्त्र के समान-तलवार आदि अस्त्र के घात समान **(निष्पिनष्टि)** दुख देता है और हे नाथ! **(त्वम्)** आप **(सर्वेशः)** सबके स्वामी **(च)** और **(सकृपः)** दया से युक्त हैं-दयालु हैं। **(इति)** इसलिए **(भक्त्या)** भक्तिपूर्वक **(त्वाम् उपेतः अस्मि)** आपके पास आया हूँ-आपकी शरण में प्राप्त हुआ

हूँ। अतः अब **(इह विषये)** इस विषय में **(यत् कर्तव्यं)** जो करना चाहिए उसमें **(देवः एव प्रमाणम्)** आप देव ही प्रमाण हैं अर्थात् जैसा आप चाहें वैसा करें।

प्रापद्वैवं तव नुतिपदैर्जीवकेनोपदिष्टैः,
पापाचारी मरणसमये सारमेयोऽपि सौख्यम्।
कः सन्देहो यदुपलभते वासवश्रीप्रभुत्वं,
जल्पन् जाप्यैर्मणिभिरमलैस्त्वन्नमस्कारचक्रम्॥१२॥

अन्वयार्थ—हे जिनेन्द्र! जबकि **(मरणसमये)** मृत्यु के समय में **(जीवकेन)** जीवन्धरकुमार के द्वारा **(उपदिष्टैः)** बताये गए **(तव नुतिपदैः)** आपके नमस्कार मंत्र के पदों से **(पापाचारी)** पापरूप प्रवृत्ति करने वाला **(सारमेयः अपि)** कुत्ता भी **(दैवं)** देव–स्वर्गलोक सम्बन्धी **(सौख्यम्)** सुख को **(प्रापत्)** प्राप्त हुआ था। तब **(अमलैः जाप्यैः मणिभिः)** निर्मल जपने योग्य माला की मणियों के द्वारा **(त्वन्नमस्कारचक्रम्)** आपके नमस्कारमंत्र के समूह को **(जल्पन्)** जपता हुआ **(यत्)** जो मनुष्य **(वासवश्रीप्रभुत्वम्)** इन्द्र की विभूति के अधिपतित्व को–स्वामीपने को **(लभते)** प्राप्त होता है। इस विषय में **(कः सन्देहः)** क्या सन्देह है ?

शुद्धे ज्ञाने शुचिनि चरिते सत्यपि त्वय्यनीचा,
भक्तिर्नो चेदनवधि-सुखावञ्चिका कुञ्चिकेयम्।
शक्योद्घाटं भवति हि कथं मुक्ति-कामस्य पुंसो-
मुक्तिद्वारं परिदृढ-महामोह-मुद्रा-कवाटम् ॥१३॥

अन्वयार्थ—हे नाथ **(शुद्धे ज्ञाने)** शुद्ध ज्ञान और **(शुचिनि चरिते)** निर्मल चारित्र के **(सतिअपि)** रहते हुए भी **(चेत्)** यदि **(त्वयि)** आपके विषय में होने वाली **(इयम्)** यह **(अनीचा भक्तिः)** उत्कृष्ट भक्तिरूपी **(अनवधि-सुखा-वञ्चिका)** असीम सुख प्राप्त कराने वाली **(कुञ्चिका)** कुञ्जी-चाबी **(नो चेत्)** नहीं होवे, तो **(हि)** सचमुच में **(मुक्तिकामस्य पुंसः)** मोक्ष के अभिलाषी पुरुष के **(परिदृढमहामोहमुद्राकवाटम्)** अत्यन्त मजबूत महामोहरूपी मुहरबन्द ताले से युक्त हैं किवाड़ जिसमें ऐसे **(मुक्तिद्वारम्)** मोक्ष के द्वार को **(कथम्?)** किस तरह **(शक्योद्घाटम्)** खोला जा सकता है? अर्थात् नहीं खोला जा सकता।

प्रच्छन्नः खल्वय-मघ-मयै-रन्धकारैः समन्तात्-
पन्था मुक्तेः स्थपुटित-पदः क्लेश-गर्तैरगाधैः।
तत्कस्तेन व्रजति सुखतो देव! तत्त्वावभासी,
यद्यग्रेऽग्रे न भवति भवद्-भारतीरत्न-दीपः॥१४॥

अन्वयार्थ—(देव!) हे स्वामिन्! **(खलु)** निश्चय से **(अयम्)** यह **(मुक्तेः पन्थाः)** मोक्ष का मार्ग **(अघमयैः अन्धकारैः)** पापरूपी अन्धकार के द्वारा **(समन्तात्)** सब ओर से **(प्रच्छन्नः)** ढका हुआ है और **(अगाधैः)** गहरे **(क्लेशगर्तेः)** दुखरूपी गड्ढों से **(स्थपुटितपदः)** ऊँचे-नीचे स्थान वाला **(यदि)** अगर **(तत्त्वावभासी)** सप्ततत्त्वों को प्रकाशित करने वाला **(भवद्भारती-रत्नदीपः)** आपकी दिव्यध्वनिरूपी रत्नों का दीपक **(अग्रे-अग्रे)** आगे-आगे **(न भवति)** न होता **(तत्)** तो **(तेन)** उस मार्ग से **(कः)** कौन मनुष्य **(सुखतः)** सुखपूर्वक **(व्रजति)** गमन कर सकता है? अर्थात् कोई नहीं।

आत्मज्योति - र्निधि - रनवधि - र्द्रष्टुरानन्दहेतुः
कर्मक्षोणीपटलपिहितो योऽनवाप्यः परेषाम्।
हस्ते कुर्वन्त्यनतिचिरतस्तं भवद्भक्तिभाजः
स्तोत्रैर्बन्ध प्रकृति-परुषोद्दाम-धात्री-खनित्रैः॥१५॥

अन्वयार्थ—हे जिनेन्द्र! **(आत्मज्योतिर्निधिः)** यह आत्मज्ञानरूप सम्पत्ति **(कर्मक्षोणीपटलपिहितः)** ज्ञानावरणादि अष्ट कर्मरूप पटलों से आच्छादित है—ढकी हुई है और **(यः द्रष्टुः आनन्दहेतुः)** जो ज्ञानी पुरुष को आनन्द का कारण है इसलिए **(परेषां अनवाप्यः)** मिथ्यादृष्टियों के द्वारा अप्राप्त है, उन्हें प्राप्त नहीं हो सकती, किन्तु **(भवद्भक्तिभाजः)** आपकी भक्ति करने वाले भव्य पुरुष **(तं)** उस आत्म ज्ञानरूप सम्पत्ति को **(बन्ध-प्रकृतिपरुषोद्दाम-धात्री खनित्रैः)** प्रकृति-स्थिति-अनुभाग और प्रदेशबन्धरूप अत्यन्त कठोर भूमि को खोदने के लिए कुदाली स्वरूप **(स्तोत्रैः)** आपके स्तवनों के द्वारा **(अनतिचिरतः)** शीघ्र ही **(हस्ते कुर्वन्ति)** अपने हाथ में कर लेते हैं—उसे प्राप्त कर लेते हैं।

प्रत्युत्पन्ना नय-हिमगिरेरायता चामृताब्धेः,
या देव त्वत्पद-कमलयोः सङ्गता भक्ति-गङ्गा।

चेतस्तस्यां मम रुचि-वशादाप्लुतं क्षालितांहः
कल्माषं यद् भवति किमियं देव! सन्देहभूमिः॥१६॥

अन्वयार्थ—(देव!) हे नाथ! **(नयहिमगिरेः)** स्याद्वाद नयरूप हिमालय पर्वत से **(प्रत्युत्पन्ना)** उत्पन्न हुई **(च)** और **(अमृताब्धेः)** मोक्षरूपी समुद्र तक **(आयता)** लम्बी **(या)** जो यह **(त्वत्पदकमलयोः)** आपके चरण कमल सम्बन्धी **(भक्तिगङ्गा)** भक्तिरूपी गंगानदी **(सङ्गता)** प्राप्त हुई है **(तस्यां)** उसमें **(रुचिवशात्)** प्रेम के वश **(आप्लुतम्)** डूबा हुआ **(मम)** मेरा **(चेतः)** मन **(यत्)** जो **(क्षालितांहः कल्माषं)** जिसकी पापरूपी कालिमा धुल गई है—ऐसा पापरूपी रज से रहित **(भवति)** हो जाता है। **(देव!)** हे नाथ! **(इयम्)** यह **(किम्)** क्या कोई **(सन्देहभूमिः)** सन्देह का स्थान है? अर्थात् नहीं है।

प्रादुर्भूत-स्थिर - पद -सुखं! त्वामनुध्यायतो मे
त्वय्येवाहं स इति मतिरुत्पद्यते निर्विकल्पा।
मिथ्यैवेयं तदपि तनुते तृप्ति-मभ्रेषरूपाम्
दोषात्मानोऽप्यभिमतफलास्त्वत्प्रसादाद् भवन्ति॥१७॥

अन्वयार्थ—(प्रादुर्भूतस्थिरपदसुख!) जिनके स्थायी सुख प्रकट हुआ है ऐसे (हे वीतरागदेव) **(त्वाम अनुध्यायतः मे)** आपका बार-बार ध्यान करने वाले मेरे हृदय में **(त्वयि)** आपमें अथवा आपके विषय में **(अहं सः एव)** जो आप हैं वही मैं हूँ **(इति)** ऐसी जो **(निर्विकल्पा)** विकल्प रहित **(मतिः)** बुद्धि **(उत्पद्यते)** उत्पन्न होती है यद्यपि **(इयम् मिथ्या एव)** यह बुद्धि असत्य ही है **(तदपि)** तो भी **(अभ्रेषरूपां तृप्तिं)** निश्चल अविनाशी सन्तोष सुख को **(तनुते)** विस्तृत करती है। सच है **(त्वत्प्रसादात्)** आपके प्रसाद से **(दोषात्मानः अपि)** सदोषी पुरुष भी **(अभिमतफलाः)** इच्छित फल को प्राप्त **(भवन्ति)** होते हैं।

मिथ्यावादं मल - मपनुदन् - सप्तभङ्गीतरङ्गैः-
वागम्भोधिर्भुवनमखिलं देव ! पर्येति यस्ते।
तस्यावृत्तिं सपदि विबुधाश्चेतसैवाचलेन,
व्यातन्वन्तः सुचिर-ममृता-सेवया तृप्नुवन्ति॥१८॥

अन्वयार्थ—(देव!) हे स्वामिन्! **(ते)** आपका **(यः)** जो **(वागम्भोधिः)**

दिव्यध्वनिरूपी समुद्र **(सप्तभङ्गीतरङ्गैः)** सप्तभंग रूप लहरों के द्वारा [स्यादस्ति, स्यान्नास्ति, स्यादस्तिनास्ति, स्यादवक्तव्य, स्यादस्ति अवक्तव्य, स्यान्नास्ति अवक्तव्य, स्यादस्तिनास्ति अवक्तव्य] **(मिथ्यावादं मलं)** सर्वथा एकान्त कदाग्रह मिथ्यात्वरूप मल को **(अपनुदन्)** हटाता हुआ **(अखिलं भुवनं)** समस्त संसार को **(पर्येति)** घेरे हुए हैं–समस्त संसार में व्याप्त है। **(विबुधाः)** देव अथवा बुद्धिमान **(चेतसा एव अचलेन)** मनरूपी मन्दारगिरि के द्वारा **(तस्य)** उस वचनरूप समुद्र का **(आवृत्तिम्)** मन्थन क्रिया अथवा बार-बार अभ्यास को **(व्यातन्वन्तः)** विस्तृत करते हुए **(सपदि)** शीघ्र ही **(अमृतासेवया)** अमृत के सेवन से–मोक्ष प्राप्ति से **(सुचिरं)** चिरकाल तक **(तृप्नुवन्ति)** संतुष्ट हो जाते हैं।

आहार्य्येभ्यः स्पृहयति परं यः स्वभावादहृद्यः,
शस्त्र-ग्राही भवति सततं वैरिणा यश्च शक्यः।
सर्वाङ्गेषु त्वमसि सुभगस्त्वं न शक्यः परेषां,
तत्किं भूषावसनकुसुमैः किञ्च शस्त्रैरुदस्त्रैः॥१९॥

अन्वयार्थ–हे भगवन्! **(यः)** जो **(स्वभावात्)** स्वभाव से **(अहृद्यः स्यात्)** अमनोज्ञ-कुरूप होता है **(स एव)** वह ही **(आहार्य्येभ्यः)** वस्त्राभूषणादि के द्वारा शरीर को अलंकृत करने की **(स्पृहयति)** इच्छा करता है। **(च)** और **(यः)** जो **(वैरिणा)** शत्रु के द्वारा **(शक्यः)** जीतने योग्य होता है, वही **(शस्त्रग्राही भवति)** शस्त्रों को ग्रहण करने वाला होता है-उसे ही त्रिशूल-गदा-भाला-बरछी-तलवार आदि शस्त्रों की आवश्यकता होती है, किन्तु हे भगवन्! **(त्वम्)** आप **(सर्वाङ्गेषु सुभगः असिः)** सर्वांग रूप से सुन्दर हो, और **(त्वं परेषां न शक्यः)** न आप शत्रुओं के द्वारा जीते जा सकने योग्य हो, **(तत्)** इस कारण **(तव)** आपको **(भूषावसनकुसुमैः)** आभूषण, वस्त्र तथा फूलों से **(च)** और **(उदस्त्रैः अस्त्रैः किं)** ऊपर उठाये हुए अस्त्र-शस्त्रों से क्या प्रयोजन है?

इन्द्रः सेवां तव सुकुरुतां किं तया श्लाघनं ते,
तस्यैवेयं भवलयकरी श्लाघ्यता-मातनोति।
त्वं निस्तारी जनन-जलधेः सिद्धिकान्तापतिस्त्वं,
त्वं लोकानां प्रभुरिति तव श्लाघ्यते स्तोत्रमित्थम्॥२०॥

अन्वयार्थ—हे जिनेन्द्र! **(इन्द्रः)** इन्द्र **(तव)** आपकी **(सेवाम्)** सेवा को **(सुकुरुताम्)** अच्छी तरह से करे, **(तया)** उसके द्वारा **(ते)** आपकी **(किं श्लाघनं)** क्या प्रशंसा है? **(इयम्)** यह सेवा तो **(तस्य एव)** उस इन्द्र की ही **(भवलयकरी)** संसार परिभ्रमण का नाश करने वाली **(श्लाघ्यताम्)** प्रशंसा को **(आतनोति)** विस्तृत करती है **(त्वं)** आप **(जननजलधेः)** संसार-समुद्र से **(निस्तारी)** तारने वाले हैं तथा **(त्वं)** आप **(सिद्धिकान्ता पतिः)** मुक्तिरूपी स्त्री के स्वामी हैं और **(त्वं)** आप **(लोकानां)** तीनों लोकों के **(प्रभुः)** निग्रह-अनुग्रह में समर्थ हैं, **(इत्थम्)** इस प्रकार **(इति)** यह **(तव)** आपका **(स्तोत्रम्)** स्तोत्र-स्तवन **(श्लाघ्यते)** प्रशंसनीय है।

वृत्तिर्वाचामपर - सदृशी न त्वमन्येन तुल्यः,
स्तुत्युद्गाराः कथमिव ततः त्वय्यमी नः क्रमन्ते।
मैवं भूवंस्तदपि भगवन्-भक्ति-पीयूष-पुष्टास्-
ते भव्यानामभिमत-फलाः पारिजाता भवन्ति॥२१॥

अन्वयार्थ—**(भगवन्!)** हे स्वामिन्! **(वाचां वृत्तिः)** आपके वचनों की प्रवृत्ति **(अपरसदृशी न)** दूसरे के समान नहीं है **(न त्वं अन्येना तुल्यः)** न आप भी अन्य के सदृश हैं **(ततः)** इसलिए **(नः)** हमारे **(अमी)** ये **(स्तुत्युद्गाराः)** स्तुति-वाक्य **(त्वयि)** आपके विषय में **(कथं इव)** किस तरह **(क्रमन्ते)** संगत हो सकते हैं—पहुँच सकते हैं **(तदपि)** तो भी **(भक्तिपीयूषपुष्टाः)** भक्तिरूपी अमृत से परिपुष्ट हुए **(ते)** वे स्तुति के वाक्य **(भव्यानाम्)** भव्यजीवों के लिए **(अभिमतफलाः)** इच्छित फल के देने वाले **(पारिजाताः)** कल्पवृक्ष **(भवन्ति)** होते हैं।

कोपावेशो न तव न तव क्वापि देव! प्रसादो,
व्याप्तं चेतस्तव हि परमोपेक्षयैवानपेक्षम्।
आज्ञावश्यं तदपि भुवनं सन्निधि-वैर-हारी,
क्वैवंभूतं भुवन-तिलक! प्राभवं त्वत्परेषु॥२२॥

अन्वयार्थ—**(देव!)** हे नाथ! **(तव)** आपका **(क्वापि)** किसी पर भी **(कोपा-वेशः)** क्रोधभाव **(न अस्ति)** नहीं है और **(न तव)** न आपकी **(क्वापि)** किसी पर **(प्रसादो)** प्रसन्नता है **(हि)** निश्चय से **(अनपेक्षम्)** स्वार्थरहित **(तव)** आपका **(चेतः)** मन **(परम उपेक्षया एव)** अत्यन्त

उदासीनता से ही **(व्याप्तम्)** व्याप्त है **(तदपि)** तो भी **(भुवनं)** संसार **(आज्ञावश्यं)** आपकी आज्ञा के आधीन है और आपकी **(सन्निधिः)** समीपता/निकटता **(वैरहारी)** परस्पर के वैर-विरोध को हरने वाली है और इस तरह **(भुवनतिलक!)** तीनों लोकों में श्रेष्ठ हे देव! **(एवम्भूतं)** ऐसा **(प्राभवं)** प्रभाव **(त्वत्)** आपसे **(परेषु)** भिन्न—दूसरे हरि-हरादिक देवों में **(क्व भवेत्?)** कहाँ हो सकता है? अर्थात् नहीं हो सकता।

देव! स्तोतुं त्रिदिवगणिका-मण्डलीगीत-कीर्तिं,
तोतूर्ति त्वां सकल-विषय-ज्ञान-मूर्तिं जनो यः।
तस्य क्षेमं न पदमटतो जातु जोहूर्ति पन्था-
स्तत्त्वग्रन्थ-स्मरण-विषये नैष मोमूर्ति मर्त्यः॥२३॥

अन्वयार्थ—(देव!) हे देव! **(त्रिदिवगणिका-मण्डलीगीत-कीर्तिं)** स्वर्ग की अप्सराओं के समूह द्वारा जिनकी कीर्ति गाई गई है, ऐसे तथा **(सकल-विषयज्ञानमूर्तिः)** समस्त पदार्थों को विषय करने वाले ज्ञान की मूर्ति स्वरूप **(त्वां)** आपकी **(स्तोतुं)** स्तुत करने के लिए **(यः जनः)** जो मनुष्य **(तोतूर्तिः)** शीघ्रता करता है वह **(क्षेमं पदं अटतः)** कल्याणकारी स्थान अर्थात् मोक्ष को जाते हुए **(तस्य)** उस मनुष्य का **(पन्थाः)** मार्ग **(जातु)** कभी भी **(न जोहूर्ति)** कुटिल नहीं होता और **(न एषः मर्त्यः)** न यह मनुष्य **(तत्त्वग्रन्थ-स्मरणविषये)** तत्त्व ग्रन्थों के स्मरण के विषय में **(मोमूर्ति)** मूर्च्छित होता है।

चित्ते कुर्वन् निरवधिसुखज्ञानदृग्वीर्यरूपं,
देव! त्वां यः समय - नियमादादरेण स्तवीति।
श्रेयोमार्गं स खलु सुकृति तावता पूरयित्वा,
कल्याणानां भवति विषयः पञ्चधापञ्चितानाम्॥२४॥

अन्वयार्थ—(देव!) हे जिनेन्द्र! **(यः)** जो मनुष्य **(निरवधि-सुख-ज्ञान-दृग्वीर्यरूपम्)** अनन्तसुख, अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन और अनन्तवीर्य स्वरूप **(त्वाम्)** आपको **(चित्ते कुर्वन्)** मन/हृदय में धारण करता हुआ **(समय-नियमात्)** समय के नियम से अर्थात् निश्चित समय तक **(आदरेण)** विनयपूर्वक **(स्तवीति)** आपकी स्तुति करता है। **(खलु)** निश्चय से **(सः)** वह **(सुकृति)** पुण्यवान् **(तावता)** उस स्तवन मात्र से

(श्रेयोमार्गं) मोक्षमार्ग को **(पूरयित्वा)** पूर्ण करके **(पञ्चधा पञ्चितानाम्)** पाँच प्रकार से विस्तृत **(कल्याणानाम्)** कल्याणकों का–पञ्चकल्याणकों का **(विषयः भवति)** पात्र होता है।

भक्ति-प्रह्वमहेन्द्र-पूजित-पद! त्वत्कीर्तने न क्षमाः-
सूक्ष्म-ज्ञान-दृशोऽपि संयमभृतः के हन्त मन्दा वयम्।
अस्माभिः स्तवनच्छलेन तु परस्त्वय्यादरस्तन्यते,
स्वात्माधीनसुखैषिणां स खलु नः कल्याण-कल्पद्रुमः॥२५॥

अन्वयार्थ–(भक्तिप्रह्वमहेन्द्रपूजितपद!) भक्ति से नम्रीभूत इन्द्रों के द्वारा जिनके चरण पूजित हुए हैं, ऐसे हे जिनेन्द्र! **(सूक्ष्मज्ञानदृशः)** सूक्ष्मज्ञान ही जिनके नेत्र हैं, ऐसे **(संयमभृतः अपि)** तपस्वी भी अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञानादि के धारक संयमी योगीश्वर भी **(त्वत्कीर्तिने)** आपके गुणगान में जब **(क्षमाः न 'सन्ति')** समर्थ नहीं हैं, तब **(हन्त)** खेद है कि **(वयं मन्दाः के)** हम जैसे मन्दबुद्धि पुरुष आपकी स्तुति करने में कैसे समर्थ हो सकते हैं? **(तु)** किन्तु **(स्तवनच्छलेन)** स्तवन के छल से **(अस्माभिः)** हमारे द्वारा **(त्वयि)** आपमें **(परः)** उत्कृष्ट **(आदरः)** सम्मान **(तन्यते)** विस्तृत किया जाता है। **(खलु)** निश्चय से **(सः)** वह सम्मान ही **(स्वात्माधीनसुखैषिणां)** निजात्मा के आश्रित सुख के चाहने वाले **(नः)** हम लोगों के लिए **(कल्याणकल्पद्रुमः)** कल्याण करने वाला कल्पवृक्ष होवे।

[१]**[वादिराजमनु शाब्दिक-लोको, वादिराजमनु तार्किकसिंहः।**
वादिराजमनु काव्यकृतस्ते वादिराजमनु भव्य-सहायः॥]

अन्वयार्थ–(शाब्दिकलोकः) वैयाकरण-व्याकरण शास्त्र के वेत्ता **(वादिराजम् अनु)** वादिराज से हीन हैं **(तार्किकसिंहः)** श्रेष्ठ नैयायिक **(वादिराजम् अनु)** वादिराज से हीन हैं, और **(ते काव्यकृतः)** प्रसिद्ध कवि लोग **(वादिराजम् अनु)** वादिराज से हीन हैं **(भव्यसहायः)** सज्जनगण भी **(वादिराजम् अनु)** वादिराज से हीन हैं।

---

१. इस श्लोक में आचार्य वादिराज की आत्म-प्रशंसा है। विदित होता है कि यह श्लोक आचार्य की विद्वत्ता पर मुग्ध हो, उनके भक्त ने रचकर स्तोत्र के नीचे लिख दिया है और वह बाद में मूल रूप में होकर स्तोत्र में शामिल कर लिया गया है।

विषापहारस्तोत्रम्

(उपजाति छन्द)

स्वात्मस्थितः सर्वगतः समस्तव्यापारवेदी विनिवृत्तसङ्गः।
प्रवृद्धकालोप्यजरो वरेण्यः पायादपायात्पुरुषः पुराणः॥१॥

अन्वयार्थ–(स्वात्मस्थितः अपि सर्वगतः) आत्मस्वरूप में स्थित होकर भी सर्वव्यापक, **(समस्तव्यापारवेदी अपि)** सब व्यापारों के जानकार होकर भी **(विनिवृत्तसङ्गः)** परिग्रह से रहित, **(प्रवृद्धकालः अपि अजरः)** दीर्घ आयु वाले होकर भी बुढ़ापे से रहित हैं ऐसे **(वरेण्यः)** श्रेष्ठ **(पुराणः पुरुषः)** प्राचीन पुरुष–भगवान् वृषभनाथ **[नः]** हम सबको **(अपायात्)** विनाश से **(पायात्)** बचावें–रक्षित करें।

परैरचिन्त्यं युगभारमेकः स्तोतुं वहन्योगिभिरप्यशक्यः।
स्तुत्योऽद्य मेऽसौ वृषभो न भानोः किमप्रवेशे विशति प्रदीपः॥२॥

अन्वयार्थ–(परैः) दूसरों के द्वारा **(अचिन्त्यम्)** चिन्तन करने के अयोग्य **(युगभारम्)** कर्मयुग के भार को **(एकः)** अकेले ही **(वहन्)** धारण किये हुए तथा **(योगिभिः अपि)** मुनियों के द्वारा भी **(स्तोतुम् अशक्यः)** जिनकी स्तुति नहीं की जा सकती है ऐसे **(असौ वृषभः)** वे भगवान् वृषभनाथ! **(अद्य)** आज **(मे स्तुत्यः)** मेरे द्वारा स्तुति करने के योग्य हैं अर्थात् आज मैं उनकी स्तुति कर रहा हूँ। सो ठीक है **(भानोः)** सूर्य का **(अप्रवेशे)** प्रवेश नहीं होने पर **(किम्)** क्या **(प्रदीपः)** दीपक **(न विशति)** प्रवेश नहीं करता? अर्थात् करता है।

तत्याज शक्रः शकनाभिमानं नाहं त्यजामि स्तवनानुबन्धम्।
स्वल्पेन बोधेन ततोऽधिकार्थं वातायनेनेव निरूपयामि॥३॥

अन्वयार्थ–(शक्रः) इन्द्र ने **(शकनाभिमानं)** स्तुति कर सकने की शक्ति का अभिमान **(तत्याज)** छोड़ दिया था, किन्तु **(अहम्)** मैं **(स्तवनानुबन्धं)** स्तुति के उद्योग को **(न त्यजामि)** नहीं छोड़ रहा हूँ। मैं **(वातायनेन इव)** झरोखे की तरह **(स्वल्पेन बोधेन)** थोड़े से ज्ञान के द्वारा **(ततः)** उस झरोखे और ज्ञान से **(अधिकार्थम्)** अधिक अर्थ को **(निरूपयामि)** निरूपित कर रहा हूँ।

त्वं विश्वदृश्वा सकलैरदृश्यो विद्वानशेषं निखिलैरवेद्यः।
वक्तुं कियान्कीदृश इत्यशक्यः स्तुतिस्ततोऽशक्तिकथा तवास्तु॥४॥

अन्वयार्थ–(त्वम्) आप **(विश्वदृश्वा 'अपि')** सबको देखने वाले होकर भी **(सकलैः)** सबके द्वारा **(अदृश्यः)** नहीं देखे जाते, आप **(अशेषम् विद्वान्)** सबको जानते हैं पर **(निखिलैः अवेद्यः)** सबके द्वारा नहीं जाने जाते। आप **(कियान् कीदृशः)** कितने और कैसे हैं **(इति)** यह भी **(वक्तुम् अशक्यः)** कहने को असमर्थ हैं **(ततः)** उससे **(तव स्तुतिः)** आपकी स्तुति **(अशक्ति-कथा)** मेरी असामर्थ्य की कहानी ही **(अस्तु)** हो।

व्यापीडितं बालमिवात्मदोषै- रुल्लाघतां लोकमवापिपस्त्वं।
हिताहितान्वेषणमान्द्यभाजः सर्वस्य जन्तोरसि बालवैद्यः॥५॥

अन्वयार्थ–(त्वम्) आपने **(बालम् इव)** बालक की तरह **(आत्मदोषैः)** अपने द्वारा किये गये अपराधों से **(व्यापीडितम्)** अत्यन्त पीड़ित **(लोकम्)** संसारी मनुष्यों को **(उल्लाघताम्)** नीरोगता **(अवापिपः)** प्राप्त कराई है। निश्चय से आप **(हिताहितान्वेषणमान्द्यभाजः)** भले-बुरे के विचार करने में मूर्खता को प्राप्त हुए **(सर्वस्य जन्तोः)** सब प्राणियों के **(बालवैद्यः)** बालवैद्य हैं।

दाता न हर्ता दिवसं विवस्वानद्यश्व इत्यच्युत! दर्शिताशः।
सव्याजमेवं गमयत्यशक्तः क्षणेन दत्सेऽभिमतं नताय॥६॥

अन्वयार्थ–(अच्युत!) अपने उदारता आदि गुणों से कभी च्युत न होने वाले हे अच्युत! **(विवस्वान्)** सूर्य **(न दाता 'न' हर्ता)** न देता है न अपहरण करता है सिर्फ **(अद्य श्वः)** आजकल **(इति)** इस तरह **(दर्शिताशः)** आशा [दूसरे पक्ष में दिशा को] दिखाता हुआ **(अशक्तः 'सन्')** असमर्थ होता हुआ **(एवम्)** ऐसे ही–बिना लिए दिये ही **(सव्याजम्)** कपट सहित **(दिवसम्)** दिन को **(गमयति)** बिता देता है, किन्तु आप **(नताय)** नम्र मनुष्य के लिए **(क्षणेन)** क्षणभर में **(अभिमतम्)** इच्छित वस्तु **(दत्से)** दे देते हैं।

उपैति भक्त्या सुमुखः सुखानि त्वयि स्वभावाद्विमुखश्च दुःखं।
सदावदातद्युतिरेकरूपस्तयोस्त्वमादर्श इवावभासि ॥७॥

अन्वयार्थ—(त्वयि सुमुखः) आपके अनुकूल चलने वाला पुरुष **(भक्त्या)** भक्ति से **(सुखानि)** सुखों को **(उपैति)** प्राप्त होता है **(च)** और **(विमुखः)** प्रतिकूल चलने वाला पुरुष **(स्वभावात्)** स्वभाव से ही **(दुःखम् 'उपैति')** दुख पाता है, किन्तु **(त्वम्)** आप **(तयोः)** उन दोनों के आगे **(आदर्श इव)** दर्पण की तरह **(सदा)** हमेशा **(अवदातद्युतिः)** उज्ज्वल कान्तियुक्त तथा **(एकरूपः)** एक सदृश **(अवभासि)** शोभायमान रहते हैं।

अगाधताब्धेः स यतः पयोधिर्मेरोश्च तुङ्गा प्रकृतिः स यत्र।
द्यावापृथिव्योः पृथुता तथैव व्यापत्वदीया भुवनान्तराणि॥८॥

अन्वयार्थ—(अब्धेः) समुद्र की **(अगाधता)** गहराई [**तत्र अस्ति**] वहाँ है **(यतः सः पयोधिः)** जहाँ वह समुद्र है। **(मेरोः)** सुमेरुपर्वत की **(तुङ्गा प्रकृतिः)** उन्नत प्रकृति—ऊँचाई **(तत्र)** वहाँ है **(यत्र सः)** जहाँ वह सुमेरु पर्वत है **(च)** और **(द्यावापृथिव्योः)** आकाश-पृथ्वी की **(पृथुता)** विशालता भी **(तथैव)** उसी प्रकार है अर्थात् जहाँ आकाश और पृथ्वी है, वहीं उनकी विशालता है परन्तु **(त्वदीया अगाधता)** आपकी गहराई **(तुङ्गा प्रकृतिः)** उन्नत प्रकृति **(च पृथुता)** और हृदय की विशालता ने **(भुवनान्तराणि)** तीनों लोकों के मध्यभाग को **(व्याप)** व्याप्त कर लिया है।

तवानवस्था परमार्थतत्त्वं त्वया न गीतः पुनरागमश्च।
दृष्टं विहाय त्वमदृष्टमैषीर्विरुद्धवृत्तोऽपि समञ्जसस्त्वं ॥९॥

अन्वयार्थ—(अनवस्था) भ्रमणशीलता—परिवर्तनशीलता **(तव)** आपका **(परमार्थतत्त्वम्)** वास्तविक सिद्धान्त है **(च)** और **(त्वया)** आपके द्वारा **(पुनरागमः न गीतः)** मोक्ष से वापस आने का उपदेश दिया नहीं गया है तथा **(त्वम्)** आप **(दृष्टम्)** प्रत्यक्ष इस लोक सम्बन्धी सुख **(विहाय)** छोड़कर **(अदृष्टम्)** परलोक सम्बन्धी सुख को **(ऐषीः)** चाहते हैं; इस तरह **(त्वम्)** आप **(विरुद्धवृत्तः अपि)** विपरीत प्रवृत्ति युक्त होने पर भी **(समञ्जसः)** उचितता से युक्त हैं।

स्मरः सुदग्धो भवतैव तस्मिन् उद्धूलितात्मा यदि नाम शम्भुः।
अशेत वृन्दोपहतोऽपि विष्णुः किं गृह्यते येन भवानजागः॥१०॥

अन्वयार्थ—(स्मरः) काम **(भवता एव)** आपके द्वारा ही **(सुदग्धः)**

अच्छी तरह भस्म किया गया है **(यदि नाम शम्भुः)** यदि आप कहें कि महादेव ने भी तो भस्म किया था तो वह कहना ठीक नहीं क्योंकि बाद में वह **(तस्मिन्)** उस काम के विषय में **(उद्धूलितात्मा)** कलंकित हो गया था और **(विष्णु अपि)** विष्णु ने भी **(वृन्दोपहतः 'सन्')** वृन्दा–लक्ष्मी नामक स्त्री से प्रेरित हो अथवा **वृन्द**–स्त्री पुत्रादि समस्त परिग्रह के समूह से पीड़ित हो। **(अशेत)** शयन किया था। **(येन)** जिस कारण से **(भवान् अजागः)** आप जागृत रहे अर्थात् कामनिद्रा में अचेत नहीं हुए। इसलिए **(किं गृह्यते)** कामदेव के द्वारा आपकी कौन-सी वस्तु ग्रहण की जाती है अर्थात् क्यों भी नहीं?

स नीरजाः स्यादपरोऽघवान्वा तद्दोषकीर्त्यैव न ते गुणित्वं।
स्वतोऽम्बुराशेर्महिमा न देव! स्तोकापवादेन जलाशयस्य॥११॥

अन्वयार्थ–(वा) अथवा **(स)** वह ब्रह्मादि देवों का समूह **(नीरजाः)** पाप रहित **(स्यात्)** हो और **(अपरः)** दूसरा देव **(अघवान् 'स्यात्')** पाप सहित हो, इस तरह **(तद्दोषकीर्त्या एव)** उनके दोषों के वर्णन करने मात्र से ही **(ते)** आपकी **(गुणित्वम् न)** गुण सहितता नहीं है। **(देव!)** हे देव! **(अम्बुराशेः)** समुद्र की **(महिमा)** विशालता **(स्वतः 'स्यात्')** स्वभाव से ही होती है **(जलाशयस्य स्तोकापवादने न)** तालाब के 'छोटा है' ऐसी निन्दा करने से नहीं होती।

कर्मस्थितिं जन्तुरनेक भूमिं नयत्यमुं सा च परस्परस्य।
त्वं नेतृभावं हि तयोर्भवाब्धौ जिनेन्द्र नौनाविकयोरिवाख्यः॥१२॥

अन्वयार्थ–(जन्तुः) जीव **(कर्मस्थितिम्)** कर्मों की स्थिति को **(अनेक भूमिम्)** अनेक जगह **(नयति)** ले जाता है **(च)** और **(सा)** वह कर्मों की स्थिति **(अमुम्)** उस जीव को **(अनेकभूमिम्)** अनेक जगह ले जाती है। इस तरह **(जिनेन्द्र!)** हे जिनेन्द्रदेव! **(त्वम्)** आपने **(भवाब्धौ)** संसाररूप समुद्र में **(नौनाविकयो इव)** नाव और नाविक की तरह **(तयोः)** उन दोनों में **(हि)** निश्चय से **(परस्परस्य)** एक-दूसरे का **(नेतृभावम्)** नेतृत्व **(आख्यः)** कहा है।

सुखाय दुःखानि गुणाय दोषान् धर्माय पापानि समाचरन्ति।
तैलाय बालाः सिकतासमूहं निपीडयन्ति स्फुटमत्वदीयाः॥१३॥

अन्वयार्थ—जिस प्रकार **(बालाः)** बालक **(तैलाय)** तेल के लिए **(सिकता-समूहम्)** बालू के समूह को **(निपीडयन्ति)** पेलते हैं **(स्फुटम्)** ठीक उसी प्रकार **(अत्वदीयाः)** आपके प्रतिकूल चलने वाले पुरुष **(सुखाय)** सुख के लिए **(दुःखानि)** दुखों को **(गुणाय)** गुण के लिए **(दोषान्)** दोषों को और **(धर्माय)** धर्म के लिए **(पापानि)** पापों को **(समाचरन्ति)** आचरित करते हैं।

विषापहारं मणिमौषधानि मन्त्रं समुद्दिश्य रसायनं च।
भ्राम्यन्त्यहो न त्वमिति स्मरन्ति पर्यायनामानि तवैव तानि॥१४॥

अन्वयार्थ—**(अहो)** आश्चर्य है कि लोग **(विषापहारम्)** विष को दूर करने वाले **(मणिम्)** मणि को **(औषधानि)** औषधियों को **(मन्त्रम्)** मन्त्र को **(च)** और **(रसायनम्)** रसायन को **(समुद्दिश्य)** उद्देश्य कर **(भ्राम्यन्ति)** यहाँ वहाँ घूमते हैं, किन्तु **(त्वम्)** आप ही मणि, औषधि, मन्त्र और रसायन हैं **(इति)** ऐसा **(न स्मरन्ति)** ख्याल नहीं करते, क्योंकि **(तानि)** वे मणि आदि **(तव एव)** आपके ही **(पर्यायनामानि)** पर्यायवाची नाम हैं।

चित्ते न किञ्चित्कृतवानसि त्वं देवः कृतश्चेतसि येन सर्वम्।
हस्ते कृतं तेन जगद्विचित्रं सुखेन जीवत्यपि चित्तबाह्यः॥१५॥

अन्वयार्थ—**(देवः)** हे देव! **(त्वम्)** आप **(चित्ते)** अपने हृदय में **(किञ्चित्)** कुछ भी **(न कृतवान् असि)** नहीं करते हैं—रखते हैं, किन्तु **(येन)** जिसके द्वारा आप **(चेतसि)** हृदय में **(कृतः)** धारण किए हैं **(तेन)** उसके द्वारा **(सर्वम्)** समस्त **(जगत्)** संसार **(हस्ते कृतम्)** हाथ में कर लिया गया है अर्थात् उसने सब कुछ पा लिया है यह **(विचित्रम्)** आश्चर्य की बात है और आप **(चित्तबाह्यः अपि)** मन से चिन्तन करने के अयोग्य होते हुए भी **(सुखेन जीवति)** अनन्त सुख से जीवित हैं, यह आश्चर्य है।

त्रिकालतत्त्वं त्वमवैस्त्रिलोकी स्वामीति संख्यानियतेरमीषाम्।
बोधाधिपत्यं प्रतिनाभविष्यत् तेऽन्येऽपि चेद्व्याप्स्यदमूनपीदम्॥१६॥

अन्वयार्थ—**(त्वम्)** आप **(त्रिकालतत्त्वम्)** तीनों कालों के पदार्थों को **(अवैः)** जानते हैं तथा **(त्रिलोकी स्वामी)** तीनों लोकों के स्वामी हैं, **(इति संख्या)** इस प्रकार की संख्या **(अमीषां नियतेः)** उन पदार्थों के

निश्चित संख्या वाले होने से **(युज्यते)** ठीक हो सकती है, परन्तु **(बोधाधिपत्यं प्रति न)** ज्ञान के साम्राज्य के प्रति पूर्वोक्त प्रकार की संख्या ठीक नहीं हो सकती, क्योंकि **(इदम्)** यह ज्ञान **(चेत्)** यदि **(ते अन्ये अपि अभविष्यन्)** वे तथा और भी पदार्थ होते **(तर्हि)** तो **(अमून् अपि)** उन्हें भी **(व्याप्स्यत्)** व्याप्त कर लेता–जान लेता।

नाकस्य पत्युः परिकर्म रम्यं नागम्यरूपस्य तवोपकारि।
तस्यैव हेतुः स्वसुखस्य भानोरुद्बिभ्रतश्छत्रमिवादरेण ॥१७॥

अन्वयार्थ–(नाकस्य पत्युः) स्वर्ग के पति इन्द्र की **(रम्यम्)** मनोहर **(परिकर्म)** सेवा **(अगम्यरूपस्य)** अज्ञेयस्वरूप वाले **(तव)** आपका **(उपकारि न)** उपकार करने वाली नहीं है, किन्तु जिसका स्वरूप ज्ञात है ऐसे **(भानोः)** सूर्य के लिए **(आदरेण)** आदरपूर्वक **(छत्रम् उद्बिभ्रतः इव)** छत्र को धारण करने वाले की तरह **(तस्य एव)** उस इन्द्र के ही **(स्वसुखस्य)** आत्मसुख का **(हेतुः)** कारण है।

क्वोपेक्षकस्त्वं क्व सुखोपदेशः स चेत्किमिच्छाप्रतिकूलवादः।
क्वासौ क्व वा सर्वजगत्प्रियत्वं तन्नो यथातथ्यमवेविचं ते॥१८॥

अन्वयार्थ–(उपेक्षकः त्वम् क्व) रागद्वेष रहित आप कहाँ? और **(सुखोपदेशः क्व)** सुख का उपदेश देना कहाँ? **(चेत्)** यदि **(सः)** वह सुख का उपदेश आप देते हैं **(तर्हि)** तो **(इच्छाप्रतिकूलवादः क्व)** इच्छा के विरुद्ध बोलना ही कहाँ है? अर्थात् आपके इच्छा नहीं है ऐसा कथन क्यों किया जाता है? **(असौ क्व)** इच्छा के प्रतिकूल बोलना कहाँ? **(वा)** और **(सर्वजगत्प्रियत्वम् क्व)** सब जीवों को प्रिय होना कहाँ? इस तरह जिस कारण से आपकी प्रत्येक बात में विरोध है **(तत्)** उस कारण से मैं **(ते यथातथ्यम् नो अवेविचं)** आपकी वास्तविकता–असली रूप का विवेचन नहीं कर सकता।

तुङ्गात्फलं यत्तदकिञ्चनाच्च प्राप्यं समृद्धान्न धनेश्वरादेः।
निरम्भसोऽप्युच्चतमादिवाद्रेर्नैकापि निर्याति धुनी पयोधेः॥१९॥

अन्वयार्थ–हे भगवन्! **(तुङ्गात् अकिञ्चनात् च)** उन्नत–उदार और अकिंचन–परिग्रह रहित आपसे **(यत्फलं)** जो फल **(प्राप्यं 'अस्ति')** प्राप्त हो सकता है **(तत्)** वह **(समृद्धात् धनेश्वरादेः न)** वह सम्पत्तिशाली

धनाढ्य कुबेर आदि से प्राप्त नहीं हो सकता। ठीक ही तो है **(इव)** जैसे **(निरम्भसः अपि उच्चतमात् अद्रेः)** पानी से शून्य होने पर भी अत्यन्त ऊँचे पहाड़ से नदी निकलती है किन्तु **(पयोधेः)** समुद्र से **(एका अपि धुनी)** एक भी नदी **(न निर्याति)** नहीं निकलती है।

त्रैलोक्यसेवानियमाय दण्डं दध्रे यदिन्द्रो विनयेन तस्य।
तत्प्रातिहार्यं भवतः कुतस्त्यं तत्कर्मयोगाद्यदि वा तवास्तु ॥२०॥

अन्वयार्थ–(यत्) जिस कारण से **(इन्द्रः)** इन्द्र ने **(विनयेन)** विनयपूर्वक **(त्रैलोक्यसेवानियमाय)** तीन लोक के जीवों की सेवा के नियम के लिए अर्थात् मैं त्रिलोक के जीवों की सेवा करूँगा और उन्हें धर्म के मार्ग पर लगाऊँगा, इस उद्देश्य से **(दण्डम्)** दण्ड **(दध्रे)** धारण किया था। **(तत्)** उस कारण से **(प्रातिहार्यम्)** प्रतीहारपना **(तस्य स्यात्)** उस इन्द्र के ही हो **(भवतः कुतस्त्यम्)** आपके कहाँ से आया? **(यदि वा)** अथवा **(तत्कर्म-योगात्)** तीर्थंकर नामकर्म का संयोग होने से या इन्द्र के उस कार्य में प्रेरक होने से **(तव अस्तु)** आपके भी प्रातिहार्य-प्रतिहारपना हो।

श्रिया परं पश्यति साधु निःस्वः श्रीमान्न कश्चित्कृपणं त्वदन्यः।
यथा प्रकाशस्थितमन्धकारस्थायीक्षतेऽसौ न तथा तमःस्थम्॥२१॥

अन्वयार्थ–(निःस्वः) निर्धन पुरुष **(श्रिया परम्)** लक्ष्मी से श्रेष्ठ अर्थात् सम्पन्न मनुष्य को **(साधु)** अच्छी तरह–आदरभाव से **(पश्यति)** देखता है, किन्तु **(त्वदन्यः)** आपसे भिन्न **(कश्चित्)** कोई **(श्रीमान्)** सम्पत्तिशाली पुरुष **(कृपणम्)** निर्धन को **(साधु न पश्यति)** अच्छे भावों से नहीं देखता। ठीक है **(अन्धकारस्थायी)** अन्धकार में ठहरा हुआ मनुष्य **(प्रकाशस्थितम्)** उजाले में ठहरे हुए पुरुष को **(यथा)** जिस प्रकार **(ईक्षते)** देख लेता है **(तथा)** उस प्रकार **(असौ)** यह उजाले में स्थित पुरुष **(तमःस्थम्)** अँधेरे में स्थित पुरुष को **(न ईक्षते)** नहीं देख पाता।

स्ववृद्धिनिःश्वासनिमेषभाजि प्रत्यक्षमात्मानुभवेऽपि मूढः।
किं चाखिलज्ञेयविवर्तिबोध-स्वरूपमध्यक्षमवैति लोकः॥२२॥

अन्वयार्थ–(प्रत्यक्षं) यह प्रकट है कि **[यः]** जो मनुष्य **(स्ववृद्धि-निःश्वास-निमेषभाजि)** अपनी वृद्धि, श्वासोच्छ्वास और आँखों की टिमकार को प्राप्त **(आत्मानुभवे अपि)** अपने आपके अनुभव करने में

(मूढः) मूर्ख है **(स लोकः)** वह मनुष्य **(अखिलज्ञेयविवर्तिबोधस्वरूपं)** सम्पूर्ण पदार्थों को जानने वाला ज्ञान ही है स्वरूप जिसका ऐसे **(अध्यक्षं)** अध्यात्मस्वरूप आपको **(किं च अवैति)** कैसे जान सकता है ?

तस्यात्मजस्तस्य पितेति देव! त्वां येऽवगायन्ति कुलं प्रकाश्य।
तेऽद्यापि नन्वाश्मनमित्यवश्यं पाणौ कृतं हेम पुनस्त्यजन्ति॥२३॥

अन्वयार्थ—(देव!) हे नाथ! **(ये)** जो मनुष्य, आप **(तस्य आत्मजः)** उसके पुत्र हो और **(तस्य पिता)** उसके पिता हो **(इति)** इस प्रकार **(कुलम् प्रकाश्य)** कुल का वर्णन कर **(त्वाम् अवगायन्ति)** आपका अपमान करते हैं **(ते)** वे **(अद्य अपि)** अब भी **(पाणौ कृतम्)** हाथ में आये हुए **(हेम)** सुवर्ण को **(आश्मनम्)** पत्थर से पैदा हुआ है, **(इति)** इस हेतु से **(पुनः)** फिर **(अवश्यं त्यजन्ति)** अवश्य ही छोड़ देते हैं ?

दत्तस्त्रिलोक्यां पटहोभिभूताः सुरासुरास्तस्य महान् स लाभः।
मोहस्य मोहस्त्वयि को विरोद्धुम् मूलस्य नाशो बलवद्विरोधः॥२४॥

अन्वयार्थ—मोह के द्वारा **(त्रिलोक्याम्)** तीनों लोकों में **(पटहः)** विजय का नगाड़ा **(दत्तः)** दिया गया/बजाया गया उससे जो **(सुरासुराः)** सुर और असुर **(अभिभूताः)** तिरस्कृत हुए **(सः)** वह **(तस्य)** उस मोह का **(महान् लाभः)** बड़ा लाभ हुआ किन्तु **(त्वयि)** आपके विषय में **(विरोद्धुम्)** विरोध करने के लिए **(मोहस्य)** मोह का **(कः)** कौन-सा **(मोहः)** भ्रम हो सकता था अर्थात् कोई नहीं, क्योंकि **(बलवद्विरोधः)** बलवान् के साथ विरोध करना **(मूलस्य नाशः)** मानो मूल का नाश करना है।

मार्गस्त्वयैको ददृशे विमुक्तेः चतुर्गतीनां गहनं परेण।
सर्वं मया दृष्टमिति स्मयेन त्वं मा कदाचित् भुजमालुलोकः॥२५॥

अन्वयार्थ—(त्वया) आपके द्वारा **(एकः)** एक **(विमुक्तेः)** मोक्ष का ही **(मार्गः)** मार्ग **(ददृशे)** देखा गया है और **(परेण)** दूसरों के द्वारा **(चतुर्गतीनाम्)** चारों गतियों का **(गहनम्)** सघन वन **(ददृशे)** देखा गया है, मानो इसीलिए **(त्वम्)** आपने **(मया सर्वं दृष्टम्)** मैंने सब कुछ देखा है **(इति स्मयेन)** इस अभिमान से **(कदाचित्)** कभी भी **(भुजम्)** अपनी भुजा को **(मा आलुलोके)** नहीं देखा था।

स्वर्भानुरर्कस्य हविर्भुजोऽम्भः कल्पान्तवातोऽम्बुनिधेर्विघातः।
संसारभोगस्य वियोगभावो विपक्षपूर्वाभ्युदयास्त्वदन्ये ॥२६॥

अन्वयार्थ—जैसे **(अर्कस्य)** सूर्य का **(स्वर्भानुः)** राहु, **(हविर्भुजः)** अग्नि का **(अम्भः)** पानी, **(अम्बुनिधेः)** समुद्र का **(कल्पान्तवातः)** प्रलयकालीन-वायु तथा **(संसारभोगस्य)** संसार के भोग का **(वियोगभावः)** विरहभाव, **(विघातः)** नाश करने वाले हैं, इस तरह **(त्वदन्ये)** आपसे भिन्न सब पदार्थ **(विपक्ष-पूर्वाभ्युदयाः 'सन्ति')** अपने विपक्ष रूप शत्रु युक्त अभ्युदय वाले हैं। अर्थात् विनाश के साथ ही उदय होते हैं।

अजानतस्त्वां नमतः फलं यत् तज्जानतोऽन्यं न तु देवतेति।
हरिन्मणिं काचधिया दधानः तं तस्य बुद्ध्या वहतो न रिक्तः ॥२७॥

अन्वयार्थ—**(त्वाम्)** आपको **(अजानतः)** बिना जाने ही **(नमतः)** नमस्कार करने वाले पुरुष को **(यत् फलम्)** जो फल होता है, **(तत्)** वह फल **(अन्यं देवता इति जानतः)** दूसरे को 'देवता है' इस तरह जानने वाले पुरुष को **(न तु)** नहीं होता। क्योंकि **(हरिन्मणिम्)** हरे मणि को **(काचधिया)** काच की बुद्धि से **(दधानः)** धारण करने वाला पुरुष **(तं तस्य बुद्ध्या वहतः)** हरे मणि को हरे मणि की बुद्धि से धारण करने वाले पुरुष की अपेक्षा **(रिक्तःन)** दरिद्र नहीं है।

प्रशस्तवाचश्चतुराः कषायैः दग्धस्य देवव्यवहारमाहुः।
गतस्य दीपस्य हि नन्दितत्वं दृष्टं कपालस्य च मङ्गलत्वम् ॥२८॥

अन्वयार्थ—**(प्रशस्तवाचः)** सुन्दर वचन बोलने वाले **(चतुराः)** चतुर मनुष्य **(कषायैः दग्धस्य)** कषायों से जले हुए पुरुष के भी **(देवव्यवहारं आहुः)** देव शब्द का व्यवहार करना कहते हैं। सो ठीक ही है **(हि)** क्योंकि **(गतस्य दीपस्य)** बुझे हुए दीपक का **(नन्दितत्वं)** बढ़ना **(च)** और **(कपालस्य)** फूटे हुए घड़े का **(मङ्गलत्वं)** मंगलपन **(दृष्टम्)** देखा गया है।

नानार्थमेकार्थमदस्त्वदुक्तं हितं वचस्ते निशम्य वक्तुः।
निर्दोषतां के न विभावयन्ति ज्वरेण मुक्तः सुगमः स्वरेण ॥२९॥

अन्वयार्थ—**(नानार्थम्)** अनेक अर्थों के प्रतिपादक तथा **(एकार्थम्)** एक ही प्रयोजन युक्त **(त्वदुक्तम्)** आपके कहे हुए **(अदः हितं वचः)** इन हितकारी वचनों को **(निशम्य)** सुनकर **(के)** कौन मनुष्य **(ते वक्तुः)**

आपके जैसे वक्ता की **(निर्दोषताम्)** निर्दोषता को **(न विभावयन्ति)** नहीं अनुभव करते हैं अर्थात् सभी करते हैं। जैसे [**यः**] जो **(ज्वरेण मुक्तः 'भवति')** ज्वर से मुक्त हो जाता है **(सः)** वह **(स्वरेण सुगमः 'भवति')** स्वर से सुगम हो जाता है। अर्थात् स्वर से उसकी अच्छी तरह पहचान हो जाती है।

न क्वापि वाञ्छा ववृते च वाक्ते काले क्वचित्कोऽपि तथा नियोगः।
न पूरयाम्यम्बुधिमित्युदन्शुः स्वयं हि शीतद्युतिरभ्युदेति ॥३०॥

अन्वयार्थ–(ते) आपकी **(क्वापि)** किसी भी वस्तु में **(वाञ्छा न)** इच्छा नहीं है **(च)** और **(वाक् वतृते)** वचन प्रवृत्त होते हैं। सचमुच में **(क्वचित् काले)** किसी काल में **(तथा)** वैसा **(कः अपि नियोगः)** कोई नियोग–नियम ही होता है। **(हि)** क्योंकि **(शीतद्युतिः)** चन्द्रमा **(अम्बुधिम् पूरयामि)** मैं समुद्र को पूर्ण कर दूँ **(इति)** इसलिए **(उदन्शुः न भवति)** उदित नहीं होता किन्तु **(स्वयम् अभ्युदेति)** स्वभाव से उदित होता है।

गुणा गभीराः परमाः प्रसन्ना बहुप्रकारा बहवस्तवेति।
दृष्टोऽयमन्तः स्तवनेन तेषां गुणो गुणानां किमतः परोऽस्ति ॥३१॥

अन्वयार्थ–(तव) आपके **(गुणाः)** गुण **(गभीराः)** गम्भीर **(परमाः)** उत्कृष्ट **(प्रसन्नाः)** उज्ज्वल **(बहुप्रकाराः)** अनेक प्रकार के और **(बहवः)** बहुत हैं **(इति)** इस प्रकार **(अयम्)** यह **(स्तवनेन)** स्तुति के द्वारा ही **(तेषाम् गुणानाम्)** उन गुणों का **(अन्तः दृष्टः)** अन्त देखा गया है **(अतः परः गुणानाम् अन्तः किम् अस्ति)** इसके सिवाय गुणों का अन्त क्या होता है? अर्थात् नहीं।

स्तुत्या परं नाभिमतं हि भक्त्या स्मृत्या प्रणत्या च ततो भजामि।
स्मरामि देवं प्रणमामि नित्यं केनाप्युपायेन फलं हि साध्यम्॥३२॥

अन्वयार्थ–(स्तुत्या हि) स्तुति के द्वारा ही **(अभिमतम् न)** इच्छित वस्तु की सिद्धि नहीं होती **(परम्)** किन्तु **(भक्त्या स्मृत्या च प्रणत्या)** भक्ति, स्मृति और नमस्कृति से भी होती है **(ततः)** इसलिए मैं **(नित्यम्)** हमेशा **(देवम् भजामि-स्मरामि-प्रणमामि)** आप देव को भजता हूँ/भक्ति करता हूँ, स्मरण करता हूँ और प्रणाम करता हूँ **(हि)** क्योंकि **(फलम्)** इच्छित वस्तु की प्राप्ति रूप फल को **(केन अपि उपायेन)** किसी भी उपाय से

(साध्यम्) सिद्ध कर लेना चाहिए।

ततस्त्रिलोकीनगराधिदेवं नित्यं परं ज्योतिरनन्तशक्तिम्।
अपुण्यपापं परपुण्यहेतुं नमाम्यहं वन्द्यमवन्दितारम्॥३३॥

अन्वयार्थ–(ततः) इसलिए **(अहम्)** मैं **(त्रिलोकी नगराधिदेवम्)** तीन लोक रूप नगर के अधिपति, **(नित्यम्)** विनाशरहित, **(परम्)** श्रेष्ठ **(ज्योतिः)** ज्ञान-ज्योति स्वरूप **(अनन्तशक्तिम्)** अनन्तवीर्य/अनन्तशक्ति से सहित, **(अपुण्य-पापम्)** स्वयं पुण्य और पाप से रहित होकर भी **(परपुण्यहेतुम्)** दूसरे के पुण्य के कारण तथा **(वन्द्यम्)** वन्दना करने के योग्य होकर भी स्वयं **(अवन्दितारम्)** किसी की भी वन्दना नहीं करने वाले [**भवन्तम्**] आपको **(नमामि)** मैं नमस्कार करता हूँ।

अशब्दमस्पर्शमरूपगन्धं त्वां नीरसं तद्विषयावबोधम्।
सर्वस्य मातारममेयमन्यैर् जिनेन्द्रमस्मार्यमनुस्मरामि॥३४॥

अन्वयार्थ–(अशब्दम्) शब्दरहित, **(अस्पर्शं)** स्पर्शरहित **(अरूप-गन्धं)** रूप और गन्धरहित तथा **(नीरसं)** रसरहित होकर भी **(तद्विषयाव-बोधं)** उनके ज्ञान से सहित, **(सर्वस्य मातारं)** सबके जानने वाले होकर भी **(अन्यैः)** दूसरों के द्वारा **(अमेयं)** नहीं जानने के योग्य तथा **(अस्मार्यं)** जिनका स्मरण नहीं किया जा सकता ऐसे **(जिनेन्द्रं त्वां अनुस्मरामि)** जिनेन्द्र भगवान् आपका प्रतिक्षण मैं स्मरण करता हूँ–ध्यान करता हूँ।

अगाधमन्यैर्मनसाप्यलंघ्यं निष्किञ्चनं प्रार्थितमर्थवद्भिः।
विश्वस्य पारं तमदृष्टपारं पतिं जिनानां शरणं व्रजामि ॥३५॥

अन्वयार्थ–(अगाधं) गम्भीर **(अन्यैः)** दूसरों के द्वारा **(मनसा अपि अलंघ्यं)** मन से भी उल्लंघन करने के अयोग्य अर्थात् अचिन्त्य **(निष्किञ्चनं)** निर्धन होने पर भी **(अर्थवद्भिः)** धनाढ्यों के द्वारा **(प्रार्थितं)** याचित **(विश्वस्य पारं)** सबके पारस्वरूप होने पर भी **(अदृष्टपारं)** जिनका पार/अन्त कोई नहीं देख सका है, ऐसे **(तम् जिनानां पतिं)** उन जिनेन्द्रदेव की मैं **(शरणम् व्रजामि)** शरण को प्राप्त होता हूँ।

त्रैलोक्यदीक्षा गुरवे नमस्ते यो वर्धमानोऽपि निजोन्नतोऽभूत्।
प्राग्गण्डशैलः पुनरद्रिकल्पः पश्चान्नमेरुः कुलपर्वतोऽभूत्॥३६॥

अन्वयार्थ–(त्रैलोक्यदीक्षागुरवे ते नमः) त्रिभुवन के जीवों के दीक्षागुरु-

स्वरूप आपके लिए नमस्कार हो **(यः)** जो आप **(वर्धमानः अपि)** क्रम से उन्नति को प्राप्त होते हुए भी **(निजोन्नतः)** स्वयमेव उन्नत **(अभूत्)** हुए थे। **(मेरुः)** मेरुपर्वत **(प्राक्)** पहले **(गण्डशैलः)** गोल पत्थरों का ढेर, **(पुनः)** फिर **(अद्रिकल्पः)** पहाड़ तुल्य (पश्चात्) फिर **(कुलपर्वतः)** कुलाचल **(न अभूत्)** नहीं हुआ था किन्तु स्वभाव से ही वैसा था।

स्वयं प्रकाशस्य दिवा निशा वा न बाध्यता यस्य न बाधकत्वम्।
न लाघवं गौरवमेकरूपं वन्दे विभुं कालकलामतीतम्॥३७॥

अन्वयार्थ–(स्वयं प्रकाशस्य यस्य) स्वयं प्रकाशमान रहने वाले जिसके **(दिवा निशा वा)** दिन और रात की तरह **(न बाध्यता न बाधकत्वं)** न बाध्यता है और न बाधकपना भी। इसी प्रकार जिनके **(न लाघवं गौरवं)** न लाघव है न गौरव भी, उन **(एकरूपं)** एक रूप रहने वाले और **(काल-कलां अतीतं)** क्षण आदि काल की पर्याय से रहित अर्थात् अन्तरहित **(विभुं वन्दे)** परमेश्वर की मैं वन्दना करता हूँ।

इति स्तुतिं देव! विधाय दैन्याद् वरं न याचे त्वमुपेक्षकोऽसि।
छायातरुं संश्रयतः स्वतः स्यात् कश्छायया याचितयात्मलाभः॥३८॥

अन्वयार्थ–(देव) हे देव! **(इति स्तुतिं विधाय)** इस प्रकार स्तुति करके मैं **(दैन्यात्)** दीनभाव से **(वरं न याचे)** वरदान नहीं माँगता, क्योंकि **(त्वं उपेक्षकः असि)** आप उपेक्षक–रागद्वेष रहित हो जैसे **(तरुं संश्रयतः)** वृक्ष का आश्रय करने वाले पुरुष को **(छाया स्वतः स्यात्)** छाया स्वयं प्राप्त हो जाती है। **(याचितया छायया कः आत्मलाभः)** छाया की याचना से अपना क्या लाभ है?

अथास्ति दित्सा यदि वोपरोधस्त्वय्येव सक्तां दिश भक्तिबुद्धिम्।
करिष्यते देव तथा कृपां मे कोवात्मपोष्ये सुमुखो न सूरिः॥३९॥

अन्वयार्थ–(अथ दित्सा अस्ति) यदि आपकी कुछ देने की इच्छा है **(यदि वा)** अथवा वरदान माँगो ऐसा **(उपरोधः 'अस्ति')** आग्रह है तो **(त्वयि एव सक्तां)** आपमें ही लीन **(भक्तिबुद्धिं)** भक्तिमयी बुद्धि को **(दिश)** देओ। मेरा विश्वास है कि **(देव)** हे देव! आप **(मे)** मुझ पर **(तथा)** वैसी **(कृपां करिष्यते)** दया करेंगे **(आत्मपोष्ये)** अपने द्वारा पोषण करने के योग्य शिष्य पर **(को वा सूरिः)** कौन आचार्य **(सुमुखो न 'भवति')** अनुकूल नहीं होता! अर्थात् सभी होते हैं।

वितरति विहिता यथाकथञ्चिज्जिन विनताय मनीषितानि भक्तिः।
त्वयि नुतिविषया पुनर्विशेषाद्दिशति सुखानि यशो धनं जयं च॥४०॥

अन्वयार्थ–(जिन) हे जिनेन्द्र! **(यथाकथञ्चित्)** जिस किसी तरह **(विहिता)** की गई **(भक्तिः)** भक्ति **(विनताय)** नम्र मनुष्य के लिए **(मनीषितानि)** इच्छित वस्तुएँ **(वितरति)** देती हैं **(पुनः)** फिर **(त्वयि)** आपके विषय में की गई **(नुतिविषया)** स्तुति विषयक भक्ति **(विशेषात्)** विशेष रूप से **(सुखानि)** सुख **(यशः)** कीर्ति **(धनं)** धन–सम्पत्ति **(च)** और **(जयम्)** जीत को **(दिशति)** देती है।

प्रभु स्तुति

प्रभुदेव तुम्हारे कई उपासक कई ढंग से आते हैं।
सेवा में बहुमूल्य वस्तुएँ लाकर तुम्हें चढ़ाते हैं ॥
मैं ही एक गरीब हूँ भगवन, साथ नहीं कुछ भी लाया।
फिर भी साहस कर मंदिर में, दर्शन करने को आया ॥
दीप धूप नैवेद्य नहीं है, पूजन का सामान नहीं है।
और न्हवन के हित प्रभु मेरे, प्रासुक जल भी पास नहीं ॥
कैसे स्तुति करूँ तुम्हारी, स्वर में है मधुराई नहीं।
मन का भाव प्रकट करने को, वाणी में चतुराई नहीं ॥
नहीं दान है नहीं दक्षिणा, खाली हाथ चला आया।
दर्शन की विधि नहीं जानता, फिर भी नाथ चला आया ॥
मैं हूँ प्रेम मंत्र का लोभी, हृदय दिखाने आया हूँ।
जो कुछ भी है पास यही है, इसे चढ़ाने आया हूँ ॥
मैं अर्पित हूँ प्रभु चरणों में, चाहो तो स्वीकार करो।
भक्त तुम्हारा हूँ प्रभुवर मुझे, ठुकराओ या प्यार करो॥

भूपाल जिनचतुर्विंशतिका

शार्दूलविक्रीडित छन्द

श्रीलीलायतनं महीकुलगृहं कीर्तिप्रमोदास्पदं,
वाग्देवीरतिकेतनं जयरमाक्रीडानिधानं महत्।
सः स्यात्सर्वमहोत्सवैकभवनं यः प्रार्थितार्थप्रदं,
प्रातः पश्यति कल्पपादपदलच्छायं जिनाङ्घ्रिद्वयम् ॥१॥

अन्वयार्थ–(यः) जो मनुष्य **(प्रातः)** प्रभात के समय **(प्रार्थितार्थ-प्रदम्)** इच्छित वस्तुओं को देने वाले तथा **(कल्पपादपदलच्छायम्)** कल्पवृक्ष के पल्लव समान कान्ति के धारक **(जिनाङ्घ्रिद्वयम्)** जिनेन्द्र भगवान् के चरण-युगल को **(पश्यति)** देखता है अर्थात् उनके दर्शन करता है **(सः)** वह **(श्रीलीलायतनम्)** लक्ष्मी का क्रीड़ागृह, **(महीकुल-गृहम्)** पृथ्वी का कुल भवन, **(कीर्तिप्रमोदास्पदम्)** यश और हर्ष का स्थान **(वाग्देवी-रतिकेतनम्)** सरस्वती का क्रीड़ा-मन्दिर **(महत् जयरमा-क्रीडानिधानम्)** विजयलक्ष्मी का विशाल क्रीड़ास्थान और **(सर्व-महोत्सवैकभवनम्)** सब बड़े बड़े उत्सवों का मुख्य घर **(स्यात्)** होता है।

वसन्ततिलका छन्द

शान्तं वपुः श्रवणहारि वचश्चरित्रं,
सर्वोपकारि तव देव! ततः श्रुतज्ञाः।
संसारमारवमहास्थलरुन्दसान्द्र -
च्छायामहीरुह! भवन्तमुपाश्रयन्ते॥२॥

अन्वयार्थ–(देव) हे देव! **(तव)** आपका **(वपुः)** शरीर **(शान्तम्)** शान्त है, **(वचः)** वचन **(श्रवणहारि)** कानों को प्रिय हैं और **(चरित्रम्)** चारित्र **(सर्वोपकारि)** सबका भला करने वाला है **(ततः)** इसलिए **(संसार-मारव-महास्थलरुन्दसान्द्रच्छायामहीरुह!)** हे संसार रूप मरुस्थल में विस्तृत सघन छायावृक्ष! **(श्रुतज्ञाः)** शास्त्रों के जानने वाले विद्वान् पुरुष **(भवन्तम् उपाश्रयन्ते)** आपका आश्रय करते हैं।

शार्दूलविक्रीडित छन्द

स्वामिन्नद्य विनिर्गतोऽस्मि जननीगर्भान्धकूपोदरा-
दद्योद्घाटितदृष्टिरस्मि फलवज्जन्मास्मि चाद्य स्फुटम्।

त्वामद्राक्षमहं यदक्षयपदानन्दाय लोकत्रयी-
नेत्रेन्दीवरकाननेन्दुममृतस्यन्दिप्रभाचन्द्रिकम् ॥३॥

अन्वयार्थ—(स्वामिन्) हे नाथ! **(यत्)** जिस कारण से **(अहम्)** मैंने **(लोकत्रयी-नेत्रेन्दीवरकाननेन्दुम्)** त्रिभुवन के जीवों के नेत्ररूपी कुमुदवन को विकसित करने के लिए चन्द्रमा रूप तथा **(अमृतस्यन्दि-प्रभाचन्द्रिकम्)** जिनकी कान्तिरूपी चाँदनी अमृत को प्रवाहित करती है ऐसे **(त्वाम्)** आपको **(अक्षय-पदानन्दाय)** अविनाशी पद के आनन्द के लिए **(अद्राक्षम्)** देखा अर्थात् आपके दर्शन किये **(तत्)** उस कारण से **(स्पष्टम्)** स्पष्ट है कि **(अद्य)** आज मैं **(जननीगर्भान्धकूपोदरात्)** माता के गर्भरूप अन्धेरे कुए से **(विनिर्गतः अस्मि)** निकला हूँ, **(अद्य उद्घाटितदृष्टि अस्मि)** आज प्रकट हुई है दृष्टि जिसकी ऐसा हुआ हूँ **(च)** और **(अद्य फलवज्जन्म अस्मि)** आज सफल जन्म हुआ हूँ।

निःशेषत्रिदशेन्द्रशेखर शिखा रत्नप्रदीपावली-
सान्द्रीभूतमृगेन्द्रविष्टरतटी माणिक्यदीपावलिः।
क्वेयंश्रीः क्व च निःस्पृहत्वमिदमित्यूहातिगस्त्वादृशः
सर्वज्ञानदृशश्चरित्रमहिमा लोकेश! लोकोत्तरः॥४॥

अन्वयार्थ—(निःशेषत्रिदशेन्द्रशेखरशिखारत्नप्रदीपावलीसान्द्रीभूत-मृगेन्द्र-विष्टरतटीमाणिक्यदीपावलिः) समस्त इन्द्रों के मुकुटों के अग्र भाग पर लगे हुए रत्नरूप दीपकों की पंक्ति से सघन है सिंहासन के तटपर लगे हुए मणिमय दीपकों की पंक्ति जिसमें ऐसी **(इदम् श्रीः)** यह लक्ष्मी **(क्व)** कहाँ? **(च)** और **(इदम्)** यह **(निःस्पृहत्वम्)** निःस्पृहता-इच्छा का अभाव **(क्व)** कहाँ? **(इति)** इस प्रकार **(लोकेश)** हे त्रिभुवन के स्वामिन्! **(त्वादृशः)** आप जैसे सर्वज्ञानी सर्वदर्शी की **(लोकोत्तरः)** सर्वश्रेष्ठ **(चरित्रमाहिमा)** चारित्र की महिमा **(ऊहातिगः 'अस्ति')** तर्क के अगोचर है।

राज्यं शासनकारिनाकपति यत्त्यक्तं तृणावज्ञया,
हेलानिर्दलितत्रिलोकमहिमा यन्मोहमल्लो जितः।
लोकालोकमपि स्वबोधमुकुर स्यान्तः कृतं यत्त्वया।
सैषाश्चर्यपरम्परा जिनवर क्वान्यत्र सम्भाव्यते ॥५॥

अन्वयार्थ—(जिनवर) हे जिनेन्द्र! **(शासनकारिनाकपति)** आज्ञाकारी है इन्द्र जिसमें ऐसा राज्य **(यत्)** जो **(त्वया)** आपके द्वारा **(तृणावज्ञया)** तृण जैसी अनादर बुद्धि से **(त्यक्तम्)** छोड़ दिया गया है, **(हेला निर्दलित-त्रिलोकमहिमा)** अनायास ही खण्डित कर दी है तीन लोक के जीवों की महिमा जिसने ऐसा **(मोहमल्लः)** मोहरूपी मल्ल **(यत्)** जो **(जितः)** जीता गया है तथा **(यत्)** जो **(लोकालोकम् अपि)** लोक अलोक का समाहार-समूह भी **(स्वबोधमुकुरस्य अन्तः कृतम्)** अपने ज्ञानरूप दर्पण के भीतर किया गया है सो **(एषा सा आश्चर्यपरम्परा)** यह प्रसिद्ध आश्चर्य की परिपाटी **(अन्यत्र क्व)** आपको छोड़कर दूसरी जगह कहाँ **(संभाव्यते)** संभव हो सकती है।

दानं ज्ञानधनाय दत्तमसकृत्पात्राय सद्वृत्तये,
चीर्णान्युग्रतपान्सि तेन सुचिरं पूजाश्च बह्व्यः कृताः।
शीलानां निचयः सहामलगुणैः सर्वः समासादितो
दृष्टस्त्वं जिन येन दृष्टिसुभगः श्रद्धापरेण क्षणम् ॥६॥

अन्वयार्थ—(जिन) हे जिनेन्द्र! **(दृष्टिसुभगः)** आँखों को प्यारे लगने वाले **(त्वम्)** आप **(येन श्रद्धापरेण)** जिस श्रद्धालु के द्वारा **(क्षणम्)** एक क्षणभर भी **(दृष्टः)** देखे गये हो मानो **(तेन)** उसने **(ज्ञानधनाय)** ज्ञान ही है धन जिसका ऐसे तथा **(सद्वृत्तये)** सदाचारी **(पात्राय)** पात्र के लिए **(असकृत्)** कई बार **(दानम्)** दान **(दत्तम्)** दिया है, **(उग्रतपांसि चीर्णानि)** कठिन तपस्याओं का संचय किया है, **(सुचिरम्)** चिरकाल तक **(बह्व्यः पूजाः कृता)** अनेक पूजाएँ की हैं और **(अमलगुणैः सह)** निर्मल गुणों के साथ **(शीलानां सर्वः निचयः समासादितः)** शीलव्रतों का सब समूह प्राप्त कर लिया है।

प्रज्ञापारमितः स एव भगवान्पारं स एव श्रुत-,
स्कन्धाब्धेर्गुणरत्नभूषण इति श्लाघ्यः स एव ध्रुवं।
नीयन्ते जिन येन कर्णहृदयालङ्कारतां त्वद्गुणाः,
संसाराहिविषापहारमणयस्त्रैलोक्यचूडामणेः ॥७॥

अन्वयार्थ—(त्रैलोक्यचूडामणे! जिन!) हे त्रिभुवन के चूड़ामणि स्वरूप! जिनेन्द्रदेव! **(संसाराहिविषापहारमणयः)** संसाररूपी साँप के विष को

हरने के लिए मणिस्वरूप **(त्वद्गुणाः)** आपके गुण **(येन)** जिसके द्वारा **(कर्ण-हृदयालङ्कारताम्)** कान तथा मन के आभूषणपने को **(नीयन्ते)** प्राप्त कराये जाते हैं **(ध्रुवम्)** निश्चय से **(सः एव)** वही **(प्रज्ञापारम् इतः)** बुद्धि के पार को प्राप्त हुआ **(भगवान्)** भगवान्-ऐश्वर्यवान् है **(सः एव श्रुतस्कन्धाब्धेः पारम्)** वही शास्त्र-समुद्र का अन्तिम तट है और **(सः एव)** वही **(गुणरत्नभूषणः)** गुणरूपी रत्न ही हैं आभूषण जिसके **(इति)** इस तरह **(श्लाघ्यः)** प्रशंसनीय है।

मालिनी छन्द

जयति दिविजवृन्दान्दोलितैरिन्दुरोचि-
र्निचयरुचिभिरुच्चैश्चामरैर्वीज्यमानः ।
जिनपतिरनुरज्यन्मुक्तिसाम्राज्यलक्ष्मी -
युवतिनवकटाक्षक्षेपलीलां दधानैः॥८॥

अन्वयार्थ—(दिविजवृन्दान्दोलितैः) देवसमूह के द्वारा संचालित, **(इन्दुरोचि-र्निचयरुचिभिः)** चन्द्रमा की किरण-समूह के समान उज्ज्वल कान्ति के धारी तथा **(अनुरज्यन्मुक्तिसाम्राज्यलक्ष्मीयुवतिकटाक्ष-क्षेपलीलाम् दधानैः)** अनुराग करने वाली मोक्षनगर की राज्यलक्ष्मी रूप तरुण स्त्री के कटाक्ष-संचार की शोभा को धारण किये हुए **(उच्चैः)** उन्नत **(चामरैः)** चँवरों के द्वारा **(वीज्यमानः)** ढोरे जाने वाले **(जिनपतिः)** जिनेन्द्र भगवान् **(जयति)** जयवन्त हैं-सबसे उत्कृष्ट हैं।

स्रग्धरा छन्द

देवः श्वेतातपत्रत्रयचमरिरुहाशोकभाश्चक्रभाषा-
पुष्पौघासारसिंहासनसुरपटहैरष्टभिः प्रातिहार्यैः।
साश्चर्यैर्भ्राजमानः सुरमनुजसभाम्भोजिनी भानुमाली
पायान्नःपादपीठीकृतसकलजगत्पालमौलिर्जिनेन्द्रः ॥९॥

अन्वयार्थ—(साश्चर्यैः) आश्चर्ययुक्त **(श्वेतातपत्रत्रयचमरिरुहाशोक-भाश्चक्र भाषापुरुष्पौघासारसिंहासनसुरपटहैः)** सफेद छत्रत्रय, चँवर, अशोक-वृक्ष, भामण्डल, दिव्यध्वनि, पुष्प-समूह की वृष्टि, सिंहासन और देव दुन्दुभिरूप **(अष्टभिः प्रातिहार्यैः)** आठ प्रतिहार्यों के द्वारा

(भ्राजमानः) शोभायमान **(सुरमनुजसभाम्भोजिनीभानुमाली)** देव और मनुष्यों की सभा को विकसित करने के लिए सूर्य तथा **(पादपीठीकृत-सकल-जगत्पालमौलिः)** जिन्होंने सब राजाओं के मुकुटों को अपने पाँवों का पीठ-आसन बनाया है ऐसे **(जिनेन्द्रः देवः)** जिनेन्द्रदेव **(नः पायात्)** हम सबकी रक्षा करें।

नृत्यत्स्वर्दन्तिदन्ताम्बुरुहवननटन्नाकनारीनिकायः ,
सद्यस्त्रैलोक्ययात्रोत्सवकरनिनदातोद्यमाद्यन्निलिम्पः ।
हस्ताम्भोजातलीलाविनिहितसुमनोदामरम्यामरस्त्री-
काम्यः कल्याणपूजा विधिषु विजयते देव देवागमस्ते॥१०॥

अन्वयार्थ—(देव) हे देव! **(ते)** आपके **(कल्याणपूजाविधिषु)** पञ्च-कल्याणकों के पूजा कार्य में **(नृत्यत्स्वर्दन्तिदन्ताम्बुरुहवन-नटन्नाकनारी-निकायः)** नृत्य करते हुए ऐरावत हाथी के दाँतों पर स्थित कमल वनमें नृत्य कर रहा है देवांगनाओं का समूह जिसमें ऐसा, **(सद्यः)** शीघ्र ही **(त्रैलोक्य यात्रोत्सव-करनिनदातोद्यमाद्यन्निलिम्पः)** त्रिभुवन में यात्रा के उत्सव को करने वाली है ध्वनि जिसकी ऐसे बाजों से हर्षित हो रहे हैं देव जिसमें ऐसा तथा **(हस्ताम्भोजातलीलाविनिहितसुमनो-दामरम्यामर-स्त्रीकाम्यः)** हस्त-कमलों के द्वारा क्रीड़ापूर्वक धारण की गई फूलों की मालाओं से रमणीय देवियों के द्वारा सुन्दर **(देवागमः)** देवागमन **(विजयते)** जयवन्त है—सर्वोत्कृष्ट है।

शार्दूलविक्रीडित छन्द

चक्षुष्मानहमेव देव भुवने, नेत्रामृतस्यन्दिनं
त्वद्वक्त्रेन्दुमतिप्रसादसुभगैस्तेजोभिरुद्भासितम् ।
तेनालोकयता मयानतिचिराच्चक्षुः कृतार्थीकृतं
द्रष्टव्यावधिवीक्षणव्यतिकरव्याजृम्भमाणोत्सवम् ॥११॥

अन्वयार्थ—(देव) हे देव! **(येन)** जिस कारण से **(नेत्रामृतस्य-न्दिनम्)** आँखों में अमृत झराने वाले तथा **(अतिप्रसादसुभगैः)** अत्यन्त प्रसन्नता से सुन्दर **(तेजोभिः)** तेज के द्वारा **(उद्भासितम्)** शोभायमान् **(त्वद्वक्त्रेन्दुम्)** आपके मुखचन्द्र को **(आलोकयता)** देखते हुए **(मया)** मैंने **(द्रष्टव्यावधि-वीक्षण-व्यतिकरव्याजृम्भमाणोत्सवम्)** दर्शनीय

वस्तुओं की सीमा के देखने रूप व्यापार से बढ़ रहा है उत्सव जिनका ऐसी **(चक्षुः)** आँखों को **(अनति-चिरात्)** शीघ्र ही **(कृतार्थीकृतम्)** कृतार्थ किया है **(तेन)** उस कारण से **(भुवने)** संसार में **(अहम् एव)** मैं ही **(चक्षुष्मान् 'अस्मि')** नेत्रवान् हूँ।

वसन्ततिलका छन्द

कन्तोः सकान्तमपि मल्लमवैति कश्चि-
न्मुग्धो मुकुन्दमरविन्दजमिन्दुमौलिम्।
मोघीकृतत्रिदशयोषिदपाङ्गपात -
स्तस्य त्वमेव विजयी जिनराज! मल्लः॥१२॥

अन्वयार्थ—(जिनराज) हे जिनेन्द्र! **(कश्चित् मुग्धः)** कोई मूर्ख **(कन्तोः)** कामदेव के विषय में **(मुकुन्दम्)** श्रीकृष्ण **(अरविन्दजम्)** ब्रह्मा और **(इन्दु-मौलिम्)** महादेव को **(सकान्तम् अपि)** स्त्रियों से सहित होने पर भी **(मल्लम्)** मल्ल **(अवैति)** मानता है, किन्तु **(मोघीकृतत्रिदशयोषिद-पाङ्गपातः)** व्यर्थ कर दिया है देवांगनाओं का कटाक्षपात जिनने ऐसे **(त्वम् एव)** आप ही **(तस्य)** उस काम के **(विजयी)** जीतने वाले **(मल्लः)** शूरवीर हैं।

मालिनी छन्द

किसलयितमनल्पं त्वद्विलोकाभिलाषात्-
कुसुमितमतिसान्द्रं त्वत्समीपप्रयाणात्।
मम फलितममन्दं त्वन्मुखेन्दोरिदानीम्
नयनपथमवाप्ताद्देव पुण्यद्रुमेण ॥१३॥

अन्वयार्थ—(देव) हे देव **(मम)** मेरा **(पुण्यद्रुमेण)** पुण्यरूपी वृक्ष, **(त्वद्विलोक अभिलाषात्)** आपके दर्शन करने की इच्छा से **(अनल्पम्)** अत्यधिक **(किसलयितम्)** पल्लवों से व्याप्त हुआ था, **(त्वत्समीप-प्रयाणात्)** आपके पास जाने से **(अतिसान्द्रम्)** अतिसघन **(कुसुमितम्)** फूलों से व्याप्त हुआ और **(इदानीम्)** इस समय **(त्वन्मुखेन्द्रोः)** आपके मुख चन्द्रमा से **(अमन्दम्)** अत्यन्त **(फलितम्)** फलों से व्याप्त हुआ है।

त्रिभुवनवनपुष्यत्पुष्पकोदण्डदर्प -
प्रसरदवनवाम्भोमुक्तिसूक्तिप्रसूतिः।

स जयति जिनराजव्रातजीमूतसङ्घः
शतमखशिखिनृत्यारम्भनिर्बन्धबन्धुः ॥१४॥

अन्वयार्थ—(त्रिभुवनवनपुष्पत्पुष्पकोदण्डदर्प-प्रसरदवन-वाम्भो-मुक्ति-सूक्ति-प्रसूतिः) तीनलोकरूपी वन में बढ़ते हुए कामदेव सम्बन्धी अहंकार के प्रसाररूपी दावानल को बुझाने के लिए नूतन जलवृष्टिरूप सुन्दर उपदेश की है उत्पत्ति जिससे ऐसे तथा **(शतमख-शिखिनृत्यारम्भ-निर्बन्ध-बन्धुः)** इन्द्ररूपी मयूर के नृत्य प्रारम्भ करने में आग्रहकारी बन्धुस्वरूप **(सः)** वह **(जिनराज-व्रातजीमूतसङ्घः)** जिनेन्द्र समूहरूप मेघों का समुदाय (जयति) जयवन्त है अर्थात् सबसे उत्कृष्ट है।

भूपालस्वर्गपालप्रमुखनरसुरश्रेणिनेत्रालिमाला - लीलाचैत्यस्य चैत्यालयमखिलजगत्कौमुदीन्दोर्जिनस्य।
उत्तंसीभूतसेवाञ्जलिपुटनलिनीकुड्मलस्त्रिः परीत्य
श्रीपादच्छाययापस्थितभवदवथुः संश्रितोस्मीव मुक्तिम् ॥१५॥

अन्वयार्थ—(भूपालस्वर्गपालप्रमुखनरसुरश्रेणिनेत्रालिमाला - लीला-चैत्यस्य) चक्रवर्ती और इन्द्र हैं प्रधान जिनमें ऐसे मनुष्य और देवसमूह के नेत्ररूपी भ्रमर पंक्ति की क्रीड़ा के लिए चैत्यवृक्ष तथा **(अखिल-जगत्-कौमुदीन्दोः)** सम्पूर्ण संसाररूप कुमुद समूह के लिए चन्द्रमा स्वरूप **(जिनस्य)** जिनेन्द्र देव के **(चैत्यालयं त्रिःपरीत्य)** मन्दिर की तीन प्रदक्षिणा देकर **(उत्तंसीभूतसेवाञ्जलिपुट-नलिनीकुड्मलः)** आभरणरूप किया है सेवा से वह अञ्जलिपुटरूप कमलिनी के मुकुल **(बौंडी)** जिसने ऐसा तथा **(श्रीपादच्छायया)** आपके श्री चरण की छाया के द्वारा **(अपस्थित-भवदवथुः)** दूर हो गया है संसार का सन्ताप जिसका ऐसा मैं **(मुक्तिम् इव संश्रितः अस्मि)** मानो मुक्ति को ही प्राप्त हो गया हूँ।

वसन्ततिलका छन्द

देव त्वदङ्घ्रिनखमण्डलदर्पणेस्मि-
न्नर्घ्ये निसर्गरुचिरे चिरदृष्टवक्त्रः।
श्रीकीर्तिकान्तिधृतिसङ्गमकारणानि
भव्यो न कानि लभते शुभमङ्गलानि ॥१६॥

अन्वयार्थ—(देव) हे देव **(अर्घ्ये)** प्रशंसनीय और **(निसर्गरुचिरे)** स्वभाव

से सुन्दर **(अस्मिन् त्वदङ्घ्रिनखमण्डलदर्पणे)** आपके इस नखमण्डलरूपी दर्पण में **(चिरदृष्टवक्त्रः)** बहुत समय तक देखा है मुख जिसने ऐसा **(भव्यः)** भव्यजीव **(श्री कीर्तिकान्तिधृतिसङ्गम-कारणानि)** लक्ष्मी, यश, कान्ति और धीरज की प्राप्ति के कारणस्वरूप **(कानि शुभमङ्गलानि)** किन शुभ मंगलों को **(न लभते)** नहीं प्राप्त होता? अर्थात् सभी को होता है।

मालिनि छन्द

जयति सुरनरेन्द्रश्री सुधानिर्झरिण्याः
कुलधरणिधरोयं जैनचैत्याभिरामः।
प्रविपुलफलधर्मानोकहाग्रप्रवाल -
प्रसरशिखरशुम्भत्केतनः श्रीनिकेतः॥१७॥

अन्वयार्थ—(सुरनरेन्द्रश्रीसुधानिर्झरिण्याः) देवेन्द्र और राजाओं की लक्ष्मीरूप अमृत के झरनों की उत्पत्ति के लिए **(कुलधरणिधरः)** कुलाचल तथा **(प्रविपुल-फलधर्मानोकहाग्रप्रवाल-प्रसरशिखर-शुम्भत्केतनः)** अत्यधिक फल वाले धर्मरूप वृक्ष के अग्रभाग पर स्थित किसलय समूह की शिखर की तरह शोभायमान है पताका जिस पर ऐसा **(श्रीनिकेतः)** लक्ष्मी का गृह स्वरूप **(अयम्)** यह **(जैनचैत्याभिरामः)** जिनेन्द्रदेव की प्रतिमाओं से सुंदर चैत्यालय **(जयति)** जयवन्त है-सबसे उत्कृष्ट है।

विनमदमरकान्ताकुन्तलाक्रान्तकान्ति -
स्फुरितनखमयूखद्योतिताशान्तरालः ।
दिविजमनुजराजव्रातपूज्यक्रमाब्जो
जयति विजितकर्मारातिजालो जिनेन्द्रः ॥१८॥

अन्वयार्थ—(विनमदमरकान्ताकुन्तलाक्रान्तकान्तिस्फुरितनखमयूख-द्योति-ताशान्तरालः) नमस्कार करती हुई देवांगनाओं के केशों से प्रतिबिम्बित कांति से शोभायमान नखचन्द्र की किरणों से प्रकाशित कर दिया है दिशाओं का मध्य भाग जिनने ऐसे तथा **(दिविज-मनुजराजव्रात-पूज्यक्रमाब्जः)** देव और मनुष्यों के राजसमूह से पूजने योग्य हैं चरणकमल जिनके ऐसे और **(विजित-कर्मारातिजालः)** जीत लिया है कर्मरूपी शत्रुओं का समूह जिनने ऐसे **(जिनेन्द्रः)** जिनेन्द्रदेव **(जयति)** जयवन्त है-सर्वोत्कृष्ट रूप से वर्तमान हैं।

वसन्ततिलका छन्द

सुप्तोत्थितेन सुमुखेन सुमङ्गलाय,
दृष्टव्यमस्ति यदि मङ्गलमेव वस्तु।
अन्येन किं तदिह नाथ तवैव वक्त्रं,
त्रैलोक्यमङ्गलनिकेतनमीक्षणीयम् ॥१९॥

अन्वयार्थ—(नाथ) हे स्वामिन् **(सुप्तोत्थितेन)** सोकर उठे हुए **(सुमुखेन)** सुन्दर मुख वाले पुरुष के द्वारा **(सुमङ्गलाय)** कल्याण की प्राप्ति के लिए **(यदि मङ्गलम् एव वस्तु द्रष्टव्यम् अस्ति)** यदि मंगलरूप ही वस्तु देखी जानी चाहिए **(तत्)** तो **(अन्येन किम्)** और से क्या? **(त्रैलोक्यमङ्गल-निकेतनम्)** तीनों लोकों के मंगलों के घर स्वरूप **(तव वक्त्रम् एव)** आपका मुख ही **(ईक्षणीयम्)** देखना चाहिए।

शार्दूलविक्रीडित छन्द

त्वं धर्मोदयतापसाश्रमशुकस्त्वं काव्यबन्धक्रम-
क्रीडानन्दनकोकिलस्त्वमुचितः श्रीमल्लिकाषट्पदः।
त्वं पुन्नागकथारविन्दसरसी - हंसस्त्वमुत्तंसकैः
कैर्भूपाल! न धार्यसे गुणमणिस्त्रङ्मालिभिर्मौलिभिः॥२०॥

अन्वयार्थ—(भूपाल) हे जगत्पालक ! **(त्वम्)**आप **(धर्मोदयताप-साश्रम-शुकः)** धर्म के अभ्युदयरूपी तपोवन के तोता हैं **(त्वम्)** आप **(काव्यबन्ध-क्रम-क्रीडानन्दनकोकिलः)** काव्यरचना की क्रमक्रीड़ा रूप नंदनवन के कोकिल हैं। **(त्वम्)** आप **(पुन्नागकथारविंदसरसीहंसः)** श्रेष्ठ पुरुषों की कथारूपी कमल सरोवर के हंस हैं और **(त्वम्)** आप **(उत्तंसकैः)** अपने आपको भूषित करने सजाने वाले **(कैः)** किन पुरुषों के द्वारा **(गुणमणिस्त्रङ्-मालिभिः)** गुणरूप मणियों की माला के समूह से उपलक्षित **(मौलिभिः)** मुकुटों के द्वारा **(न धार्यसे)** धारण नहीं किये जाते? अर्थात् सभी के द्वारा धारण किये जाते हैं?

मालिनी

शिवसुखमजरश्रीसङ्गमं चाभिलष्य
स्वमभिनियमयन्ति क्लेशपाशेन केचित्।
वयमिह तु वचस्ते भूपतेर्भावयन्त-
स्तदुभयमपि शश्वल्लीलया निर्विशामः॥२१॥

अन्वयार्थ—(केचित्) कितने ही मनुष्य **(शिवसुखम्)** मोक्ष-सुख **(च)** और **(अजरश्रीसंगमम्)** देवों की लक्ष्मी के संगम को **(अभिलष्य)** चाहकर **(स्वम् अभि)** अपने आपको **(क्लेशपाशेन)** दुखों के समूह **(नियमयन्ति)** नियमित करते हैं अर्थात् तरह-तरह की तपस्याओं और व्रत आदि के कठिन नियमों से अपने आपको दुखी करते हैं **(तु)** किन्तु **(वयम्)** हम लोग **(शश्वत्)** हमेशा **(इह)** इस संसार में **(ते भूपतेः)** आप जगत्पालक के **(वचः भावयन्तः)** वचनों की भावना करते हुए **(लीलया)** अनायास ही **(तदुभयम् अपि)** उन दोनों अर्थात् मोक्ष और स्वर्ग को **(निर्विशामः)** प्राप्त हो जाते हैं।

शार्दूलविक्रीडित

देवेन्द्रास्तव मज्जनानि विदधुर्देवाङ्गना मङ्गला-
न्यापेठुः शरदिन्दुनिर्मलयशो गन्धर्वदेवा जगुः।
शेषाश्चापि यथानियोगमखिलाः सेवां सुराश्चक्रिरे
तत्किं देव वयं विदध्म इति नश्चित्तं तु दोलायते॥२२॥

अन्वयार्थ—(देव) हे देव! **(देवेन्द्राः)** इन्द्रों ने **(तव)** आपका **(मज्जनानि विदधुः)** अभिषेक किया, **(देवाङ्गनाः मङ्गलानि आपेठुः)** देवांगनाओं ने मंगलपाठ पढ़े, **(गन्धर्वदेवाः)** गन्धर्व देवों ने **(शरदिन्दु-निर्मलयशः जगुः)** शरद्ऋतु के चन्द्रमा की तरह उज्ज्वल यश गाया **(च)** और **(शेषाः अपि अखिलाः सुराः)** बाकी बचे हुए समस्त देवों ने **(यथानियोगम्)** अपने कर्तव्य के अनुसार **(सेवाम् चक्रिरे)** सेवा की **(तत् वयं तु किं विदध्मः)** अब हमलोग क्या करें **(इति)** इस प्रकार **(नः)** हमारा **(चित्तम्)** मन **(दोलायते)** चञ्चल हो रहा है।

देव त्वज्जननाभिषेकसमये रोमाञ्चसत्कञ्चुकै-
र्देवेन्द्रैर्यदनर्ति नर्त्तनविधौ लब्धप्रभावैः स्फुटम्।
किञ्चान्यत्सुरसुन्दरीकुचतटप्रान्तावनद्धोत्तम -
प्रेङ्खद्वल्लकिनादझङ्कृतमहो तत्केन संवर्ण्यते॥२३॥

अन्वयार्थ—(देव) हे देव! **(त्वज्जननाभिषेकसमये)** आपके जन्माभिषेक के समय **(नर्तनविधौ)** नृत्य कार्य में **(लब्धप्रभावैः)** प्राप्त किया है

प्रभाव जिन्होंने ऐसे **(देवेन्द्रैः)** इन्द्रों ने **(रोमाञ्चसत्कञ्चुकैः)** रोमांचरूप कंचुक वस्त्र को धारण करते हुए **(यत् स्फुटम् अनर्ति)** जो स्पष्ट नृत्य किया गया था **(किं च अन्यत्)** और जो **(सुरसुन्दरी-कुचतटप्रान्त-वनद्धोत्तम प्रेङ्खद्वल्लकिनादझङ्कृतम्)** देवांगनाओं के स्तन तट के समीप बन्धी हुई उत्तम शब्द करती हुई वीणा के शब्द की झंकार हुई थी **(अहो तत् केन वर्ण्यते)** आश्चर्य है कि उस सबका वर्णन किससे हो सकता है? अर्थात् किसी से नहीं।

देव त्वत्प्रतिबिम्बमम्बुजदलस्मेरेक्षणं पश्यतां
यत्रास्माकमहो महोत्सवरसो दृष्टेरियान्वर्तते।
साक्षात्तत्र भवन्तमीक्षितवतां कल्याणकाले तदा
देवानामनिमेषलोचनतया वृत्तः सः किं वर्ण्यते ॥२४॥

अन्वयार्थ–(देव) हे देव! **(अम्बुजदलस्मेरेक्षणम्)** कमल की पांखुड़ी की तरह विकसित है नेत्र जिसमें ऐसे **(त्वत्प्रतिबिम्बम्)** आपके प्रतिबिम्ब-प्रतिमा को देखने वाले हम लोगों की आँखों को **(यत्र)** जहाँ **(अहो)** आश्चर्यकारक **(इयान्)** इतना **(महोत्सवरसः)** महान् आनन्द **(वर्तते)** हो रहा है **(तत्र)** वहाँ **(तदा)** उस समय **(कल्याणकाले)** पञ्चकल्याणकों के काल में **(अनिमेष-लोचनतया)** टिमकार रहित नेत्रों से **(भवन्तम्)** आपको **(साक्षात्)** साक्षात् रूप से **(ईक्षितवताम्)** देखने वाले **(देवानाम्)** देवों के **(वृत्तः)** प्रकट हुआ **(सः)** वह आनंद **(किम्)** क्या **(वर्ण्यते)** वर्णित किया जा सकता है अर्थात् नहीं किया जा सकता।

दृष्टं धाम रसायनस्य महतां दृष्टं निधीनां पदं
दृष्टं सिद्धरसस्य सद्म सदनं दृष्टं च चिन्तामणेः।
किं दृष्टेरथवानुषङ्गिकफलैरेभिर्मयाद्य ध्रुवं
दृष्टं मुक्तिविवाहमङ्गलगृहं दृष्टे जिनश्रीगृहे ॥२५॥

अन्वयार्थ–(जिनश्रीगृहे) जिनमन्दिर अथवा जिनेन्द्ररूप लक्ष्मीगृह के **(दृष्टे 'सति')** देखे जाने पर **(मया)** मैंने **(रसायनस्य धाम दृष्टम्)** रसायन का घर देख लिया **(महतां निधीनाम् पदं दृष्टम्)** बड़ी-बड़ी निधियों का स्थान देख लिया **(सिद्धरसस्य)** सिद्ध हुए रस-औषधि विशेष का **(सद्म दृष्टम्)** घर देख लिया **(च)** और **(चिन्तामणेः)** चिन्तामणि

रत्न का **(सदनम् दृष्टम्)** घर देख लिया।

दृष्टस्त्वं जिनराजचन्द्र! विकसद्भूपेन्द्रनेत्रोत्पले
स्नातं त्वन्नुतिचन्द्रिकाम्भसि भवद्विद्वच्चकोरोत्सवे।
नीतश्चाद्य निदाघजः क्लमभरः शान्तिं मया गम्यते
देव! त्वद्गतचेतसैव भवतो भूयात्पुनर्दर्शनम् ॥२६॥

अन्वयार्थ–(जिनराजचन्द्र) हे जिनेन्द्रचन्द्र! **(मया त्वम् दृष्टः)** मैंने आपके दर्शन किये तथा **(विकसद्भूपेन्द्रनेत्रोत्पले)** जिसमें राजाओं के नेत्ररूपी कुमुद फूल रहे हैं ऐसे तथा **(भवद्विद्वच्चकोरोत्सवे)** जिसमें विद्वान् रूप-चकोर पक्षियों को आनन्द हो रहा है ऐसे **(त्वन्नुति-चन्द्रिकाम्भसि)** आपकी स्तुति रूप जल में **(स्नातं)** स्नान किया **(च)** और **(अद्य)** आज **(निदाघजः)** सन्ताप से उत्पन्न हुआ **(क्लमभरः)** खेद का समूह **(शान्तिम् नीतः)** शान्ति को प्राप्त कराया **(देव)** हे देव! **(त्वद्गतचेतसा एव मया गम्यते)** अब मैं आप में ही चित्त लगाता हुआ जाता हूँ **(भवतः दर्शनम् पुनः भूयात्)** आपके दर्शन फिर भी हों।

❑ ❑ ❑

भावना दिन रात मेरी

भावना दिन रात मेरी, सब सुखी संसार हो।
सत्य संयम शील का, व्यवहार घर-घर वार हो॥१॥
धर्म का परचार हो, अरु देश का उद्धार हो।
और यह उजड़ा हुआ, भारत चमन गुलजार हो॥२॥
ज्ञान के अभ्यास से, जीवों का पूर्ण विकास हो।
धर्म के आचार से, हिंसा का जग से ह्रास हो॥३॥
शान्ति सुख आनन्द का, हर एक घर में वास हो।
वीर वाणी पर सभी, संसार का विश्वास हो॥४॥
रोग दुख भय शोक ना हो, हे प्रभु ! परमात्मा।
कर सके कल्याण ज्योति, सब जगत की आत्मा॥५॥

भावना द्वात्रिंशतिका

मूल (उपजातिवृत्तम्)

सत्त्वेषु मैत्रीं गुणिषु प्रमोदं, क्लिष्टेषु जीवेषु कृपा-परत्वम्।
माध्यस्थ्यभावं विपरीतवृत्तौ, सदा ममात्मा विदधातु देव! ॥१॥
अन्वयार्थ–(देव!) हे भगवन्! **(मम आत्मा)** मेरी आत्मा **(सदा)** हमेशा **(सत्त्वेषु)** सभी प्राणियों पर **(मैत्रीम्)** मैत्री भाव को **(गुणिषु)** गुणीजनों में **(प्रमोदम्)** प्रमोद/आह्लाद भाव को **(क्लिष्टेषु जीवेषु)**दुःखी जीवों पर **(कृपा-परत्वम्)** करुणाभाव में तत्परता को **(विपरीतवृत्तौ)** विपरीत प्रवृत्ति वालों पर **(माध्यस्थ्यभावम्)** माध्यस्थ्य/तटस्थ्य भाव को **(विदधातु)** धारण करे।

मूल (उपजातिवृत्तम्)

शरीरतः कर्तुमनन्त - शक्तिं, विभिन्नमात्मानमपास्त-दोषम्।
जिनेन्द्र! कोषादिव खड्गयष्टिं, तव प्रसादेन ममाऽस्तु शक्तिः ॥२॥
अन्वयार्थ–(जिनेन्द्र!) हे जिनेन्द्रदेव! **(तव प्रसादेन)** आपकी कृपा से **(अनन्तशक्तिम्)** अनन्तशक्ति वाले **(अपास्त-दोषम्)** सर्व दोषों से रहित **(आत्मानम्)** अपने आत्मा को **(कोषात्)** म्यान से **(खड्गयष्टिम् इव)** तलवार की भाँति **(शरीरतः)** शरीर से **(विभिन्नम्)** पृथक् **(कर्तुम्)** करने के लिए **(मम शक्तिः)** मेरे शक्ति **(अस्तु)** हो।

दुःखे सुखे वैरिणि बन्धुवर्गे, योगे वियोगे भवने वने वा।
निराकृताशेष-ममत्वबुद्धेः समं मनो मेऽस्तु सदापि नाथ! ॥३॥
अन्वयार्थ–(नाथ!) हे स्वामिन्! **(निराकृताशेष-ममत्वबुद्धेः)** समस्त [चेतन-अचेतन पर]पदार्थों से दूर कर दिया है ममत्व बुद्धि को जिसने ऐसा **(मे)** मेरा **(मनः)** मन **(दुःखे सुखे)** दुःख में, सुख में **(वैरिणि बंधुवर्गे)** शत्रु में, बंधु-वर्ग में **(योगे वियोगे)** संयोग में, वियोग में **(वा)** अथवा **(भवने वने)** भवन में और वन में **(सदा अपि)** हमेशा ही **(समम् अस्तु)** एक समान हो।

मूल (द्वादशाक्षरी-उपजातिवृत्तम्)

मुनीश! लीनाविव कीलिताविव, स्थिरौ निखाताविव बिम्बिताविव।
पादौ त्वदीयौ मम तिष्ठतां सदा, तमोधुनानौ हृदि दीपकाविव ॥४॥

अन्वयार्थ—(मुनीश!) हे मुनीश्वर! **(तमोधुनानौ दीपकौ इव)** अन्धकार के विनाशक दो दीपकों के समान **(त्वदीयौ पादौ)** आपके दोनों चरण **(सदा)** सदा **(मम हृदि)** मेरे हृदय में **(लीनौ इव)** लीन हुए के समान **(कीलितौ इव)** कीलित हुए के समान **(निखातौ इव)** खोदे हुए के समान **(स्थिरौ बिम्बितौ इव)** स्थिर हुए प्रतिबिम्ब के समान **(तिष्ठताम्)** विराजमान रहें।

मूल (द्वादशाक्षरी-आख्यानकीवृत्तम्)

एकेन्द्रियाद्या यदि देव ! देहिनः, प्रमादतः संचरता इतस्ततः।
क्षता विभिन्ना मिलिता निपीडिता, तदस्तु मिथ्या दुरनुष्ठितं तदा ॥५॥

अन्वयार्थ—(देव!) हे देव! **(इतस्ततः)** इधर-उधर **(प्रमादतः संचरता)** प्रमादपूर्वक विचरण करते हुए [मेरे द्वारा] **(यदि)** अगर **(एकेन्द्रियाद्याः)** एकेन्द्रिय आदि **(देहिनः)** प्राणी **(क्षताः)** घायल किए गए हों **(विभिन्नाः)** पृथक् कर दिए गए हों **(मिलिताः)** परस्पर में मिला दिए गए हों या **(निपीडिताः)** पेल दिये गए हों **(तदा)** तो **(तत् दुरनुष्ठितम्)** वह दुराचरण/पाप **(मिथ्या)** निष्फल **(अस्तु)** हो।

मूल (द्वादशाक्षरी-उपजातिवृत्तम्)

विमुक्तिमार्ग - प्रतिकूलवर्तिना, मया कषायाक्षवशेन दुर्धिया।
चारित्रशुद्धेर्यदकारि लोपनं, तदस्तु मिथ्या मम दुष्कृतं प्रभो! ॥६॥

अन्वयार्थ—(प्रभो!) हे नाथ! **(विमुक्तिमार्ग-प्रतिकूल-वर्तिना)** मोक्षमार्ग से प्रतिकूल आचरण करने वाले **(मया दुर्धिया)** मुझ दुर्बुद्धि द्वारा **(कषायाक्ष-वशेन)** कषाय और इन्द्रियों के वश से **(चारित्र-शुद्धेः)** चारित्र की शुद्धि का **(यत् लोपनम्)** जो विलोप **(अकारि)** किया गया हो **(मम)** मेरा **(तत् दुष्कृतम्)** वह दुराचरण/पाप **(मिथ्या)** निष्फल **(अस्तु)** हो।

मूल (वंशस्थवृत्तम्)

विनिन्दनालोचन-गर्हणैरहं, मनोवचःकाय-कषाय-निर्मितम्।
निहन्मि पापं भवदुःखकारणं, भिषग्विषं मन्त्रगुणैरिवाखिलम् ॥७॥

अन्वयार्थ—(भिषक् इव) वैद्य जिस तरह **(मंत्र-गुणैः)** मंत्रों के प्रभाव द्वारा **(अखिलं विषम्)** समस्त विष को नष्टकर देता है उसी तरह **(अहम्)**

मैं **(विनिन्दनालोचन-गर्हणैः)** निन्दा, आलोचना और गर्हा के द्वारा **(मनो-वचः काय-कषायनिर्मितम्)** मन, वचन, काय और कषाय से उपार्जित **(भव-दुःखकारणम्)** सांसारिक दुःख के कारणभूत **(पापम्)** पाप को **(निहन्मि)** नष्ट करता हूँ।

मूल (वंशस्थवृत्तम्)

अतिक्रमं यद्विमतेर्व्यतिक्रमं, जिनातिचारं सुचरित्र-कर्मणः।
व्यधामनाचारमपि प्रमादतः, प्रतिक्रमं तस्य करोमि शुद्धये ॥८॥

अन्वयार्थ—(जिन!) हे जिनेन्द्र भगवन्! मैंने **(विमतेः)** दुर्बुद्धि और **(प्रमादतः)** प्रमाद से **(सुचरित्र-कर्मणः)** सम्यक्/उत्तम चारित्र के अनुष्ठान का **(यत्)** जो **(अतिक्रमम्)** अतिक्रम **(व्यतिक्रमम्)** व्यतिक्रम **(अतिचारम्)** अतिचार और **(अनाचारम् अपि)** अनाचार भी **(व्यधाम्)** किया हो **(तस्य)** उसकी **(शुद्धये)** शुद्धि के लिए **(प्रतिक्रमम्)** प्रतिक्रमण **(करोमि)** करता हूँ।

मूल (वंशस्थवृत्तम्)

क्षतिं मनःशुद्धि-विधेरतिक्रमं, व्यतिक्रमं शील-वृतेर्विलङ्घनम्।
प्रभोऽतिचारं विषयेषु वर्तनं, वदन्त्यनाचारमिहातिसक्तताम् ॥९॥

अन्वयार्थ—(प्रभो!) हे प्रभो! **(इह)** इसलोक में **(मनःशुद्धिविधेः)** मन की पवित्रता की विधि/रीति के **(क्षतिम्)** विनाश को **(अतिक्रमम्)** अतिक्रम **(शीलवृतेः)** शीलरूपी बाड़ के **(विलङ्घनम्)** उल्लंघन को **(व्यतिक्रमम्)** व्यतिक्रम **(विषयेषु)** पंचेन्द्रियों के विषयों में **(वर्तनम्)** प्रवृत्ति करने को **(अतिचारम्)** अतिचार और **(अतिसक्तताम्)** अति आसक्ति को **(अनाचारम्)** अनाचार **(वदन्ति)** कहते हैं।

मूल (उपजातिवृत्तम्)

यदर्थमात्रा - पदवाक्यहीनं, मया प्रमादाद्यदि किञ्चनोक्तम्।
तन्मे क्षमित्वा विदधातु देवी, सरस्वती केवलबोधलब्धिम् ॥१०॥

अन्वयार्थ—(मया) मेरे द्वारा **(प्रमादात्)** प्रमाद से **(यदि)** अगर **(अर्थ-मात्रा-पद-वाक्यहीनम्)** अर्थ, मात्रा, पद और वाक्य से रहित **(यत्)** जो **(किञ्चन)** कुछ **(उक्तम्)** कहा गया हो तो **(सरस्वती देवी)** सरस्वती देवी **(मे)** मेरे **(तत्)** उस दोष को **(क्षमित्वा)** क्षमा करके मुझे **(केवल-**

बोधलब्धिम्) केवलज्ञान की उपलब्धि को **(विदधातु)** प्रदान करें।

मूल (इन्द्रवज्रावृत्तम्)

बोधिः समाधिः परिणामशुद्धिः, स्वात्मोपलब्धिः शिवसौख्यसिद्धिः ।
चिन्तामणिं चिन्तितवस्तुदाने, त्वां वन्द्यमानस्य ममास्तु देवि! ॥११॥

अन्वयार्थ—(देवि!) हे सरस्वति देवि! **(चिन्तित-वस्तुदाने)** मनवांछित वस्तु के देने में **(चिन्तामणिम्)** चिन्तामणिरत्न-स्वरूप **(त्वाम्)** आपको **(वन्द्य-मानस्य)** वन्दन करने वाले **(मम)** मुझे **(बोधिः)** रत्नत्रय **(समाधिः)** शुक्लध्यान/समताभाव **(परिणाम-शुद्धिः)** भावों की निर्मलता **(स्वात्मोप-लब्धिः)** अपने आत्मस्वरूप की प्राप्ति और **(शिव-सौख्य-सिद्धिः)** मोक्ष सुख की सिद्धि **(अस्तु)** हो।

मूल (उपजातिवृत्तम्)

यः स्मर्यते सर्व-मुनीन्द्र-वृन्दैः, यः स्तूयते सर्व-नरामरेन्द्रैः।
यो गीयते वेदपुराणशास्त्रैः, स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥१२॥

अन्वयार्थ—(यः) जो **(सर्व-मुनीन्द्र-वृन्दैः)** सभी मुनिराजों के समूहों द्वारा **(स्मर्यते)** स्मरण किया जाता है **(यः)** जो **(सर्वनरामरेन्द्रैः)** सभी नरेन्द्रों और देवेन्द्रों द्वारा **(स्तूयते)** स्तुति किया जाता है **(यः)** जो **(वेद-पुराण-शास्त्रैः)** वेदों, पुराणों और शास्त्रों के द्वारा **(गीयते)** गाया जाता है **(सः)** वह **(देवदेवः)** देवाधिदेव अर्हन्त **(मम हृदये)** मेरे हृदय में **(आस्ताम्)** विराजमान हो।

मूल (उपजातिवृत्तम्)

यो दर्शनज्ञानसुखस्वभावः, समस्त - संसार - विकारबाह्यः।
समाधिगम्यः परमात्मसंज्ञः, स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥१३॥

अन्वयार्थ—(यः) जो **(दर्शन-ज्ञान-सुख-स्वभावः)** अनन्तदर्शन, अनन्त-ज्ञान और अनन्तसुखरूप स्वभाव वाला **(समस्तसंसार-विकार-बाह्यः)** संसार के समस्त विकारों से रहित **(समाधिगम्यः)** समाधि के द्वारा जानने योग्य और **(परमात्मसंज्ञः)** परमात्मा नाम के धारक **(सः)** वह **(देवदेवः)**देवों का देव **(मम हृदये)** मेरे हृदय में **(आस्ताम्)** विराजमान रहे।

मूल (उपजातिवृत्तम्)

निषूदते यो भवदुःखजालं, निरीक्षते यो जगदन्तरालम्।
योऽन्तर्गतो योगिनिरीक्षणीयः, स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥१४॥

अन्वयार्थ—(यः) जो **(भव-दुःख-जालम्)** संसार के दुःख समूह को **(निषूदते)** नष्ट करता है **(यः)** जो **(जगदन्तरालम्)** जगत् के अन्तःस्थल/मध्यभाग को **(निरीक्षते)** देखता है **(यः)** जो **(अन्तर्गतः)** अन्तर्विलीन/अन्तःस्वरूप को प्राप्त है और **(योगि-निरीक्षणीयः)** योगिजनों के द्वारा अवलोकनीय है **(सः)** वह **(देवदेवः)** देवों का देव **(मम हृदये)** मेरे हृदय में **(आस्ताम्)** विराजमान रहे।

मूल (उपजातिवृत्तम्)

विमुक्तिमार्गप्रतिपादको यो, यो जन्ममृत्युव्यसनाद्यतीतः।
त्रिलोकलोकी विकलोऽकलङ्कः, स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥१५॥

अन्वयार्थ—(यः) जो **(विमुक्तिमार्ग-प्रतिपादकः)** मोक्षमार्ग का कथन करने वाला है **(यः)** जो **(जन्म-मृत्यु-व्यसनाद्यतीतः)** जन्म-मरण के दुखों आदि से रहित है **(त्रिलोक-लोकी)** तीनों लोकों का देखने वाला त्रिलोकदर्शी है **(विकलः)** विशिष्ट/परमौदारिक देह वाला है और **(अकलङ्कः)** कलंक रहित है **(सः)** वह **(देवदेवः)** देवों का देव **(मम हृदये)** मेरे हृदय में **(आस्ताम्)** विराजमान रहे।

मूल (उपजातिवृत्तम्)

क्रोडीकृताशेष - शरीरिवर्गा, रागादयो यस्य न सन्ति दोषाः।
निरिन्द्रियो ज्ञानमयोऽनपायः, स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥१६॥

अन्वयार्थ—(क्रोडीकृताशेष-शरीरिवर्गाः) जिन्होंने सभी प्राणियों के समूह को आलिंगित कर लिया है, ऐसे **(रागादयः दोषाः)** रागादि दोष **(यस्य)** जिसके **(न सन्ति)** नहीं हैं **(सः)** वह **(निरिन्द्रियः)** अतीन्द्रिय **(ज्ञानमयः)** ज्ञानस्वरूपी **(अनपायः)** अपाय/नाश से रहित अविनाशी **(देवदेवः)** देवों का देव **(मम हृदये)** मेरे हृदय में **(आस्ताम्)** विराजमान रहे।

मूल (उपजातिवृत्तम्)

यो व्यापको विश्वजनीनवृत्तेः, सिद्धो विबुद्धो धुतकर्मबन्धः।
ध्यातो धुनीते सकलं विकारं, स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥१७॥

अन्वयार्थ–(यः) जो **(विश्वजनीनवृत्तेः)** विश्व का कल्याण करने वाली प्रवृत्ति/स्वभाव वाला होने से **(व्यापकः)** सर्व व्यापक है **(सिद्धः)** सिद्ध/ पूर्ण है **(विबुद्धः)** विशिष्ट ज्ञानी है **(धुत-कर्मबन्धः)** कर्म बन्धनों का विध्वंसक है **(ध्यातः)** ध्यान में चिन्तन किया गया **(सकलम्)** समस्त **(विकारम्)** विकार को **(धुनीते)** नष्ट करता है **(सः देवदेवः)** वह देवों का देव **(मम हृदये)** मेरे हृदय में **(आस्ताम्)** विराजमान रहे।

मूल (उपजातिवृत्तम्)

न स्पृश्यते कर्मकलङ्कदोषैः, यो ध्वान्तसङ्घैरिव तिग्मरश्मिः।
निरञ्जनं नित्यमनेकमेकं, तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये ॥१८॥

अन्वयार्थ–(यः) जो **(कर्म-कलङ्क-दोषैः)** ज्ञानावरण आदि कर्म, राग आदि कलंक और क्षुधा आदि दोषों से **(न स्पृश्यते)** छुए नहीं जाता **(इव)** जैसे **(ध्वान्त-सङ्घैः)** अन्धकार समूह से **(तिग्म-रश्मिः)** सूर्य, **(तं)** उस **(निरंजनम्)** निरंजन **(नित्यम्)** नित्य/ध्रुव **(अनेकम्)** अनेक और **(एकम्)** एक स्वरूप **(आप्तम् देवम्)** आप्त देव की **(शरणम्)** शरण को मैं **(प्रपद्ये)** प्राप्त/ग्रहण करता हूँ।

मूल (उपजातिवृत्तम्)

विभासते यत्र मरीचिमाली, न विद्यमाने भुवनावभासी।
स्वात्मस्थितं बोधमयप्रकाशं, तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये ॥१९॥

अन्वयार्थ–(भुवनावभासी) लोक का प्रकाशक **(मरीचिमाली)** सूर्य **(यत्र)** जहाँ आपके **(विद्यमाने)** विद्यमान रहने पर **(न विभासते)** शोभा नहीं पाता ऐसे **(स्वात्मस्थितम्)** अपने आत्मस्वरूप में स्थित **(बोधमय-प्रकाशम्)** ज्ञानमय प्रकाश वाले **(तम्)** उस **(आप्तम् देवम्)** आप्त देव की मैं **(शरणम्)** शरण को **(प्रपद्ये)** प्राप्त/ग्रहण करता हूँ।

मूल (उपजातिवृत्तम्)

विलोक्यमाने सति यत्र विश्वं, विलोक्यते स्पष्टमिदं विविक्तम्।
शुद्धं शिवं शान्तमनाद्यनन्तं, तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये ॥२०॥

अन्वयार्थ–(यत्र) जिसके **(विलोक्यमाने सति)** दृष्टिगोचर हो जाने पर **(इदम् विश्वम्)** यह विश्व **(स्पष्टम्)** स्पष्टतः **(विविक्तम्)** पृथक् **(विलोक्यते)** दिखाई देता है **(तम् शुद्धम्)** उस शुद्ध **(शिवं)** कल्याण-

स्वरूप **(शान्तम्)** शान्त और **(अनाद्यनन्तम्)** आदि व अन्त से रहित **(आप्तम् देवम्)** आप्त देव की मैं **(शरणम्)** शरण को **(प्रपद्ये)** प्राप्त करता हूँ।

मूल (उपजातिवृत्तम्)

येन क्षता मन्मथ-मान-मूर्च्छा-विषादनिद्राभय-शोक-चिन्ताः।
क्षतोऽनलेनेव तरुप्रपञ्चस्, तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये ॥२१॥

अन्वयार्थ—(इव) जैसे **(अनलेन)** अग्नि के द्वारा **(तरु-प्रपञ्चः)** वृक्षों का समूह **(क्षतः/क्षयः)** नष्ट/भस्म कर दिया जाता है उसी प्रकार **(येन)** जिसके द्वारा **(मन्मथ-मान-मूर्च्छा-विषाद-निद्रा-भय-शोक-चिन्ताः)** काम, मान, मूर्च्छा, विषाद, निद्रा, भय, शोक, चिन्ता आदि दोष **(क्षताः)** क्षय कर दिए गए हैं **(तं)** उस **(आप्तं देवम्)** आप्त देव की मैं **(शरणम्)** शरण को **(प्रपद्ये)** प्राप्त/ग्रहण करता हूँ।

मूल (वंशस्थवृत्तम्)

न संस्तरोऽश्मा न तृणं न मेदिनी, विधानतो नो फलको विनिर्मितः।
यतो निरस्ताक्षकषाय-विद्विषः, सुधीभिरात्मैवसुनिर्मलो मतः ॥२२॥

अन्वयार्थ—(विधानतः) विधिपूर्वक **(विनिर्मितः)** रचित **(न अश्मा)** न पाषाण **(न तृणम्)** न तृण/घास/पलाल **(न मेदिनी)** न धरती और **(न)** न ही **(फलकः)** पाट्य **(संस्तरः)** आसन/बिस्तर है **(यतः)** क्योंकि **(सुधीभिः)** बुद्धिमन्तों के द्वारा **(निरस्ताक्ष-कषाय-विद्विषः)** इन्द्रिय और कषायरूपी शत्रुओं से रहित **(आत्मा एव)** आत्मा ही **(सुनिर्मलः)** अत्यन्त निर्मल आसन **(मतः)** माना गया है।

मूल (वंशस्थवृत्तम्)

न संस्तरो भद्र! समाधिसाधनं, न लोकपूजा न च सङ्घमेलनम्।
यतस्ततोऽध्यात्मरतो भवानिशं, विमुच्यसर्वामपि बाह्यवासनाम् ॥२३॥

अन्वयार्थ—(भद्र!) हे भद्र! **(यतः)** क्योंकि **(समाधि-साधनम्)** समाधि का साधन **(न संस्तरः)** न संस्तर [पाषाण, तृण, पृथ्वी, काष्ठ ये चारों प्रकार के आसन]है **(न लोक-पूजा)** न लोकपूजा है **(च)** और **(न सङ्घ-मेलनम्)** न संघ एकत्रित करना है **(ततः)** इसलिए **(सर्वामपि)** सभी **(बाह्यवासनाम्)** बाहरी वासनाओं को **(विमुच्य)** छोड़कर **(अनिशम्)** निरन्तर **(अध्यात्मरतः)** आत्मस्वभाव में लीन **(भव)** रहो।

मूल (उपजातिवृत्तम्)

न सन्ति बाह्या मम केचनार्था, भवामि तेषां न कदाचनाहम्।
इत्थं विनिश्चित्य विमुच्य बाह्यं, स्वस्थः सदा त्वं भव भद्र! मुक्त्यै ॥२४॥

अन्वयार्थ–(केचन) कोई **(बाह्याः अर्थाः)** बाहरी पदार्थ **(मम)** मेरे **(न सन्ति)** नहीं हैं और **(अहम्)** मैं **(तेषाम्)** उनका **(कदाचन न)** कदापि नहीं **(भवामि)** हूँ **(इत्थम्)** इस प्रकार **(विनिश्चित्य)** दृढ़ निश्चय करके **(भद्र!)** हे भद्र! **(त्वम्)** तुम **(बाह्यं)** बाह्य पदार्थों को **(विमुच्य)** छोड़कर **(मुक्त्यै)** मुक्ति के लिए **(सदा)** सदा **(स्वस्थः)** अपनी आत्मा में स्थिर **(भव)** रहो।

मूल (उपजातिवृत्तम्)

आत्मानमात्मन्यवलोकमानस्, त्वं दर्शनज्ञानमयो विशुद्धः।
एकाग्रचित्तः खलु यत्र तत्र, स्थितोऽपि साधुर्लभते समाधिम् ॥२५॥
अन्वयार्थ–(आत्मानम्) आत्मा को **(आत्मनि)** आत्मा में **(अवलोकमानः त्वं)** देखने वाले तुम **(दर्शन-ज्ञान-मयः)** अनन्त दर्शन-ज्ञानमय हो तथा **(विशुद्धः)** विशुद्ध/निर्मल हो **(खलु)** वास्तव में **(एकाग्रचित्तः साधुः)** एकाग्र मन वाला साधु **(यत्र तत्र अपि)** जहाँ कहीं भी **(स्थितः)** स्थित हो **(समाधिम्)** समाधि को **(लभते)** प्राप्त करता है।

मूल (आख्यानकीवृत्तम्)

एकः सदा शाश्वतिको ममात्मा, विनिर्मलः साधिगमस्वभावः।
बहिर्भवाः सन्त्यपरे समस्ता, न शाश्वताः कर्मभवाः स्वकीयाः ॥२६॥
अन्वयार्थ–(मम आत्मा) मेरी आत्मा **(सदा)** हमेशा **(एकः)** अकेली **(शाश्वतिकः)** अविनाशी **(विनिर्मलः)** अत्यन्त निर्मल **(साधिगम-स्वभावः)** ज्ञानस्वभाव वाली है **(अपरे)** शेष **(समस्ताः)** सब **(बहिर्भवाः)** बाहर होने वाले शरीर व रागादि **(कर्मभवाः)** कर्मों से उत्पन्न हैं **(शाश्वताः)** शाश्वत और **(स्वकीयाः)** निजी **(न सन्ति)** नहीं हैं।

मूल (उपजातिवृत्तम्)

यस्यास्ति नैक्यं वपुषापि सार्द्धं, तस्यास्ति किं पुत्र-कलत्र-मित्रैः।
पृथक्कृते चर्मणि रोमकूपाः, कुतो हि तिष्ठन्ति शरीरमध्ये ॥२७॥

अन्वयार्थ–(यस्य) जिस आत्मा की **(वपुषा सार्द्धम्)** शरीर के साथ **(अपि)** भी **(न ऐक्यम्)** एकरूपता नहीं है **(तस्य)** उसकी **(पुत्र-कलत्र-मित्रैः सार्द्धम्)** पुत्र, स्त्री और मित्रों से **(किम् ऐक्यम् अस्ति)** क्या एकरूपता है? **(चर्मणि)** चर्म के **(पृथक् कृते)** पृथक् कर देने पर **(शरीरमध्ये)** शरीर के मध्य में **(रोम-कूपाः)** रोम छिद्र **(हि)** निश्चय से **(कुतः तिष्ठन्ति)** कैसे ठहरते हैं? अर्थात् नहीं ठहरते हैं।

मूल (आख्यानकीवृत्तम्)

संयोगतो दुःखमनेकभेदं, यतोऽश्नुते जन्मवने शरीरी।
ततस्त्रिधासौ परिवर्जनीयो, यियासुना निर्वृतिमात्मनीनाम् ॥२८॥

अन्वयार्थ–(यतः) क्योंकि **(शरीरी)** प्राणी **(जन्मवने)** संसाररूपी वन में **(संयोगतः)** संयोग के कारण **(अनेकभेदम्)** अनेक प्रकार वाले **(दुःखम्)** दुख को **(अश्नुते)** पाता है **(ततः)** इसलिए **(आत्मनीनाम्)** अपनी कल्याण-कारिणी **(निर्वृतिम्)** निर्वृति/मुक्ति को **(यियासुना)** प्राप्त करने की इच्छा वाले पुरुष को **(असौ)** वह संयोग/बाह्य वस्तुओं का सम्बन्ध **(त्रिधा)** तीनों प्रकार से अर्थात् मन-वचन-काय से **(परिवर्जनीयः)** परित्याग करने योग्य है।

मूल (उपजातिवृत्तम्)

सर्वं निराकृत्य विकल्प - जालं, संसार-कान्तार-निपातहेतुम्।
विविक्तमात्मान-मवेक्षमाणो, निलीयसे त्वं परमात्मतत्त्वे ॥२९॥

अन्वयार्थ–(संसार-कान्तार-निपातहेतुम्) संसाररूपी वन में पतन के कारणभूत **(सर्वम्)** सभी **(विकल्प-जालम्)** विकल्पों के समूह को **(निराकृत्य)** हटा करके **(विविक्तम्)** एक मात्र अकेली **(आत्मानम्)** आत्मा को **(अवेक्षमाणः)** देखते हुए **(त्वम्)** तुम **(परमात्म-तत्त्वे)** परम आत्मतत्त्व में **(निलीयसे)** लीन रहो।

मूल (वंशस्थवृत्तम्)

स्वयं कृतं कर्म यदात्मना पुरा, फलं तदीयं लभते शुभाशुभम्।
परेण दत्तं यदि लभ्यते स्फुटं, स्वयं कृतं कर्म निरर्थकं तदा ॥३०॥

अन्वयार्थ–(आत्मना) अपने द्वारा **(पुरा)** पहले **(यत् कर्म)** जो कर्म **(स्वयं कृतम्)** स्वयं किया गया है **(तदीयम्)** उसका यह **(शुभाशुभम्**

फलम्) शुभ और अशुभ फल **(स्फुटं)** स्पष्टरूप से **(लभते)** प्राप्त होता है **(यदि)** अगर **(परेण दत्तम्)** दूसरे के द्वारा दिया गया [सुख-दुख] **(लभ्यते)** प्राप्त होता है **(तदा)** तब **(स्वयं कृतम् कर्म)** स्वयं के द्वारा किया गया कर्म **(निरर्थकम्)** निरर्थक/निष्फल हो जावेगा।

मूल (वंशस्थवृत्तम्)

निजार्जितं कर्म विहाय देहिनो, न कोऽपि कस्यापि ददाति किञ्चन।
विचारयन्नेव-मनन्यमानसः, परो ददातीति विमुञ्च शेमुषीम् ॥३१॥

अन्वयार्थ—हे आत्मन्! **(निजार्जितम्)** अपने उपार्जित **(कर्म विहाय)** कर्म को छोड़कर **(कोऽपि)** कोई भी **(कस्य अपि)** किसी भी **(देहिनः)** प्राणी को **(किञ्चन)** कुछ भी **(न ददाति)** नहीं देता है **(एवम्)** ऐसा **(अनन्यमानसः)** एकाग्रचित्त से **(विचारयन्)** विचार करते हुए **(परः)** दूसरा कोई **(ददाति)** देता है **(इति)** इस प्रकार की **(शेमुषीम्)** बुद्धि को **(विमुञ्च)** छोड़ो।

मूल (अनुकूला वृत्तम्)

यैः परमात्मामितगतिवन्द्यः, सर्वविविक्तो भृशमनवद्यः।
शश्वदधीतो मनसि लभन्ते, मुक्तिनिकेतं विभववरं ते ॥३२॥

अन्वयार्थ—(अमित-गति-वन्द्यः) अपरिमित ज्ञान वाले गणधर श्रुत-केवलियों द्वारा अथवा अमितगति आचार्य द्वारा वन्दनीय **(सर्व-विविक्तः)** सर्व कर्म विमुक्त **(भृशम्)** अत्यन्त **(अनवद्यः)** निर्दोष **(परमात्मा)** परमात्मा **(यैः)** जिन पुरुषों द्वारा **(मनसि)** मन में **(शश्वत्)** निरन्तर **(अधीतः)** चिन्तन किया जाता है **(ते)** वे पुरुष **(विभव-वरम्)** परम वैभव वाले **(मुक्ति-निकेतम्)** मुक्तिरूपी महल को **(लभन्ते)** प्राप्त होते हैं।

मूल (अनुष्टुप् वृत्तम्)

इति द्वात्रिंशतावृत्तैः, परमात्मानमीक्षते।
योऽनन्यगत-चेतस्को, यात्यसौ पदमव्ययम् ॥

अन्वयार्थ—(यः) जो **(अनन्य-गत-चेतस्कः)** एकाग्रचित वाला **(द्वात्रिंशतावृत्तैः)** बत्तीस पद्यों से **(परमात्मानम्)** परमात्मा को **(ईक्षते)** देखता है **(असौ)** वह **(अव्ययम्)** अविनाशी **(पदम्)** [शिव] पद को **(याति)** प्राप्त होता है।

मृत्यु महोत्सव

मृत्यु - मार्गे प्रवृत्तस्य वीतरागो ददातु मे।
समाधि-बोधि-पाथेयं यावन्मुक्ति-पुरी पुरः॥१॥

अन्वयार्थ—(यावत्) जब तक **(मुक्ति-पुरी)** मुक्तिरूपी नगरी **(पुरः)** सम्मुख न आ जाये, **(वीतरागः)** वीतराग भगवान् **(मृत्युमार्गे)** मृत्यु-मार्ग पर **(प्रवृत्तस्य मे)** प्रवृत्ति करने वाले मेरे लिए **(समाधि-बोधि-पाथेयं)** समाधि और बोधिरूपी पाथेय/नास्ता **(ददातु)** प्रदान करें।

कृमि - जाल - शताकीर्णे, जर्जरे देह - पञ्जरे।
भज्यमाने न भेतव्यं, यतस्त्वं ज्ञान-विग्रहः ॥२॥

अन्वयार्थ—(कृमिजालशताकीर्णे) सैकड़ों कीड़े-मकोड़े/कीटाणुओं के समूहों से व्याप्त **(जर्जरे)** जीर्ण-शीर्ण **(देह-पञ्जरे भज्यमाने)** देहरूपी पिंजरे के नष्ट होने पर **(भेतव्यं न)** भयभीत नहीं होना चाहिए **(यतः)** क्योंकि **(त्वं)** तुम **(ज्ञान विग्रहः)** ज्ञान-शरीरी हो।

ज्ञानिन् भयं भवेत्कस्मात्प्राप्ते मृत्यु-महोत्सवे।
स्वरूपस्थः पुरं याति, देही देहान्तर-स्थितिम् ॥३॥

अन्वयार्थ—(ज्ञानिन्!) हे ज्ञानी जीव! **(मृत्यु-महोत्सवे)** मृत्यु महोत्सव के **(प्राप्ते)** प्राप्त होने पर **(भयं)** भय **(कस्मात्)** किससे **(भवेत्)** होवे? **(स्वरूपस्थः)** स्वरूप-स्थित **(देही)** जीवात्मा **(देहान्तरणस्थितिं पुरं)** अन्य देह में स्थितिरूप नगर को **(याति)** प्राप्त होता है।

सुदत्तं प्राप्यते यस्माद्, दृश्यते पूर्व-सत्तमैः।
भुज्यते-स्वर्भवं सौख्यं मृत्यु-भीतिः कुतः सताम् ॥४॥

अन्वयार्थ—(सतां) सत्पुरुषों के **(मृत्युभीतिः)** मृत्यु का भय **(कुतः)** कैसे **(दृश्यते)** देखा जा सकता है **(यस्मात्)** जिस मृत्यु के कारण **(पूर्वसत्तमैः)** पूर्ववर्ती सत्पुरुषों के द्वारा **(सुदत्तं)** सुपात्रों को प्रदत्त दान **(प्राप्यते)** प्राप्त होता है **(स्वर्भवं)** स्वर्ग में होने वाला **(सौख्यं)** सुख **(भुज्यते)** भोगा जाता है।

आगर्भाद्दुःख - सन्तप्तः प्रक्षिप्तो देह-पिञ्जरे।
नात्मा विमुच्यतेऽन्येन मृत्यु-भूमिपतिं विना ॥५॥

अन्वयार्थ—(आगर्भात्) गर्भावस्था के प्रारम्भ से **(देह-पिञ्जरे)** देहरूपी

पिञ्जरे में **(प्रक्षिप्तः)** डाली गयी **(दुःखसन्तप्तः आत्मा)** दुःखों से सन्तप्त आत्मा **(मृत्युभूमिपतिं विना)** मृत्युरूपी राजा के बिना **(अन्येन)** अन्य द्वारा **(न विमुच्यते)** नहीं छोड़ी जाती।

सर्व - दुःखं - प्रदं पिण्डं दूरीकृत्यात्मदर्शिभिः।
मृत्यु-मित्र-प्रसादेन प्राप्यन्ते सुख-सम्पदः ॥६॥

अन्वयार्थ—(मृत्यु-मित्रप्रसादेन) मृत्युरूपी मित्र के प्रसाद/कृपा से **(सर्वदुःखप्रदं पिण्डं)** सर्व दुखों को प्रदान करने वाले शरीर को **(दूरीकृत्य)** दूर करके **(आत्मदर्शिभिः)** आत्मदर्शी-जनों द्वारा **(सुख-सम्पदः)** सुख-सम्पदाएँ **(प्राप्यन्ते)** प्राप्त की जाती हैं।

मृत्यु-कल्पद्रुमे प्राप्ते येनात्मार्थो न साधितः।
निमग्नो जन्म-जम्बाले स पश्चात् किं करिष्यति ॥७॥

अन्वयार्थ—(येन) जिसके द्वारा **(मृत्यु-कल्पद्रुमे प्राप्ते)** मृत्युरूपी कल्पवृक्ष के प्राप्त होने पर **(आत्मार्थः)** आत्महित **(न साधितः)** नहीं साधा गया **(सः)** वह **(जन्म-जम्बाले)** संसाररूपी कीचड़ में **(निमग्नः)** निमग्न **(पश्चात्)** आगामी काल में **(किं करिष्यति)** क्या करेगा ?

जीर्णं देहादिकं सर्वं नूतनं जायते यतः।
स मृत्युः किं न मोदाय सतां सतोत्थितिर्यथा ॥८॥

अन्वयार्थ—(यतः) जिससे **(जीर्ण देहादिकं)** जीर्ण शरीरादि **(सर्वं)** सर्व **(नूतनं)** नवीन **(जायते)** हो जाते हैं, **(सः मृत्युः)** वह मृत्यु **(किं)** क्या **(सतां)** सत्पुरुषों के **(मोदाय)** हर्ष के लिए **(न)** न होगी, **(यथा)** जिस प्रकार **(सातोत्थितिः)** साता अर्थात् पुण्य का उदय होता है ?

सुखं दुःखं सदा वेत्ति देहस्थश्च स्वयं व्रजेत्।
मृत्यु-भीतिस्तदा कस्य जायते परमार्थतः ॥९॥

अन्वयार्थ—(देहस्थः) शरीर में स्थित जीव **(सदा)** सदा **(सुखं दुःखं)** सुख-दुख को **(वेत्ति)** जानता है **(च)** और **(स्वयं)** स्वयं **(व्रजेत्)** प्रयाण करें **(तदा)** तब **(परमार्थतः)** परमार्थ से **(मृत्यु-भीतिः)** मृत्यु का भय **(कस्य)** किसे **(जायते)** हो सकता है ?

संसारासक्त-चित्तानां मृत्युर्भीत्यै भवेन्नृणाम्।
मोदायते पुनः सोऽपि ज्ञान-वैराग्यवासिनाम् ॥१०॥

अन्वयार्थ–(संसारासक्तचित्तानां नृणां) संसार में आसक्त है चित्त जिनका, ऐसे मनुष्यों की **(मृत्युः)** मृत्यु **(भीत्यै)** भय के लिए **(भवेत्)** होती है **(पुनः)** और **(सः अपि)** वही **(ज्ञानवैराग्यवासिनां)** ज्ञान एवं वैराग्यवासियों के **(मोदायते)** आनन्द का विषय होती है।

पुराधीशो यदा याति सुकृत्यस्य बुभुत्सया।
तदासौ वार्यते केन प्रपञ्चैः पाञ्च-भौतिकैः॥११॥

अन्वयार्थ–(यदा) जब **(पुराधीशः)** जीव **(सुकृत्यस्य)** पुण्य के **(बुभुत्सया)** भोगने/जानने की इच्छा से **(याति)** प्रयाण करता है, **(तदा)** तब **(असौ)** वह **(पाञ्चभौतिकैः प्रपञ्चैः)** पंचभूतों के समूह से **(केन)** किसके द्वारा **(वार्यते)** रोका जा सकता है?

मृत्यु-काले सतां दुःखं यद् भवेद् व्याधि-संभवम्।
देह-मोह-विनाशाय मन्ये शिव-सुखाय च ॥१२॥

अन्वयार्थ–(सतां) सत्पुरुषों के **(मृत्युकाले)** मृत्युकाल में **(व्याधिसंभवं)** व्याधियों से उत्पन्न **(यत्)** जो **(दुःखं)** दुख **(भवेत्)** होता है, **(मन्ये)** मैं समझता हूँ वह **(देहमोहविनाशाय)** देह सम्बन्धी मोह नष्ट करने के लिए **(च)** और **(शिवसुखाय)** मोक्ष-सुख के लिए होता है।

ज्ञानिनोऽमृत - सङ्गाय मृत्युस्तापकरोऽपि सन्।
आमकुम्भस्य लोकेऽस्मिन् भवेत्पाकविधिर्यथा ॥१३॥

अन्वयार्थ–(अस्मिन् लोके) इस लोक में **(यथा)** जिस प्रकार **(आमकुम्भस्य)** कच्चे घड़े की **(पाकविधिः)** पाकविधि, **(ताप-करः सन् अपि)** तापकारी होते हुए भी **(अमृतसङ्गाय)** जल के समागम के लिए **(भवेत्)** होती है, उसीप्रकार **(ज्ञानिनः)** ज्ञानी की **(मृत्युः)** मृत्यु **(अमृतसङ्गाय)** अमरत्व के समागम के लिए होती है।

यत्फलं प्राप्यते सद्भिर्व्रतायास - विडम्बनात्।
तत्फलं सुखसाध्यं स्यान्मृत्यु-काले समाधिना ॥१४॥

अन्वयार्थ–(सद्भिः) सत्पुरुषों द्वारा **(व्रतायास-विडम्बनात्)** व्रतों के पुरुषार्थ सम्बन्धी क्लेश से **(यत् फलं)** जो फल **(प्राप्यते)** प्राप्त किया जाता है **(मृत्युकाले)** मृत्यु-काल में **(समाधिना)** समाधि के द्वारा **(तत् फलं)** वह फल **(सुखसाध्यं)** सुखपूर्वक साधने-योग्य **(स्यात्)** हो सकता

है।

अनार्तः शान्तिमान् मर्त्यो न तिर्यग्नापि नारकः।
धर्म्य-ध्यानी पुरो मर्त्योऽनशनी त्वमरेश्वरः ॥१५॥

अन्वयार्थ—(अनार्तः) मरण के समय पीड़ा-रहित **(शान्तिमान्)** शान्ति-सम्पन्न अर्थात् रागद्वेष रहित **(मर्त्यः)** मनुष्य **(पुरः)** आगामी जन्म में **(न तिर्यक्)** न तिर्यञ्च **(नापि)** न ही **(नारकः)** नारक होता है **(धर्म्यध्यानी)** धर्म्यध्यानी एवं **(अनशनी मर्त्यः)** उपवासी मनुष्य **(तु)** तो **(अमरेश्वरः)** देवों का इन्द्र होता है।

तप्तस्य तपसश्चापि पालितस्य व्रतस्य च।
पठितस्य श्रुतस्यापि फलं मृत्युः समाधिना ॥१६॥

अन्वयार्थ—(तप्तस्य) तपे हुए **(तपसः च अपि)** तप का, **(पालितस्य)** पाले हुए **(व्रतस्य च)** व्रत का और **(पठितस्य)** पढ़े हुए **(श्रुतस्य)** शास्त्र का **(अपि)** भी **(फलं)** फल **(समाधिना)** समाधि-पूर्वक **(मृत्युः)** मृत्यु है।

अतिपरिचितेष्ववज्ञा नवे भवेत्प्रीतिरिति हि जन-वादः।
चिरंतर-शरीर-नाशे नवतर-लाभे च किं भीरुः ॥१७॥

अन्वयार्थ—(हि) चूँकि **(इति जनवादः)** ऐसी लोकोक्ति है कि **(अति-परिचितेषु)** अति-परिचितों में **(अवज्ञा)** अवमानना का भाव और **(नवे)** नवीन के प्रति **(प्रीतिः)** प्रीति **(भवेत्)** होती है इसलिए **(चिरंतरशरीरनाशे)** अत्यन्त पुराने शरीर का नाश **(च)** और **(नवतरलाभे)** अतिशय नवीन का लाभ होने पर **(भीरुः)** भीरु **(किं)** क्या होना ?

स्वर्गादेत्य पवित्र-निर्मल - कुले संस्मर्यमाणा जनै-
र्दत्वा भक्ति-विधायिनां बहुविधं वाञ्छानुरूपं धनम्!
भुक्त्वा भोगमहर्निशं पर-कृतं स्थित्वा क्षणं मण्डले,
पात्रावेश-विसर्जनामिव मृतिं सन्तो लभन्ते स्वतः ॥१८॥

अन्वयार्थ—(स्वर्गात्) देव-लोक से **(पवित्र निर्मल-कुले)** पवित्र एवं निर्मल कुल में **(एत्य)** आ करके वे भव्य-जन **(भक्ति-विधायिनां)** सेवा करने वाले तथा कुटुम्ब, परिवार, मित्रादि के लिए **(बहुविधं)** अनेक प्रकार का **(वाञ्छानुरूपं)** इच्छानुकूल **(धनं)** धन **(दत्वा)** प्रदान कर

(जनैः) सर्वजनों के द्वारा **(संस्मर्यमाणाः सन्तः)** संस्मृत होते हुए तथा **(अहर्निशं)** दिन-रात **(पर-कृतं)** पुण्य-प्रदत्त/इन्द्रियजनित **(भोगं)** सांसारिक-सुख को **(भुक्त्वा)** भोगकर **(मण्डले)** पृथ्वीमण्डल पर **(इव)** मानो **(क्षणं)** क्षण भर **(स्थित्वा)** ठहरकर **(स्वतः)** स्वयं **(पात्रावेश विसर्जनां)** पात्र-सम्बन्धी आवेश का है विसर्जन जिसमें अर्थात् जैसे नृत्य के अखाड़े में नृत्य करने वाला पुरुष लोगों को आनन्द प्रदान कर निकल जाता है ऐसी **(मृतिं)** मृत्यु/निर्वाण को **(सन्तो)** सन्त **(लभन्ते)** प्राप्त कर लेते हैं।

❑ ❑ ❑

इष्ट प्रार्थना

हमारे कष्ट मिट जाये, नहीं यह प्रार्थना स्वामी।
डरे न संकटों से हम, यही है भावना स्वामी॥१॥
हमारा भार घट जाये, नहीं यह प्रार्थना स्वामी।
किसी पर भार न हों हम, यही है भावना स्वामी॥२॥
फले आशा सभी मन की, नहीं यह प्रार्थना स्वामी।
निराशा हो न अपने से, यही है भावना स्वामी॥३॥
बढ़े धन सम्पदा भारी, नहीं यह प्रार्थना स्वामी।
रहे संतोष थोड़े में, यही है भावना स्वामी॥४॥
दुःखों में साथ दे कोई, नहीं यह प्रार्थना स्वामी।
बने सक्षम स्वयं ही हम, यही है भावना स्वामी॥५॥
दुःखी हों दुष्ट जन सारे, नहीं यह प्रार्थना स्वामी।
सभी दुर्जन बने सज्जन, यही है भावना स्वामी॥६॥
सभी पीछे रहें हमसे, नहीं यह प्रार्थना स्वामी।
बढ़ें आगे हमी से हम, यही है भावना स्वामी॥७॥
करें बर्ताव सब अच्छा, नहीं यह प्रार्थना स्वामी।
सुधर जायें स्वयं ही हम, यही है भावना स्वामी॥८॥
दुखों में आपको ध्यायें, नहीं यह प्रार्थना स्वामी।
कभी न आपको भूलें, यही है भावना स्वामी॥९॥

छहढाला

पहली ढाल

तीन भुवन में सार, वीतराग विज्ञानता ।
शिवस्वरूप शिवकार, नमहुँ त्रियोग सम्हारिकैं ॥

जे त्रिभुवन में जीव अनन्त, सुख चाहैं दुःखतैं भयवन्त ।
तातैं दुःखहारि सुखकार, कहैं सीख गुरु करुणा धार ॥१॥
ताहि सुनो भवि मन थिर आन, जो चाहो अपनो कल्यान।
मोह-महामद पियो अनादि, भूल आपको भरमत वादि ॥२॥
तास भ्रमण की है बहु कथा, पै कछु कहूँ कही मुनि यथा।
काल अनन्त निगोद मंझार, बीत्यो एकेन्द्री-तन धार ॥३॥
एक श्वास में अठदस बार, जन्म्यो मर्‌यो भर्‌यो दुःख भार।
निकसिभूमि-जल-पावकभयो,पवन-प्रत्येकवनस्पति थयो ॥४॥
दुर्लभ लहि ज्यों चिन्तामणि, त्यों पर्याय लही त्रसतणी।
लट पिपीलि अलि आदि शरीर, धरिधरि मर्‌यो सही बहुपीर ॥५॥
कबहूँ पंचेन्द्रिय पशु भयो, मन बिन निपट अज्ञानी थयो।
सिंहादिक सैनी ह्वै क्रूर, निबल-पशु हति खाये भूर ॥६॥
कबहूँ आप भयो बलहीन, सबलनि करि खायो अतिदीन।
छेदन भेदन भूख पियास, भार वहन हिम आतप त्रास ॥७॥
वध-बन्धन आदिक दुःख घने, कोटि जीभतैं जात न भने ।
अति संक्लेश-भावतैं मर्‌यो, घोर श्वभ्र-सागर में पर्‌यो ॥८॥
तहाँ भूमि परसत दुःख इसो, बिच्छू सहस डसै नहिं तिसो ।
तहाँ राध श्रोणित-वाहिनी, कृमि-कुल-कलितदेहदाहिनी ॥९॥
सेमर-तरु- दल जुत असिपत्र, असि ज्यों देह विदारै तत्र।
मेरु समान लोह गलि जाय, ऐसी शीत उष्णता थाय ॥१०॥
तिल-तिल करैं देह के खण्ड, असुर भिडावैं दुष्ट प्रचण्ड।
सिन्धु-नीरतैं प्यास न जाय, तो पण एक न बूँद लहाय ॥११॥
तीन लोक को नाज जु खाय, मिटै न भूख कणा न लहाय।
ये दुःख बहु सागर लौं सहै, करम जोग तैं नर गति लहै ॥१२॥

जननी-उदर वस्यो नव मास, अंग-सकुचतैं पाई त्रास।
निकसत जे दुःख पाये घोर, तिनको कहत न आवे ओर॥१३॥
बालपने में ज्ञान न लह्यो, तरुण समय तरुणीरत रह्यो।
अर्धमृतक सम बूढापनों, कैसे रूप लखै आपनो ॥१४॥
कभी अकाम निर्जरा करै, भवनत्रिक में सुर-तन धरै।
विषयचाह-दावानल दह्यो, मरत विलाप करत दुःख सह्यो ॥१५॥
जो विमानवासी हूँ थाय, सम्यग्दर्शन बिन दुःख पाय।
तहँ ते चय थावर-तन धरै, यों परिवर्तन पूरे करै ॥१६॥

दूसरी ढाल

ऐसे मिथ्यादृग-ज्ञानचरण,वश भ्रमत भरत दुःख जन्म-मरण।
तातैं इनको तजिये सुजान, सुन तिन संक्षेप कहूँ बखान ॥१॥
जीवादि प्रयोजनभूत तत्त्व, सरधै तिनमाँहि विपर्ययत्व।
चेतन को है उपयोग रूप, विन मूरति चिन्मूरति अनूप ॥२॥
पुद्गल नभ धर्म अधर्म काल, इनतैं न्यारी है जीव-चाल।
ताकों न जान विपरीत मान, करि करै देह में निज पिछान ॥३॥
मैं सुखी दुखी मैं रंक राव, मेरे धन गृह गोधन प्रभाव।
मेरे सुत तिय मैं सबल दीन, बेरूप सुभग मूरख प्रवीन ॥४॥
तन उपजत अपनी उपज जान, तन नशत आपको नाश मान।
रागादि प्रगट जे दुःख दैन, तिनही को सेवत गिनत चैन ॥५॥
शुभ-अशुभ-बन्ध के फल मंझार,रति अरति करै निजपद विसार।
आतमहित-हेतु विराग-ज्ञान, ते लखें आपको कष्ट दान ॥६॥
रोके न चाह निज शक्ति खोय, शिवरूप निराकुलता न जोय।
याही प्रतीतिजुत कछुक ज्ञान, सो दुःखदायक अज्ञान जान ॥७॥
इन जुत विषयनि में जो प्रवृत्त, ताको जानहु मिथ्याचरित्त।
यों मिथ्यात्वादि निसर्ग जेह, अब जे गृहीत सुनिये सु तेह ॥८॥
जे कुगुरु कुदेव कुधर्म सेव, पोषैं चिर दर्शनमोह एव।
अन्तर रागादिक धरैं जेह, बाहर धन अम्बरतैं सनेह ॥९॥
धारैं कुलिंग लहि महत-भाव, ते कुगुरु जन्म-जल-उपल-नाव।
जे रागद्वेषमल करि मलीन, वनिता गदादिजुत चिह्न चीन ॥१०॥

ते हैं कुदेव तिनकी जु सेव, शठ करत न तिन भवभ्रमण-छेव।
रागादि-भाव हिंसा समेत, दर्वित त्रस-थावर मरन-खेत ॥११॥
जे क्रिया तिन्हैं जानहु कुधर्म, तिन सरधै जीव लहै अशर्म।
याकूँ गृहीत मिथ्यात्व जान, अब सुन गृहीत जो है अज्ञान ॥१२॥
एकान्तवाद दूषित समस्त, विषयादिक-पोषक अप्रशस्त।
कपिलादिरचित श्रुत को अभ्यास, सो है कुबोध बहु देन त्रास ॥१३॥
जो ख्याति-लाभ पूजादि चाह,धरि करन विविध-विध देहदाह।
आतम अनात्म के ज्ञान-हीन, जे जे करनी तन करन-छीन ॥१४॥
ते सब मिथ्याचारित्र त्याग, अब आतम के हित-पन्थ लाग।
जगजाल भ्रमण को देहु त्याग, अब 'दौलत' निज आतम सुपाग ॥१५॥

तीसरी ढाल

आतम को हित है सुख, सो सुख आकुलता बिन कहिये।
आकुलता शिवमाँहि न तातैं, शिव-मग लाग्यो चहिये ॥
सम्यग्दर्शन - ज्ञान - चरन शिवमग सो दुविध विचारो।
जो सत्यारथरूप सु निश्चय, कारन सो व्यवहारो ॥१॥
पर-द्रव्यनतैं भिन्न आप में, रुचि सम्यक्त्व भला है।
आप रूप को जानपनो, सो सम्यग्ज्ञान कला है ॥
आप रूप में लीन रहे थिर, सम्यक्चारित्र सोई।
अब व्यवहार मोक्ष मग सुनिये, हेतु नियत को होई ॥२॥
जीव-अजीव तत्त्व अरु आस्रव, बन्धरु संवर जानो।
निर्जर मोक्ष कहे जिन तिनको, ज्यौं का त्यौं सरधानो ॥
है सोई समकित व्यवहारी, अब इन रूप बखानो।
तिनको सुनि सामान्य-विशेषै, दृढ प्रतीति उर आनो ॥३॥
बहिरातम, अन्तर - आतम, परमातम जीव त्रिधा है ।
देह जीव को एक गिनै बहिरातम - तत्त्व मुधा है ॥
उत्तम मध्यम जघन त्रिविध के, अन्तर - आतम - ज्ञानी।
द्विविध संग बिन शुध - उपयोगी, मुनि उत्तम निजध्यानी ॥४॥
मध्यम अन्तर आतम हैं जे, देशव्रती अनगारी।
जघन कहे अविरत - समदृष्टी, तीनों शिवमगचारी ॥

सकल निकल परमातम द्वैविध, तिनमें घाति निवारी।
श्री अरहन्त सकल परमातम, लोकालोक - निहारी ॥५॥
ज्ञानशरीरी त्रिविध कर्ममल - वर्जित, सिद्ध महन्ता।
ते हैं निकल अमल परमातम, भोगैं शर्म अनन्ता ॥
बहिरातमता हेय जानि तजि, अन्तर आतम हूजै।
परमातम को ध्याय निरन्तर, जो नित आनन्द पूजै ॥६॥
चेतनता बिन सो अजीव हैं, पञ्च भेद ताके हैं।
पुद्गल पंच वरन रस गन्ध दो, फरस वसु जाके हैं ॥
जिय - पुद्गल को चलन सहाई, धर्म द्रव्य अनरूपी।
तिष्ठत होय अधर्म सहाई, जिन बिनमूर्ति निरूपी ॥७॥
सकल - द्रव्य को वास जास में, सो आकाश पिछानो।
नियत वरतना निशि-दिन सो, व्यवहार काल परिमानो ॥
यों अजीव, अब आस्रव सुनिये, मन-वच-काय त्रियोगा।
मिथ्या अविरत अरु कषाय, परमादसहित उपयोगा ॥८॥
ये ही आतम को दुःख - कारन, तातैं इनको तजिये।
जीव - प्रदेश बँधै विधि सों सो, बन्धन कबहुँ न सजिये ॥
शम - दमतैं जो कर्म न आवैं, सो संवर आदरिये।
तप - बलतैं विधि-झरन निरजरा, ताहि सदा आचरिये ॥९॥
सकल - करमतैं रहित अवस्था, सो शिव, थिर सुखकारी।
इहिविधि जो सरधा तत्त्वन की, सो समकित व्यवहारी ॥
देव जिनेन्द्र गुरु परिग्रह बिन, धर्म दयाजुत सारो।
येहू मान समकित को कारन, अष्ट अंग-जुत धारो ॥१०॥
वसु मद टारि निवारि त्रिशठता, षट् अनायतन त्यागो।
शंकादिक वसु दोष बिना संवेगादिक चित पागो ॥
अष्ट अंग अरु दोष पचीसों, तिन संक्षेप हु कहिये।
विन जानेतैं दोष-गुनन को, कैसे तजिये गहिये ॥११॥
जिन - वच में शंका न, धारि वृष, भव - सुख - वांछा भानै।
मुनि - तन मलिन न देख घिनावै, तत्त्व कुतत्त्व पिछानै ॥

निज – गुन अरु पर औगुन ढाकै, वा निज – धर्म – बढ़ावै।
कामादिक कर वृषतैं चिगते, निज–पर को सु दृढ़ावै ॥१२॥
धर्मीसों गउ – वच्छ – प्रीति – सम, कर जिन – धर्म दिपावै।
इन गुनतैं विपरीत दोष वसु, तिनकों सतत खिपावै ॥
पिता भूप वा मातुल नृप जो, होय न तो मद ठानै।
मद न रूप को, मद न ज्ञान को, धन बल को मद भानै ॥१३॥
तप को मद, न मद जु प्रभुता को, करै न सो निज जानै।
मद धारै तो यही दोष वसु, समकित को मल ठानै ॥
कुगुरु – कुदेव – कुवृष – सेवक की, नहिं प्रशंस उचरै है।
जिनमुनि जिनश्रुत बिन, कुगुरादिक तिन्हैं न नमन करै है ॥१४॥
दोषरहित गुनसहित सुधी जे, सम्यक्दर्श सजै हैं।
चरितमोहवश लेश न संजम, पै सुरनाथ जजै हैं ॥
गेही पै गृह में न रचै ज्यों, जलतैं भिन्न कमल है।
नगरनारि को प्यार यथा, कादे में हेम अमल है ॥१५॥
प्रथम नरक बिन षट् भू ज्योतिष, वान भवन षढ नारी।
थावर विकलत्रय पशु में नहिं, उपजत समकितधारी ॥
तीन लोक तिहुँ काल माँहि नहिं, दर्शनसो सुखकारी।
सकल धरम को मूल यही इस, बिन करनी दुखकारी ॥१६॥
मोक्ष – महल की परथम सीढ़ी, या बिन ज्ञान चरित्रा।
सम्यकता न लहै सो दर्शन, धारो भव्य पवित्रा ॥
'दौल' समझ सुन चेत सयाने, काल वृथा मत खोवै।
यह नर–भव फिर मिलन कठिन है, जो सम्यक् नहिं होवै ॥१७॥

चौथी ढाल

सम्यक्श्रद्धा धारि पुनि, सेवहु सम्यग्ज्ञान।
स्व–पर अर्थ बहु धर्मजुत, जो प्रकटावन भान ॥
सम्यक्साथै ज्ञान होय पै भिन्न अराधो।
लक्षण श्रद्धा जान दुहूमें भेद अबाधो ॥
सम्यक् कारण जान ज्ञान कारज है सोई।
युगपत् होतैं हूँ प्रकाश दीपक तैं होई ॥१॥

तास भेद दो हैं परोक्ष परतछ तिनमाहीं।
मति श्रुत दोय परोक्ष अक्ष मन तैं उपजाहीं॥
अवधिज्ञान मनपर्जय, दो हैं देशप्रतच्छा।
द्रव्य-क्षेत्र-परिमान लिये, जानैं जिय स्वच्छा ॥२॥
सकल द्रव्यके गुण अनन्त परजाय अनन्ता।
जानैं एकै काल प्रगट केवलि भगवन्ता॥
ज्ञान समान न आन जगत में सुख को कारन।
इह परमामृत जन्म जरा-मृत-रोग-निवारन ॥३॥
कोटि जन्म तप तपैं, ज्ञान बिन कर्म झरैं जे।
ज्ञानी के छिन माँहि, त्रिगुप्ति तैं सहज टरैं ते॥
मुनिव्रत धार, अनन्त बार ग्रीवक उपजायो।
पै निजआतमज्ञान बिना, सुख लेश न पायो॥४॥
तातैं जिनवर - कथित, तत्त्व अभ्यास करीजै।
संशय विभ्रम मोह त्याग, आपो लखि लीजै॥
यह मानुष - परजाय, सुकुल सुनिवो जिन - वानी।
इह विधि गये न मिलैं, सुमणि ज्यों उदधि समानी॥५॥
धन समाज गज बाज, राज तो काज न आवै।
ज्ञान आपको रूप भये, फिर अचल रहावै॥
तास ज्ञान को कारन स्व - पर - विवेक बखानो।
कोटि उपाय बनाय भव्य ताको उर आनो ॥६॥
जे पूरब शिव गये, जाहिं अरु आगे जै हैं।
सो सब महिमा ज्ञानतनी, मुनिनाथ कहै हैं॥
विषय - चाह - दव - दाह, जगत - जन अरनि दझावै।
तास उपाय न आन ज्ञान-घनघान बुझावै ॥७॥
पुण्य - पाप - फलमाहिं हरख विलखौ मत भाई।
यह पुद्गल - परजाय उपजि विनसै फिर थाई॥
लाख बात की बात यहै निश्चय उर लावो।
तोरि सकलजग - दन्द - फन्द निज-आतम ध्यावो॥८॥

सम्यग्ज्ञानी होय बहुरि दृढ़ चारित लीजै।
एकदेश अरु सकलदेश, तसु भेद कहीजै ॥
त्रस - हिंसा को त्याग, वृथा थावर न सँघारै।
पर - वधकार कठोर निन्द्य, नहिं वयन उचारै ॥९॥
जल मृतिका बिन और नाहिं कछु गहै अदत्ता।
निज वनिता बिन सकल नारि सों रहै विरत्ता ॥
अपनी शक्ति विचार, परिग्रह थोरो राखै।
दश दिश गमन-प्रमान, ठान तसु सीम न नाखै ॥१०॥
ताहू में फिर ग्राम, गली गृह बाग बजारा।
गमनागमन प्रमान, ठान अन सकल निवारा ॥
काहू की धन-हानि, किसी जय हार न चिन्तैं।
देय न सो उपदेश होय अघ बनिज कृषी तैं ॥११॥
कर प्रमाद जल भूमि, वृक्ष पावक न विराधै।
असि धनु हल हिंसोपकरन, नहिं दे जस लाधै ॥
राग-द्वेष-करतार, कथा कबहूँ न सुनीजै।
और हु अनरथदण्ड-हेतु, अघ तिन्हैं न कीजै ॥१२॥
धर उर समता-भाव, सदा सामायिक करिये।
परव - चतुष्टयमाहिं, पाप तजि प्रोषध धरिये ॥
भोग और उपभोग, नियम करि ममत निवारै।
मुनि को भोजन देय, फेर निज करहि अहारै ॥१३॥
बारह व्रत के अतीचार, पन-पन न लगावै।
मरण समय संन्यास धारि, तसु दोष नसावै ॥
यों श्रावक व्रत पाल, स्वर्ग सोलम उपजावै।
तहंतै चय नर-जन्म पाय मुनि ह्वै शिव जावै ॥१४॥

पाँचवी ढाल

मुनि सकलव्रती बड़भागी, भवभोगन तैं वैरागी।
वैराग्य उपावन माई, चिन्तैं अनुप्रेक्षा भाई ॥१॥
इन चिन्तत समसुख जागै, जिमि ज्वलन पवन के लागै।
जब ही जिय आतम जानै, तब ही जिय शिवसुख ठानै ॥२॥
जोवन गृह गोधन नारी, हय गय जन आज्ञाकारी।
इन्द्रिय भोग छिन थाई, सुरधनु चपला चपलाई ॥३॥
सुर असुर खगाधिप जेते, मृग ज्यों हरि काल दले ते।
मणि मन्त्र तन्त्र बहु होई, मरते न बचावै कोई ॥४॥
चहुँगति दुःख जीव भरै हैं, परिवर्तन पंच करै हैं।
सब विधि संसार असारा, यामें सुख नाहिं लगारा ॥५॥
शुभ-अशुभ करम फल जेते, भोगैं जिय एकहिं तेते।
सुत दारा होय न सीरी, सब स्वारथ के हैं भीरी ॥६॥
जल-पय ज्यौं जिय-तन मेला, पै भिन्न-भिन्न नहिं भेला।
तो प्रगट जुदे धन-धामा, क्यों ह्वै इक मिलि सुत रामा ॥७॥
पल-रुधिर राध-मल-थैली, कीकस वसादि तैं मैली।
नवद्वार बहैं घिनकारी, अस देह करै किम यारी ॥८॥
जो जोगन की चपलाई, तातैं ह्वै आस्रव भाई।
आस्रव दुखकार घनेरे, बुधिवन्त तिन्हैं निरवेरे ॥९॥
जिन पुण्य-पाप नहिं कीना, आतम अनुभव चित दीना।
तिन ही विधि आवत रोके, संवर लहि सुख अवलोके ॥१०॥
निज काल पाय विधि झरना, तासौं निज-काज न सरना।
तप करि जो कर्म खिपावै,सोई शिवसुख दरसावै ॥११॥
किन हू न कर्‌यो न धरै को, षट्द्रव्यमयी न हरै को।
सो लोकमाँहिं बिन समता, दुःख सहै जीव नित भ्रमता ॥१२॥
अन्तिम ग्रीवक लौं की हद, पायो अनन्त बिरियाँ पद।
पर सम्यग्ज्ञान न लाधौ, दुर्लभ निज में मुनि साधौ ॥१३॥
जे भाव मोह तैं न्यारे, दृग ज्ञान व्रतादिक सारे।
सो धर्म जबै जिय धारै, तब ही सुख अचल निहारै ॥१४॥

सो धर्म मुनिन करि धरिये, तिनकी करतूति उचरिये।
ताको सुनिये भवि प्रानी, अपनी अनुभूति पिछानी ॥१५॥

छठवीं ढाल

षट्काय जीव न हनन तैं, सब विधि दरब-हिंसा टरी।
रागादि भाव निवारतैं, हिंसा न भावित अवतरी॥
जिनके न लेश मृषा न जल मृण हू बिना दीयो गहैं।
अठदशसहस विधि शीलधर, चिद्ब्रह्म में नित रमि रहैं॥१॥
अन्तर चतुर्दश भेद बाहिर, संग दशधा तैं टलैं।
परमाद तजि चउ कर मही लखि, समिति ईर्या तैं चलैं॥
जग सुहितकर सब अहितहर, श्रुतिसुखद सब संशय हरैं।
भ्रम-रोग-हर जिनके वचन, मुखचन्द्र तैं अमृत झरैं॥२॥
छ्यालीस दोष बिना सुकुल, श्रावक तनैं घर अशन को।
लैं तप बढ़ावन हेतु, नहिं तन पोषते तजि रसन को॥
शुचि ज्ञान संयम उपकरण, लखिकैं गहैं लखिकैं धरैं।
निर्जन्तु थान विलोक तन-मल, मूत्र श्लेषम परिहरैं॥३॥
सम्यक् प्रकार निरोध मन-वच-काय आतम ध्यावते।
तिन सुथिर-मुद्रा देखि मृग-गण, उपल खाज खुजावते॥
रस रूप गन्ध तथा फरस, अरु शब्द शुभ असुहावने।
तिनमें न राग विरोध, पंचेन्द्रिय-जयन पद पावने॥४॥
समता सम्हारैं थुति उचारैं, वन्दना जिनदेव को।
नित करैं श्रुतरति करै प्रतिक्रम, तजैं तन अहमेव को॥
जिनके न न्हौंन न दन्त-धोवन, लेश अम्बर आवरन।
भूमाहिं पिछली रयनि में कछु, शयन एकासन करन॥५॥
इक बार दिन में लैं अहार, खड़े अलप निज पान में।
कचलोंच करत न डरत परीषह, सों लगे निज ध्यान में॥
अरि मित्र महल मसान कंचन-काच निन्दन-थुति करन।
अर्घावतारन असि-प्रहारन, में सदा समता धरन॥६॥
तप तपै द्वादश धरैं वृष दश, रत्न-त्रय सेवैं सदा।
मुनि - साथ में वा एक विचरैं चहैं नहिं भव-सुख कदा॥

यों है सकलसंयमचरित, सुनिये स्वरूपाचरन अब।
जिस होत प्रगटै आपनी निधि, मिटै पर की प्रवृत्ति सब ॥७॥
जिन परमपैनी सुबुधि - छैनी, डारि अन्तर भेदिया।
वरणादि अरु रागादि तैं, निज-भाव को न्यारा किया ॥
निजमाहिं निज के हेतु निज कर, आपको आपै गह्यो।
गुण गुणी ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय, मंझार कछु भेद न रह्यो ॥८॥
जहँ ध्यान ध्याता ध्येय को न, विकल्प वच भेद न जहाँ।
चिद्भाव कर्म चिदेश कर्ता, चेतना किरिया तहाँ ॥
तीनों अभिन्न अखिन्न शुध उपयोग की निश्चल दसा।
प्रगटी जहाँ दृग-ज्ञान-व्रत ये तीनधा एकै लसा ॥९॥
परमाण नय निक्षेप को न उद्योत अनुभव में दिखैं।
दृग-ज्ञान-सुख-बलमय सदा, नहिं आन भाव जु मो विखैं ॥
मैं साध्य साधक मैं अबाधक, कर्म अरु तसु फलनितैं।
चित् पिण्ड चण्ड अखण्ड सुगुणकरण्ड च्युत पुनि कलनितैं ॥१०॥
यों चिन्त्य निज में थिर भये, तिन अकथ जो आनन्द लह्यो।
सो इन्द्र नाग नरेन्द्र वा, अहमिन्द्र के नाहीं कह्यो ॥
तब ही शुकलध्यानाग्नि करि, चउ-घातिविधि कानन दह्यो।
सब लख्यो केवलज्ञान करि, भविलोक को शिवमग कह्यो ॥११॥
पुनि घाति शेष अघातिविधि, छिन माहिं अष्टम-भू बसैं।
वसुकर्म विनसै सुगुण वसु, सम्यक्त्व आदिक सब लसैं ॥
संसार खार अपार पारावार, तरि तीरहिं गये।
अविकार अकल अरूप शुचि,चिद्रूप अविनाशी भये ॥१२॥
निजमाँहि लोक अलोक गुण, परजाय प्रतिबिम्बित थये।
रहि हैं अनन्तानन्तकाल, यथा तथा शिव परिणये ॥
धनि धन्य हैं जे जीव, नर-भव पाय, यह कारज किया।
तिनही अनादि भ्रमण पञ्च प्रकार तजि वर सुख लिया ॥१३॥
मुख्योपचार दुभेद यों बड़भागि रत्नत्रय धरैं।
अरु धरैंगे ते शिव लहैं तिन, सुयश-जल-जग-मल हरैं ॥

इमि जानि आलस हानि, साहस ठानि यह सिख आदरो।
जबलौं न रोग जरा गहै तबलौं झटिति निज हित करो ॥१४॥
यह राग आग दहै सदा, तातैं समामृत सेइये।
चिर भजे विषय कषाय अब तो त्याग निजपद बेइये ॥
कहा रच्यो पर-पद में न तेरो पद यहै क्यों दुःख सहै।
अब 'दौल' होउ सुखी स्व-पद रचि, दाव मत चूकौ यहै ॥१५॥

इक नव वसु इक वर्ष की, तीज शुकल वैशाख।
करयो तत्त्व उपदेश यह, लखि 'बुधजन' की भाख ॥१॥
लघु-धी तथा प्रमादतैं, शब्द - अर्थ की भूल।
सुधी सुधार पढ़ो सदा, जो पावो भव-कूल ॥२॥

❑❑❑

समाधि भावना

दिनरात मेरे स्वामी मैं भावना ये भाऊँ।
देहान्त के समय में तुमको न भूल जाऊँ॥१॥
शत्रु अगर कोई हो संतुष्ट उनको कर दूँ।
समता का भाव धर कर सबसे क्षमा कराऊँ ॥२॥
त्यागूँ आहार पानी औषध विचार अवसर।
टूटे नियम न कोई दृढ़ता हृदय में लाऊँ॥३॥
जागें नहीं कषायें नहिं वेदना सतावे।
तुमसे ही लौ लगी हो दुर्ध्यान को भगाऊँ॥४॥
आतम स्वरूप अथवा आराधना विचारूँ।
अरहंत सिद्ध साधू रटना यही लगाऊँ॥५॥
धर्मात्मा निकट हों चरचा धरम सुनावें।
वह सावधान रक्खें गाफिल न होने पाऊँ॥६॥
जीने की हो न वांछा मरने की हो न इच्छा।
परिवार मित्र जन से मैं मोह को हटाऊँ॥७॥
भोगे जो भोग पहले उनका न होवे सुमरन।
मैं राज्य सम्पदा या पद इन्द्र का न चाहूँ॥८॥
रत्नत्रय का पालन हो अंत में समाधि।
'शिवराम' प्रार्थना यह, जीवन सफल बनाऊँ॥९॥

छहढाला

मंगलाचरण

भवसुख शिवसुख मार्ग दे, वीतराग विज्ञान।
सम्यक् सार स्वरूप को, हो नमोस्तु धर ध्यान ॥

प्रथम ढाल

चतुर्गति भ्रमण वर्णन

(लघु चौपाई)

जीवस्थान वर्णन

अनन्त विस्तृत है आकाश, बहुमध्य में लोकाकाश।
जिसमें तीन लोक छह द्रव्य, अनन्त प्राणी भव्य अभव्य ॥१॥

जीव-भेद वर्णन

सिद्ध सुखी दुखमय संसार, दुख से बचने खोजें द्वार।
जिनशासन दे जिसका ज्ञान, सुनो! गुनो!! कर लो कल्याण ॥२॥

संसारी-जीव वर्णन

जग के मूर्तिक जीव अशुद्ध, है अनादि से कर्म विबद्ध।
पंच परावर्तन सो पाएँ, कर्मकथा प्रभु वाँच न पाएँ ॥३॥

जीव-यात्रा वर्णन

क्षुद्रक भवदुख नित्य निगोद, सहके पाई थावर गोद।
भू जल आग वायु प्रत्येक, दो - दो भेद वनस्पति एक ॥४॥

त्रस पर्याय की दुर्लभता

त्याग कर्मफल चेतन पाए, दुर्लभ मणि सम त्रस - पर्याय।
कृमि चींटी भ्रमरादि कहाए, विकलत्रय के अति दुख पाए ॥५॥

पंचेन्द्रिय वर्णन

ज्यों दुर्लभतर मणि संयोग, त्यों पंचेन्द्रिय भव के योग।
अमन - समन के बनें तिर्यंच, निबल - सबल के सहे प्रपंच ॥६॥

तिर्यंच वर्णन

क्षुधा - तृषा सह ढोए भार, छेद - भेद शीतोष्ण अपार।
सह वध - बन्धन दुख संक्लेश, मरे नरक बिल पाये क्लेश ॥७॥

नरक दुःख वर्णन एवं मनुष्य पर्याय की दुर्लभता

जहाँ सहे दुख चार प्रकार, आयु सागरों की कर पार।
पाई मनुज योनि पर्याय, दुर्लभतम मणि ज्यों चौराह ॥८॥

मनुष्य गर्भ वर्णन

मिले पुण्य से माँ का गर्भ, नौ - दस माह सहे दुख दर्द।
उलटे मटके सम लटकाए, मल - मूत्रों में सिकुड़े काय ॥९॥

मनुष्य पर्याय वर्णन

रोते - रोते पाया जन्म, फिर भी हो परिवार प्रसन्न।
खेल - खेल में बचपन खोए, यौवन में युवती को रोए ॥१०॥

निष्फल नर पर्याय

प्रौढ़ दशा में घर के भार, ढोकर हुए वृद्ध लाचार।
बिना धर्म नर रत्न गँवाए, मिले सुरों के चार निकाय ॥११॥

निष्फल देव पर्याय

भोग - भोग स्वर्गों के भोग, बिन सम्यक्त्व कहाँ सुख योग।
छोड़ स्वर्ग भू - जल तरु होए, दो हजार सागर यों खोए ॥१२॥

भवचक्र हर्त्ता भावना

मोक्ष योग्य जब किया न बोध, तब जा पहुँचे इतर निगोद।
सो 'विद्या' 'सुव्रत' नत शीश, कु - चक्र हर - दो प्रभु आशीष ॥१३॥

द्वितीय ढाल

मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्र वर्णन

(विष्णु)

मिथ्यात्व वर्णन

मिथ्यादर्शन ज्ञान आचरण, ये भव-भव दुख दें।
जिन्हें समझकर सुखेच्छु त्यागें, वे कुछ हम कह दें ॥
सात तत्त्व छह द्रव्य आदि की, उल्टी श्रद्धाएँ।
मिथ्यादर्शन दो प्रकार का, जिन गुरु बतलाएँ ॥१॥

अगृहीत मिथ्यात्व वर्णन

प्रथम भेद है अगृहीत जो, मिथ्योदय से हो।
लक्ष्यभूत जीवादि तत्त्व का, ज्ञान न जिससे हो ॥

शुद्ध बुद्ध एकत्व अरूपी, जीव अनन्त गुणी।
फिर भी तन को चेतन माने, वो मिथ्यात्व गुणी ॥२॥

तत्त्वों की विपरीत धारणा

अभिन्न भिन्न अत्यन्त भिन्न जो, अजीव कायों को।
राग-द्वेष कर अपना समझे, आस्रव भावों को ॥
द्रव्य - भाव - नोकर्म बन्ध कर, भाव शुभाशुभ हों।
भव तन भोग हितैषी लगते, तो क्या संवर हों ॥३॥

ज्ञान-चारित्र की विपरीत धारणा

गजस्नानवत् किये निर्जरा, अकाम या सविपाक।
मोक्ष योग्य श्रम ना कर पाए, मिथ्याज्ञान विपाक ॥
यों मिथ्या - दृग - ज्ञान आदि की, विषय कषायें जो।
मिथ्या - चारित कहलाती हैं, पाप क्रियायें वो ॥४॥

गृहीत मिथ्यात्व वर्णन

भेद दूसरा गृहीत मिथ्या - दर्शन अब समझो।
कुगुरु कुदेव कुधर्म शास्त्र की, श्रद्धा से यह हो ॥
स्वरूप से विचलित मत वाले, गुरु सब कुगुरु रहे।
भवसागर में हमें डुबाने, पत्थर नाव कहे ॥५॥

गृहीत मिथ्यात्व का विशेष वर्णन

अस्त्र - शस्त्र तिय वस्त्र आदि धर, जो खुद नाथ हुए।
वे कुदेव उनके अनुयायी, दोनों जगत छुए ॥
जिसमें द्रव्य भाव हिंसा की, दुखद प्रतिज्ञा हो।
वो कुधर्म जिसकी श्रद्धा से, गृहीत मिथ्या हो ॥६॥

गृहीत मिथ्यात्व के भेद

यों त्रय चतु पच आदि तीन सौ, त्रेसठ मत मिथ्या।
संख्य असंख्य अनन्तों भी हों, गृहीत दृग श्रद्धा ॥
संशय मोह विपर्यय जिसमें, सभी दोष रहते।
गृहीत मिथ्याज्ञान वही जो, मिथ्यात्वी रचते ॥७॥

मिथ्यात्व त्याग भावना

माया मिथ्या निदान से जो, बिना भेद - विज्ञान।
करें कुतप वह गृहीत मिथ्या, चारित दुख की खान ॥

सो मिथ्या - दृग - ज्ञान - चरण तज, सम्यक्ता पाएँ।
'विद्या'धरकर 'सुव्रत' भजकर, शुद्धात्मा ध्याएँ ॥८॥

कल्याण हेतु शिक्षा

(दोहा)

मिथ्या चारित ज्ञान तज, होता सम्यग्ज्ञान।
फिर सम्यक्चारित्र धर, बनें सिद्ध भगवान ॥९॥

तृतीय ढाल

सम्यग्दर्शन वर्णन

(विद्योदय-मात्रिक)

मोक्षमार्ग दर्शन

प्रज्ञावान भव्य जन जिनको, निजहित भाए।
उन्हें कुशल आचार्य गुरु जी, मोक्ष बताए ॥
मोक्ष प्राप्ति पथ सम्यग्दर्शन, ज्ञान आचरण।
धर साधन व्यवहार साध्य फिर, निश्चय चेतन ॥१॥

चेतना के प्रकार

शुद्ध अशुद्ध चेतना दो विध, शास्त्र बताएँ।
ज्ञान चेतना शुद्ध सिद्ध वा, अर्हत पाएँ ॥
ज्ञाता - दृष्टा शुद्ध चेतना, परमातम हैं।
अशुद्ध चेतना दो प्रकार के, जीवातम हैं ॥२॥

चेतना के अन्य प्रकार

प्रथम कर्मफल थावर सब हों, मिथ्यादृष्टि।
कर्म - चेतना त्रस पाते हैं, दोनों दृष्टि ॥
हर मिथ्यादृष्टि दुख सहते, हैं बहिरातम।
अन्तर आतम त्रिविध जघन्य व, मध्यम उत्तम ॥३॥

चेतना के स्वरूप

जघन्य मध्यम व्यवहारी जो, मिथ्या हर के।
तत्त्व स्थान नवदेव आदि पर, श्रद्धा करके ॥
अविरत सम्यग्दृष्टि जघन्य, अन्तर-आतम।
देशव्रती वा प्रवृत्ति वाले, मुनि हैं मध्यम ॥४॥

चेतना के तीन प्रकार

पर के त्यागी शुद्ध-उपयोगी, मुनि हैं उत्तम।
सो हे! आतम तज! बहिरातम, भज! परमातम ॥
अन्तर - आतम बनने चर्या, सराग धारो।
सम्यग्दर्शन त्रय प्रकार धर, चरण निखारो ॥५॥

सम्यग्दर्शन के साधन

शिरोधार्य जिन - आज्ञा कर लें, गुरूपासना।
छः सामान्य विशेष गुणों से, जीव समझना ॥
अजीव धर्म अधर्म काल नभ, पुद्गल जग में।
पुद्गल रूपी शेष अरूपी, चतुर भंग में ॥६॥

द्रव्य-तत्त्व आदि वर्णन

पुद्गल जीव चलें यदि तो दे, धर्म सहारा।
अगर ठहरना चाहें ये तो, अधर्म द्वारा ॥
द्रव्यों के परिणमन वर्तना, काल द्विविध है।
जो अवगाह सभी को दे वो, गगन द्विविध है ॥७॥

आस्रव वर्णन

दो चउ छह बीसों इक्कीसों, अठबीस आदि।
त्यागें ये पुद्गल की माया, भवदुख व्याधि ॥
तज अजीव अब सत्तावन विध, आस्रव तजिए।
मिथ्याविरति - प्रमाद कषाय व, योग न धरिए ॥८॥

सम्यग्दर्शन की सार्थकता

पाँच हेतु ये त्याग बन्ध भी, तजें चतुर्धा।
छह कारण से संवर कर तप, करें निर्जरा ॥
कर्म नशा के मिले मोक्ष सों, सम्यक् करना।
प्रशम आदि शुभ सराग सम्यक् लक्षण धरना ॥९॥

सम्यग्दर्शन के दोष

गुण विपरीत दोष शंकादिक, त्यागें आठों।
ज्ञान जाति कुल बल तन धन तप, मद तज आठों ॥
कुगुरु कुदेव कुधर्म भक्त षट्, अनायतन तज।
देव लोक गुरु मूढ़ दोष कुल, पच्चीसों तज ॥१०॥

सम्यग्दर्शन के चार अंग

अंग धरें निशंक ज्यों अंजन, दायें पग सम।
अनन्तमती सम निःकांक्षित हों, बायें पग सम ॥
उद्दायन सम निर्विचिकित्सा, बायें कर सम।
अमूढ़दृष्टि रेवती जैसे, पीठ अंग सम ॥११॥

सम्यग्दर्शन के शेष अंग

उपगूहन श्रेष्ठी जिनेन्द्र ज्यों, गुप्तांगों सम।
वारिषेण सम स्थितिकरण हो, दायें कर सम ॥
हो वात्सल्य विष्णुमुनि ज्यों, वक्ष हृदय सम।
प्रभावना हो वज्रमुनि ज्यों, उच्च शीश सम ॥१२॥

सम्यग्दर्शन के प्रभाव

आठ अंग तन सम हों सम्यक्, व्यवहारी में।
अतः न जन्में नरक नपुंसक, पशु नारी में ॥
दीन हीन कुल अल्प आयु वा, विकलांगों में।
यों अविरत हैं किन्तु जन्म लें, उच्च कुलों में ॥१३॥

सम्यग्दर्शन की सार्थकता

सम्यग्दर्शन प्रथम चरण हैं, मोक्षमहल के।
इस बिन सम्यग्ज्ञान चरित्रा, कभी न झलके ॥
तीन चार भव में सम्यक् से, निज - हित पा लो।
सो जलने के पहले 'सुव्रत', ज्योति जला लो ॥१४॥

चतुर्थ ढाल

ज्ञान व श्रावकचर्या वर्णन

(हाकलिका)

सम्यग्ज्ञान उत्पत्ति हेतु

मिथ्यादर्शन त्याग चुके, जिनशासन स्वीकार चुके।
तो सम्यग्दर्शन होगा, सम्यग्ज्ञान तुरत होगा ॥१॥

सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान में भेद

एक साथ दोनों होते, साधन साध्य भेद होते।
सम्यग्दर्शन है साधन, ज्ञान उसी का साध्य सदन ॥२॥

सम्यग्ज्ञान के प्रकार

दो प्रकार के सम्यग्ज्ञान, पहले परोक्ष मति श्रुत ज्ञान।
इन्द्रिय मन से ज्ञान कराए, सकल द्रव्य की कुछ पर्याय ॥३॥

प्रत्यक्षज्ञान के भेद

विकल सकल दो विध प्रत्यक्ष, अवधि मनः विकला प्रत्यक्ष।
प्रत्यक्ष चेतना से मानें, कुछ रूपी सीमित जानें ॥४॥

ज्ञान के प्रकार

मति श्रुत अवधि मनःपर्यय, होते क्षायोपशमिक सदय।
क्षायिक केवलज्ञान अमल, निरावरण प्रत्यक्ष सकल ॥५॥

केवलज्ञान की विशेषताएँ

ज्ञानावरणी जब सब जाए, तभी अनन्तानन्त कहाए।
अनन्त द्रव्य के गुण पर्याय, युग पद जाने लख असहाय ॥६॥

केवलज्ञान प्रभाव

दर्पण गोखुर बिम्बित ज्यों, लोकालोक झलकते यों।
शीघ्र मोक्ष का अधिकारी, जग में है महिमा न्यारी ॥७॥

ज्ञान अभ्यास हेतु प्रेरणा

अतः ज्ञान अभ्यास करो, आठ अंग में हृदय धरो।
उच्चारण हो शुद्ध भला, शब्दाचार अंग पहला ॥८॥

ज्ञान-अंग वर्णन

शास्त्र अर्थ सम्यक् करना, अर्थाचार क्रमिक करना।
पढ़कर सही अर्थ करना, उभयाचार चित्त धरना ॥९॥

ज्ञान अंग वर्णन

योग्य समय स्वाध्याय करें, इसको कालाचार कहें।
शास्त्र विनय करके पढ़ना, विनयाचार इसे कहना ॥१०॥

ज्ञान के अंग

करें त्याग कुछ शास्त्र पढ़ें, ये उपधानाचार कहें।
गुरु श्रुत का बहुमान करें, यह बहुमानाचार धरें ॥११॥

ज्ञान के अंग

गुरु श्रुत का ना नाम छिपे, वो अनिह्नवाचार रहे।
ज्ञान अंग ये आठ रहे, बिन संयम दुखभार रहे ॥१२॥

ज्ञान प्राप्ति हेतु आवश्यक

सो सम्यक्त्वाचरण करो, कुलाचार धर व्यसन हरो।
पाक्षिक श्रावक स्वीकारो, आठ मूलगुण फिर धारो ॥१३॥

चारित्र बिना ज्ञान की असमर्थता

केवलज्ञान मनःपर्यय, बिन चारित्र न हुए उदय।
सो दो विध धर सकल - विकल, गृहियों का चारित्र विकल ॥१४॥

नैष्ठिक श्रावक का वर्णन

अणु-गुण-शिक्षा व्रत के दल, एकदेश-अणुव्रत मंगल।
अणुव्रत पाँच शीलव्रत सात, बारह व्रत नैष्ठिक के साथ ॥१५॥

अहिंसा अणुव्रत का वर्णन

त्रस हिंसा नव कोटि से, जहाँ तजें भव भीति से।
थावर हिंसा सीमित हो, प्रथम अहिंसा अणुव्रत वो ॥१६॥

सत्य अणुव्रत वर्णन

स्थूल झूठ ना खुद बोलें, ना बुलवाने मुख खोलें।
विपद सत्य प्रतिबन्धित हो, सत्य दूसरा अणुव्रत वो ॥१७॥

अचौर्य अणुव्रत वर्णन

रखी गिरी भूली वस्तु, बिना दान दी पर वस्तु।
खुद ना लें ना दें पर को, है अचौर्य अणुव्रत वो ॥१८॥

ब्रह्मचर्य अणुव्रत का स्वरूप

पर-नारी के निकट कभी, ना भेजें ना जाएँ कभी।
निज-नारी तक सीमित हो, ब्रह्मचर्य का अणुव्रत वो ॥१९॥

परिग्रह परिमाण अणुव्रत स्वरूप

धन धान्यादिक दस परिग्रह, कर सीमित बहु ना संग्रह।
इच्छा-मूर्च्छा सीमित हो, परिग्रह परिमाण अणुव्रत वो ॥२०॥

गुणव्रत का स्वरूप

अणुव्रत का जो उपकारी, गुणव्रत तीन भेद धारी।
गुणव्रत में दिग्व्रत पहला, दिशा सीम कर बाह्य न जा ॥२१॥

देशव्रत, अनर्थदण्डव्रत का स्वरूप

उसमें काल क्षेत्र कम कर, धरें देशव्रत जीवन भर।
बिना प्रयोजन कर्म तजें, अनर्थदण्ड व्रत पाँच गहें ॥२२॥

शिक्षा व्रत का स्वरूप

मुनिव्रत की शिक्षा दें जो, चार तरह शिक्षाव्रत वो।
पहला सामायिक करना, पाप त्याग समता धरना ॥२३॥

प्रौषध-भोग-उपभोग स्वरूप

पर्व अष्टमी चौदस को, प्रौषध का उपवास करो।
भले रहे आवश्यकतम, करें भोग उपभोग नियम ॥२४॥

अतिथिसंविभाग व्रत स्वरूप व अतिचार

मुनि की पूर्ण व्यवस्था कर, अतिथि-संविभाग व्रत धर।
पाँच-पाँच तज व्रत-अतिचार, अंत समय सल्लेखन धार ॥२५॥

साधक श्रावक स्वरूप

साधक श्रावक बनकर के, करना समाधि व्रत धर के।
सोलहवें तक स्वर्ग सिधार, स्वर्ग त्याग हों नर अनगार ॥२६॥

मुनि से मोक्ष स्वरूप

मुनि अरिहन्त जिनेन्द्र बनें, समवसरण से धर्म कहें।
ध्यान लगा निर्वाण गहें, सो 'सुव्रत' मुनि धर्म कहें ॥२७॥

पंचम ढाल

बारह भावना

(दोहा)

अनित्य भावना

रिश्ते नाते सम्पदा, तन बल भोग अपार।
हैं अनित्य सब कुछ यहाँ, क्षणभंगुर संसार ॥१॥

अशरण भावना

कौन बचाए मृत्यु से, हवा दवा विज्ञान।
इस अशरण संसार में, शरण भेद विज्ञान ॥२॥

संसार भावना

देव नारकी नर पशु, सब भोगें दुख भोग।
मोक्ष बिना संसार में, कहीं न सुख संयोग ॥३॥

एकत्व भावना

नहीं किसी के हम यहाँ, कोई न अपना यार।
यह एकत्व विचार के, आत्म - तत्त्व ही सार ॥४॥

अन्यत्व भावना

जब तन भी अपना नहीं, फिर क्यों करते पाप।
यम के आगे ना चले, कुछ अन्यत्व विलाप ॥५॥

अशुचि भावना

मल - मूत्रों की देह दे, सूतक - पातक शोर।
दीक्षा बिन सब व्यर्थ है, अशुचि देह की डोर ॥६॥

आस्रव भावना

सत्तावन विध से रचें, हम अपना संसार।
कर्मास्रव को रोक के, होगी नैया पार ॥७॥

संवर भावना

जीवन - रथ पर सारथी, संवर हुआ सवार।
गजरथ से आतम गयी, मोक्षपुरी के द्वार ॥८॥

निर्जरा भावना

कर्म - कालिमा ने दिया, निज का रूप विगार।
तप - उबटन की निर्जरा, करे आत्म शृंगार ॥९॥

लोक भावना

स्वयं सिद्ध नर रूप सम, लोक रहा भ्रम जाल।
इसमें भटकें जीव सब, धर्म बिना बेहाल ॥१०॥

बोधिदुर्लभ भावना

दुर्लभ सम्यग्दर्श है, दुर्लभ सम्यग्ज्ञान।
दुर्लभ मुनि चारित्र सो, तजें मोह अज्ञान ॥११॥

धर्म भावना

दुख दें मिथ्यामत सभी, लगते धर्म समान।
धर्म मात्र जिनधर्म है, भक्त करे भगवान ॥१२॥

भाकर बारह भावना, होता दृढ़ वैराग्य।
'सुव्रत' देवर्षि बनें, करें मुक्ति से राग ॥१३॥

❑ ❑ ❑

षष्ठ ढाल

मुनिचर्या वर्णन

(ज्ञानोदय)

मोक्षमार्ग स्वरूप

है संसार असुख तो सुख क्या, कहाँ मिले किस साधन से।
भव्य जीव की यह जिज्ञासा, शांत हुई गुरु भगवन से ॥
सुख है मोक्ष मिले निज में जो, मोक्षमार्ग के साधन से।
सम्यग्दर्शन ज्ञान चरित्रा, मोक्षमार्ग बनता इनसे ॥१॥

सकल चारित्र वर्णन

सम्यग्दर्शन दो प्रकार का, साधन प्रथम सराग हुआ।
साध्य दूसरा वीतराग जो, मुनिव्रत धरकर सिद्ध हुआ ॥
सो सराग सम्यग्दर्शन धर, वीतराग का यत्न करो।
धरो सकल चारित्र महाव्रत, मुनि बनकर शिव साध्य वरो ॥२॥

मुनि मूलगुण वर्णन

धारो अट्ठाईस मूलगुण, जिनमें पाँच महाव्रत हैं।
पाँच समिति इन्द्रिय जय पाँचों, सात शेष आवश्यक छै ॥
द्रव्य भाव सब हिंसा तजना, प्रथम अहिंसा महाव्रत है।
दुखद सत्य हर झूठ त्यागना, दूजा सत्य महाव्रत है ॥३॥

महाव्रत वर्णन

बिन दी वस्तु कभी न लेना, तीजा अचौर्य महाव्रत है।
नव कोटि से स्त्री तजना, ब्रह्मचर्य ये महाव्रत है ॥
मोह संग-उपकरण त्यागना, परिग्रह त्याग महाव्रत है।
चार हाथ भू अग्र देखकर, दिन में गति ईर्यापथ है ॥४॥

समिति वर्णन

हित-मित आगम सहित बोलना, सुखकर भाषा समिति यही।
बोधि हेतु आहार शुद्धि ही, शुद्ध ऐषणा समिति रही ॥

लें रक्खें उपकरण देखकर, आदान निक्षेपण समिति।
दोष रहित मल मूत्र आदि का, त्याग रहा व्युत्सर्ग समिति ॥५॥

मुनि मूलगुण वर्णन पंचेन्द्रिय-जय वा आवश्यक

स्पर्श श्रोत्र रस चक्षु नासिका, ये पंचेन्द्रिय जय करना।
समता धर सामायिक करके, चौबीसी की थुति करना ॥
करें वन्दना प्रतिक्रमण फिर, स्वामी प्रत्याख्यान करें।
कायोत्सर्ग करें मूर्छा तज, षट्-आवश्यक रोज करें ॥६॥

शेष मूलगुण वर्णन

केशलोंच अस्नान नग्नता, थिति - भोजन क्षिति - शयन करें।
अदन्तधावन एक भुक्ति ये, सात शेष गुण ग्रहण करें ॥
जैनधर्म के पता - पताका, चलते - फिरते तीर्थ - मुनि।
धारें तप दस धर्म भावना, बाईस परिषह सहें मुनि ॥७॥

तेरह प्रकार चारित्र वर्णन

तेरहविध - चारित्र धार ज्यों, ध्यान गुप्ति आसीन हुये।
षट्-कारक के भेद मिटे त्यों, शुद्ध बुद्ध निज लीन हुये ॥
वीतराग सम्यग्दर्शन ये, रहा शुद्ध उपयोग यही।
यही स्वरूपाचरण - चरित्रा, निश्चय रत्नत्रय है यही ॥८॥

शुद्धोपयोग के स्वामी वर्णन

कायोत्सर्ग दशा निर्वृत्ति, में मुनियों को सम्भव ये।
वस्त्रधारि को कभी न होता, अतुलनीय आतम - सुख ये ॥
मुनिमुद्रा का दर्शन दुर्लभ, भव्य जीव को धन्य करे।
अभव्य जीवों को प्रभु जैसा, कहाँ मिले कब धन्य करे ॥९॥

शुद्धोपयोग का प्रभाव

यों एकत्व - विभक्त आतमा, ज्ञाता - दृष्टा गुण - श्रेणी।
नय निश्चय व्यवहार पक्ष बिन, ध्याकर चढ़ें क्षपकश्रेणी ॥
घाति हरण कर बने केवली, समवसरण अरिहन्त हुये।
दिव्यध्वनि दे तीर्थ प्रवर्तन, करके सिद्ध महन्त हुये ॥१०॥

सिद्ध स्वरूप वर्णन

सिद्धों का क्या कहना भैया, अनुपम गति ध्रुव अचल रहे।
भव - शव - यात्रा विफल बनाकर, शिवयात्रा में सफल रहे ॥

रहें अनन्तानन्त काल तक, प्रभु लोकाग्र शिखर धामी।
त्रय जग में संहार मचे पर, टस से मस ना हों स्वामी ॥११॥

मनुष्य पर्याय की सार्थकता

नर - पर्याय धन्यकर डाली, धन्य चार पुरुषार्थ किए।
पंच परावर्तन दुख त्यागे, सार्थक निज परमार्थ किए॥
अनादि के मिथ्यादर्शन वा, मिथ्याज्ञान चरित तज के।
भेदाभेद धार रत्नत्रय, मोक्ष गये आतम भज के॥१२॥

लेखक की अंतिम धर्मभावना

हमको पंचमकाल मिला तो, मोक्ष योग्य श्रम कर ना सकें।
किन्तु महाव्रत अणुव्रत धरके, दुर्गति से तो बच हि सकें॥
इतना भी यदि कर ना सकें तो, सम्यग्दर्शन प्राप्त करें।
फिर 'विद्या' के 'सुव्रत' बनकर, भव का भ्रमण समाप्त करें॥१३॥

❑ ❑ ❑

प्रशस्ति

(दोहा)

कोरोना के काल में, याद किए गुरु मंत्र।
लिखा जिनागम रूप में, श्री छहढाला ग्रन्थ॥१॥
अल्पबुद्धि छद्मस्थ मैं, श्रुत सिद्धान्त अपार।
कमियाँ अतः सुधार के, शुद्ध पढ़ें हों पार॥२॥
स्वतंत्रता दिवस शिवपुरी, शनि दो हजार बीस।
'विद्या' के 'सुव्रत' रचे, गुरु प्रभु को नत शीश॥३॥

❑ ❑ ❑

सिद्धभक्ति

जिनके शुचि गुण परिचय पाकर वैसा बनने उद्यत हूँ।
विधि मल धो-धो निजपन साधा वन्दू सिद्धों को नत हूँ॥
निजी योग्यता बाह्य योग से कनक कनकपाषाण यथा।
शुचि गुणनाशक दोषनशन से आत्मसिद्धि वरदान तथा॥१॥
गुणाभाव यदि अभाव निज का सिद्धि रही तप व्यर्थ रहे।
सुचिरबद्ध यह विधि फल-भोक्ता कर्म नष्ट कर अर्थ गहे॥
ज्ञाता-द्रष्टा स्व-तन बराबर फैलन-सिकुड़नशाली है।
ध्रुवोत्पादव्यय गुणीजीव है यदि न सिद्धि सो जाली है॥२॥
बाहर-भीतर यथाजात हो रत्नत्रय का खड्ग लिए।
घाति कर्म पर महाघात कर प्रकटे रवि से अंग लिए॥
छत्र चँवर भासुर भामण्डल समवसरण पा आप्त हुये।
अनन्त-दर्शन-बोध-वीर्य-सुख-समकित गुण चिर साथ हुये॥३॥
देखें - जानें युगपत् सब कुछ सुचिर काल तक ध्वान्त हरें।
परमत-खण्डन जिनमत-मण्डन करते जन-जन शान्त करें॥
निज से निज में निज को निज ही बने स्वयंभू वरत रहे।
ज्योतिपुञ्ज की 'ज्ञानोदय' यह जय-जय जय-जय करत रहे॥४॥
जड़ें उखाड़ी अघातियों की सुदूर फैली चेतन में।
हुये सुशोभित सूक्ष्मादिक गुण अनन्त क्षायिक वे क्षण में॥
और और विधि विभाव हटते-हटते अपने गुण उभरे।
ऊर्ध्व स्वभावी अतः समय में लोक शिखर पर जा ठहरे॥५॥
नूतन तन का कारण छूटा मिला हुआ कुछ कम उससे।
सुन्दर प्रतिछवि लिए सिद्ध हैं अमूर्त दिखते ना दृग से॥
भूख-प्यास से रोग-शोक से राग-रोष से मरणों से।
दूर दुःख से शिव सुख कितना? कौन कहे जड़ वचनों से॥६॥
घट-बढ़ ना हो विषय-रहित है प्रतिपक्षी से रहित रहा।
निरुपम शाश्वत सदा सदोदित सिद्धों का सुख अमित रहा॥
निज कारण से प्राप्त अबाधित स्वयं सातिशय धार रहा।
परनिरपेक्षित परमोत्तम हैं अन्त-हीन वह सार रहा॥७॥

श्रम निद्रा जब अशुचि मिटी है शयन सुमन आदिक से क्या?
क्षुधा मिटी है तृषा मिटी है सरस अशन आदिक से क्या?
रोग-शोक की पीर मिटी है औषध भी अब व्यर्थ रहा?
तिमिर मिटा सब हुआ प्रकाशित दीपक से क्या अर्थ रहा? ॥८॥
संयम-यम-नियमों से नय से आत्म-बोध से दर्शन से।
महायशस्वी महादेव हैं बने कठिन तपघर्षण से॥
हुये हो रहे होंगे वन्दित सुधी - जनों से सिद्ध महा।
उन सम बनने तीनों सन्ध्या उन्हें नमूँ कर-बद्ध यहाँ ॥९॥

अञ्चलिका

दोहा

सिद्ध गुणों की भक्ति का, करके कायोत्सर्ग।
उसका आलोचन करूँ, ले प्रभु तव संसर्ग ॥१०॥

समदर्शन से साम्य बोध से समचारित से युक्त हुये।
दुष्ट धर्म से पुष्ट हुये जो अष्ट कर्म से मुक्त हुये॥
सम्यक्त्वादिक अष्ट गुणों से मुख्य रूप से विलस रहे।
ऊर्ध्व स्वभावी बने तुरत जा लोक शिखर पर निवस रहे ॥११॥
विगत अनागत आगत के यूँ कुछ तो तप से सिद्ध हुये।
कुछ संयम से कुछ तो नय से कुछ चारित से सिद्ध हुये॥
भावभक्ति से चाव-शक्ति से निर्मल कर-कर निज मन को।
पूजूँ वन्दू अर्चन कर लूँ नमन करूँ सब सिद्धन को ॥१२॥
कष्ट दूर हो कर्म चूर हो बोधि-लाभ हो सद्गति हो।
वीर-मरण हो जिनपद मुझको मिले सामने सन्मति ओ! ॥

चारित्रभक्ति

त्रिभुवन के जो इन्द्र बने हैं सजे-धजे आभरणों से।
हीरक-हारों कनक कुण्डलों किरीट-मणिमय किरणों से॥
जिससे मुनियों ने निज-पद में झुका लिए इन इन्द्रों को।
पूज्य पञ्च-आचार उसे मैं वन्दूँ, कह दूँ भविकों को ॥१॥
शब्द अर्थ औ उभय विकल ना यथाकाल उपधान तथा।
गुरु निह्नव ना बहुमति होना यथायोग्य सम्मान कथा॥

महाजाति कुल रजनीपति औ तीर्थकरों ने समझाया।
वसुविध ज्ञानाचार नमूँ मैं कर्म नष्ट हो मन भाया ॥२॥
जिनमत-शंका परमत-शंसा विषयों की भी चाह नहीं।
सहधर्मी में वत्सलता हो साधु संत से डाह नहीं ॥
जिनशासन को करो उजागर पथ च्युत को पथ पर लाना।
नमूँ दर्शनाचार नम्र हो उपगूहन में रस आना ॥३॥
नियमों से चर्या को बाँधे अनशन ऊनोदर करना।
इन्द्रिय गज-मदमत्त बने ना रसवर्जन बहुतर करना ॥
शयनासन एकान्त जहाँ हो और तपाना निज तन को।
बाह्य हेतु शिव के छह तप इन, की थुति में रखता मन को ॥४॥
करे ध्यान स्वाध्याय विनय भी तनूत्सर्ग भी सदा करे।
वृद्ध रुग्ण लघु गुरु यतियों के नित तन-मन की व्यथा हरे ॥
दोष लगे तो तुरत दण्ड ले बने शुद्ध तप हैं प्यारे।
कषायरिपु के हनक भीतरी इन्हें नमूँ बुध उर धारे ॥५॥
जिसके लोचन सत्य बोध हैं आस्था जिसकी जिनमत में।
बिना छुपाये निज बल यति का तपना चलना शिव-पथ में ॥
अछिद्र नौका-सम भव-दधि से शीघ्र कराता पार यहाँ।
नमूँ वीर्य-आचार इसे मैं बुध अर्चित गुण सार महा ॥६॥
तीन गुप्तियाँ मन-वच-तन की तथा महाव्रत पाँच सही।
ईर्या भाषा क्षेपण एषण आदि समितियाँ पाँच रहीं ॥
अपूर्व तेरह विध चारित है मात्र वीर के शासन में।
भावभक्ति से पूर्ण शक्ति से इसे नमन हो क्षण-क्षण में ॥७॥
शाश्वत स्वाश्रित सुषमा लक्ष्मी अनुपम सुख की आली है।
केवल दर्शन-बोध ज्योति है मनोरमा उजयाली है ॥
उसको पाने दिगम्बरों को सब यतियों को नमन करूँ।
परम तीर्थ आचार यही है मंगल से अघ शमन करूँ ॥८॥
पाप पुराना मिटता नूतन रुकता आना हो जिससे।
ऋद्धि सिद्धि परसिद्धि ऋषी में बढ़े चरित से औ किससे?

प्रमाद वश यदि इस यतिपन में यतिपन से प्रतिकूल किया।
करता निज की निन्दा निन्दित मिथ्या हो अघ मूल किया ॥९॥
निकट भव्य हो एक लव्य हो दूर पाप से आप रहे।
केवल शिव सुख के यदि इच्छुक भव-दुःखों से काँप रहे ॥
जैन-चरित सोपान मोक्ष का विशालतम है अतुल रहा।
आरोहण तुम इस पर कर लो आत्म तेज जब विपुल रहा ॥१०॥

अञ्चलिका

महाचरित वर भक्ति का करके कायोत्सर्ग।
आलोचन उसका करूँ ले प्रभु! तव संसर्ग ॥१॥
सब में जिसको प्रधान माना कोई जिसके समा नहीं।
कर्म निर्जरा जिसका फल है जिसका भोजन क्षमा रही ॥
समकित पर जो टिका हुआ है सत्य बोध को साथ लिया।
ज्ञान-ध्यान का साधनतम है रहा मोक्ष का पाथ जिया! ॥२॥
गुप्ति तीन से रहा सुरक्षित महाव्रतों का धारक है।
पाँच समितियों का पालक है पातक का संहारक है ॥
जिससे संयत साधु सहज ही समता में है रम जाता।
सुनो! महा चारित्र यही है 'ज्ञानोदय' निशि-दिन गाता ॥३॥
अहो भाग्य है महाचरित को तन से मन से वचनों से।
पूजूँ वन्दूँ अर्चन कर लूँ नमन करूँ दो नयनों से ॥
कष्ट दूर हो कर्म चूर हो बोधि लाभ हो सद्गति हो।
वीर मरण हो जिनपद मुझको मिले सामने सन्मति हो! ॥४॥

योगिभक्ति

नरक-पतन से भीत हुये हैं जाग्रत-मति हैं मथित हुये।
जनन-मरण-मय शत-शत रोगों से पीड़ित हैं व्यथित हुये ॥
बिजली बादल-सम वैभव है जल-बुद्बुद्-सम जीवन है।
यूँ चिन्तन कर प्रशम हेतु मुनि वन में काटे जीवन है ॥१॥
गुप्ति-समिति-व्रत से संयुत जो मन शिव-सुख की ओर रहा।
मोहभाव के प्रबल-पवन से जिनका मन ना डोल रहा ॥
कभी ध्यान में लगे हुये तो श्रुत-मन्थन में लीन कभी।

कर्म-मलों को धोना है सो तप करते स्वाधीन सुधी ॥२॥
रवि-किरणों से तपी शिला पर सहज विराजे मुनिजन हैं।
विधि-बन्धन को ढीले करते जिनका मटमैला तन है ॥
गिरि पर चढ़ दिनकर के अभिमुख मुख करके हैं तप तपते।
ममत्व मत्सर मान रहित हो बने दिगम्बर-पथ नपते ॥३॥
दिवस रहा हो रात रही हो बोधामृत का पान करें।
क्षमा-नीर से सिंचित जिनका पुण्यकाय छविमान अरे!
धरे छत्र संतोष-भाव के सहज छाँव का दान करें।
यूँ सहते मुनि तीव्र-ताप को 'ज्ञानोदय' गुणगान करें ॥४॥
मोर कण्ठ या अलि-सम काले इन्द्रधनुष युत बादल हैं।
गरजे बरसे बिजली तड़की झंझा चलती शीतल है ॥
गगन दशा को देख निशा में और तपोधन तरुतल में।
रहते सहते कहते कुछ ना भीति नहीं मानस-तल में ॥५॥
वर्षा ऋतु में जल की धारा मानो बाणों की वर्षा।
चलित चरित से फिर भी कब हो करते जाते संघर्षा ॥
वीर रहे नर-सिंह रहे मुनि परिषह रिपु को घात रहे।
किन्तु सदा भव-भीत रहे हैं इनके पद में माथ रहे ॥६॥
अविरल हिमकण जल से जिनकी काय-कान्ति ही चली गई।
साँय-साँय कर चली हवायें हरियाली सब जली गई ॥
शिशिर तुषारी घनी निशा को व्यतीत करते श्रमण यहाँ।
और ओढ़ते धृति-कम्बल हैं गगन तले भूशयन अहा! ॥७॥
एक वर्ष में तीन योग ले बने पुण्य के वर्धक हैं।
बाह्याभ्यन्तर द्वादश-विध तप तपते हैं मद-मर्दक हैं ॥
परमोत्तम आनन्द मात्र के प्यासे भदन्त ये प्यारे।
आधि-व्याधि औ उपाधि-विरहित समाधि हममें बस डारे ॥८॥
ग्रीष्मकाल में आग बरसती गिरि-शिखरों पर रहते हैं।
वर्षा-ऋतु में कठिन परीषह तरुतल रहकर सहते हैं ॥
तथा शिशिर हेमन्त काल में बाहर भू-पर सोते हैं।
वन्द्य साधु ये वन्दन करता दुर्लभ-दर्शन होते हैं ॥९॥

अञ्चलिका

दोहा

योगीश्वर सद्भक्ति का करके कायोत्सर्ग।
आलोचन उसका करूँ ले प्रभु! तव संसर्ग ॥१०॥

अर्ध सहित दो द्वीप तथा दो सागर का विस्तार जहाँ।
कर्म-भूमियाँ पन्द्रह जिनमें संतों का संचार रहा॥
वृक्षमूल-अभ्रावकाश औ आतापन का योग धरें।
मौन धरें वीरासन आदिक का भी जो उपयोग करें॥११॥
बेला तेला चोला छह-ला पक्ष मास छह मास तथा।
मौन रहें उपवास करें हैं करें न तन की दास कथा॥
भाव-भक्ति से चाव-शक्ति से निर्मल कर-कर निज मन को।
वन्दूँ पूजूँ अर्चन कर लूँ नमन करूँ इन मुनिजन को॥१२॥
कष्ट दूर हो कर्म चूर हो बोधि लाभ हो सद्गति हो।
वीर मरण हो जिनपद मुझको मिले सामने सन्मति ओ!॥

आचार्यभक्ति

सिद्ध बने शिव - शुद्ध बने जो जिन की थुति में निरत रहे।
दावा सम अतिकोप अनल को शान्त किये अतिविरत रहे॥
मनो - गुप्ति के वचन - गुप्ति के काय - गुप्ति के धारक हैं।
जब जब बोलें सत्य बोलते भाव शुद्धशिव साधक हैं॥१॥
दिन दुगुणी औ रात चउगुणी मुनि पद महिमा बढ़ा रहे।
जिन शासन के दीप्त दीप हो और उजाला दिला रहे॥
बद्ध-कर्म के गूढ़ मूल पर घात लगाते कुशल रहे।
ऋद्धि सिद्धि परसिद्धि छोड़कर शिवसुख पाने मचल रहे॥२॥
मूलगुणों की मणियों से है जिनकी शोभित देह रही।
षड् द्रव्यों का निश्चय जिनको जिनमें कुछ संदेह नहीं॥
समयोचित आचरण करे हैं प्रमाद के जो शोषक हैं।
सम दर्शन से शुद्ध बने हैं निज गण तोषक, पोषक हैं॥३॥
पर - दुख - कातर सदय हृदय जो मोह - विनाशक तप धारे।
पञ्च - पाप से पूर्ण परे हैं पले पुण्य में जग प्यारे॥

जीव जन्तु से रहित थान में वास करें निज कथा करें।
जिनके मन में आशा ना है दूर कुपथ से तथा चरें॥४॥
बड़े - बड़े उपवासादिक से दण्डित ना बहुदण्डों से।
सुडौल सुन्दर तन मन से हैं मुख मण्डल - कर - डण्डों से॥
जीत रहे दो-बीस परीषह किरिया - करने योग्य करे।
सावधान संधान ध्यान से प्रमाद हरने योग्य हरे॥५॥
नियमों में हैं अचल मेरुगिरि कन्दर में असहाय रहे।
विजितमना हैं जित - इन्द्रिय हैं जितनिद्रक जितकाय रहे॥
दुस्सह दुखदा दुर्गति कारण लेश्याओं से दूर रहे।
यथाजात हैं जिन - केतन हैं जल्ल - मल्ल से पूर रहे॥६॥
उत्तम - उत्तम भावों से जो भावित करते आतम को।
राग लोभ मात्सर्य शाठ्य मद को तजते हैं अघतम को॥
नहीं किसी से तुलना जिनकी जिनका जीवन अतुल रहा।
सिद्धासन मन जिनके, चलता आगम मन्थन विपुल रहा॥७॥
आर्तध्यान से रौद्रध्यान से पूर्णयत्न से विमुख रहे।
धर्मध्यान में शुक्लध्यान में यथायोग्य जो प्रमुख रहे॥
कुगति मार्ग से दूर हुए हैं 'सुगति' ओर गतिमान हुये।
सात ऋद्धि रस गारव छोड़े पुण्यवान गणमान्य हुए॥८॥
ग्रीष्म काल में गिरि पर तपते वर्षा में तरुतल रहते।
शीतकाल आकाश तले रह व्यतीत करते अघ दहते॥
बहुजन हितकर चरित धारते पुण्य पुञ्ज हैं अभय रहे।
प्रभावना के हेतुभूत उन महाभाव के निलय रहे॥९॥
इस विध अगणित गुणगण से जो सहित रहे हितसाधक हैं।
हे जिनवर! तव भक्तिभाव में लीन रहे गणधारक हैं॥
अपने दोनों कर-कमलों को अपने मस्तक पर धरके।
उनके पद कमलों में नमता बार-बार झुक-झुक करके॥१०॥
कषायवश कटु-कर्म किये थे जन्म-मरण से युक्त हुये।
वीतरागमय आत्म-ध्यान से कर्म नष्ट कर मुक्त हुये॥

प्रणाम उनको भी करता हूँ अखण्ड अक्षय-धाम मिले।
मात्र प्रयोजन यही रहा है सुचिर काल विश्राम मिले ॥११॥

अञ्चलिका

मुनिगण-नायक भक्ति का करके कायोत्सर्ग।
आलोचन उसका करूँ ले प्रभु! तव संसर्ग ॥१२॥
पञ्चाचारों रत्नत्रय से शोभित हो आचार्य महा।
शिवपथ चलते और चलाते औरों को भी आर्य यहाँ ॥
उपाध्याय उपदेश सदा दे चरित बोध का शिवपथ का।
रत्नत्रय पालन में रत हो साधु सहारा जिनमत का ॥१३॥
भावभक्ति से चाव शक्ति से निर्मल कर-कर निज मन को।
वन्दूँ पूजूँ अर्चन करलूँ नमन करूँ मैं गुरुगण को ॥
कष्ट दूर हो कर्म चूर हो बोधिलाभ हो सद्गति हो।
वीरमरण हो जिनपद मुझको मिले सामने सन्मति ओ! ॥१४॥

निर्वाणभक्ति

अतुल रहा है अचल रहा है विपुल रहा है विमल रहा।
निरा निरामय निरुपम शिवसुख मिला वीर को सबल रहा ॥
नर-नागेन्द्रों खगपतियों से अमरेन्द्रों से वन्दित हैं।
भूतेन्द्रों से यक्षेन्द्रों से कुबेर से अभिनन्दित हैं ॥१॥
औरों का वह भाग्य कहाँ है पाँच-पाँच कल्याण गहे।
भविक जनों को तुष्टि दिलाते वर्धमान वरदान रहे ॥
तीन लोक के आप परमगुरु पाप मात्र से दूर रहे।
स्तवन करूँ तव भाव-भक्ति से पुण्य भाव का पूर रहे ॥२॥
दीर्घ दिव्य सुख-भोग भोगते पुष्पोत्तर के स्वामी हो।
आयु पूर्णकर अच्युत से च्युत हो शिवसुख परिणामी हो ॥
आषाढ़ी के शुक्लपक्ष की छटी छठी तिथि में उतरे।
हस्तोत्तर के मध्य शशी है नभ में तारकगण बिखरे ॥३॥
विदेहनामा कुण्डपुरी है प्रतिभा-रत इस भारत में।
प्रियंकारिणी देवी त्रिशला सेवारत सिद्धारथ में ॥

शुभफल देने वाले सोलह स्वप्नों को तो दिया दिखा।
वैभवशाली यहाँ गर्भ में बालक आया 'दिया' दिखा ॥४॥
चैत्र मास है शुक्लपक्ष है तेरस का शुभ दिवस रहा।
महावीर का धीर वीर का जनम हुआ यश बरस रहा ॥
तभी उत्तरा फाल्गुनि पर था शशांक का भी संग रहा।
शेष सौम्य ग्रह निज उत्तम पद गहे लग्न भी चंग रहा ॥५॥
अगला दिन वह चतुर्दशी का हस्ताश्रित है सोम रहा।
उषाकाल से प्रथम याम में शान्त - शान्त भू - व्योम रहा ॥
पाण्डुक की शुचि मणी शिला पर बिठा वीर को इन्द्रों ने।
न्हवन कराया रत्नघटों से देखा उसको देवों ने ॥६॥
तीन दशक तक कुमार रहकर अनन्त गुण से खिले हुये।
भोगों उपभोगों को भोगा देवों से जो मिले हुये ॥
तभी यकायक उदासीन से अनासक्त हो विषयों से।
और वीर ये सम्बोधित हो ब्रह्मलोक के ऋषियों से ॥७॥
झालर झूमर मणियाँ लटकी झरझुर-झरझुर रूपवती।
'चन्द्रप्रभा' यह दिव्य पालिका रची हुई बहुकूटवती ॥
वीर हुये आरूढ़ इसी पर कुण्डपुरी से निकल गये।
वीतराग को राग देखता जन-जन परिजन विकल हुये ॥८॥
मगसिर का यह मास रहा है और कृष्ण का पक्ष रहा।
यथा जन्म में हस्तोत्तर के मध्य शशी अध्यक्ष रहा ॥
दशमी का मध्याह्न काल है बेला का संकल्प किया।
वीर आप जिन बने दिगम्बर मन को चिर अविकल्प किया ॥९॥
ग्राम नगर में प्रतिपट्टण में पुर-गोपुर में गोकुल में।
अनियत विहार करते प्रतिदिन निर्जन जन-जन संकुल में ॥
द्वादश वर्षों द्वादश विध तप उग्र-उग्रतर तपते हैं।
अमर समर सब जिन्हें पूजते कष्टों में ना कँपते हैं ॥१०॥
ऋजुकूला सरिता के तट पर बसा जृंभिका गाँव रहा।
शिला बिछी है सहज सदी से शाल वृक्ष की छाँव जहाँ ॥

खड़े हुये मध्याह्न काल में दो दिन के उपवास लिए।
आत्मध्यान में लीन हुये हैं तन का ना अहसास किए ॥११॥
तिथि दशमी वैशाख मास है शुक्लपक्ष का स्वागत है।
हस्तोत्तर के मध्य शशी है शान्त कान्ति से भास्वत है ॥
क्षपक श्रेणी पर वीर चढ़ गये निर्भय हो भव-भीत हुये।
घाति-घात कर दिव्य बोध को पाये, मृदु नवनीत हुये ॥१२॥
नयन मनोहर हर दिल हरते हर्षित हो प्रति अंग यहाँ।
महावीर वैभारगिरी पर लाये चउविध संघ महा ॥
श्रमण - श्रमणियाँ तथा श्राविका - श्रावकगण सागारों में।
गौतम गणधर प्रमुख रहे हैं ऋषि यति मुनि अनगारों में ॥१३॥
दुम-दुम-दुम-दुम दुंदुभि बजना दिव्य धुनी का वह खिरना।
सुरभित सुमनावलि का गिरना चउसठ चामर का ढुरना ॥
तीन छत्र का सर पर फिरना औ भामण्डल का घिरना।
स्फटिक मणी का सिंहासन सो अशोक तरु का भी तनना।
समवसरण में प्रातिहार्य का हुआ वीर को यूँ मिलना ॥१४॥
सागारों को ग्यारह प्रतिमाओं का है उपदेश दिया।
अनगारों को क्षमादि दशविध धर्मों का निर्देश दिया ॥
इस विध धर्मामृत की वर्षा करते विहार करते हैं।
तीस वर्ष तक वीर निरन्तर जग का सुधार करते हैं ॥१५॥
कई सरोवर परिसर जिनमें भाँति - भाँति के कमल खिले।
तरह - तरह के लघु-गुरु तरुवर फूले महके सफल फले ॥
अमर रमे रमणीय मनोहर पावानगरी उपवन में।
बाह्य खड़े जिन तनूत्सर्ग में भीतर में तो चेतन में ॥१६॥
कार्तिक का यह मास रहा है तथा कृष्ण का पक्ष रहा।
कृष्ण पक्ष की अन्तिम तिथि है स्वाती का तो ऋक्ष रहा ॥
शेष रहे थे चउकर्मों को वर्द्धमान ने नष्ट किया।
अजरअमर बन अक्षयसुख से आतम को परिपुष्ट किया ॥१७॥
प्राप्त किया निर्वाण दशा को वीर चले शिव-धाम गये।
ज्ञात किया बस इन्द्र उतरते धरती पर जिन नाम लिये ॥

धरती दुर्लभ देवदारु है स्वर्ग सुलभ लहु-चन्दन है।
कालागुरु गोशीर्ष साथ है लाये सुरभित नन्दन है ॥१८॥
धूप फलों से जिनवर तन का गणधर का अर्चन करके।
अनलेन्द्रों के मुकुट अनल से जला वीर तन पल भर में ॥
वैमानिक सुर तो स्वर्गों में ज्योतिष नभ में यानों में।
व्यन्तर बिखरे निज-निज वन में शेष गये बस भवनों में ॥१९॥
इस विध दोनों संध्याओं में तन से मन से भाषा से।
वर्द्धमान का स्तोत्र - पाठ जो करते हैं बिन आशा से ॥
देव लोक में मनुज लोक में अनन्य दुर्लभ सुख पाते।
और अन्त में शिवपद पाते किन्तु लौटकर ना आते ॥२०॥
गणधर देवों श्रुतपारों के तीर्थकरों के 'अन्त' जहाँ।
वहीं बनी निर्वाणभूमियाँ भारत सो यशवन्त रहा ॥
शुद्ध वचन से मन से तन से नमन उन्हें शत बार करूँ।
स्तवन उन्हीं का करूँ आज मैं बार-बार जयकार करूँ ॥२१॥
प्रथम तीर्थकर महामना वे पूर्ण-शील से युक्त हुये।
शैल-शिखर कैलाश जहाँ पर कर्म-काय से मुक्त हुये ॥
चम्पापुर में वासुपूज्य ये परम पूज्य पद पाये हैं।
राग-रहित हो बन्ध-रहित हो अपनी धी में आये हैं ॥
शुद्ध चेतना लाये हैं ॥२२॥
जिसको पाने स्वर्गों में भी देवलोक भी तरस रहे।
साधु गवेषक बने उसी के उसीलिए कट दिवस रहे ॥
ऊर्जयन्त गिरनारगिरि पर निज में निज को साध लिया।
अरिष्टनेमी कर्म नष्टकर सिद्धि सुधा का स्वाद लिया ॥२३॥
पावापुर के बाहर आते विशाल उन्नत थान रहा।
जिसको घेरे कमल-सरोवर नन्दन-सा छविमान रहा ॥
'यहीं' पाप धो धवलिम होकर वर्धमान निर्वाण गहे।
पूजूँ वन्दूँ अर्चन कर लूँ 'ज्ञानोदय' गुणखान रहे ॥२४॥
मोह मल्ल को जीत लिया जो बीस तीर्थकर शेष रहे।
ज्ञान-भानु से किया प्रकाशित त्रिभुवन को अनिमेष रहे ॥

तीर्थराज सम्मेदाचल पर योगों का प्रतिकार किया।
असीम सुख में डूब गये फिर भवसागर का पार लिया ॥२५॥
विहार रोके चउदह दिन तक वृषभदेव फिर मुक्त हुये।
वर्धमान को लगे दिवस दो अयोग बनकर गुप्त हुये ॥
शेष तीर्थकर तनूत्सर्ग में एक मास तक शान्त रहे।
सयोगपन तज अयोगगुण पा लोकशिखर का प्रान्त गहे ॥२६॥
वचनमयी थुदि कुसुमों से शुभ मालाओं को बना-बना।
मानस-कर से दिशा-दिशा में बिखरायें हम सुहावना ॥
इन तीर्थों की परिक्रमा भी सादर सविनय सदा करें।
यही प्रार्थना किन्तु करें हम सिद्धि मिले आपदा टरे ॥२७॥
पक्षपात तज कर्मपक्ष पर पाण्डव तीनों टूट पड़े।
शत्रुञ्जयगिरि पर शत्रुञ्जय बने बन्ध से छूट पड़े ॥
तुंगीगिरि पर अंग-रहित हो राम सदा अभिराम बने।
नदी तीर पर स्वर्णभद्र मुनि बने सिद्ध विधिकाम हने ॥२८॥
सिद्धकूट वैभार तुंग पर श्रमणाचल विपुलाचल में।
पावन कुण्डलगिरि पर मुक्तागिरि पर श्रीविंध्याचल में ॥
तप के साधन द्रोणागिरि पर पौदनपुर के अञ्चल में।
सिंह दहाड़े सह्याचल में दुर्गम बलाहकाचल में ॥२९॥
गजदल टहले गजपंथा में हिम गिरता हिमगिरिवर में।
दंडात्मक पृथुसार यष्टि में पूज्य प्रतिष्ठक भूधर में ॥
साधु-साधना करते बनते निर्मल पञ्चमगति पाते।
स्थान हुये ये प्रसिद्ध जग में करलूँ इनकी थुदि तातैं ॥३०॥
पुण्य पुरुष ये जहाँ विचरते पुजती धरती माटी है।
आटे में गुड़ मिलता जैसे और मधुरता आती है ॥३१॥
गणधर देवों अरहन्तों की मौनमना मुनिराजों की।
कही गईं निर्वाणभूमियाँ मुझसे कुछ गिरिराजों की ॥
विजितमना जिन शान्तमना मुनि जो हैं भय से दूर सदा।
यही प्रार्थना मेरी उनसे सद्गति दें सुख पूर सुधा ॥३२॥

'वृषभ' वृषभ का चिह्न अजित का 'गज' शंभव का 'घोट' रहा।
अभिनन्दन का 'वानर' माना और सुमति का 'कोक' रहा ॥
छटे सातवें अष्टम जिन का 'सरोज' 'स्वस्तिक' 'चन्दा' है।
नवम दशम ग्यारहवें जिन का 'मकर' 'कल्पतरु' 'गेंडा' है ॥३३॥
वासुपूज्य का 'भैंसा' 'सूकर' विमलनाथ का औ 'सेही'।
अनन्त का है 'वज्र' धर्म का शान्तिनाथ का 'मृगदेही' ॥
कुन्थु अरह का 'अज' 'मीना' है 'कलश' मल्लि का 'कूर्म' रहा।
मुनिसुव्रत का, नमी नेमि का 'नीलकमल' है 'शंख' रहा।
पार्श्वनाथ का 'नाग' रहा है वर्धमान का 'सिंह' रहा ॥३४॥
उग्रवंश के पार्श्वनाथ हैं नाथवंश के वीर रहे।
मुनिसुव्रत औ नेमिनाथ हैं यदुवंशी हैं धीर रहे ॥
कुरुवंशी हैं शान्तिनाथ हैं कुन्थुनाथ अरनाथ रहे।
रहे शेष इक्ष्वाकुवंश के इन पद में मम माथ रहे ॥३५॥

अञ्चलिका

दोहा

निर्वाणों की भक्ति का करके कायोत्सर्ग।
आलोचन उसका करूँ ले प्रभु! तव संसर्ग ॥३६॥
काल बीतता चतुर्थ में जब पक्ष नवासी शेष रहे।
कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी के सौ-सौ श्वाँसें शेष रहे ॥
भोर स्वाति की पावा में है वर्धमान शिव-धाम गये।
देव चतुर्विध साथ स्वजन ले लो आते जिन नाम लिये ॥३७॥
दिव्य गन्ध ले दिव्य दीप ले दिव्य - दिव्य ले सुमनलता।
दिव्य चूर्ण ले दिव्य न्हवन ले दिव्य-दिव्य ले वसन तथा ॥
अर्चन पूजन वन्दन करते करते नियमित नमन सभी।
निर्वाण कल्याण मनाकर करते निज घर गमन तभी ॥३८॥
सिद्धभूमियों को नित मैं भी यही भाव निर्मल करके।
अर्चन पूजन वन्दन करता प्रणाम करता झुक करके ॥
कष्ट दूर हो कर्म चूर हो बोधि लाभ हो सद्गति हो।
वीर-मरण हो जिनपद मुझको मिले सामने सन्मति हो! ॥३९॥

जय-जय-जय जयवन्त जिनालय नाश रहित हैं शाश्वत हैं।
जिनमें जिनमहिमा से मण्डित जैन बिम्ब हैं भास्वत हैं॥
सुरपति के मुकुटों की मणियाँ झिलमिल झिलमिल करती हैं।
जिनबिम्बों के चरण-कमल को धोती हैं, मन हरती हैं॥१॥
सदा-सदा से सहज रूप से शुचितम प्राकृत छवि वाले।
रहें जिनालय धरती पर ये श्रमणों की संस्कृति धारे॥
तीनों संध्याओं में इनको तन से मन से वचनों से।
नमन करूँ धोऊँ अघ-रज को छूटूँ भव-वन भ्रमणों से॥२॥
भवनवासियों के भवनों में तथा जिनालय बने हुये।
तेज कान्ति से दमक रहे हैं और तेज सब हने हुये॥
जिनकी संख्या जिन आगम में सात कोटि की मानी है।
साठ-लाख दस लाख और दो लाख बताते ज्ञानी हैं॥३॥
अगणित द्वीपों में अगणित हैं अगणित गुण गण मण्डित हैं।
व्यन्तर देवों से नियमित जो पूजित संस्तुत वन्दित हैं॥
त्रिभुवन के सब भविकजनों के नयन मनोहर सुन प्यारे।
तीन लोक के नाथ जिनेश्वर मन्दिर हैं शिवपुर द्वारे॥४॥
सूर्य चन्द्र ग्रह नक्षत्रादिक तारक दल गगनांगन में।
कौन गिने वह अनगिन हैं ये अनगिन जिनगृह हैं जिनमें॥
जिन के वन्दन प्रतिदिन करते शिव सुख के वे अभिलाषी।
दिव्य देह ले देव-देवियाँ ज्योतिर्मण्डल अधिवासी॥५॥
नभ-नभ स्वर-रस केशव-सेना मद हो सोलह कल्पों में।
आगे पीछे तीन बीच दो शुभतर कल्पातीतों में॥
इस विधि शाश्वत ऊर्ध्वलोक में सुखकर ये जिनधाम रहें।
अहो भाग्य हो नित्य निरन्तर होठों पर जिन नाम रहे॥६॥
अलोक का फैलाव कहाँ तक लोक कहाँ तक फैला है?
जाने जो जिन हैं जय-भाजन मिटा उन्हीं का फेरा है॥
कही उन्हीं ने मनुज लोक के चैत्यालय की गिनती है।
चार शतक अट्ठावन ऊपर जिन में मन रम विनती है॥७॥

आतम-मद-सेना-स्वर-केशव-अंग-रंग फिर याम कहे।
ऊर्ध्वमध्य औ अधोलोक में यूँ सब मिल जिन-धाम रहे ॥८॥
किसी ईश से निर्मित ना हैं शाश्वत हैं स्वयमेव सदा।
दिव्य भव्य जिन मन्दिर देखो छोड़ो मन अहमेव मुधा ॥
जिनमें आर्हत प्रतिभा-मण्डित प्रतिमा न्यारी प्यारी हैं।
सुरासुरों से सुरपतियों से पूजी जाती सारी हैं ॥९॥
रुचक-कुण्डलों-कुलाचलों पर क्रमशः चउ चउ तीस रहें।
वक्षारों-गिरि विजयार्द्धों पर शत शत-सत्तर ईश कहें ॥
गिरि इषुकारों उत्तरगिरियों कुरुओं में चउ चउ दश हैं।
तीन शतक छह बीस जिनालय गाते इनके हम यश हैं ॥१०॥
द्वीप रहा हो अष्टम जिसने 'नन्दीश्वर' वर नाम धरा।
नन्दीश्वर सागर से पूरण आप घिरा अभिराम खरा ॥
शशि-सम शीतल जिसके अतिशय यश से बस! दश दिशा खिली।
भूमण्डल भी हुआ प्रभावित इस ऋषि को भी दिशा मिली ॥११॥
इसी द्वीप में चउ दिशियों में चउ गुरु अञ्जन गिरिवर हैं।
इक-इक अञ्जनगिरि सम्बन्धित चउ-चउ दधिमुख गिरिवर हैं ॥
फिर प्रति दधिमुख कोनों में दो-दो रतिकर-गिरि चर्चित हैं।
पावन बावन गिरि पर बावन जिनगृह हैं सुर अर्चित हैं ॥१२॥
एक वर्ष में तीन बार शुभ अष्टाह्निक उत्सव आते।
एक प्रथम आषाढ़ मास में कार्तिक फाल्गुन फिर आते ॥
इन मासों के शुक्ल पक्ष में अष्ट दिवस अष्टम तिथि से।
प्रमुख बना सौधर्म इन्द्र को भूपर उतरे सुर गति से ॥१३॥
पूज्य द्वीप नन्दीश्वर जाकर प्रथम जिनालय वन्दन ले।
प्रचुर पुष्प मणिदीप धूप ले दिव्याक्षत ले चन्दन ले ॥
अनुपम अद्‌भुत जिन प्रतिमा की जग-कल्याणी गुरुपूजा।
भक्ति - भाव से करते हे मन! पूजा में खो - जा तू जा ॥१४॥
बिम्बों के अभिषेक कार्यरत हुआ इन्द्र सौधर्म महा।
'दृश्य बना' उसका क्या वर्णन भाव-भक्ति सो धर्म रहा ॥
सहयोगी बन उसी कार्य में शेष इन्द्र जयगान करें।
पूर्णचन्द्र-सम निर्मल यश ले प्रसाद गुण का पान करें ॥१५॥

इन्द्रों की इन्द्राणी मंगल कलशादिक लेकर सर पै।
समुचित शोभा और बढ़ातीं गुणवन्ती इस अवसर पै॥
छां-छुम छां-छुम नाच नाचतीं सुर-नटियाँ हैं सस्मित हो।
सुनो! शेष अनिमेष सुरासुर दृश्य देखते विस्मित हो॥१६॥
वैभवशाली सुरपतियों के भावों का परिणाम रहा।
पूजन का यह सुखद महोत्सव दृश्य बना अभिराम रहा॥
इसके वर्णन करने में जब सुनो! बृहस्पति विफल रहा।
मानव में फिर शक्ति कहाँ वह? वर्णन करने मचल रहा॥१७॥
जिन-पूजन अभिषेक पूर्णकर अक्षत केसर चन्दन से।
बाहर आये देव दिख रहे रंगे-रंगे से तन-मन से॥
तथा दे रहे प्रदक्षिणा हैं नन्दीश्वर जिनभवनों की।
पूज्य पर्व को पूर्ण मनाते स्तुति करते जिन-श्रमणों की॥१८॥
सुनो! वहाँ से मनुज-लोक में सब मिलकर सुर आते हैं।
जहाँ पाँच शुभ मन्दरगिरि हैं शाश्वत चिर से भाते हैं॥
भद्रशाल नन्दन सुमनस औ पाण्डुक वन ये चार जहाँ।
प्रति-मन्दर पर रहे तथा प्रतिवन में जिनगृह चार महा॥१९॥
मन्दर पर भी प्रदक्षिणा दे करें जिनालय वन्दन हैं।
जिन-पूजन अभिषेक तथा कर करें शुभाशय नन्दन हैं॥
सुखद पुण्य का वेतन लेकर जो इस उत्सव का फल है।
जाते निज-निज स्वर्गों को सुर यहाँ धर्म ही सम्बल है॥२०॥
तरह-तरह के तोरण-द्वारे दिव्य वेदिका और रहें।
मानस्तम्भों यागवृक्ष औ उपवन चारों ओर रहें॥
तीन-तीन प्राकार बने हैं विशाल मण्डप ताने हैं।
ध्वजा पंक्ति का दशक लसे चउ-गोपुर गाते गाने हैं॥२१॥
देख सकें अभिषेक बैठकर धाम बने नाटक गृह हैं।
जहाँ सदन संगीत साध के क्रीड़ागृह कौतुकगृह हैं॥
सहज बनीं इन कृतियों को लख शिल्पी होते अविकल्पी।
समझदार भी नहीं समझते सूझ-बूझ सब हो चुप्पी॥२२॥
थाली-सी है गोल वापिका पुष्कर हैं चउ-कोन रहे।
भरे लबालब जल से इतने कितने गहरे कौन कहे?

पूर्ण खिले हैं महक रहे हैं जिन में बहुविध कमल लसे।
शरदकाल में जिस विध नभ में शशिग्रह तारक विपुल लसें ॥२३॥
झारी लोटे घट कलशादिक उपकरणों की कमी नहीं।
प्रति जिनगृह में शत-वसु शत-वसु शाश्वत मिटते कभी नहीं ॥
वर्णाकृति भी निरी-निरी है जिन की छवि प्रतिछवि भाती।
जहाँ घंटियाँ झन-झन-झन-झन बजती रहती ध्वनि आती ॥२४॥
स्वर्णमयी ये जिन मन्दिर यूँ युगों-युगों से शोभित हैं।
गन्धकुटी में सिंहासन भी सुन्दर-सुन्दर द्योतित हैं ॥
नाना दुर्लभ वैभव से ये परिपूरित हैं रचित हुये।
सुनो! यहीं त्रिभुवन के वैभव जिनपद में आ प्रणत हुये ॥२५॥
इन जिनभवनों में जिनप्रतिमा ये हैं पद्मासन वाली।
धनुष पञ्चशत प्रमाणवाली प्रति-प्रतिमा शुभ छवि वाली ॥
कोटि-कोटि दिनकर आभा तक मन्द-मन्द पड़ जाती है।
कनक रजत मणि निर्मित सारी झग-झग झग-झग भाती हैं ॥२६॥
दिशा-दिशा में अतिशय शोभा महातेज यश धार रहें।
पाप मात्र के भंजक हैं ये भवसागर के पार रहें ॥
और और फिर भानुतुल्य इन जिनभवनों को नमन करूँ।
स्वरूप इनका कहा न जाता मात्र मौन हो नमन करूँ ॥२७॥
धर्मक्षेत्र ये एक शतक औ सत्तर हैं षट् कर्म जहाँ।
धर्मचक्रधर तीर्थकरों से दर्शित है जिनधर्म यहाँ ॥
हुये हो रहे होंगे उन सब तीर्थकरों को नमन करूँ।
भाव यही है 'ज्ञानोदय' में रमण करूँ भव-भ्रमण हरूँ ॥२८॥
इस अवसर्पिणि में इस भूपर वृषभनाथ अवतार लिया।
भर्ता बन युग का पालन कर धर्म-तीर्थ का भार लिया ॥
अन्त-अन्त में अष्टापद पर तप का उपसंहार किया।
पापमुक्त हो मुक्ति सम्पदा प्राप्त किया उपहार जिया ॥२९॥
बारहवें जिन 'वासुपूज्य' हैं परम पुण्य के पुञ्ज हुये।
पाँचों कल्याणों में जिनको सुरपति पूजक पूज गये ॥
'चम्पापुर' में पूर्ण रूप से कर्मों पर बहु बार किये।
परमोत्तम पद प्राप्त किये औ विपदाओं के पार गये ॥३०॥

प्रमुदित मति के राम-श्याम से 'नेमिनाथ' जिन पूजित हैं।
कषाय-रिपु को जीत लिए हैं प्रशमभाव से पूरित हैं ॥
'ऊर्जयन्त गिरनार शिखर' पर जाकर योगातीत हुये।
त्रिभुवन के फिर चूड़ामणि हो मुक्तिवधू के प्रीत हुये ॥३१॥
'वीर' दिगम्बर श्रमण गुणों को पाल बने पूरण ज्ञानी।
मेघनाद-सम दिव्य नाद से जगा दिया जग सद्ध्यानी ॥
'पावापुर' वर सरोवरों के मध्य तपों में लीन हुये।
विधि गुण विगलित कर अगणित गुण शिवपद पा स्वाधीन हुये ॥३२॥
जिसके चारों ओर वनों में मद वाले गज बहु रहते।
'सम्मेदाचल' पूज्य वही है पूजो इसको गुरु कहते ॥
शेष रहे 'जिन बीस तीर्थकर' इसी अचल पर अचल हुये।
अतिशय यश को शाश्वत सुख को पाने में वे सफल हुये ॥३३॥
मूक तथा उपसर्ग अन्तकृत अनेक विध केवलज्ञानी।
हुये विगत में यति मुनि गणधर कु-सुमत ज्ञानी विज्ञानी ॥
गिरि वन तरुओं गुफा कंदरों सरिता सागर तीरों में।
तप साधन कर मोक्ष पधारे अनल शिखा मरु टीलों में ॥३४॥
मोक्ष साध्य के हेतुभूत ये स्थान रहें पावन सारे।
सुरपतियों से पूजित हैं सो इनकी रज शिर पर धारें ॥
तपोभूमि ये पुण्य-क्षेत्र ये तीर्थ-क्षेत्र ये अघहारी।
धर्मकार्य में लगे हुये हम सबके हों मंगलकारी ॥३५॥
दोष रहित हैं विजितमना हैं जग में जितने जिनवर हैं।
जितनी जिनवर की प्रतिमाएँ तथा जिनालय मनहर हैं ॥
समाधि साधित भूमि जहाँ मुनि-साधक के हो चरण पड़े।
हेतु बने ये भविकजनों के भव-लय में हम चरण पड़ें ॥३६॥
उत्तम यशधर जिनपतियों का स्तोत्र पढ़े निजभावों में।
तन से मन से और वचन से तीनों संध्या कालों में ॥
श्रुतसागर के पार गए उन मुनियों से जो संस्तुत है।
यथाशीघ्र वह अमित पूर्ण पद पाता सम्मुख प्रस्तुत है ॥३७॥
मलमूत्रों का कभी न होना रुधिर क्षीर-सम श्वेत रहे।
सर्वांगों में सामुद्रिकता सदा - सदा ना स्वेद रहे ॥

रूप सलोना सुरभित होना तन-मन में शुभ लक्षणता।
हित-मित-मिश्री मिश्रितवाणी सुन लो! और विलक्षणता ॥३८॥
अतुल-वीर्य का सम्बल होना प्राप्त आद्य संहननपना।
ज्ञात तुम्हें हो ख्यात रहे हैं स्वतिशय दश ये गुणनपना ॥
जन्म-काल से मरण-काल तक ये दश अतिशय 'सुनते हैं'।
तीर्थकरों के तन में मिलते अमितगुणों को गुनते हैं ॥३९॥
कोश चार शत सुभिक्षता हो अधर गगन में गमन सही।
चउ विध कवलाहार नहीं हो किसी जीव का हनन नहीं ॥
केवलता या श्रुतकारकता उपसर्गों का नाम नहीं।
चतुर्मुखी का होना तन की छाया का भी काम नहीं ॥४०॥
बिना बढ़े वह सुचारुता से नख केशों का रह जाना।
दोनों नयनों के पलकों का स्पन्दन ही चिर मिट जाना ॥
घातिकर्म के क्षय के कारण अर्हन्तों में होते हैं।
ये दश अतिशय इन्हें देख बुध पल भर सुध-बुध खोते हैं ॥४१॥
अर्धमागधी भाषा सुख की सहज समझ में आती है।
समवसरण में सब जीवों में मैत्री घुल-मिल जाती है ॥
एक साथ सब ऋतुएँ फलती 'क्रम' के सब पथ रुक जाते।
लघुतर गुरुतर बहुतर तरुवर फूल फलों से झुक जाते ॥४२॥
दर्पण-सम शुचि रत्नमयी हो झग-झग करती धरती है।
सुरपतिनरपति यतिपतियों के जन-जन के मन हरती है ॥
जिनवर का जब विहार होता पवन सदा अनुकूल बहे।
जन-जन परमानन्द गन्ध में डूबे दुख-सुख भूल रहे ॥४३॥
संकटदा विषकंटक कीटों कंकर तिनकों शूलों से।
रहित बनाता पथ को गुरुतर उपलों से अतिधूलों से ॥
योजन तक भूतल को समतल करता बहता वह साता।
मन्द-मन्द मकरन्द गन्ध से पवन मही को महकाता ॥४४॥
तुरत इन्द्र की आज्ञा से बस नभ मण्डल में छा जाते।
सघन मेघ के कुमार गर्जन करते बिजली चमकाते ॥
रिम-झिम रिम-झिम गन्धोदक की वर्षा होती हर्षाती।
जिस सौरभ से सब की नासा सुर-सुर करती दर्शाती ॥४५॥

आगे पीछे सात-सात इक पदतल में तीर्थंकर के।
पंक्तिबद्ध यों अष्टदिशाओं और उन्हीं के अन्तर में॥
पद्म बिछाते सुर माणिक-सम केशर से जो भरे हुये।
अतुल परस है सुखकर जिनका स्वर्ण दलों से खिले हुये॥४६॥
पकी फसल ले शाली आदिक धरती पर सर धरती है।
सुन लो फलतः रोम-रोम से रोमाञ्चित सी धरती है॥
ऐसी लगती त्रिभुवनपति के वैभव को ही निरख रही।
और स्वयं को भाग्यशालिनी कहती-कहती हरख रही॥४७॥
शरदकाल में विमल सलिल से सरवर जिस विध लसता है।
बादल-दल से रहित हुआ नभमण्डल उस विध हँसता है॥
दशों दिशायें धूम्र-धूलियाँ शामभाव को तजती हैं।
सहज रूप से निरावरणता उज्ज्वलता को भजती हैं॥४८॥
इन्द्राज्ञा में चलने वाले देव चतुर्विध वे सारे।
भविक जनों को सदा बुलाते समवसरण में उजियारे॥
उच्चस्वरों में दे दे करके आमन्त्रण की ध्वनि 'ओ जी'!
''देवों के भी देव यहाँ हैं'' शीघ्र पधारो आओ जी!॥४९॥
जिसने धारे हजार आरे स्फुरणशील मन हरता है।
उज्ज्वल मौलिक मणिकिरणों से झर-झुर झर-झुर करता है॥
जिसके आगे तेज भानु भी अपनी आभा खोता है।
आगे-आगे सबसे आगे धर्मचक्र वह होता है॥५०॥
वैभवशाली होकर भी ये इन्द्र लोग सब सीधे हैं।
धर्म राग से रंगे हुये हैं भाव भक्ति में भीगे हैं॥
इन्हीं जनों से इस विध अनुपम अतिशय चौदह किये गये।
वसुविध मंगल पात्रादिक भी समवसरण में लिये गये॥५१॥
नील-नील वैडूर्य दीप्ति से जिसकी शाखायें भाती।
लाल-लाल मद प्रवाल आभा जिनमें शोभा औ लाती॥
मरकत मणि के पत्र बने हैं जिसकी छाया शाम घनी।
अशोक तरु यह अहो शोभता यहाँ शोक की शाम नहीं॥५२॥

पुष्पवृष्टि हो नभ से जिसमें पुष्प अलौकिक विपुल मिले।
नीलकमल हैं लाल-धवल हैं कुन्द बहुल हैं बकुल खुले ॥
गन्धदार मन्दार मालती पारिजात मकरन्द झरे।
जिन पर अलिगण गुन-गुन गाते निशिगन्धा अरविन्द खिले ॥५३॥
जिनकी कटि में कनक करधनी कलाइयों में कनक कड़े।
हीरक के केयूर हार हैं पुष्ट कण्ठ में दमक पड़े ॥
सालंकृत दो यक्ष खड़े जिन-कर्णों में कुण्डल डोलें।
चमर ढुराते हौले-हौले प्रभु की जो जय-जय बोलें ॥५४॥
यहाँ यकायक घटित हुआ जो कोई सकता बता नहीं।
दिवस रात का भला भेद वह कहाँ गया कुछ पता नहीं ॥
दूर हुये व्यवधान हजारों रवियों के वह आप कहीं।
भामण्डल की यह सब महिमा आँखों को कुछ ताप नहीं ॥५५॥
प्रबल पवन का घात हुआ जो विचलित होकर तुरत मथा।
हर-हर-हर-हर सागर करता हर मन हरता मुदित यथा ॥
वीणा मुरली दुम-दुम दुंदुभि ताल-ताल करताल तथा।
कोटि कोटियों वाद्य बज रहे समवसरण में सार कथा ॥५६॥
महादीर्घ वैडूर्य रत्न का बना दण्ड है जिस पर हैं।
तीन चन्द्र-सम तीन छत्र ये गुरु-लघु-लघुतम ऊपर हैं ॥
तीन भुवन के स्वामीपन की स्थिति जिससे अति प्रकट रही।
सुन्दरतम हैं मुक्ताफल की लड़ियाँ जिस पर लटक रहीं ॥५७॥
जिनवर की गम्भीर भारती श्रोताओं के दिल हरती।
योजन तक जो सुनी जा रही अनुगुंजित हो नभ धरती ॥
जैसे जल से भरे मेघदल नभ-मण्डल में डोल रहे।
ध्वनि में डूबे दिगन्तरों में घुमड़-घुमड़ कर बोल रहे ॥५८॥
रंग-विरंगी मणि-किरणों से इन्द्रधनुष की सुषमा ले।
शोभित होता अनुपम जिस पर ईश विराजे गरिमा ले ॥
सिंहों में वर बहु सिंहों ने निजी पीठ पर लिया जिसे।
स्फटिक शिला का बना हुआ है सिंहासन है जिया! लसे ॥५९॥

अतिशय गुण चउतीस रहें ये जिस जीवन में प्राप्त हुये।
प्रातिहार्य का वसुविध वैभव जिन्हें प्राप्त हैं आप्त हुये ॥
त्रिभुवन के वे परमेश्वर हैं महागुणी भगवन्त रहे।
नमूँ उन्हें अरहन्त सन्त हैं सदा-सदा जयवन्त रहें ॥६०॥

अञ्चलिका

नन्दीश्वर वर भक्ति का करके कायोत्सर्ग।
आलोचन उसका करूँ ले प्रभु! तव संसर्ग ॥६१॥
नन्दीश्वर के चउ दिशियों में चउ गुरु अंजन गिरिवर हैं।
इक-इक अंजनगिरि सम्बन्धित चउ-चउ दधिमुख गिरिवर हैं ॥
फिर प्रति दधिमुख कोनों में दो-दो रतिकर गिरि चर्चित हैं।
पावन बावनगिरि पर बावन जिनगृह हैं सुर अर्चित हैं ॥६२॥
देव चतुर्विध कुटुम्ब ले सब इसी द्वीप में हैं आते।
कार्तिक फागुन आषाढ़ों के अन्तिम वसु-दिन जब आते ॥
शाश्वत जिनगृह जिनबिम्बों से मोहित होते बस तातैं।
तीनों अष्टाह्निक पर्वों में यहीं आठ दिन बस जाते ॥६३॥
दिव्य गन्ध ले दिव्य दीप ले दिव्य-दिव्य ले सुमन तथा।
दिव्य चूर्ण ले दिव्य न्हवन ले दिव्य-दिव्य ले वसन तथा ॥
अर्चन पूजन वन्दन करते नियमित करते नमन सभी।
नन्दीश्वर का पर्व मनाकर करते निजघर गमन सभी ॥६४॥
मैं भी उन सब जिनालयों का भरतखण्ड में रहकर भी।
अर्चन पूजन वन्दन करता प्रणाम करता झुककर ही ॥
कष्ट दूर हो कर्मचूर हो बोधिलाभ हो सद्गति हो।
वीर मरण हो जिनपद मुझको मिले सामने सन्मति ओ! ॥६५॥

चैत्यभक्ति

अजेय अघहर अद्भुत - अद्भुत पुण्य बन्ध के कारक हैं।
करें उजाला पूर्ण जगत् में सत्य तथ्य भव तारक हैं ॥
गौतम - पद को सन्मति - पद को प्रणाम करके कहता हूँ।
'चैत्यवन्दना' जग का हित हो जग के हित में रहता हूँ ॥१॥

अमर मुकुटगत मणि आभा जिन को सहलाती सन्त कहे।
कनक कमल पर चरण कमल को रखते जो जयवन्त रहे ॥
जिनकी छाया में आकर के उदार उर वाले बनते।
अदय क्रूर उर धारे आरे मान दम्भ से जो तनते ॥१॥
जैनधर्म जयशील रहे नित सुर - सुख शिव - सुख का दाता।
दुर्गति दुष्पथ दुःखों से जो हमें बचाता है त्राता ॥
प्रमाणपण औ विविध नयों से दोषों के जो वारक हों।
अंग-बाह्य औ अंग-पूर्वमय जिनवच जग उद्धारक हों ॥२॥
अनेकान्तमय वस्तु तत्त्व का सप्तभंग से कथन करे।
तथा दिखाता सदा द्रव्य को ध्रौव्य-आय-व्यय वतन अरे! ॥
पूर्णबोध की इस विध थुति से निरुपम सुख का द्वार खुले।
दोष रहित औ नित्य निरापद संपद का भण्डार मिले ॥३॥
जन्म-दुःख से मुक्त हुए हैं अरहन्तों को वन्दन हो।
सिद्धों को भी नमन करूँ मैं जहाँ कर्म की गन्ध न हो ॥
सदा वन्द्य हैं सर्ववन्द्य हैं साधुजनों को नमन करूँ।
गणी पाठकों को वन्दूँ मैं मोक्ष-धाम को गमन करूँ ॥४॥
मोह-शत्रु को नष्ट किये हैं दोष-कोष से रहित हुये।
तदावरण से दूर हुये हैं प्रबोध-दर्शन सहित हुये ॥
अनन्त बल के धनी हुये हैं अन्तराय का नाम नहीं।
पूज्य योग्य अरहन्त बने हैं तुम्हें नमूँ वसु याम सही ॥५॥
वीतरागमय धर्म कहा है जिनवर ने शिवपथ नेता।
साधक को जो सदा संभाले मोक्षधाम में धर देता ॥
नमूँ उसे मैं तीन लोक के हित सम्पादक और नहीं।
आर्जव आदिक गुणगण जिससे बढ़ते उन्नति ओर सही ॥६॥
सजे चतुर्दश पूर्वों से हैं औ द्वादश विध अंगों से।
तथा वस्तुओं और उपांगों से गुंथित बहु भंगों से ॥
अजेय जिनके वचन रहे ये अनन्त अवगम वाले हैं।
इन्हें नमन अज्ञान - तिमिर को हरते परम उजाले हैं ॥७॥

भवनवासियों के भवनों में स्वर्गिक कल्प विमानों में।
व्यन्तर देवावासों में औ ज्योतिष देव विमानों में॥
विश्ववन्द्य औ मर्त्यलोक में जितने जिनवर चैत्य रहें।
मन - वच - तन से उन्हें नमूँ वे मम मन के नैवेद्य रहे ॥८॥
सुरपति नरपति धरणेन्द्रों से तीन लोक में अर्चित हैं।
अनन्य दुर्लभ सभी सम्पदा जिनचरणों में अर्पित हैं॥
तीर्थकरों के जिनालयों को तन - वच - मन - परिणमनों से।
नमूँ बनूँ बस शान्त बचूँ मैं भव - भवगत दुख - अनलों से ॥९॥
इस विध जिनको नमन किया है पावनपण को हैं धारे।
पञ्चपदों से पूजे जाते परम पुरुष हैं जग प्यारे॥
जिनवर जिनके वचन धर्म औ बिम्ब जिनालय ये सारे।
बुधजन तरसे विमल - बोधि को हमें दिलावे शिव - द्वारे ॥१०॥
नहीं किसी से गये बनाये स्वयं बने हैं शाश्वत हैं।
चम-चम चमके दम-दम दमके बाल-भानुसम भास्वत हैं॥
और बनाये जिनालयों में नरों सुरों से पूजित हैं।
जिनबिम्बों को नमन करूँ मैं परम पुण्य से पूरित हैं ॥११॥
आभामय भामण्डल वाली सुडौल हैं बेजोड़ रहीं।
जिनोत्तमों में उत्तम जिन की प्रतिमायें युग मोड़ रहीं॥
विपदा हरती वैभव लाती सुभिक्ष करती त्रिभुवन में।
कर युग जोड़ूँ विनम्र तन से नमूँ उन्हें हरखूँ मन में ॥१२॥
आभरणों से आवरणों से आभूषण से रहित रही।
हस्त निरायुध उपांग जिनके विराग छवि से सहित सही॥
प्रतिमायें अ-प्रमित रही हैं कान्ति अनूठी है जिनकी।
क्लान्ति मिटे चिर शान्ति मिले बस भक्ति करूँ निशिदिन उनकी ॥१३॥
बाहर का यह रूप जिनों का स्वरूप क्या? है बता रहा।
कषाय कालिख निकल गई है परम शान्ति को जता रहा॥
स्वभाव-दर्शक भव-भवनाशक जिनबिम्बों को नमन करूँ।
साधन से सो साध्य सिद्ध हो कषाय-मल का शमन करूँ ॥१४॥
लगा भक्ति में जिन, बिम्बों की हुआ पुण्य का अर्जन है।
सहजरूप से अनायास ही हुआ पाप का तर्जन है॥

किये पुण्य के फल ना चाहूँ विषय नहीं सुरगात्र नहीं।
जन्म-जन्म में जैनधर्म में लगा रहे मन मात्र यही ॥१५॥
सब कुछ देखे सब कुछ जाने दर्शनधारी ज्ञानधनी।
गुणियों में अरहन्त कहाते चेतन के द्युतिमान मणी ॥
मिली बुद्धि से उन चैत्यों का भाग्यमान गुणगान करूँ।
अशुद्धियों को शीघ्र मिटाकर विशुद्धियों का पान करूँ ॥१६॥
भवनवासियों के भवनों में फैली वैभव की महिमा।
नहीं बनाई बनी आप हैं आभा वाली हैं प्रतिमा ॥
प्रणाम उनको भी मैं करता सादर सविनय सारों से।
पहुँचा देवें पञ्चमगति को तारें मुझको क्षारों से ॥१७॥
यहाँ लोक में विद्यमान हैं जितने अपने आप बने।
और बनाये चैत्य अनेकों भविकजनों से पाप हने ॥
उन सब चैत्यों को वन्दूँ मैं बार-बार संयत मन से।
बार-बार ना एक बार बस आप भरूँ अक्षय धन से ॥१८॥
व्यन्तरदेवों के यानों में प्रतिमा - गृह हैं भास्वर हैं।
संख्या की सीमा से बाहर चिर से हैं अविनश्वर हैं ॥
सदा हमारे दोषों के तो वारण के वे कारण हो।
ताकि दिनों दिन उच्च-उच्चतर चारित का अवधारण हो ॥१९॥
ज्योतिषदेव विमानों में भी रहे जिनालय हैं प्यारे।
कितनी संख्या कही न जाती अनगिन माने हैं सारे ॥
विस्मयकारी वैभव से जो भरे हुये हैं अघहारी।
उनको भी हो वन्दन, अपना वन्दन हो शिव सुखकारी ॥२०॥
वैमानिकदेवों के यानों में भी जिन की प्रतिमा हैं।
जिन की महिमा कही न जाती चम - चम-चमकी द्युतिमा हैं ॥
सुरमुकुटों की मणि छवियाँ वे जिनके पद में बिम्बित हैं।
उन्हें नमूँ मैं सिद्धि लाभ हो गुणगण से जो गुम्फित हैं ॥२१॥
उभय सम्पदा वाले जिनका वर्णों से ना वर्णन हो।
अरि-विरहित अरहंत कहाते जिनबिम्बों का अर्चन हो ॥

यश:कीर्ति की नहीं कामना कीर्तन जिन का किया करूँ।
कर्मास्त्रव का रोकनहारा कीर्तन करता जिया करूँ ॥२२॥
महानदी अरहन्त देव हैं अनेकान्त भागीरथ है।
भविकजनों का अघ धुलता है यहाँ यही वर तीरथ है ॥
और तीर्थ में लौकिक जो है तन की गरमी है मिटती।
वही तीर्थ परमार्थ जहाँ पर मन की भी गरमी मिटती ॥२३॥
लोकालोकालोकित करता दिव्यबोध आलोक रहा।
प्रवाह बहता अहोरात यह कहीं रोक ना टोक रहा ॥
जिसके दोनों ओर बड़े दो विशाल निर्मल कूल रहे।
एक शील का दूजा व्रत का आपस में अनुकूल रहे ॥२४॥
धर्म - शुक्ल के ध्यान धरे हैं राजहंस ऋषि चेत रहे।
पञ्च समितियाँ तीन गुप्तियाँ नाना गुणमय रेत रहे ॥
श्रुताभ्यास की अनन्य दुर्लभ मधुर-मधुर धुनि गहर रही।
महातीर्थ का मुझ बालक पर रहा रहे नित महर सही ॥२५॥
क्षमा भँवर है जहाँ हजारों यति-ऋषि-मुनि मन सहलाते।
दया कमल हैं खुले खिले हैं सब जीवों को महकाते ॥
तरह-तरह के दुस्सह परिषह लहर-लहर कर लहराते।
ज्ञानोदय के छन्द हमें यों ठहर-ठहर कर कह पाते ॥२६॥
भविक व्रती जन नहीं फिसलते राग-रोष शैवाल नहीं।
सार-रहित हैं कषाय तन्मय फेनों का फैलाव नहीं ॥
तथा यहाँ पर मोहमयी उस कर्दम का तो नाम नहीं।
महा भयावह दुस्सह दुख का मरण-मगर का काम नहीं ॥२७॥
ऋषि - पति मृदुधुनि से थुति करते श्रुत की भी दे सबक रहे।
जहाँ लग रहा श्रवण मनोहर विविध विहंगम चहक रहे ॥
घोर-घोरतर तप तपते हैं बने तपस्वी घाट रहे।
आस्रव रोधक संवर बनता बँधा झर रहा पाट रहे ॥२८॥
गणधर गणधर के चरणों में ऋषि-यति-मुनि अनगार रहे।
सुरपति नरपति और-और जो निकट भव्यपन धार रहे ॥

ये सब आकर परम-भक्ति से परम तीर्थ में स्नान किये।
पञ्चम युग के कलुषित मन को धो-धोकर छविमान किये ॥२९॥
नहीं किसी से जीता जाता अजेय है गम्भीर रहा।
पतितों को जो पूत बनाता परमपूत है क्षीर रहा ॥
अवगाहन करने आया हूँ महातीर्थ में स्नान करूँ।
मेरा भी सब पाप धुले बस यही प्रार्थना दान करूँ ॥३०॥
नयन युगल क्यों लाल नहीं हैं? कोप अनल को जीत लिया।
हाव-भाव से नहीं देखते! राग आपमें रीत गया ॥
विषाद-मद से दूर हुये हैं प्रसन्नता का उदय रहा।
यूँ तव मुख कहता-सा लगता दर्पण-सम है हृदय रहा ॥३१॥
निराभरण होकर भासुर हैं राग-रहित हैं अघहर हैं।
कामजयी बन यथाजात बन बने दिगम्बर मनहर हैं ॥
निर्भय हैं सो बने निरायुध मार-काट से मुक्त हुये।
क्षुधा-रोग का नाश हुआ है निराहार में तृप्त हुये ॥३२॥
अभी खिले हैं नीरज चन्दन-सम घम-घम-घम-वासित है।
दिनकर शशिकर हीरक आदिक शतवसु लक्षण भासित हैं ॥
दश-शत रवि-सम भासुर फिर भी आँखें लखती ना थकती।
दिव्यबोध जब जिन में उगता देह दिव्यता यूँ जगती।
बाल बढ़े नाखून बढ़े ना मलिन धूलि आ ना लगती ॥३३॥
शिवपथ में हैं बाधक होते मोह-भाव हैं राग घने।
जिनसे कलुषित जन भी तुम को लखते वे बेदाग बने ॥
किसी दिशा से जो भी देखे उसके सम्मुख तुम दिखते।
शरदचन्द्र-से शान्त धवलतम संत सुधी जन यूँ लिखते ॥३४॥
सुरपति मुकुटों की मणिकिरणें झर-झुर झर-झुर करती हैं।
पूज्यपाद के पदपद्मों को चूँम रही मन हरती हैं ॥
वीतराग जिन! दिव्य रूप तव सकल लोक को शुद्ध करे।
अन्ध बना है कुमततीर्थ में शीघ्र इसे प्रतिबुद्ध करे ॥३५॥
मानथंभ सर पुष्पवाटिका भरी खातिका शुचि जल से।
स्तूप महल बहु कोट नाट्यगृह सजी वेदियाँ ध्वज-दल से ॥

सुरतरु घेरे वन उपवन है और स्फटिक का कोट लसे।
नर सुर मुनि की सभा पीठिका-पर जिनवर हैं और बसे।
समवसरण की ओर देखते पाप ताप का घोर नसे ॥३६॥
क्षेत्र-पर्वतों के अन्तर में क्षेत्रों मन्दरगिरियों में।
द्वीप आठवाँ नन्दीश्वर में और अन्य शुभ पुरियों में ॥
सकल-लोक में जितने जिन के चैत्यालय हैं यहाँ लसे।
उन सबको मैं प्रणाम करता मम मन में वे सदा बसे ॥३७॥
बने बनाये बिना बनाये यहाँ धरा पर गिरियों में।
देवों राजाओं से अर्चित मानव-निर्मित पुरियों में ॥
वन में उपवन में भवनों में दिव्य विमानों यानों में।
जिनवर बिम्बों को मैं सुमरूँ अशुभ दिनों में सुदिनों में ॥३८॥
जम्बू-धातकि-पुष्करार्ध में लाल कमल-सम तन वाले।
कृष्ण मेघ-सम शशी कनक-सम नील कण्ठ आभा वाले ॥
साम्य-बोध चारितधारक हो अष्टकर्म को नष्ट किया।
विगत-अनागत-आगत जिन को नमूँ नष्ट हो कष्ट जिया ॥३९॥
रतिकर रुचके चैत्य वृक्ष पर औ दधिमुख अञ्जन भूधर-
रजत कुलाचल कनकाचल पर वृक्ष शाल्मली-जम्बू पर ॥
इष्वाकारों वक्षारों पर व्यन्तर-ज्योतिष सुर जग में।
कुण्डल मानुषगिरि वर-प्रतिमा नमूँ उन्हें अन्तर जग में ॥४०॥
सुरासुरों से नर नागों से पूजित वंदित अर्चित हैं।
घंटा तोरण ध्वजादिकों से शोभित बुधजन चर्चित हैं ॥
भविक जनों को मोहित करते पाप-ताप के नाशक हैं।
वन्दूँ जग के जिनालयों को दयाधर्म के शासक हैं ॥४१॥

अञ्चलिका

दोहा

पूज्य चैत्य सद्भक्ति का करके कायोत्सर्ग।
आलोचन उसका करूँ ले प्रभु! तव संसर्ग ॥४२॥
अधोलोक में ऊर्ध्वलोक में मध्यलोक में उजियारे।
बने बनाये हैं बनवाये चैत्य रहे अनगिन प्यारे ॥

देव चतुर्विध अपने-अपने उत्साहित परिवार लिये।
पर्वों विशेष तिथियों में औ प्रतिदिन शुभ शृंगार किये ॥४३॥
दिव्यगन्ध ले दिव्य दीप ले दिव्य दिव्य ले सुमनलता।
दिव्य चूर्ण ले दिव्य न्हवन ले दिव्य दिव्य ले वसन तथा ॥
अर्चन पूजन वन्दन करते सविनय करते नमन सभी।
भाग्य मानते पुण्य लूटते बने पाप का शमन तभी ॥४४॥
मैं भी उन सब जिन चैत्यों को भरतखण्ड में रहकर भी।
पूजूँ वन्दूँ अर्चन कर लूँ नमन करूँ सर झुककर ही ॥
कष्ट दूर हो कर्म चूर हो बोधि लाभ हो सद्गति हो।
वीर-मरण हो जिनपद मुझको मिले सामने सन्मति हो ॥४५॥

शान्तिभक्ति

नहीं स्नेह वश तव पद शरणा गहते भविजन पामर हैं।
यहाँ हेतु है बहु दुःखों से भरा हुआ भवसागर है ॥
धरा उठी जल ज्येष्ठ काल है भानु उगलता आग कहीं।
करा रहा क्या छाँव शशी के जल के प्रति अनुराग नहीं? ॥१॥
कुपित कृष्ण अहि जिसको डँसता फैला हो वह विष तन में।
विद्या औषध हवन मन्त्र जल से मिट सकता है क्षण में ॥
उसी भाँति जिन तुम पद-कमलों की थुति में जो उद्यत है।
पाप शमन हो रोग नष्ट हो चेतन तन के संगत है ॥२॥
कनक मेरु आभा वाले या तप्त कनक की छवि वाले।
हे जिन! तुम पद नमते मिटते दुस्सह दुख हैं शनि वाले ॥
उचित रहा रवि उषाकाल में उदार उर ले उगता है।
बहुत जनों के नेत्रज्योति-हर सघन तिमिर भी भगता है ॥३॥
सब पर विजयी बना तना है नाक-मरोड़ा दम तोड़ा।
देवों देवेन्द्रों को मारा नरपति को भी ना छोड़ा ॥
दावा बन कर काल घिरा है उग्र रूप को धार घना।
कौन बचावे? हमें कहो जिन! तव पद थुति नद-धार बिना ॥४॥
लोकालोकालोकित करते ज्ञानमूर्ति हो जिनवर हे!।
बहुविध मणियाँ जड़ी दण्ड में तीन छत्र सित तुम सर पे ॥

हे जिन! तव पद-गीत धुनी सुन रोग मिटे सब तन-मन के।
दाड-उघाड़े सिंह दहाड़े गज-मद गलते वन-वन के ॥५॥
तुम्हें देवियाँ अथक देखतीं विभव मेरु पर तव गाथा।
बाल भानु की आभा हरता मण्डल तव जन-जन भाता ॥
हे जिन! तव पद थुति से ही सुख मिलता निश्चय अटल रहा।
निराबाध नित विपुल सार है अचिंत्य अनुपम अटल रहा ॥६॥
प्रकाश करता प्रभा पुञ्ज वह भास्कर जब तक ना उगता।
सरोवरों में सरोज दल भी तब तक खिलता ना जगता ॥
जिसके मानस-सर में जब तक जिनपद पंकज ना खिलता।
पाप-भार का वहन करे वह भ्रमण भवों में ना टलता ॥७॥
प्यास शान्ति की लगी जिन्हें है तव पद का गुण गान किया।
शान्तिनाथ जिन शान्त भाव से परम शान्ति का पान किया ॥
करुणाकर! करुणा कर मुझको प्रसन्नता में निहित करो।
भक्तिमग्न है भक्त आपका दृष्टि-दोष से रहित करो ॥८॥
शरद शशी सम शीतल जिनका नयन मनोहर आनन है।
पूर्ण शील के व्रत संयम के अमित गुणों के भाजन है ॥
शत वसु लक्षण से मण्डित है जिनका औदारिक तन है।
नयन कमल हैं जिनवर जिनके शान्तिनाथ को वन्दन है ॥९॥
चक्रधरों में आप चक्रधर पञ्चम हैं गुण मंडित हैं।
तीर्थकरों में सोलहवें जिन सुर-नरपति से वंदित हैं ॥
शान्तिनाथ हो विश्वशान्ति हो भाँति-भाँति की भ्रान्ति हरो।
प्रणाम ये स्वीकार करो लो किसी भाँति मुझ कान्ति भरो ॥१०॥

चौपाई

दुंदुभि बजते जन मन हरते आतप हरते चामर ढुरते।
भामण्डल की आभा भारी सिंहासन की छटा निराली ॥
अशोक तरु सो शोक मिटाता भविक जनों से ढोक दिलाता।
योजन तक जिन घोष फैलता समवसरण में तोष तैरता ॥११॥
झुका-झुका कर मस्तक से मैं शान्तिनाथ को नमन करूँ।
देव जगत भूदेव जगत् से वन्दित पद में रमण करूँ ॥

चराचरों को शान्तिनाथ वे परम शान्ति का दान करें।
थुति करने वाले मुझमें भी परम तत्त्व का ज्ञान भरें ॥१२॥
पहने कुण्डल मुकुट हार हैं सुर हैं सुरगण पालक हैं।
जिनसे निशि-दिन पूजित अर्चित जिनपद भवदधि तारक हैं ॥
विश्व विभासक-दीपक हैं जिन विमलवंश के दर्पण हैं।
तीर्थंकर हो शान्ति विधायक यही भावना अर्पण है ॥१३॥
भक्तों को भक्तों के पालन-हारों को औ यक्षों को।
यतियों-मुनियों-मुनीश्वरों को तपोधनों को दक्षों को ॥
विदेश-देशों उपदेशों को पुरों गोपुरों नगरों को।
प्रदान कर दें शान्ति जिनेश्वर विनाश कर दें विघ्नों को ॥१४॥
क्षेम प्रजा का सदा बली हो धार्मिक हो भूपाल फले।
समय-समय पर इन्द्र बरस ले व्याधि मिटे भूचाल टले ॥
अकाल दुर्दिन चोरी आदिक कभी रोग ना हो जग में।
धर्मचक्र जिनका हम सबको सुखद रहे सुर शिव मग में ॥१५॥
ध्यान शुक्ल के शुद्ध अनल से घातिकर्म को ध्वस्त किया।
पूर्णबोध-रवि उदित हुआ सो भविजन को आश्वस्त किया ॥
वृषभदेव से वर्धमान तक चार-बीस तीर्थंकर हैं।
परम शान्ति की वर्षा जग में यहाँ करें क्षेमंकर हैं ॥१६॥

अञ्चलिका

पूर्ण शान्ति वर भक्ति का करके कायोत्सर्ग।
आलोचन उसका करूँ ले प्रभु! तव संसर्ग ॥१७॥
पञ्चमहाकल्याणक जिनके जीवन में हैं घटित हुये।
समवसरण में महा-दिव्य वसु प्रातिहार्य से सहित हुये ॥
नारायण से रामचन्द्र से छहखण्डों के अधिपति से।
यति अनगारों ऋषि मुनियों से पूजित जो हैं गणपति से ॥१८॥
वृषभदेव से महावीर तक महापुरुष मंगलकारी।
लाखों स्तुतियों के भाजन हैं तीस-चार अतिशयधारी ॥
पूजूँ वन्दूँ अर्चन कर लूँ नमन करूँ मैं जिनगण को।
भक्तिभाव से चाव शक्ति से निर्मल कर-कर निज मन को ॥१९॥

कष्ट दूर हो कर्म चूर हो बोधि लाभ हो सद्गति हो।
वीर-मरण हो जिनपद मुझको मिले सामने सन्मति ओ! ॥

पञ्चमहागुरुभक्ति

चौपाई

सुरपति शिर पर किरीट धारा, जिसमें मणियाँ कई हजारा।
मणि की द्युतिजल से धुलते हैं, प्रभु पदनमता सुख फलते हैं ॥१॥
सम्यक्त्वादिक वसुगुण धारे, वसुविध विधिरिपु नाशनहारे।
अनेकसिद्धों को नमता हूँ, इष्टसिद्धि पाता समता हूँ ॥२॥
श्रुत-सागर को पार किया है, शुचि संयम का सार लिया है।
सूरीश्वर के पदकमलों को, शिर पर रख लूँ दुखदलनों को ॥३॥
उन्मार्गी के मद-तम हरते, जिनके मुख से प्रवचन झरते।
उपाध्याय ये सुमरण कर लूँ, पाप नष्ट हो सुमरण कर लूँ ॥४॥
समदर्शन के दीपक द्वारा, सदा प्रकाशित बोध सुधारा।
साधु चरित के ध्वजा कहाते, दे-दे मुझको छाया तातैं ॥५॥
विमल गुणालय-सिद्ध जिनों को, उपदेशक मुनि-गणी गणों को।
नमस्कार पद पञ्च इन्हीं से, त्रिधा नमूँ शिव मिले इसी से ॥६॥
नमस्कार वर मन्त्र यही है, पाप नसाता देर नहीं है।
मंगल-मंगल बात सुनी है, आदिम मंगल-मात्र यही है ॥७॥
सिद्ध शुद्ध हैं जय अरहन्ता, गणी पाठका जय ऋषि संता।
करे धरा पर मंगल साता, हमें बना दें शिव सुख धाता ॥८॥
सिद्धों को जिनवर चन्द्रों को, गणनायक पाठक वृन्दों को।
रत्नत्रय को साधु जनों को, वन्दूँ पाने उन्हीं गुणों को ॥९॥
सुरपति चूड़ामणि-किरणों से, लालित सेवित शतों दलों से।
पाँचों परमेष्ठी के प्यारे, पादपद्म ये हमें सहारे ॥१०॥
महाप्रातिहार्यों से जिनकी, शुद्ध गुणों से सुसिद्ध गण की।
अष्टमातृकाओं से गणि की, शिष्यों से उपदेशक गण की ॥
वसु विध योगांगों से मुनि की, करूँ सदा थुति शुचि से मन की ॥११॥

अञ्चलिका

पञ्चमहागुरु भक्ति का करके कायोत्सर्ग।
आलोचन उसका करूँ ले प्रभु तव संसर्ग ॥१२॥

ज्ञानोदय छन्द

लोक शिखर पर सिद्ध विराजे अगणित गुणगण मण्डित हैं।
प्रातिहार्य आठों से मण्डित जिनवर पण्डित-पण्डित हैं ॥
आठों प्रवचन-माताओं से शोभित हों आचार्य महा।
शिवपथ चलते और चलाते औरों को भी आर्य यहाँ ॥१३॥
उपाध्याय उपदेश सदा दे चरित बोध का शिव पथ का।
रत्नत्रय पालन में रत हो साधु सहारा जिनमत का ॥
भाव भक्ति से चाव शक्ति से निर्मल कर-कर निज मन को।
वंदूँ पूजूँ अर्चन कर लूँ नमन करूँ मैं गुरुगण को ॥१४॥
कष्ट दूर हो कर्म चूर हो बोधि लाभ हो सद्गति हो।
वीर-मरण हो जिनपद मुझको मिले सामने सन्मति ओ! ॥

समय व स्थान परिचय

गगन चूँमता शिखर है भव्य जिनालय भ्रात।
विघन-हरण मंगलकरण महुआ में विख्यात ॥१॥
बहती कहती है नदी 'पूर्णा' जिसके तीर।
पार्श्वनाथ के दर्श से दिखता भव का तीर ॥२॥
गन्ध गन्ध गति गन्ध की सुगन्ध दशमी योग।
अनुवादित ये भक्तियाँ पढ़ो मिटे सब रोग ॥३॥

समाधि भक्ति

(लय—मेरी भावना)

निज आतम संवेदन मय प्रभु, श्रुत-नयनों से मैं लखकर।
केवलज्ञान-चक्षु से मण्डित, देख रहा हूँ अब जिनवर ॥१॥
सदा शास्त्र अभ्यास करूँ मैं, सन्त समागम प्रभु वन्दन।
सज्जन के गुणगान करूँ अरु, दोष-कथन में मौन-वचन ॥२॥
सबसे हित-मित-प्रिय मैं बोलूँ, आत्म तत्त्व को नित ध्याऊँ।
जब तक मुझको मिले मोक्ष ना, भव-भव में बस ये पाऊँ ॥३॥
जिन-पथ रुचि हो पर से विरक्ति, निर्मल जिनवाणी ध्याऊँ।
रहे भावना जिनगुण थुति में, जनम-जनम में यह पाऊँ ॥४॥
चैत्य, घोष-सिद्धान्त-सिन्धु हो, युति समूह गुरु चरण जहाँ।
हो संन्यास सहित नित मेरा, जमन-जनम में मरण वहाँ ॥५॥
जनम करोड़ों में संचित जो, जनम-जरा मृति का कारण।
किये पाप जो जनम-जनम में, जिन वन्दन से हों वारण ॥६॥
सेवक जन को कल्पवेल सम, श्री जिनपद की कर सेवा।
बाल-दशा से अब तक बीता, मम जीवन हे जिनदेवा! ॥७॥
अब उसका फल यह चाहूँ मैं, मरण-समय मेरा जब हो।
कण्ठ आपके नाम-शब्द के, पढ़ने में अवरुद्ध न हो ॥८॥
जब तक मैं निर्वाण न पाऊँ, तब तक जिनवर यह रटना।
तव चरणों में मम हिय थित हो, मेरे हिय में तव चरणा ॥९॥
जिन भक्ति ही जिन भक्तों की, दुर्गति हरने वाली है।
पुण्य पूर्ण दे मुक्ति रमा दे, यह सबसे बलशाली है ॥१०॥
पाँच अरिंजय पाँच यशोधर, पाँचों मतिसागर वन्दूँ।
पाँचों सीमंदर जिन वन्दूँ, निज बीसों जिनवर वन्दूँ ॥११॥
चौबीसों जिन को नित वन्दूँ, रत्नत्रय को भी वन्दूँ।
चारण ऋद्धी-धारी मुनि अरु, पंच महागुरु को वन्दूँ ॥१२॥
जो परमेष्ठी सिद्ध वर्ग या, शुचि आतम को बतलाये।
अर्हम् उत्तम बीजाक्षर को, पूर्ण यत्न से हम ध्याये ॥१३॥

सम्यक्त्वादिक गुण युत हैं जो, अष्ट-कर्म का करके क्षय।
नमूँ सिद्ध सब परमेष्ठी को, मुक्ति रमा के जो आलय ॥१४॥
सुर संपद का आकर्षण जो, मुक्ति रमा का वशीकरण।
चतुगति आपद निराकरण जो, निज पापों का दूरकरण ॥१५॥
कुगति गमन को रोक रही जो, करे मोह का सम्मोहन।
नमन पंच पद आराधना माँ, करे हमारा नित रक्षण ॥१६॥
अनन्तभव की परम्परा की, छेदन का जो कारण है।
जिनवर चरण कमल का सुमरण, शरणभूत मम तारण है ॥१७॥
मेरी शरण नहीं है कोई, शरण आप ही हो जिनवर।
रक्षा करिए! रक्षा करिए! सो करुणा करके मुझपर ॥१८॥
त्रय जग में तुम सा पालक ना, नहीं सुरक्षक त्राता ना।
वीतराग सा अन्य देव भी, नहीं हुआ है होगा ना ॥१९॥
सदा भक्ति हो सदा भक्ति हो, सदा भक्ति हो जिनपद में।
भव-भय में हो प्रतिदिन मेरी, श्री जिनपद में-जिनपद में ॥२०॥
हे जिनवर! तव चरणकमल की, भक्ति प्रार्थना नित्य करूँ।
उसी-उसी की बार-बार मैं, भक्ति याचना नित्य करूँ ॥२१॥
श्री जिनवर की थुति करने से, विघ्न-जाल नश जाते हैं।
विष निर्विष हो भूत शाकिनी, सर्प दूर हो जाते हैं ॥२२॥

अंचलिका (दोहा)

प्रिय भक्ति व्युत्सर्ग में, कमियाँ जो भगवान ।
इच्छा से उनका करूँ, आलोचन का काम ॥

(ज्ञानोदय)

रत्नत्रय मय परमातम को, ध्यान रूप जिसका लक्षण ।
सदा समाधि भक्ति में अर्चूं, वन्दूँ पूजूँ करूँ नमन ॥
मेरे दुख कर्मों का क्षय हो, बोधि लाभ हो सुगति गमन ।
और समाधिमरण हो मेरा, मुझे मिले जिनपद गुणधन ॥

बारह भावना

बंदूँ श्री अरहंत - पद, वीतराग विज्ञान।
वरणूँ बारहभावना, जग जीवन हित जान ॥१॥
कहाँ गये चक्री जिन जीता, भरत खण्ड सारा।
कहाँ गये वह राम-रु-लक्ष्मण, जिन रावण मारा ॥
कहाँ कृष्ण रुक्मिणी सतभामा, अरु संपति सगरी।
कहाँ गये वह रंगमहल अरु, सुवरन की नगरी ॥२॥
नहीं रहे वह लोभी कौरव, जूझ मरे रन में।
गये राज तज पांडव वन को, अगनि लगी तन में ॥
मोह-नींद से उठ रे चेतन, तुझे जगावन को।
हो दयाल उपदेश करैं, गुरु बारह भावन को ॥३॥

१. अनित्य भावना

सूरज चाँद छिपै निकलै ऋतु, फिर फिर कर आवै।
प्यारी आयु ऐसी बीतै, पता नहीं पावै ॥
पर्वत-पतित-नदी-सरिता-जल, बहकर नहिं हटता।
स्वास चलत यों घटै काठ ज्यों, आरे सों कटता ॥४॥
ओस - बूंद ज्यों गले धूप में, वा अंजुलि पानी।
छिन-छिन यौवन छीन होत है, क्या समझै प्रानी ॥
इंद्रजाल आकाश नगर सम, जग-संपति सारी।
अथिर रूप संसार विचारो, सब नर अरु नारी ॥५॥

२. अशरण भावना

काल - सिंह ने मृग - चेतन को घेरा भव वन में।
नहीं बचावन - हारा कोई, यों समझो मन में ॥
मंत्र यंत्र सेना धन संपति, राज पाट छूटे।
वश नहिं चलता काल लुटेरा, काय नगरि लूटे ॥६॥
चक्ररत्न हलधर सा भाई, काम नहीं आया।
एक तीर के लगत कृष्ण की विनश गई काया ॥
देव धर्म गुरु शरण जगत में, और नहीं कोई।
भ्रम से फिरै भटकता चेतन, यूँ ही उमर खोई ॥७॥

३. संसार भावना

जनम-मरन अरु जरा-रोग से, सदा दुःखी रहता।
द्रव्य क्षेत्र अरु काल भाव भव-परिवर्तन सहता॥
छेदन भेदन नरक पशूगति, वध बंधन सहना।
राग-उदय से दुःख सुर गति में, कहाँ सुखी रहना॥८॥
भोगि पुण्य फल हो इक इंद्री, क्या इसमें लाली।
कुतवाली दिनचार वही फिर, खुरपा अरु जाली॥
मानुष-जन्म अनेक विपतिमय, कहीं न सुख देखा।
पंचम गति सुख मिले शुभाशुभ को मेटो लेखा॥९॥

४. एकत्व भावना

जन्मै मरै अकेला चेतन, सुख-दुख का भोगी।
और किसी का क्या इक दिन, यह देह जुदी होगी॥
कमला चलत न पैंड जाय, मरघट तक परिवारा।
अपने अपने सुख को रोवैं, पिता पुत्र दारा॥१०॥
ज्यों मेले में पंथी जन मिल नेह फिरैं धरते।
ज्यों तरुवर पै रैन बसेरा पंछी आ करते॥
कोस कोई दो कोस कोई उड़ फिर थक-थक हारै।
जाय अकेला हंस संग में, कोई न पर मारै॥११॥

५. अन्यत्व भावना

मोह-रूप मृग-तृष्णा जग में, मिथ्या जल चमकै।
मृग चेतन नित भ्रम में उठ उठ, दौड़े थक थककै॥
जल नहिं पावै प्राण गमावे, भटक भटक मरता।
वस्तु पराई माने अपनी, भेद नहीं करता॥१२॥
तू चेतन अरु देह अचेतन, यह जड़ तू ज्ञानी।
मिले-अनादि यतन तैं बिछुडै, ज्यों पय अरु पानी॥
रूप तुम्हारा सबसों न्यारा, भेद ज्ञान करना।
जौ लों पौरुष थकै न तौ लों उद्यम सों चरना॥१३॥

६. अशुचि भावना

तू नित पोखै यह सूखे ज्यों, धोवै त्यों मैली।
निश दिन करे उपाय देह का, रोग- दशा फैली॥

मात- पिता- रज- वीरज मिलकर, बनी देह तेरी।
मांस हाड़ नश लहू राध की, प्रगट व्याधि घेरी ॥१४॥
काना पौंडा पड़ा हाथ यह चूसै तो रोवै।
फलै अनंत जु धर्म ध्यान की, भूमि-विषै बोवै ॥
केसर चंदन पुष्प सुगन्धित, वस्तु देख सारी।
देह परसते होय, अपावन निशदिन मल झारी ॥१५॥

७. आस्रव भावना

ज्यों सर-जल आवत मोरी त्यों, आस्रव कर्मन को।
दर्वित जीव प्रदेश गहै जब पुद्गल भरमन को ॥
भावित आस्रव भाव शुभाशुभ, निशदिन चेतन को।
पाप पुण्य के दोनों करता, कारण बन्धन को ॥१६॥
पन-मिथ्यात योग - पन्द्रह द्वादश - अविरत जानो।
पंच रु बीस कषाय मिले सब, सत्तावन मानो ॥
मोह - भाव की ममता टारै, पर परिणति खोते।
करै मोख का यतन निरास्रव, ज्ञानी जन होते ॥१७॥

८. संवर भावना

ज्यों मोरी में डाट लगावै, तब जल रुक जाता।
त्यों आस्रव को रोकै संवर, क्यों नहिं मन लाता ॥
पंच महाव्रत समिति गुप्तिकर वचन काय मन को।
दशविध-धर्म परीषह-बाईस, बारह भावन को ॥१८॥
यह सब भाव सत्तावन मिलकर, आस्रव को खोते।
सुपन दशा से जागो चेतन, कहाँ पड़े सोते ॥
भाव शुभाशुभ रहित शुद्ध - भावन - संवर भावै।
डाँट लगत यह नाव पड़ी मझधार पार जावै ॥१९॥

९. निर्जरा भावना

ज्यों सरवर जल रुका सूखता, तपन पड़ै भारी।
संवर रोकै कर्म निर्जरा, ह्वै सोखन हारी ॥
उदय-भोग सविपाक-समय, पक जाय आम डाली।
दूजी है अविपाक पकावै, पालविषै माली ॥२०॥

पहली सबके होय नहीं, कुछ सरै काम तेरा।
दूजी करै जू उद्यम करकै, मिटे जगत फेरा॥
संवर सहित करो तप प्रानी, मिलै मुकत रानी।
इस दुलहिन की यही सहेली, जानै सब ज्ञानी॥२१॥

१०. लोक भावना

लोक अलोक आकाश माहिं थिर, निराधार जानो।
पुरुषरूप कर - कटी भये षट्, द्रव्यन सों मानो॥
इसका कोई न करता हरता, अमिट अनादी है।
जीवरु पुद्गल नाचै यामैं, कर्म उपाधी है॥२२॥
पाप पुण्य सों जीव जगत में, नित सुख दुःख भरता।
अपनी करनी आप भरै सिर, औरन के धरता॥
मोह कर्म को नाश, मेटकर सब जग की आसा।
निज पद में थिर होय लोक के, शीश करो वासा॥२३॥

११. बोधि-दुर्लभ भावना

दुर्लभ है निगोद से थावर, अरु त्रस गति पानी।
नरकाया को सुरपति तरसै सो दुर्लभ प्रानी॥
उत्तम देश सुसंगति दुर्लभ, श्रावक कुल पाना।
दुर्लभ सम्यक दुर्लभ संयम, पंचम गुणठाना॥२४॥
दुर्लभ रत्नत्रय आराधन दीक्षा का धरना।
दुर्लभ मुनिवर के व्रत पालन, शुद्ध भाव करना॥
दुर्लभ से दुर्लभ है चेतन, बोधि ज्ञान पावै।
पाकर केवलज्ञान नहीं फिर, इस भव में आवे॥२५॥

१२. धर्म भावना

धर्म अहिंसा परमो धर्मः ही सच्चा जानो।
जो पर को दुख दे, सुख माने, उसे पतित मानो॥
राग द्वेष मद मोह घटा आतम रुचि प्रकटावे।
धर्म-पोत पर चढ़ प्राणी भव-सिन्धु पार जावे॥२६॥
वीतराग सर्वज्ञ दोष बिन, श्रीजिन की वानी।
सप्त तत्त्व का वर्णन जा में, सबको सुखदानी॥

इनका चिंतवन बार - बार कर, श्रद्धा उर धरना।
'मंगत' इसी जतनतैं इकदिन, भव-सागर तरना ॥२७॥

❑❑❑

गोम्मटेश अष्टक

(दोहा)

नील कमल दल से नयन, मुख शशि समा विशेष।
चम्पा जय नासा करे, नित नत उन गोम्टेश ॥१॥

कर्ण लटकते काँध तक, गज सूँडा कर भेष।
गाल नीर सम गगन से, नित नत उन गोम्टेश ॥२॥

कंठ जीतता शंख को, बहु शुभ मध्यप्रदेश।
सीना हिमगिर सा अचल, नित नत उन गोम्टेश ॥३॥

विंध्याचल पर चमकते, चैत्य श्रेष्ठ परमेश।
पूर्ण चन्द्र जग-हर्ष को, नित नत उन गोम्टेश ॥४॥

बेल महातन पर चढ़ीं, पूजित चरण सुरेश।
कल्पवृक्ष भविवर्ग को, नित नत उन गोम्टेश ॥५॥

अभय दिगम्बर शुद्ध जो, वस्त्र राग ना लेश।
सर्पादिक से कंप ना, नित नत उन गोम्टेश ॥६॥

विमल दृष्टि आशा बिना, सुख वांछा ना शेष।
भरत शल्य बिन राग बिन, नित नत उन गोम्टेश ॥७॥

घर-पद-धन-मद-मोह बिन, समता सहित महेश।
एक साल उपवासमय, नित नत उन गोम्टेश ॥८॥

प्राकृत में अष्टक रचे, नेमिचन्द्र गुण गाय।
गोम्मटेश के पद्य में, 'सुव्रत' गीत सुनाय ॥९॥

गोम्मटेश अष्टक

नील कमल के दल-सम जिन के युगल-सुलोचन विकसित हैं।
शशि-सम मनहर सुख कर जिनका मुख-मण्डल मृदु प्रमुदित है॥
चम्पक की छवि शोभा जिनकी नम्र नासिका ने जीती।
गोमटेश जिन-पाद-पद्म की पराग नित मम मति पीती॥१॥

गोल - गोल दो कपोल जिन के उज्ज्वल सलिल सम छवि धारे।
ऐरावत - गज की सूण्डा सम बाहुदण्ड उज्ज्वल - प्यारे॥
कन्धों पर आ, कर्ण-पाश वे नर्तन करते नन्दन है।
निरालम्ब वे नभ-सम शुचि मम, गोमटेश को वन्दन है॥२॥

दर्शनीय तव मध्य भाग है गिरि-सम निश्चल अचल रहा।
दिव्य शंख भी आप कण्ठ से हार गया वह विफल रहा॥
उन्नत विस्तृत हिमगिरि-सम है, स्कन्ध आपका विलस रहा।
गोमटेश प्रभु तभी सदा मम तुम पद में मन निवस रहा॥३॥

विंध्याचल पर चढ़ कर खरतर तप में तत्पर हो बसते।
सकल विश्व के मुमुक्षु जन के, शिखामणी तुम हो लसते॥
त्रिभुवन के सब भव्य कुमुद ये खिलते तुम पूरण शशि हो।
गोमटेश तुम नमन तुम्हें हो सदा चाह बस मन वशि हो॥४॥

मृदुतम बेल लताएँ लिपटी पग से उर तक तुम तन में।
कल्पवृक्ष हो अनल्प फल दो भवि-जन को तुम त्रिभुवन में॥
तुम पद-पंकज में अलि बन सुर-पति गण करता गुन-गुन है।
गोमटेश प्रभु के प्रति प्रतिपल वन्दन अर्पित तन-मन है॥५॥

अम्बर तज अम्बर-तल थित हो दिग अम्बर नहिं भीत रहे।
अंबर आदि विषयन से अति विरत रहे भव भीत रहे॥
सर्पादिक से घिरे हुए पर अकम्प निश्चल शैल रहे।
गोमटेश स्वीकार नमन हो धुलता मन का मैल रहे॥६॥

आशा तुम को छू नहिं सकती समदर्शन के शासक हो।
जग के विषयन में वांछा नहिं दोष मूल के नाशक हो॥

भरत-भ्रात में शल्य नहीं अब विगत-राग हो रोष जला।
गोमटेश तुम में मम इस विध सतत राग हो होत चला ॥७॥

काम - धाम से धन-कंचन से सकल संग से दूर हुए।
शूर हुए मद मोह-मार कर समता से भरपूर हुए॥
एक वर्ष तक एक थान थित निराहार उपवास किये।
इसीलिए बस गोमटेश जिन मम मन में अब वास किये ॥८॥

दोहा

नेमीचन्द्र गुरु ने किया प्राकृत में गुणगान।
गोमटेश थुति अब किया भाषा-मय सुख खान ॥१॥
गोमटेश के चरण में नत हो बारम्बार।
विद्यासागर कब बनूँ भवसागर कर पार ॥२॥

❑❑❑

आत्मा हमारा

दुनिया में सबसे न्यारा, यह आत्मा हमारा।
सब देखन जानन हारा, यह आत्मा हमारा ॥
यह जले नहीं अग्नि में, भींगे न कभी पानी में।
सूखे न पवन के द्वारा, यह आत्मा हमारा॥
शस्त्रों से कटे नहीं काटा, नहीं तोड़ सके कोई भाटा।
मरता न मरी का मारा, यह आत्मा हमारा॥
माँ बाप सुता सुत नारी, झूठे झगड़े संसारी।
नहीं देता कोई सहारा, यह आत्मा हमारा॥
मत फँसो मोह ममता में, मक्खन आजा आपा में।
तन धन कहु नाहिं तुम्हारा, यह आत्मा हमारा॥

वैराग्य भावना

बीज राख फल भोगवै, ज्यों किसान जग माहिं।
त्यों चक्री नृप सुख करै, धर्म बिसारै नाहिं ॥१॥

इह विधि राज करै नरनायक, भोगे पुण्य विशालो।
सुख सागर में रमत निरन्तर, जात न जान्यो कालो ॥
एक दिवस शुभ कर्म - संजोगे, क्षेमंकर मुनि वंदे।
देखि शिरीगुरु के पदपंकज, लोचन अलि आनन्दे ॥२॥

तीन प्रदच्छन दे सिर नायो, करि पूजा थुति कीनी।
साधु-समीप विनय कर बैठ्यो, चरनन में दिठि दीनी ॥
गुरु उपदेश्यो धरम-शिरोमणि, सुन राजा वैरागे।
राजरमा, वनितादिक, जे रस, ते रस बेरस लागे ॥३॥

मुनि-सूरज कथनी किरणावलि लगत भरम बुधि भागी।
भव-तन-भोग-स्वरूप विचार्यो, परम धरम अनुरागी ॥
इह संसार महावन भीतर, भरमत ओर न आवै।
जामन मरन जरा दव दाझै जीव महादुख पावै ॥४॥

कबहूँ जाय नरक थिति भुंजै, छेदन भेदन भारी।
कबहूँ पशु परजाय धरै तहँ, वधबन्धन भयकारी ॥
सुरगति में परसम्पति देखे राग उदय दुख होई।
मानुष योनि अनेक विपतिमय, सर्वसुखी नहिं कोई ॥५॥

कोई इष्ट वियोगी विलखै, कोई अनिष्ट संयोगी।
कोई दीन - दरिद्री विलखे, कोई तन का रोगी ॥
किसही घर कलिहारी नारी, कै बैरी सम भाई।
किसही के दुख बाहिर दीखें, किसही उर दुचिताई ॥६॥

कोई पुत्र बिना नित झूरै, होय मरै तब रोवै।
खोटी संततिसों दुख उपजै, क्यों प्रानी सुख सोवै ॥
पुण्य उदय जिनके तिनके भी नाहिं सदा सुख साता।
यो जगवास जथारथ देखें, सब दीखै दुखदाता ॥७॥

जो संसार विषैं सुख होता, तीर्थंकर क्यों त्यागै।
काहे को शिवसाधन करते, संजमसों अनुरागै ॥
देह अपावन अथिर घिनावन, यामें सार न कोई।
सागर के जलसों शुचि कीजे, तो भी शुद्ध न होई ॥८॥

सात कुधातु भरी मल - मूरत, चर्म लपेटी सोहै।
अन्तर देखत या सम जग में, अवर अपावन को है ॥
नव-मल-द्वार स्रवैं निशिवासर, नाम लिये घिन आवै।
व्याधिउपाधि अनेक जहाँ तहँ, कौन सुधी सुखपावै ॥९॥

पोषत तो दुःख दोष करै अति, सोषत सुख उपजावै।
दुर्जन देह स्वभाव बराबर, मूरख प्रीति बढ़ावै ॥
राचन-जोग स्वरूप न याको विरचन - जोग सही है।
यह तन पाय महातप कीजे यामें सार यही है ॥१०॥

भोग बुरे भव रोग बढ़ावै, बैरी हैं जग जीके।
बेरस होंय विपाक समय अति, सेवत लागैं नीके ॥
वज्र - अगिनि विषसे विषधर से, ये अधिके दुखदाई।
धर्म-रतन के चोर चपल अति, दुर्गति-पंथ सहाई ॥११॥

मोह-उदय यह जीव अज्ञानी, भोग भले कर जानै।
ज्यों कोई जन खाय धतूरा, सो सब कंचन माने ॥
ज्यों ज्यों भोग संजोग मनोहर, मन-वांछित जन पावै।
तृष्णा नागिन त्यों-त्यों डंके, लहर जहर की आवे ॥१२॥

मैं चक्री पद पाय निरन्तर, भोगे भोग घनेरे।
तौ भी तनिक भये नहिं पूरन, भोग मनोरथ मेरे ॥
राजसमाज महा अघ - कारण, बैर बढ़ावन-हारा।
वेश्या सम लछमी अति चंचल, याका कौन पत्यारा ॥१३॥

मोह-महा-रिपु बैर विचार्‌यो, जग-जिय संकट डारे।
घर - कारागृह वनिता बेड़ी, परिजन जन रखवारे ॥
सम्यग्दर्शन ज्ञान चरण तप, ये जियके हितकारी।
ये ही सार असार और सब, यह चक्री चितधारी ॥१४॥

छोड़े चौदह रतन नवों निधि, अरु छोड़े संग साथी।
कोटि अठारह घोड़े छोड़े, चौरासी लख हाथी ॥
इत्यादिक संपति बहुतेरी, जीरण-तृण-सम त्यागी।
नीति विचार नियोगी सुतकों, राज दियो बड़भागी ॥१५॥

होय निशल्य अनेक नृपति संग, भूषण वसन उतारे।
श्री गुरु चरण धरी जिनमुद्रा, पंच महाव्रत धारे ॥
धनि यह समझ सुबुद्धि जगोत्तम, धनि यह धीरजधारी।
ऐसी सम्पति छोड़ बसे वन, तिन पद धोक हमारी ॥१६॥

परिग्रहपोट उतार सब, लीनों चारित पंथ।
निज स्वभाव में थिर भये, वज्रनाभि निरग्रंथ ॥

❑❑❑

आत्मार्थी की भावना

संत साधु बनके विचरूँ, वह घड़ी कब आयेगी।
चल पड़ूँ में मोक्ष पथ पर, वह घड़ी कब आयेगी ॥१॥

हाथ में पिच्छी कमण्डल, ध्यान आतम राम का।
छोड़कर घर बार दीक्षा की घड़ी कब आयेगी ॥२॥

आयेगा वैराग्य मुझको, इस दुःखी संसार से।
त्याग दूँगा मोह ममता, वह घड़ी कब आयेगी ॥३॥

पाँच समिति तीन गुप्ति बाईस परीषह भी सहूँ।
भावना बारह जूँ भाऊँ, वह घड़ी कब आयेगी ॥४॥

बाह्य उपाधि त्याग कर, निज तत्त्व का चिन्तन करूँ।
निर्विकल्प होवे समाधि, वह घड़ी कब आयेगी ॥५॥

❑ ❑ ❑

मेरी-भावना

जिसने रागद्वेष कामादिक जीते सब जग जान लिया।
सब जीवों को मोक्षमार्ग का निस्पृह हो उपदेश दिया ॥
बुद्ध, वीर, जिन, हरि, हर, ब्रह्मा या उसको स्वाधीन कहो।
भक्ति भाव से प्रेरित हो यह चित्त उसी में लीन रहो ॥१॥

विषयों की आशा नहिं, जिनके साम्य भाव धन रखते हैं।
निज पर के हित साधन में जो, निशदिन तत्पर रहते हैं ॥
स्वार्थ त्याग की कठिन तपस्या, बिना खेद जो करते हैं।
ऐसे ज्ञानी साधु जगत के, दुख समूह को हरते हैं ॥२॥

रहे सदा सत्संग उन्हीं का, ध्यान उन्हीं का नित्य रहे।
उन्हीं जैसी चर्या में यह, चित्त सदा अनुरक्त रहे ॥
नहीं सताऊँ किसी जीव को, झूठ कभी नहीं कहा करूँ।
परधन वनिता पर न लुभाऊँ, संतोषामृत पिया करूँ ॥३॥

अहंकार का भाव न रक्खूँ, नहीं किसी पर क्रोध करूँ।
देख दूसरों की बढ़ती को, कभी न ईर्ष्या-भाव धरूँ ॥
रहे भावना ऐसी मेरी, सरल सत्य व्यवहार करूँ।
बने जहाँ तक इस जीवन में, औरों का उपकार करूँ ॥४॥

मैत्री भाव जगत में मेरा सब जीवों से नित्य रहे।
दीन - दुखी जीवों पर मेरे उर से करुणा स्रोत बहे ॥
दुर्जन क्रूर - कुमार्ग रतों पर, क्षोभ नहीं मुझको आवे।
साम्यभाव रक्खूँ मैं उन पर, ऐसी परिणति हो जावे ॥५॥

गुणीजनों को देख हृदय में, मेरे प्रेम उमड़ आवे।
बने जहाँ तक उनकी सेवा, करके यह मन सुख पावे ॥
होऊँ नहीं कृतघ्न कभी मैं, द्रोह न मेरे उर आवे।
गुण ग्रहण का भाव रहे नित, दृष्टि न दोषों पर जावे ॥६॥

कोई बुरा कहो या अच्छा, लक्ष्मी आवे या जावे।
लाखों वर्षों तक जीऊँ या, मृत्यु आज ही आ जावे ॥

अथवा कोई कैसा ही भय, या लालच देने आवे।
तो भी न्याय-मार्ग से मेरा, कभी न पग डिगने पावे ॥७॥

होकर सुख में मग्न न फूलै दुख में कभी न घबरावे।
पर्वत नदी श्मशान - भयानक, अटवी से नहिं भय खावे ॥
रहे अडोल - अकम्प निरन्तर, यह मन दृढ़तर बन जावे।
इष्टवियोग अनिष्टयोग में, सहनशीलता दिखलावे ॥८॥

सुखी रहें सब जीव जगत के, कोई कभी न घबरावे।
बैर - पाप अभिमान छोड़ जग, नित्य नये मंगल गावे ॥
घर - घर चर्चा रहे धर्म की, दुष्कृत - दुष्कर हो जावे।
ज्ञानचरित उन्नत कर अपना, मनुजजन्म फल सब पावे ॥९॥

ईति - भीति व्यापे नहिं जग में, वृष्टि समय पर हुआ करे।
धर्म - निष्ठ होकर राजा भी, न्याय प्रजा का किया करे ॥
रोग - मरी - दुर्भिक्ष न फैले, प्रजा शान्ति से जिया करे।
परम अहिंसा धर्म जगत में, फैल सर्वहित किया करे ॥१०॥

फैले प्रेम परस्पर जग में, मोह दूर ही रहा करे।
अप्रिय-कटुक-कठोर शब्द नहिं, कोई मुख से कहा करे ॥
बनकर सब 'युगवीर' हृदय से, देशोन्नति रत रहा करे।
वस्तु स्वरूप विचार खुशी से, सब दुख संकट सहा करे ॥११॥

❑❑❑

आलोचना-पाठ

वंदौं पाँचों परम गुरु, चौबीसों जिनराज।
करूँ शुद्ध आलोचना, शुद्धिकरण के काज ॥१॥

सुनिये जिन अरज हमारी, हम दोष किये अति भारी।
तिनकी अब निर्वृत्ति काजा, तुम सरन लही जिनराजा ॥२॥

इक वे ते चउ इन्द्री वा, मनरहित-सहित जे जीवा।
तिनकी नहिं करुणा धारी, निरदइ ह्वै घात विचारी ॥३॥

समरंभ समारंभ आरंभ, मन वच तन कीने प्रारंभ।
कृत कारित मोदन करिकै, क्रोधादि चतुष्टय धरिकै ॥४॥

शत आठ जु इमि भेदनतें, अघ कीने परिछेदनतें।
तिनकी कहुँ कोलों कहानी, तुम जानत केवलज्ञानी ॥५॥

विपरीत एकांत विनय के, संशय अज्ञान कुनय के।
वश होय घोर अघ कीने, वचतैं नहिं जाय कहीने ॥६॥

कुगुरुन की सेवा कीनी, केवल अदयाकरि भीनी।
या विधि मिथ्यात भ्रमायो, चहुँगतिमधि दोष उपायो ॥७॥

हिंसा पुनि झूठ जु चोरी, परवनिता सों दृगजोरी।
आरंभ परिग्रह भीनो, पन पाप जु या विधि कीनो ॥८॥

सपरस रसना घ्रानन को, चखु कान विषय - सेवन को।
बहु करम किये मनमाने, कछु न्याय अन्याय न जाने ॥९॥

फल पंच उदम्बर खाये, मधु मांस मद्य चित चाये।
नहिं अष्ट मूलगुण धारे, विसयन सेये दुखकारे ॥१०॥

दुइबीस अभख जिन गाये, सो भी निशदिन भुंजाये।
कछु भेदाभेद न पायो, ज्यों-त्यों करि उदर भरायो ॥११॥

अनंतानुबंधी जु जानो, प्रत्याख्यान अप्रत्याख्यानो।
संज्वलन चौकड़ी गुनिये, सब भेद जु षोडश गुनिये ॥१२॥

परिहास अरति रति शोग, भय ग्लानि तिवेद संयोग।
पनवीस जु भेद भये इम, इनके वश पाप किये हम ॥१३॥

निद्रावश शयन कराई, सुपने मधि दोष लगाई।
फिर जागि विषय-वनधायो, नानाविध विष-फल खायो ॥१४॥

आहार विहार निहारा, इनमें नहिं जतन विचारा।
बिन देखी धरी उठाई, बिन सोधी वस्तु जु खाई ॥१५॥

तब ही परमाद सतायो, बहुविधि विकलप उपजायो।
कछु सुधि बुधि नाहिं रही है, मिथ्यामति छाय गयी है ॥१६॥

मरजादा तुम ढिंग लीनी, ताहू में दोस जु कीनी।
भिनभिन अब कैसे कहिये, तुम ज्ञानविषैं सब पइये ॥१७॥

हा हा! मैं दुठ अपराधी, त्रसजीवन राशि विराधी।
थावर की जतन न कीनी, उरमें करुना नहिं लीनी ॥१८॥

पृथिवी बहु खोद कराई, महलादिक जागां चिनाई।
पुनि बिनगाल्यो जलढोल्यो, पंखातैं पवन बिलोल्यो ॥१९॥

हा हा! मैं अदयाचारी, बहु हरितकाय जु विदारी।
तामधि जीवन के खंदा, हम खाये धरि आनंदा ॥२०॥

हा हा! परमाद बसाई, बिन देखे अगनि जलाई।
तामधि जे जीव जु आये, ते हू परलोक सिधाये ॥२१॥

बींध्यो अन राति पिसायो, ईंधन बिन-सोधि जलायो।
झाडू ले जागां बुहारी, चिंवटाऽदिक जीव बिदारी ॥२२॥

जल छानि जिवानी कीनी, सो हू पुनि-डारि जु दीनी ।
नहिं जल-थानक पहुँचाई, किरिया बिन पाप उपाई ॥२३॥

जलमल मोरिन गिरवायो, कृमिकुल बहुघात करायो।
नदियन बिच चीर धुवाये, कोसन के जीव मराये ॥२४॥

अन्नादिक शोध कराई, तामें जु जीव निसराई।
तिनका नहिं जतन कराया, गलियारैं धूप डराया ॥२५॥

पुनि द्रव्य कमावन काजे, बहु आरंभ हिंसा साजे।
किये तिसनावश अघ भारी, करुना नहिं रंच विचारी ॥२६॥

इत्यादिक पाप अनंता, हम कीने श्री भगवंता।
संतति चिरकाल उपाई, वानी तैं कहिय न जाई ॥२७॥

ताको जु उदय अब आयो, नानाविध मोहि सतायो।
फल भुँजत जिय दुख पावै, वचतैं कैसें करि गावै ॥२८॥

तुम जानत केवलज्ञानी, दुख दूर करो शिवथानी।
हम तो तुम शरण लही है जिन तारन विरद सही है ॥२९॥

इक गाँवपती जो होवे, सो भी दुखिया दुख खोवै।
तुम तीन भुवन के स्वामी, दुख मेटहु अन्तरजामी ॥३०॥

द्रोपदिको चीर बढ़ायो, सीता प्रति कमल रचायो।
अंजन से किये अकामी, दुख मेटो अन्तरजामी ॥३१॥

मेरे अवगुन न चितारो, प्रभु अपनो विरद सम्हारो।
सब दोषरहित करि स्वामी, दुख मेटहु अन्तरजामी ॥३२॥

इन्द्रादिक पद नहिं चाहूँ, विषयनि में नाहिं लुभाऊँ।
रागादिक दोष हरीजे, परमातम निजपद दीजे ॥३३॥

दोष रहित जिनदेवजी, निजपद दीज्यो मोय।
सब जीवन के सुख बढ़ै, आनंद-मंगल होय ॥३४॥
अनुभव माणिक पारखी, 'जौहरी' आप जिनन्द।
ये ही वर मोहि दीजिये, चरन-शरन आनन्द ॥३५॥

❑ ❑ ❑

सामायिक पाठ

प्रेम भाव हो सब जीवों से, गुणीजनों में हर्ष प्रभो।
करुणा स्रोत बहे दुखियों पर, दुर्जन में मध्यस्थ विभो ॥१॥

वह अनन्त बल शील आत्मा, हो शरीर से भिन्न प्रभो।
ज्यों होती तलवार म्यान से, वह अनन्त बल दो मुझको ॥२॥

सुख दुख बैरी बन्धु वर्ग में, काँच कनक में समता हो।
वन उपवन प्रासाद कुटी में नहीं खेद, नहिं ममता हो ॥३॥

जिस सुन्दर तम पथ पर चलकर, जीते मोह मान मन्मथ।
वह सुन्दर पथ ही प्रभु मेरा, बना रहे अनुशीलन पथ ॥४॥

एकेन्द्रिय आदिक प्राणी की यदि मैंने हिंसा की हो।
शुद्ध हृदय से कहता हूँ वह, निष्फल हो दुष्कृत्य विभो ॥५॥

मोक्षमार्ग प्रतिकूल प्रवर्तन जो कुछ किया कषायों से।
विपथ गमन सब कालुष मेरे, मिट जावें सद्भावों से ॥६॥

चतुर वैद्य विष विक्षत करता, त्यों प्रभु मैं भी आदि उपान्त।
अपनी निन्दा आलोचन से करता हूँ पापों को शान्त ॥७॥

सत्य अहिंसादिक व्रत में भी मैंने हृदय मलीन किया।
व्रत विपरीत प्रवर्तन करके शीलाचरण विलीन किया ॥८॥

कभी वासना की सरिता का, गहन सलिल मुझ पर छाया।
पी पीकर विषयों की मदिरा मुझमें पागलपन आया ॥९॥

मैंने छली और मायावी हो, असत्य आचरण किया।
परनिन्दा गाली चुगली जो मुँह पर आया वमन किया ॥१०॥

निरभिमान उज्ज्वल मानस हो, सदा सत्य का ध्यान रहे।
निर्मल जल की सरिता सदृश, हिय में निर्मल ज्ञान बहे ॥११॥

मुनि चक्री शक्री के हिय में, जिस अनन्त का ध्यान रहे।
गाते वेद पुराण जिसे वह, परम देव मम हृदय रहे ॥१२॥

दर्शन ज्ञान स्वभावी जिसने, सब विकार ही वमन किये।
परम ध्यान गोचर परमातम, परम देव मम हृदय रहे ॥१३॥

जो भव दुख का विध्वंसक है, विश्व विलोकी जिसका ज्ञान।
योगी जन के ध्यान गम्य वह, बसे हृदय में देव महान ॥१४॥

मुक्ति मार्ग का दिग्दर्शक है, जनम मरण से परम अतीत।
निष्कलंक त्रैलोक्यदर्शी वह देव रहे मम हृदय समीप ॥१५॥

निखिल विश्व के वशीकरण वे, राग रहे ना द्वेष रहे।
शुद्ध अतीन्द्रिय ज्ञान स्वभावी, परम देव मम हृदय रहे ॥१६॥

देख रहा जो निखिल विश्व को कर्म कलंक विहीन विचित्र।
स्वच्छ विनिर्मल निर्विकार वह देव करें मम हृदय पवित्र ॥१७॥

कर्म कलंक अछूत न जिसको कभी छू सके दिव्य प्रकाश।
मोह तिमिर को भेद चला जो परम शरण मुझको वह आप्त ॥१८॥

जिसकी दिव्य ज्योति के आगे, फीका पड़ता सूर्य प्रकाश।
स्वयं ज्ञानमय स्वपर प्रकाशी, परम शरण मुझको वह आप्त ॥१९॥

जिसके ज्ञान रूप दर्पण में, स्पष्ट झलकते सभी पदार्थ।
आदि अन्त से रहित शान्त शिव, परम शरण मुझको वह आप्त ॥२०॥

जैसे अग्नि जलाती तरु को, तैसे नष्ट हुए स्वयमेव।
भय विषाद चिन्ता नहीं जिनको,परम शरण मुझको वह देव ॥२१॥

तृण, चौकी, शिल, शैलशिखर नहीं, आत्म समाधि के आसन।
संस्तर, पूजा, संघ-सम्मिलन, नहीं समाधि के साधन ॥२२॥

इष्ट वियोग अनिष्ट योग में, विश्व मनाता है मातम।
हेय सभी हैं विषय वासना, उपादेय निर्मल आतम ॥२३॥

बाह्य जगत कुछ भी नहीं मेरा, और न बाह्य जगत का मैं।
यह निश्चय कर छोड़ बाह्य को, मुक्ति हेतु नित स्वस्थ रमें ॥२४॥

अपनी निधि तो अपने में है, बाह्य वस्तु में व्यर्थ प्रयास।
जग का सुख तो मृग तृष्णा है, झूठे हैं उसके पुरुषार्थ ॥२५॥

अक्षय है शाश्वत है आत्मा, निर्मल ज्ञान स्वभावी है।
जो कुछ बाहर है, सब पर है, कर्माधीन विनाशी है ॥२६॥

तन से जिसका ऐक्य नहीं हो, सुत, तिय, मित्रों से कैसे।
चर्म दूर होने पर तन से, रोम समूह रहें कैसे ॥२७॥

महा कष्ट पाता जो करता, पर पदार्थ, जड़-देह संयोग।
मोक्ष महल का पथ है सीधा, जड़-चेतन का पूर्ण वियोग ॥२८॥

जो संसार पतन के कारण, उन विकल्प जालों को छोड़।
निर्विकल्प निर्द्वन्द आत्मा, फिर-फिर लीन उसी में हो ॥२९॥

स्वयं किये जो कर्म शुभाशुभ, फल निश्चय ही वे देते।
करे आप, फल देय अन्य तो स्वयं किये निष्फल होते ॥३०॥

अपने कर्म सिवाय जीव को, कोई न फल देता कुछ भी।
'पर देता है' यह विचार तज, थिर हो, छोड़ प्रमादी बुद्धि ॥३१॥

निर्मल, सत्य, शिवं सुन्दर है, अमित गति वह देव महान।
शाश्वत निज में अनुभव करते, पाते निर्मल पद निर्वाण ॥३२॥

इन बत्तीस पदों से जो कोई, परमातम को ध्याते हैं।
साँची सामायिक को पाकर, भवोदधि तर जाते हैं ॥

❑❑❑

आत्म कीर्तन

हूँ स्वतंत्र निश्चल निष्काम, ज्ञाता-दृष्टा आतम राम ॥
मैं वह हूँ जो हैं भगवान, जो मैं हूँ वह हैं भगवान।
अन्तर यही ऊपरी जान, वे विराग यह राग वितान ॥
मम स्वरूप है सिद्ध समान, अमित शक्ति सुख ज्ञान निधान।
किन्तु आश वश खोया ज्ञान, बना भिखारी निपट अजान ॥
सुख-दुख दाता कोई न आन, मोह-राग-रुष दुख की खान।
निज को निज पर को पर जान, फिर दुख का नहीं लेश निदान ॥
जिन शिव ईश्वर ब्रह्मा राम, विष्णु बुद्ध हरि जिसके नाम।
राग त्याग पहुँचूँ निजधाम, आकुलता का फिर क्या काम ॥
होता स्वयं जगत परिणाम, मैं जग का करता क्या काम।
दूर हटो परकृत परिणाम, सहजानन्द रहूँ अभिराम ॥

निर्वाण काण्ड

वीतराग वन्दौं सदा, भाव सहित सिरनाय।
कहूँ काण्ड निर्वाण की, भाषा सुगम बनाय ॥१॥

अष्टापद आदीश्वर स्वामि, वासुपूज्य चम्पापुरि नामि।
नेमिनाथ स्वामी गिरनार, वन्दो भाव-भगति उर धार ॥२॥

चरम तीर्थंकर चरम-शरीर, पावापुरि स्वामी महावीर।
शिखरसम्मेद जिनेसुर बीस, भावसहित वन्दौं निश-दीस ॥३॥

वरदत्तराय रु इन्द मुनिन्द, सायरदत्त आदि गुणवृन्द।
नगर तारवर मुनि उठकोडि, वन्दौं भावसहित कर जोड़ि ॥४॥

श्रीगिरनार शिखर विख्यात, कोडि बहत्तर अरु सौ सात।
शम्बु प्रद्युम्न कुमार द्वैभाय, अनिरुद्ध आदि नमूं तसु पाय ॥५॥

रामचन्द्र के सुत द्वै वीर, लाडनरिन्द आदि गुणधीर।
पाँच कोडि मुनि मुक्ति मँझार, पावागिरी वन्दौं निरधार ॥६॥

पाण्डव तीन द्रविड-राजान,आठकोडि मुनि मुकति पयान।
श्री शत्रुंजयगिरि के सीस, भावसहित वन्दौं निश-दीस ॥७॥

जे बलभद्र मुकति में गये, आठ कोडि मुनि औरहु भये।
श्रीगजपन्थ शिखर-सुविशाल, तिनके-चरण नमूँ तिहूँ काल ॥८॥

राम हनू सुग्रीव सुडील, गवय गवाख्य नील महानील।
कोडि निन्यानवै मुक्तिपयान, तुंगीगिरिवन्दौं धरि ध्यान ॥९॥

नंग अनंग कुमार सुजान, पाँच कोडि अरु अर्ध प्रमान।
मुक्ति गये सोनागिरि शीश, ते वन्दौं त्रिभुवनपति ईस ॥१०॥

रावण के सुत आदिकुमार, मुक्ति गये रेवा-तट सार।
कोटि पंच अरु लाख पचास, ते वन्दौं धरि परम हुलास ॥११॥

रेवानदी सिद्धवर कूट, पश्चिम दिशा देह जहँ छूट।
द्वै चक्री दश कामकुमार, ऊठकोडि वन्दौं भव पार ॥१२॥

बडवानी बडनयर सुचंग, दक्षिण दिशि गिरि चूल उतंग।
इन्द्रजीत अरु कुम्भ जु कर्ण, ते वन्दौं भव-सागर-तर्ण ॥१३॥

सुवरणभद्र आदि मुनिचार,पावागिरिवर शिखर-मँझार।
चेलना नदी-तीर के पास, मुक्ति गये वन्दौं नित तास ॥१४॥

फलहोड़ी बड़गाम अनूप, पच्छिम दिशा द्रोणगिरि रूप।
गुरुदत्तादि-मुनीसुर जहाँ, मुक्ति गये वन्दौं नित तहाँ ॥१५॥

बाल महाबाल मुनि दोय, नागकुमार मिले त्रय होय।
श्रीअष्टापद मुक्ति मँझार, ते वन्दौं नित सुरत सँभार ॥१६॥

अचलापुर की दिशा ईसान, तहाँ मेढगिरि नाम प्रधान।
साढ़े तीन कोडि मुनिराय, तिनके चरण नमूँ चित लाय ॥१७॥

वंशस्थल वन के ढिग होय, पश्चिम दिशा कुन्थुगिरि सोय।
कुलभूषणदिशभूषण नाम, तिनके चरणनि करुँ प्रणाम ॥१८॥

जसरथ राजा के सुत कहे, देश कलिंग पाँच सौ लहे।
कोटिशिला मुनि कोटि प्रमान, वन्दन करुँ जोरि जुगपान ॥१९॥

समवसरण श्रीपार्श्व - जिनन्द, रेसिन्दीगिरी नयनानन्द।
वरदत्तादि पंच ऋषिराज, ते वन्दौं नित धरम-जिहाज ॥२०॥

मथुरापुर पवित्र उद्यान, जम्बूस्वामी गये निर्वाण।
चरमकेवली पंचमकाल, ते वन्दौं नित दीनदयाल ॥२१॥

तीन लोक के तीरथ जहाँ, नित प्रति वन्दन कीजै तहाँ।
मनवचकायसहितसिरनाय, वन्दन करहिं भविकगुणगाय ॥२२॥

संवत सतरह सौ इकताल, आश्विन सुदि दशमी सुविशाल।
'भैया' वन्दन करहिं त्रिकाल, जय निर्वाणकाण्ड गुणमाल ॥२३॥

❑ ❑ ❑

निर्वाण काण्ड

(दोहा)

मंगलमय मंगलकरण, वीतराग विज्ञान।
करके नमोऽस्तु हम कहें, पूज्यकाण्ड निर्वाण ॥

(चौपाई)

अष्टापद से आदि-अनन्त, भरत बाहुबलि कर्म हनन्त।
बाल बालमहा नागकुमार, जिनको नमोऽस्तु बारम्बार ॥१॥
वासुपूज्य चम्पापुर त्याग, महावीर पावापुर त्याग।
मुक्त हुए कर निज उद्धार, जिनको नमोऽस्तु बारम्बार ॥२॥
गिरिनारी से नेमीनाथ, शंबु प्रद्युम्न अनिरुद्ध साथ।
कोटि बहत्तर सत सौ पार, जिनको नमोऽस्तु बारम्बार ॥३॥
श्री सम्मेदशिखर से शेष, तीर्थंकर प्रभु बीस अशेष।
मोक्षमहल के खोले द्वार, जिनको नमोऽस्तु बारम्बार ॥४॥
नगर तारवर से वरदत्त, मुनिवरांग मुनि सागरदत्त।
साढ़े तीन कोटि भव पार, जिनको नमोऽस्तु बारम्बार ॥५॥
सात-सात बलभद्र विशेष, आठ कोटि यदुवंशि नरेश।
गजपंथा से मोक्ष पधार, जिनको नमोऽस्तु बारम्बार ॥६॥
राम पुत्र लव कुश भव छोड़, लाट देश नृप पाँच करोड़।
पावागढ़ से मोक्ष पधार, जिनको नमोऽस्तु बारम्बार ॥७॥
पाण्डव भीम युधिष्ठिर पार्थ, द्रविड़ आठ कोटि नृप साथ।
शत्रुंजय से मोक्ष पधार, जिनको नमोऽस्तु बारम्बार ॥८॥
राम हनू सुग्रीव गवाक्ष, गवय नील महानील जिनाक्ष।
निन्यान्वें कोटि तुंगी पार, जिनको नमोऽस्तु बारम्बार ॥९॥
नंग अनंग कुमार प्रसिद्ध, साढ़े पाँच करोड़ सुसिद्ध।
सोनागिरि से मोक्ष पधार, जिनको नमोऽस्तु बारम्बार ॥१०॥
रावण सुत सिद्धोदय छोड़, आदिक साढ़े पाँच करोड़।
रेवातट नेमावर पार, जिनको नमोऽस्तु बारम्बार ॥११॥
रेवा पार्श्व सिद्धवरकूट, साढ़े तीन कोटि तज झूठ।
दो चक्री दस कामकुमार, जिनको नमोऽस्तु बारम्बार ॥१२॥

बड़वानी की दक्षिण पीठ, कुंभकर्ण अरु इन्दरजीत।
चूलगिरि से मोक्ष पधार, जिनको नमोऽस्तु बारम्बार॥१३॥
स्वर्ण वीर मुनि गुण-मणिभद्र, नदी चेलना पूरव हद्द।
पावागिरि से मोक्ष पधार, जिनको नमोऽस्तु बारम्बार॥१४॥
फलहोड़ी के पश्चिम भाग, शिखर द्रोणगिरि परभव त्याग।
गुरुदत्तादिक मोक्ष पधार, जिनको नमोऽस्तु बारम्बार॥१५॥
दिशा अचलपुर की ईशान, साढ़े तीन कोटि मुनि जान।
मुक्तागिरि से मोक्ष पधार, जिनको नमोऽस्तु बारम्बार॥१६॥
वंशस्थल के पश्चिम घाट, कुलभूषण देशभूषण भ्रात।
कुंथलगिरि से मोक्ष पधार, जिनको नमोऽस्तु बारम्बार॥१७॥
दशरथ राज पाँच सौ पुत्र, हुए कलिंग देश से मुक्त।
कोटिशिला से कोटि पधार, जिनको नमोऽस्तु बारम्बार॥१८॥
गुरु वरदत्तादिक मुनि पाँच, पाकर समवसरण प्रभु पार्श्व।
नैनागिरि से मोक्ष पधार, जिनको नमोऽस्तु बारम्बार॥१९॥
राजगृही से विद्युतचोर, अष्टापद से अंजनचोर।
गौतम गए गुणावा पार, जिनको नमोऽस्तु बारम्बार॥२०॥
मथुरा से श्री जंबूस्वामि, कुण्डलपुर से श्रीधर नामि।
सेठ सुदर्शन पटना बिहार, जिनको नमोऽस्तु बारम्बार॥२१॥
अहारजी से मदनकुमार, विस्कंवल पहुँचे शिवद्वार।
सुप्रतिष्ठित गोपाचल पार, जिनको नमोऽस्तु बारम्बार॥२२॥
यम धन आदिक संत प्रसिद्ध, शौरि-बटेश्वर से जो सिद्ध।
कनकगिरि से श्रीधर राज, जिनको नमोऽस्तु बारम्बार॥२३॥
जग में जितने भू-निर्वाण, गुफा नदी वन कन्दर थान।
भू नभ जल से मोक्ष पधार, जिनको नमोऽस्तु बारम्बार॥२४॥
कर निर्वाणकाण्ड के गान, 'सुव्रत' चाहें निज निर्वाण।
हो जाए जग का उद्धार, करके नमोऽस्तु बारम्बार॥२५॥

जो पाए निर्वाण सुख, सिद्ध अनन्तानन्त।
करके नमोऽस्तु हम भजें, सिद्धक्षेत्र भगवंत॥

थुति शतक

मंगलाचरण

शुद्ध भाव को नमन हो शुद्धभाव के काज।
स्मरों, स्मरूँ नित थुति करूँ उर में करूँ विराज ॥१॥
अगार गुण के गुरु रहें, अगरु गन्ध अनगार।
पार पहुँचने नित नमूँ, प्रणाम बारम्बार ॥२॥
नमूँ भारती भ्रम मिटे, ब्रह्म बनूँ मैं बाल।
भार रहित भारत बने, भास्वत भारत भाल ॥३॥

श्री आदिनाथ भगवान

आदिम तीर्थंकर प्रभु, आदिनाथ मुनिनाथ।
आधि-व्याधि-अघ-मद मिटे, तुम पद में मम माथ ॥४॥
शरण चरण हैं आपके, तारण तरण जहाज।
भवदधि तट तक ले चलो, करुणाकर जिनराज ॥५॥
वृष का होता अर्थ है, दयामयी शुभ धर्म।
वृष से तुम भरपूर हो, वृष से मिटते कर्म ॥६॥
दीनों के दुर्दिन मिटें, तुम दिनकर को देख।
सोया जीवन जागता, मिटता अघ अविवेक ॥७॥

श्री अजितनाथ भगवान

जित इन्द्रिय,जित मद बने, जितभव,विजित कषाय।
अजितनाथ को नित नमूँ, अर्जित दुरित पलाय ॥८॥
कोंपल पल-पल कोंपले, वन में ऋतुपति आय।
पुलकित मम जीवन लता, मन में जिनपद पाय ॥९॥
हार जीत के हो परे, हो अपने में आप।
विहार करते, अजित हो, यथा नाम गुण छाप ॥१०॥
पुण्य पुंज हो, पर नहीं पुण्य-फलों में लीन।
पर-पर पामर भ्रमित हो, पल-पल पर आधीन ॥११॥

श्री शंभवनाथ भगवान

तुम पद पंकज से प्रभो, झर-झर झरी पराग।
जब तक शिव सुख ना मिले, पीऊँ षट्पद जाग ॥१२॥

भव-भव,भव-वन भ्रमित हो, भ्रमता-भ्रमता आज।
शंभव जिन भव शिव मिले, पूर्ण हुआ मम काज ॥१३॥
क्षण-क्षण मिटते द्रव्य हैं, पर्यय वश अविराम।
चिर से हैं, चिर ये रहें, स्वभाव वश अभिराम ॥१४॥
परमारथ का कथन यूँ, मथन किया स्वयमेव।
यतिपन पाले यतन से, नियमित यदि हो देव! ॥१५॥

श्री अभिनन्दननाथ भगवान

विषयों को विष लख तजूँ, बनकर विषयातीत।
विषय बना ऋषि ईश को, गाऊँ उनका गीत ॥१६॥
गुणधारें, पर मद नहीं, मृदुतम हो नवनीत।
अभिनन्दन जिन! नित नमूँ मुनि बन मैं भवभीत ॥१७॥
गुण का अभिनन्दन करो, करो कर्म की हानि।
गुरु कहते गुण गौण हो, किस विध सुख हो प्राणि ॥१८॥
चेतन वश तन, शिव बने, शिव बिन तन शव होय।
शिव की पूजा बुध करें, जड़ जन शव पर रोय ॥१९॥

श्री सुमतिनाथ भगवान

सुमतिनाथ प्रभु सुमति दो, मम मति है अतिमंद।
बोध कली खुल-खिल उठे, महक उठे मकरन्द ॥२०॥
तुम जिन मेघ, मयूर मैं, गरजो बरसो नाथ।
चिर प्रतीक्षित हूँ खड़ा, ऊ पर करके माथ ॥२१॥
बचूँ अहित से हित करूँ, पर न लगा हित हाथ।
अहित साथ ना छोड़ता, कष्ट सहूँ दिन-रात ॥२२॥
बिगड़ी धरती सुधरती, मति से मिलता स्वर्ग।
चारों-गतियाँ बिगड़तीं, पा अघ मति संसर्ग ॥२३॥

श्री पद्मप्रभ भगवान

शुभ्र सरल तुम, बाल तव, कुटिल कृष्ण तम नाग।
तव चिति चित्रित ज्ञेय से, किन्तु न उसमें दाग ॥२४॥
विराग पद्मप्रभ आपके, दोनों पाद सराग।
रागी मम मन जा वहीं, पीता तभी पराग ॥२५॥

निरी छटा ले, तुम छटे, तीर्थकरों में आप।
निवास लक्ष्मी के बने, रहित पाप संताप ॥२६॥
हीरा-मोती पद्म ना, चाहूँ तुमसे नाथ।
तुम सा तम-तामस मिटा, सुखमय बनूँ प्रभात ॥२७॥

श्री सुपार्श्वनाथ भगवान

अबंध भाते, काट के, वसु-विध विधि का बंध।
सुपार्श्व प्रभु निज प्रभुपना, पा पाये आनन्द ॥२८॥
बाँध-बाँध विधि बन्ध मैं, अन्ध बना मतिमन्द।
ऐसा बल दो अंध को, बन्धन तोड़ूँ द्वन्द्व ॥२९॥
यथा सुधाकर खुद सुधा, बरसाता, बिन स्वार्थ।
धर्मामृत बरसा दिया, मिटा जगत् का आर्त ॥३०॥
दाता देते दान हैं, बदले की ना चाह।
चाह दाह से दूर हो, बड़े-बड़ों की राह ॥३१॥

श्री चन्द्रप्रभ भगवान

चन्द्र कलंकित किंतु हो, चन्द्रप्रभु अकलंक।
वह तो शंकित केतु से, शंकर तुम निःशंक ॥३२॥
रंक बना हूँ मम, अतः मेटो मन का पंक।
जाप जपूँ जिन नाम का, बैठ सदा पर्यंक ॥३३॥
सहन कहाँ तक अब करूँ, मोह मारता डंक।
दे दो इसको शरण ज्यों, माता सुत को अंक ॥३४॥
कौन पूजता, मूल्य क्या, शून्य रहा बिन अंक।
आप अंक हैं, शून्य मैं, प्राण फूँक दो शंख ॥३५॥

श्री पुष्पदन्त भगवान

सुविधि! सुविधि के पूर हो, विधि से हो अति दूर।
मम मन से मत दूर हो, विनती हो मंजूर ॥३६॥
बाल मात्र भी ज्ञान ना मुझमें, मैं मुनि बाल।
बवाल भव का मम मिटे, प्रभु पद में मम भाल ॥३७॥
किस वन की मूली रहा मैं? तुम गगन विशाल।
दरिया में खसखस रहा, दरिया मौन निहार ॥३८॥

फिर किस विध निरखूँ तुम्हें, नयन करूँ विस्फार।
नाचूँ, गाऊँ, ताल दूँ, किस भाषा में ढाल ॥३९॥

श्री शीतलनाथ भगवान

शीतल चंदन है नहीं, शीतल हिम ना नीर।
शीतल जिन! तव मत रहा शीतल, हरता पीर ॥४०॥
सुचिर काल से मैं रहा, मोह नींद से सुप्त।
मुझे जगाकर, कर कृपा, प्रभो करो परितृप्त ॥४१॥
चिन्ता छूती कब तुम्हें, चिंतन से भी दूर।
अधिगम में गहरे गये, अव्यय सुख के पूर ॥४२॥
युगों-युगों से युग बना, विघन अघों का गेह।
युग द्रष्टा, युग में रहें, पर ना अघ से नेह ॥४३॥

श्री श्रेयोनाथ भगवान

अनेकान्त की कान्ति से, हटा तिमिर एकान्त।
नितान्त हर्षित कर दिया, क्लान्त विश्व को शान्त ॥४४॥
निश्रेय सुखधाम हो, हे जिनवर! श्रेयांस।
तव थुति अविरल मैं करूँ, जब लौं घट में श्वास ॥४५॥
राग द्वेष अरु मोह ये, होते कारण तीन।
तीन लोक में भ्रमित यह, दीन, हीन अघ-लीन ॥४६॥
निज क्या, पर क्या, स्व-पर क्या, भला बुरा बिन बोध।
जिजीविषा ले खोजता, सुख ढोता तन बोझ ॥४७॥

श्री वासुपूज्य भगवान

वसुविध मंगल द्रव्य ले, जिन पूजो सागार।
पाप घटे फलतः फले, पावन पुण्य अपार ॥४८॥
बिना द्रव्य शुचि भाव से, जिन पूजो मुनि लोग।
बिन निज शुभ उपयोग के, शुद्ध न हो उपयोग ॥४९॥
औ न दया बिन धर्म, ना कर्म कटे बिन धर्म।
धर्म मर्म तुम समझकर, कर लो अपना कर्म ॥५०॥
वासुपूज्य जिनदेव ने, देकर यूँ उपदेश।
सबको उपकृत कर दिया, शिव में किया प्रवेश ॥५१॥

श्री विमलनाथ भगवान

कराल काला व्याल सम, कुटिल चाल का काल।
मार दिया तुमने उसे, फाड़ा उसका गाल ॥५२॥
मोह अमल वश समल बन, निर्बल मैं भयवान।
विमलनाथ तुम अमल हो, सम्बल दो भगवान ॥५३॥
काया कारा में पला, प्रभु तो कारातीत।
चिर से धारा में पड़ा, जिनवर धारातीत ॥५४॥
ज्ञान छोर तुम, मैं रहा ना समझ की छोर।
छोर पकड़कर झट इसे, खींचो अपनी ओर ॥५५॥

श्री अनन्तनाथ भगवान

अनन्त गुण पा, कर दिया, अनन्तभव का अन्त।
'अनन्त' सार्थक नाम तव, अनन्त जिन जयवन्त ॥५६॥
अनन्त सुख पाने सदा, भव से हो भयवन्त।
अन्तिम क्षण तक मैं तुम्हें, स्मरूँ स्मरें सब संत ॥५७॥
आदि रहित सब द्रव्य हैं, ना हो इनका अन्त।
गिनती इनकी अन्त से रहित, अनन्त - अनन्त ॥५८॥
कर्ता इनका पर नहीं, ये न किसी के कर्म।
सन्त बने, अरिहन्त हो, जाना पदार्थ - धर्म ॥५९॥

श्री धर्मनाथ भगवान

दया धर्म, वर धर्म है, अदया भाव अधर्म।
अधर्म तज, प्रभु धर्म ने, समझाया पुनि धर्म ॥६०॥
धर्मनाथ को नित नमूँ, सधे शीघ्र शिव शर्म।
धर्म-मर्म को लख सकूँ मिटे मलिन मम कर्म ॥६१॥
जिससे बिछुड़े जुड़ सकें, रुदन रुके मुस्कान।
तनगत चेतन दिख सके,वही धर्म सुखखान ॥६२॥
विरागता में राग हो, राग नाग विष त्याग।
अमृतपान चिर कर सकें,धर्म यही झट जाग ॥६३॥

श्री शान्तिनाथ भगवान

शान्तिनाथ हो शान्त, कर सातासाता सान्त।
केवल, केवल ज्योतिमय, क्लान्ति मिटी सब ध्वांत ॥६४॥
सकलज्ञान से, सकल को, जान रहे जगदीश।
विकल रहे जड़ देह से, विमल नमूँ नत शीश ॥६५॥
कामदेव हो, काम से, रखते कुछ ना काम।
काम रहे ना कामना, तभी बने सब काम ॥६६॥
बिना कहे कुछ, आपने प्रथम किया कर्तव्य।
त्रिभुवन पूजित आप्त हो, प्राप्त किया प्राप्तव्य ॥६७॥

श्री कुन्थुनाथ भगवान

ध्यान अग्नि से नष्ट कर, प्रथम पाप परिताप।
कुन्थुनाथ पुरुषार्थ से, बने न अपने आप ॥६८॥
ऐसी मुझ पे हो कृपा मम मन मुझ में आय।
जिस विध पल में लवण है, जल में घुल मिल जाय ॥६९॥
दीनदयाल प्रभु रहें, करुणा के अवतार।
नाथ अनाथों के रहे, तार सको तो तार ॥७०॥
उपादान की योग्यता, घट में ढलती सार।
कुम्भकार का हाथ हो, निमित्त का उपकार ॥७१॥

श्री अरनाथ भगवान

नाम मात्र भी नहिं रखो, नाम काम से काम।
ललाम आतम में करो, विराम आठों याम ॥७२॥
नाम धरो 'अर' नाम तव, अतः स्मरूँ अविराम।
अनाम बन शिवधाम में, काम बनूँ कृत काम ॥७३॥
चक्री हो, पर चक्र के, चक्कर में ना आय।
मुमुक्षुपन जब जागता, बुभुक्षुपन भग जाय ॥७४॥
भोगों का कब अन्त है, रोग भोग से होय।
शोक रोग में हो अतः काल योग का रोय ॥७५॥

श्री मल्लिनाथ भगवान

मोह मल्ल को मार कर, मल्लिनाथ जिनदेव।
अक्षय बनकर पा लिया, अक्षय सुख स्वयमेव ॥७६॥
बाल ब्रह्मचारी विभो, बाल समान विराग।
किसी वस्तु से राग ना, मम तव पर से राग ॥७७॥
क्षार - क्षार भर है भरा, रहित सार संसार।
मोह उदय से लग रहा, सरस सार संसार ॥७८॥
बने दिगम्बर प्रभु तभी, अन्तरंग बहिरंग।
गहरी - गहरी हो नदी, उठती नहीं तरंग ॥७९॥

श्री मुनिसुव्रतनाथ भगवान

मुनि बन मुनिपन में निरत, हो मुनि यति बिन स्वार्थ।
मुनिव्रत का उपदेश दे, हमको किया कृतार्थ ॥८०॥
मात्र[१] भावना मम रही, मुनिव्रत पाल यथार्थ।
मैं भी 'मुनिसुव्रत' बनूँ, पावन पाय पदार्थ ॥८१॥
निज में यति ही 'नियति' है, ध्येय पुरुष पुरुषार्थ।
नियति और पुरुषार्थ का, सुन लो अर्थ यथार्थ ॥८२॥
लौकिक सुख पाने कभी, श्रमण बनो मत भ्रात!
मिले धान्य जब कृषि करे, घास आप मिल जात ॥८३॥

श्री नमिनाथ भगवान

अनेकान्त का दास हो, अनेकान्त की सेव।
करूँ, गहूँ मैं शीघ्र से, अनेक गुण स्वयमेव ॥८४॥
अनाथ मैं, जगनाथ हो, नमीनाथ दो साथ।
तव पद में दिन-रात हूँ, हाथ जोड़ नत-माथ ॥८५॥
मात्र नग्नता को नहीं, माना प्रभु शिव-पंथ।
बिना नग्नता भी नहीं, पावो पद अरहन्त ॥८६॥
प्रथम हटे छिलका, तभी लाली हटती भ्रात!
पाक कार्य फिर सफल हो, लो तब मुख में भात ॥८७॥

---

१. यही

श्री नेमिनाथ भगवान

राज तजा, राजुल तजी, श्याम तजा बलिराम।
नाम - धाम - धन - मन तजा, ग्राम तजा संग्राम ॥९०॥
मुनि बन, वन में तप सजा, मन पर लगा लगाम।
ललाम परमातम भजा, निज में किया विराम ॥९१॥
नील गगन में अधर हो, शोभित निज में लीन।
नील कमल आसीन हो, नीलम से अति नील ॥८८॥
शील-झील में तैरते, नेमि जिनेश सलील।
शील डोर मुझे बाँध दो, डोर करो मत ढील ॥८९॥

श्री पार्श्वनाथ भगवान

खास-दास की आस बस, श्वास-श्वास पर वास।
पार्श्व करो मत दास को, उदासता का दास ॥९२॥
ना तो सुर-सुख चाहता, शिवसुख की ना चाह।
तव थुति सरवर में सदा, होवे मम अवगाह ॥९३॥
रिपुता की सीमा रही, गहन किया उपसर्ग।
समता की सीमा यही, ग्रहण किया अपवर्ग ॥९४॥
क्या-क्यों, किस विध, कब कहें,आत्मध्यान की बात।
पल में मिटती चिर बसी, मोह अमा की रात ॥९५॥

श्री महावीर भगवान

नीर-निधी से धीर हो, वीर बने गंभीर।
पूर्ण तैर कर पा लिया, भवसागर का तीर ॥९६॥
अधीर हूँ, मुझ धीर दो, सहन करूँ सब पीर।
चीर-चीर कर चिर लखूँ, अन्दर की तस्वीर ॥९७॥
क्षीर रहो प्रभु, नीर मैं, विनती करूँ अखीर।
नीर मिला लो क्षीर में, और बना दो क्षीर ॥९८॥
अबीर हो, तुम वीर भी, धरते ज्ञान शरीर।
सौरभ मुझ में भी भरो, सुरभित करो समीर ॥९९॥

गुरु स्मृति

तरणि ज्ञानसागर गुरो! तारो मुझे ऋषीश।
करुणाकर! करुणा करो! कर से दो आशीष ॥१००॥

रचना स्थल एवं समय परिचय

बीना बारह क्षेत्र पे, सुनो! नदी सुखचैन।
बहती-बहती कह रही, इत आ सुख दिन-रैन ॥१०१॥
श्याम-राम-रस-गन्ध का वीर जयन्ती पर्व।
पूर्ण हुआ थुति शतक है, पढ़ें, सुनें हम सर्व ॥१०२॥

यथा 'श्याम-राम-रस-गन्थ' अर्थात् (श्याम=नारायण=९), राम=१, रस=५, गन्ध=सुगंध-दुर्गंध=२ यानी ९१५२ ''अंकानां वामतो गतिः'' के अनुसार वीर निर्वाण संवत् २५१९, विक्रम संवत् २०५० वर्ष के महावीर जयंती दिवस चैत्र शुक्ल त्रयोदशी, ४ अप्रैल, १९९३, रविवार को दिगम्बर जैनाचार्य सन्त शिरोमणि श्री विद्यासागर जी महाराज के द्वारा श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र बीना बारहा, तहसील देवरी, जिला-सागर, मध्यप्रदेश में यह 'थुति शतक'-'स्तुति शतक' रचना पूर्ण हुई।

आचार्यश्री जी के द्वारा आचार्य समन्तभद्र स्वामी कृत स्वयंभू स्तोत्र के पद्यानुवाद 'समन्तभद्र की भद्रता' कृति में पूर्व लिखित प्रत्येक तीर्थंकर जिनों के स्तवन स्वरूप सृजित दो-दो दोहों में अन्य दोहे जोड़कर यह शतक पूर्ण हुआ है।

शुभ - केलि के आनन्द के, घन के मनोहर धाम हो।
नरनाथ से सुरनाथ से पूजित चरण, गतकाम हो॥
सर्वज्ञ हो सर्वोच्च हो, सबसे सदा संसार में।
प्रज्ञा कला के सिन्धु हो, आदर्श हो आचार में॥१॥

संसार-दुःख के वैद्य हो, त्रैलोक्य के आधार हो।
जय श्रीश! रत्नाकर प्रभो! अनुपम कृपा-अवतार हो॥
गतराग! है विज्ञप्ति मेरी मुग्ध की सुन लीजिये।
क्योंकि प्रभो! तुम विज्ञ हो मुझको अभय वर दीजिए॥२॥

माता पिता के सामने बोली सुनाकर तोतली।
करता नहीं क्या अज्ञ बालक बाल्य-वश लीलावली॥
अपने हृदय के हाल कों त्यों ही यथोचित रीति से-
मैं कह रहा हूँ, आपके आगे विनय से प्रीति से॥३॥

मैंने नहीं जग में कभी, कुछ दान दीनों को दिया।
मैं सच्चरित भी हूँ नहीं, मैंने नहीं तप भी किया॥
शुभ भावनाएँ भी हुईं, अब तक न इस संसार में-
मैं घूमता हूँ व्यर्थ ही, भ्रम से भवोदधि-धार में॥४॥

क्रोधाग्नि से मैं रातदिन हा!, जल रहा हूँ हे प्रभो!
मैं लोभ नामक साँप से, काटा गया हूँ हे विभो!!
अभिमान के खल ग्राह से, अज्ञानवश मैं ग्रस्त हूँ।
किस भाँति स्मृत आप हो, जब पाप से मैं व्यस्त हूँ॥५॥

लोकेश! पर-हित भी किया, मैंने न दोनों लोक में।
सुख-लेश भी फिर क्यों मुझे, हो झींकता हूँ शोक में॥
जग में हमारे से नरों, का जन्म ही बस व्यर्थ है।
मानों जिनेश्वर! वह भवों की पूर्णता के अर्थ है॥६॥

प्रभु! आपने निज मुख सुधा, का दान यद्यपि दे दिया।
यह ठीक है पर चित्त ने, उसका न कुछ भी फल लिया॥

आनन्द-रस में डूबकर, सद्वृत्त वह होता नहीं।
है वज्र सा मेरा हृदय, कारण बड़ा बस है यही ॥७॥

रत्नत्रयी दुष्प्राप्य है प्रभु, से उसे मैंने लिया।
बहुकाल तक बहु बार जब, जग का भ्रमण मैंने किया॥
हा खो गया वह भी विवश, मैं नींद आलस के रहा।
अब बोलिये उसके लिए, रोऊँ प्रभो! किसके यहाँ ॥८॥

संसार ठगने के लिए, वैराग्य को धारण किया।
जग को रिझाने के लिए, उपदेश धर्मों का दिया॥
झगड़ा मचाने के लिए, मम जीभ पर विद्या बसी।
निर्लज्ज हो कितनी उड़ाऊँ, हे प्रभो! अपनी हँसी ॥९॥

परदोष को कहकर सदा, मेरा वदन दूषित हुआ।
लख कर पराई नारियों को, हा नयन दूषित हुआ॥
मन भी मलिन है सोचकर, पर की बुराई हे प्रभो!
किस भाँति होगी लोक में, मेरी भलाई हे प्रभो ॥१०॥

मैंने बड़ाई निज विवशता, हो अवस्था के वशी।
भक्षक रतीश्वर से हुई, उत्पन्न जो दुख-राक्षसी॥
हा! आपके सम्मुख उसे, अति लाज से प्रकटित किया।
सर्वज्ञ! हो सब जानते, स्वयमेव संसृति की क्रिया ॥११॥

अन्यान्य मन्त्रों से परम, परमेष्ठि-मंत्र हटा दिया।
सच्छास्त्र-वाक्यों को, कुशास्त्रों से दबा मैंने दिया॥
विधि-उदय को करने वृथा, मैंने कुदेवाश्रय लिया।
हे नाथ! यों भ्रमवश अहित, मैंने नहीं क्या क्या किया ॥१२॥

हा तज दिया मैंने प्रभो!, प्रत्यक्ष पाकर आपको।
अज्ञान-वश मैंने किया, फिर देखिये किस पाप को॥
वामाक्षियों के कुच-कटाक्षों, पर सदा मरता रहा।
उनके विलासों के हृदय में, ध्यान को धरता रहा ॥१३॥

लखकर चपल-दृग-युवतियों, के मुख मनोहर रसमई।
जो मन-पटल पर राग भावों की मलिनता बस गई॥

वह शास्त्रनिधि के शुद्ध जल से, भी न क्यों धोई गई ?
बतलाइए यह आप ही, मम बुद्धि तो खोई गई ॥१४॥

मुझमें न अपने अंग में, सौन्दर्य का आभास है।
मुझमें न गुण गण है विमल, न कला-कलाप-विलास है ॥
प्रभुता न मुझमें स्वप्न को भी, चमकती है, देखिये।
तो भी भरा हूँ गर्व से, मैं मूढ़ हो किसके लिए ॥१५॥

हा नित्य घटती आयु है, पर पाप-मति घटती नहीं।
आई बुढ़ौती पर विषय, से कामना हटती नहीं ॥
मैं यत्न करता हूँ दवा, में धर्म मैं करता नहीं।
दुर्मोह-महिमा से ग्रसित हूँ, नाथ! बच सकता नहीं ॥१६॥

अघ पुण्य को भव आत्म को, मैंने कभी माना नहीं।
हा आप आगे हैं खड़े, दिननाथ से यद्यपि यहीं ॥
तो भी खलों के वाक्य को, मैंने सुना कानों वृथा।
धिक्कार मुझको है गया, मम जन्म ही मानो वृथा ॥१७॥

सत्पात्र-पूजन देव-पूजन, कुछ नहीं मैंने किया।
मुनिधर्म श्रावकधर्म का भी, नहिं सविधि पालन किया ॥
नर-जन्म पाकर भी वृथा, ही मैं उसे खोता रहा।
मानो अकेला घोर वन में, व्यर्थ ही रोता रहा ॥१८॥

प्रत्यक्ष सुखकर जैन-मत में, प्रीति मेरी थी नहीं।
जिननाथ! मेरी देखिये, है मूढ़ता भारी यही ॥
हा! कामधुक कल्पद्रुमादिक के यहाँ रहते हुए।
हमने गँवाया जन्म को, धिक्कार दुख सहते हुए ॥१९॥

मैंने न रोका रोग-दुख, संभोग-सुख देखा किया।
मन में न माना मृत्यु-भय, धन-लाभ ही लेखा किया ॥
हा! मैं अधम युवती-जनों, का ध्यान नित करता रहा।
पर नरक-कारागार से, मन में न मैं डरता रहा ॥२०॥

सद्वृत्ति से मन में न मैंने, साधुता हा साधिता।
उपकार करके कीर्ति भी, मैंने नहीं कुछ अर्जिता ॥

शुभतीर्थ के उद्धार आदिक, कार्य कर पाये नहीं।
नर-जन्म पारस-तुल्य निज, मैंने गँवाया व्यर्थ ही ॥२१॥

शास्त्रोक्त विधि वैराग्य भी, करना मुझे आता नहीं।
खल-वाक्य भी गत क्रोध हो, सहना मुझे आता नहीं ॥
अध्यात्म-विद्या है न मुझमें, है न कोई सत्कला।
फिर देव! कैसे यह भवोदधि पार होवेगा भला ॥२२॥

सत्कर्म पहले जन्म में, मैंने किया कोई नहीं।
आशा नहीं जन्मान्य में, उसको करूँगा मैं कहीं ॥
इस भाँति का यदि हूँ जिनेश्वर! क्यों न मुझको कष्ट हों।
संसार में फिर जन्म तीनों क्यों न मेरे नष्ट हों ॥२३॥

हे पूज्य! अपने चरित को, बहुभाँति गाऊँ क्या वृथा।
कुछ भी नहीं तुमसे छिपी, है पापमय मेरी कथा ॥
क्योंकि त्रिजग के रूप हो, तुम ईश हो सर्वज्ञ हो।
पथ के प्रदर्शक हो तुम्हीं, मम चित्त के मर्मज्ञ हो ॥२४॥

दीनोद्धारक धीर आप सा अन्य नहीं है।
कृपापात्र भी नाथ ! न मुझसा अपर कहीं है ॥
तो भी माँगू नहीं धान्य धन कभी भूल कर।
अर्हन् ! केवल बोधिरत्न होवे मंगलकर ॥
श्री रत्नाकर गुणगान, यह दुरित दुःख सबके हरे।
बस एक यही है प्रार्थना, मंगलमय जग को करे ॥२५॥

भक्तामर स्तोत्र भाषा

(कमलकुमार शास्त्री कुमुद)

भक्त अमर नत-मुकुट सुमणियों, की सुप्रभा का जो भासक।
पापरूप अतिसघन-तिमिर का, ज्ञान-दिवाकर-सा नाशक ॥
भव-जल पतित जनों को जिसने, दिया आदि में अवलम्बन।
उनके चरण-कमल को करते, सम्यक् बारम्बार नमन ॥१॥

सकल वाङ्मय तत्त्वबोध से, उद्भव पटुतर धी-धारी।
उसी इन्द्र की स्तुति से है, वन्दित जग-जन मनहारी ॥
अति आश्चर्य की स्तुति करता, उसी प्रथम जिन स्वामी की।
जगनामी-सुखधामी तद्भव-शिवगामी अभिरामी की ॥२॥

स्तुति को तैयार हुआ हूँ, मैं निर्बुद्धि छोड़ के लाज।
विज्ञजनों से अर्चित हैं प्रभु, मंदबुद्धि की रखना लाज ॥
जल में पड़े चन्द्र-मंडल को, बालक बिना कौन मतिमान ?।
सहसा उसे पकड़ने वाली, प्रबलेच्छा करता गतिमान ॥३॥

हे जिन! चन्द्रकान्त से बढ़कर, तव गुण विपुल अमल अतिश्वेत।
कह न सकें नर हे गुण-सागर, सुर-गुरु के सम बुद्धिसमेत ॥
मक्र-नक्र-चक्रादि जन्तु युत, प्रलय पवन से बढ़ा अपार।
कौन भुजाओं से समुद्र के, हो सकता है परले पार ॥४॥

वह मैं हूँ, कुछ शक्ति न रखकर, भक्ति प्रेरणा से लाचार।
करता हूँ स्तुति प्रभु तेरी, जिसे न पौर्वा-पर्य विचार ॥
निज शिशु की रक्षार्थ आत्म-बल, बिना विचारे क्या न मृगी।
जाती है मृगपति के आगे, शिशु-सनेह में हुई रंगी ॥५॥

अल्पश्रुत हूँ श्रुतवानों से, हास्य कराने का ही धाम।
करती है वाचाल मुझे प्रभु! भक्ति आपकी आठों याम ॥
करती मधुर गान पिक मधु में, जग-जन मनहर अति अभिराम।
उसमें हेतु सरस फल-फूलों, से युत हरे-भरे तरु -आम ॥६॥

जिनवर की स्तुति करने से, चिर संचित भविजन के पाप।
पलभर में भग जाते निश्चित, इधर-उधर अपने ही आप ॥

सकल लोक में व्याप्त रात्रि का, भ्रमर सरीखा काला ध्वान्त।
प्रातः रवि की उग्र किरण लख, हो जाता क्षण में प्राणान्त ॥७॥

मैं मतिहीन-दीन प्रभु तेरी, शुरू करूँ स्तुति अघ-हान।
प्रभु-प्रभाव ही चित्त हरेगा, सन्तों का निश्चय से मान ॥
जैसे कमल-पत्र पर जल-कण, मोती जैसे आभावान।
दिपते हैं फिर छिपते हैं असली मोती में हे भगवान् ॥८॥

दूर रहे स्तोत्र आपका, जो कि सर्वथा है निर्दोष।
पुण्य-कथा ही किन्तु आपकी, हर लेती है कल्मष-कोष ॥
प्रभा प्रफुल्लित करती रहती, सर के कमलों को भरपूर।
फेंका करता सूर्य-किरण को, आप रहा करता है दूर ॥९॥

त्रिभुवन-तिलक जगत-पति हे प्रभु! सद्गुरुओं के हे गुरुवर्य।
सद्भक्तों को निज सम करते, इसमें नहीं अधिक आश्चर्य ॥
स्वाश्रित जन को निजसम करते, धनी लोग धन धरनी से।
नहीं करें तो उन्हें लाभ क्या? उन धनिकों की करनी से ॥१०॥

हे अनिमेष विलोकनीय प्रभु! तुम्हें देखकर परम-पवित्र।
तोषित होते कभी नहीं हैं, नयन मानवों के अन्यत्र ॥
चन्द्रकिरण सम उज्ज्वल निर्मल, क्षीरोदधि का कर जल पान।
कालोदधि का खारा पानी, पीना चाहे कौन पुमान ॥११॥

जिन जितने जैसे अणुओं से, निर्मापित प्रभु तेरी देह।
थे उतने वैसे अणु जग में, शान्ति-राग-मय निःसन्देह ॥
हे त्रिभुवन के शिरोभाग के, अद्वितीय आभूषण-रूप।
इसीलिये तो आप सरीखा, नहीं दूसरों का है रूप ॥१२॥

कहाँ आपका मुख अतिसुंदर, सुर-नर उरग नेत्रहारी।
जिसने जीत लिये सब जग के, जितने थे उपमाधारी ॥
कहाँ कलंकी बंक चन्द्रमा, रंक-समान कीट-सा दीन।
जो पलाश-सा फीका पड़ता,दिन में हो करके छबि-छीन ॥१३॥

तव गुण पूर्ण-शशांक कान्तिमय, कला-कलापों से बढ़के।
तीन लोक में व्याप रहे हैं, जो कि स्वच्छता में चढ़के॥

विचरें चाहे जहाँ कि जिनको, जगन्नाथ का एकाधार।
कौन माई का जाया रखता, उन्हें रोकने का अधिकार ॥१४॥

मद की छकी अमर ललनाएँ, प्रभु के मन में तनिक विकार।
कर न सकी आश्चर्य कौन-सा, रह जाती हैं मन को मार ॥
गिर गिर जाते प्रलय पवन से, तो फिर क्या वह मेरु-शिखर।
हिल सकता है रंच-मात्र भी, पाकर झंझावात प्रखर ॥१५॥

धूम न बत्ती तैल बिना ही, प्रकट दिखाते तीनों लोक।
गिरि के शिखर उड़ाने वाली, बुझा न सकती मारुत झोक ॥
तिस पर सदा प्रकाशित रहते, गिनते नहीं कभी दिन-रात।
ऐसे अनुपम आप दीप हैं, स्वपर प्रकाशक जग विख्यात ॥१६॥

अस्त न होता कभी न जिसको, ग्रस पाता है राहु प्रबल।
एक साथ बतलाने वाला, तीन लोक का ज्ञान विमल ॥
रुकता कभी प्रभाव न जिसका, बादल की आकर के ओट।
ऐसी गौरव-गरिमा वाले, आप अपूर्व दिवाकर कोट ॥१७॥

मोह महातम दलने वाला, सदा उदित रहने वाला।
राहु न बादल से दबता पर, सदा स्वच्छ रहने वाला ॥
विश्व प्रकाशकमुख-सरोज तब, अधिक कांतिमय शांतिस्वरूप।
है अपूर्व जग का शशिमंडल, जगत शिरोमणि शिव का भूप ॥१८॥

नाथ! आपका मुख जब करता, अन्धकार का सत्यानाश।
तब दिन में रवि और रात्रि में, चन्द्रबिम्ब का विफल प्रयास ॥
धान्य खेत जब धरती तल के, पके हुए हों अति अभिराम।
शोर मचाते जल को लादे, हुए घनों से तब क्या काम ? ॥१९॥

जैसा शोभित होता प्रभु का, स्वपर प्रकाशक उत्तम ज्ञान।
हरि-हरादि देवों में वैसा, कभी नहीं हो सकता भान ॥
अति ज्योर्तिमय महारतन का, जो महत्त्व देखा जाता।
क्या वह किरणा-कुलित काँच में, अरे कभी लेखा जाता ॥२०॥

हरिहरादि देवों का ही मैं, मानूँ उत्तम अवलोकन।
क्योंकि उन्हें देखने भर से, तुझसे तोषित होता मन ॥

है परन्तु क्या तुम्हें देखने, से हे स्वामिन्! मुझको लाभ।
जन्म-जन्म में लुभा न पाते, कोई यह मेरा अमिताभ ॥२१॥

सौ-सौ नारी, सौ-सौ सुत को, जनती रहती सौ-सौ ठौर।
तुम से सुत को जनने वाली, जननी महती क्या है और ॥
तारागण को सर्व दिशाएँ धरें नहीं कोई खाली।
पूर्व दिशा ही पूर्ण प्रतापी, दिनपति को जनने वाली ॥२२॥

तुम को परम पुरुष मुनि मानें, विमल वर्ण रवि तमहारी।
तुम्हें प्राप्त कर मृत्युञ्जय के, बन जाते जन अधिकारी ॥
तुम्हें छोड़कर अन्य न कोई, शिवपुर-पथ बतलाता है।
किन्तु विपर्यय मार्ग बताकर, भव-भव में भटकाता है ॥२३॥

तुम्हें आद्य अक्षय अनन्त प्रभु, एकानेक तथा योगीश।
ब्रह्मा ईश्वर या जगदीश्वर, विदितयोग मुनिनाथ मुनीश ॥
विमल ज्ञानमय या मकरध्वज, जगन्नाथ जगपति जगदीश।
इत्यादिक नामों कर माने, सन्त निरन्तर विभो निधीश ॥२४॥

ज्ञान पूज्य है, अमर आपका, इसीलिये कहलाते बुद्ध।
भुवनत्रय के सुख संवर्द्धक, अतः तुम्हीं शंकर हो शुद्ध॥
मोक्ष-मार्ग के आद्य प्रवर्तक, अतः विधाता कहे गणेश।
तुम सम अवनी पर पुरुषोत्तम, और कौन होगा अखिलेश ॥२५॥

तीन लोक के दुःख हरण करने वाले हे तुम्हें नमन।
भूमण्डल के निर्मल-भूषण आदि जिनेश्वर तुम्हें नमन ॥
हे त्रिभुवन के अखिलेश्वर हो, तुमको बारम्बार नमन।
भवसागर के शोषक पोषक, भव्यजनों के तुम्हें नमन ॥२६॥

गुणसमूह एकत्रित होकर, तुझमें यदि पा चुके प्रवेश।
क्या आश्चर्य न मिल पाये हों, अन्य आश्रय उन्हें जिनेश ॥
देव कहे जाने वालों से, आश्रित होकर गर्वित दोष।
तेरी ओर न झाँक सकें वे, स्वप्नमात्र में हे गुण-कोष ॥२७॥

उन्नत तरु अशोक के आश्रित, निर्मल किरणोन्नत वाला।
रूप आपका दिपता सुन्दर, तमहर मनहर-छवि-वाला ॥

वितरण-किरण निकर तमहारक, दिनकर घनके अधिक समीप।
नीलाचल पर्वत पर होकर, नीरांजन करता ले दीप ॥२८॥

मणि-मुक्ता-किरणों से चित्रित, अद्‌भुत शोभित सिंहासन।
कान्तिमान कंचनसा दिखता, जिस पर तव कमनीय वदन॥
उदयाचल के तुंग शिखर से, मानो सहस्र रश्मि वाला।
किरण-जाल फैलाकर निकला, हो करने को उजियाला ॥२९॥

ढुरते सुन्दर चँवर विमल अति, नवल कुन्द के पुष्प-समान।
शोभा पाती देह आपकी, रौप्य धवल-सी आभावान॥
कनकाचल के तुंग शृंग से, झर-झर झरता है निर्झर।
चन्द्रप्रभा सम उछल रही हो, मानो उसके ही तट पर ॥३०॥

चन्द्रप्रभा सम झल्लरियों से, मणि-मुक्तामय अति कमनीय।
दीप्तिमान शोभित होते हैं, सिर पर छत्र-त्रय भवदीय ॥
ऊपर रहकर सूर्य-रश्मि का, रोक रहे हैं प्रखर प्रताप।
मानों वे घोषित करते हैं, त्रिभुवन के परमेश्वर आप ॥३१॥

ऊँचे स्वर से करने वाली, सर्व दिशाओं में गुञ्जन।
करने वाली तीन लोक के, जन-जन का शुभ-सम्मेलन॥
पीट रही है डंका, हो सत् धर्म-राज की जय-जय-जय।
इस प्रकार बज रही गगन में, भेरी तव यश की अक्षय ॥३२॥
कल्पवृक्ष के कुसुम मनोहर, पारिजात एवं मंदार।
गंधोदक की मंदवृष्टि करते हैं प्रमुदित देव उदार ॥
तथा साथ ही नभ से बहती, धीमी-धीमी मंद पवन।
पंक्ति बाँधकर बिखर रहे हों, मानों तेरे दिव्य वचन ॥३३॥

तीन लोक की सुन्दरता यदि, मूर्तिमान बनकर आये।
तन-भा-मंडल की छवि लखकर, तव सन्मुख शरमा जावे ॥
कोटि सूर्य के ही प्रताप सम, किन्तु नहीं कुछ भी आताप।
जिसके द्वारा चन्द्र सु-शीतल, होता निष्प्रभ अपने आप ॥३४॥

मोक्ष-स्वर्ग के मार्ग प्रदर्शक, प्रभुवर तेरे दिव्य-वचन।
करा रहे है 'सत्य-धर्म' के, अमर-तत्त्व का दिग्दर्शन ॥

सुनकर जग के जीव वस्तुतः, कर लेते अपना उद्धार।
इस प्रकार परिवर्तित होते, निज-निज भाषा के अनुसार ॥३५॥

जगमगात नख जिसमें शोभें, जैसे नभ में चन्द्रकिरण।
विकसित नूतन सरसीरुह सम, हे प्रभु तेरे विमल चरण ॥
रखते जहाँ वहीं रचते हैं, स्वर्ण-कमल, सुर दिव्य ललाम।
अभिनन्दन के योग्य चरण तव,भक्ति रहे उनमें अभिराम ॥३६॥

धर्म-देशना के विधान में, था जिनवर का जो ऐश्वर्य।
वैसा क्या कुछ अन्य कुदेवों, में भी दिखता है सौन्दर्य ॥
जो छवि घोर-तिमिर के नाशक, रवि में है देखी जाती।
वैसी ही क्या अतुल कान्ति, नक्षत्रों में लेखी जाती ॥३७॥

लोल कपोलों से झरती हैं, जहाँ निरन्तर मद की धार।
होकर अति मदमत्त कि जिस पर, करते हैं भौंरे गुँजार ॥
क्रोधासक्त हुआ यों हाथी, उद्धत ऐरावत-सा काल।
देख भक्त छुटकारा पाते, पाकर तव आश्रय तत्काल ॥३८॥

क्षत-विक्षत कर दिये गजों के, जिसने उन्नत गण्डस्थल।
कान्तिमान गज-मुक्ताओं से, पाट दिया हो अवनी-तल ॥
जिन भक्तों को तेरे चरणों के, गिरि की हो उन्नत ओट।
ऐसा सिंह छलांगे भरकर, क्या उस पर कर सकता चोट?॥३९॥

प्रलयकाल की पवन उड़ाकर, जिसे बढ़ा देती सब ओर।
फिकें फुलिंगे ऊपर तिरछे, अंगारों का भी होवे जोर ॥
भुवनत्रय को निगला चाहे, आती हुई अग्नि भभकार।
प्रभु के नाम-मंत्र-जल से वह, बुझ जाती है उसही बार ॥४०॥

कंठ-कोकिला सा अति काला, क्रोधित हो फण किया विशाल।
लाल-लाल लोचन करके यदि, झपटै नाग महा विकराल ॥
नाम-रूप तब अहि-दमनी का, लिया जिन्होंने हो आश्रय।
पग रख कर निश्शंक नाग पर, गमन करें वे नर निर्भय ॥४१॥

जहाँ अश्व की और गजों की, चीत्कार सुन पड़ती घोर।
शूरवीर नृप की सेनायें, रव करती हों चारों ओर ॥

वहाँ अकेला शक्तिहीन नर, जप कर सुन्दर तेरा नाम।
सूर्य तिमिर सम शूर-सैन्य का, कर देता है काम तमाम ॥४२॥

रण में भालों से वेधित गज, तन से बहता रक्त अपार।
वीर लड़ाकू जहँ आतुर हैं, रुधिर-नदी करने को पार ॥
भक्त तुम्हारा हो निराश तहँ, लख अरिसेना दुर्जयरूप।
तव पादारविन्द पा आश्रय, जय पाता उपहार-स्वरूप ॥४३॥

वह समुद्र कि जिसमें होवें, मच्छ मगर एवं घड़ियाल।
तूफां लेकर उठती होवें, भयकारी लहरें उत्ताल ॥
भ्रमर-चक्र में फँसे हुये हों, बीचोंबीच अगर जलयान।
छुटकारा पा जाते दुःख से, करने वाले तेरा ध्यान ॥४४॥

असहनीय उत्पन्न हुआ हो, विकट जलोदर पीड़ा भार।
जीने की आशा छोड़ी हो, देख दशा दयनीय अपार ॥
ऐसे व्याकुल मानव पाकर, तेरी पद-रज संजीवन।
स्वास्थ्य लाभ कर बनता उसका, कामदेव सा सुंदर तन ॥४५॥

लोह-शृंखला से जकड़ी है, नख से शिख तक देह समस्त।
घुटने-जंघे छिले बेड़ियों से, जो अधीर जो है अतित्रस्त ॥
भगवन ऐसे बंदीजन भी, तेरे नाम - मंत्र की जाप।
जप कर गत-बंधन हो जाते, क्षणभर में अपने ही आप ॥४६॥

वृषभेश्वर के गुण स्तवन का, करते निश-दिन जो चिंतन।
भय भी भयाकुलित हो उनसे, भग जाता है हे स्वामिन् ॥
कुंजर-समर-सिंह-शोक - रुज, अहि दावानल कारागार।
इनके अति भीषण दुःखों का, हो जाता क्षण में संहार ॥४७॥

हे प्रभु ! तेरे गुणोद्यान की, क्यारी से चुन दिव्य ललाम।
गूँथी विविध वर्ण सुमनों की, गुणमाला सुन्दर अभिराम ॥
श्रद्धासहित भविकजन जो भी कण्ठाभरण बनाते हैं।
मानतुंग-सम निश्चित सुन्दर, मोक्ष-लक्ष्मी पाते हैं ॥४८॥

❑❑❑

श्रीजिनसहस्त्रनामस्तोत्रम्

(प्रस्तावना)

स्वयम्भुवे नमस्तुभ्य, मुत्पाद्यात्मानमात्मनि।
स्वात्मनैव तथोद्भूत,- वृत्तयेऽचिन्त्य-वृत्तये ॥१॥

अन्वयार्थ—हे जिनेन्द्र! **(स्वात्मना एव)** अपने आत्मा के द्वारा ही **(आत्मनि)** अपने आत्मा में, **(आत्मानम्)** अपने स्वरूप को, **(उत्पाद्य)** उत्पन्न कर, **(तथोद्भूत-वृत्तये)** निश्चय-व्यवहाररूप प्रकट चरित्र वाले **[च—और]** **(अचिन्त्य-वृत्तये)** अन्तःकरण की अगोचर वृत्ति/अचिन्त्य माहात्म्य वाले **(स्वयम्भुवे)** स्वयम्भूस्वरूप **(तुभ्यं)** आपको **(नमः)** नमस्कार **[अस्तु]** हो।

नमस्ते जगतां पत्ये, लक्ष्मी-भर्त्रे नमोऽस्तु ते।
विदांवर नमस्तुभ्यं, नमस्ते वदतांवर ॥२॥

अन्वयार्थ—हे जिनेन्द्र! **(जगताम् पत्ये)** तीनों लोकों के स्वामी **(ते)** आपको **(नमः)** नमस्कार, **(लक्ष्मीभर्त्रे)** अंतरंग और बाह्य लक्ष्मी के स्वामी **(ते)** आपको **(नमः)** नमस्कार, **(विदाम् वर)** विद्वानों में श्रेष्ठ **(तुभ्यम्)** आपको **(नमः)** नमस्कार **[च—तथा]** **(हे वदताम् वर)** हे वक्ताओं के नायक **(ते)** आपको **(नमः)** नमस्कार **[अस्तु]** हो।

कर्म - शत्रुहणं देव,-मामनन्ति मनीषिणः।
त्वामानमत्सुरेण्मौलि,-भामालाभ्यर्चितक्रमम् ॥३॥

अन्वयार्थ—हे जिनेन्द्र! **(मनीषिणः)** विद्वज्जन **(देवम्)** देव आपको **(कर्म- शत्रुहणम्)** कर्मशत्रु का संहारकर्त्ता [च—तथा] **(त्वाम्)** आपको **(आनमत्सुरेण्मौलि-भामालाभ्यर्चित-क्रमम्)** नमस्कार करते हुए इन्द्रों के मुकुटों की कान्ति-परम्परा से पूजित चरण कमल वाले **(आमनन्ति)** मानते हैं।

ध्यान - द्रुघण-निर्भिन्न,-घन- घाति - महातरुः।
अनन्त-भव-सन्तान-, जयादासीरनन्तजित् ॥४॥

अन्वयार्थ—हे जिनेन्द्र! आप **(ध्यानद्रुघणनिर्भिन्नघनघातिमहातरुः)** शुक्ल-ध्यानरूपी कुठार के प्रहार से सघन घातिया कर्मरूपी महान् वृक्ष के छिन्न-भिन्न कर्त्ता **[अस्ति—हैं]** तथा **(अनन्तभवसन्तानजयात्)** अनन्तसंसार

की परम्परा के क्षय करने से/जीतने से **(अनन्तजित्)** अनन्तजित् **(आसीत्)** थे।

त्रैलोक्य - निर्जयावाप्त - दुर्दर्पमतिदुर्जयम्।
मृत्युराजं विजित्यासीज्जिन! मृत्युञ्जयो भवान् ॥५॥

अन्वयार्थ—(जिन) हे जिनेन्द्र! **(भवान्)** आप, **(त्रैलोक्यनिर्जयावाप्त-दुर्दर्पम्)** तीनों लोकों को सम्पूर्णरूप से जीत लेने से अतिशय अभिमानी **(अतिदुर्जयम्)** अतिशय अजेय, **(मृत्युराजम्)** काल को **(विजित्य)** जीतकर **(मृत्युञ्जयः)** मृत्यु को जीतने वाले **(आसीत्)** थे।

विधूताशेष - संसार, बन्धनो भव्य-बान्धवः।
त्रिपुरारिस्त्वमीशोऽसि, जन्म-मृत्यु-जरान्तकृत् ॥६॥

अन्वयार्थ—हे जिनेन्द्र! **(विधूताशेषसंसारबन्धनः)** अपने तथा भव्यों के समस्त बन्धनों के भेदक होने से आप विधूताशेष-संसार-बन्धन, **(भव्य-बान्धवः)** भव्य-बन्धु तथा **(जन्ममृत्युजरान्तकृत्)** जन्म, मृत्यु, जरा के नाशक होने से **(त्वम्)** आप **(एव)** ही **(त्रिपुरारिः)** त्रिपुरारि **(असि)** हैं।

त्रिकाल-विषयाशेष- तत्त्व - भेदात् त्रिधोत्थितम्।
केवलाख्यं दधच्चक्षुस्त्रिनेत्रोऽसि त्वमीशितः ॥७॥

अन्वयार्थ—(ईशितः) हे जिनेन्द्र! आप **(त्रिकालविषयाशेषतत्त्वभेदात्)** त्रिकाल-गोचर समस्त तत्त्वों के भेद से **(त्रिधा उत्थितम्)** उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य रूप तीन प्रकार से उत्पन्न हुए **(केवलाख्यम्)** केवलज्ञाननामक **(चक्षुः)** नेत्र को **(दधत्)** धारण करते हुए **(त्रिनेत्रः)** त्रिनेत्रनाम धारक **(असि)** हैं।

त्वामन्धकान्तकं प्राहु, र्मोहान्धासुर - मर्दनात्।
अर्द्धं ते नारयो यस्मादर्ध-नारीश्वरोऽस्यतः ॥८॥

अन्वयार्थ—हे जिनेन्द्र! **[महर्षयः—महर्षिजन] (मोहान्धासुरमर्दनात्)** मोहरूप अन्धासुर के नाशक होने से **(त्वाम्)** आपको **(अन्धकान्तम्)** अन्धकान्तक **(प्राहुः)** कहते हैं **[च—और] (यस्मात्)** जिस कारण से **(ते)** आपके **(अर्द्धम्)** आधे **(अरयः)** कर्मरूप शत्रु **(न)** नहीं **[सन्ति—है] (अतः)** इससे **(त्वम्)** तुम **(अर्धनारीश्वरः)** अर्धनारीश्वर **(असि)** हो।

शिवः शिव-पदाध्यासाद्, दुरितारि - हरो हरः।
शङ्करः कृतशं लोके, शम्भवस्त्वं भवन्सुखे ॥९॥

अन्वयार्थ—हे जिनेन्द्र! आप **(शिवपदाध्यासात्)** मोक्षस्थान में निवास करने से **(शिवः)** शिव **(दुरितारिहरः)** पापरूप शत्रुओं के नाशक होने से **(हरः)** हर **(लोके)** लोक में **(कृतशम्)** आनन्ददायक होने से **(शङ्करः)** शंकर [च—और] **(सुखे)** सुख में **(भवन्)** उत्पन्न होने से **(शम्भवः)** शम्भव [कथ्यते] कहे जाते हैं।

वृषभोऽसि जगज्ज्येष्ठः, पुरुः पुरु- गुणोदयैः।
नाभेयो नाभि-सम्भूतेरिक्ष्वाकु-कुल-नन्दनः॥१०॥

अन्वयार्थ—हे जिनेन्द्र! आप **(जगज्ज्येष्ठः)** जगत् में श्रेष्ठ होने के कारण **(वृषभः)** वृषभ, **(पुरुगुणोदयैः)** महान् गुणों को उत्पन्न करने से **(पुरुः)** पुरु, **(नाभि-सम्भूतेः)** महाराज नाभिराज के सुपुत्र होने से **(नाभेयः)** नाभेय [तथा] **(इक्ष्वाकुकुलनन्दनः)** इक्ष्वाकुकुलनन्दन [अस्ति] कहलाते हैं।

त्वमेकः पुरुष - स्कन्धस्त्वं द्वे लोकस्य लोचने।
त्वं त्रिधा बुद्ध-सन्मार्गस्त्रिज्ञस्त्रि-ज्ञान-धारकः॥११॥

अन्वयार्थ—हे जिनेन्द्र! **(एकः)** एक **(त्वम्)** तुम [एव—ही] **(पुरुषस्कन्धः)** पुरुषोत्तम **(लोकस्य)** जनता के **(द्वे लोचने)** दो नेत्रस्वरूप **(त्रिधा)** सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र रूप **(बुद्ध-सन्मार्गः)** मोक्षमार्ग के ज्ञाता होने से **(त्रिज्ञः)** त्रिज्ञ [तथा] **(त्रिज्ञानधारकः)** त्रिलोक वा त्रिकाल के ज्ञानधारक होने से त्रिज्ञानधारक [कथ्यते—कहे जाते हो।]

चतुःशरण - माङ्गल्य, - मूर्तिस्त्वं चतुरस्त्रधीः।
पञ्च-ब्रह्ममयो देव!, पावनस्त्वं पुनीहि माम् ॥१२॥

अन्वयार्थ—(देव) हे जिनेन्द्र! **(त्वम्)** आप [एव—ही] **(चतुःशरण-माङ्गल्य-मूर्तिः)** अरिहन्त, सिद्ध, साधु, केवलिप्रणीत धर्मरूप शरण चतुष्टय तथा मंगलचतुष्टय की मूर्तिरूप **(चतुरस्त्रधीः)** द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव रूप से समस्त पदार्थों के ज्ञाता होने से चतुरस्त्रधी **(पञ्च-ब्रह्ममयः)** पञ्चपरमेष्ठिस्वरूप [तथा] **(पावनः)** परम पवित्र **[असि—हो]** अतः **(माम्)** मुझको **(पुनीहि)** पवित्र करो।

स्वर्गावतरणे तुभ्यं, सद्योजातात्मने नमः।
जन्माभिषेक-वामाय, वामदेव नमोऽस्तु ते ॥१३॥

अन्वयार्थ—हे जिनेन्द्र! **(स्वर्गावतरणे)** स्वर्ग से अवतरण के समय **(सद्यो-जातात्मने)** तत्काल उत्पन्न होने वाले **(तुभ्यम्)** आपको **(नमः)** नमस्कार [अस्तु—हो] तथा **(वामदेव)** हे अनुपम-सौन्दर्य-सम्पूर्ण! **(जन्माभिषेक-वामाय)** जन्माभिषेक के समय अतिशय-सौन्दर्य-सम्पन्न **(ते)** आपको **(नमः)** नमस्कार [अस्तु] हो।

सन्निष्क्रान्तावघोराय, परं प्रशममीयुषे।
केवलज्ञान-संसिद्धावीशानाय नमोऽस्तु ते ॥१४॥

अन्वयार्थ—हे जिनेन्द्र! **(परम् प्रशमम्)** विशेष उपशान्तकषाय/उत्कृष्ट क्षमा भाव को **(ईयुषे)** प्राप्त, अतः **(सन्निष्क्रान्तावघोराय)** दीक्षा के समय परम प्रशान्त मुद्रा के धारक तथा **(केवलज्ञानसंसिद्धौ)** केवलज्ञान की उपलब्धि होने पर **(ईशानाय)** सर्वशक्तिमान ईश्वर **(ते)** आपको **(नमः)** नमस्कार [अस्तु] हो।

पुरस्तत्पुरुषत्वेन, विमुक्ति - पद - भाजिने।
नमस्तत्पुरुषावस्थां, भाविनीं तेऽद्य बिभ्रते ॥१५॥

अन्वयार्थ—हे जिनेन्द्र! **(पुरः)** भविष्य में **(तत्पुरुषत्वेन)** शुद्ध आत्मस्वरूप के द्वारा **(विमुक्तिपदभाजिने)** सिद्धावस्था के पात्र [तथा] **(अद्य)** अभी **(भाविनीम्)** आगामी **(तत्पुरुषावस्थाम्)** सिद्धावस्था को, **(बिभ्रते)** धारण करने वाले **(ते)** आपको **(नमः)** नमस्कार [अस्तु] हो।

ज्ञानावरण - निर्ह्रासान्नमस्तेऽनन्त - चक्षुषे।
दर्शनावरणोच्छेदान्नमस्ते विश्वदृश्वने ॥१६॥

अन्वयार्थ—हे जिनेन्द्र! **(ज्ञानावरणनिर्ह्रासात्)** ज्ञानावरणकर्म के क्षय से **(अनन्त-चक्षुषे)** अनन्तज्ञानी तथा **(दर्शनावरणोच्छेदात्)** दर्शनावरणकर्म के क्षय से **(विश्वदृश्वने)** विश्वदृश्वा **(ते)** आपको **(नमः)** नमस्कार [अस्तु] हो।

नमो दर्शन - मोहघ्ने, क्षायिकामल-दृष्टये।
नमश्चारित्र - मोहघ्ने, विरागाय महौजसे ॥१७॥

अन्वयार्थ—हे जिनेन्द्र! **(दर्शनमोहघ्ने)** दर्शनमोहनीय के नाशक **(क्षायिका-**

मलदृष्टये) क्षायिक सम्यग्दर्शन के धारक **(चारित्रमोहघ्ने)** चारित्रमोहनीय कर्म के नाशक **(विरागाय)** वीतराग तथा **(महौजसे)** अतिशय तेजस्वी **(ते)** आपको **(नमः)** नमस्कार [अस्तु] हो।

नमस्तेऽनन्त - वीर्याय, नमोऽनन्त - सुखात्मने।
नमस्तेऽनन्त-लोकाय, लोकालोकावलोकिने ॥१८॥

अन्वयार्थ—हे जिनेन्द्र! **(अनन्तवीर्याय)** अनन्तशक्ति के धारक **(अनन्त-सुखात्मने)** अनन्तसुख स्वरूप **(अनन्तलोकाय)** अनन्तदर्शन सहित तथा **(लोका-लोकावलोकिने)** लोक और अलोक के ज्ञाता **(ते)** आपको **(नमः)** नमस्कार [अस्तु] हो।

नमस्तेऽनन्त - दानाय, नमस्तेऽनन्त-लब्धये।
नमस्तेऽनन्त - भोगाय, नमोऽनन्तोपभोगिने ॥१९॥

अन्वयार्थ—हे जिनेन्द्र! **(अनन्तदानाय)** अनन्तदानगुण सहित **(अनन्त-लब्धये)** अनन्त लब्धियों के धारक **(अनन्तभोगाय)** अनन्त भोगों के भोक्ता तथा **(अनन्तोपभोगिने)** अनन्त उपभोगों के उपभोक्ता **(ते)** आपको **(नमः)** नमस्कार [अस्तु] हो।

नमः परमयोगाय, नमस्तुभ्यमयोनये।
नमः परमपूताय, नमस्ते परमर्षये ॥२०॥

अन्वयार्थ—हे जिनेन्द्र! **(परमयोगाय)** परमध्यानी **(अयोनये)** चौरासी लाख योनियों से रहित **(परमपूताय)** परम पवित्र तथा **(परमर्षये)** सर्वोत्कृष्ट ऋषिरूप **(ते)** आपको **(नमः)** नमस्कार [अस्तु] हो।

नमः परमविद्याय, नमः पर-मतच्छिदे।
नमः परम-तत्त्वाय, नमस्ते परमात्मने ॥२१॥

अन्वयार्थ—हे जिनेन्द्र! **(परमविद्याय)** केवलज्ञान रूप परम विद्या वाले **(पर-मतच्छिदे)** अन्य एकान्तमतों के उच्छेदक **(परमतत्त्वाय)** परम आत्मतत्त्वस्वरूप तथा **(परमात्मने)** परमात्मस्वरूप **(ते)** आपको **(नमः)** नमस्कार [अस्तु] हो।

नमः परम - रूपाय, नमः परम-तेजसे।
नमः परम-मार्गाय,नमस्ते परमेष्ठिने ॥२२॥

अन्वयार्थ—हे जिनेन्द्र! **(परमरूपाय)** अतिशय सुन्दर **(परमतेजसे)** अति

तेजस्वी **(परममार्गाय)** मोक्षमार्ग स्वरूप तथा **(परमेष्ठिने)** परम पद में स्थित **(ते)** आपको **(नमः)** नमस्कार [अस्तु] हो।

परमर्द्धिजुषे धाम्ने, परमज्योतिषे नमः।
नमः पारेतमः प्राप्तधाम्ने परतरात्मने ॥२३॥

अन्वयार्थ—हे जिनेन्द्र! **(परमर्द्धिजुषे)** सर्वोत्कृष्ट ऋद्धियुक्त मोक्षस्थान के अधिवासी **(धाम्ने)** अतितेजस्वी **(परमज्योतिषे)** उत्कृष्ट ज्योतिस्वरूप **(पारेतमः प्राप्तधाम्ने)** अज्ञानरूप अन्धकार से मुक्त तेजपुञ्ज तथा **(परतरात्मने)** श्रेष्ठ आत्मस्वरूप **(ते)** आपको **(नमः)** नमस्कार [अस्तु] हो।

नमः क्षीण-कलङ्काय, क्षीण-बन्ध! नमोऽस्तु ते।
नमस्ते क्षीण-मोहाय, क्षीण-दोषाय ते नमः ॥२४॥

अन्वयार्थ—**(क्षीणबन्ध)** कर्मबन्ध विहीन हे जिनेन्द्र! **(क्षीणकलङ्काय)** कर्म-कलंकमुक्त **(क्षीणमोहाय)** मोहनीय कर्म विमुक्त तथा **(क्षीणदोषाय)** दोष-विहीन **(ते)** आपको **(नमः)** नमस्कार [अस्तु] हो।

नमः सुगतये तुभ्यं, शोभनां गतिमीयुषे।
नमस्तेऽतीन्द्रियज्ञान-सुखायानिन्द्रियात्मने ॥२५॥

अन्वयार्थ—हे जिनेन्द्र! **(सुगतये)** मुक्तिरूप शुभगति को प्राप्त **(शोभनाम् गतिम्)** प्रशस्त सिद्धगति को प्राप्त **(अतीन्द्रियज्ञान सुखाय)** अतीन्द्रियज्ञान और सुख के धारक तथा **(अनिन्द्रियात्मने)** अतीन्द्रिय आत्मस्वरूप **(ते)** आपको **(नमः)** नमस्कार [अस्तु] हो।

काय-बन्धन - निर्मोक्षा,-दकायाय नमोऽस्तु ते।
नमस्तुभ्यमयोगाय, योगिनामधियोगिने ॥२६॥

अन्वयार्थ—हे जिनेन्द्र! **(कायबन्धननिर्मोक्षाद्)** शरीररूप बन्धन से छूट जाने से **(अकायाय)** अशरीर **(अयोगाय)** मन, वचन, काय रूप योगों से रहित तथा **(योगिनाम्)** योगियों के **(अधियोगिने)** प्रमुख **(ते)** आपको **(नमः)** नमस्कार [अस्तु] हो।

अवेदाय नमस्तुभ्य, मकषायाय ते नमः।
नमः परम-योगीन्द्र,वन्दिताङ्घ्रि-द्वयाय ते ॥२७॥

अन्वयार्थ—हे जिनेन्द्र! **(अवेदाय)** स्त्री, पुरुष, नपुंसक तीनों वेदों से रहित

(अकषायाय) कषायों से विहीन तथा **(परमयोगीन्द्रवन्दिताङ्घ्रद्वयाय)** महान् योगीश्वरों के द्वारा जिनके चरणयुगल वन्दित हैं ऐसे **(ते)** आपको **(नमः)** नमस्कार [अस्तु] हो।

नमः परम - विज्ञान!, नमः परम - संयम!
नमः परम - दृग्दृष्ट, परमार्थाय ते नमः ॥२८॥

अन्वयार्थ—हे जिनेन्द्र! **(परमविज्ञान)** श्रेष्ठविज्ञानरूप, **(परमसंयम)** श्रेष्ठ संयम रूप तथा **(परमदृक्)** परमार्थ के दृष्टा **(परमार्थाय)** परमार्थ के **(तायिने)** ज्ञाता हे जिनेन्द्र! **(ते)** आपको **(नमः)** नमस्कार [अस्तु] हो।

नमस्तुभ्यमलेश्याय, शुक्ललेश्यांशक - स्पृशे।
नमो भव्येतरावस्था-व्यतीताय विमोक्षिणे ॥२९॥

अन्वयार्थ—हे जिनेन्द्र! **(अलेश्याय)** लेश्याओं से रहित **(शुक्ल-लेश्यांशक-स्पृशे)** शुक्ललेश्या के अंशयुक्त **(भव्येतरावस्थाव्यतीताय)** भव्य और अभव्य दोनों अवस्थाओं से रहित तथा **(विमोक्षिणे)** मुक्तरूप **(तुभ्यम्)** आपको **(नमः)** नमस्कार हो।

संज्ञ्यसंज्ञिद्वयावस्था, - व्यतिरिक्तामलात्मने।
नमस्ते वीतसंज्ञाय, नमः क्षायिक - दृष्टये ॥३०॥

अन्वयार्थ—हे जिनेन्द्र! **(संज्ञ्यसंज्ञिद्वयावस्थाव्यतिरिक्तामलात्मन)** संज्ञी तथा असंज्ञीरूप दोनों अवस्थाओं से रहित निर्मल शुद्ध आत्मा के धारक **(वीतसंज्ञाय)** आहारादि संज्ञाओं से रहित तथा **(क्षायिकदृष्टये)** क्षायिकसम्यक्त्वी **(ते)** आपको **(नमः)** नमस्कार [अस्तु] हो।

अनाहाराय तृप्ताय, नमः परम-भाजुषे।
व्यतीताशेषदोषाय, भवाब्धेः पारमीयुषे ॥३१॥

अन्वयार्थ—हे जिनेन्द्र! **(अनाहाराय)** आहाररहित **(तृप्ताय)** परमसंतुष्ट **(परम-भाजुषे)** अतिशय कान्तियुक्त **(व्यतीताशेषदोषाय)** अठारह दोषों से रहित **(भवाब्धेः)** संसारसिन्धु के **(पारम् ईयुषे)** पार को प्राप्त **(ते)** आपको **(नमः)** नमस्कार [अस्तु] हो।

अजराय नमस्तुभ्यं, नमस्तेस्तादजन्मने।
अमृत्यवे नमस्तुभ्य-मचलायाक्षरात्मने ॥३२॥

अन्वयार्थ—हे जिनेन्द्र! **(अजराय)** बुढ़ापा/जरारहित **(स्तादजन्मने)**

जन्मरहित **(अमृत्यवे)** मृत्युरहित **(अचलाय)** अचल तथा **(अक्षरात्मने)** अविनश्वर **(तुभ्यम्)** आपको **(नमः)** नमस्कार [अस्तु] हो।

अलमास्तां गुणस्तोत्र, मनन्तास्तावका गुणाः।
त्वां नामस्मृतिमात्रेण, पर्युपासिसिषामहे ॥३३॥

अन्वयार्थ—हे जिनेन्द्र! **(गुणस्तोत्रम्)** आपके गुणों का कथन **(अलम् आस्ताम्)** पूर्णता को प्राप्त हो [यतः—क्योंकि] **(तावकाः गुणाः)** आपके गुण **(अनन्ताः)** अनन्त [सन्ति—हैं] इसलिए हम आपको **(नामस्मृतिमात्रेण)** नामों के स्मरणमात्र से **(पर्युपासिसिषामहे)** उपासना करते हैं।

एवं स्तुत्वा जिनं देवं, भक्त्या परमया सुधीः।
पठेदष्टोत्तरं नाम्नां, सहस्रं पाप-शान्तये ॥३४॥

अन्वयार्थ—**(परमया भक्त्या)** उत्कृष्ट भक्ति से **(जिनं देवम्)** जिनेन्द्रदेव की **(एवम्)** इस प्रकार **(स्तुत्वा)** स्तुति करके **(सुधीः)** बुद्धिमान् मनुष्य **(पापशान्तये)** पापों के क्षय के लिए **(सहस्रं अष्टोत्तरं नाम्नाम्)** एक हजार आठ नामों को **(पठेत्)** निरन्तर पढ़ें।

इति जिनसहस्रनामस्तोत्रप्रस्तावना

❑ ❑ ❑

प्रथमशतकम्

प्रसिद्धाष्ट - सहस्रेद्ध,- लक्षणं त्वां गिरां पतिम्।
नाम्नामष्टसहस्रेण, तोष्टुमोऽभीष्टसिद्धये ॥१॥

अर्थ—आपके एक हजार आठ लक्षण प्रसिद्ध हैं, आप वाणी के स्वामी हैं, इसलिए हम लोग भी अपने इष्ट (आत्म-तत्त्व) की सिद्धि के लिए एक हजार आठ नामों से आपकी स्तुति करते हैं।

श्रीमान् स्वयम्भूर्वृषभः शम्भवः शम्भुरात्मभूः।
स्वयम्प्रभः प्रभुर्भोक्ता विश्वभूरपुनर्भवः ॥२॥

अर्थ—१. श्रीमान्—अनन्तचतुष्टयरूप अंतरंग लक्ष्मी एवं समवसरणरूप बहिरंग लक्ष्मी से सहित होने से। **२. स्वयम्भूः**—बिना किसी गुरु की सहायता के स्वयं ही ज्ञानी बुद्ध तथा दीक्षित होने से। **३.वृषभः**—वृष अर्थात् धर्म से सुशोभित होने से। **४. शंभवः**—आपके द्वारा संसार के अनेक प्राणियों को सुख प्राप्त हुआ है इसलिए शंभव है। **५. शम्भुः**—परमानन्द

रूप मोक्ष सुख को देने वाले होने से। **६. आत्मभूः**—अपने ही द्वारा उत्कृष्ट अरिहंत दशा को प्राप्त करने वाले होने से। **७. स्वयम्प्रभः**—स्वयं ही प्रकाशमान होने से। **८. प्रभुः**—सबके स्वामी अथवा समर्थ होने से। **९. भोक्ताः**—आत्मा से उत्पन्न अनन्त सुख का उपभोग करने वाले होने। **१०. विश्वभूः**—ध्यानादि के द्वारा सर्वत्र प्रत्यक्ष रूप में प्रकट होने से। **११. अपुनर्भवः**—पुनः संसार में उत्पन्न नहीं होने से।

विश्वात्मा विश्वलोकेशो विश्वतश्चक्षुरक्षरः।
विश्वविद् विश्वविद्येशो विश्वयोनिरनश्वरः ॥३॥

अर्थ—१२. विश्वात्मा—विश्व के समस्त पदार्थ आत्मा में प्रतिबिम्बित होने से। **१३. विश्वलोकेशः**—समस्त लोक के स्वामी होने से। **१४. विश्व-तश्चक्षुः**—ज्ञान-दर्शनरूपी नेत्र के द्वारा सम्पूर्ण लोक में व्याप्त से। **१५. अक्षरः**—अविनाशी, कभी नष्ट न होने से। **१६. विश्ववित्**—समस्त पदार्थों के ज्ञाता होने से। **१७. विश्वविद्येशः**—समस्त विद्याओं के स्वामी होने से। **१८. विश्वयोनिः**—समस्त पदार्थों की उत्पत्ति अर्थात् यथार्थ ज्ञान का कारण होने से। **१९. अनश्वरः**—आपके स्वरूप का कभी नाश नहीं होने से।

विश्वदृश्वा विभुर्धाता विश्वेशो विश्वलोचनः।
विश्वव्यापी विधुर्वेधाः शाश्वतो विश्वतोमुखः ॥४॥

अर्थ—२०. विश्वदृश्वा—समस्त लोकालोक को देखने वाले होने से। **२१. विभुः**—परमोत्कृष्ट विभूति से सहित होने से। **२२.धाता**—सब जीवों का पोषण/रक्षा करने वाले होने से। **२३. विश्वेशः**—जगत् के ईश्वर होने से। **२४. विश्व-लोचनः**—सब जीवों के नेत्रों के समान होने से। **२५. विश्वव्यापी** —समुद्घात अवस्था में, ज्ञान के द्वारा समस्त लोक में फैले होने से। **२६.विधुः**—केवलज्ञान किरणों से मोहान्धकार का पान करने वाले होने से। **२७. वेधाः**—धर्म रूप जगत् की सृष्टि/रचना करने वाले होने से। **२८. शाश्वतः**—सदा विद्यमान रहने से। **२९. विश्वतोमुखः**—समवसरण में चारों ओर मुख देखने से।

विश्वकर्मा जगज्ज्येष्ठो विश्वमूर्तिर्जिनेश्वरः।
विश्वदृग्विश्वभूतेशो विश्वज्योतिरनीश्वरः ॥५॥

अर्थ—३०.विश्वकर्मा—असि-मसि आदि कर्मों का उपदेश देने से। **३१. जगज्ज्येष्ठः**—जगत् के समस्त प्राणियों में श्रेष्ठ होने से। **३२. विश्व-मूर्तिः**—समस्त पदार्थों के आकार आपके ज्ञान में झलकते हैं/ प्रतिफलित होने से। **३३. जिनेश्वरः**—सम्यग्दृष्टि आदि जीवों के ईश्वर होने से। **३४. विश्वदृक्**—समस्त जगत् को देखने वाले होने से। **३५. विश्व-भूतेशः**—समस्त प्राणियों के ईश्वर होने से। **३६. विश्वज्योतिः**—आपकी केवलज्ञान रूपी ज्योति अखिल विश्व में व्याप्त होने से। **३७. अनीश्वरः**—आपका कोई दूसरा स्वामी अथवा ईश्वर न होने से।

जिनो जिष्णुरमेयात्मा विश्वरीशो जगत्पतिः।
अनन्तजिदचिन्त्यात्मा भव्य - बन्धुरबन्धनः ॥६॥

अर्थ—३८. जिनः—घातियाकर्मरूपी शत्रु को जीतने वाले होने से। **३९. जिष्णुः**—कर्मरूपी शत्रु को जीतना ही स्वभाव/शील होने से। **४०. अमेयात्मा**—आपके अनन्त गुणों को कोई नहीं जान सका इसलिए। **४१. विश्वरीशः**—सम्पूर्ण पृथ्वी के ईश/स्वामी होने से। **४२. जगत्पतिः**—तीनों लोकों के स्वामी होने से। **४३. अनन्तजित्**—अनन्त संसार का कारण मिथ्यात्व को जीतने वाले होने से। **४४. अचिन्त्यात्मा**—आपकी आत्मा का चिंतन मन से भी नहीं होने से। **४५. भव्यबन्धुः**—भव्य जीवों के हितैषी होने से। **४६. अबन्धनः**—कर्म बन्धन से रहित होने से।

युगादिपुरुषो ब्रह्मा पञ्चब्रह्ममयः शिवः।
परः परतरः सूक्ष्मः परमेष्ठी सनातनः ॥७॥

अर्थ—४७. युगादिपुरुषः—कर्मभूमि रूपी युग के प्रारम्भ में जन्म लेने वाले होने से। **४८. ब्रह्मा**—केवलज्ञान आदि गुणों की वृद्धि से युक्त होने से। **४९. पञ्च-ब्रह्ममयः**—पञ्चपरमेष्ठीस्वरूप होने से। **५०. शिवः**—सदा परमानन्द में लीन रहने से अथवा सबका कल्याण करने वाले होने से। **५१. परः**—जीवों को मोक्ष स्थान में पहुँचाने वाले होने से। **५२. परतरः**—धर्मोपदेशक एवं सर्वश्रेष्ठ होने से। **५३. सूक्ष्मः**—इन्द्रियों के द्वारा आप जाने नहीं जा सकते इसलिए। **५४. परमेष्ठी**— इन्द्रादिकों के द्वारा पूज्य परम पद में स्थित होने से। **५५. सनातनः**—सदा एक से ही विद्यमान रहने से।

स्वयंज्योतिरजोऽजन्मा ब्रह्म - योनिरयोनिजः।
मोहारिविजयी जेता धर्मचक्री दयाध्वजः ॥८॥

अर्थ—५६. स्वयंज्योतिः—आप स्वयं प्रकाशमान/ज्योति रूप होने से। **५७. अजः**—संसार में उत्पन्न नहीं होने वाले होने से। **५८. अजन्मा**—जन्म रहित होने से। **५९. ब्रह्मयोनिः**—ब्रह्म अर्थात् द्वादशांगरूप वेद की उत्पत्ति के कारण होने से। **६०. अयोनिजः**—चौरासी लाख योनियों में उत्पन्न नहीं होने से। **६१. मोहारिविजयी**—मोहनीय कर्म रूप शत्रु पर विजय प्राप्त करने वाले होने से। **६२. जेता**—सर्वदा, सर्वोत्कृष्ट रूप से विद्यमान रहने से। **६३. धर्मचक्री** —धर्मचक्र का प्रवर्तन कराने वाले होने से। **६४. दयाध्वजः**—दयारूपी ध्वजा को धारण करने वाले होने से।

प्रशान्तारिरनन्तात्मा योगी योगीश्वरार्चितः।
ब्रह्मविद् ब्रह्मतत्त्वज्ञो ब्रह्मोद्याविद्यतीश्वरः ॥९॥

अर्थ—६५. प्रशान्तारिः—आपके कर्मरूपी शत्रु शांत हो गए हैं, इसलिए। **६६. अनन्तात्मा**—अनन्त गुणों से युक्त आत्मा वाले होने से। **६७. योगी**—मन, वचन, काय रूप योगों का निरोध करने वाले होने से। **६८. योगीश्वरार्चितः**—गणधरादि योगीश्वरों के द्वारा पूजित होने से। **६९. ब्रह्मवित्**—आत्मा का स्वरूप जानने वाले होने से। **७०. ब्रह्मतत्त्वज्ञः**—आत्म तत्त्व का रहस्य जानने वाले होने से। **७१. ब्रह्मोद्यावित्**—आत्म विद्या के जानकर होने से। **७२. यतीश्वरः**—यतियों में भी श्रेष्ठ होने से।

शुद्धो बुद्धः प्रबुद्धात्मा सिद्धार्थः सिद्धशासनः।
सिद्धः सिद्धान्तविद्ध्येयः सिद्धसाध्यो जगद्धितः ॥१०॥

अर्थ—७३. शुद्धः—कर्म-मल से रहित होने से। **७४. बुद्धः**—सबको जानने वाली केवलज्ञान रूपी बुद्धि युक्त होने से। **७५. प्रबुद्धात्मा**—आत्मा का स्वरूप जानने वाले होने से। **७६. सिद्धार्थः**—मोक्ष पुरुषार्थ को सिद्ध करने वाले होने से। **७७. सिद्धशासनः**—आपका शासन सिद्ध अर्थात् प्रसिद्ध होने से। **७८. सिद्धः**—शीघ्र ही सिद्ध पद को प्राप्त करने वाले होने से। **७९. सिद्धान्तविद्**—द्वादशांग रूप सिद्धान्त के पारगामी/ज्ञाता होने से। **८०. ध्येयः**—योगी जनों के ध्यान योग्य होने से। **८१. सिद्धसाध्यः**—समस्त साध्य अर्थात् करने योग्य कार्यों को सिद्ध करने वाले होने से। **८२.**

जगद्धितः—जगत् का हित करने वाले होने से।

सहिष्णुरच्युतोऽनन्तः प्रभविष्णुर्भवोद्भवः।
प्रभूष्णुरजरोऽजर्यो भ्राजिष्णुर्धीश्वरोऽव्ययः ॥११॥

अर्थ—८३. सहिष्णुः—सहनशील होने से। **८४. अच्युतः**—ज्ञानादिगुणों से कभी च्युत न होने से। **८५. अनन्तः**—अन्त/विनाश रहित होने से। **८६. प्रभविष्णुः**—प्रभावशाली होने से। **८७. भवोद्भवः**—संसार में आपका जन्म सबसे उत्कृष्ट माना गया है इसलिए। **८८. प्रभूष्णुः**—शक्तिशाली होने से। **८९. अजरः**—बुढ़ापा रहित होने से। **९०. अजर्यः**—कभी जीर्ण नहीं होने से। **९१. भ्राजिष्णुः**—ज्ञानादि गुणों से अतिशय दैदीप्यमान होने से। **९२. धीश्वरः**—पूर्ण बुद्धि के ईश्वर होने से। **९३. अव्ययः**—सदा अविनश्वर होने से।

विभावसुरसम्भूष्णुः स्वयम्भूष्णुः पुरातनः।
परमात्मा परंज्योतिस्त्रिजगत्परमेश्वरः ॥१२॥

अर्थ—९४. विभावसुः—कर्मरूपी ईंधन को जलाने वाले होने से। **९५. असंभूष्णुः**—संसार में पुनः उत्पन्न नहीं होने से। **९६. स्वयम्भूष्णुः**—अपने आप ही प्रकाशित होने से। **९७. पुरातनः**—द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा अनादि सिद्ध होने से। **९८. परमात्मा**—अति उत्कृष्ट आत्मा होने से। **९९. परमज्योतिः**—उत्कृष्ट ज्योति स्वरूप होने से। **१००. त्रिजगत्परमेश्वरः**—तीनों लोक के ईश्वर होने से।

॥ इति श्रीमदादिशत नाम धारक जिनेभ्यो नमो नमः ॥१॥

❑ ❑ ❑

द्वितीयशतकम्

दिव्यभाषापतिर्दिव्यः पूतवाक्पूतशासनः।
पूतात्मा परम - ज्योतिर्धर्माध्यक्षो दमीश्वरः ॥१॥

अर्थ—१. दिव्यभाषापतिः—दिव्यध्वनि के स्वामी होने से। **२. दिव्यः**—अत्यन्त सुंदर होने से। **३. पूतवाक्**—अत्यन्त पवित्र वचनों के धारी होने से। **४. पूतशासनः** —आपका शासन पवित्र होने से। **५. पूतात्मा**—पवित्र आत्मा होने से। **६. परमज्योतिः**—उत्कृष्ट ज्योति स्वरूप होने से। **७. धर्माध्यक्षः**—धर्म के अधिकारी होने से। **८. दमीश्वरः**—इन्द्रियों को जीतने

वालों में श्रेष्ठ होने से।

श्रीपतिर्भगवानर्हन्नरजा विरजाः शुचिः।
तीर्थकृत्केवलीशानः पूजार्हः स्नातकोऽमलः ॥२॥

अर्थ—९. श्रीपतिः—मोक्षरूपी लक्ष्मी के अधिपति होने से। **१०. भगवान्**—उत्तम ऐश्वर्य से सहित होने से। **११. अर्हन्**—सबके द्वारा पूज्य होने से। **१२. अरजाः**—कर्मरूपी रज/धूल से रहित होने से। **१३. विरजाः**—भव्यजीवों के कर्मरूपी धूल को दूर करने वाले होने से। **१४. शुचिः**—अतिशय पवित्र होने से। **१५. तीर्थकृत्**—धर्म तीर्थ को करने वाले होने से। **१६. केवली**—केवलज्ञान गुण के धारी होने से। **१७. ईशानः**—अनन्त शक्तिमान होने से। **१८. पूजार्हः**—पूजा के योग्य होने से। **१९. स्नातकः**—पूर्ण ज्ञानी होने से। **२०. अमलः**—मल रहित शरीर के धारी होने से।

अनन्त - दीप्तिर्ज्ञानात्मा स्वयम्बुद्धः प्रजापतिः।
मुक्तः शक्तो निराबाधो निष्कलो भुवनेश्वरः ॥३॥

अर्थ—२१. अनन्तदीप्तिः—शरीर की कांति अपरिमित होने से। **२२. ज्ञानात्मा**— ज्ञानस्वरूप होने से। **२३. स्वयम्बुद्धः**—बिना गुरु के महाज्ञानी होने से। **२४. प्रजापतिः**—समस्त जन समूह के रक्षक होने से। **२५. मुक्तः**—कर्मरूप बन्धन से रहित होने से। **२६. शक्तः**—अनन्त बल से सम्पन्न होने से। **२७. निराबाधः**— बाधा रहित होने से। **२८. निष्कलः**—शरीर रहित होने से। **२९. भुवनेश्वरः**—तीन लोक के ईश्वर होने से।

निरञ्जनो जगज्ज्योतिर्निरुक्तोक्तिर्निरामयः।
अचलस्थितिरक्षोभ्यः कूटस्थः स्थाणुरक्षयः ॥४॥

अर्थ—३०.निरञ्जनः—कर्मरूपी अंजन से रहित होने से। **३१. जगज्ज्योतिः**—जगत् को प्रकाशित करने वाले होने से। **३२. निरुक्तोक्तिः**—पूर्वापर विरोध से रहित वचन वाले होने से। **३३. निरामयः**—रोग रहित होने से। **३४. अचल-स्थितिः**—चंचलता रहित स्थिर अचल, अवस्था वाले होने से। **३५. अक्षोभ्यः**—कभी क्षोभ (अशांतपना) को प्राप्त नहीं होने से। **३६. कूटस्थः**—नित्य होने से। **३७. स्थाणुः**—गमनागमन रहित होने से। **३८. अक्षयः**—क्षय रहित होने से।

अग्रणीर्ग्रामणीर्नेता प्रणेता न्यायशास्त्रकृत्।
शास्ता धर्मपतिर्धर्म्यो धर्मात्मा धर्मतीर्थकृत् ॥५॥

अर्थ—३९. अग्रणीः—तीन लोक में सबसे श्रेष्ठ होने से। **४०. ग्रामणीः**—सिद्ध समूह प्राप्त होने से। **नेता**—रत्नत्रय धर्म की ओर ले जाने वाले होने से। **४१. प्रणेता**—द्वादशांग रूप शास्त्र की रचना करने वाले होने से। **४३. न्यायशास्त्र-कृत**—न्याय शास्त्रों का उपदेश देने वाले होने से। **४४. शास्ता**—सबको हितोपदेश देने वाले होने से। **४५. धर्मपतिः**—रत्नत्रयरूप धर्म के स्वामी होने से। **४६. धर्म्यः**—धर्म स्वरूप होने से। **४७. धर्मात्मा**—धर्मरूप आत्मा होने से। **४८. धर्मतीर्थकृत**—धर्म रूपी तीर्थ के करने वाले होने से।

वृषध्वजो वृषाधीशो वृषकेतु - र्वृषायुधः।
वृषो वृषपतिर्भर्ता वृषभाङ्को वृषोद्भवः ॥६॥

अर्थ—४९. वृषध्वजः—धर्म की ध्वजा फहराने से। **५०. वृषाधीशः**—अहिंसा रूपी धर्म के स्वामी होने से। **५१. वृषकेतुः**—धर्म की पताका स्वरूप होने से। **५२. वृषायुधः**—धर्मरूपी शस्त्र के धारक होने से। **५३. वृषः**—धर्म रूप होने से। **५४. वृषपतिः**—धर्म के नायक होने से। **५५. भर्ता**—सबके स्वामी होने से। **५६. वृषभाङ्कः**—बैल का चिह्न होने से। **५७. वृषोद्भव**—पूर्व भव में धर्म धारण करने से ही तीर्थंकर होकर उत्पन्न होने से।

हिरण्य - नाभिर्भूतात्मा भूतभृद् भूतभावनः।
प्रभवो विभवो भास्वान् भवो भावो भवान्तकः ॥७॥

अर्थ—५८. हिरण्यनाभिः—सुन्दर नाभि वाले होने से। **५९. भूतात्मा**—आत्मा सत्य रूप होने से। **६०. भूतभृत्**—सब जीवों की रक्षा करने वाले होने से। **६१. भूतभावनः**—उत्तम भावनाओं से युक्त होने से। **६२. प्रभवः**—प्रशंसनीय जन्म के धारी होने से। **६३. विभवः**—जन्म धारण नहीं करने से। **६४. भास्वान्**—अत्यधिक दैदीप्यमान होने से। **६५. भवः**—उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप से सदा उत्पन्न होने से। **६६. भावः**—चैतन्य रूप भाव में लीन रहने से। **६७.भवान्तकः** —संसार भ्रमण का अन्त करने वाले होने से।

हिरण्यगर्भः श्रीगर्भः प्रभूतविभवोऽभवः।
स्वयम्प्रभुः प्रभूतात्मा भूतनाथो जगत्प्रभुः ॥८॥

अर्थ—६८.हिरण्यगर्भः—गर्भावतार के समय स्वर्णमयी पृथ्वी होने तथा सुवर्णवृष्टि होने से। **६९. श्रीगर्भः**—अन्तरंग में अनन्तचतुष्टयरूप लक्ष्मी शोभायमान होने से। **७०. प्रभूतविभवः**—अनन्त विभूति के स्वामी होने से। **७१. अभवः**—जन्म रहित होने से। **७२. स्वयम्प्रभुः**—स्वयं समर्थ होने से। **७३. प्रभूतात्मा**—केवलज्ञान की अपेक्षा आत्मा सर्वत्र व्याप्त होने से। **७४. भूतनाथः**—समस्त जीवों के स्वामी होने से। **७५. जगत्प्रभुः**—जगत् के स्वामी होने से।

सर्वादिः सर्वदृक्सार्वः सर्वज्ञः सर्वदर्शनः।
सर्वात्मा सर्वलोकेशः सर्ववित् सर्वलोकजित् ॥९॥

अर्थ—७६. सर्वादिः—सबसे प्रथम अथवा श्रेष्ठ होने से। **७७. सर्वदृक्**—समस्त लोकालोक को देखने से। **७८. सार्वः**—हितोपदेश देकर सबका हित करने वाले होने से। **७९. सर्वज्ञः**—सब पदार्थों के ज्ञाता होने से। **८०. सर्वदर्शनः**—सम्यक्त्व अथवा केवलदर्शन की पूर्णता को प्राप्त होने से। **८१. सर्वात्मा**—सर्वप्रिय होने से। **८२. सर्वलोकेशः**—सब लोगों के स्वामी होने से। **८३. सर्ववित्**—समस्त पदार्थों के जानकार होने से। **८४. सर्वलोक-जित्**—समस्त लोक को जीतने वाले होने से।

सुगतिः सुश्रुतः सुश्रुत् सुवाक् सूरिर्बहुश्रुतः।
विश्रुतो विश्वतः पादो विश्वशीर्षः शुचिश्रवाः ॥१०॥

अर्थ—८५. सुगतिः—आपकी पञ्चम मोक्षगति अति सुन्दर होने से। **८६. सुश्रुतः** —उत्तम शास्त्र ज्ञान को धारण करने वाले होने से। **८७. सुश्रुत्**—सब जीवों की प्रार्थनाएँ सुनने वाले होने से। **८८. सुवाक्**—उत्तम वचन वाले होने से। **८९. सूरि** —सबके गुरु होने से। **९०. बहुश्रुतः**—सब शास्त्रों के पारगामी होने से। **९१. विश्रुतः**—जगत् प्रसिद्ध होने से। **९२. विश्वतः पादः**—केवलज्ञान रूपी किरणें सर्वत्र फैली होने से। **९३. विश्वशीर्षः**—लोक के शिखर पर विराजमान होने से। **९४. शुचिश्रवाः**—आपका ज्ञान निर्दोष है इसलिए।

सहस्त्रशीर्षः क्षेत्रज्ञः सहस्त्राक्षः सहस्त्रपात्।
भूत-भव्य-भवद्भर्ता विश्व-विद्या-महेश्वरः ॥११॥

अर्थ—९५. सहस्रशीर्षः—अनन्तसुखी होने से। **९६. क्षेत्रज्ञः**—आत्मा को जानने वाले होने से। **९७. सहस्राक्षः**—अनन्त पदार्थों को जानते हैं इसलिए। **९८. सहस्रपात्**—अनन्त बल के धारक होने से। **९९. भूतभव्यभवद्भर्ता**—भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों काल के स्वामी होने से। **१००. विश्वविद्या-महेश्वरः**—समस्त विद्याओं के प्रधान स्वामी होने से।

॥ इति दिव्यादि शत नाम धारक जिनेभ्यो नमो नमः ॥२॥

तृतीयशतकम्

स्थविष्ठः स्थविरो ज्येष्ठः प्रष्ठः प्रेष्ठो वरिष्ठधीः।
स्थेष्ठो गरिष्ठो बंहिष्ठः श्रेष्ठोऽणिष्ठो गरिष्ठगीः ॥१॥

अर्थ—१. स्थविष्ठः—सद्गुणों से विभूषित होने से। **२. स्थविरः**—ज्ञानादि गुणों से वृद्ध होने से। **३. ज्येष्ठः**—तीन लोकों में अतिशय प्रशस्त होने से। **४. प्रष्ठः**—सबको अग्रगामी होने से। **५. प्रेष्ठः**—सबको अतिशय प्रिय होने से। **६. वरिष्ठधी**—अतिशय बुद्धि को धारण करने से। **७. स्थेष्ठः**—अत्यन्त स्थिर अथवा अविनाशी होने से। **८. गरिष्ठः**—परम गुरु होने से। **९. बंहिष्ठः**—गुणों की अपेक्षा अनेक रूप वाले होने से। **१०. श्रेष्ठः**—प्रशंसनीय होने से। **११. अणिष्ठः**—अत्यन्त सूक्ष्म होने से। **१२. गरिष्ठगीः**—आपकी वाणी अतिशय गौरव से पूर्ण हैं इसलिए।

विश्वभृत् विश्वसृट् विश्वेट् विश्वभुग्विश्वनायकः।
विश्वासीर्विश्वरूपात्मा विश्वजित् विजितान्तकः ॥२॥

अर्थ—१३. विश्वभृत्—चतुर्गतिरूप संसार को नाश करने से। **१४. विश्वसृट्**— विधि-विधान के कर्त्ता होने से। **१५. विश्वेट्**—सब लोक के ईश्वर होने से। **१६. विश्वभुक्**—जगत् की रक्षा करने से। **१६. विश्वनायकः**—सबके नेता होने से। **१८. विश्वाशी**—सबके विश्वास योग्य होने से। **१९. विश्व-रूपात्मा**—विश्व अर्थात् केवलज्ञान ही आपका स्वरूप है। **२०. विश्वजित्**—संसार को जीतने से। **२१. विजितान्तकः**—काल अर्थात् मृत्यु को जीतने से।

विभवो विभयो वीरो विशोको विजरोऽजरन्।
विरागो विरतोऽसङ्गो विविक्तो वीतमत्सरः ॥३॥

अर्थ—२२. विभवः—संसार भ्रमण नष्ट हो जाने से। **२३. विभयः**—भय रहित होने से। **२४. वीरः**—अनन्त बलशाली होने से। **२५. विशोकः**—शोक रहित होने से। **२६. विजरः**—जरा-वृद्धावस्था से रहित होने से। **२७. अजरन्**—कभी जीर्ण नहीं होने से। **२८. विरागः**—राग रहित होने से। **२९. विरतः**—समस्त विषयों से विरक्त होने से। **३०. असङ्गः**—पर वस्तु से सम्बन्ध न रखने से। **३१. विविक्तः**—एकाकी अथवा पवित्र होने से। **३२. वीतमत्सरः**—ईर्ष्या, द्वेष न करने से।

विनेय - जनता - बन्धुर्विलीनाशेष - कल्मषः।
वियोगो योगविद्विद्वान् विधाता सुविधिः सुधीः ॥४॥

अर्थ—३३. विनेयजनताबन्धुः—भक्तों के बन्धु होने से। **३४. विलीनाशेष-कल्मषः**—समस्त पाप कर्म नष्ट हो जाने से। **३५. वियोगः**—योग रहित होने से। **३६. योगवित्**—योग के जानकार होने से। **३७. विद्वान्**—पूर्ण ज्ञानी होने से। **३८. विधाता**—धर्मरूपी सृष्टि के कर्त्ता होने से। **३९. सुविधिः**—आपकी क्रियाएँ अत्यन्त प्रशंसनीय होने से। **४०. सुधीः**—उत्तम बुद्धि वाले होने से।

क्षान्तिभाक् पृथिवीमूर्तिः शान्तिभाक् सलिलात्मकः।
वायु - मूर्तिरसङ्गात्मा वह्निमूर्तिरधर्मधक् ॥५॥

अर्थ—४१. क्षान्तिभाक्—उत्तम क्षमा को धारण करने से। **४२. पृथ्वीमूर्ति**—पृथ्वी के समान सहनशील होने से। **४३. शान्तिभाक्**—शान्तता धारण करने से। **४४. सलिलात्मकः**—जल के समान अत्यन्त निर्मल आत्मा होने से। **४५. वायुमूर्तिः**—वायु के समान पर के सम्बन्ध से रहित होने से। **४६. असङ्गात्मा**—परिग्रह रहित होने से। **४७. वह्निमूर्तिः**—कर्म रूपी ईन्धन को जलाने से। **४८. अधर्मधक्**—अधर्म को नाश करने से।

सुयज्वा यजमानात्मा सुत्वा सुत्राम-पूजितः।
ऋत्विग्यज्ञ -पतिर्याज्यो यज्ञाङ्गममृतं हविः ॥६॥

अर्थ—४९. सुयज्वा—कर्म रूप सामग्री का होम करने से। **५०. यजमानात्मा**— निज स्वभाव का आराधन करने से। **५१. सुत्वा**—परमानन्द

सागर में स्नान करने से। ५२. **सुत्रामपूजितः**—इन्द्र के द्वारा पूजित होने से। ५३. **ऋत्विक्**—ज्ञान रूपी यज्ञ करने से। ५४. **यज्ञपतिः**—यज्ञ के मुख्य अधिकारी होने से। ५५. **यज्यः**—पूज्य होने से। ५६. **यज्ञांगम्**—यज्ञ के मुख्य कारण होने से। ५७. **अमृतम्**—मरण रहित होने से। ५८. **हविः**—अपनी आत्मा में तल्लीन होने से।

व्योम - मूर्तिरमूर्तात्मा निर्लेपो निर्मलोऽचलः।
सोममूर्तिः सुसौम्यात्मा सूर्यमूर्तिर्महाप्रभः ॥७॥

अर्थ—५९. व्योममूर्तिः—आकाश के समान सर्वव्यापी होने से। ६०. **अमूर्तात्मा**—रूप, रस, गन्ध, वर्ण से रहित होने से। ६१. **निर्लेपः**—कर्म रूपी लेप से रहित होने से। ६२. **निर्मलः**—मल-मूत्रादि सप्तधातु से रहित होने से। ६३. **अचलः**— सर्वथा स्थिर रहने से। ६४. **सोममूर्तिः**—चन्द्रमा के समान प्रकाशमान एवं शान्त होने से। ६५. **सुसौम्यात्मा**—अतिशय सौम्य होने से। ६६. **सूर्यमूर्तिः**—सूर्य समान कांतिमान होने से। ६७. **महाप्रभः**—केवलज्ञान रूपी तेज से सुशोभित होने से।

मन्त्रविन्मन्त्रकृन्मन्त्री मन्त्र-मूर्तिरनन्तगः।
स्वतन्त्रस्तन्त्रकृत्स्वन्तः कृतान्तान्तः कृतान्तकृत् ॥८॥

अर्थ—६८. मन्त्रवित्—मन्त्रों के ज्ञाता होने से। ६९. **मन्त्रकृत्**—जप योग्य मन्त्रों के कर्त्ता होने से। ७०. **मन्त्री**—आत्मा का विचार करने वाले होने से। ७१. **मन्त्रमूर्तिः**—मन्त्र स्वरूप होने से। ७२. **अनन्तगः**—अनन्तज्ञानी होने से। ७३. **स्वतन्त्रः**—स्वाधीन होने से। ७४. **तन्त्रकृत्**—आगम के मुख्यकर्त्ता होने से। ७५. **स्वन्तः**—शुद्ध अन्तःकरण होने से। ७६. **कृतान्तान्तः**—मरण को नाश करने वाले होने से। ७७. **कृतान्तकृत्**—आगम की रचना करने वाले होने से।

कृती कृतार्थः सत्कृत्यः कृतकृत्यः कृतक्रतुः।
नित्यो मृत्युञ्जयोऽमृत्युरमृतात्मामृतोद्भवः ॥९॥

अर्थ—७८. कृतीः—अत्यन्त कुशल अथवा पुण्यवान होने से। ७९. **कृतार्थः**—आत्मा के सब पुरुषार्थ सिद्ध कर चुके होने से। ८०. **सत्कृत्यः**—सब जीवों के द्वारा सत्कार करने योग्य होने से। ८१. **कृतकृत्यः**—समस्त कार्य

कर चुके होने से। ८२. **कृतक्रतुः**—ज्ञान अथवा तपरूपी यज्ञ पूर्ण कर चुके होने से। ८३.**नित्यः**—अविनाशी होने से। ८४. **मृत्युञ्जयः**—मृत्यु को जीतने से। ८५. **अमृत्युः**—कभी मृत्यु को प्राप्त नहीं होने से। ८६. **अमृतात्मा**—अमृत के समान शान्तिदायक होने से। ८७. **अमृतोद्भवः**—अविनश्वर अवस्था मोक्ष को प्राप्त होने से।

ब्रह्मनिष्ठः परंब्रह्म ब्रह्मात्मा ब्रह्मसम्भवः।
महाब्रह्म- पतिर्ब्रह्मेट् महाब्रह्म - पदेश्वरः ॥१०॥

अर्थ—८८. ब्रह्मनिष्ठः—शुद्धात्मा में लीन रहने से। ८९. **परंब्रह्म**—सबसे उत्कृष्ट केवलज्ञान को धारण करने से। ९०. **ब्रह्मात्मा**—ज्ञान स्वरूप होने से। ९१.**ब्रह्म-सम्भवः**—शुद्धात्म स्वरूप की प्राप्ति होने से। ९२. **महाब्रह्मपतिः**—गणधरादि मुनियों के स्वामी होने से। ९३. **ब्रह्मेट्**—केवलज्ञान के स्वामी होने से।

सुप्रसन्नः प्रसन्नात्मा ज्ञान - धर्म - दम - प्रभुः।
प्रशमात्मा प्रशान्तात्मा पुराणपुरुषोत्तमः ॥११॥

अर्थ—९५. सुप्रसन्नः—सदा प्रसन्न रहने से। ९६. **प्रसन्नात्मा**—कषायों का अभाव होने से आत्मा सदा प्रसन्न रहती है। ९७. **ज्ञानधर्मदमप्रभुः**—केवलज्ञान, उत्तम क्षमादिधर्म तथा इन्द्रिय निग्रह रूप दम के स्वामी होने से। ९८. **प्रशमात्मा**—क्रोधादि परिणाम रहित होने से। ९९. **प्रशान्तात्मा**—परमशान्त रूप होने से। १००. **पुराणपुरुषोत्तमः**—त्रेसठ शलाका पुरुषों में सर्वोत्तम होने से।

॥ इति श्री स्थविष्ठादि शत नाम धारक जिनेभ्यो नमो नमः॥३॥

❑ ❑ ❑

चतुर्थशतकम्

महाशोक-ध्वजोऽशोकः कः स्रष्टा पद्म-विष्टरः।
पद्मेशः पद्मसम्भूतिः पद्म - नाभिरनुत्तरः ॥१॥

अर्थ—१. महाशोकध्वजः—विशाल अशोक वृक्ष का चिह्न होने से। २. **अशोकः**—शोक रहित होने से। ३. **कः**—सबके पिता होकर सुख देने से। ४. **स्रष्टा**—स्वर्ग और मोक्ष की सृष्टि करने वाले होने से। ५.**पद्मविष्टरः**—कमलासन पर विराजमान होने से। ६.**पद्मेशः**—लक्ष्मी के स्वामी होने

से। ७. **पद्म-सम्भूतिः**—विहारकाल में चरणों के नीचे कमलों की रचना होने से। ८.**पद्मनाभिः**—कमल के समान सुन्दर नाभि होने से। ९. **अनुत्तरः**—आपसे श्रेष्ठ अन्य कोई न होने से।

पद्म - योनिर्जगद्योनिरित्यः स्तुत्यः स्तुतीश्वरः।
स्तवनार्हो हृषीकेशो जितजेयः कृतक्रियः ॥२॥

अर्थ—१०. पद्मयोनिः—माता के पद्माकार गर्भाशय में उत्पन्न होने से। **११. जगद्योनिः**—धर्म रूप जगत् की उत्पत्ति का कारण होने से। **१२. इत्यः**—भव्यजीव तपश्चरण आदि के द्वारा आपको ही प्राप्त करना चाहते हैं अतः। **१३. स्तुतीश्वरः**—स्तुतियों के स्वामी होने से। **१४. स्तुत्यः**—स्तुति करने योग्य होने से। **१५. स्तवनार्हः**—स्तुतियों के पात्र होने से। **१६. हृषीकेशः** —इन्द्रियों को वश में करने वाले होने से। **१७. जितजेयः**—समस्त मोहादि शत्रुओं को जीत लेने से। **१८. कृतक्रियः**— करने योग्य समस्त क्रियाएँ कर चुकने योग्य होने से।

गणाधिपो गणज्येष्ठो गण्यः पुण्यो गणाग्रणीः।
गुणाकरो गुणाम्भोधिर्गुणज्ञो गुणनायकः ॥३॥

अर्थ—१९. गणाधिपः—बारहसभारूप गण के स्वामी होने से। **२०. गणज्येष्ठः**—समस्त गुणों में श्रेष्ठ होने से। **२१. गण्यः**—अनन्त गुणों के स्वामी होने से। **२२. पुण्यः**—पवित्र होने से। **२३. गणाग्रणीः**—सबके अग्रेसर होने से। **२४. गुणाकरः**—गुणों की खानि होने से। **२५. गुणाम्भोधिः**—गुणों के समुद्र होने से। **२६. गुणज्ञः**—गुणों को जानने से। **२७. गुणनायकः**—समस्त गुणों के नायक होने से।

गुणादरी गुणोच्छेदी निर्गुणः पुण्यगीर्गुणः।
शरण्यः पुण्य-वाक्पूतो वरेण्यः पुण्यनायकः ॥४॥

अर्थ—२८. गुणादरी—गुणों का आदर करने से। **२९. गुणोच्छेदी**—क्रोधादि अवगुणों का नाश करने से। **३०. निर्गुणः**—वस्त्र रहित होने से। **३१. पुण्यगीः**—पवित्र गुणों के धारक होने से। **३२. गुणः**—शुद्ध गुणस्वरूप होने से। **३३. शरण्यः**—सबके शरणभूत होने से। **३४. पुण्यवाक्**—पुण्यरूप वचन होने से। **३५. पूतः**—पवित्र होने से। **३६. वरेण्यः**—सबमें श्रेष्ठ होने

से। **३७. पुण्य-नायकः**—पुण्य के स्वामी होने से।

अगण्यः पुण्यधीर्गुण्यः पुण्यकृत्पुण्यशासनः।
धर्मारामो गुणग्रामः पुण्यापुण्यनिरोधकः ॥५॥

अर्थ—३८. अगण्यः—अनगिन गुणों के धारी होने से। **३९. पुण्यधीः**—पवित्र ज्ञानी होने से। **४०. गुण्यः**—सबका कल्याण करने एवं समवसरण के योग्य होने से। **४१. पुण्यकृत्**—पुण्य के कर्त्ता होने से। **४२. पुण्यशासनः**—पुण्य रूप मार्ग होने से। **४३. धर्मारामः**—धर्म का समूह होने से। **४४. गुणग्रामः** —गुणों का समूह होने से। **४५. पुण्यापुण्यनिरोधकः**—पुण्य और पाप दोनों का निरोध करने से।

पापापेतो विपापात्मा विपाप्मा वीत - कल्मषः।
निर्द्वन्द्वो निर्मदः शान्तो निर्मोहो निरुपद्रवः ॥६॥

अर्थ—४६. पापापेतः—समस्त पापों से रहित होने से। **४७. विपापात्मा** —आत्मा से समस्त पाप विगत हो गये हैं। **४८. विपाप्मा**—आपने पापकर्म नष्ट कर दिये हैं। **४९. वीतकल्मषः**—कर्म मल रहित होने से। **५०. निर्द्वन्दः**—परिग्रह रहित होने से। **५१. निर्मदः**—अहंकार रहित होने से। **५२. शान्तः**—उपाधि रहित होने से। **५३. निर्मोहः**—मोह रहित होने से। **५४. निरुपद्रवः**—समस्त उपद्रव रहित होने से।

निर्निमेषो निराहारो निष्क्रियो निरुपप्लवः।
निष्कलङ्को निरस्तैना निर्द्धूतागो निरास्त्रवः ॥७॥

अर्थ—५५. निर्निमेषः—आपके नेत्रों के पलक एक-दूसरे से नहीं लगते। **५६. निराहारः**—कवलाहार न करने से। **५७. निष्क्रियः**—क्रिया रहित होने से। **५८. निरुपप्लवः**—सर्व प्रकार के संकटों से रहित होने से। **५९. निष्कलङ्कः**—कलंक रहित होने से। **६०. निरस्तैना**—पापों को दूर करने से। **६१. निर्द्धूतागः**—अपराधों का नाश करने से। **६२. निरास्त्रवः**—आस्त्रव रहित होने से।

विशालो विपुल - ज्योतिरतुलोऽचिन्त्य-वैभवः।
सुसंवृतः सुगुप्तात्मा सुभृत्सुनय-तत्त्ववित् ॥८॥

अर्थ—६३. विशालः—सबमें महान् होने से। **६४. विपुलज्योतिः**—केवलज्ञान रूपी अपार ज्योति को धारण करने से। **६५. अतुलः**—उपमा

रहित होने से। **६६. अचिन्त्यवैभवः**—असामान्य विभूति सम्पन्न होने से। **६७. सुसंवृतः**—नवीन कर्मों का आस्रव रोक कर पूर्ण संवर कर चुके हैं। **६८. सुगुप्तात्मा**—मनोगुप्ति आदि गुप्तियों से सहित होने से। **६९. सुभृत्**—समस्त पदार्थों को अच्छी तरह से जानते हो। **७०. सुनयतत्त्ववित्**—समीचीन नयों के रहस्य को जानने वाले होने से।

एकविद्यो महाविद्यो मुनिः परिवृढः पतिः।
धीशो विद्यानिधिः साक्षी विनेता विहतान्तकः ॥९॥

अर्थ—७१. एकविद्यः—केवलज्ञानरूपी एक विद्या के धारक होने से। **७२. महाविद्यः**—अनेक बड़ी-बड़ी विद्याओं के धारक होने से। **७३. मुनिः**—प्रत्यक्षज्ञानी होने से। **७४. परिवृढः**—सबके स्वामी होने से। **७५. पतिः**—जगत् के जीवों की रक्षा करने वाले होने से। **७६. धीशः**—बुद्धि के स्वामी होने से। **७७. विद्यानिधिः**—विद्याओं के भण्डार होने से। **७८. साक्षी**—समस्त पदार्थों को प्रत्यक्ष जानने से। **७९. विनेता**—मोक्षमार्ग को प्रकट करने वाले होने से। **८०. विहतान्तकः**—मृत्यु को नष्ट करने वाले होने से।

पिता पितामहः पाता पवित्रः पावनो गतिः।
त्राता भिषग्वरो वर्यो वरदः परमः पुमान् ॥१०॥

अर्थ—८१. पिता—सब जीवों को नरकादि गतियों से बचाने वाले होने से। **८२. पितामहः**—सबके गुरु होने से। **८३. पाता**—सबके पालन कर्त्ता होने से। **८४. पवित्रः**—अतिशय शुद्ध होने से। **८५. पावनः**—सबको पवित्र करने वाले होने से। **८६. अगतिः**—गति रहित होने से। **८७. त्राता**—सबके रक्षक होने से। **८८. भिषग्वरः**—जन्म-जरा-मरण रूपी रोग को नष्ट करने वाले उत्तम वैद्य होने से। **८९. वर्यः**—श्रेष्ठ होने से। **९०. वरदः**—इच्छानुकूल पदार्थों को देने वाले होने से। **९१. परमः**—आपकी ज्ञानादि लक्ष्मी अतिशय श्रेष्ठ है। **९२. पुमान्**—आत्मा तथा अन्य पुरुषों को पवित्र करने के कारण।

कविः पुराण - पुरुषो वर्षीयानृषभः पुरु :।
प्रतिष्ठा- प्रसवो हेतुर्भुवनैक-पितामहः ॥११॥

अर्थ—९३. कविः—द्वादशांग का वर्णन करने वाले होने से। **९४. पुराणपुरुषः**—प्राचीन पुरुष होने से। **९५. वर्षीयान्**—ज्ञानादि गुणों की अपेक्षा अतिशय

वृद्ध होने से। **९६. ऋषभः**—श्रेष्ठ होने से। **९७. पुरुः**—तीर्थंकरों में आदिपुरुष होने से। **९८. प्रतिष्ठाप्रसवः**—सम्मान अथवा स्थिरता के कारण होने से। **९९. हेतुः**—समस्त उत्तम कार्यों के कारण होने से। **१००. भुवनैकपितामहः**—संसार के एकमात्र सच्चे गुरु होने से।

॥ इति महाशोकध्वजादि शत नामधारक जिनेभ्यो नमो नमः॥४॥

❑ ❑ ❑

पञ्चमशतकम्

श्रीवृक्षलक्षणः श्लक्ष्णो लक्षण्यः शुभलक्षणः।
निरक्षः पुण्डरीकाक्षः पुष्कलः पुष्करेक्षणः ॥१॥

अर्थ—१. श्रीवृक्षलक्षणः—श्रीवृक्ष के चिह्न से चिह्नित होने से। **२. श्लक्ष्णः**—सूक्ष्मरूप होने से। **३. लक्षण्यः**—अनेक शुभ लक्षणों से सहित होने से। **४. शुभलक्षणः**—शरीर में अनेक शुभ लक्षण से सहित होने से। **५. निरक्षः**—समस्त पदार्थों का निरीक्षण करने वाले होने से। **६. पुण्डरीकाक्षः**—नेत्र पुण्डरीक कमल के समान सुन्दर होने से। **७. पुष्कलः**—आत्मा के गुणों से परिपुष्ट है। **८. पुष्करेक्षणः**—नीलकमल पत्र के समान लम्बे नेत्रों के धारक होने से।

सिद्धिदः सिद्ध-सङ्कल्पः सिद्धात्मा सिद्धसाधनः।
बुद्ध-बोध्यो महाबोधिर्वर्द्धमानो महर्द्धिकः ॥२॥

अर्थ—९. सिद्धिदः—सर्व सिद्धियों के दाता होने से। **१०. सिद्धसङ्कल्पः**—आपके सब संकल्प सिद्ध हो चुके हैं। **११. सिद्धात्मा**—आपकी आत्मा सिद्ध अवस्था को प्राप्त हो चुकी है। **१२. सिद्धसाधनः**—मोक्ष के साधन रत्नत्रय की सिद्धी होने से। **१३. बुद्धबोध्यः**—जानने योग्य समस्त पदार्थों को जान चुके हैं। **१४. महाबोधिः**—रत्नत्रय अति प्रशंसनीय होने से। **१५. वर्द्धमानः**—आपके गुण उत्तरोत्तर बढ़ते रहते हैं। **१६. महर्द्धिकः**—बड़ी-बड़ी ऋद्धियों के धारक होने से।

वेदाङ्गो वेदविद्वेद्यो जात - रूपो विदांवरः।
वेद-वेद्यः स्व- संवेद्यो विवेदो वदतांवरः ॥३॥

अर्थ—१७. वेदाङ्गः—आप अनुयोग रूपी वेदों के कारण है। **१८. वेदविद्**—वेद को जानने वाले हैं। **१९. वेद्यः**—ऋषियों के द्वारा जानने योग्य हैं। **२०.**

जातरूपः—आप दिगम्बर रूप हैं। **२१. विदाम्वरः**—जानने वालों में श्रेष्ठ हैं। **२२.वेदवेद्यः**—आगम द्वारा जानने योग्य है। **२३. स्वसंवेद्यः**—अनुभवगम्य होने से। **२४. विवेदः**—पुरुषादि तीन वेदों से रहित हैं। **२५. वदताम्वरः**—वक्ताओं में श्रेष्ठ होने से।

अनादिनिधनो व्यक्तो व्यक्तवाग् व्यक्तशासनः।
युगादिकृत् युगाधारो युगादिर्जगदादिजः ॥४॥

अर्थ—२६. अनादिनिधनः—आदि अन्त रहित होने से। **२७. व्यक्तः**—ज्ञान के द्वारा अत्यन्त स्पष्ट होने से। **२८. व्यक्तवाक्**—आपके वचन अतिशय स्पष्ट है। **२९. व्यक्तशासनः**—आपका शासन अत्यन्त स्पष्ट अथवा प्रकट है। **३०. युगादि-कृत्**—कर्मभूमि युग के आदि व्यवस्थापक होने से। **३१. युगाधारः**—युगों का आधार/सहारा देने वाले होने से। **३२. युगादिः**—कर्मभूमि युग का प्रारम्भ आपसे ही हुआ था। **३३. जगदादिजः**—जगत् के प्रारम्भ में उत्पन्न होने से।

अतीन्द्रोऽतीन्द्रियो धीन्द्रो महेन्द्रोऽतीन्द्रियार्थदृक्।
अनिन्द्रियोऽहमिन्द्रार्च्यो महेन्द्र-महितो महान् ॥५॥

अर्थ—३४. अतीन्द्रः—अपने प्रभाव अथवा ऐश्वर्य से इन्द्रों को भी अतिक्रान्त करने से। **३५. अतीन्द्रियः**—इन्द्रियगोचर न होने से। **३६.धीन्द्रः**—बुद्धि के स्वामी होने से। **३७. महेन्द्रः**—परम ऐश्वर्य का अनुभव करने से। **३८. अतीन्द्रियार्थदृक्**—सूक्ष्म अन्तरित दूरार्थ अतीन्द्रिय पदार्थों को देखने वाले होने से। **३९. अनिन्द्रियः**—इन्द्रियों से रहित होने से। **४०. अहमिन्द्रार्च्यः**—अहमिन्द्रों के द्वारा पूजित होने से। **४१. महेन्द्रमहितः**—बड़े-बड़े इन्द्रों के द्वारा पूजित होने से। **४२. महान्**— सबसे पूज्य व बड़े होने से।

उद्भवः कारणं कर्ता पारगो भव—तारकः।
अगाह्यो गहनं गुह्यं पराघ्यः परमेश्वरः ॥६॥

अर्थ—४३. उद्भवः—आपका जन्म संसार में सर्वोत्कृष्ट होने से। **४४. कारणं**—मोक्ष के कारण होने से। **४५. कर्ता**—शुद्ध भावों को करने वाले होने से। **४६. पारगः**—संसार रूपी समुद्र के पार को प्राप्त होने से। **४७. भवतारकः**—भव्य जीवों को संसार समुद्र से तारने वाले होने से। **४८. अगाह्यः**—आपके गुणों को कोई समझ नहीं सकता। **४९. गहनं**—अतिशय

गम्भीर होने से। ५०. **गुह्यं**—गुप्त रूप अर्थात् परम रहस्य रूप होने से। ५१. **पराघ्र्यः**—सबसे उत्कृष्ट होने के कारण। ५२. **परमेश्वरः**—सबसे अधिक समर्थ होने के कारण।

अनन्तर्द्धिरमेयर्द्धिरचिन्त्यर्द्धिः समग्रधीः।
प्राग्र्यः प्राग्रहरोऽभ्यग्रः प्रत्यग्रोऽग्र्योऽग्रिमोऽग्रजः ॥७॥

अर्थ—५३. अनन्तर्द्धिः—अनन्त ऋद्धियों के धारी होने से। ५४. **अमेयर्द्धिः**—अमेय अपरिमित ऐश्वर्य के धारी होने से। ५५. **अचिन्त्यर्द्धिः**—अचिन्त्य ऋद्धियों के स्वामी होने से। ५६. **समग्रधीः**—आपकी बुद्धि पूर्णावस्था को प्राप्त हुई है। ५७. **प्राग्र्य**—सबमें मुख्य होने से। ५८. **प्राग्रहरः**—प्रत्येक मांगलिक कार्यों में सर्वप्रथम स्मरण किये जाने से। ५९. **अभ्यग्रः**—लोक का अग्रभाग प्राप्त करने के सम्मुख होने से। ६०. **प्रत्यग्रः**—समस्त लोगों से विलक्षण होने से। ६१. **अग्र्यः**—सबके स्वामी होने से। ६२. **अग्रिमः**—सबके अग्रेसर होने से। ६३. **अग्रजः**—सबसे ज्येष्ठ होने से।

महातपा महातेजा महोदर्को महोदयः।
महायशा महाधामा महासत्त्वो महाधृतिः ॥८॥

अर्थ—६४. महातपा—कठिन तपश्चरण को धारण किया था। ६५. **महातेजा**— आपका तेज चारों ओर फैल रहा है। ६६. **महोदर्कः**—आपकी तपश्चर्या का फल केवलज्ञान है। ६७. **महोदयः**—बड़ा भारी ऐश्वर्य होने से। ६८. **महायशाः**—आपका महान् यश चारों ओर फैल रहा है। ६९. **महाधामाः**—विशाल तेज प्रताप के धारी होने से। ७०. **महासत्त्वः**—अपार शक्ति सम्पन्न होने से। ७१. **महाधृतिः**—महान् धैर्यवान होने से।

महाधैर्यो महावीर्यो महासम्पन्महाबलः।
महाशक्तिर्महाज्योतिर्महाभूतिर्महाद्युतिः ॥९॥

अर्थ—७२. महाधैर्यः—आप कभी अधीर नहीं होते। ७३. **महावीर्यः**—अनन्तवीर्य के धारी होने से। ७४. **महासम्पत्**—समवसरण रूप अद्भुत विभूति के धारक होने से। ७५. **महाबलः**—अत्यन्त बलवान् होने से। ७६. **महाशक्तिः**—अनन्त शक्ति के धारी होने से। ७७. **महाज्योतिः**—अतिशय कान्तिवान होने से। ७८. **महाभूतिः**—अपार वैभवशाली होने से। ७९. **महाद्युतिः**—आपका शरीर अत्यधिक चमकदार/द्युतिवान होने से।

महामतिर्महानीतिर्महाक्षान्तिर्महादयः ।
महाप्राज्ञो महाभागो महानन्दो महाकविः ॥१०॥

अर्थ—८०. महामतिः—अतिशय बुद्धिमान् होने से। **८१. महानीतिः**—अतिशय नीतिवान/न्यायवान होने से। **८२. महाक्षान्तिः**—अतिशय क्षमावान होने से। **८३. महादयः**—अतिशय दयालु होने से। **८४. महाप्राज्ञः**—अत्यन्त विवेकवान होने से। **८५. महाभागः**—अत्यन्त भाग्यशाली होने से। **८६. महानन्दः**—अत्यन्त आनन्द के धारी होने से। **८७. महाकविः**—सर्वश्रेष्ठ काव्य रचने वाले होने से।

महामहा महाकीर्तिर्महाकान्तिर्महावपुः।
महादानो महाज्ञानो महायोगो महागुणः ॥११॥

अर्थ—८८. महामहाः—अत्यन्त तेजस्वी होने से। **८९. महाकीर्तिः**—विशाल कीर्ति के धारक होने से। **९०. महाकान्तिः**—अद्भुत कान्ति से युक्त होने से। **९१. महावपुः**—उत्तुंग/विशाल शरीर वाले होने से। **९२. महादानः**—बड़े दानी होने से। **९३. महाज्ञानः**—केवलज्ञानी होने से। **९४. महायोगः**—बड़े ध्यानी होने से। **९५. महागुणः**—बड़े-बड़े गुणों के धारक होने से।

महामहपतिः प्राप्त - महाकल्याण-पञ्चकः।
महाप्रभुर्महाप्रातिहार्याधीशो महेश्वरः ॥१२॥

अर्थ—९६. महामहपतिः—अनेक बड़े-बड़े उत्सवों के स्वामी होने से। **९७. प्राप्तमहाकल्याणपञ्चकः**—गर्भ जन्मादि पञ्चकल्याणकों को प्राप्त करने वाले होने से। **९८. महाप्रभुः**—सबसे बड़े स्वामी है। **९९. महा-प्रतिहार्याधीशः**—अशोक वृक्षादि आठ महाप्रातिहार्यों के स्वामी होने से। **१००. महेश्वरः**—सब देवों के अधीश्वर होने से।

॥ इति श्रीवृक्षादिशत नाम धारक जिनेभ्यो नमो नमः॥५॥

❑ ❑ ❑

षष्ठशतकम्

महामुनिर्महामौनी महाध्यानी महादमः।
महाक्षमो महाशीलो महायज्ञो महामखः ॥१॥

अर्थ—१. महामुनिः—सब मुनियों में उत्तम होने से। **२. महामौनी**—वचनालाप

रहित होने से। **३. महाध्यानी**—शुक्लध्यान के ध्याता होने से। **४. महादमः**—अतिशय जितेन्द्रिय होने से। **५. महाक्षमः**—अतिशय समर्थ अथवा शान्त होने से। **६. महाशीलः**—उत्तम शील युक्त होने से। **७. महायज्ञः**—तपश्चरण रूपी अग्नि में कर्म रूपी हवि के होम करने से। **८. महामखः**—अतिशय पूज्य होने के कारण।

महाव्रत - पतिर्महो महाकान्ति - धरोऽधिपः।
महामैत्री - मयोऽमेयो महोपायो महोमयः ॥२॥

अर्थ—९. महाव्रतपतिः—पाँच महाव्रतों के स्वामी होने से। **१०. मह्यः**—जगत् पूज्य होने से। **११. महाकान्तिधरः**—विशाल कान्ति के धारक होने से। **१२. अधिपः**—सबके स्वामी होने से। **१३. महामैत्रीमयः**—सब जीवों के साथ मैत्री भाव होने से। **१४. अमेयः**—अपरिमित गुणों के धारक होने से। **१५. महोपायः**—मोक्ष के उत्तमोत्तम उपायों से सहित होने से। **१६. महोमयः**—तेजः स्वरूप होने से।

महाकारुणिको मन्ता महामन्त्रो महायतिः।
महानादो महाघोषो महेज्यो महसाम्पतिः ॥३॥

अर्थ—१७. महाकारुणिकः—अत्यन्त दयालु होने से। **१८. मन्ताः**—सब पदार्थों को जानने से। **१९. महामन्त्रः**—अनेक मन्त्रों के स्वामी होने से। **२०. महायतिः**— यतियों में श्रेष्ठ होने से। **२१. महानादः**—गम्भीर दिव्यध्वनि के धारक होने से। **२२. महाघोषः**—दिव्यध्वनि का गम्भीर उच्चारण होने के कारण। **२३. महेज्यः**—बड़ी-बड़ी पूजाओं के अधिकारी होने से। **२४. महसाम्पतिः**—समस्त तेज अथवा प्रताप के स्वामी होने से।

महाध्वरधरो धुर्यो महौदार्यो महिष्ठवाक्।
महात्मा महसाम्धाम महर्षिर्महितोदयः ॥४॥

अर्थ—२५. महाध्वरधरः—ज्ञानरूपी विशाल यज्ञ के धारक होने से। **२६.धुर्यः**— कर्मभूमि का समस्त भार सम्हालने अथवा सर्वश्रेष्ठ होने से। **२७. महौदार्यः**—अतिशय उदार होने से। **२८. महिष्ठवाक्**—श्रेष्ठ वचनों से युक्त होने से। **२९. महात्मा**—महान् आत्मा के धारक होने से। **३०. महसाम्धाम**—समस्त तेज के स्थान होने से। **३१. महर्षिः**—ऋषियों में प्रधान होने से। **३२. महितोदयः**—प्रशस्त जन्म के धारक होने से।

महाक्लेशाङ्कुशः शूरो महाभूतपतिर्गुरुः।
महापराक्रमोऽनन्तो महाक्रोधरिपुर्वशी ॥५॥

अर्थ—३३. महाक्लेशाङ्कुशः—महाक्लेश अर्थात् तपश्चरणरूप अंकुश को धारण करने से। **३४. शूरः**—घातियाकर्मरूपी शत्रुओं को जीतने से। **३५. महाभूतपतिः** —गणधर, चक्रवर्ती आदि महापुरुषों के स्वामी होने से। **३६. गुरुः**—सबको धर्मोपदेश देने से। **३७. महापराक्रमः**—अतिशय पराक्रमी होने से। **३८. अनन्तः**—अन्त रहित होने से। **३९. महाक्रोधरिपुः**—क्रोध के शत्रु होने से। **४०. वशी**— इन्द्रियों को वश में करने वाले होने से।

महाभवाब्धि-सन्तारी महामोहाद्रि-सूदनः।
महागुणाकरः क्षान्तो महायोगीश्वरः शमी ॥६॥

अर्थ—४१.महाभवाब्धि-सन्तारी—संसार-सागर से पार कराने से। **४२. महा-मोहाद्रिसूदनः**—मोहरूपी पर्वत का भेदन करने से। **४३. महा-गुणाकरः**—सम्यग्दर्शनादि गुणों की खानि होने से। **४४. क्षान्तः**—कषाय रहित होने से। **४५. महायोगीश्वरः**—गणधरादि महायोगियों के स्वामी होने से। **४६. शमी**— परमसुखी होने से।

महाध्यानपतिर्ध्यात - महाधर्मा महाव्रतः।
महाकर्मारिहात्मज्ञो महादेवो महेशिता ॥७॥

अर्थ—४७. महाध्यानपतिः—परम शुक्लध्यान के स्वामी होने से। **४८. ध्यात-महाधर्मा**—अहिंसादि धर्म का ध्यान करने से। **४९. महाव्रतः**—महाव्रतों को धारण करने से।**५०. महाकर्मारिहा**—कर्मरूपी महाशत्रुओं का नाश करने से।**५१. आत्मज्ञः**—आत्मा का स्वरूप जानने से।**५२. महादेवः**—समस्त देवों के स्वामी होने से।**५३. महेशिता**—विलक्षण ऐश्वर्य को धारण करने से।

सर्वक्लेशापहः साधुः सर्वदोषहरो हरः।
असंख्येयोऽप्रमेयात्मा शमात्मा प्रशमाकरः ॥८॥

अर्थ—५४. सर्वक्लेशापहः—शारीरिक और मानसिक क्लेशों को दूर करने से।**५५. साधुः**—रत्नत्रय को सिद्ध करने से।**५६. सर्वदोषहरः**—भव्यजीवों के समस्त दोषों को दूर करने से।**५७. हरः**—पापों का हरण करने से।**५८. असंख्येयः**—असंख्यात गुणों को धारण करने से।**५९. अप्रमेयात्मा**—प्रमाण

रहित शक्ति को धारण करने से। **६०. शमात्मा**—परम शान्त स्वरूप होने से। **६१. प्रशमाकरः**—उत्तम शान्ति की खान होने से।

सर्व-योगीश्वरोऽचिन्त्यः श्रुतात्मा विष्टरश्रवाः।
दान्तात्मा दमतीर्थेशो योगात्मा ज्ञानसर्वगः ॥९॥

अर्थ—६२. सर्वयोगीश्वरः—समस्त योगियों के ईश्वर होने से। **६३. अचिन्त्यः**—चिन्तन के अतीत होने से। **६४. श्रुतात्मा**—सम्पूर्ण श्रुत स्वरूपी होने से। **६५. विष्टरश्रवा**—तीनों लोकों के समस्त पदार्थों को जानने से। **६६. दान्तात्मा**— जितेन्द्रिय होने से। **६७. दमतीर्थेशः**— इन्द्रिय दमन रूप तीर्थ के स्वामी होने से। **६८. योगात्मा**—योग स्वरूप होने से। **६९. ज्ञानसर्वगः** —ज्ञान के द्वारा सब जगह होने से।

प्रधानमात्मा प्रकृतिः परमः परमोदयः।
प्रक्षीणबन्धः कामारिः क्षेमकृत् क्षेमशासनः ॥१०॥

अर्थ—७०. प्रधानं—एकाग्रता से आत्मा का ध्यान करने से। **७१. आत्मा**—ज्ञान स्वरूप होने से। **७२. प्रकृतिः**—प्रकृष्ट कार्यों के होने से। **७३. परमः**—उत्कृष्ट लक्ष्मी को धारण करने से। **७४. परमोदयः**—उत्कृष्ट उदय अर्थात् जन्म या वैभव को धारण करने से। **७५. प्रक्षीणबन्धः**—कर्मबन्ध सब नष्ट होने से। **७६. कामारिः**—कामदेव के शत्रु होने से। **७७. क्षेमकृत्**—कल्याणकारी होने से। **७८. क्षेमशासनः**—मंगलमय उपदेश के देने से।

प्रणवः प्रणयः प्राणः प्राणदः प्रणतेश्वरः।
प्रमाणं प्रणधिर्दक्षो दक्षिणोऽध्वर्युरध्वरः ॥११॥

अर्थ—७९. प्रणवः—ओंकार रूप होने से। **८०. प्रणयः**—सबके द्वारा नमस्कृत होने से। **८१. प्राणः**—जगत् को जीवित रखने से। **प्राणदः**—परिपूर्णता के दाता होने से। **८२. प्रणतेश्वरः**—नम्रीभूत भव्यजनों के स्वामी होने से। **८४. प्रमाणं**—ज्ञानमय होने से। **८५. प्रणिधिः**—अनन्तज्ञान आदि उत्कृष्ट निधियों के स्वामी होने से। **८६. दक्षः**—समर्थ अथवा प्रवीण होने से। **८७. दक्षिणः**—सरल होने से। **८८. अध्वयुः**—ज्ञानरूप यज्ञ करने से। **८९. अध्वरः**— समीचीन मार्ग के प्रदर्शक होने से।

आनन्दो नन्दनो नन्दो वन्द्योऽनिन्द्योऽभिनन्दनः।
कामहा कामदः काम्यः कामधेनुररिञ्जयः ॥१२॥

अर्थ—९०. आनन्दः—सदा सुख रूप होने से। **९१. नन्दनः**—सबको आनन्द देने से। **९२. नन्दः**—सदा समृद्धिमान होते रहने से। **९३. वन्द्यः**—इन्द्रादि के द्वारा वन्दना करने योग्य होने से। **९४. अनिन्द्यः**—निन्दा रहित होने से। **९५. अभिनन्दनः**—प्रशंसनीय होने से। **९६. कामहा**—कामदेव को नष्ट करने से। **९७. कामदः**—अभिलषित पदार्थों को देने से। **९८. काम्यः**—सबके द्वारा चाहने योग्य होने से। **९९. कामधेनुः**—सबके मनोरथ पूर्ण करने वाले होने से। **१००. अरिञ्जयः**—कर्मरूप शत्रुओं को जीतने वाले होने से।

॥ इति महामुन्यादिशत नाम धारक जिनेभ्यो नमो नमः॥६॥

सप्तमशतकम्

असंस्कृतसुसंस्कारः प्राकृतो वैकृतान्तकृत्।
अन्तकृत्कान्तगुः कान्तश्चिन्तामणिरभीष्टदः ॥१॥

अर्थ—१. असंस्कृतसुसंस्कारः—किसी अन्य के द्वारा संस्कृत हुए बिना ही उत्तम संस्कारों को धारण करने से। **२. प्राकृतः**—स्वाभाविक होने से। **३. वैकृतान्तकृत्**—रागादि विकारों का नाश करने से। **४. अन्तकृत्**—जन्म मरण रूप संसार का अवसान करने वाले होने से। **५. कान्तगुः**—सुन्दर कान्ति वचन अथवा इन्द्रियों के धारक होने से। **६. कान्तः**—अत्यन्त सुन्दर होने से। **७. चिन्तामणिः**—इच्छित पदार्थ देने से। **८. अभीष्टदः**—भव्य जीवों के लिए अभीष्ट स्वर्ग-मोक्ष देने से।

अजितो जित - कामारिरमितोऽमित - शासनः।
जितक्रोधो जितामित्रो जितक्लेशो जितान्तकः ॥२॥

अर्थ—९. अजितः—किसी के द्वारा जीते नहीं जा सकने के कारण। **१०. जित-कामारिः**—कामरूपी शत्रु को जीतने से। **११. अमितः**—अवधि रहित होने से। **१२.अमितशासनः**—अनुपम धर्म का उपदेश देने से। **१३. जितक्रोधः**—क्रोध को जीतने से। **१४. जितामित्रः**—शत्रुओं को जीत लेने से। **१५. जितक्लेशः**—क्लेशों को जीत लेने से। **१६. जितान्तकः**—यमराज को जीत लेने से।

जिनेन्द्रः परमानन्दो मुनीन्द्रो दुन्दुभि–स्वनः।
महेन्द्र–वन्द्यो योगीन्द्रो यतीन्द्रो नाभिनन्दनः ॥३॥

अर्थ–१७. जिनेन्द्रः–कर्म रूपी शत्रुओं को जीतने वालों में श्रेष्ठ होने से। **१८. परमानन्दः**–उत्कृष्ट आनन्द के धारक होने से। **१९. मुनीन्द्रः**–मुनियों के नाथ होने से। **२०. दुन्दुभिस्वनः**–दुन्दभि के समान गम्भीर ध्वनि युक्त होने के कारण। **२१. महेन्द्रवन्द्यः**–बड़े-बड़े इन्द्रों के द्वारा वन्दनीय होने से। **२२. योगीन्द्रः**–योगियों के स्वामी होने से। **२३. यतीन्द्रः**–यतियों के अधिपति होने से। **२४. नाभिनन्दनः**–नाभि राजा के पुत्र होने से।

नाभेयो नाभिजोऽजातः सुव्रतो मनुरुत्तमः।
अभेद्योऽनत्योऽनाश्वानधिकोऽधिगुरुः सुधीः ॥४॥

अर्थ–२५. नाभेयः–नाभिराज की सन्तान होने से। **२६. नाभिजः**–नाभिराय से उत्पन्न होने से। **२७. अजातः**–जन्म रहित होने से। **२८. सुव्रतः**–उत्तम व्रतों के धारक होने से। **२९. मनुः**–कर्मभूमि की समस्त व्यवस्था बताने अथवा मनन-ज्ञान रूप होने से। **३०. उत्तमः**–उत्कृष्ट होने से। **३१. अभेद्यः**–किसी के द्वारा भेदन करने योग्य न होने से। **३२. अनत्ययः**–विनाश रहित होने से। **३३. अनाशवान्**–तपश्चरण करने से। **३४. अधिकः**–वास्तविक सुख प्राप्त होने से। **३५. अधिगुरुः**–श्रेष्ठ गुरु होने से। **३६. सुधीः**–उत्तम वचनों के धारक होने से।

सुमेधा विक्रमी स्वामी दुराधर्षो निरुत्सुकः।
विशिष्टः शिष्टभुक् शिष्टः प्रत्ययः कामनोऽनघः ॥५॥

अर्थ–३७. सुमेधा–उत्तम बुद्धि होने से। **३८. विक्रमीः**–पराक्रमी होने से। **३९. स्वामीः**–सबके अधिपति होने से। **४०. दुराधर्षः**–किसी के द्वारा अनादर नहीं किये जा सकने से। **४१. निरुत्सुकः**–सांसारिक विषयों में उत्कण्ठ रहित होने से। **४२. विशिष्टः**–विशेष रूप होने से। **४३. शिष्टभुक्** –शिष्ट पुरुषों का पालन करने से। **४४. शिष्टः**–सदाचार पूर्ण होने से। **४५. प्रत्ययः**–विश्वास अथवा ज्ञान रूप होने से। **४६. कामनः**–मनोहर होने से। **४७. अनघः**–पाप रहित होने से।

क्षेमी क्षेमङ्करोऽक्षय्यः क्षेमधर्मपतिः क्षमी।
अग्राह्यो ज्ञाननिग्राह्यो ध्यानगम्यो निरूत्तरः ॥६॥

अर्थ—४८. क्षेमी—कल्याण से युक्त होने के कारण। **४९. क्षेमंकरः**—भव्य जीवों का कल्याण करने से। **५०. अक्षयः**—क्षय रहित होने से। **५१. क्षेम-धर्मपतिः**—कल्याणकारी धर्म के स्वामी होने से। **५२. क्षमी**—क्षमा से युक्त होने से। **५३. अग्राह्यः**—अल्पज्ञानियों के ग्रहण में न आने से। **५४. ज्ञान-निग्राह्यः**—सम्यग्ज्ञान के द्वारा ग्रहण करने के योग्य होने से। **५५. ध्यान-गम्यः**—ज्ञान-ध्यान के द्वारा जाने जा सकने योग्य होने से। **५६. निरुत्तरः**—सबसे उत्कृष्ट होने से।

सुकृती धातुरिज्यार्हः सुनयश्चतुराननः।
श्रीनिवासश्चतुर्वक्त्रश्चतुरास्यश्चतुर्मुखः ॥७॥

अर्थ—५७. सुकृती—पुण्यवान होने से। **५८. धातुः**—शब्दों के उत्पादक होने से। **५९. इज्यार्हः**—पूजा के योग्य होने से। **६०. सुनयः**—समीचीन नयों से रहित होने से। **६१. चतुराननः**—समवसरण में अतिशय विशेष से चारों ओर मुख दिखने के कारण। **६२. श्रीनिवासः**—भगवान् सर्व शोभाओं के निवास स्थान होने से। **६३. चतुर्वक्त्रः**—चार मुख हैं जिनके वे जिनराज। **६४. चतुरास्यः**—चार मुख हैं जिनके वे जिनराज। **६५. चतुर्मुखः**—चार अनुयोग अर्थ रूप भगवान् के मुख होने से।

सत्यात्मा सत्यविज्ञानः सत्यवाक् सत्यशासनः।
सत्याशीः सत्यसन्धानः सत्यः सत्यपरायणः ॥८॥

अर्थ—६६. सत्यात्मा—सत्य स्वरूप होने से। **६७. सत्यविज्ञानः**—यथार्थ विज्ञान से सहित होने के कारण। **६८. सत्यवाक्**—सत्यवचन होने से। **६९. सत्यशासनः** —सत्य धर्म का उपदेश देने से। **७०. सत्याशीः**—सत्य आशीर्वाद होने से। **७१. सत्यसन्धानः**—प्रतिज्ञा दृढ़ सत्य स्वरूप रखने से। **७२. सत्यः**—शुद्ध मोक्षस्वरूप होने से। **७३. सत्यपरायणः**—सत्य में ही निरन्तर तत्पर रहने से।

स्थेयान्स्थवीयान्नेदीयान्दवीयान्दूरदर्शनः ।
अणोरणीयाननणुर्गुरुराद्यो गरीयसाम् ॥९॥

अर्थ—७४. स्थेयान्—अत्यन्त स्थिर होने से। **७५. स्थवीयान्**—अतिशय स्थूल होने से। **७६. नेदीयान्**—भक्तों के समीपवर्ती होने से। **७७. दवीयान्**—पापों से दूर रहने से। **७८. दूरदर्शनः**—आपके दर्शन दूर से ही होने से।

७९. **अणोः- अणीयान्**—परमाणु से भी सूक्ष्म होने से। ८०. **अनणुः**—अणु रूप न होने से। ८१. **आद्यः गरीयसाम्**—गुरुओं में भी श्रेष्ठ गुरु होने से।

सदायोगः सदाभोगः सदातृप्तः सदाशिवः।
सदागतिः सदासौख्यः सदाविद्यः सदोदयः ॥१०॥

अर्थ—८२. सदायोगः—सदा योग रूप होने से। ८३. **सदाभोगः**—सदा आनन्द के भोक्ता होने से। ८४. **सदातृप्तः**—सदा संतुष्ट होने से। ८५. **सदाशिवः**—सदा कल्याणरूप रहने से। ८६. **सदागतिः**—सदा ज्ञान रूप होने से। ८७. **सदासौख्यः** —सदा सुख रूप होने से। ८८. **सदाविद्यः**—सदा केवलज्ञान रूप विद्या से युक्त होने के कारण। ८९. **सदोदयः**—सदा उदय रूप होने से।

सुघोषः सुमुखः सौम्यः सुखदः सुहितः सुहृत्।
सुगुप्तो गुप्तिभृद् गोप्ता लोकाध्यक्षो दमेश्वरः ॥११॥

अर्थ—९०. सुघोषः—उत्तम ध्वनि होने से। ९१. **सुमुखः**—सुन्दर मुख वाले होने से। ९२. **सौम्यः**—शान्तरूप होने से। ९३. **सुखदः**—सब जीवों को सुखदायी होने से। ९४. **सुहितः**—सबका हित करने से। ९५. **सुहृत्**—उत्तम हृदय होने से। ९६. **सुगुप्तः**—सुरक्षित होने से। ९७. **गुप्तिभृत्**—गुप्तियों को धारण करने से। ९८. **गोप्ता**—सबके रक्षक होने से। ९९. **लोकाध्यक्षः**—तीनों लोकों का साक्षात्कार करने से। १००. **दमेश्वरः**—इन्द्रिय विजय रूपी दम के स्वामी होने से।

॥ इति असंस्कृतादि शत नाम धारक जिनेभ्यो नमो नमः॥७॥

❑ ❑ ❑

अष्टमशतकम्

बृहद्बृहस्पतिर्वाग्मी वाचस्पतिरुदार - धीः।
मनीषी धिषणो धीमाञ्छेमुषीशो गिराम्पतिः ॥१॥

अर्थ—१. बृहद्बृहस्पति—इन्द्रों के गुरु होने से। २. **वाग्मी**—प्रशस्त वचनों के धारक होने से। ३. **वाचस्पतिः**—वचनों के स्वामी होने से। ४. **उदारधीः**—निज-पर हितकारक बुद्धि के धारक होने से। ५. **मनीषी**—मनन शक्ति से युक्त होने के कारण। ६. **धिषणः**—चातुर्यपूर्ण बुद्धि से सहित होने से। ७. **धीमान्**—धारणपटु बुद्धि से सहित होने के कारण। ८. **शेमुशीषः**—बुद्धि के

स्वामी होने से। **९. गिराम्पतिः**—सब प्रकार के वचन (भाषाओं) के स्वामी होने से।

नैक-रूपो नयोत्तुङ्गो नैकात्मानैक - धर्मकृत्।
अविज्ञेयोऽप्रतर्क्यात्मा कृतज्ञः कृतलक्षणः ॥२॥

अर्थ—१०. नैकरूपः—अनेक रूप होने से। **११. नयोतुङ्गः**—नयों के द्वारा उत्कृष्ट अवस्था को प्राप्त होने से। **१२. नैकात्मा**—अनेक गुणों को धारण करने से। **१३. नैकधर्मकृत्**—अनेक धर्मात्मक वस्तु का उपदेश करने से। **१४. अविज्ञेयः**—साधारण पुरुषों के द्वारा नहीं जाने जा सकने से। **१५. अप्रतर्क्यात्मा**—तर्क-वितर्क रहित होने से। **१६.कृतज्ञः**—जीवों के समस्त कृत्य जानने से। **१७. कृत-लक्षणः**—समस्त सुलक्षणों सहित होने से।

ज्ञानगर्भो दयागर्भो रत्नगर्भः प्रभास्वरः।
पद्मगर्भो जगद्गर्भो हेमगर्भः सुदर्शनः ॥३॥

अर्थ—१८. ज्ञानगर्भः—अन्तरंग में ज्ञान होने से। **१९. दयागर्भः**—दयालु हृदय होने से। **२०. रत्नगर्भः**—रत्नत्रय से युक्त होने से। **२१. प्रभास्वरः**—दैदीप्यमान होने से। **२२. पद्मगर्भः**—कमलाकार गर्भाशय में स्थित रहने से। **२३. जगद्गर्भः**—ज्ञान के भीतर समस्त जगत् प्रतिबिम्बत होने से। **२४. हेमगर्भः**—गर्भकल्याण के समय सुवर्ण की वृष्टि होने से। **२५. सुदर्शनः**—सुंदर दर्शन होने के कारण।

लक्ष्मीवांस्त्रिदशाध्यक्षो दृढीयानिन ईशिता।
मनोहरो मनोज्ञाङ्गो धीरो गम्भीर-शासनः ॥४॥

अर्थ—२६. लक्ष्मीवान्—अन्तरंग-बहिरंग लक्ष्मी से युक्त होने से। **२७. त्रिदशाध्यक्षः**—देवों के स्वामी होने से। **२८. दृढीयान्**—अत्यन्त दृढ़ होने से। **२९. इनः**—सबके स्वामी होने से। **३०. ईशिता**—सामर्थ्यशाली होने से। **३१. मनोहरः**—भव्यजीवों का मनहरण करने से। **३२. मनोज्ञांगः**—सुंदर अंगों के धारक होने से। **३३. धीरः**—धैर्यवान होने से। **३४. गम्भीरशासनः**—शासन की गंभीरता होने से।

धर्म-यूपो दया - यागो धर्म - नेमिर्मुनीश्वरः।
धर्मचक्रायुधो देवः कर्महा धर्मघोषणः ॥५॥

अर्थ—३५.धर्मयूपः—धर्म के स्तम्भस्वरूप होने से। **३६. दयायागः**—

दयारूप यज्ञ के करने से। **३७. धर्मनेमिः**—धर्मरूपी चक्र की धुरा होने से। **३८. मुनीश्वरः**—मुनियों के स्वामी होने से। **३९. धर्मचक्रायुधः**—धर्मचक्र रूपी शस्त्र के धारक होने से। **४०. देवः**—आत्मगुणों में क्रीड़ा करने से। **४१. कर्महा**—कर्मों का नाश करने से। **४२. धर्मघोषणः**—धर्म का उपदेश देने से।

अमोघवागमोघाज्ञो निर्मलोऽमोघशासनः।
सुरूपः सुभगस्त्यागी समयज्ञः समाहितः ॥६॥

अर्थ—४३. अमोघवाक्—आपके वचन कभी व्यर्थ नहीं जाते। **४४. अमोघाज्ञः**—आपकी आज्ञा कभी निष्फल नहीं होती। **४५. निर्मलः**—मल रहित होने से। **४६.अमोघशासनः**—आपका शासन सदा सफल रहता है। **४७. सुरूपः**—सुन्दर रूप के धारक होने से। **४८. सुभगः**—उत्तम ऐश्वर्य युक्त होने से। **४९.त्यागी**—आपने परपदार्थों का त्याग कर दिया है। **५०. समयज्ञः**—समय अर्थात् आत्म स्वरूप के ज्ञाता होने से। **५१. समाहितः**—समाधान रूप होने से।

सुस्थितः स्वास्थ्यभाक्स्वस्थो नीरजस्को निरुद्धवः।
अलेपो निष्कलङ्कात्मा वीतरागो गतस्पृहः ॥७॥

अर्थ—५२. सुस्थितः—सुख पूर्वक स्थित रहने से। **५३. स्वास्थ्यभाक्**—आरोग्य की निश्चलता को प्राप्त होने से। **५४. स्वस्थः**—आत्मस्वरूप में स्थित होने से। **५५. नीरजस्कः**—कर्मरूपी रज से रहित होने के कारण। **५६. निरुद्धवः**—सांसारिक उत्सवों से रहित होने के कारण। **५७. अलेपः**—कर्म रूपी लेप से रहित होने से। **५८. निष्कलङ्कात्मा**—कलंक रहित आत्मा वाले होने से। **५९. वीतरागः**—रागादि दोषों से रहित होने के कारण। **६०. गतस्पृहः**—विषयों की इच्छा रहित होने से।

वश्येन्द्रियो विमुक्तात्मा निःसपत्नो जितेन्द्रियः।
प्रशान्तोऽनन्त - धामर्षिर्मङ्गलं मलहानयः ॥८॥

अर्थ—६१. वश्येन्द्रियः—आपने इन्द्रियों को वश में कर लिया है। **६२. विमुक्तात्मा**—कर्म बन्ध से मुक्त आत्मा होने से। **६३. निःसपत्नः**—आपका कोई शत्रु नहीं है। **६४. जितेन्द्रियः**—इन्द्रिय को जीतने वाले होने से। **६५. प्रशान्तः**—अत्यन्त शान्त होने से। **६६. अनन्तधामर्षिः**—अनन्त तेज के

धारक ऋषि होने से। **६७. मंगलं**—मंगलरूप होने से। **६८. मलहा**—मल को नष्ट करने से। **६९. अनयः**—पाप रहित होने से।

अनीदृगुपमाभूतो दिष्टिर्दैवमगोचरः।
अमूर्तो मूर्तिमानेको नैको नानैकतत्त्वदृक् ॥९॥

अर्थ—७०. अनीदृक्—आपके समान अन्य कोई नहीं है। **७१. उपमाभूतः**—सबके लिए उपमा देने योग्य है। **७२. दिष्टिः**—महाभाग्यशाली होने से। **७३. दैवं**—भाग्य स्वरूप होने से। **७४. अगोचरः**—इन्द्रियों के द्वारा जाने नहीं जा सकते। **७५.अमूर्तः**—रूप, रस, गंध एवं स्पर्श रहित होने से। **७६. मूर्तिमान्**—शरीर सहित होने से। **७७. एकः**—अद्वितीय होने से। **७८. नैकः**—अनेक गुण वाले होने से। **७९. नानैकतत्त्वदृक्**—आत्मा को छोड़कर अन्य तत्त्वों में लीन नहीं होने से।

अध्यात्मगम्योऽगम्यात्मा योगविद्योगिवन्दितः।
सर्वत्रगः सदाभावी त्रिकाल-विषयार्थदृक् ॥१०॥

अर्थ—८०. अध्यात्मगम्यः—अध्यात्म शास्त्रों के द्वारा जानने योग्य होने से। **८१. अगम्यात्मा**—मिथ्यादृष्टि जीवों के जानने योग्य न होने से। **८२. योगवित्**—योग के जानकार होने से। **८३. योगिवन्दितः**—योगियों के द्वारा वन्दना किये जाने से। **८४. सर्वत्रगः**—केवलज्ञान की अपेक्षा सब जगह व्याप्त होने से। **८५. सदाभावी**—सदा विद्यमान रहने से। **८६. त्रिकाल-विषयार्थदृक्**—त्रिकाल विषय समस्त पदार्थों को देखने से।

शङ्करः शंवदो दान्तो दमी क्षान्ति-परायणः।
अधिपः परमानन्दः परात्मज्ञः परात्परः ॥११॥

अर्थ—८७. शङ्करः—सबको सुखी करने वाले होने से। **८८. शंवदः**—सुख का मार्ग बतलाने वाले होने से। **८९. दान्तः**—मन को वश में करने से। **९०. दमी**—इन्द्रियों का दमन करने से। **९१. क्षान्तिपरायणः**—क्षमा धारण करने में तत्पर होने से। **९२. अधिपः**—सबके स्वामी होने से। **९३. परमानन्दः** —उत्कृष्ट आनन्द रूप होने से। **९४. परात्मज्ञः**—पर और निज की आत्मा को जानने से। **९५. परात्परः**—श्रेष्ठ से श्रेष्ठ होने से।

त्रिजगद्वल्लभोऽभ्यर्च्यस्त्रि - जगन्मङ्गलोऽदयः।
त्रिजगत्पति-पूज्याङ्घ्रिस्त्रिलोकाग्रशिखामणिः ॥१२॥

अर्थ—९६. त्रिजगद्वल्लभः—तीन लोकों के प्रिय अथवा स्वामी होने से। **९७. अभ्यर्च्यः**—पूज्यनीय होने। **९८. त्रिजगन्मङ्गलोदयः**—तीन लोकों में मंगलदाता होने से। **९९. त्रिजगत्पति पूज्याङ्घ्रि**—इन्द्रों के द्वारा पूज्यनीय चरण होने से। **१००. त्रिलोकाग्रशिखामणिः**—तीन लोक के अग्रभाग पर चूड़ामणि के समान विराजमान होने से।

॥ इति बृहदादि शत नाम धारक जिनेभ्यो नमो नमः॥८॥

नवमशतकम्

त्रिकालदर्शी लोकेशो लोकधाता दृढव्रतः।
सर्वलोकातिगः पूज्यः सर्वलोकैक-सारथिः ॥१॥

अर्थ—१. त्रिकालदर्शी—तीनकाल सम्बन्धी समस्त पदार्थों को देखने वाले होने से। **२. लोकेशः**—लोक के स्वामी होने से। **३. लोकधाता**—समस्त लोगों के पोषक या रक्षक होने से। **४. दृढव्रतः**—व्रतों को स्थिर रखने से। **५. सर्व-लोकातिगः**—सर्व लोकों में श्रेष्ठ होने से। **६. पूज्यः**—पूजा के योग्य होने से। **७. सर्वलोकैक—सारथिः**—सब जीवों को अभीष्ट (मोक्ष) स्थान तक पहुँचाने में समर्थ होने से।

पुराणः पुरुषः पूर्वः कृत-पूर्वाङ्ग - विस्तरः।
आदिदेवः पुराणाद्यः पुरु -देवोऽधिदेवता ॥२॥

अर्थ—८. पुराणः—सबसे प्राचीन होने से। **९. पुरुषः**—आत्मा के श्रेष्ठ गुणों को प्राप्त होने से। **१०. पूर्वः**—सर्वप्रथम होने से। **११. कृतपूर्वाङ्ग-विस्तरः**—अंग और पूर्वों का विस्तार करने से। **१२. आदिदेवः**—देवों में मुख्य होने से। **१३. पुराणाद्यः**—पुराणों में प्रथम पुरुष होने से। **१४. पुरुदेवः**—महान् अथवा प्रथम तीर्थंकर होने से। **१५. अधिदेवता**—देवों के भी देवता होने से।

युगमुख्यो युग - ज्येष्ठो युगादि-स्थिति-देशकः।
कल्याणवर्णः कल्याणः कल्यः कल्याणलक्षणः ॥३॥

अर्थ—१६.युगमुख्यः—इस अवसर्पिणी काल में मुख्य होने से। **१७. युगज्येष्ठः**—इस युग में सबसे श्रेष्ठ होने से। **१८. युगादिस्थितिदेशकः**—कर्मभूमि की स्थिति के मुख्य उपदेशक होने से। **१९. कल्याणवर्णः**—शरीर की कान्ति सुवर्ण के समान होने से। **२०. कल्याणः**—सौभाग्य स्वरूप होने

से। **२१.कल्यः**—सबके कल्याणकारी होने से। **२२. कल्याणलक्षणः**—कल्याण रूप लक्षणों को धारण करने से।

कल्याणप्रकृतिर्दीप्त - कल्याणात्मा विकल्मषः।
विकलङ्कः कलातीतः कलिलघ्नः कलाधरः ॥४॥

अर्थ—२३. कल्याणप्रकृतिः—आपका स्वभाव ही कल्याणरूप होने से। **२४. दीप्तकल्याणात्मा**—सबको प्रकाशित करती आपकी आत्मा कल्याणरूप होने से। **२५. विकल्मषः**—पाप रहित होने से। **२६. विकलङ्कः**—काम आदि कलंक से रहित होने के कारण। **२७. कलातीतः**—शरीर रहित होने से। **२८. कलिलघ्नः**—पापों का नाश करने से। **२९. कलाधरः**—अनेक कलाओं को धारण करने से।

देव - देवो जगन्नाथो जगद्बन्धुर्जगद्विभुः।
जगद्धितैषी लोकज्ञः सर्वगो जगदग्रजः ॥५॥

अर्थ—३०. देवदेवः—इन्द्रादि सब देवों के देव होने से। **३१. जगन्नाथः**—जगत् के स्वामी होने से। **३२. जगद्बन्धुः**—तीन लोक के प्राणियों के बन्धुवत् होने से। **३३. जगद्विभुः**—समस्त जगत् के प्रभु होने से। **३४. जगद्धितैषी**—तीन लोक के प्राणियों का हित करने से। **३५. लोकज्ञः**—तीन लोक को जानने से। **३६. सर्वगः**—समस्त तत्त्व पदार्थों के ज्ञाता होने से। **३७. जगदग्रजः**—जगत् में श्रेष्ठ होने से।

चराचर - गुरुर्गोप्यो गूढात्मा गूढगोचरः।
सद्योजातः प्रकाशात्मा ज्वलज्ज्वलनसत्प्रभः ॥६॥

अर्थ—३८. चराचरगुरुः—त्रस-स्थावर आदि सब जीवों के गुरु होने से। **३९. गोप्यः**—हृदय में बड़े यत्न से स्थापन करने योग्य होने से। **४०. गूढात्मा**—आपका स्वरूप अत्यन्त गुप्त होने से। **४१.गूढगोचरः**—गूढ़ अर्थात् जीवादि पदार्थों को जानने से। **४२. सद्योजातः**—तत्काल में उत्पन्न हुए के समान निर्विकार होने से। **४३. प्रकाशात्मा**—प्रकाशस्वरूप होने से। **४४. ज्वलज्ज्वलनसत्प्रभः**—जलती हुई अग्नि के समान शरीर की प्रभा के धारक होने से।

आदित्यवर्णो भर्माभः सुप्रभः कनकप्रभः।
सुवर्णवर्णो रुक्माभः सूर्यकोटिसमप्रभः ॥७॥

अर्थ—४५.आदित्यवर्णः—सूर्य के समान तेजस्वी होने से। **४६. भर्माभः**—सुवर्ण के समान कान्तिवान होने से। **४७. सुप्रभः**—उत्तमप्रभा से युक्त होने से। **४८. कनकप्रभः**—सुवर्ण के समान आभा वाले होने से। **४९. सुवर्णवर्णः**—सुवर्ण के रंग वाले होने से। **५०. रुक्माभः**—सुवर्ण के रंग वाले होने से। **५१. सूर्यकोटि-समप्रभः**—करोड़ों सूर्य के समान कांति वाले होने से।

तपनीय - निभस्तुङ्गो बालार्काभोऽनल-प्रभः।
सन्ध्याभ्र-बभ्रुर्हेमाभस्तप्त-चामीकरच्छविः ॥८॥

अर्थ—५२. तपनीयनिभः—सुवर्ण के समान भास्वर होने से। **५३. तुङ्गः**—ऊँचा शरीर होने से। **५४. बालार्काभः**—प्रातःकाल के सूर्य के समान बालप्रभा के धारक होने से। **५५. अनलप्रभः**—अग्नि के समान कान्ति वाले होने से। **५६. सन्ध्याभ्रबभ्रुः**—संध्याकाल के बादलों के समान सुन्दर होने से। **५७. हेमाभः**—सुवर्ण के समान आभा वाले होने से। **५८. तप्तचामीकरच्छविः**—तपाये हुए स्वर्ण के समान कांति वाले।

निष्टप्त - कनकच्छायः कनत्काञ्चन-सन्निभः।
हिरण्यवर्णः स्वर्णाभः शातकुम्भनिभप्रभः ॥९॥

अर्थ—५९. निष्टप्तकनकच्छायः—अत्यन्त तपाये हुए सुवर्ण के समान कान्ति वाले होने से। **६०. कनत्काञ्चनसन्निभः**—दैदीप्यमान सुवर्ण के समान उज्ज्वल होने से। **६१. हिरण्यवर्णः**—सुवर्ण के समान वर्ण वाले होने से। **६२.स्वर्णाभः**—सुवर्ण के समान आभा वाले होने से। **६३. शातकुम्भ-निभप्रभः**—स्वर्ण के समान आभा वाले होने से।

द्युम्नाभो जात - रूपाभस्तप्त - जाम्बूनद - द्युतिः।
सुधौतकलधौतश्रीः प्रदीप्तो हाटक-द्युतिः ॥१०॥

अर्थ—६४. द्युम्नाभः—स्वर्ण के समान उज्ज्वल होने से। **६५. जातरूपाभः**—स्वर्ण के समान उज्ज्वल होने से। **६६. तप्तजाम्बूनदद्युतिः**—स्वर्ण के समान उज्ज्वल होने से। **६७. सुधौतकलधौतश्रीः**—तप्त स्वर्ण के समान निर्मल होने से। **६८. प्रदीप्त**—दैदीप्यमान होने से। **६९. हाटकद्युतिः**—तप्त स्वर्ण के समान निर्मल होने से।

शिष्टेष्टः पुष्टिदः पुष्टः स्पष्टः स्पष्टाक्षरः क्षमः।
शत्रुघ्नोऽप्रतिघोऽमोघः प्रशास्ता शासिता स्वभूः ॥११॥

अर्थ—७०. शिष्टेष्टः—शिष्ट अर्थात् उत्तम पुरुषों के इष्ट होने से। **७१. पुष्टिदः**—पुष्टि को देने वाले होने से। **७२. पुष्टः**—परमौदारिक शरीर के पुष्ट होने से। **७३. स्पष्टः**—प्रकट दिखाई देने से। **७४. स्पष्टाक्षरः**—स्पष्ट अक्षर होने से। **७५. क्षमः**—समर्थ होने से। **७६. शत्रुघ्नः**—कर्मरूपी शत्रु का नाश करने से। **७७. अप्रतिघः**—शत्रु रहित होने से। **७८. अमोघः**—सफल होने से। **७९. प्रशास्ता**—उत्तम उपदेशक होने से। **८०. शासिता**—रक्षक होने से। **८१. स्वभूः**—अपने आप उत्पन्न होने से।

शान्तिनिष्ठो मुनिज्येष्ठः शिवतातिः शिवप्रदः।
शान्तिदः शान्तिकृच्छान्तिः कान्तिमान् कामितप्रदः॥१२॥

अर्थ—८२. शान्तिनिष्ठः—शान्त होने से। **८३. मुनिज्येष्ठः**—मुनियों में श्रेष्ठ होने से। **८४.शिवतातिः**—कल्याण परम्परा को प्राप्त होने से। **८५. शिवप्रदः**—मोक्ष प्रदान करने से। **८६. शान्तिदः**—शान्ति को देने वाले होने से। **८७. शान्तिकृत्**—शान्ति के कर्ता होने से। **८८. शान्तिः**—शान्तस्वरूप होने से। **८९. कान्तिमान्**—कान्ति युक्त होने से। **९०. कामितप्रदः**—इच्छित पदार्थ प्रदान करने से।

श्रेयोनिधिरधिष्ठानमप्रतिष्ठः प्रतिष्ठितः।
सुस्थिरः स्थावरः स्थाणुः प्रथीयान्प्रथितः पृथुः ॥१३॥

अर्थ—९१. श्रेयोनिधिः—कल्याण के भण्डार होने से। **९२. अधिष्ठानं**—धर्म का आधार होने से। **९३. अप्रतिष्ठः**—अन्यकृत प्रतिष्ठा से रहित होने से। **९४. प्रतिष्ठितः**—प्रतिष्ठा अर्थात् कीर्ति युक्त होने से। **९५. सुस्थिरः**—अतिशय स्थिर होने से। **९६. स्थावरः**—समवसरण में गमन रहित होने से। **९७. स्थाणुः**—अचल होने से। **९८. प्रथीयान्**—अत्यन्त विस्तृत होने से। **९९. प्रथितः**—प्रसिद्ध होने से। **१००. पृथुः**—ज्ञानादि गुणों की अपेक्षा महान् होने से।

॥ इति त्रिकालदर्श्यादि शत नाम धारक जिनेभ्यो नमो नमः ॥९॥

❑ ❑ ❑

दशमाष्टोत्तरशतम्

दिग्वासा वातरसनो निर्ग्रन्थेशो निरम्बरः।
निष्किञ्चनो निराशंसो ज्ञानचक्षुरमोमुहः ॥१॥

अर्थ—१. दिग्वासा—दिशारूपी वस्त्रों को धारण करने से। **२. वातरसनः**—वायु रूपी करधनी को धारण करने से। **३. निर्ग्रन्थेशः**—परिग्रह रहित मुनियों के स्वामी होने से। **४. निरम्बरः**—वस्त्र रहित होने से। **५. निष्किञ्चनः**—किंचित् मात्र भी परिग्रह नहीं रखने से। **६. निराशंसः**—इच्छा रहित होने से। **७. ज्ञानचक्षुः**—ज्ञानरूपी नेत्र के धारक होने से। **८. अमोमुहः**—मोह से रहित होने से।

तेजोराशिरनन्तौजा ज्ञानाब्धिः शील-सागरः।
तेजोमयोऽमित - ज्योतिर्ज्योतिर्मूर्तिस्तमोऽपहः॥२॥

अर्थ—९. तेजोराशिः—तेज के समूह होने से। **१०. अनन्तौजा**—अनन्त प्रताप के धारक होने से। **११. ज्ञानाब्धिः**—ज्ञान के समुद्र होने से। **१२. शीलसागरः**—शील के समुद्र होने से। **१३. तेजोमयः**—तेज स्वरूप होने से। **१४. अमित-ज्योतिः**—अपरिमित ज्योति के धारक होने से। **१५. ज्योतिमूर्तिः**—भास्वर शरीर होने से। **१६. तमोऽपहः**—अज्ञानरूपी अन्धकार को नष्ट करने से।

जगच्चूड़ा - मणिर्दीप्तः शंवान्विघ्न-विनायकः।
कलिघ्नः कर्मशत्रुघ्नो लोकालोकप्रकाशकः ॥३॥

अर्थ—१७. जगच्चूड़ामणिः—तीनों लोक में मस्तक के रून के समान अतिशय श्रेष्ठ होने से। **१८. दीप्तः**—दैदीप्यमान होने से। **१९. शंवान्**—सुखी अथवा शान्त होने से। **२०. विघ्नविनायकः**—विघ्नों के नाशक होने से। **२१. कलिघ्नः**—कलह को नष्ट करने वाले होने से। **२२. कर्मशत्रुघ्नः**—कर्मरूपी शत्रुओं के घात करने वाले होने से। **२३. लोकालोकप्रकाशकः**—लोक तथा अलोक को प्रकाशित करने से।

अनिद्रालुरतन्द्रालुर्जागरुकः प्रमामयः।
लक्ष्मीपतिर्जगज्ज्योतिर्धर्मराजः प्रजाहितः ॥४॥

अर्थ—२४. अनिद्रालुः—निद्रा रहित होने से। **२५. अतन्द्रालुः**—प्रमाद रहित होने से। **२६. जागरुकः**—अपने स्वरूप की सिद्धि के लिए सदा जागरुक रहने से। **२७. प्रमामयः**—ज्ञान स्वरूप होने से। **२८. लक्ष्मीपतिः**—मोक्षरूपी लक्ष्मी के स्वामी होने से। **२९. जगज्ज्योतिः**—जगत् को प्रकाशित करने से। **३०. धर्मराजः**—धर्म के स्वामी होने से। **३१. प्रजाहितः**—प्रजा

के हितैषी होने से।

मुमुक्षुर्बन्धमोक्षज्ञो जिताक्षो जितमन्मथः।
प्रशान्त-रस-शैलूषो भव्य-पेटक-नायकः ॥५॥

अर्थ—३२. मुमुक्षुः—मोक्ष की इच्छा रखने से। **३३. बंधमोक्षज्ञः**—बंध और मोक्ष का स्वरूप जानने से। **३४. जिताक्षः**—इन्द्रियों को जीतने से। **३५. जितमन्मथः**—कामदेव को जीतने से। **३६. प्रशान्तरसशैलूषः**—शान्त रूप होने से। **३७. भव्य-पेटक-नायकः**—भव्य-समुदाय के नायक होने से।

मूल-कर्त्ताखिल - ज्योतिर्मलघ्नो मूल - कारणः।
आप्तो वागीश्वरः श्रेयाञ्छ्रायसोक्तिर्निरुक्तवाक् ॥६॥

अर्थ—३८. मूलकर्त्ता— धर्म के मुख्य प्रकाशक होने से। **३९. अखिलज्योतिः**—पूर्ण ज्योतिस्वरूप होने से। **४०. मलघ्नः**—राग-द्वेषादि मल का नाश करने से। **४१. मूलकारणः**—मोक्ष के मूल हेतु होने से। **४२. आप्तः**—यथार्थ वक्ता होने से। **४३. वागीश्वरः**—वाणी के स्वामी होने से। **४४. श्रेयान्**—कल्याण स्वरूप होने से। **४५.श्रायसोक्तिः**—वाणी कल्याणस्वरूप होने से। **४६. निरुक्त-वाक्**—निःसंदेह वाणी होने से।

प्रवक्ता वचसामीशो मारजिद्विश्व - भाववित्।
सुतनुस्तनु - निर्मुक्तः सुगतो हत - दुर्नयः ॥७॥

अर्थ—४७. प्रवक्ता—उत्तम वक्ता होने से। **४८. वचसामीशः**—वचनों के स्वामी होने से। **४९. मारजित्**—कामदेव को जीतने से। **५०. विश्वभाव-वित्**—संसार के समस्त पदार्थों को जानने से। **५१. सुतनुः**—उत्कृष्ट शरीर को धारण करने से। **५२. तनुनिर्मुक्तः**—शरीर रहित होने से। **५३. सुगतः**—सम्यग्ज्ञान को धारण करने से। **५४. हतदुर्नयः**—मिथ्या नयों का नाश करने से।

श्रीशः श्री-श्रित - पादाब्जो वीत - भीरभयङ्करः।
उत्सन्न-दोषो निर्विघ्नो निश्चलो लोक-वत्सलः ॥८॥

अर्थ—५५. श्रीशः—अन्तरंग और बाह्य लक्ष्मी के स्वामी होने से। **५६. श्री- श्रितपादाब्जः**—आपके चरण-कमलों की लक्ष्मी सेवा करती है। **५७. वीतभीः**—भय रहित होने से। **५८. अभयङ्करः**—भक्तों का भय दूर करने

से। ५९. **उत्सन्नदोषः**—समस्त दोषों को नष्ट करने से। ६०. **निर्विघ्नः**—विघ्न रहित होने से। ६१. **निश्चलः**—स्थिर होने से। ६२. **लोकवत्सलः**—लोगों को अत्यन्त प्रिय होने से।

लोकोत्तरो लोक - पतिर्लोक - चक्षुरपार-धीः।
धीर-धीर्बुद्ध- सन्मार्गः शुद्धः सूनृत-पूतवाक् ॥९॥

अर्थ—६३. लोकोत्तरः—समस्त लोक में श्रेष्ठ होने से। ६४. **लोकपतिः**—तीन लोक के स्वामी होने से। ६५. **लोकचक्षुः**—लोक समस्त पदार्थों के दर्शक होने से। ६६. **अपारधीः**—अनन्तज्ञान को धारण करने से। ६७. **धीरधीः**—ज्ञान सदा स्थिर रहने से। ६८. **बुद्धसन्मार्गः**—यथार्थ मोक्षमार्ग को जानने से। ६९. **शुद्धः**—शुद्ध स्वरूप होने से। ७०. **सूनृतपूतवाक्**—वचन यथार्थ तथा पवित्र होने से।

प्रज्ञा-पारमितः प्राज्ञो यतिर्नियमितेन्द्रियः।
भदन्तो भद्रकृद् भद्रः कल्प-वृक्षो वर-प्रदः ॥१०॥

अर्थ—७१. प्रज्ञापारमितः—बुद्धि के पारगामी होने से। ७२. **प्राज्ञः**—अतिशय बुद्धिमान होने से। ७३. **यतिः**—मोक्षमार्ग का प्रयत्न करने से। ७४. **नियमितेन्द्रियः**—इन्द्रिय को वश में करने से। ७५. **भदन्तः**—पूज्य होने से। ७६. **भद्रकृत्**—कल्याणकारी होने से। ७७. **भद्रः**—कल्याणस्वरूप होने से। ७८. **कल्पवृक्षः**—इच्छित पदार्थों के दाता होने से। ७९. **वरप्रदः**—इष्ट पदार्थों की प्राप्ति करा देने से।

समुन्मूलित-कर्मारिः कर्म-काष्ठाशुशुक्षणिः।
कर्मण्यः कर्मठः प्रांशुर्हेयादेय-विचक्षणः ॥११॥

अर्थ—८०. समुन्मूलितकर्मारिः—कर्मरूपी शत्रुओं को उखाड़कर फेंक देने से। ८१. **कर्मकाष्ठाशुशुक्षणिः**—कर्मरूपी लकड़ी को जलाने के लिए अग्नि समान होने से। ८२. **कर्मण्यः**—चारित्र में नितान्त कुशल होने से। ८३. **कर्मठ**—क्रिया करने में शूरवीर होने से। ८४. **प्रांशुः**—उत्कृष्ट प्रकाशमान होने से। ८५. **हेयादेय विचक्षणः**—छोड़ने और ग्रहण करने योग्य पदार्थों को जानने में कुशल होने से।

अनन्त - शक्तिरच्छेद्यस्त्रिपुरारि - स्त्रिलोचनः।
त्रिनेत्रस्त्र्यम्बकस्त्र्यक्षः केवलज्ञानवीक्षणः ॥१२॥

अर्थ—८६.अनन्तशक्तिः—अनन्त शक्तियाँ प्रकट होने से। **८७. अच्छेद्यः**—छिन्न-भिन्न करने योग्य न होने से। **८८. त्रिपुरारिः**—जन्म-जरा-मरण इन तीनों का नाश करने से। **८९. त्रिलोचनः**—भूत-भविष्य-वर्तमान तीनों काल की बातों को जानने से। **९०. त्रिनेत्र**—रत्नत्रय रूपी तीन नेत्रों को धारण करने वाले होने से। **९१. त्र्यम्बक**—तीन चक्षु को धारण करने वाले होने से। **९२. त्र्यक्ष**—रत्नत्रय रूप तीन मोक्षरथ के चक्र होने से। **९३. केवलज्ञान-वीक्षण**—केवलज्ञान ही आपका नेत्र होने से।

समन्तभद्रः शान्तारिर्धर्माचार्यो दया-निधिः।
सूक्ष्मदर्शी जितानङ्गः कृपालुर्धर्म-देशकः ॥१३॥

अर्थ—९४. समन्तभद्रः—सर्वथा मंगलस्वरूप होने से। **९५. शान्तारिः**—कर्मरूपी शत्रुओं को शान्त करने से। **९६. धर्माचार्यः**—धर्म के आचार्य होने से। **९७. दयानिधिः**—जीवों पर अतिशय दया करने से। **९८. सूक्ष्मदर्शी**— सूक्ष्म पदार्थों को भी साक्षात् जानने देखने से। **९९. जितानङ्गः**—कामदेव को जीतने से। **१००. कृपालुः**—दयावान् होने से। **१०१. धर्मदेशकः**—धर्म का उपदेश देने से।

शुभम्युः सुखसाद्भूतः पुण्य - राशिरनामयः।
धर्मपालो जगत्पालो धर्म-साम्राज्य-नायकः ॥१४॥

अर्थ—१०२. शुभम्युः—मोक्षरूप शुभ को प्राप्त करने से। **१०३. सुख-साद्भूतः**—सुख को अपने अधीन करने से। **१०४. पुण्यराशिः**—पुण्य की राशि होने से। **१०५. अनामयः**—रोग रहित होने से। **१०६. धर्मपालः**—धर्म की रक्षा करने से। **१०७. जगत्पालः**—जगत् का पालन करने से। **१०८. धर्म-साम्राज्यनायकः**—धर्म रूपी साम्राज्य के स्वामी होने से।

॥ इति दिग्वासाद्यष्टोत्तर शत नाम धारक जिनेभ्यो नमो नमः ॥१०॥

❑ ❑ ❑

उपसंहार

धाम्नाम्पते! तवामूनि, नामान्यागम - कोविदैः।
समुच्चितान्यनुध्यायन्पुमान्पूतस्मृतिर्भवेत् ॥१॥

अन्वयार्थ—(धाम्नाम्पते) हे महातेजस्वी जिनेन्द्र! **(आगम-कोविदैः)** आगम के ज्ञाता विद्वानों के द्वारा **(समुच्चितानि)** संकलित **(अमूनि)** इन

(तव) आपके **(नामानि)** नामों को **(अनुध्यानन्)** ध्यानकर्त्ता **(पुमान्)** मानव **(पूतस्मृतिः)** पवित्र/विशिष्ट स्मरणशक्तिसम्पन्न **(भवेत्)** हो जाता है।

गोचरोऽपि गिरामासां, त्वमवाग्गोचरो मतः।
स्तोता तथाप्यसन्दिग्धं,त्वत्तोऽभीष्ट-फलं भजेत् ॥२॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! **(आसाम्)** इन **(गिराम्)** शब्दों के **(गोचरः)** विषय **[सन्]** होते हुए **(अपि)** भी **(त्वम्)** आप **(अवाग्गोचरः)** वाणी के अगोचर **(मतः)** माने गये हो **(तथापि)** तो भी **(स्तोता)** स्वतनकर्त्ता **(त्वत्तः)** आपसे **(असन्दिग्धम्)** निस्संदेह **(अभीष्टफलम्)** अभिलषित फल को **(भजेत्)** पाता है।

त्वमतोऽसि जगद्बन्धुस्त्वमतोऽसि जगद्भिषक्।
त्वमतोऽसि जगद्धाता, त्वमतोऽसि जगद्धितः ॥३॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! **(अतः)** इसलिए **(त्वम्)** आप **(जगद्बन्धुः)** जगत् के बन्धु **(असि)** हो **(त्वम्)** आप **(जगद्भिषक्)** जगत् वैद्य **(असि)** हो **(जगद्धाता)** जगद् रक्षक **(असि)** हो तथा **(त्वम्)** आप **(जगद्धितः)** जगद्धितैषी हो।

त्वमेकं जगतां ज्योतिस्त्वं द्वि-रूपोपयोगभाक्।
त्वं त्रिरूपैक-मुक्त्यङ्गं, स्वोत्थानन्त-चतुष्टयः ॥४॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! **(त्वम्)** आप **(एकम्)** अनन्य **(जगताम् ज्योतिः)** जगत् के प्रकाशक ज्ञानज्योतिस्वरूप **(त्वम्)** आप **(द्वि-रूपोपयोगभाक्)** ज्ञानदर्शनरूप द्विविध उपयोग के धारक **(त्वम्)** आप **(त्रिरूपैक-मुक्त्यङ्गम्)** त्रिविध मोक्षमार्ग के अंगस्वरूप तथा **(स्वोत्थानन्तचतुष्टयः)** आत्मोत्थ अनन्तचतुष्टय के धारक हो।

त्वं पञ्च-ब्रह्म-तत्त्वात्मा, पञ्च-कल्याण-नायकः।
षड्भेद-भाव-तत्त्वज्ञस्त्वं सप्त-नय-संग्रहः ॥५॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! **(त्वम्)** आप **(पञ्चब्रह्मतत्त्वात्मा)** पञ्चपरमेष्ठी-स्वरूप **(पञ्चकल्याणनायकः)** पञ्चकल्याणकों के स्वामी **(षड्भेदभाव-तत्त्वज्ञः)** जीवादि छह द्रव्यों के स्वरूप के ज्ञाता तथा **(सप्तनयसंग्रहः)** नैगमादि सातों नयों के उपदेशक हो।

दिव्याष्ट-गुण - मूर्तिस्त्वं, नव-केवल-लब्धिकः।
दशावतार-निर्धार्यो, मां पाहि परमेश्वर! ॥६॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! **(त्वम्)** आप **(दिव्याष्टगुणमूर्तिः)** सम्यक्त्वादि अष्टविध गुणस्वरूप **(नवकेवललब्धिकः)** केवलज्ञान उत्पन्न होने पर प्राप्त होने वाली नो क्षायिकलब्धियों से संयुक्त तथा **(दशावतार-निर्धार्यः)** महाबल आदि दश भवों से निर्धार योग्य हो **(परमेश्वर)** हे परमेश्वर! **(माम्)** मुझ भक्त को **(पाहि)** रक्षा कीजिए।

युष्मन्नामावली - दृब्ध, - विलसत्स्तोत्र-मालया।
भवन्तं वरिवस्यामः, प्रसीदानुगृहाण नः ॥७॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! **(युष्मन्नामावलीदृब्धविलसत्स्तोत्रमालया)** आपकी नामावली से गुम्फित सुन्दर स्तोत्रमाला से **(नः)** हम **(भवन्तम्)** आपकी **(वरिवस्यामः)** आराधना करते हैं **(प्रसीद)** प्रसन्न होइये तथा **(अनुग्रहण)** अनुग्रह कीजिए।

इदं स्तोत्रमनुस्मृत्य, पूतो भवति भाक्तिकः।
यः सम्पाठं पठत्येनं, स स्यात्कल्याण-भाजनम् ॥८॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! **(भाक्तिकः)** भक्त मानव **(इदम्)** इस **(स्तोत्रम्)** स्तोत्र को **(अनुस्मृत्य)** स्मरण करके **(पूतः)** पवित्र **(भवति)** हो जाता है तथा **(यः)** जो **(एनम्)** इस **(सम्पाठम्)** प्रशस्त पाठ को **(पठति)** पढ़ता है **(सः)** वह **(कल्याणभाजनम्)** कल्याण का पात्र **(स्यात्)** होता है

ततः सदेदं पुण्यार्थी, पुमान् पठतु पुण्यधीः।
पौरुहूतीं श्रियं प्राप्तुं, परमामभिलाषुकः ॥९॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! **(ततः)** इसलिए **(पुण्यार्थी)** पुण्य का इच्छुक **(पुण्यधीः)** निर्मल बुद्धि वाला तथा **(परमाम्)** प्रशस्त **(पौरुहूतीम्)** इन्द्र सम्बन्धी **(श्रियम्)** विभूति को **(प्राप्तुम्)** पाने को **(अभिलाषुकः)** इच्छुक **(सन्)** होता हुआ मानव **(इदम्)** इस स्तोत्र को **(सदा)** सर्वदा **(पठतु)** पढ़े।

स्तुत्वेति मघवा देवं, चराचर - जगद्गुरुम्।
ततस्तीर्थविहारस्य, व्यधात्प्रस्तावनामिमाम् ॥१०॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! **(इति)** इस प्रकार **(मघवा)** इन्द्र ने **(चराचरजगद्-गुरुम्)** स्थावर और जंगम प्राणियों के गुरु **(देवम्)** जिनेन्द्रदेव की **(स्तुत्वा)** स्तुति करके **(ततः)** पश्चात् **(तीर्थविहारस्य)** मोक्षमार्ग के उपदेशार्थ विविध प्रान्तों में विहारकर्त्ता जिनेन्द्रदेव की **(इमाम्)** यह **(प्रस्तावनाम्)** प्रार्थना **(व्यधात्)** की।

स्तुतिः पुण्यगुणोत्कीर्तिः, स्तोता भव्यः प्रसन्नधीः।
निष्ठितार्थो भवान् स्तुत्यः, फलं नैःश्रेयसं सुखम् ॥११॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! **(पुण्यगुणोत्कीर्तिः)** पवित्र गुणों का प्रशंसापूर्वक कथन **(स्तुतिः)** स्तुति **(प्रसन्नधीः)** निर्मल बुद्धि वाला **(भव्यः)** भव्य **(स्तोता)** स्तुतिकर्त्ता **(निष्ठितार्थः)** समस्त पुरुषार्थ सम्पन्न **(भवान्)** आप **(स्तुत्यः)** स्तवनीय तथा **(नैश्रेयसं सुखम्)** मोक्ष सुख **(फलम्)** स्तुति का फल **(अस्ति)** है।

यः स्तुत्यो जगतां त्रयस्य न पुनः, स्तोता स्वयं कस्यचित्,
ध्येयो योगिजनस्य यश्च न तरां, ध्याता स्वयं कस्यचित्।
यो नन्तॄन् नयते नमस्कृतिमलं, नन्तव्य-पक्षेक्षणः,
सः श्रीमान् जगतां त्रयस्य च गुरुर्देवः पुरुःपावनः ॥१२॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! **(यः)** जो **(जगतां त्रयस्य)** तीनों लोकों के प्राणियों का **(स्तुत्यः)** स्तवनीय **(अस्ति)** है **(पुनः)** किन्तु **(यः)** जो **(स्वयं)** स्वतः **(कस्यचित्)** किसी का **(स्तोता)** स्तवनकर्त्ता **(न)** नहीं है **(यः)** जो **(नतराम्)** सदा **(योगिजनस्य)** योगिजनों का **(ध्येयः)** ध्यान का विषय **(अस्ति)** है किन्तु **(यः)** जो **(स्वयम्)** स्वतः **(कस्यचित्)** किसी का **(ध्याता)** ध्यानकर्त्ता **(नास्ति)** नहीं है **(यः)** जो **(नन्तव्यपक्षेपणः)** नन्तव्य पक्ष का अन्वेषक होता हुआ **(नन्तॄन्)** समस्त महापुरुषों को **(अलम्)** उत्कृष्ट **(नमस्कृतिम्)** नमस्कार को **(नयते)** प्राप्त कराता है तथा **(यः)** जो **(श्रीमान्)** अन्तरंग बहिरंग लक्ष्मी से विभूषित होता हुआ **(पावनः)** अतिपवित्र **(पुरुः)** अरिहन्त देव **(अस्ति)** है **(सः)** वह **(जगतां त्रयस्य)** तीनों लोकों का **(गुरुः)** गुरु **[अस्ति]** है।

तं देवं त्रिदशाधिपार्चित - पदं, घाति - क्षयानन्तरम्,
प्रोत्थानन्त-चतुष्टयं जिनमिनं, भव्याब्जिनीनामिनम्।

मानस्तम्भ-विलोकनानत-जगन्मान्यं त्रिलोकी-पतिम्,
प्राप्ताचिन्त्य-बहिर्विभूतिमनघं, भक्त्या प्रवन्दामहे ॥१३॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! **(त्रिदशाधिपार्चितपदम्)** शत इन्द्रों द्वारा वन्दनीय चरण **(घातिक्षयानन्तरम्)** घातिया कर्मों के क्षय के पश्चात् **(प्रोत्थानन्त-चतुष्टयम्)** उत्पन्न चार अनन्तचतुष्टयों को सम्प्राप्त **(भव्याब्जिनीनाम् इनम्)** भव्यरूप कमलों के विकाशार्थ सूर्य समान **(मानस्तम्भविलोकनानत-जगन्मान्यम्)** मानस्तम्भ के अवलोकन से नम्रीभूत जनता के माननीय **(त्रिलोकी-पतिम्)** लोकत्रय के स्वामी **(प्राप्ताचिन्त्य-बहिर्विभूतिम्)** समवसरणरूप अनुपम विभूति को सम्प्राप्त **(अनघम्)** निर्दोष **(तम्)** उस प्रसिद्ध **(इनम्)** इस **(जिनं देवम्)** जिनेन्द्रदेव को **(भक्त्या)** भक्ति से **(प्रवन्दामहे)** हम सब नमस्कार करते हैं।

॥ इति श्रीभगवज्जिनाष्टोतर सहस्त्रनामस्तोत्रम् समाप्तम्॥

अपराधी प्रजा के लिए दण्डव्यवस्था का स्वरूप

एक से लेकर पाँच कुलकरों ने दोषी मनुष्यों को **'हा'** कहकर अर्थात् खेद है कि तुमने ऐसा अपराध किया है, दण्ड की व्यवस्था की थी।

आगे के पाँच कुलकरों ने **'हा'** के साथ **'मा'** रूप दण्ड की व्यवस्था की थी, **'हा मा'** अर्थात् तुमने बुरा किया आगे ऐसा अपराध मत करो।

शेष कुलकरों ने **'हा मा धिक्'** अर्थात् तुम्हें धिक्कार है। इस प्रकार दण्ड की व्यवस्था की थी। आदिनाथ भगवान् के समय में उक्त प्रकार की दण्ड पद्धति थी।

विशेष दण्ड व्यवस्था की नियोजना करने में सोलहवें कुलकर महाराज भरत का नाम आता है।

रत्नकरण्डक श्रावकाचार

सम्यग्दर्शनाधिकार

नमः श्रीवर्द्धमानाय निर्धूतकलिलात्मने ।
सालोकानां त्रिलोकानां यद्विद्या दर्पणायते ॥१॥

अन्वयार्थ–(निर्धूतकलिलात्मने) नष्ट कर दिया है पाप को आत्मा से जिन्होंने अर्थात् जो वीतराग हैं अथवा जिनकी आत्मा ने हितोपदेश देकर अन्य जीवों को कर्म कलंक से रहित किया है अर्थात् जो हितोपदेशी हैं और **(यद्विद्या)** जिनका केवलज्ञान **(सालोकानां त्रिलोकानाम्)** अलोक सहित तीनों लोकों के विषय में **(दर्पणायते)** दर्पण के समान आचरण करता है अर्थात् जो सर्वज्ञ हैं ऐसे **(श्रीवर्द्धमानाय)** अन्तिम तीर्थंकर श्रीवर्द्धमान स्वामी को अथवा अनन्त-चतुष्टयरूप अन्तरंग व समवसरण आदि बहिरंग लक्ष्मी से वृद्धि को प्राप्त चौबीस तीर्थंकरों के लिए **(नमः)** नमस्कार हो।

देशयामि समीचीनं धर्मं कर्मनिबर्हणम्।
संसारदुःखतः सत्त्वान् यो धरत्युत्तमे सुखे ॥२॥

अन्वयार्थ–[अहम्] मैं समन्तभद्राचार्य **(कर्मनिबर्हणम्)** कर्मों का विनाश करने वाले **(समीचीनम् धर्मम्)** सच्चे धर्म को **(देशयामि)** कहता हूँ **(यः)** जो **(सत्त्वान्)** जीवों को **(संसारदुःखतः)** संसार के दुखों से [उद्धृत्य] निकालकर **(उत्तमे सुखे)** स्वर्ग-मोक्ष आदि के श्रेष्ठ सुख में **(धरति)** धरता है/पहुँचाता है।

सद्दृष्टिज्ञानवृत्तानि धर्मं धर्मेश्वरा विदुः।
यदीयप्रत्यनीकानि भवन्ति भवपद्धतिः ॥३॥

अन्वयार्थ–(धर्मेश्वराः) धर्म के स्वामी तीर्थंकर देव **(सद्दृष्टि-ज्ञानवृत्तानि)** सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र को **(धर्मम्)** धर्म अर्थात् मोक्षमार्ग **(विदुः)** कहते हैं **(यदीयप्रत्यनीकानि)** जिनके विपरीत– मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र **(भवपद्धतिः)** संसार की परिपाटीरूप अधर्म अर्थात् संसार के मार्ग **(भवन्ति)** होते हैं।

श्रद्धानं परमार्थाना-माप्तागम-तपोभृताम् ।
त्रिमूढापोढ-मष्टाङ्गं सम्यग्दर्शन-मस्मयम् ॥४॥

अन्वयार्थ–(परमार्थानाम्) परमार्थभूत/सच्चे **(आप्तागमतपो-भृताम्)** देव, शास्त्र और गुरु का **(त्रिमूढापोढम्)** तीन मूढ़ताओं से रहित **(अष्टाङ्गम्)** आठ अंगों से सहित और **(अस्मयम्)** आठ प्रकार के मदों से रहित **(श्रद्धानम्)** श्रद्धान को **(सम्यग्दर्शनम्)** सम्यग्दर्शन कहा है।

आप्तेनोच्छिन्नदोषेण सर्वज्ञेनागमेशिना ।
भवितव्यं नियोगेन नान्यथा ह्याप्तता भवेत् ॥५॥

अन्वयार्थ–(आप्तेन) आप्त को **(उच्छिन्न-दोषेण)** अठारह दोषों से रहित वीतराग **(सर्वज्ञेन)** सर्वज्ञ और **(आगमेशिना)** आगम का स्वामी–हितोपदेशी **(नियोगेन)** नियम से **(भवितव्यम्)** होना चाहिए **(हि)** क्योंकि **(अन्यथा)** अन्य प्रकार से **(आप्तता)** आप्तपना/देवपना **(न भवेत्)** नहीं हो सकता।

क्षुत्पिपासा - जरातङ्क - जन्मान्तक - भयस्मयाः।
न रागद्वेषमोहाश्च यस्याप्तः स प्रकीर्त्यते ॥६॥

अन्वयार्थ–(यस्य) जिसके **(क्षुत्-पिपासाजरातङ्क-जन्मान्तक-भयस्मयाः)** भूख, प्यास, बुढ़ापा, रोग, जन्म, मरण, भय, गर्व **(रागद्वेष-मोहाः)** राग, द्वेष, मोह **(च)** और चिंता, अरति, निद्रा, आश्चर्य, स्वेद, रोष और खेद ये अठारह दोष **(न)** नहीं हैं **(सः)** वह **(आप्तः)** आप्त/सच्चा देव **(प्रकीर्त्यते)** कहा जाता है।

परमेष्ठी परंज्योतिर्विरागो विमलः कृती ।
सर्वज्ञोऽनादिमध्यान्तः सार्वः शास्तोपलाल्यते ॥७॥

अन्वयार्थ–[सः आप्तः] वह आप्त **(परमेष्ठी)** परमेष्ठी–परम पद में स्थित **(परं-ज्योतिः)** परम ज्योति–केवलज्ञान से सहित **(विरागः)** राग से रहित–रागरूप भावकर्म के नष्ट हो जाने से वीतराग **(विमलः)** विमल–मूल और उत्तर प्रकृतिरूप द्रव्यकर्म के नष्ट हो जाने से **(कृती)** कृतकृत्य **(सर्वज्ञः)** सर्वज्ञ **(अनादिमध्यान्तः)** आदि, मध्य तथा अन्त से रहित **(सार्वः)** सार्व–सर्वहितकर्ता और **(शास्ता)** हितोपदेशक **(उपलाल्यते)** कहा जाता है, ये सब आप्त के नाम हैं।

अनात्मार्थं विना रागैः शास्ता शास्ति सतो हितम्।
ध्वनन् शिल्पिकरस्पर्शान्मुरजः किमपेक्षते ॥८॥

अन्वयार्थ–[सः] वह **(शास्ता)** हितोपदेशक आप्त भगवान् **(रागैः विना)** राग रहित अर्थात् ख्याति, लाभ, पूजा आदि की अभिलाषा के बिना **(अनात्मार्थम्)** अपना प्रयोजन न होने पर भी **(सतः)** सज्जन–भव्यजीवों के **(हितं शास्ति)** हित को कहते हैं अर्थात् धर्म का उपदेश देते हैं जैसे **(शिल्पिकर-स्पर्शात्)** बजाने वाले के हाथ के स्पर्श से **(ध्वनन्)** शब्द करता हुआ **(मुरजः)** मृदंग **(किम्)** क्या **(अपेक्षते)** अपेक्षा रखता है? अर्थात् कुछ भी अपेक्षा नहीं रखता।

आप्तोपज्ञ-मनुल्लङ्घ्य - मदृष्टेष्ट-विरोधकं।
तत्त्वोपदेशकृत्सार्वं शास्त्रं कापथ-घट्टनम् ॥९॥

अन्वयार्थ–(आप्तोपज्ञम्) तीर्थंकर भगवान् के द्वारा कहा गया **(अनुल्लङ्घ्यम्)** उल्लंघन से रहित अर्थात् वादी प्रतिवादी से अजेय **(अदृष्टेष्ट -विरोधकम्)** प्रत्यक्ष और अनुमानादि के विरोध से रहित **(तत्त्वोपदेशकृत्)** तत्त्व का उपदेश करने वाला **(सार्वम्)** सबका हितकारी और **(कापथघट्टनम्)** मिथ्यामार्ग का खण्डन करने वाला **(शास्त्रम्)** शास्त्र कहा है।

विषयाशा-वशातीतो निरारम्भोऽपरिग्रहः ।
ज्ञानध्यानतपोरक्तस्तपस्वी स प्रशस्यते ॥१०॥

अन्वयार्थ–जो **(विषयाशावशातीतः)** विषयों की आशाओं के वश से रहित **(निरारम्भः)** आरम्भों से रहित **(अपरिग्रहः)** परिग्रहों से रहित और **(ज्ञानध्यान-तपोरक्तः)** ज्ञान, ध्यान तथा तप में लवलीन हो **(सः)** वह **(तपस्वी)** गुरु **(प्रशस्यते)** प्रशंसनीय है।

इदमेवेदृशमेव तत्त्वं नान्यन्न चान्यथा ।
इत्यकम्पायसाम्भोवत् सन्मार्गेऽसंशया रुचिः ॥११॥

अन्वयार्थ–(तत्त्वं) जीवादि सात तत्त्व व देव, शास्त्र, गुरु का स्वरूप **(इदम्)** यह **(एव)** ही है **(ईदृशम्)** ऐसा **(एव)** ही है **(अन्यत्)** अन्य **(न)** नहीं है और **(अन्यथा)** अन्य प्रकार भी **(न च)** नहीं है **(इति)** इस तरह **(सन्मार्गे)** देव, शास्त्र, गुरु के प्रवाहरूप समीचीन मोक्षमार्ग के

विषय में **(आयसाम्भोवत्)** लोहे की तलवार आदि की धार पर चढ़े हुए लोहे के पानी के समान **(अकम्पा)** अटल **(रुचिः)** श्रद्धा **(असंशया)** संशय रहित/निःशंकित अंग है।

कर्मपरवशे सान्ते दुःखैरन्तरितोदये ।
पापबीजे सुखेऽनास्था श्रद्धानाकाङ्क्षणा स्मृता ॥१२॥

अन्वयार्थ–(कर्मपरवशे) कर्मों के आधीन **(सान्ते)** अन्तसहित/नश्वर **(दुःखैः)** दुखों से **(अन्तरितोदये)** मिश्रित/बाधित **(च)** और **(पापबीजे)** पाप के कारणभूत **(सुखे)** इन्द्रियजनित सांसारिक सुख में **(अनास्था)** आस्था नहीं होने रूप **(श्रद्धा)** श्रद्धा **(अनाकाङ्क्षणा)** आकांक्षा रहित/ निःकांक्षित अंगरूप **(स्मृता)** मानी गई है।

स्वभावतोऽशुचौ काये, रत्नत्रयपवित्रिते।
निर्जुगुप्सा गुणप्रीतिर्मता निर्विचिकित्सिता ॥१३॥

अन्वयार्थ–(स्वभावतः) स्वभाव से **(अशुचौ)** शुचिता रहित अपवित्र किन्तु **(रत्नत्रय-पवित्रिते)** रत्नत्रय से पवित्र **(काये)** शरीर में **(निर्जुगुप्सा)** ग्लानि रहित **(गुणप्रीतिः)** गुणों में प्रेम होना **(निर्विचिकित्सिता)** ग्लानि रहितपना/ निर्विचिकित्सा **(मता)** मानी गई है।

कापथे पथि दुःखानां कापथस्थेऽप्यसम्मतिः।
असंपृक्ति-रनुत्कीर्ति-रमूढा दृष्टिरुच्यते ॥१४॥

अन्वयार्थ–(दुःखानां) दुखों के **(पथि कापथे)** मार्गस्वरूप मिथ्या-दर्शनादि-रूप कुमार्ग में और **(कापथस्थे अपि)** कुमार्ग में स्थित जीव में भी **(असम्मतिः)** मानसिक सम्मति से रहित **(अनुत्कीर्तिः)** वाचनिक प्रशंसा से रहित और **(असम्पृक्तिः)** शारीरिक सम्पर्क से रहित है वह **(अमूढा दृष्टिः)** मूढ़ता रहित श्रद्धा/अमूढ़दृष्टि अंग **(उच्यते)** कहा जाता है।

स्वयं शुद्धस्य मार्गस्य बालाशक्तजनाश्रयाम्।
वाच्यतां यत्प्रमार्जन्ति तद्वदन्त्युपगूहनम् ॥१५॥

अन्वयार्थ–(स्वयं) स्वभाविकरूप से **(शुद्धस्य मार्गस्य)** शुद्ध/पवित्र रत्नत्रयरूप मार्ग की **(बालाशक्तजनाश्रयां)** अज्ञानी तथा असमर्थ मनुष्यों के आश्रय से होने वाली **(वाच्यतां)** निन्दा को **(यत्)** जो **(प्रमार्जन्ति)**

प्रमार्जित करते हैं–दूर करते हैं **(तत्)** उनके उस निन्दा के दूर करने को अर्थात् प्रमार्जन को **(उपगूहनं)** दोष छिपाने रूप/उपगूहन गुण **(वदन्ति)** कहते हैं।

दर्शनाच्चरणाद्वापि चलतां धर्मवत्सलैः ।
प्रत्यवस्थापनं प्राज्ञैः स्थितिकरणमुच्यते ॥१६॥

अन्वयार्थ–(धर्मवत्सलैः) धर्मस्नेही जनों के द्वारा **(दर्शनात्)** सम्यग्दर्शन से **(वा)** अथवा **(चरणात्)** सम्यक्चारित्र से **(अपि)** भी **(चलताम्)** विचलित होते हुए पुरुषों का **(प्रत्यवस्थापनम्)** फिर से पहले की तरह स्थिर करने को **(प्राज्ञैः)** विद्वानों के द्वारा **(स्थितिकरणम्)** स्व-पर को स्थिर करने रूप/ स्थितिकरण अंग **(उच्यते)** कहा जाता है।

स्वयूथ्यान्प्रति सद्भाव-सनाथापेतकैतवा ।
प्रतिपत्तिर्यथायोग्यं वात्सल्यमभिलप्यते ॥१७॥

अन्वयार्थ–(स्वयूथ्यान्प्रति) अपने सहधर्मी बन्धुओं के प्रति **(सद्भाव-सनाथा)** सद्भावनाओं से सहित **(अपेतकैतवा)** मायाचार रहित **(यथा-योग्यम्)** उनकी योग्यता के अनुसार **(प्रतिपत्तिः)** पूजा आदर-सत्कार **(वात्सल्यम्)** आपसी सौहार्दरूप/वात्सल्य अंग **(अभिलप्यते)** कहा जाता है।

अज्ञानतिमिर-व्याप्ति-मपाकृत्य यथायथम् ।
जिनशासन-माहात्म्य-प्रकाशः स्यात्प्रभावना ॥१८॥

अन्वयार्थ–(अज्ञानतिमिरव्याप्तिम्) अज्ञानरूपी अन्धकार के विस्तार को **(अपाकृत्य)** दूरकर **(यथायथम्)** जैसे-तैसे अपनी शक्ति के अनुसार **(जिनशासनमाहात्म्यप्रकाशः)** जिनशासन के माहात्म्य को प्रकट करना **(प्रभावना)** प्रभाव दिखाने रूप/प्रभावना अंग **(स्यात्)** है।

तावदञ्जनचौरोऽङ्गे ततोऽनन्तमतिः स्मृता ।
उद्दायनस्तृतीयेऽपि तुरीये रेवती मता ॥१९॥

अन्वयार्थ–(तावत्) क्रम से **[प्रथमे]** पहले **(अङ्गे)** अंग में **(अञ्जन-चौरः)** अञ्जन चोर **(ततः)** तदनन्तर/दूसरे अंग में **(अनन्तमतिः)** अनन्तमति **(स्मृता)** स्मरण की गई है **(तृतीये)** तीसरे अंग में **(उद्दायनः)** उद्दायन नाम का राजा **(अपि)** और **(तुरीये)** चौथे अंग में **(रेवती)** रेवती

रानी **(मता)** मानी गयी है।

ततो जिनेन्द्रभक्तोऽन्यो वारिषेणस्ततः परः।
विष्णुश्च वज्रनामा च शेषयोर्लक्ष्यतां गतौ ॥२०॥

अन्वयार्थ–(ततः अन्यः) उससे भिन्न/पाँचवें अंग में **(जिनेन्द्रभक्तः)** जिनेन्द्र-भक्त सेठ **(ततः परः)** उससे आगे/छठवें अंग में **(वारिषेणः)** वारिषेण राजकुमार **(शेषयोः)** शेष दो/सातवें और आठवें अंग में **(विष्णुः)** विष्णुकुमार-मुनि **(च)** और **(वज्रनामा च)** वज्रकुमार नामक मुनि **(लक्ष्यताम्)** प्रसिद्धि को **(गतौ)** प्राप्त हुए।

नाङ्गहीनमलं छेत्तुं दर्शनं जन्मसन्ततिम् ।
न हि मन्त्रोऽक्षरन्यूनो निहन्ति विषवेदनाम् ॥२१॥

अन्वयार्थ–(अङ्गहीनं) निःशंकित आदि अंगों से हीन **(दर्शनम्)** सम्यग्दर्शन **(जन्मसन्ततिम्)** संसार की परम्परा को **(छेत्तुम्)** नष्ट करने के लिए **(अलं न)** समर्थ नहीं है **(हि)** क्योंकि **(अक्षरन्यूनः)** एक अक्षर से भी हीन/कम **(मन्त्रः)** मंत्र **(विषवेदनाम्)** विष की पीड़ा को **(न निहन्ति)** नष्ट नहीं करता।

आपगा-सागर-स्नानमुच्चयः सिकताश्मनाम्।
गिरिपातोऽग्निपातश्च लोकमूढं निगद्यते ॥२२॥

अन्वयार्थ–धर्म समझकर **(आपगासागरस्नानम्)** नदी और समुद्र में स्नान करना **(सिकताश्मनाम्)** बालू और पत्थरों का **(उच्चयः)** ढेर लगाना **(गिरिपातः)** पर्वत से गिरना **(च)** और **(अग्निपातः)** अग्नि में गिरना/ पड़ना **(लोकमूढम्)** लोकमूढ़ता **(निगद्यते)** कही जाती है।

वरोपलिप्सयाशावान् रागद्वेषमलीमसाः ।
देवता यदुपासीत देवतामूढमुच्यते ॥२३॥

अन्वयार्थ–(वरोपलिप्सया) वरदान प्राप्त करने की इच्छा से **(आशावान्)** आशा से युक्त **(रागद्वेषमलीमसाः)** राग-द्वेष से मलिन **(देवताः)** देवताओं को **(यत्)** जो **(उपासीत)** पूजता है वह **(देवतामूढम्)** देवमूढ़ता **(उच्यते)** कही जाती है।

सग्रन्थारम्भ-हिंसानां संसारावर्त-वर्तिनाम्।
पाषण्डिनां पुरस्कारो ज्ञेयं पाषण्डिमोहनम् ॥२४॥

अन्वयार्थ—(सग्रन्थारम्भहिंसानां) परिग्रह, आरम्भ और हिंसा से सहित **(संसारावर्त-वर्तिनाम् पाषण्डिनाम्)** संसार भंवर/चक्र में कारणभूत कार्यों में लीन साधुओं का **(पुरस्कारः)** आदर-सत्कार/आगे करना/पूजा करना **(पाषण्डि-मोहनम्)** पाषण्डि मूढ़ता/ गुरुमूढ़ता **(ज्ञेयम्)** जानने योग्य है।

ज्ञानं पूजां कुलं जातिं बलमृद्धिं तपो वपुः।
अष्टावाश्रित्य मानित्वं स्मयमाहुर्गतस्मयाः ॥२५॥

अन्वयार्थ—(ज्ञानम्) ज्ञान **(पूजाम्)** प्रतिष्ठा/पूजा **(कुलम्)** कुल **(जातिम्)** जाति **(बलम्)** बल **(ऋद्धिम्)** धनसम्पत्ति **(तपः)** तप और **(वपुः)** शरीर **(अष्टौ)** इन आठों का **(आश्रित्य)** आश्रय लेकर **(मानित्वम्)** अभिमानिपना होना **(गतस्मयाः)** गर्व से रहित गणधर आदि देव **(स्मयम्)** गर्व/मद **(आहुः)** कहते हैं।

स्मयेन योऽन्यानत्येति धर्मस्थान् गर्विताशयः।
सोऽत्येति धर्ममात्मीयं न धर्मो धार्मिकैर्विना ॥२६॥

अन्वयार्थ—उपर्युक्त **(स्मयेन)** मद से **(गर्विताशयः)** गर्वित चित्त वाला **(यः)** जो पुरुष **(धर्मस्थान्)** रत्नत्रयरूप धर्म में स्थित **(अन्यान्)** अन्य जीवों को **(अत्येति)** तिरस्कृत करता है **(सः)** वह **(आत्मीयं धर्मम्)** अपने धर्म को **(अत्येति)** तिरस्कृत करता है **[यतः]** क्योंकि **(धार्मिकैः विना)** धर्मात्माओं के बिना **(धर्मः)** धर्म **(न)** नहीं होता।

यदि पापनिरोधोऽन्यसम्पदा किं प्रयोजनम्।
अथ पापास्त्रवोऽस्त्यन्यसम्पदा किं प्रयोजनम् ॥२७॥

अन्वयार्थ—(यदि) अगर **(पापनिरोधः)** पाप का निरोध है अर्थात् रत्नत्रयरूप धर्म का सद्भाव है तो **(अन्यसम्पदा)** कुल ऐश्वर्य आदि अन्य सम्पत्ति से **(किम्)** क्या **(प्रयोजनम्)** मतलब है ? और **(अथ)** यदि **(पापास्त्रवः)** पाप का आस्त्रव अर्थात् मिथ्यादर्शन आदि का सद्भाव **(अस्ति)** है तो **(अन्यसम्पदा)** संसार बढ़ाने वाले कुल ऐश्वर्य आदि अन्य सम्पत्ति से **(किम्)** क्या **(प्रयोजनम्)** मतलब है ?

सम्यग्दर्शनसम्पन्नमपि मातङ्गदेहजम्।
देवा देवं विदुर्भस्मगूढाङ्गारान्तरौजसम् ॥२८॥

अन्वयार्थ—(देवाः) सभी तीर्थंकरदेव **(सम्यग्दर्शनसम्पन्नम्)** सम्यग्दर्शन से सहित **(मातङ्गदेहजम्)** चाण्डाल के शरीर से उत्पन्न अर्थात् चाण्डाल कुल में पैदा हुए को **(अपि)** भी **(भस्मगूढाङ्गारान्तरौजसं)** राख के भीतर ढके हुए अंगार के भीतरी प्रकाश के समान **(देवम्)** सम्माननीय **(विदुः)** कहते हैं।

श्वापि देवोऽपि देवः श्वा जायते धर्मकिल्विषात्।
काऽपि नाम भवेदन्या, सम्पद्धर्माच्छरीरिणाम् ॥२९॥

अन्वयार्थ—(धर्मकिल्विषात्) धर्म और पाप से क्रमशः **(श्वा)** कुत्ता **(अपि)** भी **(देवः)** देव और **(देवः)** देव **(अपि)** भी **(श्वा)** कुत्ता **(जायते)** हो जाता है यथार्थ में **(धर्मात्)** धर्म से **(शरीरिणाम्)** जीवों के **(कापि नाम अन्या)** कोई अनिर्वचनीय **(सम्पत्)** सम्पत्ति **(भवेत्)** होती है।

भयाशास्नेहलोभाच्च कुदेवागमलिङ्गिनाम्।
प्रणामं विनयं चैव न कुर्य्युः शुद्धदृष्टयः ॥३०॥

अन्वयार्थ—(शुद्धदृष्टयः) शुद्ध सम्यग्दृष्टि जीव **(भयाशा-स्नेह-लोभात्)** भय, आशा, प्रेम और लोभ से **(कुदेवागम-लिङ्गिनाम्)** कुदेव, कुशास्त्र और कुगुरुओं की **(विनयम्)** विनय **(च)** और **(प्रणामम्)** प्रणाम को **(एव)** निश्चित ही **(न कुर्य्युः)** न करे।

दर्शनं ज्ञानचारित्रात्साधिमानमुपाश्नुते।
दर्शनं कर्णधारं तन्मोक्षमार्गे प्रचक्षते ॥३१॥

अन्वयार्थ—[यत्] जिस कारण **(ज्ञानचारित्रात्)** ज्ञान और चारित्र की अपेक्षा से **(दर्शनम्)** सम्यग्दर्शन **(साधिमानम्)** श्रेष्ठता या उत्कृष्टता को **(उपाश्नुते)** प्राप्त होता है **[तत्]** उस कारण से **(दर्शनम्)** सम्यग्दर्शन को **(मोक्षमार्गे)** मोक्षमार्ग में **(कर्णधारम्)** खेवटिया **(प्रचक्षते)** कहते हैं।

विद्यावृत्तस्य सम्भूतिस्थितिवृद्धिफलोदयाः।
न सन्त्यसति सम्यक्त्वे बीजाभावे तरोरिव ॥३२॥

अन्वयार्थ—(बीजाभावे) बीज के अभाव में **(तरोः इव)** वृक्ष की तरह **(सम्यक्त्वे असति)** सम्यग्दर्शन के न होने पर **(विद्यावृत्तस्य)** ज्ञान और चारित्र की **(सम्भूति-स्थिति-वृद्धि-फलोदयाः)** उत्पत्ति, स्थिरता, वृद्धि

और फल की प्राप्ति **(न सन्ति)** नहीं होती।

गृहस्थो मोक्षमार्गस्थो निर्मोहो नैव मोहवान्।
अनगारो गृही श्रेयान् निर्मोहो मोहिनो मुनेः ॥३३॥

अन्वयार्थ–(निर्मोहः) मोह–मिथ्यात्व से रहित **(गृहस्थः)** गृहस्थ **(मोक्ष-मार्गस्थः)** मोक्षमार्ग में स्थित है परन्तु **(मोहवान्)** मोह–मिथ्यात्व से सहित **(अनगारः)** मुनि **(नैव)** मोक्षमार्ग में स्थित नहीं है **(मोहिनः)** मोही मिथ्यादृष्टि **(मुनेः)** मुनि की अपेक्षा **(निर्मोहः)** मोहरहित–सम्यग्दृष्टि **(गृही)** गृहस्थ **(श्रेयान्)** श्रेष्ठ **[अस्ति]** है।

न सम्यक्त्वसमं किञ्चित्-त्रैकाल्ये त्रिजगत्यपि।
श्रेयोऽश्रेयश्च मिथ्यात्वसमं नान्यत्तनूभृताम् ॥३४॥

अन्वयार्थ–(तनूभृताम्) प्राणियों के **(त्रैकाल्ये)** तीनों कालों में और **(त्रिजगत्यपि)** तीनों लोकों में भी **(सम्यक्त्वसमम्)** सम्यग्दर्शन के समान **(श्रेयः)** कल्याणरूप **(च)** और **(मिथ्यात्वसमम्)** मिथ्यादर्शन के समान **(अश्रेयः)** अकल्याणरूप **(अन्यत्)** अन्य **(किंचित्)** कुछ भी **(न)** नहीं है।

सम्यग्दर्शनशुद्धा नारक - तिर्यङ् - नपुंसकस्त्रीत्वानि।
दुष्कुलविकृताल्पायुर्दरिद्रतां च व्रजन्ति नाप्यव्रतिकाः ॥३५॥

अन्वयार्थ–(सम्यग्दर्शनशुद्धाः) सम्यग्दर्शन से शुद्ध जीव **(अव्रतिकाः अपि)** व्रत रहित होने पर भी **(नारक-तिर्यङ्-नपुंसकस्त्रीत्वानि)** नारक, तिर्यञ्च नपुंसक और स्त्रीपने को **(च)** और **(दुष्कुलविकृताल्पायु-र्दरिद्रताम्)** नीचकुल, विकलांगता, अल्पायु और दरिद्रता को **(न व्रजन्ति)** प्राप्त नहीं होते।

ओजस्तेजो - विद्यावीर्ययशोवृद्धि - विजयविभवसनाथाः।
माहाकुला महार्था मानवतिलका भवन्ति दर्शनपूताः ॥३६॥

अन्वयार्थ–(दर्शनपूताः) सम्यग्दर्शन से पवित्र जीव **(ओजस्तेजो-विद्या-वीर्य-यशोवृद्धि-विजयविभवसनाथाः)** उत्साह, प्रताप–कान्ति, विद्या–सहजता से सभी कलाओं को ग्रहण करने वाली बुद्धि, विशिष्टबल, विशिष्टख्याति, स्त्री, पुत्र, पौत्र आदि की प्राप्तिरूप वृद्धि, विजय–दूसरे

के परास्त या तिरस्कार से अपने गुणों का उत्कर्ष और विभव–धन-धान्य द्रव्य आदि की प्राप्तिरूप सम्पत्ति इन सबसे सहित **(माहाकुलाः)** उच्च कुलों में उत्पन्न **(महार्थाः)** धर्म, अर्थ, काम व मोक्षरूप चारों महान् पुरुषार्थों को करने वाले और **(मानव-तिलकाः)** मनुष्यों में प्रधान **(भवन्ति)** होते हैं।

अष्टगुणपुष्टितुष्टा दृष्टिविशिष्टाः प्रकृष्टशोभाजुष्टाः।
अमराप्सरसां परिषदि चिरं रमन्ते जिनेन्द्रभक्ताः स्वगे॥३७॥

अन्वयार्थ–(दृष्टिविशिष्टाः) सम्यग्दर्शन से सहित **(जिनेन्द्रभक्ताः)** भगवान् जिनेन्द्र के भक्त पुरुष **(स्वर्गे)** स्वर्ग में **(अमराप्सरसाम्)** देवों और अप्सराओं की **(परिषदि)** सभा में **(अष्टगुणपुष्टितुष्टाः)** अणिमा, महिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व, कामरूपित्व इन आठ गुणों की परिपूर्णता से संतुष्ट/प्रसन्न और **(प्रकृष्टशोभाजुष्टाः)** अन्य देवों की अपेक्षा विशेष शोभा/सुन्दरता से सहित होते हुए **(चिरम्)** बहुत काल तक **(रमन्ते)** रमण करते हैं अर्थात् इन्द्र होते हैं।

नवनिधिसप्तद्वयरत्नाधीशाः सर्वभूमिपतयश्चक्रम् ।
वर्तयितुं प्रभवन्ति स्पष्टदृशःक्षत्रमौलिशेखरचरणाः ॥३८॥

अन्वयार्थ–(स्पष्टदृशः) निर्मल सम्यग्दृष्टि जीव **(नवनिधिसप्तद्वयरत्ना-धीशाः) नव निधियाँ**–काल, महाकाल, नैस्सर्प्य, पाण्डुक, पद्म, माणव, पिंग, शंख और सर्वरत्न इन नौ निधियों तथा **चौदह रत्नों–अजीव रत्न**–चक्र, छत्र, दण्ड, तलवार, मणि, चर्म, काकिड़ी व **सजीव रत्न**–सेनापति, गृहपति, हाथी, घोड़ा, स्त्री, सिलावट (शिल्पकार) और पुरोहित इन चौदह रत्नों के स्वामी तथा **(क्षत्रमौलिशेखरचरणाः)** क्षत्रिय राजाओं के मुकुटों सम्बन्धी कलगियों पर जिनके चरण हैं ऐसे अर्थात् मुकुटबद्ध क्षत्रिय राजाओं से सेवित चरण वाले **(सर्वभूमिपतयः)** समस्त छहखण्डों के स्वामी होते हुए **(चक्र म्)** चक्र रत्न को **(वर्तयितुम्)** चलाने के लिए **(प्रभवन्ति)** समर्थ होते हैं अर्थात् चक्रवर्ती होते हैं।

अमरासुरनरपतिभिर्यमधरपतिभिश्च नूतपादाम्भोजाः।
दृष्ट्या सुनिश्चितार्था वृषचक्रधरा भवन्ति लोकशरण्याः ॥३९॥

अन्वयार्थ—(दृष्ट्या) सम्यग्दर्शन के माहात्म्य से **(सुनिश्चितार्थाः)** जिन्होंने पदार्थ का अच्छी तरह निश्चय किया है ऐसे सम्यग्दृष्टि जीव **(अमरा-सुरनरपतिभिः)** देवेन्द्रों असुरेन्द्रों व नरेन्द्रों से **(च)** और **(यमधरपतिभिः)** मुनियों के स्वामी गणधरों के द्वारा **(नूतपादाम्भोजाः)** स्तुत चरणकमल वाले **(लोकशरण्याः)** तीनों लोकों के शरणभूत ऐसे **(वृषचक्रधराः)** धर्मचक्र के धारक तीर्थंकर **(भवन्ति)** होते हैं।

शिव-मजर - मरुज-मक्षय - मव्याबाधं विशोकभयशङ्कम्।
काष्ठागतसुखविद्या-विभवं विमलं भजन्ति दर्शनशरणाः ॥४०॥

अन्वयार्थ—(दर्शनशरणाः) जैनदर्शन की शरण/आश्रय को प्राप्त सम्यग्दृष्टि जीव **(अजरम्)** बुढ़ापा रहित **(अरुजम्)** रोगरहित **(अक्षयम्)** क्षयरहित **(अव्याबाधम्)** बाधारहित **(विशोक-भयशङ्कम्)** शोक, भय तथा शंका-रहित **(काष्ठागतसुखविद्याविभवम्)** पराकाष्ठा/अंतिम सीमा को प्राप्त अनन्तसुख और अनन्तज्ञानरूप वैभव वाले **(विमलम्)** द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्म से रहित निर्मल **(शिवम्)** मोक्ष को **(भजन्ति)** प्राप्त होते हैं।

(वसन्ततिलका छन्द)

देवेन्द्रचक्र महिमानममेयमानं
राजेन्द्रचक्र मवनीन्द्रशिरोऽर्चनीयम्।
धर्मेन्द्रचक्रमधरीकृतसर्वलोकं
लब्ध्वा शिवं च जिनभक्तिरुपैति भव्यः ॥४१॥

अन्वयार्थ—(जिनभक्तिः) जिनेन्द्रदेव की भक्ति से सहित **(भव्यः)** सम्यग्दृष्टि पुरुष **(अमेय-मानम्)** अपरिमित पूजा अथवा ज्ञान को **(देवेन्द्रचक्र-महिमानम्)** इन्द्रसमूह की महिमा को **(अवनीन्द्र-शिरोऽर्चनीयम्)** राजाओं के मस्तक से पूजनीय **(राजेन्द्रचक्रम्)** चक्रवर्ती के चक्र रत्न को **(च)** और **(अधरीकृत-सर्वलोकम्)** समस्त लोक को नीचा करने वाले **(धर्मेन्द्र-चक्रम्)** तीर्थंकर के धर्मचक्र को **(लब्ध्वा)** प्राप्तकर **(शिवम्)** मोक्ष को **(उपैति)** प्राप्त होता है।

(आर्या छन्द)

अन्यूनमनतिरिक्तं याथातथ्यं विना च विपरीतात्।
निःसंदेहं वेद यदाहुस्तज्ज्ञानमागमिनः ॥४२॥

अन्वयार्थ–(यत्) जो **[वस्तुस्वरूपम्]** वस्तु के स्वरूप को **(अन्यूनम्)** न्यूनता रहित **(अनतिरिक्तम्)** अधिकता रहित **(विपरीतात् विना)** विपरीतता रहित **(च)** और **(निःसंदेहं)** संदेह रहित **(याथातथ्यम्)** जैसा का तैसा **(वेद)** जानता है **(तत्)** उसको **(आगमिनः)** आगम के ज्ञाता गणधर आदि देव **(ज्ञानम्)** सम्यग्ज्ञान **(आहुः)** कहते हैं।

प्रथमानुयोगमर्थाख्यानं चरितं पुराणमपि पुण्यम्।
बोधिसमाधिनिधानं बोधति बोधः समीचीनः ॥४३॥

अन्वयार्थ–(समीचीनः बोधः) सम्यक् श्रुतज्ञान **(अर्थाख्यानम्)** परमार्थभूत विषय का प्रतिपादन करने वाला **(पुण्यम्)** पुण्यवर्धक **(चरितम्)** एक पुरुष के आश्रित चरित **(अपि)** और **(पुराणम्)** त्रेशठशलाका पुरुषों से सम्बन्धित पुराण **(बोधि-समाधिनिधानम्)** बोधि/रत्नत्रय और समाधि/धर्म शुक्लध्यान की खानरूप **(प्रथमानुयोगम्)** प्रथमानुयोग को **(बोधति)** जानता है।

लोकालोकविभक्ते-र्युगपरिवृत्तेश्चतुर्गतीनां च।
आदर्शमिव तथा मतिरवैति करणानुयोगं च ॥४४॥

अन्वयार्थ–(तथा) प्रथमानुयोग की तरह **(मतिः)** मननरूप श्रुतज्ञान **(लोका-लोकविभक्तेः)** लोक और अलोक के विभाग **(युगपरिवृत्तेः)** युगों के परिवर्तन **(च)** और **(चतुर्गतीनाम्)** चारों गतियों का स्वरूप **(आदर्शम्)** दर्पण के **(इव)** समान दिखाने वाले **(करणानुयोगम् च)** करणानुयोगरूप शास्त्र को भी **(अवैति)** जानता है।

गृहमेध्यनगाराणां चारित्रोत्पत्तिवृद्धिरक्षाङ्गम्।
चरणानुयोगसमयं सम्यग्ज्ञानं विजानाति ॥४५॥

अन्वयार्थ–(सम्यग्ज्ञानम्) द्रव्यभावरूप सम्यग्ज्ञान **(गृहमेध्यनगाराणां)** गृहस्थ और मुनियों के **(चारित्रोत्पत्तिवृद्धिरक्षाङ्गम्)** चारित्र की उत्पत्ति,

वृद्धि और रक्षा के कारणभूत **(चरणानुयोग-समयम्)** चरणानुयोग शास्त्र को **(विजा-नाति)** जानता है।

जीवाजीवसुतत्त्वे पुण्यापुण्ये च बन्धमोक्षौ च।
द्रव्यानुयोगदीपः श्रुतविद्यालोकमातनुते ॥४६॥

अन्वयार्थ-(द्रव्यानुयोग-दीपः) द्रव्यानुयोगरूपी दीपक **(जीवाजीव-सुतत्त्वे)** जीव और अजीवरूप प्रमुख तत्त्वों को **(पुण्यापुण्ये)** पुण्य और पाप को **(च)** और **(बन्धमोक्षौ)** बन्ध और मोक्ष को तथा **(च)** च शब्द से आस्रव, संवर और निर्जरा इन उपर्युक्त नौ पदार्थों के स्वरूप के कथनरूप **(श्रुतविद्यालोकम्)** श्रुतज्ञानरूप प्रकाश को **(आतनुते)** फैलाता है।

सम्यक्चारित्राधिकार

(आर्या छन्द)

मोहतिमिरापहरणे दर्शनलाभादवाप्तसंज्ञानः।
रागद्वेषनिवृत्त्यै चरणं प्रतिपद्यते साधुः ॥४७॥

अन्वयार्थ-(मोहतिमिरापहरणे) मोहरूपी अन्धकार के दूर होने पर **(दर्शन-लाभात्)** सम्यग्दर्शन की प्राप्ति से **(अवाप्तसंज्ञानः)** प्राप्त हुआ है सम्यग्ज्ञान जिसे ऐसा **(साधुः)** सज्जन/भव्यजीव **(रागद्वेषनिवृत्त्यै)** रागद्वेष की निवृत्ति के लिए **(चरणम्)** सम्यक्चारित्र को **(प्रतिपद्यते)** प्राप्त होता है।

रागद्वेषनिवृत्तेर्हिंसादिनिवर्त्तना कृता भवति।
अनपेक्षितार्थवृत्तिः कः पुरुषः सेवते नृपतीन् ॥४८॥

अन्वयार्थ-(रागद्वेषनिवृत्तेः) रागद्वेष की निवृत्ति से **(हिंसादिनिवर्तना)** हिंसादि पापों की निवृत्ति **(कृता भवति)** की गई/स्वयं होती है **[यतः]** क्योंकि **(अनपेक्षितार्थवृत्तिः)** अपेक्षा से रहित आजीविका वाला **(कः पुरुषः)** कौन पुरुष **(नृपतीन्)** राजाओं की **(सेवते)** सेवा करता है? अर्थात् कोई नहीं।

हिंसानृतचौर्य्येभ्यो मैथुनसेवापरिग्रहाभ्यां च।
पापप्रणालिकाभ्यो विरतिः सञ्ज्ञस्य चारित्रम् ॥४९॥

अन्वयार्थ—(सज्ञस्य) सम्यग्ज्ञानी का **(पापप्रणालिकाभ्यः)** पाप के पनाले स्वरूप **(हिंसानृतचौर्य्येभ्यः)** हिंसा, झूठ, चोरी से **(च)** और **(मैथुनसेवा-परिग्रहाभ्याम्)** कुशील व परिग्रह से **(विरतिः)** विरक्त होना **(चारित्रम्)** चारित्र **[कथ्यते]** कहा जाता है।

सकलं विकलं चरणं तत्सकलं सर्वसङ्गविरतानाम्।
अनगाराणां विकलं सागाराणां ससङ्गनाम् ॥५०॥

अन्वयार्थ—(तत्) वह **(चरणम्)** चारित्र **(सकलम्)** सकल/महाव्रत और **(विकलम्)** विकल/अणुव्रतरूप दो प्रकार है उनमें **(सर्वसङ्ग-विरतानाम्)** समस्त परिग्रहों से विरक्त **(अनगाराणाम्)** अनगार/मुनियों के **(सकलम्)** सकलचारित्र और **(ससङ्गनाम्)** घर आदि परिग्रह सहित **(सागाराणाम्)** सागारों/गृहस्थों के **(विकलम्)** विकलचारित्र होता है।

गृहिणां त्रेधा तिष्ठत्यणु-गुण-शिक्षाव्रतात्मकं चरणम्।
पञ्चत्रिचतुर्भेदं त्रयं यथासंख्य-माख्यातम् ॥५१॥

अन्वयार्थ—(गृहिणाम्) गृहस्थों का **(चरणम्)** चारित्र **(अणुगुणशिक्षा-व्रतात्मकम्)** अणुव्रत, गुणव्रत और शिक्षाव्रतरूप **(त्रेधा)** तीन प्रकार **(तिष्ठति)** होता है **[तत्]** वह **(त्रयम्)** तीनों प्रकार चारित्र **(यथासंख्यम्)** क्र म से **(पञ्च-त्रि-चतुर्भेदम्)** पाँच, तीन और चार भेदरूप **(आख्यातम्)** कहा गया है।

अणुव्रताधिकार

प्राणातिपात-वितथव्याहार -स्तेय - काम - मूर्च्छाभ्यः।
स्थूलेभ्यः पापेभ्यो, व्युपरमणमणुव्रतं भवति ॥५२॥

अन्वयार्थ—(प्राणातिपातवितथव्याहारस्तेयकाममूर्च्छाभ्यः) हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह इन **(स्थूलेभ्यः)** स्थूल **(पापेभ्यः)** पापों से **(व्युपरमणम्)** विरत होना **(अणुव्रतम्)** अणुव्रत **(भवति)** होता है।

सङ्कल्पात्कृतकारित-मननाद्योगत्रयस्य चरसत्त्वान्।
न हिनस्ति यत्तदाहुः स्थूलवधाद्विरमणं निपुणाः ॥५३॥

अन्वयार्थ—(यत्) जो **(योगत्रयस्य)** मन, वचन और काय के **(कृत-कारित-मननात्)** कृत, कारित और अनुमोदनारूप **(सङ्कल्पात्)** संकल्प से **(चरसत्त्वान्)** त्रस जीवों को **(न हिनस्ति)** नहीं मारता है **(तत्)** उसकी

उस क्रिया को **(निपुणाः)** गणधर आदि देव **(स्थूलवधात्)** स्थूलहिंसा से **(विरमणम्)** विरक्त होना अर्थात् अहिंसाणुव्रत **(आहुः)** कहते हैं।

छेदनबन्धनपीडन - मतिभारारोपणं व्यतीचाराः।
आहारवारणापि च स्थूलवधाद्व्युपरतेः पञ्च ॥५४॥

अन्वयार्थ–(स्थूलवधाद्व्युपरतेः) स्थूलवध से विरत श्रावक के **(छेदन-बन्धन-पीडनम्)** छेदना, बाँधना, पीड़ा देना **(अतिभारारोपणम्)** अधिक भार लादना **(अपि च)** और **(आहार-वारणा)** आहार का रोकना **[एते]** ये **(पञ्च)** पाँच **(व्यतीचाराः)** अतिचार हैं।

स्थूलमलीकं न वदति न परान् वादयति सत्यमपि विपदे।
यत्तद्वदन्ति सन्तः स्थूलमृषावादवैरमणम् ॥५५॥

अन्वयार्थ–(यत्) जो **(स्थलूम्)** स्थूल **(अलीकम्)** झूठ को **(न वदति)** न स्वयं बोलता है **(न परान् वादयति)** न दूसरों से बुलवाता है और ऐसा **(सत्यम् अपि)** सत्य भी न स्वयं बोलता है न दूसरों से बुलवाता है जो **(विपदे)** दूसरों की विपत्ति के लिए हो **(तत्)** उसकी उस क्रिया को **(सन्तः)** सत्पुरुष **(स्थूल-मृषावाद-वैरमणम्)** स्थूल असत्यकथन/झूठ का त्याग अर्थात् सत्य अणुव्रत **(वदन्ति)** कहते हैं।

परिवादरहोभ्याख्या पैशून्यं कूटलेखकरणं च।
न्यासापहारितापि च व्यतिक्रमाः पञ्च सत्यस्य ॥५६॥

अन्वयार्थ–(परिवादरहोभ्याख्या) मिथ्योपदेश/दोषारोपण, रहोभ्याख्यान/रहस्योद्घाटन **(पैशून्यम्)** चुगलखोरी **(च)** तथा **(कूटलेखकरणम्)** कूटलेख/ झूठे दस्तावेज लिखना **(अपि च)** और **(न्यासापहारिता)** धरोहर को हड़प करने के वचन कहना व धरोहर को हड़प लेना **[एते]** ये **(पञ्च)** पाँच **(सत्यस्य)** सत्य अणुव्रत के **(व्यतिक्रमाः)** अतिचार **[सन्ति]** हैं।

निहितं वा पतितं वा सुविस्मृतं वा परस्वमविसृष्टं।
न हरति यन्न च दत्ते तदकृशचौर्य्यादुपारमणम् ॥५७॥

अन्वयार्थ–(यत्) जो **(निहितम्)** रखी हुई **(वा)** अथवा **(पतितम्)** गिरी हुई **(वा)** अथवा **(सुविस्मृतम्)** भूली हुई **(वा)** और **(अविसृष्टम्)** बिना दी गई **(परस्वम्)** अन्य की वस्तु को **(न हरति)** न लेता है **(च)** और **[अन्यस्मै]** दूसरे के लिए **(न दत्ते)** न देता है **(तत्)** उसकी वह क्रिया

(अकृशचौर्यात् उपारमणम्) स्थूल चोरी से परित्यागरूप अचौर्य अणुव्रत है।

चौरप्रयोगचौरार्थादानविलोपसदृशसन्मिश्राः ।
हीनाधिकविनिमानं पञ्चास्तेये व्यतीपाताः ॥५८॥

अन्वयार्थ–(चौरप्रयोगचौरार्थादानविलोपसदृशसन्मिश्राः) चौर-प्रयोग–अन्य को चोरी के उपाय बताना या प्रोत्साहन देना, चौरार्थादान–चोरों के द्वारा चुराये गए माल धन को ग्रहण करना, विलोप–राजकीय नियमों को उल्लंघन करना, सदृशसन्मिश्र–अधिक मूल्य की वस्तुओं में उसी के समान कम मूल्य की वस्तुओं को मिलाना **(च)** और **(हीनाधिक-विनिमानम्)** हीनाधिक-विनिमान– नापने तौलने के गज/मीटर बाँट आदि को लेने के बड़े व ज्यादा तथा देने के छोटे व कम रखना **[एते]** ये **(पंच)** पाँच **(अस्तेये)** अचौर्य अणुव्रत के **(व्यतीपाताः)** अतिचार **[सन्ति]** हैं।

न तु परदारान् गच्छति न परान् गमयति च पापभीतेर्यत्।
सा परदार-निवृत्तिः स्वदार-सन्तोष-नामापि ॥५९॥

अन्वयार्थ–(यत्) जो **(पापभीतेः)** पाप के भय से **(परदारान्)** परस्त्रियों के प्रति **(न तु)** न तो **(गच्छति)** स्वयं गमन करता है **(च)** और **(न परान्)** न दूसरों को **(गमयति)** गमन कराता है **(सा)** वह क्रिया **(परदार-निवृत्तिः)** परस्त्री-त्यागरूप **(अपि)** एवम् **(स्वदारसन्तोषनाम)** स्वदार-संतोष नामक ब्रह्मचर्य अणुव्रत है।

अन्यविवाहाकरणानङ्गक्रीडा-विटत्व-विपुलतृषः ।
इत्वरिकागमनं चास्मरस्य पञ्च व्यतीचाराः ॥६०॥

अन्वयार्थ–(अन्यविवाहाकरणानङ्गक्रीडा-विटत्व-विपुलतृषः) अन्य विवाहाकरण–परिवार को छोड़कर अन्य के बेटे-बेटियों का विवाह सम्बन्ध कराना, अनंगक्रीड़ा–काम सेवन के अंगों को छोड़कर अन्य अंगों से कामसेवन करना, विटत्व–शरीर से कामुक चेष्टा व वचनों से गालियाँ देना, जारपना स्त्रियों के स्वाँग/वेश बनाना, विपुलतृषा–कामसेवन की तीव्र अभिलाषा रखना **(इत्वरिका-गमनं च)** और इत्वरिकागमनं–व्यभिचारिणी स्त्रियों के यहाँ आना-जाना और उनसे सम्बन्ध रखना ये

(पञ्च) पाँच **(अस्मरस्य)** ब्रह्मचर्य अणुव्रत के **(व्यतीचारः)** अतिचार हैं।

धनधान्यादिग्रन्थं परिमाय ततोऽधिकेषु निःस्पृहता।
परिमितपरिग्रहः स्यादिच्छापरिमाणनामापि ॥६१॥

अन्वयार्थ—(धनधान्यादिग्रन्थम्) धन-धान्यादि परिग्रहों को **(परिमाय)** परिमित/सीमित कर **(ततः)** उनसे **(अधिकेषु)** अधिक परिग्रहों में **(निःस्पृहता)** इच्छा रहित होना **(परिमितपरिग्रहः च)** परिमित परिग्रह **(अपि)** अथवा **(इच्छा-परिमाणनाम)** इच्छापरिमाण नामक अणुव्रत **(स्यात्)** होता है।

अतिवाहनातिसंग्रह - विस्मयलोभातिभारवहनानि।
परिमितपरिग्रहस्य च विक्षेपाः पञ्च लक्ष्यन्ते ॥६२॥

अन्वयार्थ—(अतिवाहनातिसंग्रहविस्मयलोभातिभारवहनानि) अति-वाहन, अतिसंग्रह, अतिविस्मय, अतिलोभ और अतिभारवहन **[एते]** ये **(पञ्च)** पाँच **(परिमित-परिग्रहस्य च)** परिग्रह परिमाण अणुव्रत के **(विक्षेपाः)** अतिचार **(लक्ष्यन्ते)** निश्चित किए जाते हैं।

पञ्चाणुव्रतनिधयो निरतिक्रमणाः फलन्ति सुरलोकम्।
यत्रावधिरष्टगुणा दिव्यशरीरं च लभ्यन्ते ॥६३॥

अन्वयार्थ—(निरतिक्रमणाः) अतिचार रहित **(पञ्चाणुव्रतनिधयः)** पाँच अणुव्रतरूपी निधियाँ **(सुरलोकम्)** स्वर्गलोक को **(फलन्ति)** फलती/देती हैं **(यत्र)** जिस स्वर्गलोक में **(अवधिः)** अवधिज्ञान **(अष्टगुणाः)** अणिमा आदि आठ गुण/ऋद्धियाँ **(च)** और **(दिव्यशरीरम्)** सप्त धातु रहित सुन्दर वैक्रियिक शरीर **(लभ्यन्ते)** प्राप्त होते हैं।

मातङ्गो धनदेवश्च वारिषेणस्ततः परः।
नीली जयश्च सम्प्राप्ताः पूजातिशयमुत्तमम् ॥६४॥

अन्वयार्थ—अणुव्रतधारियों में **(मातङ्गः)** यमपाल नामक चाण्डाल **(धनदेवः)** धनदेव **(वारिषेणः)** वारिषेण **(ततः परः)** उसके बाद **(नीली)** वणिक्पुत्री नीली **(च)** और **(जयः)** जयकुमार क्रम से अहिंसा आदि अणुव्रतों में **(उत्तमम्)** उत्तम **(पूजातिशयम्)** पूजा के अतिशय को

(सम्प्राप्ताः) प्राप्त हुए हैं।

धनश्रीसत्यघोषौ च तापसारक्षकावपि।
उपाख्येयास्तथा श्मश्रु-नवनीतो यथाक्रमम् ॥६५॥

अन्वयार्थ—(तथा) उसी प्रकार **(धनश्रीसत्यघोषौ च)** धनश्री और सत्यघोष **(तापसारक्षकौ)** तपस्वी और कोतवाल **(अपि)** और **(श्मश्रु-नवनीतः)** श्मश्रु-नवनीत **(यथाक्रमम्)** क्रम से हिंसादि पाँच पापों में **(उपाख्येयाः)** उपाख्यान करने के योग्य हैं—दृष्टान्त देने के योग्य हैं।

मद्यमांसमधुत्यागैः सहाणुव्रतपञ्चकम्।
अष्टौ मूलगुणानाहुर्गृहिणां श्रमणोत्तमाः ॥६६॥

अन्वयार्थ—(श्रमणोत्तमाः) मुनियों में उत्तम गणधरादिदेव **(मद्य-मांसमधु-त्यागैः सह)** मद्य, मांस और मधु के त्याग के साथ **(अणुव्रत-पञ्चकम्)** पाँच अणुव्रतों को **(गृहिणां)** गृहस्थों के **(अष्टौ)** आठ **(मूलगुणान्)** मूलगुण **(आहुः)** कहते हैं।

गुणव्रताधिकार

(आर्या छन्द)

दिग्व्रतमनर्थदण्ड-व्रतं च भोगोपभोगपरिमाणम्।
अनुबृंहणाद्गुणाना-माख्यान्ति गुणव्रतान्यार्याः ॥६७॥

अन्वयार्थ—(आर्याः) तीर्थंकरदेव आदि उत्तम पुरुष **(गुणानाम्)** मूलगुणों की **(अनुबृंहणात्)** वृद्धि करने के कारण से **(दिग्व्रतम्)** दिग्व्रत को **(अनर्थ-दण्ड-व्रतम्)** अनर्थदण्डव्रत को **(च)** और **(भोगोपभोग-परिमाणम्)** भोगोपभोग-परिमाणव्रत को **(गुणव्रतानि)** गुणव्रत **(आख्यान्ति)** कहते हैं।

दिग्वलयं परिगणितं कृत्वातोऽहं बहिर्न यास्यामि।
इति सङ्कल्पो दिग्व्रत-मामृत्यणुपापविनिवृत्त्यै ॥६८॥

अन्वयार्थ—(आमृत्यणुपापविनिवृत्त्यै) मरणपर्यन्त सूक्ष्म पापों की निवृत्ति के लिए **(दिग्वलयं)** दिशाओं के समूह को **(परिगणितं)** मर्यादा सहित **(कृत्वा)** करके **(अहम्)** मैं **(अतः)** इससे **(बहिः)** बाहर **(न)** नहीं **(यास्यामि)** जाऊँगा **(इति)** इस प्रकार **(सङ्कल्पः)** संकल्प या प्रतिज्ञा **(दिग्व्रतम्)** दिग्व्रत है।

मकराकरसरिदटवी-गिरि-जनपदयोजनानि मर्यादाः।
प्राहुर्दिशां दशानां प्रतिसंहारे प्रसिद्धानि ॥६९॥

अन्वयार्थ—(दशानाम् दिशाम्) दशों दिशाओं के **(प्रतिसंहारे)** परिमाण/सीमांकन में **(प्रसिद्धानि)** प्रसिद्ध **(मकराकर-सरिदटवी-गिरि-जनपद-योजनानि)** समुद्र, नदी, पहाड़ी-जंगल, पर्वत, शहर और योजनों को **(मर्यादाः)** मर्यादा/ सीमा **(प्राहुः)** कहते हैं।

अवधेर्बहिरणुपाप-प्रतिविरतेर्दिग्व्रतानि धारयताम्।
पञ्चमहाव्रतपरिणतिमणुव्रतानि प्रपद्यन्ते ॥७०॥

अन्वयार्थ—(दिग्व्रतानि) दिग्व्रतों को **(धारयताम्)** धारण करने वाले पुरुषों के **(अणुव्रतानि)** अणुव्रत **(अवधेः)** की हुई मर्यादा के **(बहिः)** बाहर **(अणुपापप्रतिविरतेः)** सूक्ष्म पापों की निवृत्ति हो जाने से **(पञ्च-महाव्रत-परिणतिम्)** पाँच महाव्रतों की समानता को **(प्रपद्यन्ते)** प्राप्त होते हैं।

प्रत्याख्यानतनुत्वान् मन्दतराश्चरणमोहपरिणामाः।
सत्त्वेन दुरवधारा महाव्रताय प्रकल्प्यन्ते ॥७१॥

अन्वयार्थ—(प्रत्याख्यानतनुत्वात्) प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ का मन्द उदय होने से **(मन्दतराः)** अत्यन्त मंद अवस्था को प्राप्त **(सत्त्वेन दुरवधाराः)** जिनका अस्तित्वरूप से निर्धारण करना भी कठिन है ऐसे **(चरण-मोहपरिणामाः)** चारित्रमोह के परिणाम **(महाव्रताय)** महाव्रत के व्यवहार के लिए **(प्रकल्प्यन्ते)** कल्पना किए जाते हैं/उपचरित होते हैं।

पञ्चानां पापानां हिंसादीनां मनोवचःकायैः।
कृतकारितानुमोदैस्त्यागस्तु महाव्रतं महताम् ॥७२॥

अन्वयार्थ—(हिंसादीनाम् पञ्चानाम् पापानाम्) हिंसादिक पाँचों पापों का **(मनोवचःकायैः)** मन, वचन और काय से तथा **(कृतकारितानुमोदैः)** कृत, कारित और अनुमोदना से **(त्यागः)** त्याग करना **(तु)** ही **(महतां)** प्रमत्तविरत आदि गुणस्थानवर्ती महापुरुषों का **(महाव्रतम्)** महाव्रत **[भवति]** होता है।

ऊर्ध्वाधस्तात्तिर्यग्व्यतिपाताः क्षेत्रवृद्धि-रवधीनाम्।
विस्मरणं दिग्विरते-रत्याशाः पञ्च मन्यन्ते ॥७३॥

अन्वयार्थ—अज्ञान व प्रमाद से **(ऊर्ध्वाधस्तात्तिर्यग्व्यतिपाताः)** ऊपर नीचे तथा दिशाओं-विदिशाओं की मर्यादा का उल्लंघन करना **(क्षेत्रवृद्धिः)** क्षेत्र की मर्यादा बढ़ा लेना और **(अवधीनाम्)** की हुई सीमाओं/मर्यादाओं का **(विस्मरणम्)** भूल जाना ये **(पञ्च)** पाँच **(दिग्विरतेः)** दिग्व्रत के **(अत्याशाः)** अतिचार **(मन्यन्ते)** माने जाते हैं।

अभ्यन्तरं दिगवधे-रपार्थिकेभ्यः सपापयोगेभ्यः।
विरमणमनर्थदण्ड-व्रतं विदुर्व्रतधराग्रण्यः ॥७४॥

अन्वयार्थ—(व्रतधराग्रण्यः) व्रतधारण करने वाले मुनियों में प्रधान तीर्थंकरदेव आदि **(दिगवधेः)** दिशाओं की मर्यादा के **(अभ्यन्तरम्)** भीतर **(अपार्थिकेभ्यः)** अर्थ/प्रयोजन रहित **(सपापयोगेभ्यः)** पापबंध के कारण मन, वचन, काय की प्रवृत्तियों से **(विरमणम्)** विरक्त होने को **(अनर्थदण्ड-व्रतम्)** अनर्थदण्डत्याग व्रत **(विदुः)** कहते हैं।

पापोपदेश-हिंसादानापध्यान-दुःश्रुतीः पञ्च।
प्राहुःप्रमादचर्यामनर्थदण्डानदण्डधराः ॥७५॥

अन्वयार्थ—(अदण्डधराः) मनवचनकाय की दुःप्रवृत्तिरूप दण्ड से रहित गणधरादिदेव **(पापोपदेश-हिंसादानापध्यान-दुःश्रुतीः)** पापोपदेश, हिंसादान, अपध्यान, दुःश्रुति और **(प्रमाद-चर्याम्)** प्रमादचर्या इन **(पञ्च)** पाँच को **(अनर्थदण्डान्)** अनर्थदण्ड **(प्राहुः)** कहते हैं।

तिर्यक्क्लेशवणिज्या-हिंसारम्भप्रलम्भनादीनाम् ।
कथाप्रसङ्गः प्रसवः स्मर्त्तव्यः पाप उपदेशः ॥७६॥

अन्वयार्थ—(तिर्यक्क्लेशवणिज्या-हिंसारम्भ-प्रलम्भनादीनाम्) पशुओं को क्लेश पहुँचाने वाली क्रियाएँ, व्यापार, हिंसा, आरम्भ और छलने आदि की **(कथाप्रसंगः)** कथाओं का प्रसंग **(प्रसवः)** उत्पन्न करना **(पापः उपदेशः)** पाप सम्बन्धि उपदेश/पापोपदेश नामक अनर्थदण्ड **(स्मर्त्तव्यः)** स्मरण रखना चाहिए/जानना चाहिए।

परशुकृपाणखनित्रज्वलनायुधशृङ्गिशृंखलादीनाम् ।
वधहेतूनां दानं हिंसादानं ब्रुवन्ति बुधाः ॥७७॥

अन्वयार्थ—(बुधाः) ज्ञानी गणधर आदि देव **(परशु-कृपाण-खनित्र-ज्वलनायुध-शृङ्गि-शृंखलादीनाम्)** फरसा, तलवार, कुदाली-फावड़ा, अग्नि, छुरी कटार आदि हथियार, सींगी या विष और सांकल आदि **(वधहेतूनां)** हिंसा के कारणों के**(दानं)** देने को **(हिंसादानं)** हिंसादान नाम का अनर्थदण्ड **(ब्रुवन्ति)** कहते हैं।

वधबन्धच्छेदादेर्द्वेषाद्रागाच्च परकलत्रादेः।
आध्यानमपध्यानं शासति जिनशासने विशदाः ॥७८॥

अन्वयार्थ—(जिनशासने) जिनशासन में **(विशदाः)** निपुण पुरुष **(द्वेषात्)** द्वेष से **(वधबन्धच्छेदादेः)** मारने, बाँधने, छेदने आदि का **(च)** और **(रागात्)** राग से **(परकलत्रादेः)** परस्त्री आदि का **(आध्यानम्)** चिन्तन करने को **(अपध्यानम्)** अपध्यान नामक अनर्थदण्ड **(शासति)** कहते हैं।

आरम्भ-सङ्ग-साहस-मिथ्यात्व-द्वेष-राग-मद-मदनैः ।
चेतः कलुषयतां श्रुति-रवधीनां दुःश्रुतिर्भवति ॥७९॥

अन्वयार्थ—(आरम्भ-सङ्ग-साहस-मिथ्यात्व-द्वेष-राग-मद-मदनैः) आरम्भ, परिग्रह, साहस (कथा में आश्चर्यकारी वीरता), मिथ्यात्व, द्वेष, राग, घमण्ड और विषयभोग से **(चेतः कलुषयताम्)** चित्त को कलुषित/मलीन करने वाले **(अवधीनाम्)** शास्त्रों का **(श्रुतिः)** सुनना **(दुःश्रुतिः)** दुःश्रुति नामक अनर्थदण्ड **(भवति)** होता है।

क्षितिसलिलदहनपवनारम्भं विफलं वनस्पतिच्छेदम्।
सरणं सारणमपि च प्रमादचर्यां प्रभाषन्ते ॥८०॥

अन्वयार्थ—(विफलम्) निष्प्रयोजन **(क्षिति-सलिल-दहन-पवना-रम्भम्)** पृथ्वी, पानी, अग्नि और वायु का आरम्भ/अपव्यय करने **(वनस्पतिच्छेदम्)** वनस्पति के छेदने **(सरणं)** स्वयं घूमने **(अपि च)** और **(सारणं)** दूसरों के घुमाने इन सबको **(प्रमादचर्यां)** प्रमादचर्या नामक अनर्थदण्ड **(प्रभाषन्ते)** कहते हैं।

कन्दर्पं कौत्कुच्यं मौखर्य-मतिप्रसाधनं पञ्च।
असमीक्ष्य चाधिकरणं व्यतीतयोऽनर्थदण्डकृद्विरतेः ॥८१॥

अन्वयार्थ—(कन्दर्पं) राग की तीव्रता से हँसी करते हुए अशिष्ट वचन

कहना **(कौत्कुच्यम्)** शरीर की कुचेष्टा करना **(मौखर्यम्)** व्यर्थ अधिक बकवास करना **(अतिप्रसाधनम्)** भोगोपभोग सामग्री का आवश्यकता से ज्यादा संग्रह करना **(च)** और **(असमीक्ष्य अधिकरणम्)** पूर्वापर विचार किए बिना अधिक कार्य करना ये **(पञ्च)** पाँच **(अनर्थदण्ड-कृद्विरतेः)** अनर्थदण्डव्रत के **(व्यतीतयः)** अतिचार हैं।

अक्षार्थानां परिसंख्यानं भोगोपभोगपरिमाणम्।
अर्थवतामप्यवधौ रागरतीनां तनूकृतये ॥८२॥

अन्वयार्थ—(रागरतीनाम्) राग से होने वाली विषयों की लालसा के **(तनूकृतये)** घटाने के लिए **(अवधौ)** परिग्रह परिमाणव्रत में की हुई परिग्रह की मर्यादा में **(अपि)** भी **(अर्थवताम्)** प्रयोजनभूत **(अक्षार्थानाम्)** इन्द्रियों के विषयों का **(परिसंख्यानम्)** परिमाण करना **(भोगोपभोग-परिमाणम्)** भोगोपभोग-परिमाण नामक व्रत है।

भुक्त्वा परिहातव्यो भोगो भुक्त्वा पुनश्च भोक्तव्यः।
उपभोगोऽशनवसन-प्रभृतिः पाञ्चेन्द्रियो विषयः ॥८३॥

अन्वयार्थ—(अशनवसनप्रभृतिः) भोजन, वस्त्र आदि **(पाञ्चेन्द्रियः)** पाँचों इन्द्रिय सम्बन्धी जो **(विषयः)** विषय **(भुक्त्वा)** भोग करके **(परिहातव्यः)** छोड़ दने के योग्य है वह तो **(भोगः)** भोग है **(च)** और **(भुक्त्वा)** भोग करके **(पुनः)** फिर **(भोक्तव्यः)** भोगने योग्य है वह **(उपभोगः)** उपभोग है।

त्रसहतिपरिहरणार्थं क्षौद्रं पिशितं प्रमादपरिहृतये।
मद्यं च वर्जनीयं जिनचरणौ शरणमुपयातैः ॥८४॥

अन्वयार्थ—(जिनचरणौ) जिनेन्द्रदेव के चरणों की **(शरणम्)** शरण को **(उपयातैः)** प्राप्त हुए श्रावकों के द्वारा **(त्रसहति-परिहरणार्थं)** त्रसजीवों की हिंसा को दूर करने के लिए **(क्षौद्रम्)** मधु/शहद **(पिशितम्)** मांस **(च)** और **(प्रमादपरिहृतये)** प्रमाद (यह माता है यह स्त्री है इस प्रकार के विवेक के अभाव) को दूर करने के लिए **(मद्यम्)** मदिरा **(वर्जनीयम्)** त्यागने योग्य है।

अल्पफलबहुविघातान् मूलक-मार्द्राणि शृङ्गवेराणि।
नवनीत-निम्बकुसुमं कैतक-मित्येव-मवहेयम् ॥८५॥

अन्वयार्थ—इस व्रत में **(अल्पफलबहुविघातात्)** थोड़ा फल और अधिक हिंसा होने से **(आर्द्राणि)** गीले/अपक्व/अशुष्क/सचित्त **(शृङ्गवेराणि)** अदरक **(मूलकम्)** मूली, गाजर आदि **(नवनीत निम्बकुसुमं)** मक्खन, नीम के फूल **(कैतकम्)** केवड़ा/केतकी के फूल **(इति)** इत्यादि **(एवम्)** ऐसी और वस्तुएँ **(अवहेयम्)** छोड़ने योग्य है।

यदनिष्टं तद् व्रतयेद्यच्चानुपसेव्यमेतदपि जह्यात्।
अभिसन्धिकृता विरतिर्विषयाद्योग्याद्व्रतं भवति ॥८६॥

अन्वयार्थ—इस व्रत में **(यत्)** जो वस्तु **(अनिष्टम्)** अनिष्ट-अहितकर है **(तद्)** उसको **(व्रतयेत्)** छोड़े **(च)** और **(यत्)** जो **(अनुपसेव्यम्)** सेवन करने के अयोग्य है **(एतदपि)** यह भी **(जह्यात्)** छोड़े क्योंकि **(योग्यात्)** योग्य **(विषयात्)** विषय से **(अभिसन्धिकृता)** अभिप्रायपूर्वक की हुई **(विरतिः)** निवृत्ति **(व्रतम्)** व्रत **(भवति)** होती है।

नियमो यमश्च विहितौ द्वेधा भोगोपभोगसंहारात्।
नियमः परिमितकालो यावज्जीवं यमो ध्रियते ॥८७॥

अन्वयार्थ—**(भोगोपभोगसंहारात्)** भोग और उपभोग के परिमाण से **(नियमः)** नियम **(च)** और **(यमः)** यम **(द्वेधा)** दो प्रकार से **(विहितौ)** कहा गया है उनमें **(परिमितकालः)** जो नियत काल की मर्यादापूर्वक किया गया त्याग वह **(नियमः)** नियम है और जो **(यावज्जीवं)** जीवनपर्यन्त के लिए **(ध्रियते)** धारण किया जाता है वह त्याग **(यमः)** यम है।

भोजन-वाहन-शयन-स्नान-पवित्राङ्गराग-कुसुमेषु ।
ताम्बूल-वसन-भूषण-मन्मथ-संगीतगीतेषु ॥८८॥
अद्य दिवा रजनी वा पक्षो मासस्तथर्तुरयनं वा।
इति कालपरिच्छित्त्या प्रत्याख्यानं भवेन्नियमः ॥८९॥

अन्वयार्थ—**(भोजन-वाहन-शयन-स्नान-पवित्राङ्गराग-कुसुमेषु)** भोजन—भोज्य वस्तुओं, वाहन—मोटर गाड़ी, शयन—शय्या पलंग आदि, स्नान पवित्रांगराग—उबटन, साबुन, तेल आदि लगाने, सुगन्धित पुष्पों के विषय में तथा **(ताम्बूल-वसन-भूषण-मन्मथ-संगीत-गीतेषु)** पान, वस्त्र, अलंकार, कामभोग, संगीत और गीत के विषय में **(अद्य)** आज एक घड़ी पहर आदि **(दिवा)** एक दिन **(रजनी)** एक रात्रि **(पक्षः)** एक

पक्ष पन्द्रह दिन **(मासः)** एक माह **(तथा)** तथा **(ऋतुः)** दो माह **(वा)** अथवा **(अयनम्)** छह माह **(इति)** इस प्रकार **(कालपरिच्छित्त्या)** काल के नियम से **(प्रत्याख्यानम्)** त्याग करना भोगोपभोगपरिमाणव्रत में **(नियमः)** नियम **(भवेत्)** होता है।

विषयविषतोऽनुपेक्षानुस्मृतिरतिलौल्यमतितृषानुभवौ ।
भोगोपभोगपरिमा-व्यतिक्रमाः पञ्च कथ्यन्ते ॥९०॥

अन्वयार्थ–(विषयविषतः) विषयरूपी विष से **(अनुपेक्षा)** उपेक्षा नहीं करना अर्थात् आदर होना **(अनुस्मृतिः)** भोगे हुए विषयों का बार-बार स्मरण करना तथा उसके प्रतिकार होने पर भी बार-बार अनुभवन की इच्छा होना **(अति-लौल्यम्)** वर्तमान विषयों में अति लम्पटता रखना **(अतितृषानुभवौ)** आगामी भोगोपभोगरूप विषयों की अधिक तृष्णा रखना तथा वर्तमान विषय का अत्यन्त आसक्तिपूर्वक अनुभव करना ये **(पञ्च)** पाँच **(भोगोपभोगपरिमा-व्यतिक्रमाः)** भोगोपभोगपरिमाण व्रत के अतिचार **(कथ्यन्ते)** कहे गये हैं।

शिक्षाव्रत अधिकार

(आर्या छन्द)

देशावकाशिकं वा सामयिकं प्रोषधोपवासो वा।
वैयावृत्त्यं शिक्षाव्रतानि चत्वारि शिष्टानि ॥९१॥

अन्वयार्थ–(देशावकाशिकम्) देशावकाशिक **(सामयिकम्)** सामायिक **(वा)** और **(प्रोषधोपवासः)** प्रोषधोपवास **(वा)** और **(वैयावृत्त्यं)** वैयावृत्य ये **(चत्वारि)** चार **(शिक्षाव्रतानि)** शिक्षाव्रत **(शिष्टानि)** कहे गये हैं।

देशावकाशिकं स्यात् कालपरिच्छेदनेन देशस्य।
प्रत्यहमणुव्रतानां प्रतिसंहारो विशालस्य ॥९२॥

अन्वयार्थ–(अणुव्रतानाम्) अणुव्रत पालक श्रावकों का **(विशालस्य)** दिग्व्रत में की हुई लम्बी-चौड़ी **(देशस्य)** क्षेत्र की मर्यादा का **(काल-परिच्छेदनेन)** काल के विभाग से **(प्रत्यहम्)** प्रतिदिन **(प्रतिसंहारः)** संकुचित/ कम करना **(देशावकाशिकम्)** देशावकाशिक व्रत **(स्यात्)**

होता है।

गृहहारिग्रामाणां क्षेत्रनदीदावयोजनानां च।
देशावकाशिकस्य स्मरन्ति सीम्नां तपोवृद्धाः ॥९३॥

अन्वयार्थ—(तपोवृद्धाः) तपों की वृद्धि को प्राप्त गणधरदेव आदि **(देशावकाशिकस्य)** देशावकाशिक शिक्षाव्रत के क्षेत्र की **(गृहहारि-ग्रामाणाम्)** प्रसिद्ध घर, गली, गाँव **(च)** और **(क्षेत्र-नदी-दाव-योजनानाम्)** खेत, नदी, जंगल और योजनों की **(सीम्नाम्)** मर्यादा **(स्मरन्ति)** स्मरण करते हैं।

संवत्सरमृतुर(म)यनं मासचतुर्मासपक्षमृक्षं च।
देशावकाशिकस्य प्राहुः कालावधिं प्राज्ञाः ॥९४॥

अन्वयार्थ—(प्राज्ञाः) प्रकृष्ट ज्ञानी गणधर आदि देव **(देशावकाशिकस्य)** देशावकाशिक व्रत की **(कालावधिम्)** काल की मर्यादा को **(संवत्सरम्)** एक वर्ष **(अयनम्)** छह माह **(ऋतुः)** दो माह **(मासचतुर्मासपक्षम्)** एक माह चार माह पन्द्रह दिन **(च)** और **(ऋक्षम्)** एक दिन या एक नक्षत्र तक **(प्राहुः)** कहते हैं।

सीमान्तानां परतः स्थूलेतरपञ्चपापसन्त्यागात्।
देशावकाशिकेन च महाव्रतानि प्रसाध्यन्ते ॥९५॥

अन्वयार्थ—(सीमान्तानाम्) सीमाओं के अन्तभाग के **(परतः)** आगे **(स्थूलेतर-पञ्चपापसन्त्यागात्)** स्थूल और सूक्ष्म पाँचों पापों का सम्यक् प्रकार त्याग हो जाने से **(देशावकाशिकेन च)** देशावकाशिक व्रत के द्वारा भी **(महाव्रतानि)** महाव्रत **(प्रसाध्यन्ते)** सिद्ध किए जाते हैं।

भावार्थ—देशावकाशिक व्रत की मर्यादा के बाहर चूँकि देशावकाशिक व्रतधारी के स्थूल और सूक्ष्म दोनों ही पापों का अभाव हो जाता है अतः उसके अणुव्रत उस अपेक्षा से महाव्रत जैसे हो जाते हैं। यह कथन निश्चय दृष्टि से नहीं उपचार की दृष्टि से है।

प्रेषणशब्दानयनं रूपाभिव्यक्तिपुद्गलक्षेपौ।
देशावकाशिकस्य व्यपदिश्यन्तेऽत्यया: पञ्च ॥९६॥

अन्वयार्थ—देशावकाशिकव्रत में की हुई मर्यादा के बाहर **(प्रेषण-**

शब्दानयनम्) भेजना, शब्द करना, मँगाना **(रूपाभिव्यक्तिपुद्गलक्षेपौ)** शरीर दिखाना और पत्थर आदि फेंकना ये **(पञ्च)** पाँच **(देशावकाशिकस्य)** देशावकाशिक शिक्षाव्रत के **(अत्ययाः)** अतिचार **(व्यपदिश्यन्ते)** कहे जाते हैं।

आसमयमुक्ति मुक्तं पञ्चाघाना-मशेषभावेन।
सर्वत्र च सामयिकाः सामयिकं नाम शंसन्ति ॥९७॥

अन्वयार्थ—(सामयिकाः) सामायिक के ज्ञाता गणधरदेवादिक **(अशेष-भावेन)** पूर्ण भाव मन, वचन, काय और कृत, कारित, अनुमोदना से **(सर्वत्र)** सब जगह **(आसमयमुक्ति)** सामायिक के लिए निश्चित समय तक **(पञ्चाघानाम्)** पाँचों पापों के **(मुक्तम्)** त्याग करने को **(सामयिकं नाम)** सामायिक नामक शिक्षाव्रत **(शंसन्ति)** कहते हैं।

मूर्धरुहमुष्टिवासो बन्धं पर्य्यङ्कबन्धनं चापि।
स्थानमुपवेशनं वा समयं जानन्ति समयज्ञाः ॥९८॥

अन्वयार्थ—(समयज्ञाः) आगम के ज्ञाता पुरुष **(मूर्धरुहमुष्टि-वासोबन्धं)** केशबंधन, मुष्टिबंधन, वस्त्रबंधन के बंध काल को **(च)** और **(पर्य्यङ्क-बन्धनं)** पद्मासन लगाना **(स्थानं)** कायोत्सर्ग से खड़े रहना **(वा)** अथवा **(उपवेशनम्)** बैठकर कायोत्सर्ग करना **(अपि)** भी **(समयं)** सामायिक के योग्य समय **(जानन्ति)** जानते हैं।

एकान्ते सामयिकं निर्व्याक्षेपे वनेषु वास्तुषु च।
चैत्यालयेषु वापि च परिचेतव्यं प्रसन्नधिया ॥९९॥

अन्वयार्थ—(सामयिकं) सामायिक **(प्रसन्नधिया)** प्रसन्नचित्त से **(निर्व्याक्षेपे)** उपद्रव रहित **(एकान्ते)** स्त्री, पशु तथा नपुंसकों से रहित एकान्त स्थान में **(वनेषु)** वनों में **(वास्तुषु च)** एकान्त घरों या धर्मशालाओं में **(वा)** अथवा **(चैत्यालयेषु)** चैत्यालयों में **(च)** और पर्वत की गुफा, वृक्ष की कोटर आदि में **(अपि)** भी **(परिचेतव्यम्)** बढ़ाना चाहिए।

व्यापार-वैमनस्याद्विनिवृत्त्यामन्तरात्म - विनिवृत्त्या।
सामयिकं बध्नीयादुपवासे चैकभुक्ते वा ॥१००॥

अन्वयार्थ—(व्यापारवैमनस्यात्) काय आदि की चेष्टा और मनोव्यग्रता/कलुषता से **(विनिवृत्त्याम्)** निवृत्ति होने पर **(अन्तरात्मविनिवृत्त्या)** मन

के सूक्ष्म विकल्पों की निवृत्तिपूर्वक **(उपवासे)** उपवास के दिन **(वा)** अथवा **(एकभुक्ते)** एकाशन के दिन **(च)** और अन्य समय भी **(सामयिकम्)** सामायिक को **(बध्नीयात्)** बढ़ाना चाहिए।

सामयिकं प्रतिदिवसं यथावदप्यनलसेन चेतव्यं।
व्रतपञ्चक-परिपूरण-कारणमवधानयुक्तेन ॥१०१॥

अन्वयार्थ—(अनलसेन) आलस्य से रहित और **(अवधानयुक्तेन)** एकाग्र-चित्त सहित श्रावक के द्वारा **(व्रतपञ्चक-परिपूरण-कारणम्)** हिंसात्याग आदि पाँचों व्रतों की पूर्ति का कारण **(सामयिकम्)** सामायिक **(प्रतिदिवसम् अपि)** प्रतिदिन भी **(यथावत्)** शास्त्रोक्त विधि से **(चेतव्यम्)** बढ़ाया जाना चाहिए।

सामयिके सारम्भाः परिग्रहा नैव सन्ति सर्वेऽपि।
चेलोपसृष्टमुनिरिव गृही तदा याति यतिभावं ॥१०२॥

अन्वयार्थ—[यदा] जब **(सामयिके)** सामायिक के समय में **(सारम्भाः)** कृषि आदि आरम्भ सहित **(सर्वे अपि)** सब ही **(परिग्रहाः)** अन्तरंग-बहिरंग परिग्रह **(नैव सन्ति)** नहीं होते हैं **(तदा)** उस समय **(गृही)** गृहस्थ **(चेलोप-सृष्टमुनिः इव)** उपसर्ग के कारण वस्त्र से ढके हुए मुनि के समान **(यतिभावम्)** मुनिपने को **(आयाति)** प्राप्त होता है।

शीतोष्णदंशमशकपरीषहमुपसर्गमपि च मौनधराः।
सामयिकं प्रतिपन्ना अधिकुर्वीरन्नचलयोगाः ॥१०३॥

अन्वयार्थ—(सामयिकम्) सामायिक को **(प्रतिपन्नाः)** स्वीकार करने वाला **(अचलयोगाः)** निश्चल योग वाला व्यक्ति **(मौनधराः)** मौनधारी होकर **(शीतोष्णदंशमशक-परीषहम्)** शीत, उष्ण, दंशमशक/डाँस, मच्छर आदि के परीषहों को **(च)** और **(उपसर्गम्)** देव, मनुष्य, तिर्यंच व अचेतनकृत चार प्रकार के उपसर्गों को **(अपि)** भी **(अधिकुर्वीरन्)** सहन करे।

अशरणमशुभ-मनित्यं दुःखमनात्मानमावसामि भवम्।
मोक्षस्तद्विपरीतात्मेति ध्यायन्तु सामयिके ॥१०४॥

अन्वयार्थ—(सामयिके) सामायिक में **[स्थिताः]** स्थित मनुष्य **(इति)**

इस प्रकार **(ध्यायन्तु)** ध्यान करे कि मैं **(अशरणम्)** रक्षा रहित **(अशुभम्)** शुभ रहित **(अनित्यं)** नित्यता से रहित **(दुःखम्)** दुखरूप और **(अनात्मानम्)** अपने आत्मस्वरूप से रहित **(भवम्)** संसार में **(आवसामि)** निवास करता हूँ और **(मोक्षः)** मोक्ष **(तद्विपरीतात्मा)** उस संसार से विपरीत स्वरूप वाला अर्थात् शरण, शुभ, नित्य, सुखरूप व आत्मस्वरूप वाला है।

वाक्कायमानसानां दुःप्रणिधानान्यनादरास्मरणे।
सामयिकस्यातिगमा व्यज्यन्ते पञ्च भावेन ॥१०५॥

अन्वयार्थ–(वाक्कायमानसानाम्) वचन, काय और मन की **(दुःप्रणिधानानि)** खोटी प्रवृत्तियाँ **(अनादरास्मरणे)** अनादर और अस्मरण ये **(पञ्च)** पाँच **(भावेन)** परमार्थ से **(सामयिकस्य)** सामायिक के **(अतिगमाः)** अतिचार **(व्यज्यन्ते)** प्रकट किए गये हैं।

पर्वण्यष्टम्यां च ज्ञातव्यः प्रोषधोपवासस्तु।
चतुरभ्यवहार्य्याणां प्रत्याख्यानं सदेच्छाभिः ॥१०६॥

अन्वयार्थ–(पर्वणि) चतुर्दशी **(च)** और **(अष्टम्याम्)** अष्टमी के दिन **(सदा)** हमेशा के लिए **(इच्छाभिः)** [व्रत विधान की] वांछा से **(चतुरभ्यवहार्य्याणां)** खाद्य, स्वाद्य, लेह्य और पेय इन चार प्रकार के आहारों का **(प्रत्याख्यानं)** त्याग करना **(तु)** ही **(प्रोषधोपवासः)** प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत **(ज्ञातव्यः)** जानना चाहिए।

पञ्चानां पापानामलंक्रियारम्भगन्धपुष्पाणाम्।
स्नानाञ्जननस्याना-मुपवासे परिहृतिं कुर्य्यात् ॥१०७॥

अन्वयार्थ–(उपवासे) उपवास के दिन **(पञ्चानाम्)** पाँचों **(पापानाम्)** पापों का और **(अलंक्रियारम्भगन्धपुष्पाणां)** अलंकार धारण करना, खेती आदि आरम्भ करना, चन्दन आदि सुगन्धित पदार्थों का लेप करना, पुष्प मालाएँ धारण करना या पुष्पों को सूँघना **(स्नानाञ्जननस्यानां)** स्नान, अञ्जन/काजल, सूरमा आदि लगाना तथा नाक से सूँघने योग्य नस्य आदि इन सब पदार्थों का **(परिहृतिं)** परित्याग **(कुर्य्यात्)** करना चाहिए।

धर्मामृतं सतृष्णः श्रवणाभ्यां पिबतु पाययेद्वान्यान्।
ज्ञानध्यानपरो वा भवतूपवसन्नतन्द्रालुः ॥१०८॥

अन्वयार्थ–(उपवसन्) उपवास करने वाला व्यक्ति **(अतन्द्रालुः)** आलस्य रहित और **(सतृष्णः)** उत्कण्ठित होता हुआ **(धर्मामृतम्)** धर्मरूपी अमृत को **(श्रवणाभ्याम्)** अपने कानों से **(पिबतु)** पीवे **(वा)** अथवा **(अन्यान्)** दूसरों को **(पाययेत्)** पिलावे **[च]** और **(ज्ञानध्यानपरः)** ज्ञान–ध्यान में लवलीन **(भवतु)** होवे।

चतुराहारविसर्जन - मुपवासः प्रोषधः सकृद्भुक्तिः।
स प्रोषधोपवासो यदुपोष्यारम्भमाचरति ॥१०९॥

अन्वयार्थ–(चतुराहारविसर्जनम्) अन्न–दाल रोटी आदि। पान–पानी, दूध ठण्डाई, आदि। खाद्य–लड्डू, सेव, पपड़ी आदि। लेह्य–रबड़ी आदि इन चार प्रकार के आहारों का सर्वथा त्याग **(उपवासः)** उपवास है **(सकृद्भुक्तिः)** एक बार भोजन करना **(प्रोषधः)** प्रोषध/एकाशन है और **(यत्)** जो प्रोषधपूर्वक **(उपोष्य)** उपवास करके पारणा के दिन **(आरम्भं)** एकाशन को **(आचरति)** करता है **(सः)** वह **(प्रोषधोपवासः)** प्रोषधोपवास है।

ग्रहणविसर्गास्तरणान्यदृष्टमृष्टान्यनादरास्मरणे ।
यत्प्रोषधोपवासव्यतिलङ्घनपञ्चकं तदिदम् ॥११०॥

अन्वयार्थ–(यत्) जो **(अदृष्टमृष्टानि)** बिना देखे और बिना शोधे **(ग्रहण–विसर्गास्तरणानि)** पूजा आदि के उपकरणों को ग्रहण करना, मलमूत्रादि को छोड़ना और बिस्तर आदि को बिछाना तथा **(अनादरास्मरणे)** आवश्यक आदि में अनादर करना और योग्य क्रियाओं को भूल जाना **(तदिदं)** वे ये **(प्रोषधोपवासव्यतिलङ्घनपञ्चकम्)** प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत के पाँच अतिचार हैं।

दानं वैयावृत्यं धर्माय तपोधनाय गुणनिधये।
अनपेक्षितोपचारोपक्रियमगृहाय विभवेन ॥१११॥

अन्वयार्थ–(तपोधनाय) तपरूप धन से युक्त **(गुणनिधये)** सम्यग्दर्शनादि गुणों के भण्डार और **(अगृहाय)** गृहत्यागी–मुनीश्वर के लिए **(विभवेन)** विधि द्रव्य आदि सम्पत्ति के अनुसार **(अनपेक्षितोपचारोपक्रियम्)**

प्रतिदान– दान देकर उनसे कुछ पाने की इच्छा और प्रत्युपकार–मंत्र-तंत्र आदि की अपेक्षा से रहित **(धर्माय)** स्वपर के धर्म की वृद्धि के लिए **(दानम्)** अपनी वस्तु को देना वह **(वैयावृत्यम्)** वैय्यावृत्य नाम का शिक्षाव्रत **(उच्यते)** कहा जाता है।

व्यापत्तिव्यपनोदः पदयोः संवाहनं च गुणरागात्।
वैयावृत्यं यावानुपग्रहोऽन्योऽपि संयमिनाम् ॥११२॥

अन्वयार्थ–(गुणरागात्) सम्यग्दर्शनादि गुणों में प्रीति से **(संयमिनाम्)** देशव्रत और सकलव्रत के धारक संयमिजनों की **(व्यापत्तिव्यपनोदः)** आपत्तियों को दूर करना **(पदयोः)** पैरों का उपलक्षण से हस्तादिक अंगों का **(संवाहनं)** दबाना **(च)** और इसके सिवाय **(अन्योऽपिः)** अन्य भी **(यावान्)** जितना **(उपग्रहः)** उपकार है वह सब **(वैयावृत्यम्)** वैयावृत्य **(कथ्यते)** कहा जाता है।

नवपुण्यैः प्रतिपत्तिः सप्तगुणसमाहितेन शुद्धेन।
अपसूनारम्भाणा-मार्याणामिष्यते दानम् ॥११३॥

अन्वयार्थ–(सप्तगुणसमाहितेन) श्रद्धा, संतोष, भक्ति, विज्ञान, निर्लोभता, क्षमा, सत्य (शक्ति) इन सात गुणों से सहित और **(शुद्धेन)** कौलिक–कुल सम्बन्धि, आचरिक–आचरण सम्बन्धि तथा शारीरिक शुद्धि से युक्त दाता के द्वारा **(अपसूनारम्भाणाम्)** कूटना, पीसना, झाड़ना, पानी भरना, चूल्हा जलाना इन पंच सूनों और असि, मसि, कृषि आदि आरम्भों से रहित **(आर्याणां)** सम्यग्दर्शन आदि गुणों से सहित मुनियों की **(नवपुण्यैः)** नवधाभक्तिपूर्वक **(प्रतिपत्तिः)** आहार आदि के द्वारा गौरव व आदर किया जाता है वह **(दानम्)** दान **(इष्यते)** माना गया है।

गृहकर्मणापि निचितं कर्म विमार्ष्टि खलु गृहविमुक्तानाम्।
अतिथीनां प्रतिपूजा रुधिरमलं धावते वारि ॥११४॥

अन्वयार्थ–(खलु) निश्चय से **(वारि)** जल **(रुधिरमलं)** खून, मल को **(धावते)** धो देता है **[तथा]** वैसे ही **(गृहविमुक्तानां अतिथीनां)** घर रहित अतिथियों की **(प्रतिपूजा)** दान क्रिया **(गृहकर्मणा)** गृहस्थी सम्बन्धी कार्यों से **(निचितम्)** उपार्जित अथवा सुदृढ़ **(कर्म अपि)** पापकर्म को भी **(विमार्ष्टि)** दूर कर देती है।

उच्चैर्गोत्रं प्रणतेर्भोगो दानादुपासनात्पूजा।
भक्तेः सुन्दररूपं स्तवनात्कीर्तिस्तपोनिधिषु ॥११५॥

अन्वयार्थ–(तपोनिधिषु) तप के भंडार स्वरूप मुनियों के विषय में **(प्रणतेः)** प्रणाम करने से **(उच्चैर्गोत्रं)** उच्च गोत्र **(दानात्)** आहारादि दान देने से **(भोगः)** भोग **(उपासनात्)** उपासना/प्रतिग्रहण करने से **(पूजा)** सम्मान **(भक्तेः)** भक्ति करने से **(सुन्दररूपं)** सुन्दररूप और **(स्तवनात्)** स्तुति करने से **(कीर्तिः)** ख्याति/सुयश प्राप्त होता है।

क्षितिगतमिव वटबीजं पात्रगतं दानमल्पमपि काले।
फलतिच्छायाविभवं बहुफलमिष्टं शरीरभृताम् ॥११६॥

अन्वयार्थ–(काले) उचित समय में **(पात्रगतं)** योग्य पात्र के लिए दिया गया **(अल्पमपि)** थोड़ा भी **(दानं)** दान **(क्षितिगतं)** उत्तम पृथ्वी में पड़े हुए **(वट-बीजम् इव)** वटवृक्ष के बीज के समान **(शरीरभृताम्)** प्राणियों के **(छायाविभवं)** माहात्म्य और वैभव से युक्त पक्ष में छाया की प्रचुरता से सहित **(बहु)** बहुत भारी **(इष्टं)** अभिलषित **(फलं)** फल को **(फलति)** फलता/देता है।

आहारौषधयोरप्युपकरणावासयोश्च दानेन।
वैयावृत्यं ब्रुवते चतुरात्मत्वेन चतुरस्राः ॥११७॥

अन्वयार्थ–(चतुरस्राः) चार ज्ञानधारी गणधरदेव **(आहारौषधयोः)** आहार औषधि **(च)** और **(उपकरणावासयोः अपि)** उपकरण तथा आवास के भी **(दानेन)** दान से **(वैयावृत्यं)** वैय्यावृत्य को **(चतुरात्मत्वेन)** चार प्रकार का **(ब्रुवते)** कहते हैं।

श्रीषेणवृषभसेने कौण्डेशः सूकरश्च दृष्टान्ताः।
वैयावृत्यस्यैते चतुर्विकल्पस्य मन्तव्याः ॥११८॥

अन्वयार्थ–(श्रीषेणवृषभसेने) श्रीषेण, वृषभसेना **(कौण्डेशः)** कौण्डेश **(च)** और **(सूकरः)** सूकर **(एते)** ये **(चतुर्विकल्पस्य वैयावृत्यस्य)** चार भेद वाले वैयावृत्य के **(दृष्टान्ताः)** दृष्टान्त **(मन्तव्याः)** मानना चाहिए।

देवाधिदेव-चरणे परिचरणं सर्व-दुःख-निर्हरणम्।
कामदुहि कामदाहिनि परिचिनुयादादृतो नित्यम् ॥११९॥

अन्वयार्थ—श्रावक को **(नित्यम्)** प्रतिदिन **(कामदुहि)** मनोरथों को पूर्ण करने वाली **(कामदाहिनि)** काम को भस्म करने वाली और **(सर्वदुःख-निर्हरणम्)** समस्त दुखों को पूर्णरूप से दूर करने वाली **(देवाधिदेव-चरणे)** इन्द्र आदि से वन्दनीय अरिहन्त देव के चरणों में **(परिचरणम्)** पूजा को **(आदृतः)** आदर से **(परिचिनुयात्)** पुष्ट/संचित करना चाहिए।

अर्हच्चरणसपर्या-महानुभावं महात्मनामवदत्।
भेकः प्रमोदमत्तः कुसुमेनैकेन राजगृहे ॥१२०॥

अन्वयार्थ—**(प्रमोदमत्तः)** हर्ष विभोर **(भेकः)** मेंढ़क ने **(राजगृहे)** राजगृह नगर में **(एकेन कुसुमेन)** एक फूल के द्वारा **(महात्मनाम्)** भव्यजीवों के समक्ष **(अर्हच्चरण-सपर्यामहानुभावं)** अरिहन्त भगवान् के चरणों की पूजा के महान प्रभाव को **(अवदत्)** कहा/प्रकट किया।

हरितपिधाननिधाने ह्यनादरास्मरणमत्सरत्वानि।
वैयावृत्यस्यैते व्यतिक्रमाः पञ्च कथ्यन्ते ॥१२१॥

अन्वयार्थ—देने योग्य वस्तु को **(हि)** निश्चय से **(हरितपिधाननिधाने)** हरे पत्तों आदि से ढँकना व हरे पत्तों आदि पर रखना **(अनादरास्मरण-मत्सरत्वानि)** अनादर, अस्मरण और मत्सरत्व **(एते)** ये **(पञ्च)** पाँच **(वैयावृत्यस्य)** वैय्यावृत्त्य के **(व्यतिक्रमाः)** अतिचार **(कथ्यन्ते)** कहे जाते हैं।

सल्लेखनाधिकार

(आर्या छन्द)

उपसर्गे दुर्भिक्षे, जरसि रुजायां च निःप्रतीकारे।
धर्माय तनुविमोचनमाहुः सल्लेखनामार्याः ॥१२२॥

अन्वयार्थ—**(आर्याः)** सभी के आश्रयभूत गणधरस्वामी **(निःप्रतीकारे)** प्रतिकार रहित **(उपसर्गे)** उपसर्ग में **(दुर्भिक्षे)** दुष्काल में **(जरसि)** बुढ़ापा में **(च)** और **(रुजायाम्)** रोग होने पर **(धर्माय)** धर्म के लिए **(तनु-विमोचनम्)** शरीर के छोड़ने को **(सल्लेखनाम्)** सल्लेखना **(आहुः)** कहते हैं।

अन्तःक्रियाधिकरणं तपःफलं सकलदर्शिनः स्तुवते।
तस्माद्यावद्विभवं समाधिमरणे प्रयतितव्यम् ॥१२३॥

अन्वयार्थ—[यस्मात्] क्योंकि **(सकलदर्शिनः)** सर्वज्ञदेव **(अन्तः-क्रियाधि-करणम्)** अन्त समय में समाधिमरण/सल्लेखना के आश्रय को **(तपःफलं)** तप का फल **(स्तुवते)** कहते हैं **(तस्मात्)** इसलिए **(यावद्विभवं)** जब तक शक्ति है तब तक **(समाधिमरणे)** समाधिमरण के विषय में **(प्रयतितव्यं)** प्रयत्न करना चाहिए।

स्नेहं वैरं सङ्गं परिग्रहं चापहाय शुद्धमनाः।
स्वजनं परिजनमपि च क्षान्त्वा क्षमयेत्प्रियैर्वचनैः ॥१२४॥
आलोच्य सर्वमेनः कृतकारित-मनुमतं च निर्व्याजम्।
आरोपयेन्महाव्रत- मामरणस्थायि निःशेषम् ॥१२५॥

अन्वयार्थ—सल्लेखनाधारी **(स्नेहं)** प्रीति को **(वैरं)** वैर को **(सङ्गं)** पुत्र स्त्री आदि के सम्बन्धरूप ममत्वभाव को **(च)** और **(परिग्रहं)** परिग्रह को **(अपहाय)** छोड़कर **(शुद्धमनाः)** स्वच्छ हृदय वाला **(प्रियैः वचनैः)** मधुर वचनों से **(स्वजनं)** अपने परिवार कुटुम्बी जन तथा **(परिजनम् अपि च)** परिकर के लोगों को भी **(क्षान्त्वा)** क्षमा कराकर **(क्षमयेत्)** स्वयं क्षमा करे **(कृतकारितम्)** कृत कारित **(च)** और **(अनुमतम्)** अनुमोदित **(सर्वम्)** समस्त **(एनः)** पापों को **(निर्व्याजम्)** छल-कपट रहित या आलोचना के दोषों से रहित **(आलोच्य)** आलोचना करके **(आमरण-स्थायि)** मरण-पर्यन्त रहने वाले **(निःशेषम्)** समस्त/पाँचों **(महाव्रतम्)** महाव्रतों को **(आरोपयेत्)** धारण करे।

शोकं भयमवसादं क्लेदं कालुष्यमरतिमपि हित्वा।
सत्त्वोत्साहमुदीर्य च मनः प्रसाद्यं श्रुतैरमृतैः ॥१२६॥

अन्वयार्थ—(शोकं) शोक को **(भयं)** डर को **(अवसादम्)** विषाद को **(क्लेदं)** स्नेह को **(कालुष्यम्)** राग-द्वेष की परिणति को और **(अरतिम्)** अप्रीति को **(अपि)** भी **(हित्वा)** छोड़कर **(च)** और **(सत्त्वोत्साहम्)** बल और उत्साह को **(उदीर्य)** प्रकट करके **(श्रुतैः अमृतैः)** शास्त्ररूप अमृत के द्वारा **(मनः)** मन/चित्त को **(प्रसाद्यम्)** प्रसन्न करना चाहिए।

आहारं परिहाप्य क्रमशः स्निग्धं विवर्द्धयेत्पानम्।
स्निग्धं च हापयित्वा खरपानं पूरयेत्क्रमशः ॥१२७॥

अन्वयार्थ—तथा **(क्रमशः)** क्रम से **(आहारम्)** कवलाहाररूप अन्न

आदि भोजन को **(परिहाप्य)** छोड़कर **(स्निग्धं पानम्)** दूध आदि चिकने पेय को **(विवर्द्धयेत्)** बढ़ाना चाहिए **(च)** पश्चात् **(क्रमशः)** क्रम से **(स्निग्धं)** दूध आदि चिकने पेय को **(हापयित्वा)** छोड़कर **(खरपानम्)** खरपान/ गर्म पानी/ छाँछ/काँजी आदि को **(पूरयेत्)** बढ़ाना चाहिए।

खरपानहापनामपि कृत्वा कृत्वोपवासमपि शक्त्या।
पञ्चनमस्कारमनास्तनुं त्यजेत्सर्वयत्नेन ॥१२८॥

अन्वयार्थ—पश्चात् **(खरपानहापनाम् अपि)** गर्म पानी आदि को भी त्याग **(कृत्वा)** करके **(शक्त्या)** शक्ति के अनुसार **(उपवासम् अपि)** उपवास को भी **(कृत्वा)** करके **(सर्वयत्नेन)** पूर्ण तत्परता से **(पञ्च-नमस्कारमनाः)** पञ्च नमस्कार मंत्र में मन लगाता हुआ **(तनुं)** शरीर को **(त्यजेत्)** छोड़े।

जीवितमरणाशंसे भय-मित्रस्मृति-निदान-नामानः।
सल्लेखनातिचाराः पञ्च जिनेन्द्रैः समादिष्टाः ॥१२९॥

अन्वयार्थ—(जीवितमरणाशंसे) जीविताशंसा/जीने की इच्छा, मरणा-शंसा/मरने की इच्छा **(भयमित्रस्मृति-निदाननामानः)** भय, मित्रस्मृति/मित्रों का स्मरण और निदान/आगामी भोगों की इच्छा नाम वाले **(पञ्च)** पाँच **(सल्लेखनाति-चाराः)** सल्लेखना के अतिचार **(जिनेन्द्रैः)** जिनेन्द्र भगवान् के द्वारा **(समा-दिष्टाः)** कहे गये हैं।

निःश्रेयस-मभ्युदयं निस्तीरं दुस्तरं सुखाम्बुनिधिम्।
निःपिबति पीतधर्मा सर्वैर्दुःखैरनालीढः ॥१३०॥

अन्वयार्थ—(पीतधर्मा) धर्मरूपी अमृत का पान करने वाला क्षपक **(दुस्तरम्)** बहुत समय तक रहने वाले **(अभ्युदयम्)** अहमिन्द्र आदि की सुख परम्परा तथा **(सर्वैः दुःखैः)** समस्त दुखों से **(अनालीढः)** रहित होता हुआ **(निस्तीरम्)** सीमा से रहित/अनन्त **(सुखाम्बुनिधिम्)** सुख के समुद्ररूप **(निःश्रेयसम्)** मोक्ष को **(निःपिबति)** अनुभव करता है।

जन्मजरामयमरणैः शोकैर्दुःखैर्भयैश्च परिमुक्तम्।
निर्वाणं शुद्धसुखं निःश्रेयस-मिष्यते नित्यम् ॥१३१॥

अन्वयार्थ—(जन्मजरामयमरणैः) जन्म, बुढ़ापा, रोग, मरण से, **(शोकैः)** शोकों से, **(दुःखैः)** दुखों **(च)** और **(भयैः)** भयों से **(परिमुक्तम्)** रहित

(शुद्ध-सुखम्) शुद्ध सुख वाले **(नित्यम्)** नित्य-अविनाशी **(निर्वाणं)** निर्वाण को **(निःश्रेयसम्)** मोक्ष **(इष्यते)** माना जाता है।

विद्यादर्शनशक्तिस्वास्थ्यप्रह्लादतृप्तिशुद्धियुजः ।
निरतिशया निरवधयो निःश्रेयसमावसन्ति सुखम् ॥१३२॥

अन्वयार्थ—(विद्या-दर्शनशक्तिस्वास्थ्य-प्रह्लाद-तृप्तिशुद्धियुजः) केवल-ज्ञान, केवलदर्शन, अनन्तवीर्य, परम उदासीनतारूप स्व में स्थिरता, अनन्तसुख, इन्द्रिय विषयों की इच्छा से रहित संतुष्टि और द्रव्य-भावरूप कर्ममल से रहितपने को प्राप्त शुद्धि/पवित्रता वाले **(निरतिशयाः)** हीनाधिकता से रहित और **(निरवधयः)** अवधि से रहित **(सुखं)** सुख स्वरूप **(निःश्रेयसं)** निःश्रेयस/ मोक्ष में जीव **(आवसन्ति)** निवास करते हैं।

काले कल्पशतेऽपि च गते शिवानां न विक्रिया लक्ष्या।
उत्पातोऽपि यदि स्यात् त्रिलोकसंभ्रान्तिकरणपटुः ॥१३३॥

अन्वयार्थ—(कल्पशते काले) सैकड़ों कल्प कालों के **(गते)** बीतने पर **(अपि च)** भी **(यदि)** अगर **(त्रिलोकसंभ्रान्तिकरणपटुः)** तीनों लोकों में खलबली पैदा करने में समर्थ **(उत्पातः)** उपद्रव **(अपि)** भी **(स्यात्)** हो तो भी **(शिवानाम्)** सिद्धों में **(विक्रिया)** विकार **(न लक्ष्या)** दृष्टिगोचर नहीं होता।

निःश्रेयसमधिपन्नास्त्रैलोक्य - शिखा - मणिश्रियं दधते।
निष्किट्टिकालिकाच्छवि-चामीकर-भासुरात्मानः ॥१३४॥

अन्वयार्थ—(निष्किट्टिकालिकाच्छवि-चामीकरभासुरात्मानः) कीट और कालिमा से रहित कान्ति वाले सुवर्ण के समान प्रकाशमानस्वरूप वाले **(निःश्रेयसम्)** मोक्ष को **(अधिपन्नाः)** प्राप्त हुए सिद्ध परमेष्ठी **(त्रैलोक्य-शिखामणिश्रियम्)** तीनलोक के अग्रभाग पर चूड़ामणि की शोभा को **(दधते)** धारण करते हैं।

पूजार्थाज्ञैश्वर्यै - र्बल - परिजनकामभोगभूयिष्ठैः।
अतिशयितभुवनमद्भुत-मभ्युदयं फलति सद्धर्मः ॥१३५॥

अन्वयार्थ—(सद्धर्मः) सल्लेखना के द्वारा समुपार्जित समीचीन धर्म

(पूजार्था-ज्ञैश्वर्यैः बल-परिजनकामभोगभूयिष्ठैः) पूजा/प्रतिष्ठा, धन, आज्ञारूप ऐश्वर्य तथा बल/शारीरिक-शक्ति, परिवार, काम और भोगों की अधिकता/परिपूर्णता से **(अतिशयित-भुवनं)** गुण, पद, परिमाण आदि में श्रेष्ठता को प्राप्त लोक को और **(अद्भुतं)** आश्चर्यकारी **(अभ्युदयं)** स्वर्गादिरूप अभ्युदय/सांसारिक सुख को **(फलति)** फलता/देता है।

प्रतिमाधिकार

श्रावकपदानि देवैरेकादश देशितानि येषु खलु।
स्वगुणाः पूर्वगुणैः सह सन्तिष्ठन्ते क्रमविवृद्धाः ॥१३६॥

अन्वयार्थ—(देवैः) तीर्थंकर देवों के द्वारा **(एकादश)** ग्यारह **(श्रावक-पदानि)** श्रावक के पद/प्रतिमाएँ **(देशितानि)** कही गई हैं **(येषु)** जिनमें **(खलु)** निश्चय से **(स्वगुणाः)** अपनी प्रतिमासम्बन्धी गुण **(पूर्वगुणैः सह)** पूर्व प्रतिमासम्बन्धी गुण के साथ **(क्रमविवृद्धाः)** क्रम से वृद्धि को प्राप्त होते हुए **(सन्तिष्ठन्ते)** स्थित होते हैं।

सम्यग्दर्शन-शुद्धः संसार-शरीर-भोगनिर्विण्णः।
पञ्चगुरुचरणशरणो दर्शनिकस्तत्त्वपथगृह्यः ॥१३७॥

अन्वयार्थ—(सम्यग्दर्शनशुद्धः) दोषरहित सम्यग्दर्शन का धारक **(संसार-शरीरभोग-निर्विण्णः)** संसार, शरीर और भोगों से विरक्त **(पञ्चगुरु-चरण-शरणः)** पञ्चपरमेष्ठियों के चरणों की शरण को प्राप्त **(तत्त्वपथ-गृह्यः)** यथार्थ जैनमार्ग को ग्रहण करने वाला, अष्ट मूलगुणों का धारक **(दर्शनिकः)** दार्शनिक श्रावक है।

निरतिक्रमण-मणुव्रत-पञ्चकमपि शीलसप्तकं चापि।
धारयते निःशल्यो योऽसौ व्रतिनां मतो व्रतिकः ॥१३८॥

अन्वयार्थ—(यः) जो **(निःशल्यः)** शल्य रहित होता हुआ **(निरतिक्रमणं)** अतिचार रहित **(अणुव्रतपञ्चकम् अपि)** पाँचों अणुव्रतों को **(च अपि)** और **(शीलसप्तकम्)** तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रतरूप सात शीलव्रतों को **(धारयते)** धारण करता है **(असौ)** वह **(व्रतिनां)** गणधरदेवादिक महाव्रतियों के मत में **(व्रतिकः)** व्रती श्रावक **(मतः)** माना जाता है।

चतुरावर्त्तत्रितयश्चतुःप्रणामः स्थितो यथाजातः।
सामयिको द्विनिषद्यस्त्रियोगशुद्धस्त्रिसन्ध्यमभिवन्दी ॥१३९॥

अन्वयार्थ—जो **(चतुरावर्त्तत्रितयः)** चारों दिशाओं में तीन-तीन आवर्त करता है **(चतुःप्रणामः)** चार प्रणाम करता है **(स्थितः)** कायोत्सर्ग से खड़ा होता है **(यथाजातः)** बाहरी, भीतरी चिन्ताओं से दूर, यथायोग्य वस्त्रादि का त्यागी होता है **(द्विनिषद्यः)** सामायिक के आदि और अन्त में दो बार बैठकर नमस्कार करता है **(त्रियोगशुद्धः)** मन, वचन और काय इन तीनों योगों से शुद्ध और **(त्रिसन्ध्यं)** तीनों संध्याओं में **(अभिवन्दी)** वन्दना करता है **[सः]** वह **(सामयिकः)** सामायिक प्रतिमाधारी है।

पर्वदिनेषु चतुर्ष्वपि मासे मासे स्वशक्तिमनिगुह्य।
प्रोषधनियमविधायी प्रणिधिपरः प्रोषधानशनः ॥१४०॥

अन्वयार्थ—**[यः]** जो **(मासे मासे)** प्रत्येक महीने में **(चतुर्षु)** चारों **(अपि)** ही **(पर्वदिनेषु)** पर्व के दिनों में **(स्वशक्तिं)** अपनी शक्ति को **(अनिगुह्य)** नहीं छिपाकर **(प्रोषधनियमविधायी)** प्रोषध सम्बन्धी नियम को धारण करने वाला **(प्रणिधिपरः)** एकाग्रता में तत्पर **(प्रोषधानशनः)** प्रोषधपूर्वक अनशन/ उपवास करने वाला प्रोषध प्रतिमाधारी है।

मूल-फल-शाक-शाखा - करीर-कन्दप्रसून-बीजानि ।
नामानि योऽत्ति सोऽयं सचित्तविरतो दयामूर्तिः ॥१४१॥

अन्वयार्थ—**(यः)** जो **(दयामूर्तिः)** दयालु **(आमानि)** अपक्व/कच्चे/हरे **(मूल-फल-शाक -शाखा-करीर-कन्दप्रसून-बीजानि)** मूल/जड़, फल, शाक, शाखा/कोंपल, करीर/वाँस की गाँठ का कौर/अंकुर, हल्दी सौंठ आदि जमीकंद, फूल और बीजों को **(न अत्ति)** नहीं खाता है **(सः)** वह **(अयं)** यह **(सचित्त-विरतः)** सचित्तत्याग प्रतिमाधारी है।

अन्नं पानं खाद्यं लेह्यं नाश्नाति यो विभावर्याम्।
स च रात्रिभुक्तिविरतः सत्त्वेष्वनुकम्पमानमनाः॥१४२॥

अन्वयार्थ—**(यः)** जो **(सत्त्वेषु)** प्राणियों पर **(अनुकम्पमानमनाः)** दया से सहित चित्त वाला **(विभावर्याम्)** रात्रि में **(अन्नं)** अन्न को **(पानं)** पीने योग्य वस्तु को **(खाद्यं)** खाने योग्य वस्तु लड्डू आदि को और **(लेह्यं)** चाटने योग्य रबड़ी आदि को **(न अश्नाति)** नहीं खाता है **(सःच)** वह **(रात्रिभुक्ति-विरतः)** रात्रिभुक्तित्याग प्रतिमाधारी श्रावक है।

मलबीजं मलयोनिं गलन्मलं पूतिगन्धि बीभत्सं।
पश्यन्नङ्गमनङ्गाद्विरमति यो ब्रह्मचारी सः ॥१४३॥

अन्वयार्थ–(यः) जो **(मलबीजम्)** शुक्रशोणितरूप मल से उत्पन्न **(मल-योनिम्)** मल की उत्पत्ति का स्थान **(गलन्मलम्)** झरते हुए मल वाले अर्थात् जिससे मूत्रादि मल झर रहा है **(पूतिगन्धि)** दुर्गन्धयुक्त और **(बीभत्सम्)** घिनौने ग्लानियुक्त **(अङ्गं)** शरीर को **(पश्यन्)** देखता हुआ **(अनङ्गात्)** कामवासना से **(विरमति)** विरत होता है **(सः)** वह ब्रह्मचर्य प्रतिमाधारी **(ब्रह्मचारी)** ब्रह्मचारी है।

सेवाकृषिवाणिज्य-प्रमुखादारम्भतो व्युपारमति।
प्राणातिपातहेतो-र्योऽसावारम्भविनिवृत्तः ॥१४४॥

अन्वयार्थ–(यः) जो **(प्राणातिपातहेतोः)** प्राणघात के कारणभूत **(सेवाकृषि-वाणिज्य-प्रमुखात् आरम्भतः)** नौकरी, खेती, व्यापार आदि मुख्य आरम्भ से **(व्युपारमति)** विरक्त होता है **(असौ)** वह **(आरम्भ-विनिवृत्तः)** आरम्भ से रहित आरम्भत्याग प्रतिमा का धारक है।

बाह्येषु दशसु वस्तुषु ममत्वमुत्सृज्य निर्ममत्वरतः।
स्वस्थः सन्तोषपरः परिचित्तपरिग्रहाद्विरतः ॥१४५॥

अन्वयार्थ–(यः) जो **(बाह्येषु दशसु वस्तुषु)** बाहरी दश वस्तुओं/परिग्रहों में **(ममत्वम्)** ममता को **(उत्सृज्य)** छोड़कर **(निर्ममत्वरतः)** ममता रहित भाव में लीन/निर्मोही होता हुआ **(स्वस्थः)** आत्मस्वरूप में स्थित और **(संतोषपरः)** संतोष में तत्पर **(परिचित्तपरिग्रहात्)** सब ओर से चित्त में स्थित परिग्रह से **(विरतः)** विरक्त **(सः)** वह परिग्रहत्याग प्रतिमाधारी है।

अनुमतिरारम्भे वा परिग्रहे ऐहिकेषु कर्मसु वा।
नास्ति खलु यस्य समधीरनुमतिविरतः स मन्तव्यः ॥१४६॥

अन्वयार्थ–(खलु) निश्चय से **(आरम्भे)** कृषि आदि आरम्भ में **(वा)** अथवा **(परिग्रहे(षु))** परिग्रहों में **(वा)** अथवा **(ऐहिकेषु कर्मसु)** इसलोक सम्बन्धी कार्यों में **(यस्य)** जिसकी **(अनुमतिः)** अनुमोदना **(न)** नहीं **(अस्ति)** है **(सः)** वह **(समधीः)** समान बुद्धि का धारक श्रावक **(अनुमति-विरतः)** अनुमतित्याग प्रतिमाधारी **(मन्तव्यः)** मानना चाहिए।

गृहतो मुनिवनमित्वा गुरुपकण्ठे व्रतानि परिगृह्य।
भैक्ष्याशनस्तपस्यन्नुत्कृष्टश्चेलखण्डधरः ॥१४७॥

अन्वयार्थ–(गृहतो) घर से **(मुनिवनं)** मुनियों के आश्रम को **(इत्वा)** जाकर **(गुरुपकण्ठे)** गुरु के पास **(व्रतानि)** व्रतों को **(परिगृह्य)** ग्रहण करके **(भैक्ष्याशनः)** बिना याचना किए भिक्षा से भोजन करने वाला **(तपस्यन्)** तपश्चरण करता हुआ **(चेलखण्डधरः)** वस्त्र के एक खण्ड यानि लंगोट या दो खण्डों यानि लंगोट व दुपट्टा को धारण करने वाला **(उत्कृष्टः)** उत्कृष्ट श्रावक/उद्दिष्टत्याग प्रतिमाधारी है।

पापमरातिर्धर्मो बन्धुर्जीवस्य चेति निश्चिन्वन्।
समयं यदि जानीते श्रेयोज्ञाता ध्रुवं भवति ॥१४८॥

अन्वयार्थ–(पापम्) पाप **(जीवस्य)** जीव का **(अरातिः)** शत्रु है **(च)** और **(धर्मः)** धर्म/पुण्य **(बंधु)** हितकारी मित्र है **(इति)** इस प्रकार **(निश्चिन्वन्)** निश्चय करता हुआ **(यदि)** अगर **(समयम्)** आगम को **(जानीते)** जानता है **[तर्हि]** तो वह **(ध्रुवं)** निश्चय से **(श्रेयो-ज्ञाता)** श्रेष्ठ ज्ञाता/कल्याण का ज्ञाता **(भवति)** होता है।

(उपजाति छन्द)

येन स्वयं वीतकलङ्क-विद्या-दृष्टि-क्रिया-रत्नकरण्डभावं।
नीतस्तमायाति पतीच्छयेव सर्वार्थसिद्धिस्त्रिषु विष्टपेषु ॥१४९॥

अन्वयार्थ–(येन) जिस भव्य ने **(स्वयं)** अपनी आत्मा को **(वीतकलङ्क-विद्या-दृष्टि-क्रिया-रत्नकरण्डभावं)** निर्दोष सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्रमय रत्नों की पेटीरूप **(नीतः)** प्राप्त कराया है **(तं)** उसे **(त्रिषु विष्टपेषु)** तीनों लोकों में **(पतीच्छयेव)** पति की इच्छा से ही मानो **(सर्वार्थसिद्धिः)** धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप चारों पुरुषार्थों की सिद्धि **(आयाति)** प्राप्त होती है।

(मालिनी छन्द)

सुखयतु सुखभूमिः कामिनं कामिनीव
सुतमिव जननी मां शुद्धशीला भुनक्तु।
कुलमिव गुणभूषा कन्यका सम्पुनीता-
ज्जिनपतिपदपद्म-प्रेक्षिणी दृष्टिलक्ष्मीः ॥१५०॥

अन्वयार्थ–(जिनपतिपदपद्मप्रेक्षिणी) जिनेन्द्र भगवान् के चरण कमलों का दर्शन करने वाली **(सुखभूमिः)** सुख की भूमिस्वरूप **(दृष्टिलक्ष्मीः)** सम्यग्दर्शनरूपी लक्ष्मी/सम्पदा **(माम्)** मुझे उस तरह **(सुखयतु)** सुखी करे **(इव)** जिस तरह कि **(सुखभूमिः कामिनी कामिनम्)** सुख की भूमिस्वरूप सुन्दर स्त्री कामीपुरुष को सुखी करती है **(शुद्धशीला)** निर्दोष शील–तीन गुणव्रत और शिक्षाव्रत से युक्त होती हुई **(माम्)** मुझे उस तरह **(भुनक्तु)** रक्षित करे **(इव)** जिस तरह कि **(शुद्धशीला जननी सुतम्)** निर्दोष शील–पतिव्रत धर्म का पालन करने वाली माता पुत्र को रक्षित करती है और **(गुणभूषा)** मूलगुणरूपी अलंकार से युक्त होती हुई **(माम्)** मुझे उस तरह **(सम्पुनीतात्)** पवित्र करे **(इव)** जिस तरह कि **(गुणभूषा-कन्यका कुलम्)** गुणों से सुशोभित कन्या कुल को पवित्र करती है।

❑ ❑ ❑

रत्नवृष्टि

भगवान् के जन्म के १५ माह पूर्व से उस जन्म नगरी में प्रभात, मध्याह्न, सायंकाल तथा मध्य रात्रि में चार बार साढ़े तीन-साढ़े तीन करोड़ रत्नों की वर्षा होती थी। इस प्रकार **चौदह करोड़** रत्नों की प्रतिदिन वर्षा हुआ करती थी। महापुराण व हरिवंश पुराण में लिखा है कि यह रत्नवर्षा राजभवन में होती थी। वर्धमान चरित्र में कहा है। किं **तिर्यग्विजृंभक** नाम के देवगण कुबेर की आज्ञा से चारों दिशाओं में साढ़े तीन कोटि रत्नों की वर्षा करते थे।

(सर्ग १७, श्लोक ३६)

बृहत्स्वयम्भूस्तोत्रम्

श्री वृषभजिनस्तवनम्

स्वयम्भुवा भूतहितेन भूतले समञ्जसज्ञानविभूतिचक्षुषा।
विराजितं येन विधुन्वता तमः क्षपाकरेणेव गुणोत्करैः करैः ॥१॥

अन्वयार्थ–(स्वयम्भुवा) जो स्वयंभू थे–दूसरे के उपदेश के बिना मोक्षमार्ग को जानकर तथा उस रूप आचरण कर अनन्तचतुष्टय स्वरूप हुए थे, **(भूतहितेन)** प्राणियों के लिए हितकारक थे **(समञ्जसज्ञान-विभूति-चक्षुषा)** सम्यग्ज्ञान की विभूति रूप नेत्र से युक्त थे और **(गुणोत्करैः करैः)** स्वर्ग तथा मोक्ष की प्राप्ति में कारणभूत गुणों के समूह से युक्त वचनों के द्वारा **(तमः)** ज्ञानावरणादि कर्मरूप एवं अज्ञानरूप अन्धकार को **(विधुन्वता)** नष्ट करते हुए **(येन)** जो **(भूतले)** पृथ्वीतल पर **(गुणोत्करैः करैः)** अर्थ-प्रकाशकत्व आदि गुणों से युक्त किरणों के द्वारा **(तमः)** अन्धकार को **(विधुन्वता)** नष्ट करते हुए **(क्षपाकरेणेव)** चन्द्रमा के समान **(विराजितम्)** सुशोभित होते थे।

प्रजापतिर्यः प्रथमं जिजीविषूः शशास कृष्यादिषु कर्मसु प्रजाः।
प्रबुद्धतत्त्वः पुनरद्भुतोदयो ममत्वतो निर्विविदे विदाम्वरः ॥२॥

अन्वयार्थ–(यः प्रजापतिः 'बभूव') जो तीन लोक की समस्त जनता के स्वामी थे, जिन्होंने **(प्रथमं)** कर्मभूमि के प्रारम्भ में **(प्रबुद्धतत्त्वः)** मति, श्रुत और अवधिज्ञान के द्वारा लोगों के कर्म तथा उनके फलों को जानकर **(जिजीविषूः प्रजाः)** जीवित रहने की इच्छुक जनता को **(कृष्यादिषु कर्मसु)** खेती आदि आजीविका के उपयोगी छह कार्यों में **(शशास)** शिक्षित किया था और **(पुनः)** फिर **(प्रबुद्धतत्त्वः)** हेय-उपादेय तत्त्व को अच्छी तरह जानकर **(अद्भुतोदयः)** इन्द्र आदि के द्वारा की हुई आश्चर्यकारी विशिष्ट विभूति को प्राप्त होते हुए, जो **(ममत्वतः)** ममता भाव से–परिग्रह विषयक आसक्ति से **(निर्विविदे)** विरक्त हो गये थे तथा इन सब कारणों से जो **(विदाम्वरः)** श्रेष्ठ ज्ञानी हुए थे।

विहाय यः सागरवारिवाससं वधूमिवेमां वसुधावधूं सतीम्।
मुमुक्षुरिक्ष्वाकु-कुलादिरात्मवान् प्रभुः प्रवव्राज सहिष्णुरच्युतः ॥३॥

अन्वयार्थ–(यः) जो **(मुमुक्षुः)** मोक्ष के अभिलाषी अथवा संसार-समुद्र

से पार उतरने के इच्छुक थे **(आत्मवान्)** जितेन्द्रिय थे **(प्रभुः)** सामर्थ्यवान् अथवा स्वतन्त्र थे **(सहिष्णुः)** परीषह आदि की बाधाओं को सहन करने वाले थे **(अच्युतः)** गृहीत व्रत से अविचलित रहने वाले थे **(इक्ष्वाकु-कुलादिः)** इक्ष्वाकु कुल अथवा समस्त राजवंशों में आदि पुरुष थे और जिन्होंने **(सतीम्)** किसी अन्य राजा के द्वारा अभुक्त होने से पतिव्रता **(इमाम्)** इस **(सागर-वारिवाससम्)** समुद्र के जलरूप वस्त्र को धारण करने वाली–समुद्रान्त, **(वसुधावधूम्)** धनधान्य से परिपूर्ण पृथ्वीरूपी स्त्री को **(सतीं वधूमिव)** पतिव्रता स्त्री के समान **(विहाय)** छोड़कर **(प्रवव्राज)** दीक्षा धारण की थी।

स्वदोषमूलं स्वसमाधितेजसा निनाय यो निर्दयभस्मसात्क्रियाम्।
जगाद तत्त्वं जगतेऽर्थिनेऽञ्जसा बभूव च ब्रह्मपदामृतेश्वरः ॥४॥

अन्वयार्थ–(यः) जिन्होंने **(स्वदोषमूलम्)** अपने काम-क्रोध आदि समस्त दोषों के मूल कारण–चार घातिया कर्मों को **(स्वसमाधितेजसा)** परम शुक्लध्यानरूपी अग्नि के द्वारा **(निर्दयभस्मसात्क्रियां निनाय)** निर्दयता-पूर्वक भस्मभाव को प्राप्त कराया है–समूल नष्ट कर दिया तथा जिन्होंने **(अर्थिने जगते)** तत्त्वज्ञान के अभिलाषी प्राणिसमूह के लिए **(अञ्जसा)** वास्तविक **(तत्त्वं)** जीवादि तत्त्वों का स्वरूप **(जगाद)** कहा **(च)** और अन्त में जो **(ब्रह्मपदामृतेश्वरः)** मोक्षस्थान के अविनाशी-अनन्तसुख के स्वामी **(बभूव)** हुए।

स विश्वचक्षुर्वृषभोऽर्चितः सतां समग्रविद्यात्मवपुर्निरञ्जनः।
पुनातु चेतो मम नाभिनन्दनो जिनो जितक्षुल्लक, वादिशासनः॥५॥

अन्वयार्थ–(विश्वचक्षुः) जिनका केवलज्ञानरूप चक्षु समस्त पदार्थों को विषय करने वाला है, जो **(सताम्)** इन्द्र आदि सत्पुरुषों के द्वारा **(अर्चितः)** पूजित हैं **(समग्र-विद्यात्मवपुः)** जीवाजीवादि समस्त पदार्थों को विषय करने वाली बुद्धि ही जिनकी आत्मा का स्वरूप है **(निरञ्जनः)** ज्ञानावरणादि कर्ममल से रहित होने के कारण जो निर्मल हैं **(नाभिनन्दनः)** चौदहवें कुलकर नाभिराज के पुत्र हैं **(जिनः)** कर्मरूप शत्रुओं को जीतने वाले हैं और **(जित-क्षुल्लक वादिशासनः)** जिन्होंने क्षुद्रवादियों के शासन को जीत लिया है अथवा **(अजितक्षुल्लक-वादिशासनः)** जिनका शासन क्षुद्रवादियों के द्वारा नहीं जीता जा सका है **(सः)** वे **(वृषभः)** धर्म

से सुशोभित रहने वाले अथवा धर्म को सुशोभित करने वाले वृषभनाथ भगवान् **(मम)** मेरे **(चेतः)** चित्त को **(पुनातु)** पवित्र करें–रागादि विकारी भावों से रहित कर, निर्मल बनावें।

श्री अजितजिनस्तवनम्

यस्य प्रभावात् त्रिदिवच्युतस्य क्रीडास्वपि क्षीवमुखारविन्दः।
अजेय-शक्तिर्भुवि बन्धुवर्गश्चकार नामाजित इत्यवन्ध्यम् ॥१॥

अन्वयार्थ–(त्रिदिवच्युतस्य) स्वर्ग से अवतीर्ण हुए **(यस्य)** जिनके **(प्रभावात्)** प्रभाव से उनका **(बन्धुवर्गः)** कुटुम्बी–समूह **(क्रीडास्वपि)** बालक्रीड़ाओं में भी **(क्षीवमुखारविन्दः)** हर्षोन्मत्त मुखकमल से युक्त हो जाता था तथा जिनके प्रभाव से वह बन्धुवर्ग **(भुवि)** पृथ्वी पर **(अजेय-शक्तिः)** अजेय शक्ति का धारक रहता था, इसीलिए उस बन्धुवर्ग ने **(यस्य)** जिनका **(अजितः)** अजित **(इति)** यह **(अवन्ध्यम्)** सार्थक **(नाम)** नाम **(चकार)** रखा था।

अद्यापि यस्याजितशासनस्य सतां प्रणेतुः प्रतिमङ्गलार्थम्।
प्रगृह्यते नाम परं पवित्रं स्वसिद्धिकामेन जनेन लोके ॥२॥

अन्वयार्थ–(अजितशासनस्य) परवादियों के द्वारा अविजित अनेकान्तमत से युक्त तथा **(सतां प्रणेतुः)** सत्पुरुषों के प्रधान नायक **(यस्य)** जिन अजितनाथ भगवान् का **(परं पवित्रं)** अत्यन्त पवित्र **(नाम)** नाम **(अद्यापि)** आज भी **(लोके)** लोक में **(स्वसिद्धिकामेन)** अपने मनोरथों की सिद्धि के इच्छुक **(जनेन)** जन समूह के द्वारा **(प्रतिमङ्गलार्थम्)** प्रत्येक मंगल के लिए **(प्रगृह्यते)** सादर ग्रहण किया जाता है।

यः प्रादुरासीत् प्रभुशक्तिभूम्ना भव्याशयालीनकलङ्कशान्त्यै।
महामुनिर्मुक्तघनोपदेहो यथारविन्दाभ्युदयाय भास्वान् ॥३॥

अन्वयार्थ–(मुक्तघनोपदेहः) ज्ञानावरणादि कर्मरूप सघन आवरण से रहित **(यः)** जो **(महामुनिः)** गणधरादि देवों में प्रधान अथवा प्रत्यक्षज्ञानी अजितनाथ भगवान् **(भव्याशयालीन-कलङ्कशान्त्यै)** भव्यजनों के हृदय में संलग्न अज्ञान अथवा उसके कारणभूत ज्ञानावरणादि कर्मरूप कलंक की शान्ति के लिए **(प्रभुशक्तिभूम्ना)** जगत् का उपकार करने में समर्थ वाणी के माहात्म्य विशेष अथवा प्रभुत्वशक्ति की प्रचुरता से [तथा]

(प्रादुरासीत्) उस तरह प्रकट हुए थे **(यथा)** जिस तरह कि **(मुक्तघनोपदेहः)** मेघरूप आच्छादन से मुक्त **(भास्वान्)** सूर्य **(अरविन्दाभ्युदयाय)** कमलों के विकासरूप अभ्युदय के लिए प्रकट होता है।

येन प्रणीतं पृथु धर्मतीर्थं ज्येष्ठं जनाः प्राप्य जयन्ति दुःखम्।
गाङ्गं ह्रदं चन्दनपङ्कशीतं गजप्रवेका इव घर्मतप्ताः ॥४॥

अन्वयार्थ—(येन) जिन अजितनाथ भगवान् के द्वारा **(प्रणीतं)** प्रकाशित **(पृथु)** अत्यन्त विस्तृत एवं **(ज्येष्ठं)** श्रेष्ठ **(धर्मतीर्थं)** धर्मरूपी तीर्थ अथवा धर्म के प्रतिपादक श्रुत को **(प्राप्य)** पाकर **(जनाः)** भव्यजीव **(दुःखं)** संसार परिभ्रमणरूप क्लेश को उस तरह **(जयन्ति)** जीत लेते हैं, जिस तरह कि **(घर्मतप्ताः)** सूर्य के आताप से पीड़ित **(गजप्रवेकाः)** बड़े-बड़े हाथी **(इव)** की तरह **(चन्दनपङ्कशीतं)** चन्दन के द्रव के समान शीतल **(गाङ्गं ह्रदं)** गङ्गा नदी के द्रह—अगाध जल को पाकर सूर्य के संताप से उत्पन्न दुःख को जीत लेते हैं।

स ब्रह्मनिष्ठः सममित्रशत्रु - र्विद्याविनिर्वान्तकषायदोषः।
लब्धात्मलक्ष्मीरजितोऽजितात्मा जिनश्रियं मे भगवान् विधत्ताम् ॥५॥

अन्वयार्थ—(विद्याविनिर्वान्त-कषाय-दोषः) जिन्होंने परमागम के ज्ञान और उसमें प्रतिपादित मोक्षमार्ग के अनुष्ठानरूप विद्या के द्वारा कषायरूपी दोषों को अथवा द्रव्यक्रोधादिरूप कषाय और भावक्रोधादिरूप दोषों को बिल्कुल नष्ट कर दिया है, जो **(ब्रह्मनिष्ठः)** शुद्ध आत्मस्वरूप में स्थित हैं **(सममित्र-शत्रुः)** जिन्हें मित्र और शत्रु समान हैं **(लब्धात्मलक्ष्मीः)** जो आत्मा की अनन्तज्ञानादिरूप लक्ष्मी को प्राप्त कर चुके हैं और **(जितात्मा)** जिन्होंने अपने आपको जीत लिया है अर्थात् जो इन्द्रियों के अधीन नहीं हैं **(सः)** वे **(अजितः भगवान्)** अन्तरंग-बहिरंग शत्रुओं के द्वारा अपराजित अजितनाथ भगवान् **(मे)** मेरे लिए **(जिनश्रियम्)** आर्हन्त्यलक्ष्मी—अनन्तज्ञानादि विभूति **(विधत्ताम्)** प्रदान करें।

श्री शम्भवजिनस्तवनम्

त्वं शम्भवः सम्भवतर्षरोगैः सन्तप्यमानस्य जनस्य लोके।
आसीरिहाकस्मिक एव वैद्यो वैद्यो यथाऽनाथरुजां प्रशान्त्यै ॥१॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! **(त्वं शंभवः)** आपसे भव्य जीवों को सुख प्राप्त

होता है, इसलिए आप 'शंभव' इस सार्थक नाम को धारण करने वाले हैं। आप **(इह लोके)** इस संसार में **(संभवतर्षरोगैः)** सांसारिक भोग तृष्णा रूप रोगों से **(सन्तप्यमानस्य)** अतिशय पीड़ित **(जनस्य)** जन समूह के लिए **(तथा)** उस तरह **(आकस्मिक एव)** फल की अपेक्षा से रहित **(वैद्यः)** वैद्य **(आसीः)** हुए थे **(यथा)** जिस तरह कि **(अनाथरुजाम्)** अशरण मनुष्यों के रोगों की **(प्रशान्त्यै)** शान्ति के लिए **(वैद्यः)** धनादि की इच्छा से रहित वैद्य होता है।

अनित्यमत्राणमहंक्रियाभिः प्रसक्तमिथ्याध्यवसायदोषम्।
इदं जगज्जन्मजरान्तकार्त्तं निरञ्जनां शान्तिमजीगमस्त्वम् ॥२॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! **(अनित्यम्)** विनश्वर **(अत्राणम्)** रक्षक रहित **(अहं-क्रियाभिः)** 'मैं' ही सब पदार्थों का कर्त्ता-धर्त्ता हूँ, इस प्रकार अहंकार-ममकार की क्रियाओं से **(प्रसक्त-मिथ्याध्यवसायदोषम्)** संलग्न मिथ्या-अभिनिवेशरूप दोष से दूषित तथा **(जन्मजरान्तकार्त्तं)** जन्म, बुढ़ापा और मृत्यु से पीड़ित **(इदं जगत्)** इस जगत् को **(त्वम्)** आपने **(निरञ्जनां)** कर्म-कलङ्क से रहित मुक्तिरूप **(शान्तिं)** शान्ति को **(अजीगमः)** प्राप्त कराया है।

शतह्रदोन्मेषचलं हि सौख्यं तृष्णामयाप्यायनमात्रहेतुः।
तृष्णाभिवृद्धिश्च तपत्यजस्रं तापस्तदायासयतीत्यवादीः ॥३॥

अन्वयार्थ—(हि) निश्चय से **(सौख्यं)** इन्द्रियजन्य सुख **(शत-ह्रदोन्मेष-चलं)** बिजली की कौंध के समान चञ्चल है तथा **(तृष्णामयाप्यायनमात्र-हेतुः)** तृष्णारूपी रोग की पुष्टि मात्र का कारण है **(च)** और **(तृष्णाभिवृद्धिः)** तृष्णा की चौमुखी वृद्धि **(अजस्त्रं)** निरन्तर **(तपति)** ताप उत्पन्न करती है एवं वह **(तापः)** ताप **(तत्)** जगत् को **(आयासयति)** क्लेशों की परम्परा द्वारा दुखी करता है **(इति अवादीः)** ऐसा आपने कहा था।

बन्धश्च मोक्षश्च तयोश्च हेतू बद्धश्च मुक्तश्च फलं च मुक्तेः।
स्याद्वादिनो नाथ! तवैव युक्तं नैकान्तदृष्टेस्त्वमतोऽसि शास्ता ॥४॥

अन्वयार्थ—(हे नाथ) हे स्वामिन् **(बन्धश्च)** बन्ध **(मोक्षश्च)** मोक्ष **(तयोः हेतू च)** बन्ध और मोक्ष के हेतु **(बद्धश्च)** बद्ध आत्मा **(मुक्तश्च)** मुक्त आत्मा **(च)** और **(मुक्तेः)** मुक्ति का **(फलं)** फल [यह सब]

(स्याद्वादिनः) अनेकान्तमत से निरूपण करने वाले **(तवैव)** आपके ही **(मते)** मत में **(युक्तं)** ठीक होता है **(एकान्तदृष्टेः न)** एकान्तदृष्टि रखने वाले बौद्ध अथवा सांख्य आदि के मत में ठीक नहीं होता **(अतः)** इसलिए **(त्वम्)** आप ही **(शास्ता)** तत्त्वोपदेष्टा **(असि)** हैं।

शक्रोऽप्यशक्तस्तव पुण्यकीर्तेः स्तुत्यां प्रवृत्तः किमु मादृशोऽज्ञः।
तथापि भक्त्या स्तुतपादपद्मो ममार्य देयाः शिवतातिमुच्चैः ॥५॥

अन्वयार्थ—(हे आर्य!) गुणों अथवा गुणवानों के द्वारा सेव्य; हे शंभव जिनेन्द्र! **(पुण्यकीर्तेः)** पवित्र ख्याति, पवित्र वाणी अथवा पुण्यवर्धक स्तुति से युक्त **(तव)** आपकी **(स्तुत्यां)** स्तुति में **(प्रवृत्तः)** प्रवृत्त हुआ **(शक्रः अपि)** अवधिज्ञानी और समस्त श्रुत का धारक इन्द्र भी जब **(अशक्तः)** असमर्थ रहा है, तब **(मादृशः अज्ञः किमु)** मेरे जैसा अज्ञानी पुरुष कैसे समर्थ हो सकता है? यद्यपि यह बात है **(तथापि)** तो भी **(भक्त्या)** तीव्र अनुराग द्वारा **(स्तुतपादपद्मः)** स्तुत चरणकमलों से युक्त आप **(मम)** मेरे लिए **(उच्चैः)** उत्कृष्ट **(शिवतातिम्)** यथार्थ सुख की सन्तति को **(देयाः)** प्रदान करें।

श्री अभिनन्दनजिनस्तवनम्

गुणाभिनन्दादभिनन्दनो भवान् दयावधूं क्षान्तिसखीमशिश्रियत्।
समाधितन्त्रस्तदुपोपपत्तये द्वयेन नैर्ग्रन्थ्यगुणेन चायुजत् ॥१॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! **(गुणाभिनन्दात्)** अनन्तज्ञानादि अन्तरंग और सकल लक्ष्मी आदि बहिरंग गुणों की वृद्धि होने से **(अभिनन्दनः)** अभिनन्दन इस सार्थक नाम को धारण करने वाले **(भवान्)** आपने **(क्षान्तिसखीं)** क्षमा रूप सखी से सहित **(दयावधूम्)** दयारूप स्त्री का **(अशिश्रियत्)** आश्रय लिया था तथा **(समाधितन्त्रः)** धर्म्यध्यान और शुक्लध्यानरूप समाधि को प्रधान लक्ष्य बनाकर **(तदुपोपपत्तये)** उसकी सिद्धि के लिए आप **(द्वयेन)** अन्तरंग और बहिरंग के भेद से दोनों प्रकार के **(नैर्ग्रन्थ्यगुणेन च)** निष्परिग्रहतारूप गुण से **(अयुजत्)** युक्त हुए थे।

अचेतने तत्कृतबन्धजेऽपि च ममेदमित्याभिनिवेशिकग्रहात्।
प्रभङ्गुरे स्थावरनिश्चयेन च क्षतं जगत्तत्त्वमजिग्रहद्भवान् ॥२॥

अन्वयार्थ–(अचेतने) अचेतन शरीर में **(च)** और **(तत्कृतबन्धजेऽपि)** उस अचेतन शरीर के द्वारा किए हुए कर्मबन्ध से उत्पन्न सुख-दुःखादिक तथा स्त्री-पुत्रादिक परपदार्थों में **(ममेदम्)** यह मेरा है, मैं इसका स्वामी हूँ **(इति)** इस प्रकार के **(आभिनिवेशिकग्रहात्)** मिथ्या अभिप्राय को स्वीकार करने से अथवा मिथ्या अभिप्राय रूप पिशाच से **(च)** तथा **(प्रभङ्गुरे)** विनश्वर शरीर आदि परपदार्थ में **(स्थावरनिश्चयेन)** स्थायित्व के निश्चय से **(क्षतं)** नष्ट हुए **(जगत्)** जगत् को **(भवान्)** आपने **(तत्त्वं)** जीवादि पदार्थों का यथार्थ स्वरूप **(अजिग्रहत्)** ग्रहण कराया था–समझाया था।

क्षुदादिदुःखप्रतिकारतः स्थितिर्न चेन्द्रियार्थप्रभवाल्पसौख्यतः।
ततो गुणो नास्ति च देहदेहिनोरितीदमित्थं भगवान् व्यजिज्ञपत् ॥३॥

अन्वयार्थ–(क्षुदादिदुःखप्रतिकारतः) क्षुधा-तृषादि के दुख का प्रतिकार करने से–भोजनपान ग्रहण करने से **(च)** और **(इन्द्रियार्थप्रभवाल्प-सौख्यतः)** स्पर्शनादि इन्द्रियों के विषयों से उत्पन्न अल्प सुख से **(देहदेहिनोः)** शरीर और शरीरधारी आत्मा की **(स्थितिः)** सदा स्थिति **(न)** नहीं रहती **(ततः)** इसलिए उनसे उनका कुछ **(गुणः)** उपकार **(नास्ति)** नहीं है **(इत्थम्)** इस तरह **(इदम्)** इस जगत् को **(भगवान्)** भगवान् अभिनन्दन जिनेन्द्र ने **(इति)** यह परमार्थ तत्त्व **(व्यजिज्ञपत्)** बतलाया था।

जनोऽतिलोलोऽप्यनुबन्धदोषतो भयादकार्येष्विह न प्रवर्तते।
इहाप्यमुत्राप्यनुबन्धदोषवित् कथं सुखे संसजतीति चाब्रवीत् ॥४॥

अन्वयार्थ–(जनः) मनुष्य **(अतिलोलः अपि 'सन्')** अत्यन्त आसक्त होता हुआ भी **(अनुबन्धदोषतः)** आसक्ति रूप दोष से **(भयात्)** राजा आदि के भय के कारण **(इह)** इस संसार में **(अकार्येषु)** परस्त्री सेवन आदि अकरणीय कार्यों में **(न प्रवर्तते)** प्रवृत्त नहीं होता है फिर **(इहापि अमुत्रापि)** इहलोक और परलोक दोनों ही जगह **(अनुबन्धदोषवित्)** आसक्ति के दोष को जानने वाला मनुष्य **(सुखे)** विषय सुख में **(कथं संसजति)** कैसे आसक्त होता है? यह आश्चर्य की बात है **(इति च अब्रवीत्)** हे अभिनन्दन जिनेन्द्र! जगत् के जीवों को आपने यह भी

बतलाया था।

स चानुबन्धोऽस्य जनस्य तापकृत् तृषोऽभिवृद्धिः सुखतो न च स्थितिः।
इति प्रभो लोकहितं यतो मतं ततो भवानेव गतिः सतां मतः॥५॥

अन्वयार्थ—(सः अनुबन्धः) वह आसक्तता **(च)** और आसक्तता से उत्पन्न होने वाली **(तृषोऽभिवृद्धिः)** उत्तरोत्तर तृष्णा की वृद्धि दोनों ही **(अस्य जनस्य)** इस विषयासक्त मनुष्य के लिए **(तापकृत्)** संताप उत्पन्न करने वाली है **(सुखतः)** प्राप्त हुए अल्पमात्र विषय सुख से **(न च स्थितिः)** जीव की सुख से स्थिति नहीं होती अर्थात् अल्प सुख से जीव संतुष्ट नहीं होता **(इति)** इस तरह **(प्रभो!)** हे स्वामिन् **(यतः)** चूँकि **(मतं)** आपका मत **(लोकहितं)** लोककल्याणकारी है **(ततः)** इसलिए **(भवानेव)** आप ही **(सतां)** विवेक-शाली सत्पुरुषों के **(गतिः)** शरण **(मतः)** माने गये हैं।

श्री सुमतिजिनस्तवनम्

अन्वर्थसञ्ज्ञः सुमतिर्मुनिस्त्वं स्वयं मतं येन सुयुक्तिनीतम्।
यतश्च शेषेषु मतेषु नास्ति सर्वक्रियाकारक-तत्त्वसिद्धिः ॥१॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! **(त्वम्)** आप **(मुनिः)** प्रत्यक्षज्ञानी हैं तथा **(सुमतिः अन्वर्थसञ्ज्ञः)** सुमति इस सार्थक संज्ञा से युक्त हैं—उत्तम बुद्धि से सहित होने के कारण आपका 'सुमति' नाम सार्थक है **(येन)** क्योंकि आपने **(सुयुक्ति-नीतं)** उत्तम युक्तियों से युक्त **(तत्त्वं)** तत्त्व **(स्वयं मतं)** स्वीकृत किया है **(च)** और **(यतः)** जिस कारण से **(शेषेषु मतेषु)** आपके मत से शेष अन्य मतों में **(सर्वक्रियाकारक-तत्त्वसिद्धिः)** सम्पूर्ण क्रियाओं तथा कर्ता, कर्म, करण आदि कारकों की तत्त्वसिद्धि **(नास्ति)** नहीं है।

अनेक-मेकं च तदेव तत्त्वं भेदान्वयज्ञानमिदं हि सत्यम्।
मृषोपचारोऽन्यतरस्य लोपे तच्छेषलोपोऽपि ततोऽनुपाख्यम् ॥२॥

अन्वयार्थ—(तदेव तत्त्वं) वही सुयुक्ति को प्राप्त तत्त्व **(अनेकं च एकं)** अनेक तथा एक रूप है **(हि)** निश्चय से **(इदं भेदान्वयज्ञानं)** अनेक को विषय करने वाला यह भेदज्ञान और एक को विषय करने वाला यह अन्वय ज्ञान **(सत्यम्)** यथार्थ है। इनमें से किसी एक को **(उपचारः)**

उपचाररूप कल्पित मानना **(मृषा)** मिथ्या है, क्योंकि **(अन्यतरस्य)** दो में से किसी एक का **(लोपे)** लोप–अभाव होने पर **(तच्छेषलोपोऽपि)** उससे शेष अन्य धर्म का भी अभाव हो जाता है और **(ततः)** दोनों का अभाव हो जाने से तत्त्व **(अनुपाख्यम्)** निःस्वभाव होने से अवाच्य हो जाता है।

सतः कथञ्चित्तदसत्त्वशक्तिः खे नास्ति पुष्पं तरुषु प्रसिद्धम्।
सर्वस्वभावच्युतमप्रमाणं स्ववाग्विरुद्धं तव दृष्टितोऽन्यत् ॥३॥

अन्वयार्थ–(सतः) स्वद्रव्य–क्षेत्र–काल–भाव की अपेक्षा सद्रूप जीवादि पदार्थ के **(कथञ्चित्)** किसी अपेक्षा परद्रव्य–क्षेत्र–काल–भाव की अपेक्षा **(असत्त्वशक्तिः)** असद्रूपता है। जैसे कि **(पुष्पं)** फूल **(तरुषु)** वृक्षों पर **(प्रसिद्धं)** प्रसिद्ध है और **(खे)** आकाश में **(नास्ति)** नहीं है। यदि तत्त्व को **(सर्वस्वभावच्युतं)** सत्त्व और असत्त्व दोनों प्रकार के स्वभाव से च्युत माना जावेगा तो वह **(अप्रमाणं)** प्रमाण रहित हो जायेगा। हे भगवन्! **(तव दृष्टितः अन्यत्)** तुम्हारे दर्शन के सिवाय अन्य सब दर्शन **(स्ववाग् विरुद्धं)** स्ववाणी से विरुद्ध हैं अर्थात् स्ववचनबाधित हैं।

न सर्वथा नित्यमुदेत्यपैति न च क्रियाकारक - मत्र - युक्तम्।
नैवासतो जन्म सतो न नाशो दीपस्तमः पुद्गलभावतोऽस्ति ॥४॥

अन्वयार्थ–(सर्वथा नित्यं) सब प्रकार से नित्य वस्तु **(न उदेति न अपैति)** न उत्पन्न होती है, न नष्ट ही होती है **(च न)** और न **(अत्र)** इस मान्यता में **(क्रियाकारकं युक्तम्)** क्रियाकारक भाव ही संगत होता है, क्योंकि **(असतः)** असत्–अविद्यमान पदार्थ का **(नैव जन्म)** जन्म नहीं होता और **(सतो न नाशः)** सत्–विद्यमान पदार्थ का नाश नहीं होता। यदि कहा जाये कि जलता हुआ दीपक बुझा देने पर उसमें क्या शेष रह जाता है? यहाँ तो सत् का नाश मानना ही पड़ेगा तो उसका उत्तर यह है कि **(दीपः)** दीपक **(तमः पुद्गल–भावतः अस्ति)** अन्धकाररूप पुद्गल द्रव्य के रूप में विद्यमान रहता है।

विधिर्निषेधश्च कथञ्चिदिष्टौ विवक्षया मुख्यगुणव्यवस्था।
इति प्रणीतिः सुमतेस्तवेयं मतिप्रवेकः स्तुवतोऽस्तु नाथ ॥५॥

अन्वयार्थ—(विधिः) अस्तित्व **(च)** और **(निषेधः)** नास्तित्व दोनों ही **(कथञ्चित्)** किसी अपेक्षा से **(इष्टौ)** इष्ट हैं **(विवक्षया)** वक्ता की इच्छा से उनमें **(मुख्यगुण-व्यवस्था)** मुख्य और गौण की व्यवस्था होती है **(इति)** इस तरह **(इयं)** यह **(प्रणीतिः)** तत्त्व निरूपण की पद्धति **(सुमतेः तव)** आप सुमतिनाथ स्वामी की है। **(नाथ)** हे स्वामिन्! ([त्वां] **स्तुवतः** [मे]) आपकी स्तुति करते हुए मुझे **(मतिप्रवेकः)** मति का उत्कर्ष **(अस्तु)** प्राप्त होवे।

श्रीपद्मप्रभजिनस्तवनम्

पद्मप्रभः पद्मपलाशलेश्यः पद्मालयालिङ्गितचारुमूर्तिः।
बभौ भवान् भव्यपयोरुहाणां पद्माकराणामिव पद्मबन्धुः॥१॥

अन्वयार्थ—(पद्मपलाशलेश्यः) जिनके शरीर का वर्ण कमल पत्र के समान लाल रंग का था तथा **(पद्मालयालिङ्गितचारुमूर्तिः)** जिनकी आत्मस्वरूप निर्मल मूर्ति अनन्तज्ञानादिरूप अन्तरंग लक्ष्मी से एवं जिनकी समस्त उत्तम लक्षणों से सहित शरीररूप मूर्ति निःस्वेदत्व आदि-पसीना के अभाव आदि रूप बाह्य लक्ष्मी से आलिंगित थी ऐसे **(पद्मप्रभः)** पद्मप्रभ जिनेन्द्र थे। हे जिनेन्द्र! **(भवान्)** आप **(भव्यपयोरुहाणां)** भव्यजीवरूप कमलों के हितोपदेशरूप विकास के लिए, उस तरह **(बभौ)** सुशोभित हुए थे **(पद्माकराणामिव पद्म-बन्धुः)** जिस तरह कि कमल समूह के विकास के लिए सूर्य सुशोभित होता है।

बभार पद्मां च सरस्वतीं च भवान्पुरस्तात्प्रतिमुक्तिलक्ष्म्याः।
सरस्वतीमेव समग्रशोभां सर्वज्ञलक्ष्मीं ज्वलितां विमुक्तः ॥२॥

अन्वयार्थ—हे पद्मप्रभजिनेन्द्र! **(भवान्)** आपने **(प्रतिमुक्तिलक्ष्म्याः पुरस्तात्)** मोक्षरूपी लक्ष्मी के पूर्व अर्थात् अरहन्त अवस्था में **(पद्माम्)** अनन्तज्ञानादिरूप लक्ष्मी **(च)** और **(सरस्वतीं च)** दिव्यवाणी—दिव्यध्वनि को **(बभार)** धारण किया था अथवा **(समग्रशोभां)** समस्त पदार्थों के प्रतिपादन रूप विभूति और समवसरणादि रूप समस्त शोभा से युक्त **(सरस्वतीमेव)** दिव्यवाणी को ही धारण किया था। पीछे **(विमुक्तः** [सन्]) समस्त कर्ममल से रहित होकर **(ज्वलितां)** दैदीप्यमान—सदा उपयोग रूप **(सर्वज्ञलक्ष्मीं)** सर्वज्ञतारूप लक्ष्मी को धारण किया था।

शरीररश्मिप्रसरः प्रभोस्ते बालार्क - रश्मिच्छविरालिलेप।
नरामराकीर्णसभां प्रभावच्छैलस्य पद्माभमणेः स्वसानुम् ॥३॥

अन्वयार्थ—(बालार्क-रश्मिच्छविः) प्रातःकालीन सूर्य की किरणों के समान कान्ति वाले **(ते प्रभोः)** आप स्वामी के **(शरीररश्मिप्रसरः)** शरीर सम्बन्धी किरणों के समूह ने **(नरामराकीर्ण-सभां)** मनुष्य और देवों से व्याप्त समवसरण सभा को **(पद्माभमणेः शैलस्य प्रभावत् स्वसानुमिव आलि-लेप)** उस तरह आलिप्त कर रखा था, जिस तरह कि पद्मरागमणि के पर्वत की प्रभा अपने पार्श्व भाग को आलिप्त कर रखती है।

नभस्तलं पल्लवयन्निव त्वं सहस्रपत्राम्बुजगर्भचारैः।
पादाम्बुजैः पातितमारदर्पो भूमौ प्रजानां विजहर्थ भूत्यै ॥४॥

अन्वयार्थ—हे जिनेन्द्र! **(पातितमारदर्पः)** कामदेव के गर्व को नष्ट करने वाले **(त्वम्)** आपने **(सहस्रपत्राम्बुजगर्भचारैः)** सहस्रदल कमलों के मध्य में चलने वाले अपने **(पादाम्बुजैः)** चरण कमलों के द्वारा **(नभस्तलं)** आकाश तल को **(पल्लवयन्निव)** पल्लवों से युक्त जैसा करते हुए **(भूमौ)** पृथिवी पर स्थित **(प्रजानां विभूत्यै)** प्रजाजनों की विभूति के लिए **(विजहर्थ)** विहार किया था।

गुणाम्बुधेर्विप्रुषमप्यजस्त्रं नाखण्डलः स्तोतुमलं तवर्षेः।
प्रागेव मादृक् किमुतातिभक्ति-र्मां बालमालापयतीदमित्थम् ॥५॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! **(ऋषेः)** समस्त ऋद्धियों के निधान स्वरूप **(तव)** आपके **(गुणाम्बुधेः)** गुणरूप सागर की **(विप्रुषमपि)** एक बूँद की भी **(अजस्त्रम्)** निरन्तर **(स्तोतुं)** स्तुति करने के लिए जब **(आखण्डलः)** इन्द्र **(प्रागेव)** पहले ही **(अलं न)** समर्थ नहीं हो सका है, तब **(मादृक्)** मेरे जैसा असमर्थ मनुष्य **(किम् उत)** कैसे समर्थ हो सकता है? अर्थात् नहीं हो सकता। **(अतिभक्तिः)** यह तीव्र भक्ति ही **(मां बालं)** मुझ अज्ञानी से **(इत्थं)** इस तरह **(इदं)** इस स्तवन को **(आलापयति)** कहला रही है।

श्री सुपार्श्व-जिनस्तवनम्

स्वास्थ्यं यदात्यन्तिकमेष पुंसां स्वार्थो न भोगः परिभङ्गुरात्मा।
तृषोऽनुषङ्गान्न च तापशान्तिरितीदमाख्यद् भगवान्सुपार्श्वः ॥१॥

अन्वयार्थ—(यत् आत्यन्तिकं स्वास्थ्यम्) जो अविनाशी स्वरूपलीनता

है **(एष)** यही **(पुंसां)** जीवात्माओं का **(स्वार्थः)** निजी प्रयोजन है **(परि-भङ्गुरात्मा)** क्षणभंगुर **(भोगः)** भोग **(स्वार्थः न)** निजी प्रयोजन नहीं है **(तृषः)** उत्तरोत्तर भोगाकांक्षा की **(अनुषङ्गात्)** वृद्धि से **(न च तापशान्तिः)** ताप की शान्ति नहीं होती है **(इति इदम्)** इस प्रकार यह विवेक **(भगवान् सुपार्श्वः)** विशिष्ट ज्ञानी सुपार्श्वनाथ ने **(आख्यत्)** कहा है।

अजङ्गमं जङ्गमनेययन्त्रं यथा तथा जीवधृतं शरीरम्।
बीभत्सु पूति क्षयि तापकं च स्नेहो वृथात्रेति हितं त्वमाख्यः ॥२॥

अन्वयार्थ—(यथा) जिस प्रकार **(जङ्गमनेययन्त्रं)** गतिशील मनुष्य के द्वारा चलाया जाने वाला यन्त्र स्वयं **(अजङ्गमं)** गति रहित होता है **(तथा)** उसी तरह **(जीवधृतं)** जीव के द्वारा धारण किया हुआ **(शरीरं)** शरीर स्वयं (अजङ्गमं) गति रहित है—जड़ है। साथ ही यह शरीर **(बीभत्सु)** घृणित **(पूति)** दुर्गन्ध से युक्त **(क्षयि)** विनश्वर **(च)** और **(तापकं)** संताप उत्पन्न करने वाला है इसलिए **(अत्र)** इस शरीर में **(स्नेहः)** अनुराग करना **(वृथा)** व्यर्थ है **(इति)** यह **(हितं)** हितकारक वचन **(त्वम्)** हे सुपार्श्व जिन! आपने **(आख्यः)** कहा है।

अलङ्घ्यशक्तिर्भवितव्यतेयं हेतुद्वयाविष्कृतकार्यलिङ्गा।
अनीश्वरो जन्तुरहंक्रियार्त्तः संहत्य कार्येष्विति साध्ववादीः ॥३॥

अन्वयार्थ—(हेतुद्वयाविष्कृतकार्यलिङ्गा) शुभ-अशुभ कर्म अथवा बाह्य और आभ्यन्तर दोनों कारणों से उत्पन्न होने वाला कार्य ही जिसका लिंग—ज्ञापक है, ऐसी **(इयं)** यह **(भवितव्यता)** भवितव्यता—होनहार **(अलङ्घ्य-शक्तिः)** अलङ्घ्यशक्ति है—किसी भी तरह टाली नहीं जा सकती तथा भवितव्यता की अपेक्षा नहीं रखने वाला **(अहंक्रियार्त्तः)** अहंकार से पीड़ित हुआ **(जन्तुः)** संसारी प्राणी **(संहत्यकार्येषु)** अनेक सहकारी कारणों से मिलकर भी सुख-दुखादि कार्यों में **(अनीश्वरः)** असमर्थ है। हे सुपार्श्वजिनेन्द्र! आपने **(इति)** यह **(साधु)** ठीक ही **(अवादीः)** कहा है।

बिभेति मृत्योर्न ततोऽस्ति मोक्षो नित्यं शिवं वाञ्छति नास्य लाभः।
तथापि बालो भयकामवश्यो वृथा स्वयं तप्यत इत्यवादीः ॥४॥

अन्वयार्थ—यह जीव **(मृत्योः)** मरण से **(बिभेति)** डरता है परन्तु **(ततः)**

उससे **(मोक्षः)** छुटकारा **(न अस्ति)** नहीं है **(नित्यं)** सदा **(शिवं)** कल्याण अथवा निर्वाण की **(वाञ्छति)** इच्छा करता है परन्तु **(अस्य लाभः न)** इसकी प्राप्ति नहीं होती **(तथापि)** फिर भी **(भयकाम-वश्यः)** भय और काम के वशीभूत हुआ **(बालः)** अज्ञानी प्राणी **(स्वयं)** स्वयं ही **(वृथा)** निष्प्रयोजन **(तप्यते)** दुखी होता है। हे भगवन् **(इति)** यह आपने **(अवादीः)** कहा है।

सर्वस्य तत्त्वस्य भवान्प्रमाता मातेव बालस्य हितानुशास्ता।
गुणावलोकस्य जनस्य नेता मयापि भक्त्या परिणूयसेऽद्य ॥५॥

अन्वयार्थ—(भवान्) आप **(सर्वस्य तत्त्वस्य)** समस्त जीवादि पदार्थों के **(प्रमाता)** संशयादि रहित ज्ञाता हैं **(बालस्य)** सन्तान को **(मातेव)** माता के समान अज्ञानी जनों को **(हितानुशास्ता)** हित का उपदेश देने वाले हैं और **(गुणावलोकस्य जनस्य)** सम्यग्दर्शनादि गुणों का अन्वेषण करने वाले भव्य समूह के **(नेता)** सन्मार्ग दर्शक हैं अतः **(अद्य)** आज **(मयापि)** मुझ समन्तभद्र के द्वारा भी; हे सुपार्श्वजिनेन्द्र! (त्वम्) आप **(भक्त्या)**भक्तिपूर्वक **(परिणूयसे)** मन, वचन, काय से स्तुत हो रहे हैं—मैं मनसा-वाचा-कर्मणा आपकी स्तुति कर रहा हूँ।

श्री चन्द्रप्रभजिनस्तवनम्

चन्द्रप्रभं चन्द्रमरीचिगौरं चन्द्रं द्वितीयं जगतीव कान्तम्।
वन्देऽभिवन्द्यं महतामृषीन्द्रं जिनं जितस्वान्तकषायबन्धम् ॥१॥

अन्वयार्थ—मैं **(चन्द्रमरीचिगौरं)** चन्द्रमा की किरणों के समान गौर वर्ण **(जगति)** संसार में **(द्वितीयं चन्द्रमिव कान्तं)** दूसरे चन्द्रमा के समान सुन्दर **(महतां)** इन्द्र आदि बड़े-बड़े जनों के **(अभिवन्द्यं)** वन्दनीय **(ऋषीन्द्रं)** गणधरादि ऋषियों के स्वामी **(जिनं)** कर्मरूप शत्रुओं को जीतने वाले और **(जितस्वान्तकषायबन्धम्)** अपने विकारी भाव स्वरूप कषाय के बन्धन को जीतने वाले **(चन्द्रप्रभं)** चन्द्रमा के समान कान्ति के धारक चन्द्रप्रभ नामक अष्टम तीर्थंकर को **(वन्दे)** वन्दना करता हूँ।

यस्याङ्गलक्ष्मीपरिवेषभिन्नं तमस्तमोरेरिव रश्मिभिन्नम्।
ननाश बाह्यं बहु मानसं च ध्यानप्रदीपातिशयेन भिन्नम् ॥२॥

अन्वयार्थ—(यस्य) जिनके **(अङ्गलक्ष्मीपरिवेषभिन्नं)** शरीर सम्बन्धी

दिव्यप्रभा-मण्डल से विदारित **(बहु)** बहुत सारा **(बाह्यं)** बाह्य अन्धकार **(च)** और **(ध्यान-प्रदीपातिशयेन)** शुक्लध्यानरूपी श्रेष्ठ दीपक के अतिशय से **(भिन्नं)** विदारित **(बहु)** बहुत सारा **(मानसं)** मानसिक अज्ञानान्धकार **(तमोरेः)** सूर्य की **(रश्मिभिन्नं)** किरणों से विदारित **(तम इव)** अन्धकार के समान **(ननाश)** नष्ट हो गया था।

स्वपक्षसौस्थित्यमदावलिप्ता वाक्सिंहनादैर्विमदा बभूवुः।
प्रवादिनो यस्य मदार्द्रगण्डा गजा यथा केसरिणो निनादैः ॥३॥

अन्वयार्थ—(यथा) जिस प्रकार **(केसरिणः)** सिंह की **(निनादैः)** गर्जनाओं से **(मदार्द्रगण्डाः)** मद से गीले गण्डस्थलों के धारक **(गजाः)** हाथी **(विमदाः)** मद से रहित हो जाते हैं **(तथा)** उसी प्रकार **(यस्य)** जिनके **(वाक्सिंहनादैः)** वचन रूप सिंहनादों के द्वारा **(स्वपक्षसौस्थित्य-मदावलिप्ताः)** अपने मत—पक्ष की सुस्थिति के घमण्ड से गर्वीले **(प्रवादिनः)** प्रवादीजन **(विमदाः)** गर्व रहित **(बभूवुः)** हो जाते थे।

यः सर्वलोके परमेष्ठितायाः पदं बभूवाद्भुतकर्मतेजाः।
अनन्तधामाक्षरविश्वचक्षुः समन्तदुःखक्षयशासनश्च ॥४॥

अन्वयार्थ—(यः) जो **(सर्वलोके)** समस्त संसार में **(परमेष्ठितायाः)** परमाप्तपना के **(पदं)** स्थान **(बभूव)** थे **(अद्भुत-कर्मतेजाः)** तीव्र तपश्चरणरूप कार्य से जिनका तेज अद्भुत—अचिन्त्य था अथवा समस्त प्राणिसमूह को प्रतिबोधित करने रूप कार्य में जिनका केवलज्ञान रूप तेज आश्चर्यकारक था **(अनन्त-धामाक्षरविश्वचक्षुः)** अनन्त केवलज्ञान ही जिनका लोकालोक को प्रकाशित करने वाला अविनाशी चक्षु था **(च)** और **(समन्त-दुःखक्षयशासनः)** जिनका शासन चतुर्गति के दुखों का क्षय करने वाला था।

स चन्द्रमा भव्यकुमुद्वतीनां विपन्नदोषाभ्रकलङ्कलेपः।
व्याकोशवाङ्न्यायमयूखमालः पूयात्पवित्रो भगवान्मनो मे ॥५॥

अन्वयार्थ—जो **(भव्यकुमुद्वतीनां चन्द्रमाः)** भव्यजीवरूप कुमुदिनियों को विकसित करने के लिए चन्द्रमा हैं **(विपन्नदोषाभ्रकलङ्कलेपः)** जिनका रागादि दोष रूप मेघकलंक का आवरण नष्ट हो गया है **(व्याकोश-वाङ्-न्याय-मयूखमालः)** जो अत्यन्त स्पष्ट वचनों के न्यायरूप किरणों

की माला से युक्त हैं तथा **(पवित्रः)** कर्ममल से रहित होने के कारण जो अत्यन्त विशुद्ध हैं **(सः भगवान्)** वे चन्द्रप्रभ भगवान् **(मे)** मेरे **(मनः)** मन को **(पूयात्)** पवित्र करें।

श्री सुविधिजिनस्तवनम्

एकान्तदृष्टिप्रतिषेधि तत्त्वं प्रमाणसिद्धं तदतत्स्वभावम्।
त्वया प्रणीतं सुविधे! स्वधाम्ना नैतत्समालीढपदं त्वदन्यैः ॥१॥

अन्वयार्थ—(सुविधे) हे सुविधिनाथ भगवन्! **(त्वया)** आपके द्वारा **(स्वधाम्ना)** अपने ज्ञानरूप तेज से **(प्रणीतं)** प्रतिपादित **(तत्त्वं)** जीवादि पदार्थ **(एकान्तदृष्टि-प्रतिषेधि)** एकान्त दर्शन का निषेध करने वाला है, **(प्रमाण-सिद्धं)** प्रत्यक्षादि-प्रमाणों से सिद्ध है तथा **(तदतत्स्वभावम्)** तत् और अतत् स्वभाव को लिए है अर्थात् विधि निषेध रूप है। हे भगवन् **(एतत्)** यह तत्त्व **(त्वदन्यैः)** आपसे भिन्न सुगत आदि के द्वारा **(समालीढपदं न)** अनुभूत स्थान वाला नहीं है—सुगतादि के द्वारा ऐसा तत्त्व प्रतिपादित नहीं हो सका है।

तदेव च स्यान्न तदेव च स्यात् तथा-प्रतीतेस्तव तत्कथञ्चित्।
नात्यन्तमन्यत्वमनन्यता च विधेर्निषेधस्य च शून्यदोषात् ॥२॥

अन्वयार्थ—हे सुविधि जिनेन्द्र! **(तव)** आपका **(तत्)** वह तत्त्व **(कथञ्चित्)** किसी अपेक्षा से **(तदेव च स्यात्)** तद्रूप ही है **(च)** और **(कथञ्चित्)** किसी अपेक्षा से **(तदेव न स्यात्)** तद्रूप नहीं है, क्योंकि **(तथा-प्रतीतेः)** उस प्रकार की प्रतीति होती है **(विधेः)** विधि **(च)** और **(निषेधस्य)** निषेध में **(अत्यन्तं)** सर्वथा **(न अन्यत्वम्)** न भिन्नता है **(च)** और **(अनन्यता)** न अभिन्नता है, क्योंकि ऐसा मानने से **(शून्य-दोषात्)** शून्यता का दोष आता है।

नित्यं तदेवेदमिति प्रतीते-र्न नित्यमन्यत्प्रतिपत्तिसिद्धेः।
न तद्विरुद्धं बहिरन्तरङ्गनिमित्तनैमित्तिकयोगतस्ते ॥३॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! **(इदं तदेव)** यह वही है **(इति)** इस प्रकार **(प्रतीतेः)** प्रतीति होने से तत्त्व **(नित्यं)** नित्य है और **(अन्यत्प्रतिपत्ति-सिद्धेः)** यह अन्य है इस प्रकार प्रतीति होने से **(नित्यं न)** नित्य नहीं है तथा **(ते)**

आपके मत में **(बहिरन्तरङ्गनिमित्त-नैमित्तिकयोगतः)** बहिरंग-अन्तरंग कारण और कार्य के योग से **(तद्)** वह नित्यानित्यात्मक तत्त्व **(विरुद्धं न)** विरुद्ध भी नहीं है।

अनेक-मेकं च पदस्य वाच्यं वृक्षा इति प्रत्ययवत्प्रकृत्या।
आकाङ्क्षिणः स्यादिति वै निपातो गुणानपेक्षेऽनियमेऽपवादः ॥४॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! **(पदस्य)** सुबन्त-तिङन्त रूप शब्द का **(वाच्यं)** अभिधेय-प्रतिपाद्य विषय **(प्रकृत्या)** स्वभाव से ही **(वृक्षा इति प्रत्ययवत्)** वृक्ष इस ज्ञान की तरह **(अनेकं)** अनेक **(च)** और **(एकं)** एक दोनों रूप होता है **(आकाङ्क्षिणः)** विरोधी धर्म के प्रतिपादन की इच्छा रखने वाले पुरुष के **(स्यात् इति निपातः)** कथंचित् अर्थ का प्रतिपादक स्यात् यह शब्द **(गुणानपेक्षे)** गौण अर्थ की अपेक्षा न रखने वाले **(अनियमे)** सर्वथा एकान्तरूप कथन में **(वै)** निश्चय से **(अपवादः)** बाधक है।

गुणप्रधानार्थमिदं हि वाक्यं जिनस्य ते तद् द्विषतामपथ्यम्।
ततोऽभिवन्द्यं जगदीश्वराणां ममापि साधोस्तव पादपद्मम् ॥५॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! **(जिनस्य)** कर्मरूप शत्रुओं को जीतने वाले **(ते)** आपका **(इदम्)** यह जो **(गुणप्रधानार्थम्)** गौण और प्रधान अर्थ से युक्त **(वाक्यं)** वाक्य है **(तद्)** वह **(हि)** निश्चय से **(द्विषताम्)** द्वेष रखने वाले सर्वथा एकान्तवादियों के लिए **(अपथ्यं)** अनिष्ट है **(ततः)** इसलिए **(साधोः)** समस्त कर्मों का क्षय करने के लिए प्रयत्नशील **(तव)** आपके **(पादपद्मं)** चरण-कमल **(जगदीश्वराणां)** तीनों जगत् के स्वामी इन्द्र, चक्रवर्ती तथा धरणेन्द्र के और **(ममापि)** मुझ समन्तभद्र के भी **(अभिवन्द्यं)** वन्दनीय हैं।

श्री शीतलजिनस्तवनम्

न शीतलाश्चन्दनचन्द्ररश्मयो न गाङ्गमम्भो न च हारयष्टयः।
यथा मुनेस्तेऽनघवाक्यरश्मयः शमाम्बुगर्भाः शिशिरा विपश्चिताम् ॥१॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! **(मुनेः ते)** चराचर को प्रत्यक्ष जानने वाले आप शीतल जिनेन्द्र की **(शमाम्बुगर्भाः)** शान्तिरूप जल से मिश्रित **(अनघवाक्य-रश्मयः)** निर्दोष वचनरूप किरणें **(विपश्चितां)** हेयोपादेय तत्त्व को जानने वाले विद्वानों के लिए **(यथा)** जिस प्रकार **(शिशिराः)**

शीतल हैं–संसार संताप को नष्ट कर शान्ति पहुँचाने वाली हैं तथा उस प्रकार **(चन्दन-चन्द्ररश्मयः)** चन्दन और चन्द्रमा की किरणें **(गाङ्गम्भः)** गंगा नदी का जल **(च)** और **(हारयष्टयो न शीतलाः)** मोतियों की मालाएँ शीतल नहीं हैं।

सुखाभिलाषानलदाहमूर्च्छितं मनो निजं ज्ञानमयामृताम्बुभिः।
व्यदिध्यपस्त्वं विषदाहमोहितं यथा भिषग्मन्त्रगुणैः स्वविग्रहम् ॥२॥

अन्वयार्थ–(यथा) जिस प्रकार **(विषदाहमोहितं)** विषरूपी दाह से मूर्च्छित **(स्वविग्रहं)** अपने शरीर को **(भिषक्)** वैद्य **(मन्त्रगुणैः)** मन्त्र के गुणों के द्वारा शान्त करता है। उसी प्रकार हे भगवन्! **(त्वं)** आपने **(सुखाभिलाषा-नलदाहमूर्च्छितं)** वैषयिक सुखों की अभिलाषारूप अग्नि की दाह से मूर्च्छित **(निजं)** अपने **(मनः)** मन को **(ज्ञानमयामृताम्बुभिः)** ज्ञानामृतरूप जल के द्वारा **(व्यदिध्यपः)** शान्त किया था।

स्वजीविते कामसुखे च तृष्णया दिवा श्रमार्त्ता निशि शेरते प्रजाः।
त्वमार्य! नक्तंदिवमप्रमत्तवानजागरेवात्मविशुद्धवर्त्मनि ॥३॥

अन्वयार्थ–(प्रजाः) लौकिकजन **(स्वजीविते)** अपने जीवन **(च)** और **(कामसुखे)** स्त्री आदि की अभिलाषा से उत्पन्न काम-सुख की **(तृष्णाया)** तृष्णा से **(दिवा)** दिन में **(श्रमार्त्ताः)** सेवा-कृषि आदि के श्रम से दुखी रहते हैं और **(निशि)** रात्रि में **(शेरते)** सो जाते हैं, परन्तु **(हे आर्य)** हे पूज्य शीतलजिनेन्द्र! **(त्वम्)** आप **(नक्तं दिवम्)** रात-दिन **(अप्रमत्तवान्)** प्रमाद रहित हो **(आत्मविशुद्धवर्त्मनि)** आत्मा को अत्यन्त शुद्ध करने वाले सम्यग्दर्शनादिरूप मार्ग में **(अजागः एव)** जागते ही रहे हैं।

अपत्यवित्तोत्तरलोकतृष्णया तपस्विनः केचन कर्म कुर्वते।
भवान्पुनर्जन्मजराजिहासया त्रयीं प्रवृत्तिं समधीरवारुणत् ॥४॥

अन्वयार्थ–(केचन) कितने ही **(तपस्विनः)** दयनीय प्राणी अथवा व्रतीजन **(अपत्यवित्तोत्तर-लोकतृष्णया)** सन्तान, धन तथा उत्तरलोक-परलोक या उत्कृष्ट लोक की तृष्णा से **(कर्म)** अग्निहोम आदि कार्य **(कुर्वते)** करते हैं **(पुनः)** किन्तु **(भवान्)** आपने **(समधीः)** समबुद्धि होकर **(जन्मजरा-जिहासया)** जन्म और जरा को छोड़ने की इच्छा से **(त्रयीं प्रवृत्तिं)** मन, वचन, काय की प्रवृत्ति को **(अवारुणत्)** रोका है

अथवा सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्ररूप भेद रत्नत्रय को दूरकर, शुद्ध आत्मस्वरूप की लीनता रूप अभेद रत्नत्रय को अंगीकृत किया है।

त्वमुत्तमज्योतिरजः क्व निर्वृतः क्व ते परे बुद्धिलवोद्धवक्षताः।
ततः स्वनिःश्रेयसभावनापरैर्बुधप्रवेकैर्जिन! शीतलेड्यसे ॥५॥

अन्वयार्थ–(जिन) हे शीतलजिनेन्द्र! **(उत्तमज्योतिः)** केवलज्ञानरूप उत्कृष्ट ज्योति से सहित **(अजः)** पुनर्जन्म से रहित और **(निर्वृतः)** सुखीभूत **(त्वम्)** आप **(क्व)** कहाँ और **(बुद्धिलवोद्धवक्षताः)** ज्ञान के लेशमात्र से उत्पन्न गर्व से नष्ट **(ते परे)** वे हरि-हर-हिरण्यगर्भ आदि अन्य देवता **(क्व)** कहाँ? दोनों में महान् अन्तर है **(ततः)** इसीलिए **(स्वनिःश्रेयस-भावनापरैः)** आत्म-कल्याण की भावना में तत्पर **(बुधप्रवेकैः)** श्रेष्ठ विद्वानों–गणधरादिक, श्रेष्ठ ज्ञानियों के द्वारा **(ईड्यसे)** आप स्तुत हो रहे हैं–आपकी स्तुति की जा रही है।

श्री श्रेयोजिनस्तवनम्

श्रेयान् जिनः श्रेयसि वर्त्मनीमाः श्रेयः प्रजाः शासदजेयवाक्यः।
भवांश्चकासे भुवनत्रयेऽस्मिन्नेको यथा वीतघनो विवस्वान्॥१॥

अन्वयार्थ–(अजेयवाक्यः) अबाधित वचनों से युक्त **(श्रेयान् जिनः)** हे श्रेयोजिन! **(इमाः प्रजाः)** इन संसारीजनों को **(श्रेयसि वर्त्मनि)** कल्याणकारी मोक्षमार्ग में **(श्रेयः शासत्)** हित का उपदेश देते हुए **(भवान्)** आप **(अस्मिन् भुवनत्रये)** इन तीनों लोकों में **(एकः)** अकेले ही **(वीतघनः)** मेघों के आवरण से रहित **(विवस्वान् यथा)** सूर्य के समान **(चकासे)** प्रकाशमान हुए हैं।

विधिर्विषक्तप्रतिषेधरूपः प्रमाणमत्रान्यतरत्प्रधानम्।
गुणोऽपरो मुख्यनियामहेतुर्नयः स दृष्टान्तसमर्थनस्ते ॥२॥

अन्वयार्थ–हे श्रेयोजिन! **(ते)** आपके मत में **(विषक्तप्रतिषेधरूपः)** कथञ्चित् परचतुष्टय की अपेक्षा नास्तित्वरूप भी तादात्म्यसम्बन्ध से सम्बद्ध है ऐसा **(विधिः)** स्वचतुष्टय की अपेक्षा अस्तित्व **(प्रमाणं)** प्रमाण का विषय है **(अत्र)** इन विधि और प्रतिषेध में **(अन्यतरत्)** एक **(प्रधानम्)** प्रधान है और **(अपरः)** दूसरा **(गुणः)** अप्रधान है। यहाँ

(मुख्यनियामहेतुः) मुख्य के नियम का जो हेतु है **(नयः)** वह नय है तथा **(सः)** वह नय **(दृष्टान्तसमर्थनः)** दृष्टान्त का समर्थन करने वाला है।

विवक्षितो मुख्य इतीष्यतेऽन्यो गुणोऽविवक्षो न निरात्मकस्ते।
तथारिमित्रानुभयादिशक्तिर्द्वयावधिः कार्यकरं हि वस्तु ॥३॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! **(ते)** आपके मत में **(विवक्षितः)** विवक्षित पदार्थ **(मुख्य इतीष्यते)** मुख्य कहलाता है और **(अन्यः)** दूसरा—अविवक्षित पदार्थ **(गुणः)** गौण कहलाता है **(अविवक्षः)** जो पदार्थ अविवक्षित है, वह **(निरात्मकः न)** अभावरूप नहीं है **(तथा)** मुख्य और गौण की इस विधि से **(वस्तु)** पदार्थ **(अरिमित्रानुभयादि-शक्तिः)** शत्रु, मित्र और अनुभय आदि शक्तियों से युक्त होता है **(हि)** निश्चय से समस्त पदार्थों की **(द्वयावधिः)** भाव-अभाव अथवा द्रव्य और पर्यायरूप मर्यादा है और उसी मर्यादा का आश्रय कर वस्तु **(कार्यकरं)** कार्यकारी होती है।

दृष्टान्तसिद्धावुभयोर्विवादे साध्यं प्रसिद्ध्येन्न तु तादृगस्ति।
यत्सर्वथैकान्तनियामि दृष्टं त्वदीयदृष्टिर्विभवत्यशेषे ॥४॥

अन्वयार्थ—**(उभयोः)** वादी और प्रतिवादी के **(विवादे)** विवाद में **(दृष्टान्त-सिद्धौ)** उदाहरण की सिद्धि होने पर **(साध्यं)** साध्य **(प्रसिद्ध्येत्)** अच्छी तरह सिद्ध हो जाता है **(तु)** परन्तु **(तादृक् न दृष्टं अस्ति)** वैसी दृष्टान्तभूत कोई वस्तु दृष्टिगोचर नहीं है **(यत्)** जो **(सर्वथैकान्तनियामि)** सर्वथा एकान्तवाद का नियमन करने वाली हो, क्योंकि **(त्वदीयदृष्टिः)** आपका अनेकान्तमत **(अशेषे)** समस्त—साध्य, साधन और दृष्टान्त में **(विभवति)** अपना प्रभाव डाले हुए है।

एकान्तदृष्टिप्रतिषेधसिद्धिर्न्यायेषुभिर्मोहरिपुं निरस्य।
असि स्म कैवल्यविभूतिसम्राट् ततस्त्वमर्हन्नसि मे स्तवार्हः ॥५॥

अन्वयार्थ—हे श्रेयोजिनेन्द्र! **(एकान्तदृष्टिप्रतिषेधसिद्धिः)** एकान्त दृष्टि के निषेध की सिद्धि **(न्यायेषुभिः)** न्यायरूप बाणों के द्वारा होती है अर्थात् आपने न्याय रूप बाणों के द्वारा सर्वथा एकान्तवादियों का निराकरण कर उन पर विजय प्राप्त की है और **(यतः)** जिस कारण आप **(मोहरिपुं)** अज्ञानरूपी शत्रु अथवा मोहनीयकर्म से युक्त ज्ञानावरणादि घातियाकर्मों को **(निरस्य)** नष्टकर **(कैवल्यविभूतिसम्राट्)** केवलज्ञानरूप विभूति

अथवा समवसरणादि -रूप लक्ष्मी के सम्राट् **(असि स्म)** हुए हैं **(ततः)** इस कारण **(अर्हन्)** हे अर्हन्त! **(त्वम्)** आप **(मे)** मेरे **(स्तवार्हः)** स्तवन के योग्य **(असि)** हैं अर्थात् मैं आपकी स्तुति करता हूँ।

श्री वासुपूज्यजिनस्तवनम्

शिवासु पूज्योऽभ्युदयक्रियासु त्वं वासुपूज्यस्त्रिदशेन्द्रपूज्यः।
मयापि पूज्योऽल्पधिया मुनीन्द्र! दीपार्चिषा किं तपनो न पूज्यः ॥१॥

अन्वयार्थ—(हे मुनीन्द्र!) हे गणधरादि मुनियों के स्वामी! **(शिवासु)** कल्याणकारिणी **(अभ्युदयक्रियासु)** स्वर्गावतरण आदि कल्याणकों की क्रियाओं में **(पूज्यः)** पूज्य **(वासुपूज्यः)** वासुपूज्य नाम को धारण करने वाले **(त्वम्)** आप चूँकि **(त्रिदशेन्द्रपूज्यः)** इन्द्र तथा चक्रवर्ती आदि के द्वारा पूज्य हैं, अतः **(अल्पधिया)** अल्पबुद्धि के धारक **(मयापि)** मुझ समन्तभद्र के द्वारा भी **(पूज्यः)** पूज्य हैं **(किं)** क्या **(दीपार्चिषा)** दीपशिखा के द्वारा **(तपनः)** सूर्य **(न पूज्यः)** पूजनीय नहीं होता ?

न पूजयार्थस्त्वयि वीतरागे न निन्दया नाथ! विवान्तवैरे।
तथापि ते पुण्यगुणस्मृतिर्नः पुनातु चित्तं दुरिताञ्जनेभ्यः॥२॥

अन्वयार्थ—(नाथ!) हे स्वामिन्! यद्यपि **(वीतरागे)** राग से रहित **(त्वयि)** आप में **(पूजया)** पूजा के द्वारा **(न)** प्रयोजन नहीं है और **(विवान्तवैरे)** वैर से रहित आप में **(निन्दया)** निन्दा के द्वारा **(अर्थः न)** प्रयोजन नहीं है **(तथापि)** तो भी **(ते)** आपके **(पुण्यगुणस्मृतिः)** प्रशस्त गुणों का स्मरण **(नः)** हमारे **(चित्तं)** मन को **(दुरिताञ्जनेभ्यः)** पापरूपी अञ्जन से **(पुनातु)** पवित्र करे—दूर रखे।

पूज्यं जिनं त्वार्चयतो जनस्य सावद्यलेशो बहुपुण्यराशौ।
दोषाय नालं कणिका विषस्य न दूषिका शीतशिवाम्बुराशौ ॥३॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! **(पूज्यं)** इन्द्र आदि के द्वारा पूजनीय तथा **(जिनं)** कर्म रूप शत्रुओं को जीतने वाले **(त्वा)** आपकी **(अर्चयतः)** पूजा करने वाले **(जनस्य)** मनुष्य के जो **(सावद्यलेशः)** सराग परिणति अथवा आरम्भादि-जनित थोड़ा-सा पाप का लेश होता है, वह **(बहुपुण्यराशौ)** बहुत भारी पुण्य की राशि में **(दोषाय)** दोष के लिए **(अलं न)** समर्थ नहीं है, क्योंकि **(विषस्य)** विष की **(कणिका)** अल्पमात्रा **(शीतशिवाम्बु-**

राशौ) शीतल एवं आह्लादकारी जल से युक्त समुद्र में **(दूषिका न)** दोष उत्पन्न करने वाली नहीं है।

यद्वस्तु बाह्यं गुणदोषसूते - र्निमित्तमभ्यन्तरमूलहेतोः।
अध्यात्मवृत्तस्य तदङ्गभूतमभ्यन्तरं केवलमप्यलं ते ॥४॥

अन्वयार्थ—(यद् वस्तु) जो पुष्पादिक पदार्थ **(गुणदोषसूतेः)** पुण्य और पाप की उत्पत्ति के **(बाह्यं)** बहिरंग **(निमित्तं)** कारण हैं **(तद्)** वह **(अध्यात्म-वृत्तस्य)** आत्मा में प्रवर्तने वाले **(अभ्यन्तरमूलहेतोः)** अन्तरंग/उपादानरूप मूलकारण का **(अङ्गभूतं)** सहकारी कारण है। हे भगवन्! **(ते)** आपके मत में **(अभ्यन्तरं)** अन्तरंग कारण **(केवलमपि)** बाह्य वस्तु से निरपेक्ष और सापेक्ष दोनों ही प्रकार का **(अलं)** गुण-दोष की उत्पत्ति में समर्थ है।

बाह्येतरोपाधिसमग्रतेयं कार्येषु ते द्रव्यगतः स्वभावः।
नैवान्यथा मोक्षविधिश्च पुंसां तेनाभिवन्द्यस्त्वमृषिर्बुधानाम् ॥५॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! **(कार्येषु)** घट आदि कार्यों में **(इयं)** यह जो **(बाह्ये-तरोपाधिसमग्रता)** बाह्य और आभ्यन्तर कारणों की पूर्णता है, वह **(ते)** आपके मत में **(द्रव्यगतः)** जीवादि द्रव्यगत **(स्वभावः)** स्वभाव है **(अन्यथा)** अन्य प्रकार से घटादि की विधि ही नहीं, किन्तु **(पुंसां)** मोक्षाभिलाषी पुरुषों के **(मोक्षविधिश्च)** मोक्ष की विधि भी **(नैव)** घटित नहीं होती है **(तेन)** इसीलिए **(ऋषिः)** परम ऋषियों से युक्त **(त्वम्)** आप **(बुधानां)** गणधरादि बुधजनों के **(अभिवन्द्यः)** वन्दनीय हैं।

श्री विमलजिनस्तवनम्

य एव नित्यक्षणिकादयो नया मिथोऽनपेक्षाः स्वपरप्रणाशिनः।
त एव तत्त्वं विमलस्य ते मुनेः परस्परेक्षाः स्वपरोपकारिणः ॥१॥

अन्वयार्थ—(य एव) जो ही **(नित्यक्षणिकादयः नयाः)** नित्य अथवा क्षणिक आदि नय **(मिथोऽनपेक्षाः)** परस्पर में निरपेक्ष होकर अन्यमतों में **(स्वपर-प्रणाशिनः)** निज और पर का नाश करने वाले हैं **(ते एव)** वे ही नय **(परस्परेक्षाः)** परस्पर की अपेक्षा रखते हुए **(स्वपरोप-कारिणः)** निज और पर का उपकार करने वाले होकर **(मुनेः)** प्रत्यक्षज्ञानी **(ते)** आप **(विमलस्य)** विमल जिनेन्द्र के मत में **(तत्त्वं)** वस्तु स्वरूप होते हैं।

यथैकशः कारकमर्थसिद्धये समीक्ष्य शेषं स्वसहायकारकम्।
तथैव सामान्यविशेषमातृका नयास्तवेष्टा गुणमुख्यकल्पतः ॥२॥

अन्वयार्थ—(यथा) जिस प्रकार **(एकशः)** एक-एक **(कारकम्)** उपादान-कारण या निमित्तकारण **(स्वसहायकारकं)** अपनी सहायता करने वाले **(शेषं)** अन्य कारक की **(समीक्ष्य)** अच्छी तरह अपेक्षा करके **(अर्थसिद्धये)** कार्य की सिद्धि के लिए समर्थ होता है **(तथैव)** उसी प्रकार **(सामान्य-विशेषमातृका)** सामान्य और विशेष से उत्पन्न अथवा सामान्य और विशेष को जानने वाले एवं **(गुणमुख्यकल्पतः)** गौण और मुख्य की कल्पना से **(तव)** आपके **(इष्टाः)** अभिप्रेत **(नयाः)** नय [अर्थसिद्धये] कार्य की सिद्धि के लिए समर्थ हैं।

परस्परेक्षान्वयभेदलिङ्गतः प्रसिद्धसामान्यविशेषयोस्तव।
समग्रतास्ति स्वपरावभासकं यथा प्रमाणं भुवि बुद्धिलक्षणम् ॥३॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! **(यथा)** जिस प्रकार **(भुवि)** पृथ्वी पर **(स्वपराव-भासकं)** स्व और पर को प्रकाशित करने वाला **(बुद्धिलक्षणं)** ज्ञानरूप लक्षण से युक्त **(प्रमाणं)** प्रमाण प्रसिद्ध है **(तथा)** उसी प्रकार **(तव)** आपके मत में **(परस्परेक्षान्वयभेदलिङ्गतः)** परस्पर एक दूसरे की अपेक्षा रखने वाले अभेद और भेद के ज्ञान से **(प्रसिद्धसामान्यविशेषयोः)** प्रसिद्ध सामान्य और विशेष की **(समग्रता)** पूर्णता **(अस्ति)** विद्यमान है।

विशेष्यवाच्यस्य विशेषणं वचो यतो विशेष्यं विनियम्यते च यत्।
तयोश्चसामान्यमतिप्रसज्यतेविवक्षितात्स्यादिति तेऽन्यवर्जनम् ॥४॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! **(विशेष्यवाच्यस्य)** वाच्यभूत विशेष का वह **(वचः)** वचन **(यतः)** जिससे **(विशेष्यं)** विशेष्य **(विनियम्यते)** नियमित किया जाता है **(विशेषणं)** विशेषण कहलाता है और **(यत्)** जो **(विनियम्यते)** नियमित होता है **(तत्)** वह **(विशेष्यं)** विशेष्य कहलाता है **(च)** और **(तयोः)** उन विशेषण और विशेष्य में यद्यपि **(सामान्य-मतिप्रसज्यते)** सामान्य का प्रसंग आता है, परन्तु **(ते)** आपके मत में **(स्यादिति)** कथञ्चित् अर्थ के वाचक स्यात् पद के द्वारा **(विवक्षितात्)** विवक्षित विशेषण विशेष्य से **(अन्य-वर्जनम्)** अविवक्षित विशेषण विशेष्य का परिहार हो जाता है।

नयास्तव स्यात्पदसत्यलाञ्छिता रसोपविद्धा इव लोहधातवः।
भवन्त्यभिप्रेतगुणा यतस्ततो भवन्तमार्याः प्रणता हितैषिणः ॥५॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! **(यतः)** चूँकि **(स्यात्पदसत्यलाञ्छिताः)** स्यात् पद रूपी सत्य से चिह्नित **(तव)** आपके **(नयाः)** नय **(रसोपविद्धाः)** रस से अनुलिप्त **(लोहधातवः इव)** लोह धातुओं के समान **(अभिप्रेतगुणाः)** इष्ट गुणों से युक्त पक्ष में सुवर्ण आदि इष्ट पदार्थ के गुणों से युक्त **(भवन्ति)** होते हैं **(ततः)** इसलिए **(हितैषिणः)** हित के इच्छुक **(आर्याः)** गणधर आदि उत्तम पुरुष **(भवन्तं)** आपके प्रति **(प्रणताः)** नम्रीभूत हैं।

श्री अनन्तजिनस्तवनम्

अनन्तदोषाशयविग्रहो ग्रहो विषङ्गवान्मोहमयश्चिरं हृदि।
यतो जितस्तत्त्वरुचौ प्रसीदता त्वया ततोऽभूर्भगवाननन्तजित् ॥१॥

अन्वयार्थ—**(अनन्तदोषाशयविग्रहः)** जिसका शरीर अनन्त रागादि दोषों का आधार है तथा जो **(चिरं)** चिरकाल से **(हृदि)** हृदय में **(विषङ्गवान्)** संलग्न था अथवा ममता भाव से सहित था, ऐसा **(मोहमयः)** मोहरूप **(ग्रहः)** पिशाच **(तत्त्व-रुचौ)** तत्त्व श्रद्धा से **(प्रसीदता)** प्रसन्न रहने वाले **(त्वया)** आपके द्वारा **(यतः)** क्योंकि **(जितः)** जीत लिया था **(ततः)** इसलिए आप **(भगवान्)** भगवान् **(अनन्त-जित्)** अनन्तजित् इस सार्थक नाम को धारण करने वाले **(अभूः)** हुए हैं।

कषायनाम्नां द्विषतां प्रमाथिनामशेषयन्नाम भवानशेषवित्।
विशोषणं मन्मथदुर्मदामयं समाधिभैषज्यगुणैर्व्यलीनयत् ॥२॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! **(भवान्)** आप **(प्रमाथिनाम्)** दुःख देने वाले **(कषायनाम्नां द्विषताम्)** कषाय नामक शत्रुओं के **(नाम)** नाम को हृदय में **(अशेषयन्)** समाप्त करते हुए **(अशेषवित्)** सर्वज्ञ हुए हैं तथा आपने **(समाधिभैषज्यगुणैः)** ध्यानरूप औषधि के गुणों के द्वारा **(विशोषणं)** संतापकारक **(मन्मथदुर्मदामयं)** कामदेव के दुष्ट दर्परूपी रोग को **(व्यलीनयत्)** विलीन किया है—नष्ट किया है।

परिश्रमाम्बुर्भयवीचिमालिनी त्वया स्वतृष्णासरिदार्य! शोषिता।
असङ्घ्यमार्क-गभस्तितेजसा परं ततो निर्वृतिधाम तावकम् ॥३॥

अन्वयार्थ—**(परिश्रमाम्बुः)** जिसमें परिश्रमरूपी जल भरा है और **(भय-**

वीचि-मालिनी) भयरूप तरंगों की मालाएँ उठ रही हैं, ऐसी **(स्वतृष्णा-सरित्)** अपनी भोगाकांक्षारूप नदी **(हे आर्य)** हे पूज्य **(त्वया)** आपके द्वारा **(असङ्ग-घर्मार्क गभस्ति-तेजसा)** निष्परिग्रहतारूप ग्रीष्मकालीन सूर्य की किरणों के तेज से **(शोषिता)** सुखा दी गई है **(ततः)** इसलिए **(परम्)** उसके आगे विद्यमान **(निर्वृतिधाम)** निर्वाण-स्थान **(तावकम्)** आपका ही है अथवा आपका अनन्तज्ञानादि तेज अत्यन्त उत्कृष्ट है।

सुहृत्त्वयि श्रीसुभगत्वमश्नुते द्विषंस्त्वयि प्रत्ययवत्प्रलीयते।
भवानुदासीनतमस्तयोरपि प्रभो परं चित्रमिदं तवेहितम् ॥४॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! **(त्वयि सुहृद्)** आप में उत्तम हृदय को रखने वाला-भक्त पुरुष **(श्रीसुभगत्वं)** लक्ष्मी के वल्लभपने को **(अश्नुते)** प्राप्त होता है और **(त्वयि द्विषन्)** आपमें द्वेष रखने वाला—अभक्त पुरुष **(प्रत्ययवत्)** व्याकरण के प्रसिद्ध क्विप् आदि प्रत्ययों अथवा क्षायोपशमिक ज्ञान के समान **(प्रलीयते)** नष्ट हो जाता है—चतुर्गति के दुखों का अनुभव करता है, परन्तु **(भवान्)** आप **(तयोरपि)** उन दोनों—भक्त और अभक्त पुरुषों के विषय में **(उदासीन-तमः)** अत्यन्त उदासीन हैं—रागद्वेष से रहित हैं **(प्रभो)** हे स्वामिन्! **(तव)** आपकी **(इदम् ईहितं)** यह चेष्टा **(परं चित्रम्)** अत्यन्त आश्चर्यकारी है।

त्वमीदृशस्तादृश इत्ययं मम प्रलापलेशोऽल्पमतेर्महामुने।
अशेषमाहात्म्यमनीरयन्नपि शिवाय संस्पर्श इवामृताम्बुधेः ॥५॥

अन्वयार्थ—(महामुने!) हे समस्त पदार्थों के प्रत्यक्ष जानने वाले मुनिनाथ! **(त्वम्)**आप **(ईदृशः)** ऐसे हैं **(तादृशः)** वैसे हैं **(इति)** इस प्रकार का **(अयं)** यह **(मम अल्पमतेः)** मुझ अल्पबुद्धि का **(प्रलापलेशः)** थोड़ा-सा प्रलाप **(अशेषमाहात्म्यं)** आपकी समस्त महिमा को **(अनीरयन्नपि)** न कहता हुआ भी **(अमृताम्बुधेः)** सुधासागर के **(संस्पर्श इव)** समीचीन स्पर्श के समान **(शिवाय)** मोक्ष के लिए है—मोक्षसुख की प्राप्ति का कारण है।

श्री धर्म जिनस्तवनम्

धर्मतीर्थमनघं प्रवर्तयन् धर्म इत्यनुमतः सतां भवान्।
कर्मकक्षमदहत्तपोऽग्निभिः शर्म शाश्वतमवाप शङ्करः॥१॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! **(अनघं)** निर्दोष **(धर्मतीर्थं)** धर्मरूपी तीर्थ अथवा धर्म का प्रतिपादन करने वाले आगम को **(प्रवर्तयन्)** प्रवर्ताते हुए **(भवान्)** आप **(सतां)** गणधरदेवादि विद्वानों के द्वारा **(धर्मः)** धर्म **(इति)** इस सार्थक नाम से युक्त **(अनुमतः)** माने गये हैं। आपने **(तपोऽग्निभिः)** तप रूपी अग्नियों के द्वारा **(कर्मकक्षम्)** कर्मरूपी वन को **(अदहत्)** जलाया है तथा **(शाश्वतं)** अविनाशी **(शर्म)** सुख **(अवाप)** प्राप्त किया है, इसलिए आप सत्पुरुषों के द्वारा **(शङ्करः)** शंकर इस नाम से युक्त [अनुमतः] माने गये हैं।

देवमानवनिकायसत्तमै रेजिषे परिवृतो वृतो बुधैः।
तारकापरिवृतोऽतिपुष्कलो व्योमनीव शशलाञ्छनोऽमलः ॥२॥

अन्वयार्थ—हे धर्मजिन! **(देवमानवनिकायसत्तमैः)** देवसमूह और मनुष्य-समूह में अत्यन्त श्रेष्ठ भव्यजीवों के द्वारा **(परिवृतः)** चारों ओर से वेष्टित तथा **(बुधैः)** गणधरादि विद्वानों से **(वृतः)** घिरे हुए आप **(व्योमनि)** आकाश में **(तारकापरिवृतः)** ताराओं से परिवेष्टित **(अमलः)** घनपटलादि मल से रहित, **(अतिपुष्कलः)** सम्पूर्ण **(शशलाञ्छन इव)** चन्द्रमा के समान **(रेजिषे)** सुशोभित हुए थे।

प्रातिहार्यविभवैः परिष्कृतो देहतोऽपि विरतो भवानभूत्।
मोक्षमार्गमशिषन्नरामरान् नापि शासनफलैषणातुरः ॥३॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! **(भवान्)** आप **(प्रातिहार्यविभवैः)** सिंहासनादि प्रातिहार्यों तथा समवसरणादि विभूतियों से **(परिष्कृतः)** विभूषित होते हुए भी न केवल उनसे, किन्तु **(देहतोऽपि)** शरीर से भी **(विरतः)** ममत्व रहित **(अभूत्)** थे तथा आपने **(नरामरान्)** मनुष्यों और देवों को **(मोक्षमार्गम्)** मोक्षमार्ग का **(अशिषत्)** उपदेश दिया था फिर भी आप **(शासन-फलैषणातुरः)** उपदेश के फल की इच्छा से आतुर-व्यग्र **(नापि)** नहीं हुए थे।

कायवाक्यमनसां प्रवृत्तयो नाभवंस्तव मुनेश्चिकीर्षया।
नासमीक्ष्य भवतः प्रवृत्तयो धीर! तावकमचिन्त्यमीहितम् ॥४॥

अन्वयार्थ—हे नाथ! **(तव)** आप **(मुनेः)** प्रत्यक्षज्ञानी के **(काय-वाक्य-मनसां)** काय, वचन और मन की **(प्रवृत्तयः)** चेष्टाएँ **(चिकीर्षया)**

करने की इच्छा से **(न अभवन्)** नहीं हुईं तथा **(भवतः)** आपकी **(प्रवृत्तयः)** प्रवृत्तियाँ–चेष्टाएँ **(असमीक्ष्य)** वस्तुस्वरूप को ज्यों का त्यों जाने बिना **(न)** नहीं हुईं **(हे धीर)** परीषहादिक तथा अन्यमतावलम्बियों के प्रश्न आदि से चित्त को क्षुभित न करने वाले, हे धीर-वीर धर्मजिनेन्द्र! **(तावकं)** आपका **(ईहितं)** चरित **(अचिन्त्यं)** अचिन्तनीय है–आश्चर्य करने वाला है।

मानुषीं प्रकृतिमभ्यतीतवान् देवतास्वपि च देवता यतः।
तेन नाथ! परमासि देवता श्रेयसे जिनवृष! प्रसीद नः ॥५॥

अन्वयार्थ–हे भगवन्! **(यतः)** चूँकि आप **(मानुषीं प्रकृतिं)** मानव स्वभाव को **(अभ्यतीतवान्)** अतिक्रान्त कर गये हैं **(च)** और **(देवता-स्वपि)** इन्द्र, चन्द्र आदि देवों में भी **(देवता)** देवता हैं, पूज्य हैं **(तेन)** इसलिए **(हे नाथ!)** हे स्वामिन्! आप **(परम देवता असि)** उत्कृष्ट देवता हैं **(हे जिनवृष)** हे जिनेन्द्र! **(नः)** हमारे **(श्रेयसे)** कल्याण के लिए **(प्रसीद)** प्रसन्न होइये।

श्री शान्तिजिनस्तवनम्

विधाय रक्षां परतः प्रजानां राजा चिरं योऽप्रतिमप्रतापः।
व्यधात्पुरस्तात्स्वत एव शान्तिर्मुनिर्दयामूर्तिरिवाघशान्तिम् ॥१॥

अन्वयार्थ–(यः शान्तिः) जो शान्तिजिनेन्द्र **(परतः)** शत्रुओं से **(प्रजानां)** प्रजा-जनों की **(रक्षां विधाय)** रक्षा कर **(चिरं)** चिरकाल तक पहले **(अप्रतिमप्रतापः)** अतुल्य पराक्रमी **(राजा)** राजा हुए और **(पुरस्तात्)** फिर **(स्वत एव)** स्वयं ही **(मुनिः)** मुनि होकर जिन्होंने **(दयामूर्तिरिव)** दया की मूर्ति की तरह **(अघशान्तिं)** पापों की शान्ति **(व्यधात्)** की।

चक्रेण यः शत्रुभयङ्करेण जित्वा नृपः सर्वनरेन्द्रचक्रम्।
समाधिचक्रेण पुनर्जिगाय महोदयो दुर्जयमोहचक्रम् ॥२॥

अन्वयार्थ–(महोदयः) गर्भावतरण आदि कल्याणकों की परम्परा से युक्त **(यः)** जो शान्ति जिनेन्द्र गृहस्थावस्था में **(शत्रुभयङ्करेण)** शत्रुओं को भय उत्पन्न करने वाले **(चक्रेण)** सुदर्शनचक्र के द्वारा **(सर्वनरेन्द्रचक्रं)** समस्त राजाओं के समूह को **(जित्वा)** जीतकर **(नृपः)** चक्रवर्ती हुए और **(पुनः)** पश्चात् वीतरागावस्था में जिन्होंने **(समाधिचक्रेण)** ध्यानरूप

चक्र के द्वारा **(दुर्जय-मोहचक्रं)** कठिनाई से जीतने योग्य मोहनीयकर्म की मूल तथा उत्तर प्रकृतियों के समूह को **(जिगाय)** जीता था।

राजश्रिया राजसु राजसिंहो रराज यो राजसुभोगतन्त्रः।
आर्हन्त्यलक्ष्म्या पुनरात्मतन्त्रो देवासुरोदारसभे रराज ॥३॥

अन्वयार्थ–(राजसिंहः) राजाओं में श्रेष्ठ तथा **(राजसुभोगतन्त्रः)** राजाओं के उत्तम भोगों के अधीन अथवा राजाओं के उत्तम भोगों को स्वाधीन रखने वाले **(यः)** जो शान्तिजिनेन्द्र सराग अवस्था में **(राजसु)** राजाओं के बीच **(राजश्रिया)** नौ निधि तथा चौदह रत्नों से युक्त राजलक्ष्मी के द्वारा **(रराज)** सुशोभित हुए थे और **(पुनः)** पश्चात् वीतरागावस्था में **(आत्मतन्त्रः)** आत्माधीन होते हुए **(देवासुरोदारसभे)** देव और धरणेन्द्रादिकों की महती सभा में **(आर्हन्त्यलक्ष्म्या)** अष्ट प्रातिहार्य रूप बाह्य तथा अनन्तज्ञानादिरूप अन्तरंग विभूति से **(रराज)** सुशोभित हुए थे।

यस्मिन्नभूद्राजनि राजचक्रं मुनौ दयादीधिति धर्मचक्रम्।
पूज्ये मुहुः प्राञ्जलि देवचक्रं ध्यानोन्मुखे ध्वंसि कृतान्तचक्रम् ॥४॥

अन्वयार्थ–(यस्मिन्) जिन शान्तिनाथ भगवान् के **(राजनि 'सति')** राजा होने पर **(राजचक्रं)** राजाओं का समूह **(प्राञ्जलि)** बद्धाञ्जलि **(अभूत्)** हुआ था, जिन शान्तिनाथ भगवान् के **(मुनौ 'सति')** मुनि होने पर **(दयादीधिति)** दयारूप किरणों से युक्त अथवा दया को प्रकाशित करने वाला **(धर्मचक्रं)** उत्तमक्षमा आदि धर्मों का समूह [प्राञ्जलि अभूत्] अपने आधीन हुआ था अथवा जिन शान्तिनाथ भगवान् के **(मुनौ)** समस्त पदार्थों को प्रत्यक्ष जानने वाले केवलज्ञानी होने पर **(दयादीधिति)** दयारूप किरणों से युक्त **(धर्मचक्रं)** देवरचित धर्मचक्र [प्राञ्जलि अभूत्] अपने अधीन हुआ था, जिन शान्तिनाथ भगवान् के **(पूज्ये)** पूज्य होने पर– समवसरण में स्थित होकर धर्मोपदेश होने पर **(देवचक्रं)** देवों का समूह **(मुहुः)** बार-बार [प्राञ्जलि अभूत्] बद्धाञ्जलि हुआ था और जिन शान्तिनाथ भगवान् के **(ध्यानोन्मुखे)** व्युपरत-क्रियानिवर्तिनामक चतुर्थ शुक्लध्यान के सन्मुख होने पर **(ध्वंसि)** क्षय को प्राप्त होता हुआ **(कृतान्तचक्रं)** कर्मों का समूह [प्राञ्जलि] शरण की भिक्षा के लिए बद्धाञ्जलि [अभूत्]

हुआ था।

स्वदोषशान्त्या विहितात्मशान्तिः शान्तेर्विधाता शरणं गतानाम्।
भूयाद्भवक्लेशभयोपशान्त्यै शान्तिर्जिनो मे भगवान् शरण्यः ॥५॥

अन्वयार्थ—(स्वदोषशान्त्या) अपने रागादि दोषों की शान्ति से **(विहितात्म-शान्तिः)** जिन्हें आत्मशान्ति की प्राप्ति हुई है, जो **(शरणं गतानां)** शरण में आये हए जीवों को **(शान्तेर्विधाता)** शान्ति के करने वाले हैं, जो **(जिनः)** कर्म रूप शत्रुओं के जीतने वाले हैं **(भगवान्)** विशिष्टज्ञान अथवा लोकोत्तर ऐश्वर्य से सहित हैं तथा **(शरण्यः)** शरण देने में निपुण हैं वह **(शान्तिः)** शान्तिनाथ जिनेन्द्र **(मे)** मेरे **(भवक्लेश-भयोप-शान्त्यै)** संसार-परिभ्रमण, क्लेशों और भयों की शान्ति के लिए **(भूयात्)** हों।

श्री कुन्थुजिनस्तवनम्

कुन्थुप्रभृत्यखिलसत्त्वदयैकतानः कुन्थुर्जिनो ज्वरजरामरणोपशान्त्यै।
त्वं धर्मचक्रमिह वर्तयसि स्म भूत्यै भूत्वा पुरा क्षितिपतीश्वरचक्रपाणिः ॥१॥

अन्वयार्थ—(कुन्थुप्रभृत्यखिलसत्त्वदयैकतानः) कुन्थु आदि समस्त जीवों पर एक मुख्य रूप से दया का विस्तार करने वाले **(कुन्थुः जिनः)** कुन्थुनाथ जिनेन्द्र थे। हे भगवन्! **(त्वं)** आपने **(पुरा)** पहले गृहस्थावस्था में **(भूत्यै)** राजविभूति के निमित्त **(क्षितिपतीश्वर चक्रपाणिः)** राजाधिराज चक्रवर्ती **(भूत्वा)** होकर पश्चात् **(इह)** इस संसार में (**ज्वरजरा-मरणोप-शान्त्यै)** ज्वर आदि समस्त रोग, बुढ़ापा और मरण के विनाश से युक्त **(भूत्यै)** मोक्षलक्ष्मी के लिए **(धर्मचक्रं)** धर्म के समूह को अथवा देवरचित धर्मचक्र नामक अतिशय विशेष को **(वर्तयसि स्म)** प्रवर्तित किया था।

तृष्णार्चिषः परिदहन्ति न शान्तिरासामिष्टेन्द्रियार्थविभवैः परिवृद्धिरेव।
स्थित्यैव कायपरितापहरं निमित्तमित्यात्मवान् विषयसौख्यपराङ्मुखोऽभूत् ॥२॥

अन्वयार्थ—(तृष्णार्चिषः) विषयाकांक्षारूप अग्नि की ज्वालाएँ **(परि-दहन्ति)** इस जीव को सब ओर से जला रही हैं **(इष्टेन्द्रियार्थविभवैः)** इष्ट इन्द्रियों के विषयों से **(आसां)** इन विषयाकांक्षारूप अग्नि की ज्वालाओं की **(न शान्तिः)** शान्ति नहीं होती, किन्तु **(परिवृद्धिरेव)** सब ओर से

वृद्धि ही होती है। यह वृद्धि **(स्थित्यैव)** इन्द्रिय विषयों के स्वभाव से ही होती है **(निमित्तं)** निमित्त कारण **(कायपरितापहरं)** मात्र शरीर के संताप को हरने वाला होता है, विषयाकांक्षा-रूप अग्निज्वालाओं का उपशमन करने वाला नहीं होता। हे भगवन्! **(इति)** यह सब विचार कर ही **(आत्मवान्)** जितेन्द्रिय होते हुए आप **(विषयसौख्य-पराङ्मुखः)** विषयजन्य सुख से पराङ्मुख **(अभूत्)** हुए हैं।

बाह्यं तपः परमदुश्चरमाचरंस्त्वमाध्यात्मिकस्य तपसः परिवृंहणार्थम्।
ध्यानं निरस्य कलुषद्वयमुत्तरस्मिन् ध्यानद्वये ववृतिषेऽतिशयोपपन्ने ॥३॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! **(त्वम्)** आपने **(आध्यात्मिकस्य)** अन्तरंग **(तपसः)** तप की **(परिवृंहणार्थम्)** वृद्धि के लिए **(परमदुश्चरं)** अत्यन्त कठिन **(बाह्यं तपः)** अनशनादि बाह्यतप का **(आचरन्)** आचरण किया था तथा **(कलुष-द्वयं)** आर्त्त-रौद्ररूप दो खोटे **(ध्यानं)** ध्यानों को **(निरस्य)** छोड़कर आप **(अतिशयोपपन्ने)** उत्कृष्ट अतिशय से युक्त अथवा अपने अवान्तर भेदों से सहित **(उत्तरस्मिन्)** आगे के **(ध्यानद्वये)** धर्म्यध्यान और शुक्लध्यान इन दो ध्यानों में **(ववृतिषे)** स्थिर हुए थे।

हुत्वा स्वकर्मकटुकप्रकृतीश्चतस्रो रत्नत्रयातिशयतेजसि जातवीर्यः।
बभ्राजिषे सकलवेदविधेर्विनेता व्यभ्रे यथा वियति दीप्तरुचिर्विवस्वान् ॥४॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! **(चतस्रः स्वकर्मकटुकप्रकृतीः)** अपने कर्मों की चार कटुक प्रकृतियों को **(रत्नत्रयातिशयतेजसि)** सम्यग्दर्शनादि रत्नत्रय की प्रकृष्टतारूप अग्नि में **(हुत्वा)** होमकर **(जातवीर्यः)** आप सामर्थ्यवान् अनन्तवीर्य से युक्त हुए तथा **(सकलवेदविधेः)** समस्त लोकालोक विषयक ज्ञान के विधायक परमागम के **(विनेता)** प्रणेता होकर **(तथा)** उस तरह **(बभ्राजिषे)** दैदीप्यमान हुए **(यथा)** जिस तरह कि **(व्यभ्रे)** मेघ रहित **(वियति)** आकाश में **(दीप्तरुचिः)** दैदीप्यमान किरणों से युक्त **(विवस्वान्)** सूर्य होता है।

यस्मान्मुनीन्द्र! तव लोक पितामहाद्या विद्याविभूतिकणिकामपि नाप्नुवन्ति।
तस्माद् भवन्तमजमप्रतिमेयमार्याः स्तुत्यं स्तुवन्ति सुधियः स्वहितैकतानाः॥५॥

अन्वयार्थ—**(हे मुनीन्द्र)** हे यतिनाथ! **(यस्मात्)** चूँकि **(लोकपिता-महाद्याः)** ब्रह्मा आदि लौकिक देवता **(तव)** आपकी **(विद्याविभूति-**

कणिकामपि) केवलज्ञानरूप विद्या और समवसरणरूप विभूति के एक कण मात्र को भी **(न आप्नुवन्ति)** नहीं प्राप्त करते हैं **(तस्मात्)** इसलिए **(सुधियः)** उत्तम बुद्धि के धारक **(स्वहितैकतानाः)** एक आत्महित में निमग्न–मोक्ष के अभिलाषी **(आर्याः)** गणधरादिदेव **(अजं)** जन्म से रहित **(अप्रतिमेयं)** अपरिमित–अनन्त तथा **(स्तुत्यं)** स्तुति के योग्य **(भवन्तं)** आपकी **(स्तुवन्ति)** स्तुति करते हैं।

श्रीअरजिनस्तवनम्

गुणस्तोकं सदुल्लङ्घ्य तद्बहुत्वकथा स्तुतिः।
आनन्त्यात्ते गुणा वक्तुम-शक्यास्त्वयि सा कथम् ॥१॥

अन्वयार्थ–(सद्) विद्यमान **(गुणस्तोकं)** अल्प गुणों का **(उल्लङ्घ्य)** उल्लंघन कर **(तद्बहुत्वकथा)** उन गुणों की अधिकता का कथन करना **(स्तुतिः)** स्तुति कहलाती है परन्तु **(आनन्त्यात्)** अनन्त होने के कारण **(ते)** आपके **(गुणाः)** गुण **(वक्तुमशक्याः)** कहने के लिए अशक्य हैं, अतः **(त्वयि)** आपके विषय में **(सा)** वह स्तुति **(कथं)** किस प्रकार संभव है?

तथापि ते मुनीन्द्रस्य यतो नामापि कीर्तितम्।
पुनाति पुण्यकीर्तेर्नस्ततो ब्रूयाम किञ्चन ॥२॥

अन्वयार्थ–यद्यपि आपके गुणों की स्तुति अशक्य है **(तथापि)** तो भी **(पुण्यकीर्तेः)** प्रशस्त यश वाणी अथवा ख्याति के धारक तथा **(मुनीन्द्रस्य)** गणधरादि मुनियों के स्वामी **(ते)** आपका **(कीर्तितं)** उच्चरित **(नामापि)** नाम भी **(यतः)** चूँकि **(नः)** हमें **(पुनाति)** पवित्र करता है **(ततः)** इसलिए **(किञ्चन)** कुछ **(ब्रूयाम)** कहते हैं।

लक्ष्मीविभवसर्वस्वं मुमुक्षोश्चक्र - लाञ्छनम्।
साम्राज्यं सार्वभौमं ते जरत्तृणमिवाभवत् ॥३॥

अन्वयार्थ–हे भगवन्! **(लक्ष्मीविभवसर्वस्वं)** लक्ष्मी की विभूतिरूप सर्वस्व से युक्त तथा **(चक्रलाञ्छनं)** सुदर्शनचक्ररूप चिह्न से सहित **(सार्वभौमं)** समस्त पृथ्वी सम्बन्धी जो **(ते)** आपका **(साम्राज्यं)** साम्राज्य था, वह **(मुमुक्षोः)** मोक्ष के इच्छुक होने पर आपके लिए **(जरत्तृणमिव)** जीर्ण तृण के समान **(अभवत्)** हो गया था।

तव रूपस्य सौन्दर्यं दृष्ट्वा तृप्तिमनापिवान्।
द्व्यक्षः शक्रः सहस्राक्षो बभूव बहुविस्मयः ॥४॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! **(तव)** आपके **(रूपस्य)** शरीर सम्बन्धी रूप की **(सौन्दर्यं)** सुन्दरता को **(दृष्ट्वा)** देखकर **(तृप्तिं)** संतोष को **(अनापिवान्)** प्राप्त न होने वाला **(द्व्यक्षः)** दो नेत्रों का धारक **(शक्रः)** इन्द्र **(बहुविस्मयः)** बहुत भारी आश्चर्य से युक्त **(सहस्राक्षः)** एक हजार नेत्रों का धारक **(बभूव)** हुआ था।

मोहरूपो रिपुः पापः कषायभटसाधनः।
दृष्टिसम्पदुपेक्षास्त्रैस् त्वया धीर! पराजितः ॥५॥

अन्वयार्थ—**(हे धीर)** परीषहादि से जिनका चित्त कभी क्षोभ को प्राप्त नहीं होता ऐसे हे अर जिनेन्द्र! **(त्वया)** आपने **(पापः)** पापरूप तथा **(कषाय-भट-साधनः)** कषायरूप योद्धाओं की सेना से सहित **(मोहरूपो रिपुः)** मोहनीय कर्मरूपी शत्रु को **(दृष्टि-सम्पत्-उपेक्षा-अस्त्रैः)** सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्ररूप शस्त्रों के द्वारा **(पराजितः)** पराजित किया है।

कन्दर्पस्योद्धरो दर्पस् - त्रैलोक्यविजयार्जितः।
ह्रेपयामास तं धीरे त्वयि प्रतिहतोदयः ॥६॥

अन्वयार्थ—**(त्रैलोक्यविजयार्जितः)** तीनों लोकों की विजय से उपार्जित **(कन्दर्पस्य)** कामदेव के **(उद्धरः)** उत्कट—बहुत भारी **(दर्पः)** गर्व ने **(धीरे)** धीर-वीर **(त्वयि)** आपके विषय में **(प्रतिहतोदयः** [सन्]**)** खण्डित प्रसर हो **(तं)** कामदेव को **(ह्रेपयामास)** लज्जित किया था।

आयत्यां च तदात्वे च दुःखयोनिर्दुरुत्तरा।
तृष्णानदी त्वयोत्तीर्णा विद्यानावा विविक्तया ॥७॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! **(आयत्यां च तदात्वे च)** जो परलोक तथा इस लोक-दोनों ही जगह **(दुःखयोनिः)** दुःखों की उत्पत्ति का कारण है तथा **(दुरुत्तरा)** जिसका पार करना अत्यन्त कठिन है, ऐसी **(तृष्णानदी)** तृष्णारूपी नदी **(त्वया)** आपने **(विविक्तया)** निर्दोष **(विद्यानावा)** विद्या—सम्यग्ज्ञानरूपी नौका के द्वारा **(उत्तीर्णा)** पार की है।

अन्तकः क्रन्दको नृणां जन्मज्वरसखः सदा।
त्वामन्तकान्तकं प्राप्य व्यावृत्तः कामकारतः ॥८॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! **(जन्मज्वरसखः)** पुनर्जन्म तथा ज्वर आदि रोगों का मित्र और **(सदा)** हमेशा **(नृणां क्रन्दकः)** मनुष्यों को रुलाने वाला **(अन्तकः)** यम **(अन्त-कान्तकं)** यम का अन्त करने वाले **(त्वाम्)** आपको **(प्राप्य)** प्राप्त कर **(कामकारतः)** अपनी स्वच्छन्द प्रवृत्ति से **(व्यावृत्तः)** उपरत हुआ है।

भूषावेषायुधत्यागि विद्यादमदयापरम्।
रूपमेव तवाचष्टे धीर! दोषविनिग्रहम् ॥९॥

अन्वयार्थ—**(धीर!)** हे धीर! अर जिनेन्द्र! **(भूषावेषायुधत्यागि)** आभूषणों, वेषों तथा शस्त्र का त्याग करने वाला तथा **(विद्यादमदयापरम्)** ज्ञान, इन्द्रिय-दमन और दया में तत्पर **(तव)** आपका **(रूपमेव)** रूप ही **(दोष-विनिग्रहं)** रागादि दोषों के अभाव को **(आचष्टे)** कहता है।

समन्ततोऽङ्गभासां ते परिवेषेण भूयसा।
तमो बाह्यमपाकीर्ण-मध्यात्मं ध्यानतेजसा ॥१०॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! **(समन्ततः)** सब ओर फैलने वाले **(ते)** आपके **(अङ्ग-भासां)** शरीर सम्बन्धी प्रभाओं के **(भूयसा)** विशाल **(परिवेषेण)** मण्डल के द्वारा **(बाह्यं)** बाह्य **(तमः)** अन्धकार **(अपाकीर्णं)** नष्ट हुआ है और **(ध्यान-तेजसा)** ध्यानरूप तेज के द्वारा **(अध्यात्मं)** ज्ञानावरणादि कर्मरूप अन्तरंग का अन्धकार **(अपाकीर्णम्)** नष्ट हुआ है।

सर्वज्ञज्योतिषोद्भूतस् तावको महिमोदयः।
कं न कुर्यात् प्रणम्रं ते सत्त्वं नाथ! सचेतनम् ॥११॥

अन्वयार्थ—**(नाथ)** हे अरनाथ जिनेन्द्र! **(ते)** आपकी **(सर्वज्ञ-ज्योतिषा)** समस्त पदार्थों को जानने वाली केवलज्ञानरूपी ज्योति से **(उद्भूतः)** उत्पन्न हुआ **(तावकः)** आपकी **(महिमोदयः)** महिमा का उत्कर्ष **(कं)** किस **(सचेतनं)** गुणदोष के विचार में चतुर **(सत्त्वं)** प्राणी को **(प्रणम्रं)** नम्रीभूत **(न कुर्यात्)** नहीं कर देता है? सबको कर देता है।

तव वागमृतं श्रीमत्-सर्वभाषास्वभावकम्।
प्रीणयत्यमृतं यद्वत्-प्राणिनो व्यापि संसदि ॥१२॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! **(श्रीमत्)** पदार्थों के यथार्थ स्वरूप का प्रतिपादन करने रूप लक्ष्मी सहित **(सर्वभाषास्वभावकम्)** समस्त भाषाओं रूप परिणमन करने वाले स्वभाव से युक्त तथा **(संसदि)** समवसरण सभा में **(व्यापि)** व्याप्त होने वाला **(तव)** आपका **(वागमृतं)** वचनरूप अमृत **(अमृतं यद्वत्)** अमृत के समान **(प्राणिनः)** प्राणियों को **(प्रीणयति)** सन्तुष्ट करता है।

अनेकान्तात्मदृष्टिस्ते सती शून्यो विपर्ययः।
ततः सर्वं मृषोक्तं स्यात् तदयुक्तं स्वघाततः ॥१३॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! **(ते)** आपकी **(अनेकान्तात्मदृष्टिः)** अनेकान्तरूप दृष्टि **(सती)** सत्यार्थ है, उससे **(विपर्ययः)** विपरीत एकान्तमत **(शून्यः)** शून्यरूप असत् है **(ततः)** इसलिए **(तदयुक्तं)** उस अनेकान्तदृष्टि से रहित **(सर्वं)** सब **(उक्तं)** कथन **(स्वघाततः)** स्वघातक होने से **(मृषा स्यात्)** मिथ्या रूप है अथवा **(ततः)** एकान्तमत के आश्रय से **(उक्तं)** कहा हुआ **(सर्वं)** समस्त वस्तुस्वरूप **(मृषा)** असत्य है तथा **(स्वघाततः)** स्व घातक होने से **(तद्)** वह **(अयुक्तं)** अनुचित है।

ये परस्खलितोन्निद्राः स्वदोषेभनिमीलिनः।
तपस्विनस्ते किं कुर्युर - पात्रं त्वन्मतश्रियः ॥१४॥

अन्वयार्थ—**(ये)** जो एकान्तवादी **(परस्खलितोन्निद्राः)** पर—अनेकान्तमत में स्खलित—विरोध आदि दोषों के देखने में उन्निद्र—जागृत रहते हैं और **(स्वदोषेभ-निमीलिनः)** स्व—अपने सदेकान्त आदि एकान्त में दोष—स्व-घातत्व आदि दोषों के विषय में इभनिमीलन—गज निमीलन से युक्त हैं अर्थात् उन्हें देखते हुए भी नहीं देखते हैं **(ते)** वे **(तपस्विनः)** बेचारे **(किं कुर्युः)** क्या करें—स्वपक्ष सिद्धि और परपक्ष के निराकरण में वे असमर्थ हैं तथा **(त्वन्मत-श्रियः)** आपके मतरूपी लक्ष्मी के **(अपात्रं)** अपात्र हैं।

ते तं स्वघातिनं दोषं शमीकर्तुमनीश्वराः।
त्वद्द्विषःस्वहनो बालास्-तत्त्वावक्तव्यतां श्रिताः ॥१५॥

अन्वयार्थ—**(ते)** वे एकान्तवादी **(तं)** उस पूर्वोक्त **(स्वघातिनं दोषं)** स्वघाती दोष को **(शमीकर्तुं)** शमन करने के लिए **(अनीश्वराः)** असमर्थ

हैं **(त्वद्द्विषः)** आप–अनेकान्तवादी से द्वेष रखते हैं **(स्वहनः)** अपने आपका घात करने वाले हैं **(बालाः)** यथावद्वस्तुस्वरूप से अनभिज्ञ हैं और इसीलिए **(तत्त्वावक्तव्यतां श्रिताः)** तत्त्व की अवक्तव्यता का आश्रय लेते हैं।

सदेकनित्यवक्तव्यास्–तद्विपक्षाश्च ये नयाः।
सर्वथेति प्रदुष्यन्ति पुष्यन्ति स्यादितीह ते ॥१६॥

अन्वयार्थ–(सदेकनित्यवक्तव्याः) सद्, एक, नित्य, वक्तव्य **(च)** और **(तद्विपक्षाः)** इनसे विपरीत असत्, अनेक, अनित्य, अवक्तव्य **(ये नयाः)** ये जो नय हैं **(ते)** वे **(इह)** इस जगत् में **(सर्वथा इति)** सर्वथा रूप से **(प्रदुष्यन्ति)** वस्तु तत्त्व को अत्यधिक विकृत करते हैं–सदोष बनाते हैं और **(स्यात् इति)** स्यात्–कथञ्चित्–रूप से वस्तु तत्त्व को **(पुष्यन्ति)** पुष्ट करते हैं।

सर्वथानियमत्यागी, यथादृष्टमपेक्षकः।
स्याच्छब्दस्तावकेन्याये नान्येषामात्मविद्विषाम् ॥१७॥

अन्वयार्थ–(सर्वथानियमत्यागी) सर्वथारूप नियम का त्याग करने वाला तथा **(यथादृष्टमपेक्षकः)** यथादृष्टप्रमाणसिद्ध वस्तुस्वरूप की अपेक्षा रखने वाला **(स्याच्छब्दः)** स्यात् शब्द **(तावके न्याये)** आपके न्याय में है **(आत्म–विद्विषाम्)** अपने आपके वैरी **(अन्येषां)** अन्य एकान्तवादियों के न्याय में **(न)** नहीं हैं।

अनेकान्तोऽप्यनेकान्तः प्रमाणनयसाधनः।
अनेकान्तः प्रमाणात्ते तदेकान्तोऽर्पितान्नयात् ॥१८॥

अन्वयार्थ–हे भगवन्! **(ते)** आपके मत में **(अनेकान्तः अपि)** अनेकान्त भी **(प्रमाणनयसाधनः)** प्रमाण और नयरूप साधनों से युक्त होने के कारण **(अनेकान्तः)** अनेकान्तस्वरूप है **(प्रमाणात्)** प्रमाण की अपेक्षा **(अनेकान्तः)** अनेकान्तस्वरूप है और **(अर्पितात् नयात्)** विवक्षित नय से **(तदेकान्तः)** अनेकान्त में एकान्तस्वरूप है।

इति निरुपमयुक्तशासनः प्रियहितयोगगुणानुशासनः।
अरजिन! दमतीर्थनायकस्त्वमिव सतां प्रतिबोधनायकः ॥१९॥

अन्वयार्थ–(इति) इस तरह **(अरजिन)** हे अर जिनेन्द्र! आप **(निरुपम–**

युक्त-शासनः) उपमा रहित प्रत्यक्षादि प्रमाणों से युक्त शासन से सहित हैं **(प्रियहित-योग-गुणानुशासनः)** सुखदायक तथा फलकाल में हितकारक मन, वचन, काय के प्रशस्त व्यापाररूप योग और सम्यग्दर्शनादि गुणों का उपदेश देने वाले हैं तथा **(दमतीर्थ-नायकः)** इन्द्रियविजय को सूचित करने वाले आगम के नायक हैं। हे नाथ! **(त्वमिव)** आपके समान **(सतां प्रतिबोधनाय)** विद्वज्जनों को प्रतिबोध देने के लिए **(कः)** दूसरा कौन है? कोई नहीं है।

मतिगुणविभवानुरूपतस् त्वयि वरदागमदृष्टिरूपतः।
गुणकृशमपि किञ्चनोदितं मम भवताद् दुरितासनोदितम् ॥२०॥

अन्वयार्थ—(हे वरद) हे वर को प्रदान करने वाले अरजिनेन्द्र! मैंने **(मति-गुण-विभवानुरूपतः)** अपनी बुद्धि के गुणों की सामर्थ्य के अनुरूप तथा **(आगमदृष्टिरूपतः)** आगम से प्राप्त हुई दृष्टि के अनुसार **(त्वयि)** आपके विषय में **(किञ्चन गुणकृशमपि)** आपके गुणों का जो कुछ थोड़ा-सा **(उदितं)** वर्णन किया है, वह वर्णन **(मम)** मेरे **(दुरितासनोदितम्)** पापों के नष्ट करने में समर्थ **(भवतात्)** होवे।

श्री मल्लिजिनस्तवनम्

यस्य महर्षेः सकलपदार्थ-प्रत्यवबोधः समजनि साक्षात्।
सामरमर्त्यं जगदपि सर्वं प्राञ्जलि भूत्वा प्रणिपततिस्म ॥१॥

अन्वयार्थ—(यस्य महर्षेः) जिन महर्षि के **(सकलपदार्थप्रत्यव-बोधः)** जीवादि समस्त पदार्थों को सब ओर से अशेष-विशेषता के साथ जानने वाला केवलज्ञान **(साक्षात्)** स्पष्टरूप से **(समजनि)** उत्पन्न हुआ, इसलिए जिन्हें **(सामरमर्त्यं)** देवों तथा मनुष्यों से सहित **(सर्वमपि जगत्)** सभी संसार ने **(प्राञ्जलि भूत्वा)** बद्धाञ्जलि होकर **(प्रणिपतति स्म)** प्रणाम किया, उन मल्लिजिन की शरण को प्राप्त हुआ हूँ।

यस्य च मूर्तिः कनकमयीव स्वस्फुरदाभाकृतपरिवेषा।
वागपि तत्त्वं कथयितुकामा स्यात्पदपूर्वा रमयति साधून् ॥२॥

अन्वयार्थ—(कनकमयीव) सुवर्ण से निर्मित के समान **(स्व-स्फुरदाभा-कृतपरिवेषा)** अपनी दैदीप्यमान आभा से समस्त शरीर में व्याप्त भामण्डल को करने वाली **(यस्य मूर्तिः)** जिनकी मूर्ति—शरीराकृति **(च)** और **(तत्त्वं**

कथयितुकामा) वस्तुस्वरूप को प्रकाशित करने की इच्छुक एवं **(स्यात्पद-पूर्वा)** स्यात्पद से सहित **(यस्य)** जिनकी **(वागपि)** वाणी भी **(साधून्)** भव्यजीवों को **(रमयति)** प्रसन्न करती है, उन मल्लिजिन की शरण को प्राप्त हुआ हूँ।

यस्य पुरस्ताद्विगलितमाना न प्रतितीर्थ्या भुवि विवदन्ते।
भूरपि रम्या प्रतिपदमासीज्जातविकोशाम्बुजमृदुहासा ॥३॥

अन्वयार्थ–(यस्य) जिनके **(पुरस्तात्)** आगे **(विगलितमानाः)** गलित मान हुए **(प्रतितीर्थ्याः)** एकान्तवादी जन **(भुवि)** पृथ्वी पर **(न विवदन्ते)** विवाद नहीं करते थे और जिनके विहार के समय **(भूरपि)** पृथ्वी भी **(प्रतिपदं)** डग-डग पर **(जात-विकोशाम्बुजमृदुहासा)** विकसित कमलों से कोमल हास को धारण करती हुई **(रम्या)** मनोहर **(आसीत्)** हुई थी, उन मल्लिजिन की शरण को प्राप्त हुआ हूँ।

यस्य समन्ताज्जिनशिशिरांशोः शिष्यकसाधुग्रहविभवोऽभूत्।
तीर्थमपि स्वं जननसमुद्र,-त्रासितसत्त्वोत्तरणपथोऽग्रम् ॥४॥

अन्वयार्थ–(यस्य जिनशिशिरांशोः) जिन मल्लि जिनेन्द्ररूपी चन्द्रमा के **(समन्तात्)** चारों ओर **(शिष्यकसाधुग्रहविभवः)** शिष्यसाधुरूप ग्रहों का–ताराओं का विभव **(अभूत्)** विद्यमान था और जिनका **(स्वं)** अपना **(तीर्थमपि)** शास्त्र भी **(जनन-समुद्र-त्रासित-सत्त्वोत्तरणपथः अग्रम्)** संसाररूपी समुद्र से भयभीत प्राणियों के पार उतरने का प्रधान मार्ग था, उन मल्लिजिनेन्द्र की शरण को प्राप्त हुआ हूँ।

यस्य च शुक्लं परमतपोऽग्नि र्ध्यानमनन्तं दुरितमधाक्षीत्।
तं जिनसिंहं कृतकरणीयं मल्लिमशल्यं शरणमितोऽस्मि ॥५॥

अन्वयार्थ–(च) और **(यस्य)** जिनके **(शुक्लं ध्यानं)** शुक्लध्यानरूप **(परमतपोऽग्निः)** उत्कृष्ट तपरूपी अग्नि ने **(अनन्तं)** अन्त को प्राप्त न होने वाले **(दुरितं)** अष्टकर्मरूप पाप को **(अधाक्षीत्)** दग्ध किया था **(तं)** उन **(जिनसिंहं)** जिनश्रेष्ठ **(कृतकरणीयं)** कृतकृत्य **(अशल्यं)** माया, मिथ्यात्वादि शल्यों से रहित **(मल्लिं)** मल्लिजिनेन्द्र की **(शरण-मितोऽस्मि)** शरण को प्राप्त हुआ हूँ।

श्री मुनिसुव्रतजिनस्तवनम्

अधिगतमुनिसुव्रतस्थितिर्मुनिवृषभो मुनिसुव्रतोऽनघः।
मुनिपरिषदि निर्बभौ भवानुडु परिषत्परिवीतसोमवत् ॥१॥

अन्वयार्थ–(अधिगतमुनिसुव्रतस्थितिः) जिन्होंने मुनियों के उत्तम व्रतों की स्थिति को अधिगत–सुनिश्चित अथवा प्राप्त कर लिया है, जो **(मुनिवृषभः)** मुनियों में श्रेष्ठ हैं और जो **(अनघः)** चार घातियाकर्मरूपी पाप से रहित हैं, ऐसे **(भवान्)** आप **(मुनिसुव्रतः)** 'मुनिसुव्रत' इस सार्थक नाम को धारण करने वाले जिनेन्द्र **(मुनि-परिषदि)** समवसरण के बीच मुनियों की सभा में **(उडुपरिषत्परिवीतसोमवत्)** नक्षत्रों के समूह से घिरे हुए चन्द्रमा के समान **(निर्बभौ)** सुशोभित हुए थे।

परिणतशिखिकण्ठरागया कृतमदनिग्रहविग्रहाभया।
तव जिन! तपसः प्रसूतया ग्रहपरिवेषरुचेव शोभितम् ॥२॥

अन्वयार्थ–(कृतमदनिग्रह) काम अथवा अहंकार का निग्रह करने वाले **(जिन!)** हे मुनिसुव्रत जिनेन्द्र! **(परिणतशिखिकण्ठरागया)** तरुण मयूर के कण्ठ के समान वर्णवाली **(तपसः प्रसूतया)** तप से उत्पन्न **(तव विग्रहाभया)** आपके शरीर की आभा–चारों ओर फैलने वाली दीप्ति **(ग्रहपरिवेषरुचेव)** चन्द्रमा के परिवेष–परिमण्डल की दीप्ति के समान **(शोभितं)** सुशोभित हुई थी।

शशिरुचिशुचिशुक्ललोहितं सुरभितरं विरजो निजं वपुः।
तव शिवमतिविस्मयं यते! यदपि च वाङ्मनसीयमीहितम् ॥३॥

अन्वयार्थ–(यते) हे महामुनिराज! **(शशिरुचिशुचिशुक्ललोहितं)** चन्द्रमा की किरणों के समान निर्मल एवं सफेद खून से युक्त **(सुरभितरं)** अत्यन्त सुगन्धित और **(विरजः)** रजरहित–मलरहित जो **(तव)** आपका **(निजं वपुः)** अपना शरीर **(शिवं)** अत्यन्त शुभ तथा **(अतिविस्मयं)** अत्यन्त आश्चर्य करने वाला था **(च)** और **(वाङ्-मनसीयमपि)** वचन तथा मन की भी **(यत् ईहितं)** जो चेष्टा थी, वह भी [अतिविस्मयं] अत्यन्त आश्चर्य करने वाली थी।

अथवा

अन्वयार्थ—(हे जिन) हे मुनिसुव्रतजिनेन्द्र! **(तव)** आपका **(वपुः)** शरीर **(परिणत-शिखिकण्ठरागया)** तरुण मयूर के कण्ठ के समान वर्णवाली **(तपसः)** अनशनादि तप से **(प्रसूतया)** उत्पन्न **(कृतमदनिग्रह-विग्रहाभया)** मदन-मद अथवा गर्व का निग्रह करने वाले शरीर की आभा से उस तरह **(शोभितं)** शोभित हुआ था, जिस तरह **(ग्रहपरिवेषरुचा 'चन्द्र' इव)** ग्रह परिवेष की कान्ति से चन्द्रमा **(तव)** आपका वह **(निजं)** अपना **(वपुः)** शरीर **(शशिरुचिशुचिशुक्ललोहितं)** चन्द्रमा की किरणों के समान निर्मल एवं सफेद खून से युक्त **(सुरभितरं)** अत्यन्त सुगन्धित **(विरजः)** रज रहित **(शिवं)** शुभ तथा **(अतिविस्मयं)** अत्यन्त आश्चर्य उत्पन्न करने वाला था **(च)** और **(यते)** हे महामुनिराज! आपके **(वाङ्मनसीयमपि)** वचन और मन की भी **(यत्)** जो **(ईहितं)** चेष्टा थी **(तदपि)** वह भी **(अतिविस्मयं)** अत्यन्त आश्चर्य करने वाली थी।

स्थितिजननिरोधलक्षणं चरमचरं च जगत् प्रतिक्षणम्।
इति जिन! सकलज्ञलाञ्छनं वचनमिदं वदतांवरस्य ते ॥४॥

अन्वयार्थ—(जिन) हे मुनिसुव्रत जिनेन्द्र! **(चरं)** चेतन **(च)** और **(अचरं)** अचेतनरूप **(जगत्)** संसार **(प्रतिक्षणं)** क्षण-क्षण में **(स्थिति-जनन-निरोधलक्षणं)** ध्रौव्य, उत्पाद और व्यय रूप लक्षण से युक्त है **(इति इदं)** इस प्रकार का यह जो **(वदतांवरस्य ते)** वक्तृ प्रवर आपका **(वचनं)** वचन है, वह **(सकलज्ञलाञ्छनं)** सर्वज्ञ का चिह्न है—आपकी सर्वज्ञता का द्योतक है।

दुरितमलकलङ्कमष्टकं, निरुपमयोगबलेन निर्दहन्।
अभवदभवसौख्यवान्भवान्, भवतु ममापि भवोपशान्तये ॥५॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! **(निरुपमयोगबलेन)** अनुपम शुक्लध्यान के बल से **(अष्टकं)** आठ प्रकार के **(दुरितमलकलङ्कं)** कर्ममल-कलंक को **(निर्दहन्)** जलाते हुए **(भवान्)** आप **(अभवसौख्यवान्)** मोक्ष सम्बन्धी अतीन्द्रिय सुख से युक्त **(अभवत्)** हुए हैं, ऐसे आप **(ममापि)** मुझ समन्तभद्र के भी **(भवोपशान्तये)** संसार की उपशान्ति के लिए **(भवतु)** होवें।

श्री नमिजिनस्तवनम्

स्तुतिः स्तोतुः साधोः कुशल-परिणामाय स तदा
भवेन्मा वा स्तुत्यः फलमपि ततस्तस्य च सतः।
किमेवं स्वाधीन्याज्जगति सुलभे श्रायसपथे
स्तुयान्न त्वां विद्वान्सततमभिपूज्यं नमिजिनम् ॥१॥

अन्वयार्थ–(स्तुतिः) भगवान् की स्तुति **(स्तोतुः)** स्तुति करने वाले **(साधोः)** भव्यपुरुष के **(कुशलपरिणामाय)** पुण्यसाधक–प्रशस्त परिणाम के लिए होती है **(तदा)** स्तुति के काल अथवा स्तुति के देश में **(सः स्तुत्यः)** वह स्तुति का पात्र आराध्यदेव **(भवेत् मा वा)** हो अथवा न हो **(च)** और **(ततः)** उस स्तुत्य से **(तस्य सतः)** उस स्तुति करने वाले भव्य पुरुष को **(फलमपि)** स्वर्गादि फल की प्राप्ति भी **(भवेन्मा वा)** हो अथवा न हो **(एवं)** इस प्रकार **(जगति)** संसार में **(स्वाधीन्यात्)** स्वाधीनता से **(श्रायसपथे)** कल्याण अथवा सम्यग्दर्शनादि मोक्षसम्बन्धी मार्ग के **(सुलभे 'सति')** सुलभ रहने पर **(किं)** क्या **(विद्वान्)** विचारपूर्वक कार्य करने वाला विवेकीजन **(सततं)** सदा **(अभिपूज्यं)** इन्द्रादि के द्वारा पूज्य **(त्वां नमिजिनं)** आप नमिजिनेन्द्र की **(न स्तुयात्)** स्तुति न करें? अवश्य करें।

त्वया धीमन्! ब्रह्मप्रणिधिमनसा जन्मनिगलं
समूलं निर्भिन्नं त्वमसि विदुषां मोक्षपदवी।
त्वयि ज्ञानज्योतिर्विभवकिरणैर्भाति भगवन्-
नभूवन्खद्योता इव शुचिरवावन्यमतयः॥२॥

अन्वयार्थ–(हे धीमन्) हे विशिष्ट बुद्धि से युक्त नमिजिनेन्द्र! **(ब्रह्म-प्रणिधि-मनसा)** शुद्ध आत्मस्वरूप में स्थिर चित्त वाले **(त्वया)** आपके द्वारा **(जन्म-निगलं)** संसाररूपी बन्धन **(समूलं)** मूल–कारण सहित **(निर्भिन्नं)** नष्ट किया गया है, इसलिए **(त्वम्)** आप **(विदुषां)** विद्वानों के लिए **(मोक्षपदवी)** मोक्षमार्गस्वरूप **(असि)** हैं **(भगवन्)** हे भगवन्! **(त्वयि)** आपके **(ज्ञान-ज्योतिर्विभवकिरणैः)** केवलज्ञानज्योति की सम्पदारूप किरणों के द्वारा **(भाति 'सति')** सुशोभित होने पर **(अन्यमतयः)** सुगत, कपिल, ईश्वर आदि अन्यमतावलम्बीजन **(शुचिरवौ)** ग्रीष्मऋतु

के सूर्य के दैदीप्यमान रहने पर **(खद्योता इव)** जुगनुओं के समान **(अभूवन्)** हो गये थे।

विधेयं वार्यं चानुभयमुभयं मिश्रमपि तद्
विशेषैः प्रत्येकं नियमविषयैश्चापरिमितैः।
सदान्योऽन्यापेक्षैः सकलभुवनज्येष्ठगुरुणा
त्वया गीतं तत्त्वं बहुनयविवक्षेतरवशात् ॥३॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! **(सकलभुवनज्येष्ठगुरुणा)** समस्त संसार के महान् गुरु स्वरूप **(त्वया)** आपने **(बहुनयविवक्षेतरवशात्)** अनेक नयों की विवक्षा और अविवक्षा के वश **(प्रत्येकं)** विधि-निषेध, मूर्त-अमूर्त, स्थूल-सूक्ष्म आदि प्रत्येक धर्म का लक्ष्य कर **(नियमविषयैः)** 'भंग' सात ही होते हैं हीनाधिक नहीं, इस नियम के विषयभूत **(च)** और **(सदान्योन्यापेक्षैः)** सदा एक दूसरे की अपेक्षा रखने वाले **(अपरिमितैः)** अनन्त **(विशेषैः)** त्रैकालिक धर्मों के द्वारा **(तत्तत्त्वं)** उस वस्तु स्वरूप को **(विधेयं)** विधिस्वरूप **(वार्यं)** निषेध स्वरूप **(उभयं)** विधि-निषेध स्वरूप **(अनुभयं)** अवक्तव्य स्वरूप **(च)** और **(मिश्रमपि)** मिश्ररूप भी—अर्थात् स्यादस्ति-अवक्तव्य, स्यान्नास्ति-अवक्तव्य तथा स्यादस्ति-नास्ति-अवक्तव्य इस तरह सात भंग रूप **(गीतं)** कहा है।

अहिंसा भूतानां जगति विदितं ब्रह्म परमं
न सा तत्रारम्भोऽस्त्यणुरपि च यत्राश्रमविधौ।
ततस्तत्सिद्ध्यर्थं परमकरुणो ग्रन्थमुभयं
भवानेवात्याक्षीन्न च विकृतवेषोपधिरतः ॥४॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! **(भूतानां)** प्राणियों की **(अहिंसा)** अहिंसा **(जगति)** जगत् में **(परमं ब्रह्म)** परम ब्रह्मरूप से **(विदितं)** प्रसिद्ध है अर्थात् अहिंसा ही परम ब्रह्म है, परन्तु **(सा)** वह अहिंसा **(तत्र)** उस **(आश्रमविधौ)** आश्रम विधि में **(न अस्ति)** नहीं है **(यत्र)** जिसमें कि **(अणुरपि)** थोड़ा भी **(आरम्भः)** आरम्भ होता है **(ततः)** इसलिए **(तत्सिद्ध्यर्थं)** उस अहिंसा धर्म की सिद्धि के लिए **(परमकरुणः)** परम दयालु होकर **(भवानेव)** आपने ही **(उभयं)** बाह्य और आभ्यन्तर के भेद से दोनों प्रकार के **(ग्रन्थं)** परिग्रह को **(अत्याक्षीत्)** छोड़ा है **(च)** और **(विकृत-**

वेषोपधिरतः) यथाजात लिंग के विरोधी वेष तथा परिग्रह में आसक्त **(न 'अभवत्')** नहीं हुए हैं।

वपुर्भूषावेषव्यवधिरहितं शान्तकरणं,
यतस्ते सञ्चष्टे स्मरशरविषातङ्कविजयम्।
विना भीमैः शस्त्रैरदयहृदयामर्षविलयं,
ततस्त्वं निर्मोहः शरणमसि नः शान्तिनिलयः ॥५॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! **(भूषावेषव्यवधिरहितं)** आभूषण, वेष तथा वस्त्रादिक के आवरण से रहित और **(शान्तकरणं)** अपने-अपने विषयों से निःस्पृह इन्द्रियों से युक्त **(ते)** आपका **(वपुः)** शरीर **(यतः)** चूँकि **(स्मरशर-विषातङ्क-विजयम्)** काम के बाणरूप विष से उत्पन्न व्याधि की विजय को तथा **(भीमैः शस्त्रैः विना)** भयंकर शस्त्रों के बिना **(अदय-हृदयामर्ष-विलयं)** निर्दय हृदय सम्बन्धी क्रोध के विनाश को **(सञ्चष्टे)** कह रहा है, **(ततः)** इसलिए **(त्वं)** आप **(निर्मोहः)** मोह रहित और **(शान्ति-निलयः)** कर्मक्षय से उत्पन्न होने वाली शान्ति के स्थान हैं तथा **(नः)** हमारे **(शरणम्)** शरणभूत—रक्षक **(असि)** हैं।

श्री अरिष्टनेमिजिनस्तवनम्

भगवानृषिः परमयोगदहनहुतकल्मषेन्धनः।
ज्ञानविपुलकिरणैः सकलं प्रतिबुद्ध्य बुद्धकमलायतेक्षणः॥१॥
हरिवंशकेतु - रनवद्य - विनय - दम - तीर्थनायकः।
शीलजलधिरभवो विभवस्त्वमरिष्टनेमिजिनकुञ्जरोऽजरः ॥२॥

अन्वयार्थ—(भगवान्) जो विशिष्ट ज्ञानवान् अथवा इन्द्रादि के द्वारा पूज्य हैं **(ऋषिः)** जो परम ऋद्धियों से सम्पन्न हैं **(परमयोगदहनहुत-कल्मषेन्धनः)** उत्कृष्ट शुक्लध्यानरूपी अग्नि में जिन्होंने कर्मरूपी ईंधन को होम दिया है **(बुद्धकमलायतेक्षणः)** जिनके नेत्र खिले हुए कमल के समान विशाल हैं **(हरिवंशकेतुः)** जो हरिवंश के प्रधान हैं **(अनवद्यविनय-दमतीर्थनायकः)** जो निर्दोष विनय और इन्द्रियदमन के प्रतिपादक शास्त्र के प्रवर्तक हैं **(शीलजलधिः)** जो शील के समुद्र हैं और **(अजरः)** जो वृद्धावस्था से रहित हैं। ऐसे **(त्वं)** आप **(अरिष्टनेमि-जिनकुञ्जरः)** अरिष्टनेमि जिनेन्द्र **(ज्ञान-विपुलकिरणैः)** ज्ञानरूप विस्तृत किरणों के

द्वारा **(सकलं)** समस्त लोकालोक को **(प्रतिबुद्ध्य)** प्रकाशित कर अथवा जानकर **(विभवः)** संसार से मुक्त **(अभवः)** हुए थे।

त्रिदशेन्द्र - मौलिमणि - रत्नकिरण-विसरोप-चुम्बितम्।
पादयुगलममलं भवतो विकसत्कुशेशयदलारुणोदरम् ॥३॥
नखचन्द्ररश्मिकवचातिरु-चिरशिखराङ्गुलिस्थलम् ।
स्वार्थनियतमनसः सुधियः प्रणमन्ति मन्त्रमुखरा महर्षयः ॥४॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! **(स्वार्थनियतमनसः)** मोक्षरूप स्वार्थ में जिनके मन नियन्त्रित हैं **(सुधियः)** जो उत्तमबुद्धि से युक्त हैं और **(मन्त्रमुखराः)** जो 'णमो णेमिजिणाणं' इस सात अक्षर वाले मन्त्र से अथवा सामान्य स्तुति से वाचाल हैं, ऐसे **(महर्षयः)** गणधरादि बड़े-बड़े ऋषि **(भवतः)** आपके **(तत्)** उस **(पादयुगलं)** चरणयुगल को **(प्रणमन्ति)** प्रणाम करते हैं **(यत्)** जो कि **(त्रिदशेन्द्रमौलिमणिरत्न-किरणविसरोपचुम्बितम्)** इन्द्रों के मुकुटों में लगे हुए मणियों और रत्नों की किरणों के समूह से चुम्बित हैं **(अमलं)** निर्मल—उज्ज्वल हैं **(विकसत्कुशेशयदलारुणोदरं)** जिनका तलभाग खिले हुए कमलदल के समान लालवर्ण का है तथा **(नखचन्द्र-रश्मि-कवचाति-रुचिरशिखराङ्गुलिस्थलम्)** जिनकी अंगुलियों का स्थान नखरूपी चन्द्रमा की किरणों के परिवेश से अत्यन्त मनोहर अग्रभाग से सहित है।

द्युतिमद्रथाङ्गर - विबिम्बकिरण - जटिलांशुमण्डलः।
नीलजलदजलराशिवपुः सह बन्धुभिर्गरुडकेतुरीश्वरः ॥५॥
हलभृच्च ते स्वजनभक्तिमुदितहृदयौ जनेश्वरौ।
धर्मविनयरसिकौ सुतरां चरणारविन्दयुगलं प्रणेमतुः ॥६॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! **(द्युतिमद्रथाङ्गरविबिम्बकिरणजटिलांशु-मण्डलः)** कान्तिमान् सुदर्शनचक्ररूपी सूर्यबिम्ब की किरणों से जिनकी कान्ति का मण्डल व्याप्त हो रहा है अथवा **(जटिलांशुमण्डलः)** कान्तिमान् सुदर्शन-चक्ररूपी सूर्यबिम्ब की किरणों से जिनके कन्धे का प्रदेश व्याप्त हो रहा है, **(नील-जलद-जलराशिवपुः)** नीलमेघ और समुद्र के समान जिनका श्याम शरीर है **(ईश्वरः)** जो तीन खण्ड पृथ्वी के स्वामी हैं, ऐसे **(गरुडकेतुः)** श्रीकृष्ण **(च)** और **(हलभृत्)** बलभद्र इस प्रकार **(स्वजन-**

भक्तिमुदितहृदयौ) आत्मबन्धु की भक्ति से जिनके चित्त प्रसन्न हो रहे थे **(जनेश्वरौ)** जो लोक के स्वामी थे और **(धर्मविनय-रसिकौ)** जो धर्मार्थ विनय के रसिक थे-ऐसे दोनों भाईयों ने **(बन्धुभिः सह)** अपने अन्य भाईयों के साथ **(ते)** आपके **(चरणार-विन्द-युगलं)** चरण कमलों के युगल को **(सुतरां)** बार-बार **(प्रणेमतुः)** प्रणाम किया था।

ककुदं भुवः खचरयोषिदुषितशिखरैरलङ्कृतः ।
मेघपटलपरिवीततटस्तव लक्षणानि लिखितानि वज्रिणा ॥७॥
वहतीति तीर्थमृषिभिश्च सततमभिगम्यतेऽद्य च।
प्रीतिविततहृदयैः परितो भृशमूर्जयन्त इति विश्रुतोऽचलः ॥८॥

अन्वयार्थ-(भुवः ककुदम्) जो पृथ्वी का ककुद है-बैल के कन्धे के समान ऊँचा तथा शोभा उत्पन्न करने वाला है **(खचरयोषिदुषित-शिखरैः)** जो विद्याधरों की स्त्रियों से सेवित शिखरों के द्वारा **(अलङ्कृतः)** सुशोभित है **(मेघपटलपरिवीततटः)** जिसके तट मेघों के समूह से घिरे रहते हैं **(वज्रिणा लिखितानि तव लक्षणानि वहति इति तीर्थं)** जो इन्द्र के द्वारा लिखे हुए [हे नेमिजिन!] आपके चिह्नों को धारण करता है, इसलिए तीर्थस्थान है **(सततं अद्य च)** हमेशा तथा आज भी **(प्रीतिविततहृदयैः)** प्रीति से विस्तृत चित्त वाले **(ऋषिभिश्च)** ऋषियों के द्वारा जो **(परितः)** सब ओर से **(भृशं)** अत्यधिक **(अभिगम्यते)** सेवित है **(इति)** ऐसा वह **(विश्रुतः)** अतिशय प्रसिद्ध **(ऊर्जयन्तः अचलः)** ऊर्जयन्त नाम का पर्वत है (जिस पर जाकर कृष्ण और बलराम ने आपके चरणकमल-युगल को प्रणाम किया था)।

बहिरन्तरप्युभयथा च करणमविघाति नार्थकृत्।
नाथ! युगपदखिलं च सदा त्वमिदं तलामलकवद् विवेदिथ ॥९॥
अत एव ते बुधनुतस्य चरितगुण-मद्भुतोदयम्।
न्यायविहितमवधार्य जिने त्वयि सुप्रसन्नमनसः स्थिता वयम् ॥१०॥

अन्वयार्थ-(हे नाथ) हे स्वामिन्! **(त्वं)** आप **(इदं अखिलं)** इस समस्त संसार को **(युगपत् च सदा)** एक साथ और सर्वदा **(तलामलकवत् विवेदिथ)** हस्ततल पर रखे हुए स्फटिक के समान जानते हैं तथा आपके इस जानने में **(बहिः)** बाह्य **(च)** और **(अन्तरपि)** अभ्यन्तर **(करणं)**

इन्द्रियाँ पृथक्-पृथक् **(च उभयथा)** और दोनों प्रकार से **(अविघाति)** बाधक नहीं हैं एवं **(अर्थकृत् न)** उपकारक भी नहीं हैं **(अतएव)** इसीलिए **(बुधनुतस्य)** विद्वानों के द्वारा स्तुत **(ते)** आपके **(अद्भुतोदयम्)** आश्चर्यकारक अभ्युदय से युक्त तथा **(न्यायविहितं)** न्यायसिद्ध–आगम ज्ञान से सिद्ध **(चरितगुणं)** स्वकार्य की प्रसाधकता का **(अवधार्य)** निश्चय कर **(वयं)** हम **(सुप्रसन्न-मनसः)** अत्यन्त प्रसन्नचित्त होते हुए **(त्वयि जिने)** आप जिनेन्द्र में **(स्थिताः)** स्थित हुए हैं–आपके कार्य का साधक समझ आपकी शरण में आये हैं।

श्री पार्श्व जिनस्तवनम्

तमालनीलैः सधनुस्तडिद्गुणैः प्रकीर्णभीमाशनिवायुवृष्टिभिः।
बलाहकैर्वैरिवशैरुपद्रुतो महामना यो न चचाल योगतः॥१॥

अन्वयार्थ–(तमालनीलैः) तमाल वृक्ष के समान नीलवर्ण, **(सधनुस्तडिद्-गुणैः)** इन्द्रधनुषों की बिजलीरूप डोरियों से सहित **(प्रकीर्ण-भीमाशनि-वायुवृष्टिभिः)** भयंकर वज्र, आँधी और वर्षा को बिखेरने वाले ऐसे **(वैरिवशैः)** शत्रु के वशीभूत **(बलाहकैः)** मेघों के द्वारा **(उपद्रुतः)** उपद्रुत होने पर भी **(महामनाः)** उत्कृष्ट धैर्य के धारक **(यः)** जो पार्श्वनाथ भगवान् **(योगतः)** शुक्लध्यानरूप योग से **(न चचाल)** विचलित नहीं हुए थे।

बृहत्फणामण्डलमण्डपेन यं स्फुरत्तडित्पिङ्गरुचोपसर्गिणम्।
जुगूह नागो धरणो धराधरं विरागसन्ध्यातडिदम्बुदो यथा ॥२॥

अन्वयार्थ–(उपसर्गिणं) उपसर्ग से युक्त **(यं)** जिन पार्श्वनाथ भगवान् को **(धरणो नागः)** धरणेन्द्र नामक नागकुमारदेव ने **(स्फुरत्तडित्पिङ्गरुचा)** चमकती हुई बिजली के समान पीली कान्ति से युक्त **(बृहत्फणामण्डल-मण्डपेन)** बहुत भारी फणामण्डलरूपी मण्डप के द्वारा **(तथा)** उस तरह **(जुगूह)** वेष्टित कर लिया था **(यथा)** जिस तरह कि **(विरागसन्ध्या-तडिदम्बुदः)** काली संध्या के समय बिजली से युक्त मेघ **(धराधरं)** पर्वत को वेष्टित कर लेता है।

स्वयोगनिस्त्रिंशनिशातधारया निशात्य यो दुर्जयमोहविद्विषम्।
अवापदार्हन्त्यमचिन्त्यमद्भुतं त्रिलोकपूजातिशयास्पदं पदम् ॥३॥

अन्वयार्थ—(यः) जिन्होंने **(स्वयोगनिस्त्रिंशनिशातधारया)** अपने शुक्लध्यानरूप खड्ग की तीक्ष्ण धारा के द्वारा **(दुर्जयमोहविद्विषम्)** मोहरूपी दुर्जय शत्रु को **(निशात्य)** नष्टकर **(अचिन्त्यं)** अचिन्तनीय **(अद्भुतं)** आश्चर्य-कारक गुणों से युक्त **(त्रिलोक-पूजातिशयास्पदं)** त्रिलोक की पूजा के अतिशय के स्थान **(आर्हन्त्यं पदम्)** आर्हन्त्यपद को **(अवापत्)** प्राप्त किया था।

यमीश्वरं वीक्ष्य विधूतकल्मषं तपोधनास्तेऽपि तथा बुभूषवः।
वनौकसः स्वश्रमवन्ध्यबुद्धयः शमोपदेशं शरणं प्रपेदिरे ॥४॥

अन्वयार्थ—(यं) जिन पार्श्वनाथ भगवान् को **(ईश्वरं)** समस्त लोक के प्रभु तथा **(विधूतकल्मषं)** घातिचतुष्करूप पाप से रहित **(वीक्ष्य)** देखकर **(तथा बुभूषवः)** उन्हीं के समान होने के इच्छुक **(वनौकसः)** वनवासी **(ते तपोधनाः अपि)** वे तपस्वी भी **(स्वश्रमवन्ध्यबुद्धयः)** अपने प्रयास में निष्फल बुद्धि होते हुए **(शमोपदेशं)** मोक्षमार्ग अथवा शान्ति का उपदेश देने वाले भगवान् पार्श्वनाथ की **(शरणं प्रपेदिरे)** शरण को प्राप्त हुए थे।

स सत्यविद्यातपसां प्रणायकः समग्रधीरुग्रकुलाम्बरांशुमान्।
मया सदा पार्श्वजिनः प्रणम्यते विलीनमिथ्यापथदृष्टिविभ्रमः॥५॥

अन्वयार्थ—(सत्यविद्यातपसां प्रणायकः) जो सत्य विद्याओं तथा तपस्याओं के प्रणेता थे **(समग्रधीः)** जो पूर्ण केवलज्ञान के धारक थे **(उग्रकुलाम्ब-रांशुमान्)** जो उग्रवंशरूपी कुल के चन्द्रमा थे और **(विलीन-मिथ्यापथ-दृष्टिविभ्रमः)** जिन्होंने मिथ्यामार्ग सम्बन्धी कुदृष्टियों से उत्पन्न विभ्रमों को नष्ट कर दिया था **(सः)** वे **(पार्श्वजिनः)** पार्श्वजिनेन्द्र **(मया)** मुझ समन्तभद्र के द्वारा **(सदा)** हमेशा **(प्रणम्यते)** प्रणत किये जाते हैं—मैं उन्हें प्रणाम करता हूँ।

श्री वीरजिनस्तवनम्

कीर्त्या भुवि भासि तया वीर! त्वं गुणसमुच्छ्रया भासितया।
भासोडुसभासितया सोम इव व्योम्नि कुन्दशोभासितया ॥१॥

अन्वयार्थ—(हे वीर!) हे वर्धमान जिनेन्द्र! **(त्वं)** आप **(भुवि)** पृथ्वी पर **(गुणसमुच्छ्रया)** आत्मा और शरीर सम्बन्धी गुणों से उत्पन्न **(भासितया)**

सुशोभित अथवा उज्ज्वल **(तया)** उस **(कीर्त्या)** ख्याति से **(उडुसभासितया)** नक्षत्रों की सभा में आसित–स्थित एवं **(कुन्द-शोभासितया)** कुन्दकुसुम की शोभा के समान सफेद **(भासा)** कान्ति से **(व्योम्नि)** आकाश में **(सोम इव)** चन्द्रमा के समान **(भासि)** सुशोभित होते हैं।

तव जिन! शासनविभवो जयति कलावपि गुणानुशासनविभवः।
दोषकशासनविभवः स्तुवन्ति चैनं प्रभाकृशासनविभवः ॥२॥

अन्वयार्थ–(हे जिन) हे वीरजिनेन्द्र! **(गुणानुशासनविभवः)** भव्यजीवों के भव को नष्ट करने वाला **(तव)** आपके **(शासनविभवः)** प्रवचन का यथावस्थित समस्त पदार्थों के प्रतिपादन रूप सामर्थ्य **(कलावपि)** कलिकाल में भी **(जयति)** जयवन्त है–सर्वोत्कृष्ट रूप से वर्तमान है **(च)** और **(प्रभा-कृशासनविभवः)** प्रभा–ज्ञानादितेज से आसन-विभुओं–लोक के तथाकथित हरि-हरादि स्वामिओं को कृश–महत्त्वहीन करने वाले **(दोषक-शासन-विभवः)** दोषरूप चाबुकों के निराकरण करने में समर्थ गणधरादि देव **(एनं)** आपके इस शासन विभव की–प्रवचन सामर्थ्य की **(स्तुवन्ति)** स्तुति करते हैं।

अनवद्यः स्याद्वादस्तव दृष्टेष्टाविरोधतः स्याद्वादः।
इतरो न स्याद्वादो द्वितयविरोधान्मुनीश्वरास्याद्वादः॥३॥

अन्वयार्थ–(हे मुनीश्वर) हे मुनिनाथ! **(स्याद्वादः)** 'स्यात्' इस कथञ्चित् अर्थ के वाचक शब्द से सहित **(तव)** आपका **(स्याद्वादः)** स्यादस्तीत्यादि अनेकान्तरूप कथन **(दृष्टेष्टाविरोधतः)** प्रत्यक्ष तथा आगम आदि प्रमाणों से विरोध न होने के कारण **(अनवद्यः)** निर्दोष है। इसके विपरीत **(इतरः अस्याद्वादः)** 'स्यात्' इस शब्द से रहित अन्य जो वाद–एकान्तरूप कथन है, वह **(द्वितयविरोधात्)** दृष्ट और इष्ट–प्रत्यक्ष तथा आगम आदि प्रमाणों से विरोध होने के कारण **(अनवद्यः)** निर्दोष **(न)** नहीं है।

त्वमसि सुरासुरमहितो ग्रन्थिकसत्त्वाशयप्रणामामहितः।
लोकत्रयपरमहितोऽनावरणज्योतिरुज्वलद्धामहितः ॥४॥

अन्वयार्थ–हे भगवन्! **(त्वम्)** आप **(सुरासुरमहितः)** सुरों तथा असुरों से पूजित **(असि)** हैं, किन्तु **(ग्रन्थिकसत्त्वाशयप्रणामामहितः)** मिथ्यादृष्टि

प्राणियों के अभक्त हृदय से प्राप्त होने वाले प्रणाम से पूजित नहीं हैं, आप **(लोक त्रयपरमहितः)** तीनों लोकों के परम हितकारी हैं और **(अनावरण-ज्योतिरुज्ज्वलद्धामहितः)** केवलज्ञान से प्रकाशमान मुक्तिरूप स्थान को प्राप्त हैं।

सभ्यानामभिरुचितं दधासि गुणभूषणं श्रिया चारुचितम्।
मग्नं स्वस्यां रुचितं जयसि च मृगलाञ्छनं स्वकान्त्या रुचितम् ॥५॥

अन्वयार्थ—हे भगवन् आप **(सभ्यानां)** समवसरण सभा में स्थित भव्यजीवों के **(अभिरुचितं)** रुचिकर तथा **(श्रिया)** अष्टप्रातिहार्यरूप लक्ष्मी से **(चारु-चितं)** सुन्दरतापूर्वक व्याप्त **(गुणभूषणं)** गुणों के भूषण को अथवा गुणरूप आभूषण को **(दधासि)** धारण करते हैं **(च)** और **(स्वकान्त्या)** अपनी कान्ति के द्वारा **(स्वस्यां रुचितं)** स्वकीय कान्ति में **(मग्नं)** निमग्न **(रुचितं)** सुन्दर **(तं मृगलाञ्छनं)** उस चन्द्रमा को **(जयसि)** जीतते हैं।

त्वं जिन! गतमदमायस्तव भावानां मुमुक्षुकामद! मायः।
श्रेयान् श्रीमदमायस्त्वया समादेशि सप्रयामदमायः ॥६॥

अन्वयार्थ—(मुमुक्षुकामद!) हे मोक्षाभिलाषी जीवों के मनोरथ को देने वाले **(जिन!)** वीर जिनेन्द्र! **(त्वं)** आप **(गतमदमायः)** गर्व और माया से रहित हैं तथा **(तव)** आपका **(भावानां)** जीवादि पदार्थ विषयक **(मायः)** केवलज्ञान अथवा आगमरूप प्रमाण **(श्रेयान्)** अत्यन्त श्रेष्ठ अथवा प्रशंसनीय है। हे भगवन्! **(त्वया)** आपने **(श्रीमदमायः)** लक्ष्मी के मद को नष्ट करने वाला अथवा स्वर्ग और मोक्ष को प्राप्त कराने वाली श्रीलक्ष्मी से युक्त और माया से रहित **(सप्रयामदमायः)** श्रेष्ठ एवं प्रशस्त इन्द्रियविजय का **(समादेशि)** उपदेश दिया है।

गिरिभित्त्यवदानवतः, श्रीमत इव दन्तिनः स्त्रवद्दानवतः।
तव शमवादानवतो, गतमूर्जितमपगतप्रमादानवतः ॥७॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! **(गिरिभित्त्यवदानवतः श्रीमतः स्त्रवद्दानवतः दन्तिनः इव)** जिस प्रकार पहाड़ की कटनियों में पराक्रम से युक्त अर्थात् उनका विदारण करने वाले उत्तम जाति विशिष्ट तथा झरते हुए मद से सहित हाथी का **(ऊर्जितं)** बलशाली अर्थात् रुकावट से रहित **(गतं)** गमन

होता है, उसी तरह **(शमवादान् अवतः)** दोषों के उपशमन का उपदेश देने वाले शास्त्रों के रक्षक तथा **(अपगतप्रमादानवतः)** अभयदान से युक्त **(तव)** आपका **(ऊर्जितं)** उत्कृष्ट **(गतं)** गमन–विहार हुआ था।

बहुगुणसम्पदसकलं, परमतमपि मधुरवचनविन्यासकलम्।
नयभक्त्यवतंसकलं, तव देव! मतं समन्तभद्रं सकलम् ॥८॥

अन्वयार्थ–(हे देव!) हे वीर जिनदेव! **(परमतं)** अन्य एकान्तवादियों का शासन **(मधुर-वचनविन्यासकलम् अपि)** कर्णप्रिय वचनों के विन्यास से मनोज्ञ होता हुआ भी **(बहुगुणसम्पदसकलं)** अत्यधिक गुणरूप सम्पत्ति से विकल है, परन्तु **(तव)** आपका **(मतं)** शासन **(नयभक्त्यवतं-सकलं)** नैगमादि नयों से उत्पन्न स्यादस्तीत्यादि भंगरूप आभूषणों से मनोज्ञ है अथवा नयों की उपासनारूप कर्णाभरण को देने वाला है **(समन्तभद्रं)** सब ओर से कल्याणकारक है और **(सकलं)** पूर्ण है।

❑ ❑ ❑

ऐरावत हाथी—सौधर्मेन्द्र ने एक लाख योजन के ऐरावत हाथी पर शची के साथ बैठकर अनेक देवों से समलंकृत हो अयोध्या को प्रस्थान किया। ऐरावत गज का वर्णन अद्‌भुत रस को जागृत करता है। दैविक चमत्कार का वह अत्यन्त मनोज्ञ रूप था। विक्रिया शक्ति सम्पन्न देवों में कल्पनातीत शक्ति रहती है। इनका शरीर औदारिक शरीर की अपेक्षा अत्यन्त सूक्ष्म होता है। उस सूक्ष्म परिणमन प्राप्त वैक्रियिक शरीर का स्थूल रूप दर्शन ऐरावत हाथी के रूप में होता था। वह गज लौकिक गजेन्द्रों से भिन्न था। देव सामर्थ्य का सुमधुर प्रदर्शन था। उस गज के ३२ मुख थे। प्रत्येक मुख में ८-८ दाँत थे। प्रत्येक दाँत पर एक-एक सरोवर था। प्रत्येक सरोवर में एक -एक कमलिनी थी। एक-एक कमलिनी में बत्तीस-बत्तीस कमल पत्र थे। कमल के प्रत्येक पत्ते पर बत्तीस-बत्तीस देवांगनाएँ मधुर नृत्य कर रही थी। इस प्रकार २५६ दाँत, ८१९२ कमल, २,६२,१४४ कमल पत्र तथा ८३,८८,६०८ देवांगनाएँ थीं।

(मुनिसुव्रत काव्य ५/२२)

स्वरूप सम्बोधन पञ्चविंशतिः

मुक्तामुक्तैकरूपो यः कर्मभिः संविदादिना।
अक्षयं परमात्मानं, ज्ञानमूर्तिं नमामि तम् ॥१॥

अन्वयार्थ–(यः) जो **(कर्मभिः संविदादिना)** कर्मों से तथा सम्यग्ज्ञान आदि से क्रमशः **(मुक्तामुक्तैकरूपः)** मुक्त और अमुक्त होता हुआ एक रूप है, **(तं)** उस **(अक्षयं)** अविनाशी **(ज्ञानमूर्तिं)** ज्ञानमूर्ति **(परमात्मानं)** परमात्मा को **(नमामि)** नमस्कार करता हूँ।

सोऽस्त्यात्मा सोपयोगोऽयं, क्रमाद्धेतु - फलावहः।
यो ग्राह्योऽग्राह्यनाद्यनन्तः स्थित्युत्पत्ति-व्ययात्मकः ॥२॥

अन्वयार्थ–(यः) जो **(सोपयोगः)** दर्शन, ज्ञान उपयोग वाला है **(क्रमात्)** क्रम से **(हेतुफलावहः)** कारण और उसके फल यानि कार्य को धारण करने वाला है **(ग्राह्यः)** ग्रहण करने योग्य है **(अग्राह्य)** ग्रहण करने के योग्य नहीं है, **(अनाद्यनन्तः)** अनादि और अनन्त है, **(स्थिति-उत्पत्ति-व्ययात्मकः)** ध्रौव्य-उत्पाद-व्यय रूप है **(सः)** वह उपर्युक्त लक्षण से युक्त **(अयं)** यह जीवित शरीर में वर्तमान **(आत्मा)** आत्मा **(अस्ति)** है।

ज्ञानाद्भिन्नो न चाभिन्नो, भिन्नाभिन्नः कथंचन।
ज्ञानं पूर्वापरीभूतं, सोऽयमात्मेति कीर्तितः ॥३॥

अन्वयार्थ–(ज्ञानं) आत्मा का ज्ञान गुण **(पूर्वापरीभूतं)** भूतकाल और भविष्यकाल के पदार्थों को जानने रूप पर्यायों वाला है। **(सः)** वह **(अयं)** यह **(आत्मा)** आत्मा **(ज्ञानात्)** उस ज्ञान गुण से **(भिन्नः न)** सर्वथा भिन्न नहीं है **(च)** और **(अभिन्नः न)** सर्वथा अभिन्न भी नहीं है, **(कथञ्चन)** किसी अपेक्षा से **(भिन्नाभिन्नः)** भिन्न और अभिन्न **(इति)** इस प्रकार **(कीर्तितः)** कहा गया है।

प्रमेयत्वादिभिर्धर्मैरचिदात्मा चिदात्मकः ।
ज्ञान - दर्शनतस्तस्माच्चेतनाचेतनात्मकः ॥४॥

अन्वयार्थ–(आत्मा) वह आत्मा **(प्रमेयत्वादिभिः धर्मैः)** प्रमेयत्व आदि धर्मों द्वारा **(अचिद्)** अचित् रूप है **(ज्ञानदर्शनतः)** ज्ञान और दर्शन गुण से **(चिदात्मकः)** चेतनरूप है **(तस्मात्)** इस कारण कथंचित् **(चेतना-**

चेतनात्मकः) चेतन और अचेतन रूप है।

स्वदेह-प्रमितश्चायं, ज्ञानमात्रोऽपि नैव सः।
ततः सर्वगतश्चायं, विश्वव्यापी न सर्वथा ॥५॥

अन्वयार्थ—(अयं) यह आत्मा **(स्वदेहप्रमितः)** अपने शरीर के बराबर है **(च)** और **(सः)** वह आत्मा **(ज्ञानमात्रः अपि)** ज्ञान गुण मात्र भी **(नैव)** नहीं है **(ततः)** इसलिए **(अयं)** यह आत्मा **(सर्वथा)** सर्व प्रकार से **(सर्वगतः न)** सर्व पदार्थों को स्पर्श करने वाला नहीं है **(च)** और **(विश्वव्यापी न)** समस्त जगत् में व्यापने वाला भी सर्वथा नहीं है।

नाना-ज्ञान-स्वभावत्वादेकोऽनेकोऽपि नैव सः।
चेतनैक-स्वभावत्वादेकानेकात्मको भवेत् ॥६॥

अन्वयार्थ—(सः) वह आत्मा **(नानाज्ञानस्वभावत्वात्)** अनेक प्रकार के ज्ञानस्वरूप होने से **(अनेकः अपि)** अनेक होते हुए भी **(चेतनैक-स्वभावत्वात्)** एक चेतना स्वभाव होने से **(एकः)** एक होता हुआ भी **(एकः नैव)** सर्वथा एक नहीं है किन्तु **(एकानेकात्मकः)** एक तथा अनेक रूप **(भवेत्)** होता है।

सा वक्तव्यः स्वरूपाद्यैर्निर्वाच्यः परभावतः।
तस्मान्नैकान्ततो वाच्यो,नापि वाचामगोचरः ॥७॥

अन्वयार्थ—(स) वह आत्मा **(स्वरूपाद्यैः)** स्वरूपादि (चतुष्टय की अपेक्षा से) **(वक्तव्यः)** वक्तव्य (कहने योग्य) है (तथा) **(परभावतः)** अन्य अविवक्षित धर्मों की अपेक्षा से **(निर्वाच्यः)** अवक्तव्य है। **(तस्मात्)** इस कारण से **(एकान्ततः)** एकान्तरूप से **(वाच्यो न)** वाच्य भी नहीं है (और) **(वाचाम-गोचरः)** वचनों के अगोचर/अवक्तव्य **(अपि)** भी **(न)** नहीं है।

स स्याद्-विधि-निषेधात्मा, स्वधर्म-परधर्मयोः।
समूर्तिबोधमूर्तित्वादमूर्तिश्च विपर्ययात् ॥८॥

अन्वयार्थ—(सः) वह आत्मा **(स्वधर्म-परधर्मयोः)** अपने धर्मभाव और परधर्म कथन में **(विधि-निषेधात्मा)** विध्यात्मक तथा निषेधात्मक **(स्यात्)** होता है। **(बोधमूर्तित्वाद्)** ज्ञानमूर्ति होने से **(समूर्तिः)** मूर्तिमान है **(च)** और **(विपर्ययात्)** विपरीत अपेक्षा से **(अमूर्तिः)** अमूर्तिक है।

इत्याद्यनेकधर्मत्वं, बन्ध-मोक्षौ तयोः फलम्।
आत्मा स्वीकुरुते तत्तत्, कारणैः स्वयमेव तु ॥९॥

अन्वयार्थ–(इत्यादि) पूर्वोक्त (प्रकार से आत्मा की) **(अनेकधर्मत्वं)** अनेक धर्मात्मकता को (तथा) **(बन्ध-मोक्षौ तु)** बन्ध और मोक्ष को **(तयोः)** उन दोनों के **(फलं)** फल को **(तत्तत्कारणैः)** उन उन कारणों से **(आत्मा)** यह आत्मा **(स्वयमेव)** स्वयं ही **(स्वीकुरुते)** स्वीकार करता है।

कर्ता यः कर्मणां भोक्ता, तत्फलानां स एव तु।
बहिरन्तरुपायाभ्यां, तेषां मुक्तत्वमेव हि ॥१०॥

अन्वयार्थ–(यः) जो आत्मा **(कर्मणां)** अपने राग-द्वेष मोह आदि भावों का तथा उन भावों के द्वारा ज्ञानावरणादि कर्मों का बंध **(कर्ता)** करने वाला है **(स एव)** वही आत्मा **(तत्फलानां)** उन कर्मों के शुभ-अशुभ फलों का **(भोक्ता)** भोगने वाला है। **(तु)** और **(हि)** निश्चय करके **(बहिरन्तः उपायाभ्यां)** बहिरंग और अंतरंग उपायों द्वारा **(तेषां)** उन कर्मों का **(मुक्तत्व एव)** छूट जाना/मोक्ष भी उसी आत्मा को होता है।

सद्दृष्टि - ज्ञान - चारित्रमुपायः स्वात्म-लब्धये।
तत्त्वे याथात्म्य-सौस्थित्यमात्मनो दर्शनं स्मृतम् ॥११॥

अन्वयार्थ–(स्वात्म-लब्धये) अपने शुद्ध आत्मस्वरूप को प्राप्त करने के लिए **(उपायः)** अंतरंग उपाय **(सद्दृष्टि-ज्ञान-चारित्रम्)** सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र हैं **(तत्त्वे)** आत्म तत्त्व में **(याथात्म्य-सौस्थित्यम्)** वस्तु स्वरूप का यथार्थ श्रद्धान **(आत्मनः)** आत्मा का **(दर्शनं स्मृतम्)** सम्यग्दर्शन माना गया है।

यथावद् वस्तु - निर्णीतिः सम्यग्ज्ञानं प्रदीपवत्।
तत्स्वार्थव्यवसायात्मा, कथञ्चित् प्रमितेः पृथक्॥१२॥

अन्वयार्थ–(प्रदीपवत्) अपने आपको तथा अन्य पदार्थों को प्रकाशित करने वाले दीपक के समान **(यथावद्वस्तु-निर्णीतिः)** आत्मा का तथा अन्य पदार्थों का यथार्थ निर्णय करना/जानना **(सम्यग्ज्ञानं)** सम्यग्ज्ञान है। **(तत्)** वह सम्यग्ज्ञान **(स्वार्थव्यवसायात्मा)** अपने आत्मतत्त्व का तथा अजीव आदि तत्त्वों का निश्चय करने रूप है। **(कथञ्चित्)** किसी अपेक्षा

से वह सम्यग्ज्ञान **(प्रमितेः)** प्रमिति यानी अज्ञान की निवृत्ति से **(पृथक्)** अलग है।

दर्शन - ज्ञान - पर्यायेषूत्तरोत्तर - भाविषु।
स्थिरमालम्बनं यद्वा, माध्यस्थ्यं सुख-दुःखयोः॥१३॥

अन्वयार्थ—(उत्तरोत्तर-भाविषु) आगे-आगे या उन्नत-उन्नत होने वाली **(दर्शन-ज्ञान-पर्यायेषु)** सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान की पर्यायों में **(स्थिरं)** अचल **(आलम्बनं)** आलम्बन करना-ठहरना **(यद्वा)** अथवा **(सुख-दुःखयोः)** कर्मोदय से होने वाले सुख-दुख में **(माध्यस्थ्यं)** माध्यस्थ भाव होना (ही चारित्र है)।

ज्ञाता द्रष्टाहमेकोऽहं, सुखे दुःखे न चापरः।
इतीदं भावनादार्ढ्यं, चारित्रमथवा परम् ॥१४॥

अन्वयार्थ—(अहं एकः) मैं अकेला हूँ **(च अपरः न)** और दूसरा कोई मेरा नहीं है **(सुखे दुःखे)** सुख-दुख में **(ज्ञाता द्रष्टा)** जानने देखने वाला हूँ **(इति इदं)** इस प्रकार यह **(भावनादार्ढ्यं)** आत्मभावना की दृढ़ता **(अथवा)** या **(परम्)** उत्कृष्ट वीतरागभावमय **(चारित्रं)** सम्यक्चारित्र है।

यदेतन्मूलहेतोः स्यात्कारणं सहकारकम्।
तद्बाह्यं देश-कालादि, तपश्च बहिरङ्गकम् ॥१५॥

अन्वयार्थ—(एतन्मूलहेतोः) इस अंतरंग उपादान मूलकारण का **(यत्)** जो **(देशकालादि)** देश, काल आदि **(बाह्य)** बाहरी **(च)** और **(तपः)** अनशनादि बाह्य तप **(सहकारकं-कारणं)** सहकारी कारण है **(तत्)** वह **(बहिरङ्गकं कारणं)** बहिरंग उपाय **(स्यात्)** होता है।

इतीदं सर्वमालोच्य, सौस्थ्ये दौःस्थ्ये च शक्तितः।
आत्मानं भावयेन्नित्यं, रागद्वेषविवर्जितम् ॥१६॥

अन्वयार्थ—(इति) इस प्रकार **(इदं सर्वं आलोच्य)** यह सब आलोचना/गुण-दोष का विचार करके **(सौस्थ्ये च दौःस्थ्ये)** अनुकूल और प्रतिकूल दोनों परिस्थितियों में **(शक्तितः)** यथाशक्ति **(नित्यं)** सदा **(राग-द्वेष-विवर्जितम्)** रागद्वेष से रहित **(आत्मानं)** आत्मा को **(भावयेत्)** भावे अर्थात् भावना करे।

कषायैः रञ्जितं चेतस्तत्त्वं नैवावगाहते।
नीली-रक्तेऽम्बरे रागो, दुराधेयो हि कौंकुमः॥१७॥

अन्वयार्थ—(कषायैः रञ्जितं) क्रोधादि कषायों से रंगा हुआ **(चेतः)** मन **(तत्त्वं)** आत्मा के शुद्धस्वरूप को **(नैव)** नहीं **(अवगाहते)** विचार पाता जैसे कि **(नीलीरक्ते अम्बरे)** नीले रंगे हुए कपड़े पर **(कौंकुमः)** कुंकुम का **(रागः)** रंग **(हि)** निश्चय करके **(दुराधेयः)** दुराधेय है (चढ़ना अत्यन्त कठिन है)।

ततस्त्वं दोष-निर्मुक्त्यै, निर्मोहो भव सर्वतः।
उदासीनत्वमाश्रित्य, तत्त्वचिन्ता-परो भव ॥१८॥

अन्वयार्थ—(ततः) इस कारण **(दोषनिर्मुक्त्यै)** रागद्वेष, क्षोभ, व्याकुलता, क्रोध आदि दोषों से छूटने के लिए **(सर्वतः)** समस्त इष्ट-अनिष्ट विषयों से **(त्वं)** तुम **(निर्मोहा)** मोह-ममता रहित **(भव)** हो। **(उदासीनत्वं)** संसार, शरीर, भोगों से उदासीनता का **(आश्रित्य)** आश्रय कर **(तत्त्वचिन्ता-परः)** आत्म तत्त्व के चिंतन में तत्पर **(भव)** हो जाओ।

हेयोपादेय-तत्त्वस्य, स्थितिं विज्ञाय हेयतः।
निरालम्बोऽन्यतः स्वस्मिन्नुपेये सावलम्बनः ॥१९॥

अन्वयार्थ—(हेयोपादेय-तत्त्वस्य) हेय और उपादेय तत्त्व की **(स्थितिं)** स्थिति को—स्वरूप को **(विज्ञाय)** जानकर **(अन्यतः हेयतः)** अपने से भिन्न हेय तत्त्वों से **(निरालम्बः)** आलम्बन रहित होकर (उनका आश्रय छोड़कर) **(उपेये)** उपादेयभूत अथवा ग्रहण करने योग्य **(स्वस्मिन्)** अपने स्वरूप में **(सावलम्बनः)** आलम्बन सहित हो जाओ (उसका आश्रय ग्रहण करो)।

तदाप्यतितृष्णावान्, हन्त! मा भूस्त्वात्मनि।
यावत्तृष्णाप्रभूतिस्ते, तावन्मोक्षं न यास्यसि॥२०॥

अन्वयार्थ—(हन्तः) हे आत्मन्! **(तथापि)** ऐसा (आत्मचिन्तन) होने पर भी **(त्वम्)** तुम **(आत्मनि)** अपने विषय में (भी) **(अतितृष्णावान्)** अत्यन्त तृष्णा से युक्त **(मा भूः)** मत होओ (क्योंकि) **(यावत्)** जब तक **(ते)** तुम्हारे (अन्तस् में) **(तृष्णाप्रभूतिः)** तृष्णा की भावना उत्पन्न होती है। **(तावत्)** तब तक (तुम) **(मोक्षं)** मोक्ष को **(न यास्यसि)** नहीं जा

सकोगे।

मोक्षेऽपि यस्य नाकाङ्क्षा, स मोक्षमधिगच्छति।
इत्युक्तत्वाद्धितान्वेषी, काङ्क्षां न क्वापि योजयेत् ॥२१॥

अन्वयार्थ–(यस्य) जिसकी **(मोक्षे)** मोक्ष में **(अपि)** भी **(आकाङ्क्षा न)** अभिलाषा नहीं होती **(सः)** वह भव्य मनुष्य **(मोक्षं अधिगच्छति)** मोक्ष को प्राप्त कर लेता है **(इति उक्तात्वात्)** ऐसा सर्वज्ञदेव द्वारा कहा होने से **(हितान्वेषी)** अपना हित खोजने वाला व्यक्ति **(क्व अपि)** किसी भी विषय में **(आकाङ्क्षां)** इच्छा को **(न योजयेत्)** न करे।

स्वं परञ्चेति वस्त्वित्थं, वस्तुरूपेण चिन्तय।
उपेक्षा-भावनोत्कर्ष-पर्यन्ते शिवमाप्नुहि ॥२२॥

अन्वयार्थ–(स्वं परञ्चेति) अपनी और परायी–ऐसी (समस्त) **(वस्तु)** वस्तुओं को **(वस्तुरूपेण) वस्तुरूप से** (जो वस्तु जैसी है, उसी रूप) **(चिन्तय)** विचार करो (और फिर) **(इत्थम्)** इस प्रकार (विचार होने पर) **(उपेक्षा-भावनोत्कर्ष-पर्यन्ते)** उपेक्षारूप माध्यस्थ भावना का चरम उत्कर्ष प्राप्त होने पर **(शिवम्)** मोक्ष को **(आप्नुहि)** प्राप्त करो।

साऽपि च स्वात्मनिष्ठत्वात् सुलभा यदि चिन्त्यते।
आत्माधीने फले तात!, यत्नं किं न करिष्यसि॥२३॥

अन्वयार्थ–(सा) वह इच्छा **(अपि)** भी **(यदि)** अगर **(स्वात्म-निष्ठत्वात्)** अपनी आत्मा में ही होने के कारण **(सुलभा चिन्त्यते)** सुलभ समझते हो तो **(तात!)** हे भाई! **(आत्माधीने फले)** स्वाधीन फल में **(यत्नं)** पुरुषार्थ–प्रयत्न **(किं)** क्या **(न करिष्यसि)** नहीं करोगे ? अर्थात् अवश्य करोगे।

स्वं परं विद्धि तत्रापि, व्यामोहं छिन्दि किन्त्विमम्।
अनाकुलः स्वसंवेद्ये, स्वरूपे तिष्ठ केवले ॥२४॥

अन्वयार्थ–(स्वं) अपनी आत्मा को **(परं)** शरीर आदि अन्य पदार्थों को **(विद्धि)** समझो **(किन्तु)** लेकिन **(तत्र अपि)** उसमें भी **(इमम्)** इस भेदभावात्मक **(व्यामोहं)** पक्ष को भी **(छिन्दि)** नष्ट कर दो **(केवले)** सिर्फ **(अनाकुल-स्वसंवेद्ये)** निराकुलतारूप अनुभव से जानने योग्य **(स्वरूपे)** अपने स्वरूप में **(तिष्ठ)** ठहर जाओ।

स्वः स्वं स्वेन स्थिरं स्वस्मै, स्वस्मात्स्वस्याविनश्वरे।
स्वस्मिन् ध्यात्वा लभेत् स्वोत्थमानन्दममृतं पदम् ॥२५॥

अन्वयार्थ–(स्वः) अपना आत्मा **(स्वेन स्थितं)** अपने द्वारा स्थित **(स्वं)** अपने स्वरूप को **(स्वस्मै)** अपने लिए **(स्वस्मात्)** अपने आत्मा से **(स्वस्य)** अपने आत्मा का **(स्वोत्थं)** अपने आत्मा से उत्पन्न हुए **(अविनश्वरे)** अविनाशी **(आनन्दं अमृतं पदं)** आनन्द-अमृतमय पद/मोक्ष को **(स्वस्मिन्)** अपने आत्मा में **(ध्यात्वा)** ध्यान करके **(लभेत्)** प्राप्त करे।

इति स्वतत्त्वं परिभाव्य वाङ्मयं,
य एतदाख्याति शृणोति चादरात्।
करोति तस्मै परमात्म - सम्पदम्,
स्वरूपसम्बोधन - पञ्चविंशतिः ॥२६॥

अन्वयार्थ–(इति) पूर्वोक्त इस प्रकार से **(यः)** जो व्यक्ति **(स्वतत्त्वं)** अपने आत्मतत्त्व को **(परिभाव्य)** परिशीलन/विचार कर **(एतत् वाङ्मयं)** इस वचनरूप शास्त्र को **(आदरात्)** आदर से **(आख्याति)** बाँचता है **(च)** और **(शृणोति)** सुनता है **(तस्मै)** उसके लिए **(स्वरूपसम्बोधन-पञ्चविंशतिः)** स्वरूप-सम्बोधनपञ्चविंशति नाम का शास्त्र **(परमात्म-सम्पदं)** परमात्मा-रूपी सिद्धि–सम्पत्ति को **(करोति)** प्रदान करता है।

❑ ❑ ❑

१. महावीर भगवान् जिस दिन मुक्त हुए उस ही दिन गौतम स्वामी को केवलज्ञान प्राप्त हुआ था। इसी तरह जिस दिन गौतम गणधर मोक्ष गए। उस ही दिन सुधर्म स्वामी केवली हुए हैं और जिस दिन सुधर्म स्वामी को मोक्ष हुआ उसी दिन जम्बूस्वामी केवली भये। इसलिए इन तीनों को अनुबन्ध केवली कहते हैं। जम्बूस्वामी अन्तिम अनुबन्ध केवली हैं। सामान्य केवली की अपेक्षा से श्रीधर नामक अन्तिम केवली कुंडलगिरि में सिद्ध हुए हैं।
२. प्रथम श्री भद्रबाहु यह अन्तिम श्रुतकेवली हो गए हैं। द्वितीय भद्रबाहु अन्तिम निमित्तज्ञानी हुए हैं।

इष्टोपदेश

यस्य स्वयं स्वभावाप्तिरभावे कृत्स्नकर्मणः।
तस्मै सञ्ज्ञानरूपाय नमोऽस्तु परमात्मने ॥१॥

अन्वयार्थ–(यस्य) जिस भगवान् के **(कृत्स्नकर्मणः)** समस्त कर्मों का **(अभावे)** अभाव हो जाने पर **(स्वयं)** अपने आप **(स्वभावाप्तिः)** स्वभाव की प्राप्ति हो गयी है **(तस्मै)** उस **(सञ्ज्ञानरूपाय)** अनन्तज्ञान स्वरूप **(परमात्मने)** परमात्मा के लिए **(नमः अस्तु)** नमस्कार हो।

योग्योपादानयोगेन दृषदः स्वर्णता मता ।
द्रव्यादिस्वादिसम्पत्तावात्मनोऽप्यात्मता मता ॥२॥

अन्वयार्थ–(योग्योपादानयोगेन) योग्य उपादान के मिलने से **(दृषदः)** जैसे स्वर्णपाषाण की **(स्वर्णता मता)** स्वर्णरूपता मानी गई है, उसी तरह **(द्रव्यादिस्वादिसम्पत्तौ)** सुद्रव्य, सुक्षेत्र, सुकाल आदि कारण रूप सामग्री के मिल जाने पर **(आत्मनः अपि)** संसारी आत्मा की भी **(आत्मता)** शुद्ध आत्म स्वरूप की प्राप्ति होना **(मता)** माना गया है।

वरं व्रतैः पदं दैवं नाव्रतैर्वत नारकं।
छायातपस्थयोर्भेदः प्रतिपालयतोर्महान् ॥३॥

अन्वयार्थ–(व्रतैः) व्रतों के द्वारा **(दैवं पदं)** देवपद पाना **(वरं)** अच्छा है (किन्तु) **(वत)** खेद है! **(अव्रतैः)** अव्रतों के द्वारा **(नारकं)** नरक में उत्पन्न होना **(न)** अच्छा नहीं है क्योंकि **(छायातपस्थयोः)** छाया और धूप में स्थित व्यक्तियों के समान **(प्रतिपालयतोः)** प्रतीक्षारत पुरुषों में **(महान् भेदः)** बड़ा भारी अन्तर है ।

यत्र भावः शिवं दत्ते द्यौः कियद्दूरवर्तिनी।
यो नयत्याशु गव्यूतिं क्रोशार्धे किं स सीदति ?॥४॥

अन्वयार्थ– (यत्र भावः) जहाँ भाव **(शिवं दत्ते)** मोक्ष को देता है [वहाँ] **(द्यौः)** स्वर्ग की प्राप्ति **(कियद्दूरवर्तिनी)** कितनी दूर है ? **(यः गव्यूतिं)** जो मनुष्य दो कोश तक **(आशु नयति)** [भार को] शीघ्र ले जाता है। **(सः)** वह **(क्रोशार्धे)** आधा कोश ले जाने में **(किं सीदति)** क्या दुखी हो सकता है? अर्थात् नहीं।

हृषीकज-मनातङ्कं दीर्घ-कालोपलालितम् ।
नाके नाकौकसां सौख्यं नाके नाकौकसामिव ॥५॥

अन्वयार्थ–(नाके) स्वर्ग में **(नाकौकसाम्)** देवों का **(हृषीकजं)** इन्द्रियों से उत्पन्न **(अनातङ्कं)** दुख रहित और **(दीर्घकालोपलालितम्)** दीर्घकाल तक सेव्य **(सौख्यं)** सुख **(नाके)** स्वर्ग में **(नाकौकसाम् इव)** देवों के समान ही होता है।

वासनामात्रमेवैतत् सुखं दुःखं च देहिनाम् ।
तथा ह्युद्वेजयन्त्येते भोगा रोगा इवापदि ॥६॥

अन्वयार्थ– (देहिनाम्) संसारी जीवों के **(एतत् सुखं)** ये इन्द्रिय सुख **(च)** और **(दुःखं)** दुख **(वासनामात्रं एव)** भ्रम मात्र ही हैं **(तथा हि)** इसलिए **(एते भोगाः)** ये इन्द्रियों के भोग **(आपदि)** आपत्ति के समय **(रोगाः इव)** रोगों की तरह **(उद्वेजयन्ति)** व्याकुल करते हैं।

मोहेन संवृतं ज्ञानं स्वभावं लभते न हि।
मत्तः पुमान् पदार्थानां यथा मदनकोद्रवैः ॥७॥

अन्वयार्थ–(मोहेन) मोह से **(संवृतं ज्ञानं)** ढका हुआ ज्ञान **(स्वभावं)** आत्म स्वभाव को **(न हि लभते)** नहीं जान पाता **(यथा)** जैसे **(मदनकोद्रवैः)** नशीले कोदों के खा लेने से **(मत्तः पुमान्)** मूर्च्छित/बेखबर मनुष्य **(पदार्थानां)** पदार्थों को ठीक तरह नहीं जान पाता।

वपुर्गृहं धनं दाराः पुत्रा मित्राणि शत्रवः।
सर्वथान्यस्वभावानि मूढः स्वानि प्रपद्यते ॥८॥

अन्वयार्थ– (वपुः गृहं) शरीर, घर **(धनं दाराः)** धन, स्त्रियाँ **(पुत्राः मित्राणि)** पुत्र, मित्र और **(शत्रवः)** शत्रु **(सर्वथा)** सब तरह से **(अन्य-स्वभावानि)** अन्य स्वभाव वाले हैं परन्तु **(मूढः)** मोही प्राणी इन्हें **(स्वानि प्रपद्यते)** अपना समझता है।

दिग्देशेभ्यः खगा एत्य संवसन्ति नगे नगे ।
स्वस्वकार्यवशाद्यान्ति देशे दिक्षु प्रगे प्रगे ॥९॥

अन्वयार्थ– (नगे नगे) वृक्ष-वृक्ष पर **(दिग्देशेभ्यः)** दिशाओं और देशों से **(एत्य)** आकर **(खगाः)** पक्षी [संध्या के समय] **(संवसन्ति)** ठहर जाते हैं तथा **(प्रगे प्रगे)** प्रातः **(स्वस्वकार्यवशात्)** अपने-अपने कार्य

के वश से **(देशे दिक्षु)** भिन्न-भिन्न देश, दिशाओं में **(यान्ति)** चले जाते हैं।

विराधकः कथं हन्त्रे जनाय परिकुप्यति।
त्र्यङ्गुलं पातयन् पद्भ्यां स्वयं दण्डेन पात्यते ॥१०॥

अन्वयार्थ– (विराधकः) अपकार करने वाला मनुष्य **(हन्त्रे जनाय)** मारने वाले मनुष्य के लिए **(कथं परिकुप्यति)** क्यों क्रोध करता है **(त्र्यङ्गुलं)** तीन अँगुली वाले उपकरण को **(पद्भ्यां)** पैरों के द्वारा **(पातयन्)** गिराता हुआ मनुष्य **(स्वयं दण्डेन)** स्वयं लकड़ी के बेंट (डंडे) द्वारा **(पात्यते)** गिराया (झुकाया) जाता है।

रागद्वेषद्वयीदीर्घ - नेत्राकर्षण - कर्मणा।
अज्ञानात्सुचिरं जीवः संसाराब्धौ भ्रमत्यसौ ॥११॥

अन्वयार्थ– (असौ) यह **(जीवः)** संसारी प्राणी **(संसाराब्धौ)** इस संसार-समुद्र में **(अज्ञानात्सुचिरं)** अज्ञान के कारण अनादिकाल से **(रागद्वेषद्वयी-दीर्घ-नेत्राकर्षण-कर्मणा)** राग-द्वेष रूपी दो लम्बी डोरियों के खींचने रूप कार्य से अर्थात् घुमायी जाती हुई मथानी की तरह **(भ्रमति)** घूम रहा है।

विपद्भवपदावर्ते पदिकेवातिवाह्यते।
यावत्तावद्भवन्त्यन्याः प्रचुराः विपदः पुरः॥१२॥

अन्वयार्थ–(भव-पदावर्ते) संसाररूपी पैर से चलने वाले घटीयंत्र में **(पदिका इव)** रहट के डण्डे के समान **(यावत्)** जब तक **(विपद्)** एक विपत्ति **(अतिवाह्यते)** समाप्त की जाती है **(तावत्)** तब तक **(अन्याः प्रचुराः)** दूसरी बहुत सी **(विपदः)** विपत्तियाँ **(पुरः भवन्ति)** सामने आ खड़ी हो जाती हैं।

दुरर्ज्येनासुरक्ष्येण नश्वरेण धनादिना।
स्वस्थंमन्यो जनः कोऽपि ज्वरवानिव सर्पिषा ॥१३॥

अन्वयार्थ–(दुरर्ज्येन) बड़ी कठिनाइयों से कमाये जाने वाले तथा **(असुरक्ष्येण)** सुरक्षित न रहने वाले **(नश्वरेण)** विनश्वर **(धनादिना)** धन, पुत्रादिकों के द्वारा **(स्वस्थंमन्यः)** अपने आपको स्वस्थ (सुखी) मानने वाला **(कः अपि जनः)** कोई भी मनुष्य **(सर्पिषा)** घी को खाकर **(ज्वरवान् इव)** ज्वर से पीड़ित मनुष्य की तरह मूर्ख होता है।

विपत्तिमात्मनो मूढः परेषामिव नेक्षते।
दह्यमान - मृगाकीर्ण - वनान्तर - तरुस्थवत् ॥१४॥

अन्वयार्थ—(दह्यमान-मृगाकीर्ण-वनान्तर-तरुस्थवत्) अग्नि से जलते हुए मृग आदि जीवों से भरे वन के मध्य वृक्ष पर बैठे हुए मनुष्य के समान **(मूढः)** मूर्ख प्राणी **(परेषां)** दूसरे की **(विपत्तिम् इव)** विपत्ति के समान **(आत्मनः)** अपनी विपत्ति को **(न ईक्षते)** नहीं देखता है।

आयुर्वृद्धिक्षयोत्कर्ष - हेतुं कालस्य निर्गमम्।
वाञ्छतां धनिनामिष्टं जीवितात्सुतरां धनम् ॥१५॥

अन्वयार्थ—(कालस्य निर्गमम्) समय का व्यतीत होना **(आयुर्वृद्धि-क्षयोत्कर्ष-हेतुं)** आयु क्षय और धनवृद्धि का कारण है **(वाञ्छतां धनिनां)** धन चाहने वाले धनवान् पुरुषों को **(जीवितात्)** अपने जीवन से भी **(सुतराम्)** अधिक तरह **(धनं इष्टम्)** धन इष्ट होता है।

त्यागाय श्रेयसे वित्तमवित्तः सञ्चिनोति यः।
स्वशरीरं स पङ्केन स्नास्यामीति विलिम्पति ॥१६॥

अन्वयार्थ—(त्यागाय) दान करने के लिए तथा **(श्रेयसे)** अपने सुख प्राप्त करने के लिए **(यः अवित्तः)** जो निर्धन मनुष्य **(वित्तं सञ्चिनोति)** धन को संग्रहीत करता है **(सः)** वह (मनुष्य) **(स्नास्यामि)** मैं स्नान करूँगा **(इति)** इस विचार से **(स्वशरीरं)** अपने शरीर को **(पङ्केन विलिम्पति)** कीचड़ से लिप्त करता है।

आरम्भे तापकान् प्राप्तावतृप्तिप्रतिपादकान् ।
अन्ते सुदुस्त्यजान् कामान् कामं कः सेवते सुधीः॥१७॥

अन्वयार्थ—(आरम्भे) प्रारम्भ में **(तापकान्)** सन्ताप देने वाले **(प्राप्तौ)** प्राप्त हो जाने पर **(अतृप्ति- प्रतिपादकान्)** तृष्णा को बढ़ाने वाले तथा **(अन्ते)** अन्त में **(सुदुस्त्यजान्)** बहुत कठिनाई से छूटने योग्य **(कामान्)** विषय भोगों को **(कः सुधीः)** कौन बुद्धिमान् पुरुष **(कामं)** बड़ी रुचि से **(सेवते)** सेवन करता है।

भवन्ति प्राप्य यत्सङ्गमशुचीनि शुचीन्यपि।
स कायः सन्तापायस्तदर्थं प्रार्थना वृथा ॥१८॥

अन्वयार्थ—(यत्सङ्गं प्राप्य) जिसका संयोग पाकर **(शुचीनि अपि)** पवित्र

पदार्थ भी **(अशुचीनि)** अपवित्र **(भवन्ति)** हो जाते हैं **(स कायः)** वह शरीर **(सन्तापायः)** सदा विनाशीक बना रहता है अतः **(तदर्थं)** उसके लिए **(प्रार्थना वृथा)** पवित्र करने की कामना व्यर्थ है।

यज्जीवस्योपकाराय तद्देहस्यापकारकम्।
यद्देहस्योपकाराय तज्जीवस्यापकारकम् ॥१९॥

अन्वयार्थ–(यत् जीवस्य) जो कार्य आत्मा के **(उपकाराय)** उपकार के लिए है **(तत् देहस्य)** वह शरीर का **(अपकारकम्)** अपकार करने वाला है तथा **(यत्)** जो **(देहस्य उपकाराय)** शरीर के उपकार के लिए है **(तत्)** वह **(जीवस्य अपकारकम्)** आत्मा का अपकार करने वाला है।

इतश्चिन्तामणिर्दिव्य इतः पिण्याकखण्डकम् ।
ध्यानेन चेदुभे लभ्ये क्वाद्रियन्तां विवेकिनः॥२०॥

अन्वयार्थ– (इतःदिव्यः) एक तरफ दिव्य **(चिन्तामणिः)** चिन्तामणि रत्न और **(इतः)** दूसरी तरफ **(पिण्याकखण्डकम्)** खली का टुकड़ा **(चेत् उभे)** यदि ये दोनों **(ध्यानेन लभ्ये)** ध्यान के द्वारा प्राप्त होते हैं तो **(विवेकिनः)** बुद्धिमान् मनुष्य **(क्व)** किसमें **(आद्रियन्तां)** आदर करे ?

स्वसंवेदन - सुव्यक्तस्तनुमात्रो निरत्ययः।
अत्यन्तसौख्यवानात्मा लोकालोकविलोकनः ॥२१॥

अन्वयार्थ–(आत्मा) यह आत्मा **(स्वसंवेदन-सुव्यक्तः)** आत्म-अनुभव द्वारा स्पष्ट प्रकट होता है/जाना जाता है **(तनुमात्रः)** शरीर के बराबर है **(निरत्ययः)** अविनाशी है **(अत्यन्तसौख्यवान्)** अनन्त सुख वाला है तथा **(लोकालोक- विलोकनः)** लोक और अलोक को जानने देखने वाला है।

संयम्य करणग्राममेकाग्रत्वेन चेतसः।
आत्मानमात्मवान् ध्यायेदात्मनैवात्मनि स्थितम् ॥२२॥

अन्वयार्थ–(आत्मवान्) आत्मा **(करणग्रामं)** इन्द्रिय समूह को **(संयम्य)** संयमित कर [पंचेन्द्रिय के विषयों से रोककर] **(चेतसः)** चित्त की **(एकाग्रत्वेन)** एकाग्रता से **(आत्मनि)** अपनी आत्मा में **(स्थितम्)** स्थित होकर **(आत्मानं)** अपने आत्मा को **(आत्मना एव)** अपने आत्मा द्वारा ही **(ध्यायेत्)** ध्यावे।

अज्ञानोपास्तिरज्ञानं ज्ञानं ज्ञानिसमाश्रयः।
ददाति यत्तु यस्यास्ति सुप्रसिद्धमिदं वचः ॥२३॥

अन्वयार्थ–(अज्ञानोपास्तिः) अज्ञानी की उपासना/सेवा **(अज्ञानं)** अज्ञान को **(ददाति)** देती है **(ज्ञानिसमाश्रयः)** ज्ञानियों की उपासना/सेवा **(ज्ञानं)** ज्ञान को, **(तु)** क्योंकि **(इदम् वचः)** यह बात **(सुप्रसिद्धम्)** अच्छी तरह प्रसिद्ध है कि **(यस्य)** जिसके पास **(यत् अस्ति)** जो होता है, [उसी को वह] **(ददाति)** देता है।

परीषहाद्यविज्ञानादास्त्रवस्य निरोधिनी।
जायतेऽध्यात्मयोगेन कर्मणामाशु निर्जरा ॥२४॥

अन्वयार्थ–(अध्यात्मयोगेन) अध्यात्म के योग से/चिन्तन से **(परीषहाद्य-विज्ञानात्)** परीषह आदि का अनुभव/ज्ञान नहीं होने से **(आस्त्रवस्य)** आस्त्रव को **(निरोधिनी)** रोकने वाली **(कर्मणाम्)** कर्मों की **(निर्जरा)** निर्जरा **(आशु जायते)** शीघ्र होती है।

कटस्य कर्त्ताहमिति सम्बन्धः स्याद् द्वयोर्द्वयोः।
ध्यानं ध्येयं यदात्मैव सम्बन्धः कीदृशस्तदा ॥२५॥

अन्वयार्थ–(अहम्) मैं **(कटस्य कर्त्ता)** चटाई का कर्ता हूँ **(इति सम्बन्धः)** इस प्रकार कर्ता-कर्म सम्बन्ध **(द्वयोर्द्वयोः)** भिन्न-भिन्न दो पदार्थों में **(स्यात्)** होता है, परन्तु **(यदा ध्यानं ध्येयं)** जब ध्यान ध्येय **(आत्मा एव)** आत्मा ही हो **(तदा)** तब **(कीदृशः सम्बन्धः)** सम्बन्ध कैसा?

बध्यते मुच्यते जीवः सममो निर्ममः क्रमात् ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन निर्ममत्वं विचिन्तयेत् ॥२६॥

अन्वयार्थ–(सममः) ममता सहित और **(निर्ममः)** ममता रहित **(जीवः)** जीव **(क्रमात्)** क्रम से [कर्मों से] **(बध्यते)** बँधता है तथा **(मुच्यते)** छूटता है **(तस्मात्)** इस कारण **(सर्वप्रयत्नेन)** सर्व प्रयत्न से **(निर्ममत्वं)** निर्ममत्व को **(विचिन्तयेत्)** ध्यावे।

एकोऽहं निर्ममः शुद्धो ज्ञानी योगीन्द्रगोचरः।
बाह्याः संयोगजा भावा मत्तः सर्वेऽपि सर्वथा ॥२७॥

अन्वयार्थ– (अहम् एकः) मैं एक हूँ **(निर्ममः)** ममता रहित **(शुद्धः)**

शुद्ध हूँ **(ज्ञानी)** ज्ञानी हूँ तथा **(योगीन्द्रगोचरः)** योगियों /मुनियों द्वारा जानने योग्य हूँ **(सर्वे अपि)** सभी **(संयोगजाः)** संयोग से उत्पन्न होने वाले **(भावाः)** पदार्थ **(मत्तः)** मुझसे **(सर्वथा)** सब तरह से **(बाह्याः)** भिन्न हैं।

दुःखसंदोहभागित्वं संयोगादिह देहिनाम्।
त्यजाम्येनं ततः सर्वं मनोवाक्कायकर्मभिः ॥२८॥

अन्वयार्थ–(इह) इस संसार में (**देहिनाम्**) जीवों के **(संयोगात्)** संयोग से **(दुःख-संदोहभागित्वं)** दुख समूह का भागीदार बनना पड़ता है **(ततः)** इस कारण **(एनं सर्वं)** इन सभी [शरीर और कर्म के] संयोग को **(मनोवाक्काय-कर्मभिः)** मन, वचन, काय की क्रिया/चेष्टा से **(त्यजामि)** छोड़ता हूँ।

न मे मृत्युः कुतो भीतिर्न मे व्याधिः कुतो व्यथा।
नाहं बालो न वृद्धोऽहं न युवैतानि पुद्गले ॥२९॥

अन्वयार्थ–(मे) मेरी **(मृत्युः न)** मृत्यु नहीं होती [इस कारण] **(भीतिः)** भय **(कुतः)** किससे (हो सकता है?) **(मे)** मुझे **(व्याधिः न)** कोई रोग नहीं होता [इसलिए] **(कुतःव्यथा)** दुख किससे (हो सकता है?) **(अहम्)** मैं **(बालः न)** बालक नहीं हूँ **(वृद्धः न)** बूढ़ा नहीं हूँ **(युवा न)** जवान नहीं हूँ **(एतानि)** ये सब अवस्थायें **(पुद्गले)** पौद्गलिक शरीर में होती हैं।

भुक्तोज्झिता मुहुर्मोहान्मया सर्वेऽपि पुद्गलाः।
उच्छिष्टेष्विव तेष्वद्य मम विज्ञस्य का स्पृहा ॥३०॥

अन्वयार्थ–(सर्वे अपि) सभी **(पुद्गलाः)** पुद्गल परमाणु **(मया मोहात्)** मेरे द्वारा मोह से **(मुहुः)** बार-बार **(भुक्तोज्झिता)** भोगे और छोड़े जा चुके हैं अतः **(अद्य)** अब **(उच्छिष्टेषु इव)** जूठन के समान **(तेषु)** उन पुद्गलों में **(मम विज्ञस्य)** मुझ बुद्धिमान की **(का स्पृहा)** क्या लालसा हो सकती है?

कर्म कर्म - हिताबन्धि जीवो जीवहितस्पृहः।
स्वस्वप्रभावभूयस्त्वे स्वार्थं को वा न वाञ्छति ॥३१॥

अन्वयार्थ—(कर्म) कर्म **(कर्महिताबन्धि)** अपने हित रूप साथी कर्मों को ही बाँधता है तथा **(जीवः)** आत्मा **(जीवहितस्पृहः)** अपने आत्मा के हित की इच्छा करता है **(स्वस्वप्रभावभूयस्त्वे)** अपने-अपने शक्तिशाली प्रभाव के होने पर **(को वा स्वार्थं)** कौन-सा व्यक्ति अपना हित **(न वाञ्छति)** नहीं चाहता ?

परोपकृतिमुत्सृज्य स्वोपकारपरो भव।
उपकुर्वन्परस्याज्ञो दृश्यमानस्य लोकवत् ॥३२॥

अन्वयार्थ—(परोपकृतिं) परोपकार को **(उत्सृज्य)** छोड़कर **(स्वोपकार-परः)** अपने उपकार करने में तत्पर **(भव)** हो, **(दृश्यमानस्य)** दिखाई देने वाले **(लोकवत्)** इस जगत् की तरह **(अज्ञः)** अज्ञानी जीव **(परस्य)** पर का **(उपकुर्वन्)** उपकार करता हुआ पाया जाता है।

गुरुपदेशादभ्यासात् संवित्तेः स्वपरान्तरम्।
जानाति यः स जानाति, मोक्षसौख्यं निरन्तरम् ॥३३॥

अन्वयार्थ—(यः) जो मनुष्य **(गुरुपदेशात्)** गुरु के उपदेश से **(अभ्यासात्)** अभ्यास से तथा **(संवित्तेः)** आत्म-ज्ञान से **(स्वपरान्तरम्)** स्व और पर पदार्थों के अन्तर को **(जानाति)** जानता है **(सः)** वह **(निरन्तरम्)** सतत् **(मोक्ष-सौख्यं)** मोक्ष के सुख को **(जानाति)** जानता है।

स्वस्मिन् सदभिलाषित्वादभीष्टज्ञापकत्वतः।
स्वयं हितप्रयोक्तृत्वादात्मैव गुरुरात्मनः ॥३४॥

अन्वयार्थ— (स्वस्मिन्) अपने में ही **(सदभिलाषित्वात्)** प्रशस्त [मोक्ष सुख की] अभिलाषा करने से **(अभीष्टज्ञापकत्वतः)** अपने प्रिय पदार्थ का जानने वाला होने से तथा **(स्वयं हितप्रयोक्तृत्वात्)** अपने हित में अपने आपको लगाने से **(आत्मा एव)** आत्मा ही **(आत्मनः गुरुः)** अपना गुरु है।

नाज्ञो विज्ञत्वमायाति विज्ञो नाज्ञत्वमृच्छति।
निमित्तमात्रमन्यस्तु गतेर्धर्मास्तिकायवत् ॥३५॥

अन्वयार्थ— गुरु आदि के उपदेश से **(अज्ञः)** अज्ञानी **(विज्ञत्वं)** विज्ञानता (ज्ञान दशा) को **(न आयाति)** प्राप्त नहीं होता और **(विज्ञः)** ज्ञानी

(अज्ञत्वं) अज्ञानता को **(न ऋच्छति)** प्राप्त नहीं होता है **(अन्यः)** अन्य अध्यापक, गुरु आदि **(तु)** तो (ज्ञान प्राप्ति में) **(गतेः)** चलने में **(धर्मास्ति-कायवत्)** धर्मास्तिकाय की तरह **(निमित्तमात्रम्)** केवल सहायक मात्र हैं।

अभवच्चित्तविक्षेप एकान्ते तत्त्वसंस्थितः।
अभ्यस्येदभियोगेन योगी तत्त्वं निजात्मनः ॥३६॥

अन्वयार्थ— (चित्तविक्षेपः अभवत्) जिसके चित्त में क्षोभ नहीं है **(तत्त्व-संस्थितः)** तत्त्व विचार में स्थित है बुद्धि जिसकी **(योगी)** ऐसा योगी /मुनि **(एकान्ते)** निर्जन स्थान में **(अभियोगेन)** आलस्य, निद्रा को त्याग कर/सावधानी से **(निजात्मनः)** अपनी आत्मा के **(तत्त्वं)** स्वरूप-चिन्तन का **(अभ्यस्येत्)** अभ्यास करे।

यथा यथा समायाति संवित्तौ तत्त्वमुत्तमम्।
तथा तथा न रोचन्ते विषयाः सुलभा अपि ॥३७॥

अन्वयार्थ—(यथा-यथा) जैसे-जैसे **(संवित्तौ)** अनुभूति में **(उत्तमं तत्त्वं)** उत्तम तत्त्व [शुद्धात्म स्वरूप] **(समायाति)** आता है **(तथा तथा)** वैसे-वैसे **(सुलभा-अपि)** सुलभता से प्राप्त हुए भी **(विषयाः)** विषय भोग **(न रोचन्ते)** रुचते नहीं हैं।

यथा यथा न रोचन्ते विषयाः सुलभा अपि।
तथा तथा समायाति संवित्तौ तत्त्वमुत्तमम् ॥३८॥

अन्वयार्थ— (यथा यथा) जैसे-जैसे **(सुलभाः)** सुलभ **(विषयाः अपि)** पञ्चेन्द्रिय के विषय भी **(न रोचन्ते)** आत्मा को अच्छे नहीं लगते **(तथा तथा)** वैसे-वैसे **(संवित्तौ)** अनुभूति में **(उत्तमं तत्त्वं)** उत्तम तत्त्व [शुद्धात्म स्वरूप] **(समायाति)** प्रतिभासित होने लगता है।

निशामयति निश्शेषमिन्द्रजालोपमं जगत्।
स्पृहयत्यात्मलाभाय गत्वान्यत्रानुतप्यते ॥३९॥

अन्वयार्थ—(निश्शेषं) जब समस्त **(जगत्)** संसार **(इन्द्रजालोपमं)** जादूगर के खेल जैसा [निःसार] **(निशामयति)** देखते है, तब **(आत्मलाभाय)** आत्मस्वरूप पाने के लिए **(स्पृहयति)** इच्छा करता है, उस समय यदि

(अन्यत्र) आत्मा से भिन्न अन्य पदार्थों में **(गत्वा)** जाता है तो **(अनुतप्यते)** सन्तप्त/व्याकुल होते हैं।

इच्छत्येकान्तसंवासं निर्जनं जनितादरः।
निजकार्यवशात्किञ्चिदुक्त्वा विस्मरति द्रुतम् ॥४०॥

अन्वयार्थ– (निर्जनं) निर्जन स्थान **(जनितादरः)** जिसे अच्छा प्रतीत होता है ऐसा पुरुष **(एकान्तसंवासं इच्छति)** एकान्त में रहना चाहता है **(निजकार्य-वशात्)** अपने कार्यवश से **(किञ्चित् उक्त्वा)** कुछ कह करके **(द्रुतम्)** शीघ्र **(विस्मरति)** भूल जाता है।

ब्रुवन्नपि हि न ब्रूते गच्छन्नपि न गच्छति।
स्थिरीकृतात्मतत्त्वस्तु पश्यन्नपि न पश्यति ॥४१॥

अन्वयार्थ– (स्थिरीकृतात्मतत्त्वस्तु) किन्तु आत्म तत्त्व में स्थिर रहने वाला **(ब्रुवन् अपि)** बोलता हुआ भी **(न हि ब्रूते)** नहीं बोलता है **(गच्छन् अपि)** चलता हुआ भी **(न गच्छति)** नहीं चलता है और **(पश्यन् अपि)** देखता हुआ भी **(न पश्यति)** नहीं देखता है।

किमिदं कीदृशं कस्य कस्मात्क्वेत्यविशेषयन्।
स्वदेहमपि नावैति योगी योगपरायणः ॥४२॥

अन्वयार्थ–(योगपरायणः) आत्मध्यान में लगा हुआ **(योगी)** योगी साधक **(इदम्)** यह **(किम्)** क्या है **(कीदृशं)** कैसा है **(कस्य)** किसका है **(कस्मात्)** किस कारण से है **(क्व)** कहाँ है **(इति)** इस तरह **(अविशेषयन्)** विशेष विचार न करता हुआ **(स्वदेहम् अपि)** अपने शरीर को भी **(न अवैति)** नहीं जानता है।

यो यत्र निवसन्नास्ते स तत्र कुरुते रतिम्।
यो यत्र रमते तस्मादन्यत्र स न गच्छति ॥४३॥

अन्वयार्थ–(यः) जो [जीव] **(यत्र)** जहाँ पर **(निवसन् आस्ते)** रहता है **(स तत्र)** वह वहाँ [उस स्थान पर] **(रतिम् कुरुते)** प्रीति करता है और **(यः यत्र)** जो जहाँ **(रमते)** रम जाता है **(स)** वह **(तस्मात्)** उस स्थान से **(अन्यत्र)** अन्य जगह **(न गच्छति)** नहीं जाता।

अगच्छंस्तद्विशेषाणामनभिज्ञश्च जायते।
अज्ञाततद्विशेषस्तु बध्यते न विमुच्यते ॥४४॥

अन्वयार्थ– (तद्विशेषाणाम्) उन [शरीर आदि पर पदार्थों के] विशेषणों [विशेषताओं] को **(अगच्छन्)** न जानता हुआ **(अनभिज्ञः)** अजान **(जायते)** बन जाता है **(च)** और **(अज्ञाततद्विशेषः)** उन शरीरादि की विशेषताओं पर ध्यान न देने वाला **(न बध्यते)** कर्म से नहीं बँधता **(तु)** किन्तु **(विमुच्यते)** छूट जाता है।

परः परस्ततो दुःखमात्मैवात्मा ततः सुखम्।
अतएव महात्मानस्तन्निमित्तं कृतोद्यमाः ॥४५॥

अन्वयार्थ–(परः) अन्य पदार्थ (आत्मा से) **(परः)** अन्य हैं अतः **(ततः)** उस अन्य पदार्थ से **(दुःखम्)** दुख होता है और **(आत्मा)** आत्मा अपना **(आत्मा एव)** आत्मा ही है अतः **(ततः)** उस (आत्मा) से **(सुखम्)** सुख होता है **(अतएव)** इसी कारण **(महात्मानः)** महापुरुषों ने **(तन्निमित्तं)** उस आत्मा की प्राप्ति के निमित्त **(कृतोद्यमाः)** उद्यम किया था।

अविद्वान् पुद्गलद्रव्यं योऽभिनन्दति तस्य तत्।
न जातु जन्तोःसामीप्यं चतुर्गतिषु मुञ्चति ॥४६॥

अन्वयार्थ–(यः) जो **(अविद्वान्)** मूर्ख/बहिरात्मा **(पुद्गलद्रव्यम्)** पुद्गल द्रव्य का **(अभिनन्दति)** आत्मीय भाव से समादर करता है **(तस्य जन्तोः)** उस बहिरात्म प्राणी का **(तत्)** वह [शरीर आदि पुद्गल द्रव्य] **(जातु)** कभी भी **(चतुःगतिषु)** चारों गतियों में **(सामीप्यं न मुञ्चति)** साथ नहीं छोड़ता।

आत्मानुष्ठाननिष्ठस्य व्यवहारबहिः स्थितेः।
जायते परमानन्दः कश्चिद्योगेन योगिनः ॥४७॥

अन्वयार्थ–(व्यवहारबहिःस्थितेः) व्यवहारचारित्र से बाहर ठहरे हुए **(आत्मानुष्ठाननिष्ठस्य)** आत्मध्यान में लवलीन **(योगिनः)** मुनि के **(योगेन)** आत्मध्यान के द्वारा **(कश्चित्)** कोई अपूर्व **(परमानन्दः)** परम आनन्द **(जायते)** उत्पन्न होता है।

आनन्दो निर्दहत्युद्धं कर्मेन्धनमनारतम्।
न चासौ खिद्यते योगी बहिर्दुःखेष्वचेतनः ॥४८॥

अन्वयार्थ–(आनन्दः) आत्मानन्द **(अनारतम्)** निरन्तर **(उद्धं)** बहुत से **(कर्मेन्धनम्)** कर्मरूपी ईंधन को **(निर्दहति)** जलाता है **(च)** तथा

(बहिर्दु:खेषु अचेतनः) बाहरी [परीषह, उपसर्गादिक] दुखों से अनभिज्ञ **(असौ योगी)** वह योगी/आत्मध्यानी **(न खिद्यते)** खेद-खिन्न/दुखी नहीं होता है।

अविद्याभिदुरं ज्योतिः परं ज्ञानमयं महत्।
तत्प्रष्टव्यं तदेष्टव्यं तद्दृष्टव्यं मुमुक्षुभिः ॥४९॥

अन्वयार्थ–(अविद्याभिदुरं) अज्ञान-अन्धकार को नष्ट करने वाली **(महत् ज्ञानमयं)** महान् ज्ञानरूप **(परं ज्योतिः)** उत्कृष्ट ज्योति **(मुमुक्षुभिः)** मोक्ष अभिलाषी पुरुषों के द्वारा **(तत् प्रष्टव्यं)** वह पूछने योग्य है **(तत् एष्टव्यं)** वह चाहने योग्य है **(तत् दृष्टव्यं)** वह दर्शनीय या अनुभव करने योग्य है।

जीवोऽन्यः पुद्गलश्चान्य इत्यसौ तत्त्वसंग्रहः।
यदन्यदुच्यते किञ्चित् सोऽस्तु तस्यैव विस्तरः ॥५०॥

अन्वयार्थ–(जीवः अन्यः) जीव अन्य है **(च)** और **(पुद्गलः अन्यः)** पुद्गल अन्य है **(इति)** इस प्रकार **(असौ)** यह **(तत्त्वसंग्रहः)** तत्त्व का सार है, इसके अलावा **(यत्)** जो **(अन्यत् किञ्चित्)** कुछ अन्य बात इस विषय में **(उच्यते)** कही जाती है **(सः)** वह **(तस्य एव विस्तरः)** उसका ही विस्तार **(अस्तु)** हो।

इष्टोपदेशमिति सम्यगधीत्य धीमान्,
मानापमानसमतां स्वमताद्वितन्य।
मुक्ताग्रहो विनिवसन् सजने वने वा,
मुक्तिश्रियं निरुपमामुपयाति भव्यः ॥५१॥

अन्वयार्थ–(धीमान् भव्यः) बुद्धिमान् भव्य पुरुष **(इति)** इस प्रकार **(इष्टोपदेशं)** इष्टोपदेश ग्रन्थ को **(सम्यक् अधीत्य)** अच्छी तरह अध्ययन करके **(स्वमतात्)** अपने आत्मज्ञान से **(मानापमानसमतां)** सम्मान और अपमान में समता भाव को **(वितन्य)** विस्तार/ विशेषण करके **(मुक्ताग्रहः)** आग्रह को त्यागता हुआ **(सजने)** गाँव आदि में **(वा)** अथवा **(वने)** निर्जन वन में **(विनिवसन्)** रहता हुआ **(निरुपमां)** अनुपम **(मुक्तिश्रियम्)** मुक्ति लक्ष्मी को **(उपयाति)** प्राप्त करता है।

❑ ❑ ❑

द्रव्यसंग्रह

जीवमजीवं दव्वं, जिणवरवसहेण जेण णिद्दिट्ठं।
देविंदविंदवंदं, वंदे तं सव्वदा सिरसा ॥१॥

अन्वयार्थ–(जेण जिणवरवसहेण) जिन जिनवर वृषभ ने **(जीवं अजीवं दव्वं)** जीव और अजीव द्रव्य को **(णिद्दिट्ठं)** कहा है **(देविंदविंदवंदं)** देवेन्द्रों समूह से वन्दनीय हैं **(तं)** उनको **(सव्वदा)** सदा **(सिरसा)** मस्तक से **(वंदे)** मैं नमस्कार करता हूँ।

जीवो उवओग-मओ, अमुत्ति कत्ता सदेहपरिमाणो।
भोत्ता संसारत्थो, सिद्धो सो विस्ससोड्ढगई ॥२॥

अन्वयार्थ–(सो) वह आत्मद्रव्य **(जीवो)** जीने वाला है **(उवओगमओ)** उपयोग वाला है **(अमुत्ति)** अमूर्तिक है **(कत्ता)** कर्मों का कर्ता है **(सदेह-परिमाणो)** अपने शरीर के प्रमाण अर्थात् बराबर है **(भोत्ता)** कर्मों का भोक्ता है **(संसारत्थो)** संसार में स्थित है **(सिद्धो)** सिद्ध है **(विस्ससा उड्ढगई)** स्वभाव से ऊर्ध्वगमन करने वाला है।

तिक्काले चदुपाणा, इंदियबलमाउआणपाणो य।
ववहारा सो जीवो,णिच्छय-णयदो दु चेदणा जस्स ॥३॥

अन्वयार्थ–(ववहारा) व्यवहार नय से **(जस्स)** जिसके **(तिक्काले)** तीनों कालों में **(इंदियबलमाउ य आणपाणो)** इन्द्रिय, बल, आयु और श्वासोच्छ्वास ये **(चदुपाणा)** चार प्राण **(दु)** तथा **(णिच्छय-णयदो)** निश्चय नय से जिसके **(चेदणा)** चेतना हो **(सो जीवो)** वह जीव है।

उवओगो दुवियप्पो, दंसणणाणं च दंसणं चदुधा।
चक्खु अचक्खू ओही, दंसणमध केवलं णेयं ॥४॥

अन्वयार्थ–(उवओगो दुवियप्पो) उपयोग दो प्रकार का है **(दंसणणाणं)** दर्शनोपयोग और ज्ञानोपयोग **(च)** तथा **(दंसणं चदुधा)** दर्शनोपयोग चार प्रकार का **(चक्खु अचक्खू ओही अध केवलं दंसणं)** चक्षुर्दर्शन अचक्षुर्दर्शन अवधिदर्शन और केवलदर्शन **(णेयं)** जानना चाहिए।

णाणं अट्ठवियप्पं, मदिसुदओही अणाणणाणाणि।
मणपज्जयकेवलमवि, पच्चक्ख परोक्ख भेयं च ॥५॥

अन्वयार्थ–(मदिसुदओही अणाणणाणाणि) मति, श्रुत, अवधि ये तीनों अज्ञान/मिथ्याज्ञानरूप और ज्ञान/सम्यग्ज्ञानरूप हैं तथा **(मणपज्जय-केवलं अवि)** मनःपर्यय और केवलज्ञान सम्यग्ज्ञानरूप ही हैं इस तरह यह सभी **(अट्ठवियप्पं णाणं)** आठ प्रकार का ज्ञान है **(च)** और **(पच्चक्ख परोक्ख भेयं)** प्रत्यक्ष व परोक्ष के भेद से वह ज्ञान दो प्रकार का भी है।

अट्ठ चदु णाणदंसण, सामण्णं जीवलक्खणं भणियं।
ववहारा सुद्धणया, सुद्धं पुण दंसणं णाणं ॥६॥

अन्वयार्थ–(ववहारा) व्यवहार नय से **(अट्ठ णाण)** आठ प्रकार का ज्ञान **(चदु दंसण)** चार प्रकार का दर्शन **(सामण्णं)** सामान्य से **(पुण)** और **(सुद्धणया)** शुद्ध निश्चयनय से **(सुद्धं दंसणं णाणं)** शुद्धदर्शन व शुद्धज्ञान **(जीवलक्खणं)** जीव का लक्षण **(भणियं)** कहा है।

वण्ण रस पंच गंधा, दो फासा अट्ठ णिच्छया जीवे।
णो संति अमुत्ति तदो, ववहारा मुत्ति बंधादो ॥७॥

अन्वयार्थ–(णिच्छया) निश्चयनय से **(जीवे)** जीव में **(पंच वण्ण रस दो गंधा अट्ठ फासा)** पाँच वर्ण व पाँच रस, दो गंध तथा आठ स्पर्श **(णो)** नहीं **(संति)** हैं **(तदो)** इसलिए **(अमुत्ति)** जीव अमूर्तिक है **(ववहारा)** व्यवहारनय से **(बंधादो)** कर्मबन्ध होने के कारण **(मुत्ति)** जीव मूर्तिक है।

पुग्गलकम्मादीणं, कत्ता ववहारदो दु णिच्छयदो।
चेदणकम्माणादा, सुद्धणया सुद्धभावाणं ॥८॥

अन्वयार्थ–(आदा) आत्मा **(ववहारदो)** व्यवहार नय से **(पुग्गल-कम्मादीणं)** पुद्गल कर्म–ज्ञानावरणादि का **(णिच्छयदो)** अशुद्ध निश्चयनय से **(चेदण-कम्माण)** चेतनकर्म–रागद्वेष आदि का **(सुद्धणया)** शुद्ध निश्चयनय से **(सुद्धभावाणं)** शुद्ध भाव–शुद्ध ज्ञान-दर्शन का **(कत्ता)** कर्ता है।

ववहारा सुहदुक्खं, पुग्गलकम्मप्फलं पभुंजेदि।
आदा णिच्छयणयदो, चेदणभावं खु आदस्स ॥९॥

अन्वयार्थ–(आदा) आत्मा **(ववहारा)** व्यवहारनय से **(सुहदुक्खं)** सुख-दुखरूप **(पुग्गलकम्मप्फलं)** पुद्गल कर्म के फल को **(पभुंजेदि)** भोगता

है **(खु)** और **(णिच्छयणयदो)** निश्चयनय से **(आदस्स चेदणभावं)** आत्मा के चेतनभाव–ज्ञान, दर्शन, सुख आदि को भोगता है।

अणुगुरुदेहपमाणो, उवसंहारप्पसप्पदो चेदा।
असमुहदो ववहारा,णिच्छयणयदो असंखदेसो वा ॥१०॥

अन्वयार्थ–(चेदा) आत्मा **(व्यवहारा)** व्यवहारनय से **(असमुहदो)** समुद्घात के सिवाय अन्य सब समयों में **(उवसंहारप्पसप्पदो)** संकोच विस्तार गुण के कारण **(अणुगुरुदेहपमाणो)** अपने छोटे बड़े शरीर के बराबर **(वा)** और **(णिच्छयणयदो)** निश्चयनय से **(असंखदेसो)** असंख्यात प्रदेशों वाला अर्थात् लोक के बराबर असंख्यात प्रदेशी है।

पुढविजलतेउवाऊ,-वणप्फदी विविह-थावरेइंदी।
विगतिगचदुपंचक्खा, तसजीवा होंति संखादी ॥११॥

अन्वयार्थ–(पुढविजलतेउवाऊवणप्फदी) पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पतिकायिक **(विविह-थावरेइंदी)** ये विविध प्रकार के स्थावर जीव एकेन्द्रिय हैं और **(संखादी विग-तिग-चदु-पंचक्खा)** शंख आदि द्वीन्द्रिय, चींटी आदि त्रीन्द्रिय, भौंरा आदि चतुरिन्द्रिय और मनुष्यादि पंचेन्द्रिय जीव **(तसजीवा)** त्रस जीव **(होंति)** होते हैं।

समणा अमणा णेया, पंचिंदिय णिम्मणा परे सव्वे।
बादर सुहुमेइंदी, सव्वे पज्जत्त इदरा य ॥१२॥

अन्वयार्थ–(पंचिंदिय) पंचेन्द्रिय जीव **(समणा)** मन सहित और **(अमणा)** मन रहित **(णेया)** जानना चाहिए **(परे सव्वे)** शेष सभी जीव याने एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय व चतुरिन्द्रिय जीव **(णिम्मणा)** मन रहित हैं **(एइंदी बादर सुहुमा)** एकेन्द्रिय जीव बादर व सूक्ष्म के भेद से दो-दो प्रकार के हैं **(सव्वे पज्जत्त य इदरा)** ये सभी सातों प्रकार के जीव पर्याप्तक और अपर्याप्तक होते हैं इस प्रकार ये १४ जीवसमास हो जाते हैं।

मग्गणगुणठाणेहि य, चउदसहि हवंति तह असुद्धणया।
विण्णेया संसारी, सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया ॥१३॥

अन्वयार्थ–(तह) तथा **(संसारी)** संसारी जीव **(असुद्धणया)** अशुद्धनय से **(मग्गण गुणठाणेहि चउदसहि)** मार्गणा व गुणस्थानों की अपेक्षा

चौदह-चौदह भेद वाले **(हवंति)** होते हैं **(य)** और **(सुद्धणया)** शुद्धनय से **(सव्वे)** सभी जीव **(सुद्धा)** शुद्ध **(हु)** ही **(विण्णेया)** जानना चाहिए।

णिक्कम्मा अट्ठगुणा, किंचूणा चरमदेहदो सिद्धा।
लोयग्गठिदा णिच्चा, उप्पाद-वएहिं संजुत्ता ॥१४॥

अन्वयार्थ–(णिक्कम्मा) आठकर्मों से रहित **(अट्ठगुणा)** आठगुणों से सहित **(चरमदेहदो किंचूणा)** अन्तिम शरीर से कुछ कम प्रमाण वाले **(लोयग्ग-ठिदा)** ऊर्ध्वगमन स्वभाव से लोक के अग्रभाग में स्थित **(णिच्चा)** विनाश रहित और **(उप्पाद-वएहिं संजुत्ता)** उत्पाद व व्यय से संयुक्त हैं वे **(सिद्धा)** सिद्ध भगवान् हैं।

अज्जीवो पुण णेओ, पुग्गलधम्मो अधम्म आयासं।
कालो पुग्गलमुत्तो, रूवादिगुणो अमुत्ति सेसा दु ॥१५॥

अन्वयार्थ–(पुण) और **(पुग्गल धम्मो अधम्म आयासं कालो)** पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल इन पाँचों को **(अज्जीवो)** अजीव द्रव्य **(णेयो)**जानना चाहिए **(रूवादिगुणो पुग्गलमुत्तो)** रूप/वर्ण, स्पर्श, रस, गंध आदि गुण वाला पुद्गल मूर्तिक द्रव्य है **(दु)** परन्तु रूपादि गुण वाले न होने से **(सेसा)** शेष पाँच द्रव्य **(अमुत्ति)** अमूर्त्तिक हैं।

सद्दो बंधो सुहुमो, थूलो संठाण-भेद-तम-छाया।
उज्जोदादव-सहिया, पुग्गलदव्वस्स पज्जाया ॥१६॥

अन्वयार्थ–(सद्दो) शब्द **(बंधो)** बंध **(सुहुमो)** सूक्ष्म **(थूलो)** स्थूल **(संठाण-भेद-तम-छाया)** संस्थान, भेद, अन्धकार, छाया **(उज्जोदादव-सहिया)** उद्योत व आतप सहित **(पुग्गलदव्वस्स पज्जाया)** पुद्गल द्रव्य की पर्यायें हैं।

गइ परिणयाण धम्मो, पुग्गलजीवाण गमणसहयारी।
तोयं जह मच्छाणं, अच्छंता णेव सो णेई ॥१७॥

अन्वयार्थ–(गइपरिणयाण) गमन करते हुए **(पुग्गल-जीवाण)** पुद्गल और जीवों के **(गमणसहयारी)** जो गमन में सहकारी/निमित्त है **(धम्मो)** वह धर्मद्रव्य है **(जह तोयं मच्छाणं)** जैसे जल मछलियों के गमन में सहकारी है **(सो)** वह धर्मद्रव्य **(अच्छंता)** ठहरने वाले जीव या पुद्गल को **(णेव णेई)** नहीं ले जाता है।

ठाणजुदाण अधम्मो, पुग्गलजीवाण ठाण सहयारी।
छाया जह पहियाणं, गच्छंता णेव सो धरई ॥१८॥

अन्वयार्थ—(ठाणजुदाण पुग्गलजीवाण) ठहरे हुए पुद्गल और जीवों के **(ठाण सहयारी)** ठहरने में सहकारी कारण **(अधम्मो)** अधर्मद्रव्य है **(जह पहियाणं छाया)** जैसे पथिकों के ठहरने में छाया सहकारी कारण है **(सो)** वह अधर्मद्रव्य **(गच्छंता)** गमन करते हुए जीव और पुद्गलों को **(णेव धरई)** नहीं धरता/ठहराता है।

अवगासदाणजोग्गं, जीवादीणं वियाण आयासं।
जेण्हं लोगागासं, अल्लोगागासमिदि दुविहं ॥१९॥

अन्वयार्थ—जो **(जीवादीणं)** जीव आदि समस्त द्रव्यों के **(अवगास-दाण-जोग्गं)** अवकाश देने में समर्थ है उसे **(आयासं)** आकाशद्रव्य **(वियाण)** जानो वह **(जेण्हं)** जिनेन्द्रदेव ने **(लोगागासं अल्लोगागासं)** लोकाकाश और अलोकाकाश **(इदि)** इस प्रकार **(दुविहं)** दो प्रकार का कहा है।

धम्माधम्मा कालो, पुग्गलजीवा य संति जावदिये।
आयासे सो लोगो, तत्तो परदो अलोगुत्तो ॥२०॥

अन्वयार्थ—(जावदिये आयासे) जितने आकाश में **(धम्माधम्मा)** धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य **(कालो)** कालद्रव्य **(पुग्गलजीवा)** पुद्गलद्रव्य और जीवद्रव्य **(संति)** हैं **(सो लोगो)** वह लोकाकाश है **(य)** तथा **(तत्तो परदो)** उसके आगे/बाहर **(अलोगो उत्तो)** अलोकाकाश कहा गया है।

दव्वपरिवट्टरूवो, जो सो कालो हवेइ ववहारो।
परिणामादीलक्खो, वट्टणलक्खो य परमट्ठो ॥२१॥

अन्वयार्थ—(जो दव्व-परिवट्टरूवो) द्रव्यों के परिवर्तनरूप और **(परिणामादी-लक्खो)** परिणाम यानि समय आदि पर्याय लक्षण वाला है **(सो ववहारो कालो)** वह व्यवहारकाल है **(य)** और **(वट्टणलक्खो)** जिसका वर्तना ही लक्षण है **(परमट्ठो)** वह परमार्थ काल अर्थात् निश्चयकाल **(हवेइ)** होता है।

लोयायासपदेसे, इक्किक्के जे ठिया हु इक्किक्का।
रयणाणं रासीमिव, ते कालाणू असंख-दव्वाणि ॥२२॥

अन्वयार्थ–(इक्किक्के लोयायासपदेसे) एक-एक लोकाकाश के प्रदेशों पर **(रयणाणं रासीं इव)** रत्नों की राशि के समान **(इक्किक्का)** एक-एक **(कालाणू)** कालद्रव्यरूप अणु **(ठिया)** स्थित है **(ते)** वे कालाणु **(हु)** निश्चय से **(असंख-दव्वाणि)** असंख्यात द्रव्यरूप हैं।

एवं छब्भेय-मिदं, जीवाजीवप्पभेददो दव्वं।
उत्तं कालविजुत्तं, णादव्वा पंच अत्थिकाया दु ॥२३॥

अन्वयार्थ–(एवं) इस प्रकार **(जीवाजीवप्पभेददो)** जीव और अजीव के भेद से **(इदं दव्वं)** यह द्रव्य **(छब्भेयं उत्तं)** छह भेद वाला कहा गया **(दु)** परन्तु **(कालविजुत्तं)** कालद्रव्य को छोड़कर **(पंच अत्थिकाया णादव्वा)** शेष पाँच द्रव्यों को अस्तिकाय जानना चाहिए।

संति जदो तेणेदे, अत्थित्ति भणंति जिणवरा जम्हा।
काया इव बहुदेसा, तम्हा काया य अत्थिकाया य ॥२४॥

अन्वयार्थ–(जदो एदे संति) क्योंकि ये पूर्वोक्त जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म तथा आकाश पाँच द्रव्य हैं **(तेण)** इसलिए **(अत्थि)** अस्तित्ववान /विद्यमान हैं **(इत्ति)** ऐसा **(जिणवरा)** जिनेश्वरदेव **(भणंति)** कहते हैं **(य)** और **(जम्हा काया इव)** क्योंकि ये काय/शरीर के समान **(बहुदेसा)** बहुप्रदेशी हैं **(तम्हा काया)** इसलिए ये काय हैं **(य)** और अस्ति तथा काय दोनों को मिलाने से **(अत्थिकाया)** पाँचों द्रव्य अस्तिकाय होते हैं।

होंति असंखा जीवे, धम्माधम्मे अणंत आयासे।
मुत्ते तिविह पदेसा, कालस्सेगो ण तेण सो काओ ॥२५॥

अन्वयार्थ–(जीवे धम्माधम्मे) एक जीवद्रव्य में, धर्म व अधर्मद्रव्य में **(असंखा)** असंख्यात प्रदेश हैं **(आयासे)** आकाशद्रव्य में **(अणंत)** अनन्त प्रदेश हैं **(मुत्ते)** मूर्त पुद्गलद्रव्य में **(तिविह पदेसा)** संख्यात, असंख्यात और अनन्त ये तीनों प्रदेश **(होंति)** होते हैं **(कालस्स एगो)** कालद्रव्य का एक ही प्रदेश है **(तेण)** इस कारण से **(सो काओ ण)** वह कायवान्/बहुप्रदेशी नहीं है।

एयपदेसो वि अणू, णाणाखंधप्पदेसदो होदि।
बहुदेसो उवयारा, तेण य काओ भणंति सव्वण्हू ॥२६॥

अन्वयार्थ–(एयपदेसो वि अणू) एक प्रदेश वाला भी पुद्गलरूप अणु

(णाणा-खंधप्पदेसदो) अनेक स्कन्धरूप प्रदेशों का कारण होने से **(बहुदेसो)** बहुप्रदेशी **(होदि)** होता है **(य)** और **(तेण)** इसी कारण से **(सव्वण्हू)** सर्वज्ञदेव परमाणु को **(उवयारा काओ)** उपचार/व्यवहार से कायवान/ बहुप्रदेशी **(भणंति)** कहते हैं।

जावदियं आयासं, अविभागीपुग्गलाणुवट्टद्धं।
तं खु पदेसं जाणे, सव्वाणुट्ठाणदाणरिहं ॥२७॥

अन्वयार्थ–(जावदियं आयासं) जितना आकाश **(अविभागी-पुग्गलाणु-वट्टद्धं)** पुद्गल के अविभाजित परमाणु से व्याप्त/रोका गया है **(तं)** उसको **(खु)** निश्चय से **(सव्वाणुट्ठाणदाणरिहं)** सर्व परमाणुओं को स्थान देने में समर्थ **(पदेसं)** प्रदेश **(जाणे)** जानना चाहिए।

आसवबंधणसंवर,-णिज्जरमोक्खा सपुण्णपावा जे।
जीवाजीवविसेसा, ते वि समासेण पभणामो ॥२८॥

अन्वयार्थ–(जीवाजीवविसेसा) जीव और अजीव के विशेष/भेद **(सपुण्ण-पावा)** पुण्य और पाप सहित **(जे)** जो **(आसव-बंधण-संवर-णिज्जर-मोक्खा)** आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष हैं **(ते वि)** उनको भी **(समासेण)** संक्षेप से **(पभणामो)** कहता हूँ।

आसवदि जेण कम्मं, परिणामेणप्पणो स विण्णेओ।
भावासवो जिणुत्तो, कम्मासवणं परो होदि ॥२९॥

अन्वयार्थ–(अप्पणो) आत्मा के **(जेण)** जिस **(परिणामेण)** परिणाम से **(कम्मं आसवदि)** कर्म आता है **(स जिणुत्तो)** वह जिनेन्द्रदेव के द्वारा कहा हुआ **(भावासवो)** भावास्रव **(विण्णेओ)** जानना चाहिए और **(कम्मासवणं)** ज्ञानावरणादि कर्मों का आना **(परो होदि)** वह उस भावास्रव से भिन्न द्रव्यास्रव होता है।

मिच्छत्ताविरदिपमादजोगकोधादओथ विण्णेया।
पण-पण-पणदह तिय चदु, कमसो भेदा दु पुव्वस्स ॥३०॥

अन्वयार्थ–(अथ) अब **(पुव्वस्स)** पहले भावास्रव के **(मिच्छत्ताविरदि-पमादजोगकोधादओ)** मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, योग व क्रोधादि कषाय भेद हैं **(दु)** और उनके **(कमसो)** क्रम से **(पण-पण)** पाँच, पाँच

(पणदह) पंद्रह **(तिय चदु)** तीन और चार **(भेदा)** भेद **(विण्णेया)** जानने चाहिए।

णाणावरणादीणं, जोग्गं जं पुग्गलं समासवदि।
दव्वासवो स णेओ, अणेयभेओ जिणक्खादो ॥३१॥

अन्वयार्थ–(णाणावरणादीणं जोग्गं) ज्ञानावरणादि आठ कर्मों के योग्य **(जं पुग्गलं)** जो पुद्गलद्रव्य **(समासवदि)** आता है अर्थात् कर्मरूप होता है **(स)** वह **(जिणक्खादो)** श्री जिनेन्द्रदेव के द्वारा कहा गया **(अणेयभेओ)** अनेक भेद वाला **(दव्वासवो)** द्रव्यास्रव **(णेओ)** जानना चाहिए।

बज्झदि कम्मं जेण दु, चेदण-भावेण भावबंधो सो।
कम्माद-पदेसाणं, अण्णोण्ण-पवेसणं इदरो ॥३२॥

अन्वयार्थ–(जेण) जिस **(चेदण-भावेण)** आत्मा के परिणाम से **(कम्मं बज्झदि)** कर्म बंधता है **(सो)** वह **(भावबंधो)** भाव बंध है **(दु)** और **(कम्माद-पदेसाणं)** कर्म व आत्मप्रदेशों का **(अण्णोण-पवेसणं)** परस्पर एकमेक हो मिलकर रहना **(इदरो)** उस भावबंध से अन्य, द्रव्यबंध है।

पयडिट्ठिदिअणुभागप्पदेसभेदा दु चदुविहो बंधो।
जोगा पयडिपदेसा, ठिदिअणुभागा कसायदो होंति ॥३३॥

अन्वयार्थ–(पयडिट्ठिदिअणुभागप्पदेसभेदा) प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश के भेद से **(बंधो)** बंध **(चदुविहो)** चार प्रकार का होता है, उनमें से **(पयडिपदेसा)** प्रकृति और प्रदेश बंध तो **(जोगा)** मन-वचन-कायरूप योग से होते हैं **(दु)** तथा **(ठिदि-अणुभागा)** स्थिति और अनुभागबंध **(कसायदो)** कषाय से **(होंति)** होते हैं।

चेदणपरिणामो जो, कम्मस्सासव-णिरोहणे हेदू।
सो भावसंवरो खलु, दव्वासव-रोहणे अण्णो ॥३४॥

अन्वयार्थ–(जो) जो **(चेदणपरिणामो)** आत्मा का परिणाम **(कम्मस्सासव-णिरोहणे)** कर्म के आस्रव के रोकने में **(हेदू)** कारण हैं **(सो)** वह **(खलु)** निश्चय से **(भावसंवरो)** भाव संवर है तथा **(दव्वासव-रोहणे/णो)** द्रव्यास्रव का रुकना **(अण्णो)** अन्य है अर्थात् भाव संवर से

भिन्न द्रव्य संवर है।

वदसमिदीगुत्तीओ, धम्माणुपेहा परीसहजओ य।
चारित्तं बहुभेया, णायव्वा भावसंवरविसेसा ॥३५॥

अन्वयार्थ–(वदसमिदीगुत्तीओ) व्रत, समिति, गुप्ति, **(धम्माणुपेहा)** धर्म, अनुप्रेक्षा, **(परीसहजओ)** परीषहजय **(य)** और **(बहुभेया)** बहुत प्रकार वाला **(चारित्तं)** चारित्र ये सभी **(भावसंवरविसेसा)** भावसंवर के भेद **(णायव्वा)** जानना चाहिए।

जहकालेण तवेण य, भुत्तरसं कम्मपुग्गलं जेण।
भावेण सडदि णेया, तस्सडणं चेदि णिज्जरा दुविहा ॥३६॥

अन्वयार्थ–(जहकालेण) कर्मों की स्थिति पूर्ण होने से **(भुत्तरसं)** जिसका फल भोगा जा चुका है ऐसा **(कम्मपुग्गलं)** कर्मरूप पुद्गल **(जेण भावेण)** जिस आत्म परिणाम से **(सडदि)** झड़ता/छूटता है, वही परिणाम सविपाक भावनिर्जरा है **(य)** और **(तवेण)** तपस्या के द्वारा **(जेण भावेण)** जिस आत्म परिणाम से **(कम्मपुग्गलं)** कर्मरूप पुद्गल **(सडदि)** झड़ता/छूटता है, वही परिणाम अविपाक भावनिर्जरा है तथा **(जहकालेण)** कर्मों की स्थिति पूर्ण होने से **(य)** अथवा **(तवेण)** तपस्या के द्वारा जो **(कम्मपुग्गलं)** ज्ञानावरण आदि द्रव्यकर्मरूप पुद्गल **(सडदि)** झड़ता/छूटता है वह सविपाक-द्रव्यनिर्जरा और अविपाक-द्रव्यनिर्जरा है **(इदि णिज्जरा दुविहा)** इस प्रकार निर्जरा दो प्रकार की **(णेया)** जाननी चाहिए।

सव्वस्स कम्मणो जो, खयहेदू अप्पणो हु परिणामो।
णेओ स भावमोक्खो, दव्वविमोक्खो य कम्मपुहभावो ॥३७॥

अन्वयार्थ–(हु) निश्चय से **(अप्पणो)** आत्मा का **(जो परिणामो)** जो परिणाम **(सव्वस्स कम्मणो)** समस्त कर्मों के **(खयहेदू)** क्षय का कारण है **(स)** वह **(भावमोक्खो)** भावमोक्ष है **(य)** और **(कम्मपुहभावो)** ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्मों का पृथक् हो जाना **(दव्वविमोक्खो)** द्रव्यमोक्ष **(णेओ)** जानना चाहिए।

सुहअसुहभावजुत्ता, पुण्णं पावं हवंति खलु जीवा।
सादं सुहाउ णामं, गोदं पुण्णं पराणि पावं च ॥३८॥

अन्वयार्थ—(खलु) निश्चय से **(सुहअसुहभावजुत्ता)** शुभ व अशुभ भाव से युक्त **(जीवा)** जीव **(पुण्णं पावं)** पुण्य और पापरूप **(हवंति)** होते हैं **(सादं)** सातावेदनीय **(सुहाउ णामं गोदं)** शुभ आयु, शुभनाम तथा उच्चगोत्र ये सब कर्म प्रकृतियाँ **(पुण्णं)** पुण्यरूप हैं **(च)** और **(पराणि पावं)** अन्य शेष सब कर्म प्रकृतियाँ पापरूप हैं।

सम्मद्दंसण-णाणं, चरणं मोक्खस्स कारणं जाणे।
ववहारा णिच्छ्यदो, तत्तिय-मइओ णिओ अप्पा ॥३९॥

अन्वयार्थ—(ववहारा) व्यवहारनय से **(सम्मद्दंसण-णाणं चरणं)** सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्र को तथा **(णिच्छ्यदो)** निश्चयनय से **(तत्तिय- मइओ)** इन तीनों स्वरूप वाले **(णिओ अप्पा)** निज आत्मा को ही **(मोक्खस्स कारणं)** मोक्ष का कारण **(जाणे)** जानो।

रयणत्तयं ण वट्टइ, अप्पाणं मुइत्तु अण्णदवियम्हि।
तम्हा तत्तियमइयो, होदि हु मोक्खस्स कारणं आदा ॥४०॥

अन्वयार्थ—(रयणत्तयं) रत्नत्रयरूप धर्म **(अप्पाणं मुइत्तु)** आत्मा को छोड़कर **(अण्ण-दवियम्हि)** अन्य द्रव्य में **(ण वट्टइ)** नहीं रहता **(तम्हा)** इस कारण से **(तत्तियमइयो आदा)** इन तीनों मय अर्थात् सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक् चारित्र सहित आत्मा ही **(हु)** निश्चय से **(मोक्खस्स कारणं)** मोक्ष का कारण **(होदि)** होती है।

जीवादी-सद्दहणं, सम्मत्तं रूवमप्पणो तं तु।
दुरभिणिवेसविमुक्कं, णाणं सम्मं खु होदि सदि जम्हि ॥४१॥

अन्वयार्थ—(जीवादी-सद्दहणं) जीवादि सात तत्त्वों का यथार्थ श्रद्धान करना **(सम्मत्तं)** सम्यक्त्व है **(तं)** वह **(अप्पणो रूवं)** आत्मा का स्वभाव है **(तु)** और **(जम्हि)** जिस सम्यग्दर्शन के **(सदि)** होने पर **(णाणं)** ज्ञान **(खु)** निश्चय से **(दुरभिणिवेसविमुक्कं)** विपरीत अभिप्राय अर्थात् संशय, विपर्यय, अनध्यवसाय से रहित होता हुआ **(सम्मं होदि)** सम्यग्ज्ञान हो जाता है।

संसय-विमोह-विब्भम,-विवज्जियं अप्पपरसरूवस्स।
गहणं सम्मण्णाणं, सायार-मणेय-भेयं च ॥४२॥

अन्वयार्थ—(संसयविमोहविब्भम-विवज्जियं) संशय—अनेक कोटि को

स्पर्श करने वाला संदेहात्मक ज्ञान, विपर्यय–वस्तु धर्म के विपरीत परिचय कराने वाला ज्ञान और अनध्यवसाय–पदार्थ के विषय में कुछ भी निर्णय नहीं होने रूप ज्ञान इन तीन दोषों से रहित **(अप्पपरसरूवस्स)** अपने आत्मा के तथा पर पदार्थों के स्वरूप का **(गहणं)** ग्रहण करना **(सम्मण्णाणं)** सम्यग्ज्ञान है यह ज्ञान **(सायारं)** साकार/सविकल्प **(च)** और **(अणेयभेयं)** अनेक भेद वाला है।

जं सामण्णं गहणं, भावाणं णेव कट्टुमायारं।
अविसेसिदूण अट्ठे, दंसणमिदि भण्णए समए ॥४३॥

अन्वयार्थ–(अट्ठे) पदार्थों के विषय में **(आयारं)** आकार/विकल्प/भेद को **(णेव कट्टु)** न करके **(जं)** जो **(अविसेसिदूण)** काला–नीला, छोटा–बड़ा, घट–पट आदि विशेषताओं से रहित **(भावाणं)** पदार्थों का **(सामण्णं)** सामान्य **(गहणं)** ग्रहण करना **(समए)** शास्त्र में **(दंसणं)** दर्शन **(इदि)** इस प्रकार **(भण्णए)** कहा गया है।

दंसणपुव्वं णाणं, छदुमत्थाणं ण दुण्णि उवओगा।
जुगवं जम्हा केवलि,–णाहे जुगवं तु ते दो वि ॥४४॥

अन्वयार्थ–(छदुमत्थाणं) छद्मस्थ जीवों के **(दंसणपुव्वं णाणं)** दर्शनपूर्वक ज्ञान होता है **(जम्हा)** क्योंकि छद्मस्थों के **(दुण्णि)** दोनों **(उवओगा)** उपयोग **(जुगवं)** एक साथ **(ण)** नहीं होते हैं **(तु)** किन्तु **(केवलिणाहे)** केवलीभगवान् में **(ते दो वि)** वे दोनों ही उपयोग **(जुगवं)** एक साथ होते हैं।

असुहादो विणिवित्ती, सुहे पवित्ती य जाण चारित्तं।
वदसमिदिगुत्तिरूवं, ववहारणया दु जिणभणियं ॥४५॥

अन्वयार्थ–(ववहारणया) व्यवहारनय से **(असुहादो विणिवित्ती)** अशुभ क्रियाओं से निवृत्तिरूप **(य)** और **(सुहे पवित्ति)** शुभ क्रियाओं में प्रवृत्तिरूप **(जिणभणियं)** जिनेन्द्रदेव के द्वारा कहा हुआ **(चारित्तं जाण)** चारित्र जानो **(दु)** और वह चारित्र **(वदसमिदिगुत्तिरूवं)** व्रत, समिति और गुप्तिरूप है।

बहिरब्भंतर–किरिया,–रोहो भवकारणप्पणासट्ठं।
णाणिस्स जं जिणुत्तं, तं परमं सम्मचारित्तं ॥४६॥

अन्वयार्थ–(भवकारणप्पणासट्ठं) संसार के कारणों का नाश करने के लिए **(णाणिस्स)** ज्ञानीजीव के **(बहिरब्भंतर-किरिया-रोहो)** बाह्य तथा आभ्यंतर क्रियाओं का निरोध **(जं जिणुत्तं)** जो जिनेन्द्रदेव ने कहा है **(तं परमं सम्मचारित्तं)** वह परम निश्चय सम्यक्चारित्र है।

दुविहं पि मोक्खहेउं, झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा।
तम्हा पयत्तचित्ता, जूयं झाणं समब्भसह ॥४७॥

अन्वयार्थ–(जं) जिस कारण से **(मुणी)** आत्मज्ञानी मुनि **(दुविहं पि)** दोनों प्रकार के ही **(मोक्खहेउं)** मोक्ष के कारणों को **(झाणे)** ध्यान में **(णियमा)** नियम से **(पाउणदि)** प्राप्त कर लेता है **(तम्हा)** उस कारण से **(पयत्तचित्ता)** प्रयत्नचित्त होते हुए **(जूयं)** तुम सब **(झाणं)** ध्यान का **(समब्भसह)** अच्छे प्रकार से अभ्यास करो।

मा मुज्झह मा रज्जह, मा दुस्सह इट्ठणिट्ठअत्थेसु।
थिरमिच्छह (हि) जइ चित्तं, विचित्त-झाणप्पसिद्धीए ॥४८॥

अन्वयार्थ–(विचित्त-झाणप्पसिद्धीए) अनेक प्रकार के ध्यानों की सिद्धि के लिये **(जइ चित्तं)** यदि चित्त को **(थिरं इच्छह (हि))** स्थिर करना चाहते हो तो **(इट्ठणिट्ठअत्थेसु)** इष्ट, अनिष्ट पदार्थों में **(मुज्झह मा)** मोह मत करो **(रज्जह मा)** राग मत करो और **(दुस्सह मा)** द्वेष मत करो।

पणतीस सोल छप्पण, चदु दुगमेगं च जवह झाएह।
परमेट्ठि-वाचयाणं, अण्णं च गुरुवएसेण ॥४९॥

अन्वयार्थ–(गुरुवएसेण) गुरुओं के उपदेश से **(परमेट्ठि-वाचयाणं)** परमेष्ठियों के वाचक **(पणतीस)** पैंतीस **(सोल)** सोलह **(छप्पण)** छह, पाँच **(चदु दुगं)** चार, दो **(च)** और **(एगं)** एक अक्षर के मन्त्र को तथा **(अण्णं च)** अन्य भी मन्त्रों को **(जवह झाएह)** जपो और ध्यान करो।

णट्ठ-चदुघाइ-कम्मो, दंसण-सुह-णाण-वीरिय-मइओ।
सुह-देहत्थो अप्पा, सुद्धो अरिहो विचिंतिज्जो ॥५०॥

अन्वयार्थ–(णट्ठ-चदुघाइकम्मो) नष्ट कर दिये हैं चार घातिया कर्म जिन्होंने ऐसे **(दंसणसुहणाणवीरियमइओ)** अनन्तदर्शन, अनन्तसुख, अनन्तज्ञान व अनन्तवीर्य से सहित **(सुह-देहत्थो)** शुभ, परम औदारिक शरीर में स्थित **(सुद्धो अप्पा)** अठारह दोषों से रहित शुद्ध, आत्मा

(अरिहो) अरिहन्त परमेष्ठी हैं वे **(विचिंतिज्जो)** विशेष चिंतन/ध्यान के योग्य हैं।

णट्ठट्ठ-कम्मदेहो, लोयालोयस्स जाणओ दट्ठा।
पुरिसायारो अप्पा, सिद्धो झाएह लोय-सिहरत्थो ॥५१॥

अन्वयार्थ—(णट्ठट्ठ-कम्मदेहो) नष्ट हो गए हैं आठकर्म और औदारिक आदि शरीर जिनका **(लोयालोयस्स)** लोक और अलोक को **(जाणओ दट्ठा)** जानने देखने वाला **(लोयसिहरत्थो)** लोक के शिखर पर स्थित **(पुरिसायारो)** जिस पुरुष देह से मोक्ष हुआ है उस पुरुष के आकार वाला **(अप्पा)** आत्मा **(सिद्धो)** सिद्ध परमेष्ठी है उसका **(झाएह)** ध्यान करो।

दंसणणाणपहाणे, वीरिय-चारित्त-वर-तवायारे।
अप्पं परं च जुंजइ, सो आयरिओ मुणी झेओ ॥५२॥

अन्वयार्थ—जो **(मुणी)** मुनि **(दंसणणाणपहाणे)** दर्शनाचार और ज्ञानाचार की प्रधानता वाले **(वीरिय-चारित्त-वर-तवायारे)** वीर्याचार, चारित्राचार व श्रेष्ठ तपाचार में **(अप्पं च परं)** अपने को व दूसरों को **(जुंजइ)** जोड़ता/लगाता है **(सो आइरिओ)** वह आचार्य परमेष्ठी **(झेओ)** ध्यान करने योग्य है।

जो रयणत्तय-जुत्तो, णिच्चं धम्मोवदे (ए) सणे णिरदो।
सो उवझाओ अप्पा, जदिवरवसहो णमो तस्स ॥५३॥

अन्वयार्थ—(जो) जो **(रयणत्तयजुत्तो)** रत्नत्रय से युक्त **(णिच्चं धम्मोवदेसणे णिरदो)** हमेशा मुनि आदि को धर्म का उपदेश करने में निरत/तत्पर है **(सो जदिवरवसहो)** वह मुनिवरों में प्रधान **(अप्पा)** आत्मा **(उवझाओ)** उपाध्याय परमेष्ठी है **(तस्स णमो)** उसको नमस्कार हो।

दंसण-णाण-समग्गं, मग्गं मोक्खस्स जो हु चारित्तं।
साधयदि णिच्चसुद्धं, साहू सो मुणी णमो तस्स ॥५४॥

अन्वयार्थ—(जो) जो **(मुणी)** मुनि **(मोक्खस्स मग्गं)** मोक्ष के मार्गभूत **(दंसण-णाण-समग्गं)** सम्यग्दर्शन ज्ञान से परिपूर्ण **(णिच्चसुद्धं)** सदा शुद्ध अर्थात् रागादि रहित **(चारित्तं)** चारित्र को **(हु)** निश्चय से **(साधयदि)** साधता है **(सो साहू)** वह साधु परमेष्ठी है **(तस्स णमो)** उसको नमस्कार

हो।

जं किंचिवि चिंतंतो, णिरीहवित्ती हवे जदा साहू।
लद्धूण य एयत्तं, तदाहु तं तस्स णिच्छयं झाणं ॥५५॥

अन्वयार्थ–(य) और वह **(साहू)** साधु **(जदा)** जिस समय **(जं किंचिवि)** जो कुछ भी **(चिंतंतो)** चिंतन करता हुआ **(एयत्तं)** एकाग्रता को **(लद्धूण)** प्राप्त करके **(णिरीहवित्ती)** इच्छा रहित **(हवे)** होता है **(तदा)** उस समय **(तस्स)** उस साधु का **(तं)** वह **(णिच्छयं झाणं)** निश्चय ध्यान है ऐसा **(आहु)** तीर्थंकरदेव कहते हैं।

मा चिट्ठह मा जंपह, मा चिंतह किंवि जेण होइ थिरो।
अप्पा अप्पम्मि रओ, इणमेव परं हवे झाणं ॥५६॥

अन्वयार्थ–(किंवि) कुछ भी **(चिट्ठह मा)** चेष्टा मत करो **(जंपह मा)** बोलो मत **(चिंतह मा)** चिंतन/विचार मत करो **(जेण)** जिससे **(अप्पा अप्पम्मि)** आत्मा आत्मा में **(रओ)** रत होता हुआ **(थिरो हवे)** स्थिर होवे **(इणं एव)** यह ही **(परं झाणं)** परम ध्यान **(होइ)** होता है।

तव-सुद-वदवं चेदा, झाणरहधुरंधरो हवे जम्हा।
तम्हा तत्तिय-णिरदा, तल्लद्धीए सदा होह ॥५७॥

अन्वयार्थ–(जम्हा) जिस कारण से **(तवसुदवदवं)** तप, श्रुत और व्रत वाली **(चेदा)** आत्मा **(झाणरहधुरंधरो)** ध्यानरूपी रथ की धुरी को धारण करने वाली **(हवे)** होती है **(तम्हा)** उस कारण से **(तल्लद्धीए)** उस ध्यान की प्राप्ति के लिये **(सदा)** हमेशा **(तत्तियणिरदा)** तप, श्रुत और व्रत इन तीनों में निरत **(होह)** होओ।

दव्वसंगहमिणं मुणिणाहा,दोससंचयचुदा (या) सुदपुण्णा।
सोधयंतु तणुसुत्तधरेण, णेमिचंदमुणिणा भणियं जं ॥५८॥

अन्वयार्थ–(तणुसुत्तधरेण) अल्पश्रुत को धारण करने वाले **(णेमिचंद-मुणिणा)** मुझ नेमिचन्द्र मुनि के द्वारा **(जं इणं दव्वसंगहं भणियं)** जो यह द्रव्यसंग्रह ग्रन्थ कहा गया है इसको **(दोससंचयचुदा**(या)) दोषों के समूह से रहित **(सुदपुण्णा)** श्रुत में परिपूर्ण **(मुणिणाहा)** मुनियों के नाथ बहुश्रुत ज्ञाता गुरुजन **(सोधयंतु)** शुद्ध करें।

❑ ❑ ❑

प्रश्नोत्तर-रत्नमालिका

प्रणिपत्य वर्द्धमानं प्रश्नोत्तर-रत्नमालिकां वक्ष्ये।
नागनरामरवन्द्यं देवं देवाधिपं वीरम् ॥१॥

अन्वयार्थ—(नागनरामरवन्द्यं) नागेन्द्र, मनुष्य और देवों से वंदनीय **(देवं)** स्वयं देवस्वरूप **(देवाधिपम्)** देवों के अधिपति **(वीरम्)** वीर **(वर्द्धमानं)** वर्द्धमान भगवान् को **(प्रणिपत्य)**नमस्कार करके **(प्रश्नोत्तर-रत्नमालिकां)** प्रश्नोत्तर रत्नमालिका को **(वक्ष्ये)** कहूँगा।

कः खलु नालंक्रियते दृष्टादृष्टार्थ - साधनपटीयान्।
कण्ठस्थितया विमलप्रश्नोत्तररत्नमालिकया ॥२॥

अन्वयार्थ—(कण्ठस्थितया) कण्ठ में स्थित **(विमल प्रश्नोत्तर-रत्न-मालिकया)** अच्छे प्रश्न-उत्तर की रत्नमाला से **(दृष्टा-दृष्टार्थ साधन-पटीयान्)** दृष्ट और अदृष्ट अर्थ को साधने में प्रवीण **(कः)** कौन व्यक्ति **(न खलु अलंक्रियते)** विभूषित नहीं होगा? अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति होगा।

भगवन् किमुपादेयं गुरुवचनं हेयमपि च किमकार्यम्।
को गुरुरधिगततत्त्वः सत्त्वहिताभ्युद्यतः सततम् ॥३॥

अन्वयार्थ—(भगवन्) हे भगवन्! **(किम्)** क्या **(उपादेयम्)** उपादेय है? **(गुरुवचनम्)** गुरु वचन उपादेय हैं **(च)** और **(हेयम् अपि)** हेय भी **(किम्)** क्या है? **(अकार्यम्)** नहीं करने योग्य कार्य हेय हैं **(गुरुः)** गुरु **(कः)** कौन है? **(अधिगत तत्त्वः)** जिसने तत्त्वों को समझ लिया है, वह तथा **(सततम्)** जो निरंतर **(सत्त्व-हिताभ्युद्यतः)** सभी प्राणियों के हित में लगा रहता है।

त्वरितं किं कर्त्तव्यं विदुषा संसार-सन्ततिच्छेदः।
किं मोक्षतरोर्बीजं सम्यग्ज्ञानं क्रियासहितम् ॥४॥

अन्वयार्थ—(विदुषा) बुद्धिमान् व्यक्ति के द्वारा **(त्वरितं)** शीघ्र **(किम्)** क्या **(कर्त्तव्यम्)** करना चाहिए ? **(संसार सन्ततिच्छेदः)** संसार सन्तति का छेद करना चाहिए **(मोक्षतरोः)** मोक्षरूपी वृक्ष का **(बीजम्)** बीज **(किम्)** क्या है? **(सम्यग्ज्ञानम्)** वह सम्यग्ज्ञान जो **(क्रिया सहितम्)** क्रिया से सहित है।

किं पथ्यदनं धर्मः कः शुचिरिह यस्य मानसं शुद्धम्।
कः पण्डितो विवेकी किं विषमवधीरिता गुरवः ॥५॥

अन्वयार्थ–(पथि) मार्ग में **(अदनम्)** भोजन **(किम्)** क्या है? **(धर्मः)** धर्म है। **(इह)** इहलोक में **(शुचिः)** पवित्र **(कः)** कौन है? **(यस्य)** जिसका **(मानसं शुद्धम्)** मानस शुद्ध है। **(कः पण्डितः)** पण्डित कौन है **(विवेकी)** विवेकी जीव, **(किं विषम्)** जहर क्या है? **(गुरवः अवधीरिताः)** गुरुओं का तिरस्कार।

किं संसारे सारं बहुशोऽपि विचिन्त्यमानमिदमेव।
मनुजेषु दृष्टतत्त्वं स्वपरहितायोद्यतं जन्म ॥६॥

अन्वयार्थ–(संसारे) संसार में **(सारं किम्)** सार क्या है? **(बहुशः अपि)** बहुत बार भी **(विचिन्त्यमानम्)** चिन्तन करते हुए **(इदम् एव)** यह ही है कि **(मनुजेषु जन्म)** मनुष्य जन्म पाकर **(दृष्ट तत्त्वम्)** तत्त्वदर्शी होते हुए **(स्व-पर-हिताय)** स्व-पर हित के लिए **(उद्यतं)** उद्यत रहना।

मदिरेव मोहजनकः कः स्नेहः के च दस्यवो विषया।
का भववल्ली तृष्णा को वैरी नन्वनुद्योगः ॥७॥

अन्वयार्थ–(मदिरा इव) मदिरा के समान **(मोहजनकः)** मोह उत्पन्न करने वाला **(कः)** कौन है? **(स्नेहः)** स्नेह है। **(के च दस्यवः)** और लुटेरे कौन हैं? **(विषयाः)** विषय हैं। **(भववल्ली)** संसार की लता **(का)** क्या है? **(तृष्णा)** तृष्णा है **(वैरी कः)** कौन वैरी है **(ननु)** वास्तव में **(अनुद्योगः)** पुरुषार्थ (उद्योग) नहीं करना ही अपना दुश्मन है।

कस्माद्भयमिह मरणादन्धादपि को विशिष्यते रागी।
कः शूरो यो ललनालोचनबाणैर्न च व्यथितः ॥८॥

अन्वयार्थ–(इह) इस लोक में **(कस्मात् भयम्)** भय किससे है ? **(मरणात्)** मरण से है। **(अन्धात् अपि)** अंधे से भी **(कः)** कौन **(विशिष्यते)** बढ़कर है ? **(रागी)** रागी जीव। **(कः शूरः)** शूर कौन है ? **(यः)** जो **(ललना-लोचन-बाणैः)** स्त्री के नेत्ररूपी बाणों से **(न च व्यथितः)** पीड़ित नहीं हुआ।

पातुं कर्णाञ्जलिभिःकिममृतमिव बुध्यते सदुपदेशः।
किं गुरुताया मूलं यदेतदप्रार्थनं नाम ॥९॥

अन्वयार्थ–(कर्णाञ्जलिभिः) कर्णरूपी अञ्जलि से **(पातुम्)** पीने के लिए **(अमृतम् इव)** अमृत के समान **(किम् बुध्यते)** क्या जाना जाता है **(सदुपदेशः)** सदुपदेश। **(गुरुतायाः मूलम्)** बड़प्पन का मूल कारण **(किम्)** क्या है? **(एतत् यत्)** यह कि **(अप्रार्थनम् नाम)** अयाचकवृत्ति।

किं गहनं स्त्रीचरितं कश्चतुरो यो न खण्डितस्तेन।
किं दारिद्र्यमसंतोष एव किं लाघवं याञ्चा ॥१०॥

अन्वयार्थ–(किं गहनम्) जानने में जटिल क्या है? **(स्त्री-चरितम्)** स्त्री का चरित्र। **(कः चतुरः)** कौन चतुर है? **(यः)** जो **(तेन)** उस स्त्री के चरित्र से **(न खण्डितः)** टूटा नहीं। **(किं दारिद्र्यम्)** दरिद्रता क्या है? **(असंतोषः)** असंतोष है। **(एवं)** इसी प्रकार **(किं लाघवम्)** लघुता क्या है? **(याञ्चा)** याचना।

किं जीवितमनवद्यं किं जाड्यं पाटवेऽप्यनभ्यासः।
को जागर्ति विवेकी का निद्रा मूढता जन्तोः ॥११॥

अन्वयार्थ–(किं जीवितम्) जीवन क्या है? **(अनवद्यम्)** दूषण रहित होना। **(जाड्यं किम्)** जड़ता क्या है? **(पाटवे अपि अनभ्यासः)** चतुर होने पर भी अभ्यास नहीं करना। **(कः जागर्ति)** कौन जाग्रत है? **(विवेकी)** विवेकी जीव। **(का निद्रा)** निद्रा क्या है? **(जन्तोः)** प्राणी की **(मूढता)** मूढ़ता।

नलिनीदलगतजललवतरलं किं यौवनं धनमथायुः।
के शशधरकरनिकरा-नुकारिणः सज्जना एव ॥१२॥

अन्वयार्थ–(नलिनी-दल-गत-जल-लव-तरलम्) कमल के पत्ते पर छोटी बूँदों के समान क्षणभंगुर **(किम्)** क्या है? **(यौवनम्)** यौवन **(धनम्)** धन **(अथ)** और **(आयुः)** आयु है। **(शश-धर-कर-निकरा-नुकारिणः)** चन्द्रमा की किरणों के समूहों का अनुकरण करने वाले **(के)** कौन हैं? **(सज्जना एव)** सज्जन पुरुष ही हैं।

को नरकः परवशता किं सौख्यं सर्वसङ्गविरतिर्या।
किं सत्यं भूतहितं किं प्रेयः प्राणिनामसवः ॥१३॥

अन्वयार्थ–(कः नरकः) नरक क्या है? **(परवशता)** पराधीन होना। **(सौख्यं किम्)** सुख क्या है? **(या)** जो **(सर्व-सङ्ग-विरतिः)** समस्त

परिग्रह से विरति है, वह सुख है। **(सत्यं किम्)** सत्य क्या है? **(भूतहितम्)** प्राणियों का हित करना। **(प्रेयः किम्)** प्रिय वस्तु क्या है? **(प्राणिनाम् असवः)** प्राणियों को अपने प्राण।

किं दानमनाकाङ्क्षं किं मित्रं यन्निवर्तयति पापात्।
कोऽलङ्कारः शीलं, किं वाचां मण्डनं सत्यम् ॥१४॥

अन्वयार्थ–(दानं किम्) दान क्या है? **(अनाकाङ्क्षम्)** आकांक्षा से रहित होकर देना ही दान है। **(मित्रं किम्)** मित्र कौन है? **(यत् पापात्)** जो पाप से **(निवर्तयति)** रोकता है। **(अलङ्कारः कः)** आभूषण क्या है? **(शीलम्)** शील है। **(वाचां)** वचनों का **(मण्डनं किम्)** आभूषण क्या है? **(सत्यम्)** सत्य है।

किमनर्थफलं मानसमसंगतं का सुखावहा मैत्री।
सर्वव्यसनविनाशे को दक्षः सर्वथा त्यागः ॥१५॥

अन्वयार्थ–(अनर्थ फलम् किम्) अनर्थ का फल क्या है? **(असंगतं मानसम्)** मन का व्यथित होना। **(सुखावहा का)** सुख देने वाली चीज क्या है? **(मैत्री)** मैत्री भावना। **(सर्व-व्यसन-विनाशे)** समस्त दुखों के नाश में **(कः दक्षः)** कौन समर्थ है? **(सर्वथा त्यागः)** सर्व प्रकार से त्याग करना।

कोऽन्धो योऽकार्यरतः को बधिरो यः शृणोति न हितानि।
को मूको यः काले प्रियाणि वक्तुं न जानाति ॥१६॥

अन्वयार्थ–(अन्धः कः) अन्धा कौन है? **(यः)** जो **(अकार्यरतः)** अयोग्य/ निंद्य कार्य में लगा है। **(कः बधिरः)** बहरा कौन है? **(यः)** जो **(हितानि)** हित को **(न शृणोति)** नहीं सुनता है। **(मूकः)** गूंगा **(कः)** कौन है? **(यः)** जो **(काले)** समय पर **(प्रियाणि वक्तुम्)** प्रिय बोलना **(न जानाति)** नहीं जानता है।

किं मरणं मूर्खत्वं किं चानर्घ्यं यदवसरे दत्तम्।
आमरणात्किं शल्यं प्रच्छन्नं यत्कृतमकार्यम् ॥१७॥

अन्वयार्थ–(मरणम् किम्) मरण क्या है? **(मूर्खत्वम्)** मूर्खपना **(च)** और **(अनर्घ्यम् किम्)** बहुमूल्य क्या है? **(यदवसरे दत्तम्)** जो अवसर पर दिया जाये। **(आमरणात् किं शल्यम्)** मरण समय तक शल्य क्या

है? **(यत् अकार्यम्)** जो नहीं करने योग्य कार्य **(प्रच्छन्नं कृतम्)** गुप्त रीति से किया गया हो।

कुत्र विधेयो यत्नो विद्याभ्यासे सदौषधे दाने।
अवधीरणा क्व कार्या खलपरयोषित्परधनेषु ॥१८॥

अन्वयार्थ–(यत्नः) प्रयत्न **(कुत्र)** कहाँ **(विधेयः)** करना चाहिए? **(सदा)** हमेशा **(विद्याभ्यासे)** विद्या के अभ्यास में, **(औषधे दाने)** औषध दान में। **(अवधीरणा)** अनादर **(क्व)** कहाँ **(कार्या)** करना चाहिए? **(खल-परयोषित्-परधनेषु)** दुष्ट, परस्त्री और पर धन में।

काहर्निशमनुचिन्त्या संसारासारता न च प्रमदा।
का प्रेयसी विधेया करुणादाक्षिण्यमपि मैत्री ॥१९॥

अन्वयार्थ–(अहर्निशम्) रात-दिन **(का)** क्या **(अनुचिन्त्या)** चिन्तन करना चाहिए? **(संसारासारता)** संसार की असारता का **(न च प्रमदा)** स्त्री का नहीं। **(प्रेयसी विधेया का)** प्रेमिका किसे बनाना चाहिए? **(करुणा-दाक्षिण्यम् अपि)** करुणा, कुशलता और **(मैत्री)** मैत्री भाव को।

कण्ठगतैरप्यसुभिः कस्यात्मा नो समर्प्यते जातु।
मूर्खस्य विषादस्य च गर्वस्य तथा कृतघ्नस्य ॥२०॥

अन्वयार्थ–(कण्ठगतैः असुभिः अपि) कण्ठगत प्राण होने पर भी **(आत्मा)** अपने को **(कस्य)** किसे **(जातु न)** कभी भी **(समर्प्यते)** समर्पित **(न)** नहीं करना चाहिए? **(मूर्खस्य)** मूर्ख को **(विषादस्य च)** खेद-खिन्न पुरुष को **(गर्वस्य)** घमण्डी को **(तथा)** तथा **(कृतघ्नस्य)** कृतघ्न को।

कः पूज्यः सद्वृत्तः कमधनमाचक्षते चलितवृत्तम्।
केन जितं जगदेतत् सत्यतितिक्षावता पुंसा ॥२१॥

अन्वयार्थ–(पूज्यः कः) पूज्य कौन है? **(सद्वृत्तः)** सम्यक् चारित्र वाला। **(अधनम् कम् आचक्षते)** निर्धन किसे कहते हैं? **(चलितवृत्तम्)** जिसका चारित्र अस्थिर है। **(केन जितम् एतत् जगत्)** यह संसार किसने जीता? **(सत्य-तितिक्षावता पुंसा)** सत्य और सहनशील पुरुष ने।

कस्मै नमः सुरैरपि सुतरां क्रियते दया प्रधानाय।
कस्मादुद्विजितव्यं संसारारण्यतः सुधिया ॥२२॥

अन्वयार्थ—(सुरैः अपि) देवों के द्वारा **(कस्मै)** किसके लिए **(सुतराम्)** अच्छी तरह **(नमः क्रियते)** नमस्कार किया जाता है? **(दया प्रधानाय)** दया प्रधान पुरुष के लिए। **(सुधिया)** बुद्धिमान् को **(कस्मात्)** किससे **(उद्विजितव्यम्)** भीति होना चाहिए? **(संसार-रण्यतः)** संसाररूपी जंगल से।

कस्य वशे प्राणिगणः सत्यप्रियभाषिणो विनीतस्य।
क्व स्थातव्यं न्याय्ये पथि दृष्टादृष्टलाभाय ॥२३॥

अन्वयार्थ—(प्राणिगणः) प्राणी **(कस्य)** किसके **(वशे)** वश में होते हैं। **(सत्य-प्रिय-भाषिणः)** सत्य और प्रिय बोलने वाले के तथा **(विनीतस्य)** विनीत पुरुष के। **(दृष्टादृष्टलाभाय)** दृष्ट-अदृष्ट लाभ के लिए **(क्व)** कहाँ **(स्थातव्यम्)** रहना चाहिए? **(न्याय्ये पथि)** न्याय पथ में।

विद्युत्विलसितचपलं किं दुर्जनं संगतं युवतयश्च।
कुलशैलनिष्प्रकम्पाः के कलिकालेऽपि सत्पुरुषाः ॥२४॥

अन्वयार्थ—(विद्युत् विलसितचपलम् किम्) बिजली के समान चंचल क्या है ? **(दुर्जनम् संगतम्)** दुर्जन के साथ मैत्री **(च)** तथा **(युवतयः)** स्त्रियाँ हैं। **(कलिकाले अपि)** कलिकाल में भी **(कुलशैल-निष्प्रकम्पाः के)** कुलाचल पर्वत के समान निश्चल कौन है ? **(सत्पुरुषाः)** सज्जन पुरुष हैं।

किं शौच्यं कार्पण्यं सति विभवे किं प्रशस्यमौदार्यम्।
तनुतरवित्तस्य तथा प्रभविष्णोर्यत्सहिष्णुत्वम् ॥२५॥

अन्वयार्थ—(किं शौच्यम्) शोचनीय क्या है? **(कार्पण्यम्)** कृपणता **(सति विभवे किं प्रशस्यम्)** वैभव होने पर भी क्या प्रशंसनीय है? **(औदार्यम्)** उदारता **(तनुतरवित्तस्य)** निर्धन को भी क्या प्रशंसनीय है? **(तथा)** वही उदारता **(प्रभविष्णोः)** समर्थ पुरुष को क्या प्रशंसनीय है? **(यत् सहिष्णुत्वम्)** जो सहनशीलता है।

चिन्तामणिरिव दुर्लभ-मिह ननुकथयामि चतुर्भद्रम्।
किं तद्वदन्ति भूयो विधूत तमसो विशेषेण ॥२६॥

दानं प्रियवाक्यसहितं ज्ञानमगर्वं क्षमान्वितं शौर्यम्।
त्यागसहितं च वित्तं दुर्लभमेतच्चतुर्भद्रम् ॥२७॥

अन्वयार्थ–(चिन्तामणिः इव दुर्लभम्) चिन्तामणि रत्न के समान दुर्लभ **(इह)** इस संसार में **(किम्)** क्या है? **(ननु)** निश्चय से **(चतुर्भद्रम्)** चार भद्र हैं। **(विधूततमसः)** अज्ञान अंधकार से रहित जन **(विशेषेण)** विशेष रूप से **(तद् वदन्ति)** उसी का कथन **(भूयः)** खूब करते हैं **(कथयामि)** उसी को मैं कहता हूँ। **(प्रियवाक्यसहितम्)** प्रिय वचनों के साथ **(दानम्)** दान, **(अगर्वं)** गर्व रहित **(ज्ञानम्)** ज्ञान, **(क्षमान्वितम्)** क्षमा सहित **(शौर्यम्)** शौर्य **(च)** और **(त्यागसहितम्)** त्याग के साथ **(वित्तम्)** धन **(एतत्)** यह **(चतुर्भद्रम्)** चार कल्याणप्रद **(दुर्लभम्)** दुर्लभ हैं।

इति कण्ठगता विमला प्रश्नोत्तर रत्नमालिका येषाम्।
ते मुक्ताभरणा अपि विभान्ति विद्वत्समाजेषु ॥२८॥
विवेकात् त्यक्तराज्येन राज्ञेयं रत्नमालिका।
रचिताऽमोघवर्षेण सुधियां सदलंकृतिः ॥२९॥

अन्वयार्थ– (इति) इस प्रकार **(येषाम्)** जिन व्यक्तियों को **(विमला)** यह निर्मल **(प्रश्नोत्तर-रत्नमालिका)** प्रश्नोत्तर रत्नमाला **(कण्ठगता)** कण्ठगत हो जाती है **(ते)** वे लोग **(मुक्ताभरणाः अपि)** आभरण से रहित होते हुए भी **(विद्वत्समाजेषु)** विद्वानों की सभा में **(विभान्ति)** सुशोभित होते हैं। **(विवेकात्)** विवेक से **(त्यक्त राज्येन)** जिन्होंने राज्य छोड़ दिया है **(राज्ञा)** उस राजा **(अमोघवर्षेण)** अमोघवर्ष के द्वारा **(सुधियाम्)** बुद्धिमानों के लिए **(सत् अलंकृतिः)** उत्तम आभूषण रूप **(इयम्)** यह कृति **(रचिता)** रची है।

❑ ❑ ❑

समाधितन्त्र

येनात्माबुध्यतात्मैव परत्वेनैव चापरम्।
अक्षयानन्तबोधाय तस्मै सिद्धात्मने नमः॥१॥

अन्वयार्थ—(येन) जिसके द्वारा **(आत्मा)** आत्मा **(आत्मा एव)** आत्मारूप से ही **(च)** और **(अपरं)** दूसरे पदार्थ/कर्मजनित मनुष्य आदि पर्यायरूप पुद्गल को **(परत्वेन एव)** पररूप से ही **(अबुध्यत)** जाना गया है **(तस्मै)** उन **(अक्षयानन्तबोधाय)** अविनाशी अनन्तज्ञानस्वरूप **(सिद्धात्मने)** सिद्धात्मा के लिए **(नमः)** नमस्कार हो।

जयन्ति यस्यावदतोऽपि भारती-
विभूतयस्तीर्थकृतोप्यनीहितुः ।
शिवाय धात्रे सुगताय विष्णवे
जिनाय तस्मै सकलात्मने नमः॥२॥

अन्वयार्थ—(तीर्थकृतः अपि) तीर्थंकर होते हुए भी **(अनीहितुः)** इच्छा रहित **(अवदतः अपि)** नहीं बोलते हुए भी—तालु, ओष्ठ आदि के शब्दों का उच्चारण न करते हुए भी **(यस्य)** जिनकी **(भारतीविभूतयः)** वाणीरूपी विभूतियाँ—वाणी और छत्र त्रयादिक विभूतियाँ **(जयन्ति)** जय को प्राप्त होती हैं **(तस्मै)** उन **(शिवाय)** कल्याणस्वरूप शिव के लिए **(धात्रे)** विधाता—ब्रह्मरूप—सन्मार्ग के उपदेश द्वारा लोक के उद्धारक के लिये **(सुगताय)** सुगतरूप—सद्बुद्धि एवं सद्गति को प्राप्त/सर्वज्ञ के लिए **(विष्णवे)** विष्णुरूप—केवलज्ञान के द्वारा समस्त पदार्थों में व्याप्त रहने वाले/ जानने वाले के लिए **(जिनाय)** जिनरूप—संसार परिभ्रमण के कारणभूत कर्मशत्रुओं को जीतने वाले/जिन के लिए **(सकलात्मने)** अरिहंत परमेष्ठी के लिए **(नमः)** नमस्कार हो।

श्रुतेन लिङ्गेन यथात्मशक्ति समाहितान्तःकरणेन सम्यक्।
समीक्ष्य कैवल्य-सुखस्पृहाणां विविक्तमात्मानमथाभिधास्ये॥३॥

अन्वयार्थ—(श्रुतेन) शास्त्र के द्वारा **(लिङ्गेन)** अनुमान वा हेतु के द्वारा **(यथात्मशक्ति)** अपनी शक्ति के अनुसार **(समाहितान्तःकरणेन)** मन की एकाग्रता से **(सम्यक्)** अच्छी तरह **(समीक्ष्य)** परीक्षा/अनुभव करके **(कैवल्य-सुखस्पृहाणां)** केवलज्ञान और सुख की इच्छा करने वालों को

(अथ) अब मैं पूज्यपाद आचार्य **(विविक्तं आत्मानं)** पर द्रव्यों से पृथक्–कर्ममल रहित आत्मा के शुद्ध स्वरूप को **(अभिधास्ये)** कहूँगा।

बहिरन्तः परश्चेति त्रिधात्मा सर्वदेहिषु।
उपेयात्तत्र परमं मध्योपायाद् बहिस्त्यजेत् ॥४॥

अन्वयार्थ–(सर्वदेहिषु) सभी देहधारियों में **(बहिः)** बहिरात्मा **(अन्तः)** अन्तरात्मा **(च)** और **(परः)** परमात्मा **(इति)** इस प्रकार **(त्रिधात्मा)** तीन प्रकार की आत्मा है **(तत्र)** उसमें–आत्मा के उन तीन भेदों में से **(मध्योपायात्)** मध्यम अर्थात् अन्तरात्मा के उपाय द्वारा **(परमं)** उत्कृष्ट अर्थात् परमात्मपने को **(उपेयात्)** प्राप्त होओ और **(बहिः)** बहिरात्मा को **(त्यजेत्)** त्याग दो।

बहिरात्मा शरीरादौ जातात्मभ्रान्तिरान्तरः।
चित्तदोषात्मविभ्रान्तिः परमात्माऽतिनिर्मलः॥५॥

अन्वयार्थ–(शरीरादौ) शरीर आदि में **(जातात्मभ्रान्तिः)** जिसे आत्म भ्रान्ति उत्पन्न हुई है वह **(बहिरात्मा)** बहिरात्मा है **(चित्तदोषात्मविभ्रान्तिः आन्तरः)** चित्त के, रागद्वेषादि दोषों के और आत्मा के विषय में अभ्रान्त रहने वाला–उनका ठीक विवेक रखने वाला अर्थात् चित्त को चित्तरूप से, दोषों को दोषरूप से और आत्मा को आत्मारूप से अनुभव करने वाला–अन्तरात्मा कहलाता है **(अति-निर्मलः परमात्मा)** अति निर्मल/सर्व कर्म मल से रहित परमात्मा है।

निर्मलः केवलः शुद्धो विविक्तः प्रभुरव्ययः।
परमेष्ठी परात्मेति परमात्मेश्वरो जिनः॥६॥

अन्वयार्थ– (निर्मलः) निर्मल–कर्मरूपी मल रहित है **(केवलः)** केवल–शरीरादि परद्रव्यों के सम्बन्ध से रहित है **(शुद्धः)** शुद्ध–द्रव्यकर्म व भावकर्म से रहित है **(विविक्तः)** विविक्त–शरीर और कर्मादि के स्पर्श से रहित है **(प्रभुः)** प्रभु–इन्द्रादिकों का स्वामी है **(अव्ययः)** अव्यय–अपने अनन्त चतुष्टयरूप स्वभाव से च्युत न होने वाला **(परमेष्ठी)** परमपद में स्थित है **(परात्मा)** परात्मा–संसारी जीवों से उत्कृष्ट आत्मा **(ईश्वरः)** ईश्वर–इन्द्रादिकों में नहीं पायी जाने वाली अन्तरंग व बहिरंग परमैश्वर्य से सदा सम्पन्न **(जिनः)** ज्ञानावरणादि सम्पूर्ण कर्म शत्रुओं को जीतने वाले

(इति परमात्मा) इस प्रकार ये परमात्मा के नाम हैं।

बहिरात्मेन्द्रियद्वारै - रात्मज्ञानपराङ्मुखः।
स्फुरितः स्वात्मनो देहमात्मत्वेनाध्यवस्यति॥७॥

अन्वयार्थ– (बहिरात्मा) बहिरात्मा जीव **(इन्द्रियद्वारैः)** इन्द्रियरूपी द्वारों से **(स्फुरितः)** बाह्य पदार्थों में लगा हुआ **(आत्मज्ञानपराङ्मुखः)** आत्मज्ञान से विमुख रहता है इसलिए **(स्वात्मनः)** अपने **(देहं)** शरीर को **(आत्मत्वेन)** आत्मरूप से **(अध्यवस्यति)** निश्चय करता है–अपनी आत्मा जानता है।

नरदेहस्थमात्मान - मविद्वान् मन्यते नरम्।
तिर्यञ्चं तिर्यगङ्गस्थं सुराङ्गस्थं सुरं तथा ॥८॥
नारकं नारकाङ्गस्थं न स्वयं तत्त्वतस्तथा।
अनन्तानन्तधीशक्तिः स्वसंवद्योऽचलस्थितिः॥९॥

अन्वयार्थ– (अविद्वान्) अज्ञानी/बहिरात्मा जीव **(नरदेहस्थं)** मनुष्य देह में स्थित **(आत्मानं)** आत्मा को **(नरं)** मनुष्य, **(तिर्यगङ्गस्थं)** तिर्यंच शरीर में रहने वाली आत्मा को **(तिर्यञ्चं)** तिर्यंच, **(सुराङ्गस्थं)** देव के शरीर में रहने वाली आत्मा को **(सुरं)** देव **(तथा)** तथा **(नारकाङ्गस्थं)** नारकी देह में स्थित आत्मा को **(नारकं)** नारकी **(मन्यते)** मानता है **(तत्त्वतः)** वस्तुतः–शुद्ध निश्चयनय की दृष्टि से **(तथा)** उस प्रकार **(स्वयं न)** वह आत्मा स्वयं नहीं होता है वह तो **(अनन्तानन्तधीशक्तिः)** अनन्तज्ञान और अनन्तशक्तिरूप वीर्य का धारक है, **(स्वसंवेद्यः)** स्वानुभवगम्य है–अपने द्वारा आप अनुभव किए जाने योग्य है **(अचलस्थितिः)** अपने उक्त स्वभाव से कभी च्युत न होने वाला–उसमें सदा स्थिर रहने वाला है।

स्वदेहसदृशं दृष्ट्वा परदेहमचेतनम्।
परात्माधिष्ठितं मूढः परत्वेनाध्यवस्यति ॥१०॥

अन्वयार्थ–(मूढः) अज्ञानी–बहिरात्मा **(परात्माधिष्ठितं)** अन्य की आत्मा सहित **(अचेतनं)** चेतना रहित **(परदेहं)** दूसरे के शरीर को **(स्वदेहसदृशं)** अपने शरीर के समान इन्द्रिय व्यापार तथा वचनादि व्यवहार करता हुआ **(दृष्ट्वा)** देखकर **(परत्वेन)** पर की आत्मारूप से **(अध्यवस्यति)** मान लेता है/जान लेता है।

स्वपराध्यवसायेन देहेष्वविदितात्मनाम्।
वर्तते विभ्रमः पुंसां पुत्रभार्यादिगोचरः॥११॥

अन्वयार्थ—(देहेषु) सभी के शरीरों में **(स्वपराध्यवसायेन)** अपनी और पर की आत्म मान्यता से **(अविदितात्मनां)** आत्मा के स्वरूप को नहीं जानने वाले **(पुंसां)** पुरुषों के **(पुत्रभार्यादिगोचरः)** पुत्र, स्त्री आदि सम्बन्धी **(विभ्रमः)** भ्रांति **(वर्तते)** होती है।

अविद्यासञ्ज्ञितस्तस्मात् संस्कारो जायते दृढः।
येन लोकोऽङ्गमेव स्वं पुनरप्यभिमन्यते॥१२॥

अन्वयार्थ— (तस्मात्) उस विभ्रम से **(अविद्यासञ्ज्ञितः)** अविद्या नाम का **(संस्कारः)** संस्कार **(दृढः)** दृढ़—मजबूत **(जायते)** हो जाता है **(येन)** जिसके कारण **(लोकः)** यह संसारी जीव—अज्ञानी जीव **(पुनरपि)** जन्मान्तर में भी **(अङ्गं एव)** शरीर को ही **(स्वं)** आत्मा **(अभिमन्यते)** मानता है।

देहे स्वबुद्धिरात्मानं युनक्त्येतेन निश्चयात्।
स्वात्मन्येवात्मधीस्तस्माद्वियोजयति देहिनम्॥१३॥

अन्वयार्थ— (देहे) शरीर में **(स्वबुद्धिः)** आत्मबुद्धि रखने वाला बहिरात्मा **(निश्चयात्)** निश्चय से **(आत्मानं)** अपनी आत्मा को **(एतेन)** शरीर के साथ **(युनक्ति)** जोड़ता—बाँधता है किन्तु **(स्वात्मनि एव)** अपनी आत्मा में ही **(आत्मधीः)** आत्मबुद्धि रखने वाला अन्तरात्मा **(देहिनं)** अपनी आत्मा को **(तस्मात्)** शरीर के सम्बन्ध से **(वियोजयति)** पृथक् करता है।

देहेष्वात्मधिया जाताः पुत्रभार्यादिकल्पनाः।
सम्पत्तिमात्मनस्ताभिर्मन्यते हा हतं जगत्॥१४॥

अन्वयार्थ— (देहेषु) अपने या दूसरों के शरीर में **(आत्मधिया)** आत्मबुद्धि होने से **(पुत्रभार्यादिकल्पनाः)** (मेरा) पुत्र, (मेरी) स्त्री आदि की कल्पनायें **(जाताः)** उत्पन्न होती हैं **(हा)** खेद है कि **(जगत्)** बहिरात्मरूप प्राणिगण **(ताभिः)** उन्हीं कल्पनाओं के कारण **(सम्पत्तिं)** (स्त्री, पुत्रादि की) समृद्धि को **(आत्मनः)** अपनी समृद्धि **(मन्यते)** मानता है और इस प्रकार यह जगत् **(हतम्)** नष्ट हो रहा है।

मूलं संसारदुःखस्य देह एवात्मधीस्ततः।
त्यक्त्वैनां प्रविशेदन्त - र्बहिरव्यापृतेन्द्रियः॥१५॥

अन्वयार्थ–(देहे) इस जड़ शरीर में **(आत्मधीः एव)** आत्मरूप बुद्धि का होना ही **(संसारदुःखस्य)** संसार के दुःखों का **(मूलं)** मूल कारण है **(ततः)** इस कारण **(एनां)** शरीर में आत्मत्व की मिथ्या कल्पना को–इस आत्मबुद्धि को **(त्यक्त्वा)** छोड़कर **(बहिः)** बाह्य विषयों में **(अव्यापृतेन्द्रियः)** इन्द्रियों की प्रवृत्ति को रोकता हुआ **(अन्तः)** अन्तरङ्ग में–आत्मा ही में **(प्रविशेत्)** प्रवेश करे।

मत्तश्च्युत्वेन्द्रियद्वारैः पतितो विषयेष्वहम्।
तान् प्रपद्याहमिति मां पुरा वेद न तत्त्वतः॥१६॥

अन्वयार्थ– (अहं) मैं **(पुरा)** अनादिकाल से **(मत्तः)** अपने आत्मस्वरूप से **(च्युत्वा)** स्खलित होकर **(इन्द्रियद्वारैः)** इन्द्रियरूपी द्वारों से **(विषयेषु)** विषयों में **(पतितः)** गिरा हुआ इस कारण **(तान्)** उन इन्द्रिय विषयों को **(प्रपद्य)** प्राप्त कर मैंने **(तत्त्वतः)** वास्तव में **(मां)** अपने स्वरूप–आत्मा को **(अहं इति)** मैं ही आत्मा हूँ इस रूप से **(न)** नहीं **(वेद)** जाना/विचारा–उस समय शरीर को ही आत्मा समझने के कारण मुझे आत्मा के यथार्थ स्वरूप का परिज्ञान नहीं हुआ।

एवं त्यक्त्वा बहिर्वाचं त्यजेदन्तरशेषतः।
एष योगः समासेन प्रदीपः परमात्मनः॥१७॥

अन्वयार्थ– (एवं) इस प्रकार **(बहिर्वाचं)** बाहरी वचनों को **(त्यक्त्वा)** छोड़कर **(अशेषतः)** पूर्ण रूप से **(अन्तर्)** अंतरंग वचन जल्पों को **(त्यजेत्)** त्याग देवें **(एषः)** यह **(योगः)** योग–स्वरूप में चित्तनिरोध–लक्षणात्मक समाधि **(समासेन)** संक्षेप से **(परमात्मनः)** परमात्मा के स्वरूप का **(प्रदीपः)** प्रकाशक है।

यन्मया दृश्यते रूपं तन्न जानाति सर्वथा।
जानन्न दृश्यते रूपं ततः केन ब्रवीम्यहम् ॥१८॥

अन्वयार्थ–(मया) मेरे द्वारा **(यत् रूपं)** जो इन्द्रियगोचर शरीरादिरूपी पदार्थ **(दृश्यते)** दिखाई देता है **(तत्)** वह अचेतन होने से **(सर्वथा)** सब प्रकार से **(न)** नहीं **(जानाति)** जानता है **(जानन्)** जानने वाले आत्मा का

(रूपं) रूप **(न दृश्यते)** दिखाई नहीं देता है **(ततः)** इसलिए **(अहम्)** मैं **(केन)** किससे **(ब्रवीमि)** बोलूँ।

यत्परैः प्रतिपाद्योऽहं यत्परान् प्रतिपादये।
उन्मत्तचेष्टितं तन्मे यदहं निर्विकल्पकः॥१९॥

अन्वयार्थ–(यत्) जो कुछ **(परैः)** दूसरों से **(प्रतिपाद्यः अहम्)** मैं समझने योग्य हूँ **(यत्)** या जो कुछ **(परान्)** दूसरों को **(प्रतिपादये)** मैं समझाता हूँ **(तत्)** वह सब कुछ **(मे)** मेरी **(उन्मत्तचेष्टितं)** पागलों के समान चेष्टाएँ हैं **(यत्)** क्योंकि **(अहं)** मैं **(निर्विकल्पकः)** विकल्पों से रहित स्वभाव वाला हूँ।

यदग्राह्यं न गृह्णाति गृहीतं नैव मुञ्चति।
जानाति सर्वथा सर्वं तत्स्वसंवेद्यमस्म्यहम् ॥२०॥

अन्वयार्थ–(यत्) जो शुद्धात्मा **(अग्राह्यं)** ग्रहण में न आने योग्य को **(न)** नहीं **(गृह्णाति)** ग्रहण करता है **(गृहीतं)** जो ग्रहण किये गए अनन्तज्ञानादिक गुणों को **(नैव)** निश्चित ही नहीं **(मुञ्चति)** छोड़ता है जो **(सर्वं)** सभी चेतन-अचेतन पदार्थों को **(सर्वथा)** सब प्रकार से **(जानाति)** जानता है **(तत्)** वह **(स्वसंवेद्यं)** अपने ही द्वारा अनुभव में आने योग्य **(अहम्)** मैं **(अस्मि)** हूँ।

उत्पन्नपुरुषभ्रान्तेः स्थाणौ यद्वद्विचेष्टितम्।
तद्वन्मे चेष्टितं पूर्वं देहादिष्वात्मविभ्रमात्॥२१॥

अन्वयार्थ– (यद्वत्) जिस प्रकार **(स्थाणौ)** ठूँठ में **(उत्पन्नपुरुषभ्रान्तेः)** उत्पन्न हुआ पुरुषपने का भ्रम जिसको हुआ है उसकी **(विचेष्टितम्)** अनेक प्रकार की चेष्टायें होती हैं **(तद्वत्)** उसी प्रकार **(पूर्वं)** पहले **(आत्मविभ्रमात्)** आत्मा के विषय में विभ्रम/विपरीतता होने से **(देहादिषु)** शरीर आदि में **(मे)** मेरी **(चेष्टितं)** चेष्टा थी।

यथासौ चेष्टते स्थाणौ निवृत्ते पुरुषाग्रहे।
तथा चेष्टोऽस्मि देहादौ विनिवृत्तात्मविभ्रमः॥२२॥

अन्वयार्थ–(असौ) वही पूर्वोक्त पुरुष **(यथा)** जिस तरह **(स्थाणौ)** ठूँठ में **(पुरुषाग्रहे)** यह पुरुष है ऐसा मिथ्याग्रह **(निवृत्ते)** दूर हो जाने पर **(चेष्टते)** योग्य चेष्टायें करता है **(तथा)** उसी तरह **(देहादौ)** शरीर आदि

में **(विनिवृत्तात्मविभ्रमः)** आत्मपने की भ्रांति दूर हो जाने पर **(चेष्टोऽस्मि)** देहादिक में अपने उपकारादि की बुद्धि को छोड़ने में प्रवृत्त हुआ हूँ।

येनात्मनानुभूयेऽहमात्मनैवात्मनाऽऽत्मनि ।
सोऽहं न तन्न सा नासौ नैको न द्वौ न वा बहुः ॥२३॥

अन्वयार्थ– (येन) जिस **(आत्मना)** आत्म स्वरूप से **(अहम्)** मैं **(आत्मनि)** आत्मा में **(आत्मना)** अपने आपके द्वारा **(आत्मना एव)** अपने से ही **(अनुभूये)** अनुभव करता हूँ **(सः)** वही **(अहं)** मैं हूँ **(न तत्)** वह नपुंसक नहीं है **(न सा)** न वह स्त्री रूप है **(न असौ)** न वह पुरुष है **(न एको)** न वह एक है **(न द्वौ)** न दो है **(वा)** अथवा **(न बहुः)** न बहुत है।

यदभावे सुषुप्तोऽहं यद्भावे व्युत्थितः पुनः।
अतीन्द्रियमनिर्देश्यं तत्स्वसंवेद्यमस्म्यहम् ॥२४॥

अन्वयार्थ–(यत् अभावे) जिस आत्म अनुभव के अभाव में **(अहं)** मैं **(सुषुप्तः)** अज्ञान में सोता रहा **(पुनः)** तथा **(यत् भावे)** जिसका अनुभव हो जाने पर **(व्युत्थितः)** जागृत हुआ हूँ **(तत्)** वह **(अतीन्द्रियं)** इन्द्रियों के द्वारा ग्रहण के अयोग्य **(अनिर्देश्यं)** शब्दों से नहीं कहने योग्य **(स्वसंवेद्यं)** स्वसंवेदन के योग्य **(अहम्)** मैं **(अस्मि)** हूँ।

क्षीयन्तेऽत्रैव रागाद्यास्तत्त्वतो मां प्रपश्यतः।
बोधात्मानं ततः कश्चिन्न मे शत्रुर्न च प्रियः॥२५॥

अन्वयार्थ– (तत्त्वतः) शुद्ध दृष्टि से **(मां)** अपने **(बोधात्मानं)** ज्ञानस्वरूप आत्मा को **(प्रपश्यतः)** देखने वाले के **(रागाद्याः)** रागादि विकारी भाव **(अत्र एव)** इसी समय **(क्षीयन्ते)** क्षय हो जाते हैं **(ततः)** इसलिए **(मे)** मेरा **(न कश्चित्)** न कोई **(शत्रुः)** शत्रु है **(च)** और **(न प्रियः)** न कोई मित्र है।

मामपश्यन्नयं लोको न मे शत्रुर्न च प्रियः।
मां प्रपश्यन्नयं लोको न मे शत्रुर्न च प्रियः॥२६॥

अन्वयार्थ– (मां) मुझको **(अपश्यन्)** नहीं देखने वाला **(अयं)** यह **(लोकः)** प्राणी/लोग **(न मे)** न मेरा **(शत्रुः)** शत्रु है **(न च)** और न **(प्रियः)** मित्र है। **(मां)** मुझको **(प्रपश्यन्)** देखता हुआ **(अयं)** यह

(लोकः) प्राणी/प्रबुद्धगण **(न)** न तो **(मे)** मेरे **(शत्रुः)** शत्रु हैं **(न च)** और न **(प्रियः)** मित्र है।

त्यक्त्वैवं बहिरात्मान - मन्तरात्मव्यवस्थितः।
भावयेत् परमात्मानं सर्वसङ्कल्पवर्जितम् ॥२७॥

अन्वयार्थ–(एवं) इस प्रकार कहे गए तरीके से **(बहिरात्मानं)** बहिरात्मपने को **(त्यक्त्वा)** छोड़कर **(अन्तरात्मव्यवस्थितः)** अन्तरात्मा में स्थित होता हुआ **(सर्वसङ्कल्पवर्जितं)** समस्त संकल्पों से रहित **(परमात्मानं)** परम आत्मा की **(भावयेत्)** भावना भावें।

सोऽहमित्यात्तसंस्कारस्तस्मिन् भावनया पुनः।
तत्रैव दृढसंस्काराल्लभते ह्यात्मनि स्थितिम् ॥२८॥

अन्वयार्थ–(तस्मिन्) उस परमात्म स्वरूप में **(भावनया)** भावना के बल से **(सोऽहम्)** वह मैं **(इति)** इस प्रकार **(आत्तसंस्कारः)** जिसने संस्कार प्राप्त कर लिया है **(पुनः)** फिर **(तत्रैव)** उसी परमात्मस्वरूप में ही **(दृढसंस्कारात्)** मजबूत संस्कार हो जाने से **(हि)** निश्चित ही **(आत्मनि)** अपनी आत्मा में **(स्थितिम्)** स्थिरता को **(लभते)** प्राप्त कर लेता है।

मूढात्मा यत्र विश्वस्तस्ततो नान्यद्भयास्पदम्।
यतो भीतस्ततो नान्यदभयस्थानमात्मनः ॥२९॥

अन्वयार्थ–(मूढात्मा) बहिरात्मा पुरुष **(यत्र)** जिन विषयों में **(विश्वस्तः)** विश्वस्त हो जाता है **(ततः अन्यत्)** उसके सिवाय दूसरा कोई **(भयास्पदम्)** भय का स्थान **(न)** नहीं है तथा **(यतः)** जिससे **(भीतः)** डरता है **(ततः)** उससे **(अन्यत्)** दूसरा कोई **(आत्मनः)** आत्मा के लिए **(अभयस्थानम्)** निडरता का स्थान **(न)** नहीं है।

सर्वेन्द्रियाणि संयम्य स्तिमितेनान्तरात्मना।
यत्क्षणं पश्यतो भाति तत्तत्त्वं परमात्मनः॥३०॥

अन्वयार्थ–(सर्वेन्द्रियाणि) सभी इन्द्रियों को **(संयम्य)** संयमित करके **(स्तिमितेन)** स्थिरीभूत **(अन्तरात्मना)** अन्तरात्मा/अन्तःकरण से **(क्षणं)** क्षण मात्र **(पश्यतः)** स्वरूप को देखने वाले के **(यत्)** जो स्वरूप **(भाति)** प्रकट/प्रतिभासित होता है **(तत्)** वह **(परमात्मनः)** परमात्मा का **(तत्त्वं)** स्वरूप है।

यः परात्मा स एवाऽहं योऽहं स परमस्ततः।
अहमेव मयोपास्यो नान्यः कश्चिदिति स्थितिः ॥३१॥

अन्वयार्थ–(यः) जो कोई **(परात्मा)** उत्कृष्ट आत्मा या परमात्मा **(स एव)** वह ही **(अहं)** मैं हूँ **(यः)** तथा जो **(अहं)** मैं आत्मा हूँ **(सः)** वह **(परमः)** परम/उत्कृष्ट आत्मा है **(ततः)** इसलिए **(मया)** मेरे द्वारा **(अहम्)** मैं **(एव)** ही **(उपास्यः)** उपासना योग्य हूँ **(कश्चित्)** कोई **(अन्यः न)** दूसरा नहीं **(इति)** इस प्रकार (अपने में ही आराध्य आराधक भाव की) **(स्थितिः)** स्थिति/व्यवस्था है।

प्रच्याव्य विषयेभ्योऽहं मां मयैव मयि स्थितम्।
बोधात्मानं प्रपन्नोऽस्मि परमानन्दनिर्वृतम् ॥३२॥

अन्वयार्थ– (अहम्) मैं **(माम्)** अपने को **(विषयेभ्यः)** विषयों से **(प्रच्याव्य)** हटाकर **(मया एव)** अपने द्वारा ही **(मयि)** अपने में **(स्थितम्)** स्थित **(परमानन्दनिर्वृतम्)** उत्कृष्ट आनंद से युक्त **(बोधात्मानं)** ज्ञानस्वरूपी आत्मा को **(प्रपन्नः)** प्राप्त **(अस्मि)** होता हूँ।

यो न वेत्ति परं देहादेवमात्मानमव्ययम्।
लभते स न निर्वाणं तप्त्वाऽपि परमं तपः ॥३३॥

अन्वयार्थ– (यः) जो कोई **(एवम्)** उक्त प्रकार कहे हुए **(अव्ययं)** अविनाशी **(आत्मानं)** आत्मा को **(देहात्)** शरीर से **(परं)** भिन्न **(न)** नहीं **(वेत्ति)** जानता है **(सः)** वह **(परमं तपः)** उत्कृष्ट तप को **(तप्त्वा अपि)** तप करके भी **(निर्वाणं)** मोक्ष को **(न लभते)** प्राप्त नहीं होता/करता है।

आत्मदेहान्तरज्ञान – जनिताह्लादनिर्वृतः।
तपसा दुष्कृतं घोरं भुञ्जानोऽपि न खिद्यते ॥३४॥

अन्वयार्थ–(आत्मदेहान्तरज्ञान-जनिताह्लादनिर्वृतः) आत्मा और शरीर के भेद से उत्पन्न होने वाले आह्लाद से युक्त जीव **(तपसा)** तप के द्वारा [द्वादश प्रकार के तप द्वारा उदय में लाये हुए] **(घोरं)** दुःसह/भयानक **(दुष्कृतं)**पाप कर्म को **(भुञ्जानः अपि)** भोगता हुआ भी **(न खिद्यते)** खेद को प्राप्त नहीं होता है।

रागद्वेषादिकल्लोलैरलोलं यन्मनोजलम्।
स पश्यत्यात्मनस्तत्त्वं सत्त्वं नेतरो जनः ॥३५॥

अन्वयार्थ—(यन्मनोजलं) जिसका मनरूपी जल **(रागद्वेषादिकल्लोलैः)** रागद्वेष आदि रूप तरंगों से **(अलोलं)** चंचल नहीं है **(सः)** वह **(आत्मनः)** आत्मा के **(तत्त्वं)** यथार्थ स्वरूप को **(पश्यति)** देखता है **(तत्)** उस **(तत्त्वं)** आत्मस्वरूप को **(इतरः जनः न)** दूसरा कोई मनुष्य नहीं **(पश्यति)** देखता है/देख सकता है।

अविक्षिप्तं मनस्तत्त्वं विक्षिप्तं भ्रान्तिरात्मनः।
धारयेत्तदविक्षिप्तं विक्षिप्तं नाश्रयेत्ततः ॥३६॥

अन्वयार्थ—(अविक्षिप्तं मनः) क्षोभरहित मन **(आत्मनः)** आत्मा का **(तत्त्वं)** वास्तविक स्वरूप है **(विक्षिप्तं)** क्षुब्धमन **(आत्मनः)** आत्मा का **(भ्रान्तिः)** विभ्रम है **(ततः)** इसलिए **(तत् अविक्षिप्तं)** उस अविक्षिप्त अर्थात् रागद्वेषादि से रहित मन को **(धारयेत्)** धारण करें **(विक्षिप्तं)** विक्षिप्त अर्थात् रागद्वेषादि से क्षुब्ध मन को **(न आश्रयेत्)** आश्रय न दें।

अविद्याभ्याससंस्कारैरवशं क्षिप्यते मनः।
तदेवज्ञानसंस्कारैः स्वतस्तत्त्वेऽवतिष्ठते ॥३७॥

अन्वयार्थ—(अविद्याभ्याससंस्कारैः) शरीरादि को शुचि, स्थिर और आत्मीय मानने रूप जो अविद्या के अभ्यास वाले संस्कारों से **(अवशं)** आत्मा के वश में न रहने वाला **(मनः)** मन **(क्षिप्यते)** क्षुब्ध हो जाता है **(तदेव)** वही मन **(ज्ञानसंस्कारैः)** आत्म-देह के भेदविज्ञानरूप ज्ञान के संस्कारों से **(स्वतः)** अपने आप ही **(तत्त्वे)** आत्मस्वरूप में **(अवतिष्ठते)** ठहर जाता है।

अपमानादयस्तस्य विक्षेपो यस्य चेतसः।
नापमानादयस्तस्य न क्षेपो यस्य चेतसः ॥३८॥

अन्वयार्थ— (यस्य चेतसः) जिसके मन का **(विक्षेपः)** क्षोभ-रागद्वेषादिरूप परिणमन होता है **(तस्य)** उसी के **(अपमानादयः)** अपमान आदि होते हैं। **(यस्य चेतसः)** जिसके मन का **(क्षेपः न)** क्षोभ-रागद्वेषादिरूप परिणमन नहीं होता **(तस्य)** उसके **(अपमानादयः)** अपमान आदि **(न)** नहीं होते हैं।

यदा मोहात्प्रजायेते रागद्वेषौ तपस्विनः।
तदैव भावयेत्स्वस्थमात्मानं शाम्यतः क्षणात् ॥३९॥

अन्वयार्थ–(यदा) जब **(तपस्विनः)** तपस्वी के **(मोहात्)** मोह के कारण से **(रागद्वेषौ)** रागद्वेष **(प्रजायेते)** उत्पन्न होते हैं **(तदैव)** उसी समय **(स्वस्थं आत्मानं)** स्वस्थ आत्मस्वरूप को **(भावयेत्)** भावें जिससे **(क्षणात्)** क्षणभर में ही **(शाम्यतः)** रागद्वेष शान्त हो जाते हैं।

यत्र काये मुनेः प्रेम ततः प्रच्याव्य देहिनं।
बुद्ध्या तदुत्तमे काये योजयेत् प्रेम नश्यति ॥४०॥

अन्वयार्थ–(यत्र काये) जिस शरीर में **(मुनेः)** मुनि का **(प्रेम)** प्रेम है **(ततः)** उस शरीर से **(बुद्ध्या)** भेदज्ञान से **(देहिनम्)** आत्मा को **(प्रच्याव्य)** छुड़ाकर **(तदुत्तमे काये)** उस उत्तम चैतन्यस्वरूप आत्मा में **(योजयेत्)** लगायें **(प्रेम)** जिससे प्रेम **(नश्यति)** नाश को प्राप्त हो जाता है।

आत्म - विभ्रमजं दुःखमात्मज्ञानात्प्रशाम्यति।
नाऽयतास्तत्र निर्वान्ति कृत्वाऽपि परमं तपः॥४१॥

अन्वयार्थ– (आत्मविभ्रमजं) शरीरादिक में आत्मबुद्धिरूप विभ्रम से उत्पन्न हुआ **(दुःखं)** दुख **(आत्मज्ञानात्)** शरीरादि से भिन्नरूप आत्मज्ञान से **(प्रशाम्यति)** शांत होता है **(तत्र)** उस आत्मस्वरूप में **(अयताः)** जो यत्न नहीं करते हैं, वे **(परमं तपः)** उत्कृष्ट तप **(कृत्वा अपि)** करके भी **(निर्वान्ति न)** निर्वाण नहीं प्राप्त करते हैं।

शुभं शरीरं दिव्यांश्च विषयानभिवाञ्छति।
उत्पन्नात्ममतिर्देहे तत्त्वज्ञानी ततश्च्युतिं ॥४२॥

अन्वयार्थ–(देहे) शरीर में **(उत्पन्नात्ममतिः)** जिसे आत्मबुद्धि पैदा हुई है वह **(शुभं शरीरं)** अच्छा शरीर **(च)** और **(दिव्यान् विषयान्)** स्वर्गीय भोग विषयों को **(अभिवाञ्छति)** चाहता है **(तत्त्वज्ञानी)** किन्तु आत्मस्वरूप का ज्ञाता जीव **(ततः)** इन विषयों और शरीर से **(च्युतिम्)** मुक्ति को चाहता है।

परत्राहम्मतिः स्वस्माच्च्युतो बध्नात्यसंशयम्।
स्वस्मिन्नहम्मतिश्च्युत्वा परस्मान्मुच्यते बुधः॥४३॥

अन्वयार्थ–(परत्र) शरीरादि पर पदार्थों में **(अहम्मतिः)** अपनेपन/आत्मपन की बुद्धि रखने वाला **(स्वस्मात्)** अपने स्वरूप से **(च्युतः)** दूर हो **(असंशयम्)** निश्चित ही **(बध्नाति)** कर्मबंध को प्राप्त होता है **(स्वस्मिन्)**

अपने आप में **(अहम्मतिः)** आत्मबुद्धि रखने वाला **(बुधः)** ज्ञानी **(परस्मात्)** शरीरादि पर द्रव्यों से **(च्युत्वा)** छूटकर **(मुच्यते)** मुक्त हो जाता है।

दृश्यमानमिदं मूढस्त्रिलिङ्गमवबुध्यते।
इदमित्यवबुद्धस्तु निष्पन्नं शब्दवर्जितम् ॥४४॥

अन्वयार्थ–(मूढः) अज्ञानी/बहिरात्मा जीव **(दृश्यमानं)** दिखाई देने वाले **(इदम्)** इस जगत् को **(त्रिलिङ्गम्)** स्त्री-पुरुष-नपुंसक के भेद से तीन लिंग रूप **(अवबुध्यते)** जानता है। **(तु)** किन्तु **(अवबुद्धः)** ज्ञानी **(इदम्)** इस जगत् को **(निष्पन्नम्)** परिपूर्ण **(शब्दवर्जितम्)** नामादिक शब्द विकल्प से रहित **(इति)** इस प्रकार जानता है।

जानन्नप्यात्मनस्तत्त्वं विविक्तं भावयन्नपि।
पूर्वविभ्रमसंस्काराद् भ्रान्तिं भूयोऽपि गच्छति ॥४५॥

अन्वयार्थ– (आत्मनः) आत्मा के **(तत्त्वं)** चैतन्य स्वरूप को **(जानन् अपि)** जानता हुआ भी तथा **(विविक्तं)** शरीरादि अन्य पदार्थों से भिन्न **(भावयन् अपि)** भावना करता हुआ भी **(पूर्वविभ्रमसंस्कारात्)** पूर्व के अज्ञान जनित संस्कारों के कारण **(भूयः अपि)** फिर भी **(भ्रान्तिं)** भ्रांति को **(गच्छति)** प्राप्त हो जाता है।

अचेतनमिदं दृश्यमदृश्यं चेतनं ततः।
क्व रुष्यामि क्व तुष्यामि मध्यस्थोऽहं भवाम्यतः॥४६॥

अन्वयार्थ–(इदं दृश्यं) यह दिखाई देने वाला सब कुछ **(अचेतनं)** जड़ है **(चेतनं)** चेतना **(अदृश्यं)** दिखाई न देने वाली वस्तु है **(ततः)** इसलिए **(क्व)** किस विषय में **(रुष्यामि)** रोष करूँ **(क्व)** और किस विषय में **(तुष्यामि)** संतुष्ट होऊँ **(अतः)** इसलिए **(अहं)** मैं **(मध्यस्थः)** तटस्थ **(भवामि)** होता हूँ।

त्यागादाने बहिर्मूढः करोत्यध्यात्ममात्मवित्।
नान्तर्बहिरुपादानं न त्यागो निष्ठितात्मनः॥४७॥

अन्वयार्थ–(मूढः) मोही व्यक्ति **(बहिः)** बाहरी विषयों में **(त्यागादाने)** त्याग और ग्रहण करता है अर्थात् राग के उदय से जिन्हें इष्ट समझता है उन्हें ग्रहण कर लेता है तथा द्वेष के उदय से जिनको अनिष्ट समझता है

उनको छोड़ देता है **(आत्मवित्)** आत्म ज्ञानी **(अध्यात्मं)** अन्तरंग विषय को **(करोति)** त्याग और ग्रहण करता है अर्थात् अन्तरंग रागद्वेष का त्याग करता है और अपने सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्ररूप निजभावों का ग्रहण करता है परन्तु **(निष्ठितात्मनः)** शुद्ध स्वरूप में स्थित जो कृतकृत्य परमात्मा के **(अन्तर्बहिः)** अन्तरंग और बहिरंग विषय में **(न)** न तो **(उपादानं)** ग्रहण होता है और **(न त्यागः)** न त्याग ही होता है।

युञ्जीत मनसाऽऽत्मानं वाक्कायाभ्यां वियोजयेत्।
मनसा व्यवहारं तु त्यजेद्वाक्काययोजितम् ॥४८॥

अन्वयार्थ–(आत्मानम्) आत्मा को **(मनसा)** मन के साथ **(युञ्जीत)** सम्बन्धित/संयोजित करे–चित्त और आत्मा का अभेदरूप से अध्यवसाय करे **(वाक्कायाभ्यां)** वचन और काय से आत्मा को **(वियोजयेत्)** पृथक् करें **(तु)** तथा **(वाक्काययोजितम्)** वचन और शरीर से जुड़े **(व्यवहारं)** व्यवहार को **(मनसा)** मन से **(त्यजेत्)** छोड़ देवें।

जगद्देहात्मदृष्टीनां विश्वास्यं रम्यमेव च।
स्वात्मन्येवात्मदृष्टीनां क्व विश्वासः क्व वा रतिः ॥४९॥

अन्वयार्थ–(देहात्मदृष्टीनां) शरीर में आत्मदृष्टि रखने वाले मिथ्यादृष्टि बहिरात्माओं को **(जगत्)** यह संसार **(विश्वास्यं)** विश्वास योग्य **(च)** और **(रम्यं)** मनोरंजक/रमणीय **(एव)** ही लगता है। **(स्वात्मनि एव)** अपनी आत्मा में ही **(आत्मदृष्टीनाम्)** आत्मदृष्टि रखने वाले सम्यग्दृष्टि अन्तरात्माओं को **(क्व)** कहाँ **(विश्वासः)** भरोसा **(वा)** अथवा **(क्व)** कहाँ **(रतिः)** राग होता है अर्थात् नहीं होता है।

आत्मज्ञानात्परं कार्यं न बुद्धौ धारयेच्चिरम्।
कुर्यादर्थवशात्किञ्चिद्वाक्कायाभ्यामतत्परः ॥५०॥

अन्वयार्थ–(आत्मज्ञानात्) आत्मज्ञान से **(परं कार्यं)** भिन्न दूसरे कार्य को **(चिरं)** बहुत समय तक **(बुद्धौ)** बुद्धि में **(न)** नहीं **(धारयेत्)** धारण करना चाहिए **(अर्थवशात्)** स्वपर के उपकारादिरूप प्रयोजन के वश **(अतत्परः)** उस कार्य में तत्परता न दिखाते हुए **(वाक्कायाभ्याम्)** वचन और काय से **(किञ्चित्)** कुछ **(कुर्यात्)** करें।

यत्पश्यामीन्द्रियैस्तन्मे नास्ति यन्नियतेन्द्रियः।
अन्तः पश्यामि सानन्दं तदस्तु ज्योतिरुत्तमम्॥५१॥

अन्वयार्थ—(यत्) जो कुछ शरीरादिक बाह्य पदार्थ **(इन्द्रियैः)** इन्द्रियों के द्वारा **(पश्यामि)** मैं देखता हूँ **(तत्)** वह **(मे)** मेरा **(नास्ति)** नहीं है **(नियतेन्द्रियः)** संयत इन्द्रिय होकर **(यत्)** जो **(उत्तमं)** उत्कृष्ट अतीन्द्रिय **(सानन्दं ज्योतिः)** आनंदमय ज्ञान प्रकाश को **(अन्तः)** अन्तरङ्ग में **(पश्यामि)** मैं देखता हूँ अर्थात् अनुभव करता हूँ **(तत्)** वही मेरा वास्तविक स्वरूप **(अस्तु)** होना चाहिए।

सुखमारब्धयोगस्य बहिर्दुःखमथाऽऽत्मनि।
बहिरेवाऽसुखं सौख्यमध्यात्मं भावितात्मनः ॥५२॥

अन्वयार्थ—(आरब्धयोगस्य) आत्मध्यान का अभ्यास प्रारम्भ करने वाले के **(बहिः)** बाह्य विषयों में **(सुखं)** सुख मालूम होता है **(अथ)** और **(आत्मनि)** आत्मा के विषय में **(दुःखं)** कष्ट होता है **(भावितात्मनः)** किन्तु आत्मा की भावना के अभ्यासी जन के **(बहिः)** बाहर **(एव)** ही **(असुखं)** दुख तथा **(अध्यात्मं)** अपनी आत्मा में **(सौख्यं)** सुख भासता है।

तद् ब्रूयात्तत्परान् पृच्छेत्तदिच्छेत्तत्परो भवेत्।
येनाऽविद्यामयं रूपं त्यक्त्वा विद्यामयं व्रजेत् ॥५३॥

अन्वयार्थ—(तत् ब्रूयात्) उस आत्मस्वरूप का कथन करे—उसे दूसरों को बतलावे **(तत् परान् पृच्छेत्)** उस आत्मस्वरूप को दूसरे आत्मानुभवी पुरुषों—विशेष ज्ञानियों से पूछे **(तत् इच्छेत्)** उस आत्मस्वरूप को चाहे **(तत्परः भवेत्)** उस आत्मस्वरूप में लीन हो **(येन)** जिससे **(अविद्यामयं रूपं)** अज्ञानमय बहिरात्मस्वरूप को **(त्यक्त्वा)** छोड़ करके **(विद्यामयं)** ज्ञानमय/परमात्म-स्वरूपमय **(व्रजेत्)** हो जावे।

शरीरे वाचि चात्मानं सन्धत्ते वाक्शरीरयोः।
भ्रान्तोऽभ्रान्तः पुनस्तत्त्वं पृथगेषां निबुध्यते ॥५४॥

अन्वयार्थ—(वाक्शरीरयोः) वचन और शरीर में **(भ्रान्तः)** भ्रांत आत्मा—बहिरात्मा **(शरीरे)** शरीर **(च)** और **(वाचि)** वचन में **(आत्मानं)** आत्मा को **(सन्धत्ते)** आरोपित करता है—अर्थात् वचन को तथा शरीर को आत्मा

मानता है **(पुनः)** परन्तु **(अभ्रान्तः)** अभ्रान्त आत्मा–ज्ञानी पुरुष **(एषां)** इन शरीर और वचन के **(तत्त्वं)** स्वरूप को **(पृथक्)** आत्मा से भिन्न **(निबुध्यते)** समझता है।

न तदस्तीन्द्रियार्थेषु यत्क्षेमङ्करमात्मनः।
तथापि रमते बालस्तत्रैवाज्ञानभावनात् ॥५५॥

अन्वयार्थ–(इन्द्रियार्थेषु) पाँचों इन्द्रियों के विषयों में **(तत् न अस्ति)** वह कुछ भी नहीं हैं **(यत्)** जो **(आत्मनः)** आत्मा के **(क्षेमङ्करं)** हित में हो **(तथापि)** फिर भी **(बालः)** मोही अज्ञानी जीव **(अज्ञानभावनात्)** अज्ञान भावना से चिरकालीन मिथ्यात्व के संस्कारवश **(तत्र एव)** उन्हीं विषयों में **(रमते)** रमण करता है।

चिरं सुषुप्तास्तमसि मूढात्मानः कुयोनिषु।
अनात्मीयात्मभूतेषु ममाहमिति जाग्रति ॥५६॥

अन्वयार्थ–(मूढात्मानः) ये मूर्ख अज्ञानी जीव **(तमसि)** मिथ्यात्वरूपी अंधकार के उदय वश **(चिरं)** अनादिकाल से **(कुयोनिषु)** नित्य निगोदादि कुयोनियों में **(सुषुप्ताः)** सो रहे हैं–अतीव जड़ता को प्राप्त हो रहे हैं यदि कदाचित् संज्ञी प्राणियों में उत्पन्न होकर कुछ जागते भी हैं तो **(अनात्मीयात्म-भूतेषु मम अहं)** अनात्मीयभूत स्त्री-पुत्रादिक में ये मेरे हैं और अनात्मभूत शरीरादिकों में मैं ही इन रूप हूँ **(इति जाग्रति)** ऐसा अध्यवसाय करने लगते हैं।

पश्येन्निरन्तरं देहमात्मनोऽनात्मचेतसा।
अपरात्मधियाऽन्येषामात्मतत्त्वे व्यवस्थितः ॥५७॥

अन्वयार्थ–(आत्मतत्त्वे) आत्म स्वरूप में **(व्यवस्थितः)** अच्छी तरह लीन होता हुआ **(आत्मनः)** अपने **(देहं)** शरीर को **(अनात्मचेतसा)** ''यह शरीर मेरा नहीं है'' इस अनात्मबुद्धि से तथा **(अन्येषां)** दूसरों की देह को भी **(अपरात्मधिया)** यह शरीर उनकी आत्मा नहीं है, इस बुद्धि से **(निरन्तरं)** लगातार **(पश्येत्)** देखें।

अज्ञापितं न जानन्ति यथा मां ज्ञापितं तथा।
मूढात्मानस्ततस्तेषां वृथा मे ज्ञापनश्रमः ॥५८॥

अन्वयार्थ– (यथा) जैसे **(मूढ़ात्मानः)** मोही आत्मायें **(अज्ञापितं)** बिना

समझाये हुए **(मां)** मेरे स्वरूप को **(न जानन्ति)** नहीं जानते हैं **(तथा)** वैसे ही (**ज्ञापितं**) समझाये हुए **(मां)** मेरे स्वरूप को नहीं समझते हैं **(ततः)** इसलिए **(तेषां)** उनको **(ज्ञापनश्रमः)** समझाने का परिश्रम **(मे)** मेरा **(वृथा)** निष्फल है।

यद्बोधयितुमिच्छामि तन्नाहं यदहं पुनः।
ग्राह्यं तदपि नान्यस्य तत्किमन्यस्य बोधये ॥५९॥

अन्वयार्थ—(यत्) जिसे **(बोधयितुं)** समझाने के लिए **(इच्छामि)** मैं इच्छा करता हूँ **(तत्)** वह **(अहं)** मैं **(न)** नहीं हूँ **(पुनः)** तथा **(यत् अहं)** जो मैं हूँ **(तत् अपि)** वह भी (**अन्यस्य**) अन्य के **(ग्राह्यं)** ग्रहण करने योग्य **(न)** नहीं है **(तत्)** इसलिए **(अन्यस्य)** दूसरे को **(किम्)** क्या **(बोधये)** समझाऊँ।

बहिस्तुष्यति मूढात्मा पिहितज्योतिरन्तरे।
तुष्यत्यन्तः प्रबुद्धात्मा बहिर्व्यावृत्तकौतुकः॥६०॥

अन्वयार्थ—(अन्तरे) अन्तरंग में **(पिहितज्योतिः)** जिसकी ज्ञान ज्योति मोह से आवृत है **(मूढात्मा)** ऐसा मूढ़ात्मा **(बहिः)** बाह्य शरीरादि विषयों में **(तुष्यति)** संतोष करता है **(प्रबुद्धात्मा)** किन्तु जिसकी आत्मा में ज्ञान ज्योति प्रकट हुई है वह **(बहिः)** बाह्य विषयों में **(व्यावृत्तकौतुकः)** उत्सुकता से रहित हो **(अन्तः)** अपनी आत्मा में **(तुष्यति)** सन्तुष्ट होता है।

न जानन्ति शरीराणि सुखदुःखान्यबुद्धयः।
निग्रहानुग्रहधियं तथाप्यत्रैव कुर्वते ॥६१॥

अन्वयार्थ—(शरीराणि) औदारिक आदि शरीर **(सुखदुःखानि)** सुख और दुख को जड़ होने से **(न)** नहीं **(जानन्ति)** अनुभव करते हैं। **(तथापि)** फिर भी **(अबुद्धयः)** अज्ञानीजन **(अत्र एव)** इन शरीरों में ही **(निग्रहानुग्रहधियं)** अपकार और उपकार की बुद्धि को **(कुर्वते)** करते हैं।

स्वबुद्ध्या यावद् गृह्णीयात् कायवाक्चेतसां त्रयम्।
संसारस्तावदेतेषां भेदाभ्यासे तु निर्वृतिः॥६२॥

अन्वयार्थ—(यावत्) जब तक **(कायवाक्चेतसां त्रयं)** शरीर, वचन

और मन इन तीनों का **(स्वबुद्ध्या)** यह मैं हूँ इस प्रकार की आत्म बुद्धि से **(गृह्णीयात्)** ग्रहण है **(तावत्)** तब तक **(संसारः)** संसार है **(तु)** परन्तु **(एतेषां)** इन तीनों के **(भेदाभ्यासे)** भेदज्ञान का अभ्यास होने पर **(निर्वृतिः)** मुक्ति है।

घने वस्त्रे यथाऽऽत्मानं न घनं मन्यते तथा।
घने स्वदेहेप्यात्मानं न घनं मन्यते बुधः ॥६३॥
जीर्णे वस्त्रे यथाऽऽत्मानं न जीर्णं मन्यते तथा।
जीर्णे स्वदेहेऽप्यात्मानं न जीर्णं मन्यते बुधः॥६४॥
नष्टे वस्त्रे यथाऽऽत्मानं न नष्टं मन्यते तथा।
नष्टे स्वदेहेऽप्यात्मानं न नष्टं मन्यते बुधः॥६५॥
रक्ते वस्त्रे यथाऽऽत्मानं न रक्तं मन्यते तथा।
रक्ते स्वदेहेऽप्यात्मानं न रक्तं मन्यते बुधः॥६६॥

अन्वयार्थ–(यथा) जैसे कोई मनुष्य **(वस्त्रे घने)** मोटे वस्त्र पहन लेने पर **(आत्मानं)** अपने को **(घनं)** मोटा **(न मन्यते)** नहीं मानता है **(तथा)** वैसे ही **(स्वदेहे घनेऽपि)** अपनी देह के मोटे होने पर भी **(आत्मानं)** अपने को **(बुधः)** ज्ञानी पुरुष **(घनं)** मोटा **(न मन्यते)** नहीं मानता है **(यथा)** जैसे कोई **(वस्त्रे जीर्णे)** वस्त्र के पुराना होने पर **(आत्मानं)** अपने को **(जीर्णं)** पुराना **(न मन्यते)** नहीं मानता है **(तथा)** वैसे ही **(बुधः)** विद्वान् **(स्वदेहेअपि जीर्णे)** अपनी देह के भी पुरानी हो जाने पर **(आत्मानं)** आत्मा को **(जीर्णं)** जीर्ण **(न मन्यते)** नहीं मानता है **(यथा)** जैसे **(वस्त्रे नष्टे)** वस्त्र के फट जाने पर कोई **(आत्मानं)** अपने को **(नष्टं)** नष्ट हुआ **(न मन्यते)** नहीं मानता है **(तथा)** वैसे ही **(बुधः)** बुद्धिमान **(स्वदेहे अपि नष्टे)** अपनी देह के नष्ट होने पर भी **(आत्मानं)** अपनी आत्मा को **(नष्टं)** नष्ट हुआ **(न मन्यते)** नहीं मानता है। **(यथा)** जैसे कोई **(वस्त्रे रक्ते)** लाल कपड़े पहनने पर **(आत्मानं)** अपनी देह को **(रक्तं)** लाल **(न मन्यते)** नहीं मानता है **(तथा)** वैसे ही **(बुधः)** विद्वान् **(स्वदेहे रक्ते अपि)** अपनी देह के लाल होने पर भी **(आत्मानं)** अपनी आत्मा को **(रक्तं)** लाल **(न मन्यते)** नहीं मानता है।

यस्य सस्पन्दमाभाति निःस्पन्देन समं जगत्।
अप्रज्ञमक्रियाभोगं स शमं याति नेतरः॥६७॥

अन्वयार्थ–(यस्य) जिसको **(सस्पन्दं)** स्पन्दन सहित **(जगत्)** यह संसार **(निःस्पन्देन समं)** स्पन्दनरहित के समान **(अप्रज्ञम्)** ज्ञानरहित **(अक्रियाभोगं)** क्रिया तथा भोग रहित **(आभाति)** मालूम होता है **(सः)** वह **(शमं)** शम भाव को **(याति)** प्राप्त होता है **(इतरः न)** अन्य पुरुष नहीं।

शरीरकञ्चुकेनात्मा संवृतज्ञानविग्रहः।
नात्मानं बुध्यते तस्माद् भ्रमत्यतिचिरं भवे ॥६८॥

अन्वयार्थ–(शरीरकञ्चुकेन) कार्माण शरीररूपी काँचली से **(संवृतज्ञान-विग्रहः)** जिसका ज्ञानरूपी शरीर ढका है, **(आत्मा)** वह आत्मा **(आत्मानं)** अपनी आत्मा को **(न)** नहीं **(बुध्यते)** जानता है **(तस्मात्)** इस कारण से **(अतिचिरं)** चिरकाल तक वह **(भवे)** संसार में **(भ्रमति)** भ्रमण किया करता है।

प्रविशद्गलतां व्यूहे देहेऽणूनां समाकृतौ।
स्थितिभ्रान्त्या प्रपद्यन्ते तमात्मानमबुद्धयः ॥६९॥

अन्वयार्थ–(अबुद्धयः) अज्ञानी जीव **(प्रविशद्गलतां)** प्रवेश करने और गलने वाले **(अणूनां)** अणुओं की **(व्यूहे देहे)** समुदायात्मक शरीर में **(समाकृतौ)** समान आकृति बनी रहने पर **(स्थितिभ्रान्त्या)** यह देह बनी रहेगी इस भ्रम से **(तम्)** उस देह को **(आत्मानम्)** आत्मा ही **(प्रपद्यन्ते)** समझ लेते हैं।

गौरः स्थूलः कृशो वाऽहमित्यङ्गेनाविशेषयन्।
आत्मानं धारयेन्नित्यं केवलज्ञप्तिविग्रहम् ॥७०॥

अन्वयार्थ–(अहं) मैं **(गौरः)** गोरा हूँ **(स्थूलः)** मोटा हूँ **(वा)** अथवा **(कृशः)** पतला हूँ **(इति)** इस प्रकार की मान्यता को **(अङ्गेन)** शरीर के साथ **(अविशेषयन्)** विशेष रूप से न लगाकर **(केवलज्ञप्तिविग्रहम्)** केवलज्ञान शरीरी **(आत्मानं)** आत्मा को **(नित्यं)** हमेशा **(धारयेत्)** धारण करें।

मुक्तिरेकान्तिकी तस्य चित्ते यस्याचला धृतिः।
तस्य नैकान्तिकी मुक्तिर्यस्य नास्त्यचला धृतिः ॥७१॥

अन्वयार्थ—(यस्य) जिसके **(चित्ते)** चित्त में **(अचला धृतिः)** निश्चल धैर्य है **(तस्य)** उसकी **(मुक्तिः)** मुक्ति **(एकान्तिकी)** नियम से अवश्य है। **(यस्य)** जिसके **(अचला धृतिः)** निश्चल धैर्य **(नास्ति)** नहीं है **(तस्य)** उसकी **(मुक्तिः)** मुक्ति **(एकान्तिकी)** एकान्तरूप से आवश्यक **(न)** नहीं हैं।

जनेभ्यो वाक् ततः स्पन्दो मनसश्चित्तविभ्रमाः।
भवन्ति तस्मात्संसर्गं जनैर्योगी ततस्त्यजेत् ॥७२॥

अन्वयार्थ—(जनेभ्यः) मनुष्यों से **(वाक्)** वचन प्रवृत्ति होती है **(ततः)** उस वचन विलास से **(मनसः)** मन की **(स्पन्दः)** चंचलता होती है **(तस्मात्)** उससे **(चित्तविभ्रमाः)** मन में अनेक विकल्प **(भवन्ति)** होते हैं **(ततः)** इसलिए **(योगी)** योगी, भेदविज्ञानी पुरुष **(जनैः)** लोगों के साथ **(संसर्गं)** मिलना जुलना **(त्यजेत्)** छोड़ देवें।

ग्रामोऽरण्यमिति द्वेधा निवासोऽनात्मदर्शिनाम्।
दृष्टात्मनां निवासस्तु विविक्तात्मैव निश्चलः ॥७३॥

अन्वयार्थ—(अनात्मदर्शिनाम्) जिन्होंने आत्मा का अनुभव नहीं किया है, उन्हीं को **(ग्रामः)** यह गाँव है **(अरण्यं)** यह वन है **(इति)** ऐसा **(द्वेधा)** दो तरह का **(निवासः)** निवास होता है **(तु)** किन्तु **(दृष्टात्मनां)** जिन्होंने आत्मा का अनुभव किया है उनको **(निश्चलः)** अचल **(विविक्तात्मा एव)** पवित्र आत्मा ही **(निवासः)** निवास होता है।

देहान्तरगतेर्बीजं देहेऽस्मिन्नात्मभावना।
बीजं विदेहनिष्पत्तेरात्मन्येवात्मभावना ॥७४॥

अन्वयार्थ— (अस्मिन् देहे) इस शरीर में **(आत्मभावना)** आत्मा की भावना होना **(देहान्तरगतेः)** अन्य देह की प्राप्ति का **(बीजं)** कारण है और **(आत्मनि)** आत्मा में **(एव)** ही **(आत्मभावना)** आत्मा की भावना होना **(विदेहनिष्पत्तेः)** शरीर रहित आत्मा की प्राप्ति का **(बीजं)** कारण है।

नयत्यात्मानमात्मैव जन्म निर्वाणमेव च।
गुरुरात्मात्मनस्तस्मान्नान्योऽस्ति परमार्थतः ॥७५॥

अन्वयार्थ—(आत्मा एव) आत्मा ही **(आत्मानं)** अपने आप को **(जन्म)** जन्म **(च)** और **(निर्वाणं)** निर्वाण में **(एव)** वस्तुतः **(नयति)** ले जाता है **(तस्मात्)** इस कारण से **(परमार्थतः)** वस्तुतः **(आत्मा)** आत्मा ही **(आत्मनः)** आत्मा का **(गुरुः)** गुरु है **(अन्यः न अस्ति)** दूसरा कोई नहीं है।

दृढात्मबुद्धिर्देहादावुत्पश्यन्नाशमात्मनः ।
मित्रादिभिर्वियोगं च बिभेति मरणाद् भृशम् ॥७६॥

अन्वयार्थ—(देहादौ) शरीर आदि पर द्रव्यों में **(दृढात्मबुद्धिः)** जिसकी आत्म बुद्धि मजबूत है वह **(आत्मनः)** अपने **(नाशं)** विनाश को **(च)** और **(मित्रादिभिः)** मित्र आदि जनों से **(वियोगं)** विछोह को **(उत्पश्यन्)** देखता हुआ **(मरणात्)** मरण से **(भृशं)** बहुत **(बिभेति)** डरता है।

आत्मन्येवात्मधीरन्यां शरीरगतिमात्मनः।
मन्यते निर्भयं त्यक्त्वा वस्त्रं वस्त्रान्तरग्रहम् ॥७७॥

अन्वयार्थ—(आत्मनि एव) आत्मा में ही **(आत्मधीः)** आत्मबुद्धि रखने वाला **(निर्भयं)** बिना किसी भय के **(शरीरगतिं)** शरीर की दशा को **(आत्मनः)** अपने से **(अन्यां)** अन्य किसी की **(वस्त्रं)** एक वस्त्र को **(त्यक्त्वा)** छोड़कर **(वस्त्रान्तरग्रहम्)** अन्य वस्त्र को ग्रहण करने के समान **(मन्यते)** मानता है।

व्यवहारे सुषुप्तो यः स जागर्त्यात्मगोचरे।
जागर्ति व्यवहारेऽस्मिन् सुषुप्तश्चात्मगोचरे ॥७८॥

अन्वयार्थ—(यः) जो पुरुष **(व्यवहारे)** लोक व्यवहार में **(सुषुप्तः)** सोता है **(सः)** वह **(आत्मगोचरे)** आत्मा के विषय में **(जागर्ति)** जागृत रहता है **(च)** तथा जो **(अस्मिन् व्यवहारे)** इस लोक व्यवहार में **(जागर्ति)** जागता है वह **(आत्मगोचरे)** आत्मा के विषय में **(सुषुप्तः)** सोता है।

आत्मानमन्तरे दृष्ट्वा दृष्ट्वा देहादिकं बहिः।
तयोरन्तरविज्ञानादभ्यासादच्युतो भवेत्॥७९॥

अन्वयार्थ—(अन्तरे) अन्तरंग में **(आत्मानं)** आत्मतत्त्व को **(दृष्ट्वा)** देखकर और **(देहादिकं)** शरीर आदि को **(बहिः)** बाहर **(दृष्ट्वा)** देखकर **(तयोः)** शरीर और आत्मा उन दोनों के **(अन्तर-विज्ञानात्)** भेदविज्ञानरूप

(अभ्यासात्) अभ्यास से **(अच्युतः)** मुक्त **(भवेत्)** हो जाता है।

पूर्वं दृष्टात्मतत्त्वस्य विभात्युन्मत्तवज्जगत्।
स्वभ्यस्तात्मधियः पश्चात् काष्ठपाषाणरूपवत्॥८०॥

अन्वयार्थ–(दृष्टात्मतत्त्वस्य) आत्मतत्त्व का अनुभव करने वाले के **(पूर्वं)** पहले **(जगत्)** यह जगत् **(उन्मत्तवत्)** पागल व्यक्ति की तरह **(विभाति)** प्रतिभासित होता है **(पश्चात्)** बाद में **(स्वभ्यस्तात्मधियः)** आत्मतत्त्व के अभ्यास में परिपक्व बुद्धि वाले अन्तरात्मा के **(काष्ठ-पाषाणरूपवत्)** यह जगत् काष्ठ या पत्थर के समान चेष्टा रहित मालूम पड़ता है।

शृण्वन्नप्यन्यतः कामं वदन्नपि कलेवरात्।
नात्मानं भावयेद्भिन्नं यावत्तावन्न मोक्षभाक्॥८१॥

अन्वयार्थ–(अन्यतः) अन्य गुरुआदि से **(कामं)** अत्यधिक इच्छानुसार **(शृण्वन् अपि)** सुनने पर भी **(वदन् अपि)** तथा बतलाते हुए भी **(यावत्)** जब तक **(आत्मानम्)** आत्मा को **(कलेवरात्)** शरीर से **(भिन्नं)** भिन्न **(न भावयेत्)** नहीं भाता है **(तावत्)** तब तक **(मोक्षभाक् न)** मोक्ष का पात्र नहीं होता है।

तथैव भावयेद्देहाद् व्यावृत्यात्मानमात्मनि।
यथा न पुनरात्मानं देहे स्वप्नेऽपि योजयेत् ॥८२॥

अन्वयार्थ–(देहात्) शरीर से **(आत्मानं)** आत्मा को **(व्यावृत्य)** हटाकर **(आत्मनि)** आत्मा में **(तथैव)** उस प्रकार से ही **(भावयेत्)** भावना करें **(यथा)** जिससे **(पुनः)** फिर **(स्वप्नेऽपि)** स्वप्न में भी **(देहे)** शरीर में **(आत्मानं)** आत्मा को **(न)** न **(योजयेत्)** जोड़े ।

अपुण्यमव्रतैः पुण्यं व्रतैर्मोक्षस्तयोर्व्ययः।
अव्रतानीव मोक्षार्थी व्रतान्यपि ततस्त्यजेत् ॥८३॥

अन्वयार्थ–(अव्रतैः) हिंसा आदि पाँच अव्रतों के द्वारा **(अपुण्यम्)** पाप होता है तथा **(व्रतैः)** अहिंसा आदि पाँच व्रतों से **(पुण्यं)** पुण्य होता है **(तयोः)** इन पुण्य और पाप दोनों का **(व्ययः)** विनाश **(मोक्षः)** मोक्ष है **(ततः)** इसलिए **(मोक्षार्थी)** मोक्ष का इच्छुक भव्य **(अव्रतानि इव)** अव्रतों के समान **(व्रतानि अपि)** व्रतों को भी **(त्यजेत्)** छोड़े।

अव्रतानि परित्यज्य व्रतेषु परिनिष्ठितः।
त्यजेत्तान्यपि सम्प्राप्य परमं पदमात्मनः ॥८४॥

अन्वयार्थ–(अव्रतानि) हिंसादि पाँच अव्रतों को **(परित्यज्य)** छोड़कर **(व्रतेषु)** अहिंसादि पाँच व्रतों में **(परिनिष्ठितः)** निष्ठावान रहे अर्थात् उनका दृढ़ता के साथ पालन करे **(आत्मनः)** आत्मा के **(परमं पदं)** सर्वोत्कृष्ट पद/वीतराग पद को **(संप्राप्य)** प्राप्त करके **(तानि)** उन व्रतों को **(अपि)** भी **(त्यजेत्)** त्यागे।

यदन्तर्जल्पसम्पृक्तमुत्प्रेक्षाजालमात्मनः ।
मूलं दुःखस्य तन्नाशे शिष्टमिष्टं परं पदम् ॥८५॥

अन्वयार्थ–(यत्) जो **(उत्प्रेक्षाजालं)** कल्पनाओं का जाल **(अन्तर्जल्प-सम्पृक्तं)** अन्तर्जल्प के साथ चलता रहता है वह **(आत्मनः)** आत्मा के **(दुःखस्य)** दुख का **(मूलं)** मुख्य कारण है **(तन्नाशे)** उस अन्तर्जल्प के नाश होने पर **(परं पदं)** आत्मा का उत्कृष्ट पद **(इष्टं)** जो कि इष्ट है **(शिष्टं)** कहा गया है।

अव्रती व्रतमादाय व्रती ज्ञानपरायणः।
परात्मज्ञानसम्पन्नः स्वयमेव परो भवेत् ॥८६॥

अन्वयार्थ–(अव्रती) व्रत रहित जीव **(व्रतं)** व्रतों को **(आदाय)** ग्रहण करके **(व्रती)** व्रत सहित हो **(ज्ञानपरायणः)** आत्मज्ञान में कुशल होवे। **(परात्म-ज्ञानसम्पन्नः)** उत्कृष्ट आत्म ज्ञान से सम्पन्न होता हुआ **(स्वयं एव)** स्वयं ही **(परः)** उत्कृष्ट आत्मा **(भवेत्)** होवे।

लिङ्गं देहाश्रितं दृष्टं देह एवात्मनो भवः।
न मुच्यन्ते भवात्तस्मात्ते ये लिङ्गकृताऽऽग्रहाः ॥८७॥

अन्वयार्थ– (लिङ्गं) लिङ्ग **(देहाश्रितं)** शरीर के आश्रित **(दृष्टं)** देखा गया है **(देहः)** शरीर **(एव)** ही **(आत्मनः)** आत्मा का **(भवः)** संसार है **(तस्मात्)** इसलिए **(ये)** जो लोग **(लिङ्गकृताऽऽग्रहाः)** लिंगधारण से ही मोक्ष है, ऐसा आग्रह करते हैं **(ते)** वे लोग **(भवात्)** संसार से **(न मुच्यन्ते)** नहीं छूटते हैं।

जातिर्देहाश्रिता दृष्टा देह एवात्मनो भवः।
न मुच्यन्ते भवात्तस्मात्ते ये जातिकृताग्रहाः ॥८८॥

अन्वयार्थ– (जातिः) जाति **(देहाश्रिता)** शरीर के आश्रित **(दृष्टा)** देखी गयी है **(देहः)** शरीर **(एव)** ही **(आत्मनः)** आत्मा का **(भवः)** संसार है। **(तस्मात्)** इस कारण से **(ये)** जो पुरुष **(जातिकृता-ग्रहाः)** जाति कृत आग्रह करने वाले हैं **(ते)** वे **(भवात्)** संसार से **(न मुच्यन्ते)** नहीं छूटते हैं।

जातिलिङ्गविकल्पेन येषां च समयाग्रहः।
तेऽपि न प्राप्नुवन्त्येव परमं पदमात्मनः॥८९॥

अन्वयार्थ–(येषां) जिनका **(च)** भी **(जातिलिङ्गविकल्पेन)** जाति और लिङ्ग के विकल्प से **(समयाग्रहः)** आगम सम्बन्धी आग्रह है **(ते)** वे **(अपि)** भी **(आत्मनः)** आत्मा के **(परमं)** उत्कृष्ट **(पदं)** पद को **(न एव)** नहीं **(प्राप्नुवन्ति)** प्राप्त करते हैं।

यत्त्यागाय निवर्तन्ते भोगेभ्यो यदवाप्तये।
प्रीतिं तत्रैव कुर्वन्ति द्वेषमन्यत्र मोहिनः॥९०॥

अन्वयार्थ–(यत् त्यागाय) जिस शरीर आदि के त्याग के लिए **(यत् अवाप्तये)** तथा जिस परम पद की प्राप्ति के लिए **(भोगेभ्यः)** भोगों से जीव **(निवर्तन्ते)** दूर हटते हैं पुनः **(मोहिनः)** मोही जीव **(तत्र एव)** उन त्याग की हुई वस्तुओं में ही **(प्रीतिं)** प्रेम **(कुर्वन्ति)** करते हैं **(अन्यत्र)** और परमपद के विषय में **(द्वेषम्)** द्वेष करते हैं।

अनन्तरज्ञः सन्धत्ते दृष्टिं पङ्गोर्यथाऽन्धके।
संयोगात् दृष्टिमङ्गेऽपि सन्धत्ते तद्वदात्मनः॥९१॥

अन्वयार्थ–(अनन्तरज्ञः) दो वस्तुओं के अन्तर को न जानने वाला **(यथा)** जिस प्रकार **(पङ्गोः)** पंगु की **(दृष्टिं)** दृष्टि को **(अन्धके)** अन्धे पुरुष में **(संयोगात्)** संयोग सम्बन्ध से **(सन्धत्ते)** मान लेता है **(तद्वत्)** वैसे ही **(आत्मनः)** आत्मा की **(दृष्टिं)** दृष्टि को **(अङ्गे अपि)** शरीर में भी **(सन्धत्ते)** धारण कर लेता है।

दृष्टभेदो यथा दृष्टिं पङ्गोरन्धे न योजयेत्।
तथा न योजयेद् देहे दृष्टात्मा दृष्टिमात्मनः ॥९२॥

अन्वयार्थ–(यथा) जैसे **(दृष्टभेदः)** लंगड़े और अन्धे के भेद को देखने वाला **(पङ्गोः)** लंगड़े की **(दृष्टिं)** दृष्टि को **(अन्धे)** अन्धे पुरुष में **(न**

योजयेत्) नहीं लगाता है **(तथा)** वैसे ही **(दृष्टात्मा)** शरीर और आत्मा को देखने वाला **(आत्मनः)** आत्मा के **(दृष्टिं)** दर्शन ज्ञानस्वरूप को **(देहे)** शरीर में **(न योजयेत्)** नहीं जोड़ता है।

सुप्तोन्मत्ताद्यवस्थैव विभ्रमोऽनात्मदर्शिनाम्।
विभ्रमोऽक्षीणदोषस्य सर्वावस्थाऽऽत्मदर्शिनः ॥९३॥

अन्वयार्थ—(अनात्मदर्शिनां) आत्मस्वरूप का वास्तविक परिज्ञान जिन्हें नहीं है ऐसे बहिरात्माओं को **(सुप्तोन्मत्तादि अवस्था एव)** केवल सोने व उन्मत्त होने की अवस्था ही **(विभ्रमः)** भ्रम रूप मालूम होती है, किन्तु **(आत्मदर्शिनः)** आत्मानुभवी अन्तरात्मा को **(अक्षीणदोषस्य)** मोहाक्रान्त बहिरात्मा की **(सर्वावस्थाः)** सर्व ही अवस्थाएँ—सुप्त और उन्मत्तादि अवस्थाओं की तरह जागृत, प्रबुद्ध और उन्मत्तादि अवस्थाएँ भी **(विभ्रमः)** भ्रमरूप मालूम होती हैं।

विदिताऽशेषशास्त्रोऽपि जाग्रदपि न मुच्यते।
देहात्मदृष्टिर्ज्ञातात्मा सुप्तोन्मत्तोऽपि मुच्यते ॥९४॥

अन्वयार्थ—(देहात्मदृष्टिः) देह में आत्मदृष्टि रखने वाला **(विदिताशेष-शास्त्रः अपि)** समस्त शास्त्रों का जानकार होकर भी **(जाग्रत् अपि)** जागता हुआ भी **(न मुच्यते)** नहीं मुक्त होता है **(ज्ञातात्मा)** आत्मस्वरूप का ज्ञाता **(सुप्तोन्मत्तः अपि)** सोया हुआ या उन्मत्त हुआ भी **(मुच्यते)** मुक्त हो जाता है।

यत्रैवाहितधीः पुंसः श्रद्धा तत्रैव जायते।
यत्रैव जायते श्रद्धा चित्तं तत्रैव लीयते ॥९५॥

अन्वयार्थ— (यत्र एव) जिस विषय में **(पुंसः)** पुरुष की **(आहितधीः)** बुद्धि लग जाती है **(तत्र एव)** उसी विषय में **(श्रद्धा)** उसकी श्रद्धा **(जायते)** उत्पन्न हो जाती है **(यत्र एव)** जिस विषय में ही **(श्रद्धा)** श्रद्धा **(जायते)** पैदा हो जाती है **(तत्र एव)** उसी में ही **(चित्तं)** मन **(लीयते)** लीन हो जाता है।

यत्रानाहितधीः पुंसः श्रद्धा तस्मान्निवर्तते।
यस्मान्निवर्तते श्रद्धा कुतश्चित्तस्य तल्लयः ॥९६॥

अन्वयार्थ—(यत्र) जिस विषय में **(पुंसः)** पुरुष की **(अनाहितधीः)** बुद्धि नहीं लगती है **(तस्मात्)** उस विषय से **(श्रद्धा)** रुचि **(निवर्तते)** हट जाती है। **(यस्मात्)** जिस विषय से **(श्रद्धा)** रुचि **(निवर्तते)** हट जाती है **(कुतः)** फिर कैसे **(चित्तस्य)** चित्त की **(तत् लयः)** उस विषय में लीनता हो।

भिन्नात्मानमुपास्यात्मा परो भवति तादृशः।
वर्तिर्दीपं यथोपास्य भिन्ना भवति तादृशी ॥९७॥

अन्वयार्थ— (यथा) जिस प्रकार **(भिन्ना वर्तिः)** वर्तिका दीपक से भिन्न होकर भी **(दीपं)** दीपक की **(उपास्य)** उपासना करके **(तादृशी)** उस दीपक रूप **(भवति)** हो जाती है उसी प्रकार **(आत्मा)** यह आत्मा **(भिन्नात्मानम्)** अपने से भिन्न अरहन्त सिद्ध परमात्मा की **(उपास्य)** उपासना करके **(तादृशः)** उन जैसा ही **(परः)** परमात्मा **(भवति)** हो जाती है।

उपास्यात्मानमेवात्मा जायते परमोऽथवा।
मथित्वाऽऽत्मानमात्मैव जायतेऽग्निर्यथा तरुः॥९८॥

अन्वयार्थ— (अथवा) अथवा **(आत्मा)** आत्मा **(आत्मानम् एव)** अपने को ही **(उपास्य)** ध्यान कर **(परमः)** परमात्मा **(जायते)** हो जाता है **(यथा)** जैसे **(तरु :)** वृक्ष **(आत्मानं)** अपने को ही **(मथित्वा)** रगड़ खाकर **(आत्मा एव)** अपने आप ही **(अग्निः)** अग्नि स्वरूप **(जायते)** हो जाता है।

इतीदं भावयेन्नित्यमवाचाङ्गोचरं पदम्।
स्वत एव तदाप्नोति यतो नावर्तते पुनः ॥९९॥

अन्वयार्थ—(इति) ऊपर कहे ढंग से **(इदं)** इन **(अवाचाङ्गोचरं)** वचनों के अगोचर **(पदं)** पद की **(नित्यं)** हमेशा **(भावयेत्)** भावना करनी चाहिए। **(स्वतः एव)** अपने आप ही **(तत्)** उस पद की **(आप्नोति)** प्राप्त होती है **(यतः)** जिस पद से **(पुनः)** फिर **(न आवर्तते)** लौटना नहीं पड़ता है।

अयत्नसाध्यं निर्वाणं चित्तत्त्वं भूतजं यदि।
अन्यथा योगतस्तस्मान्न दुःखं योगिनां क्वचित् ॥१००॥

अन्वयार्थ–(यदि) यदि **(चित्तत्वं)** चैतन्यपना **(भूतजं)** पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु इन चार भूतों से उत्पन्न है तो **(निर्वाणं)** निर्वाण की प्राप्ति **(अयत्नसाध्यं)** के लिए किसी प्रयत्न की जरूरत नहीं है **(अन्यथा)** अन्य प्रकार से निर्वाण होता है **(तस्मात्)** इसलिए **(योगिनां)** योगियों के **(योगतः)** योग साधना से **(क्वचित्)** किसी भी प्रकार का **(दुःखं)** कष्ट **(न)** नहीं होता है।

स्वप्ने दृष्टे विनष्टेऽपि न नाशोऽस्ति यथात्मनः।
तथा जागरदृष्टेऽपि विपर्यासाविशेषतः ॥१०१॥

अन्वयार्थ–(यथा) जैसे **(स्वप्ने)** स्वप्न **(दृष्टे)** देखने पर **(विनष्टे अपि)** उसके विनष्ट होने पर भी **(आत्मनः)** अपना **(नाशः)** विनाश **(न अस्ति)** नहीं होता **(तथा)** उसी प्रकार **(जागरदृष्टे अपि)** जागृत अवस्था में भी शरीर आदि का विनाश देखने पर भी अपना नाश नहीं होता देखता है **(विपर्यासा-विशेषतः)** क्योंकि विरोध दोनों में समान है।

अदुःखभावितं ज्ञानं क्षीयते दुःखसन्निधौ।
तस्माद्यथाबलं दुःखैरात्मानं भावयेन्मुनिः ॥१०२॥

अन्वयार्थ–(अदुःखभावितं ज्ञानं) दुख का अनुभव किए बिना जो ज्ञान अर्जित किया जाता है, वह **(दुःखसन्निधौ)** दुखों के सामने आने पर **(क्षीयते)** नाश को प्राप्त हो जाता है **(तस्मात्)** इसलिए **(मुनिः)** मुनि **(यथाबलं)** यथाशक्ति **(दुःखैः)** दुखों से **(आत्मानं)** आत्मा की **(भावयेत्)** भावना करे।

प्रयत्नादात्मनो वायुरिच्छाद्वेषप्रवर्तितात्।
वायोः शरीरयन्त्राणि वर्तन्ते स्वेषु कर्मसु ॥१०३॥

अन्वयार्थ– (आत्मनः) आत्मा के **(इच्छाद्वेषप्रवर्तितात्)** इच्छा और द्वेष से होने वाले **(प्रयत्नात्)** प्रयत्न से **(वायुः)** वायु चलती है **(वायोः)** उस वायु से **(शरीरयन्त्राणि)** शरीर के यंत्र **(स्वेषु कर्मसु)** अपने-अपने कार्यों में **(वर्तन्ते)** वर्तने लगते हैं।

तान्यात्मनि समारोप्य साक्षाण्यास्तेऽसुखं जडः।
त्यक्त्वाऽऽरोपं पुनर्विद्वान् प्राप्नोति परमं पदम् ॥१०४॥

अन्वयार्थ–(जडः) मूर्ख अज्ञानी जीव **(साक्षाणि)** इन्द्रियों से सहित

(तानि) इन शरीर यंत्रों को **(आत्मनि)** आत्मा में **(समारोप्य)** आरोपित करके **(असुखं आस्ते)** दुखी रहता है **(पुनः)** पर **(विद्वान्)** अन्तरात्मा **(आरोपं)** इस आरोप को **(त्यक्त्वा)** छोड़कर **(परमं पदं)** उत्कृष्ट पद को **(प्राप्नोति)** प्राप्त कर लेता है।

मुक्त्वा परत्र परबुद्धिमहंधियञ्च,
संसारदुःखजननीं जननाद्विमुक्तः।
ज्योतिर्मयं सुखमुपैति परात्मनिष्ठस्,
तन्मार्गमेतदधिगम्य समाधितन्त्रम् ॥१०५॥

अन्वयार्थ—(तन्मार्गं) उस परमपद की प्राप्ति का उपाय बताने वाले **(एतत् समाधितन्त्रम्)** इस 'समाधितन्त्र' शास्त्र को **(अधिगम्य)** जानकर **(संसार-दुःखजननीं)** संसार के दुखों को उत्पन्न करने वाली **(परत्र)** शरीर आदि पर पदार्थों में **(परबुद्धिं)** अपनेपन की ममकार बुद्धि **(च)** और **(अहं धियं)** अहंकार बुद्धि को **(मुक्त्वा)** छोड़कर **(परात्मनिष्ठः)** उत्कृष्ट आत्मा में लीन होता हुआ **(जननात् विमुक्तः)** संसार से छूटकर **(ज्योर्तिमयं सुखं)** ज्ञान ज्योतिमय सुख को **(उपैति)** जीव प्राप्त कर लेता है।

❑ ❑ ❑

गंगा भागीरथी नदी का उद्गम—गुणभद्र आचार्य, अध्याय १, श्लोक १४०-१४० में यह भी कथन किया है कि राजा भगीरथ ने वैराग्य, उत्पन्न होने पर वरदत्त पुत्र को राज्य लक्ष्मी देकर कैलाश पर्वत पर जाकर **शिवगुप्त महामुनि** के समीप निर्वाण दीक्षा ली और गंगा के किनारे ही प्रतिमायोग धारण किया। गंगा के तट से ही उन्होंने मोक्ष प्राप्त किया था। इन्द्र ने आकर क्षीरसागर के जल से भगीरथ मुनि के चरणों का अभिषेक किया था, उस अभिषेक का जल गंगा में मिला, तबसे ही यह गंगा संसार में तीर्थ रूप में पूज्य मानी जाती है। कहा भी है–

सुरेन्द्रेणास्य दुग्धाब्धिपयोभिरभिषेचनात्।
क्रमयोस्तत्प्रवाहस्य गङ्गायाः सङ्गमे सति॥
तदा प्रभृति तीर्थत्वंगङ्गाप्यस्मिन्नुपागता।
कृत्वोत्कृष्टं तपो गङ्गातटे निर्वृत्तिं गतः॥

बारसाणुपेक्खा

णमिऊण सव्वसिद्धे झाणुत्तम - खविददीह संसारे।
दस दस दो दो य जिणे दस-दो अणुपेहणं वोच्छे ॥१॥

अन्वयार्थ–(झाणुत्तमखविद) उत्तम ध्यान के द्वारा **(दीह संसारे)** दीर्घ संसार को नष्ट करने वाले **(सव्वसिद्धे)** सब सिद्धों को **(य)** और **(दस-दस)** बीस **(दो-दो)** चार अर्थात् चौबीस **(जिणे)** जिनेन्द्र तीर्थंकरों को **(णमिऊण)** नमस्कार करके **(दस-दो)** बारह **(अणुपेहणं)** अनुप्रेक्षाओं को **(वोच्छे)** कहूँगा।

अद्धुवमसरणमेयत्तमण्ण - संसार - लोगमसुचित्तं।
आसवसंवरणिज्जर-धम्मं बोहिं च चिंतेज्जो ॥२॥

अन्वयार्थ–(अद्धुव) अध्रुव (अनित्य) **(असरणं)** अशरण **(ऐयत्तं)** एकत्व **(अण्ण-संसार-लोगं)** अन्यत्व, संसार, लोक **(असुचित्तं)** अशुचित्व **(आसव-संवर)** आस्रव, संवर **(णिज्जर-धम्मं)** निर्जरा, धर्म **(च बोहिं)** और बोधि का **(चिंतेज्जो)** चिन्तन करना चाहिए।

वरभवण-जाण-वाहण-सयणासण-देवमणुवरायाणं।
मादुपिदुसजणभिच्च-य संबंधिणो पिदिवियाणिच्चा ॥३॥

अन्वयार्थ–(देव-मणुव-) देव, मनुष्य **(रायाणं)** और राजाओं के **(वर)** श्रेष्ठ(सुन्दर) **(भवण)** महल **(जाण वाहण)** जहाज, वाहन (सवारी) **(सयणासण)** शय्या, आसन **(मादुपिदुसजण)** माता-पिता, स्वजन **(भिच्च)** भृत्य **(संबंधिणो)** सम्बन्धी **(य)** और **(पिदिविया)** पितृव्य (चाचा, ताऊ आदि सभी) **(अणिच्चा)** अनित्य (नाशवान) हैं।

सामग्गिदियरूवं आरोग्गं जोव्वणं बलं तेजं।
सोहग्गं लावण्णं सुरधणुमिव सस्सयं ण हवे ॥४॥

अन्वयार्थ–(इंदिय रूवं) इन्द्रियों का स्वरूप **(आरोग्गं)** आरोग्य **(जोव्वणं)** यौवन **(बलं तेजं)** बल, तेज **(सोहग्गं)** सौभाग्य **(लावण्णं)** लावण्य (सौन्दर्य) रूप **(सामग्गी)** सामग्री **(सुरधणुमिव)** इन्द्रधनुष के समान **(सस्सदं)** शाश्वत **(ण हवे)** नहीं होती है।

जलबुब्बुद सक्क धणु खणरुचि-घणसोहमिव थिरं ण हवे।
अहमिंदट्ठाणाइं बलदेवप्पहुदि पज्जाया ॥५॥

अन्वयार्थ–(अहमिंदट्ठाणाइं) अहमिन्द्र के स्थान (पद) एवं **(बल-देवप्प-हुदि)** बलदेव आदि की **(पज्जाया)** पर्यायें **(जलबुब्बुद)** जल के बुलबुले **(सक्कधणु)** इन्द्रधनुष **(खणरुचि)** बिजली की चमक (और) **(घणसोह-मिव)** बादलों की शोभा के समान **(थिरं ण हवे)** स्थिर नहीं रहतीं।

जीवणिबद्धं देहं खीरोदयमिव विणस्सदे सिग्घं।
भोगोपभोगकारणदव्वं णिच्चं कहं होदि ॥६॥

अन्वयार्थ–(देहं) इस देह का **(खीरोदयमिव)** दूध-पानी के समान **(जीवणिबद्धं)** जीव के साथ (जो) सम्बन्ध है, जब वह भी **(सिग्घं)** शीघ्र **(विणस्सदे)** नष्ट हो जाता है तब **(भोगोपभोगकारण)** भोगोपभोग का कारणभूत **(दव्वं)** द्रव्य **(कहं णिच्चं होदि)** कैसे नित्य हो सकता है।

परमट्ठेण दु आदा देवासुरमणुवराय विहवेहिं।
वदिरित्तो सो अप्पा सस्सदमिदि चिंतए णिच्चं ॥७॥

अन्वयार्थ–(परमट्ठेण दु) परमार्थ (निश्चय) से तो **(आदा)** आत्मा **(देवासुरमणुव)** देव, असुर, मनुष्य (और) **(रायविहवेहिं)** राजाओं के वैभव से **(सो अप्पा)** वह आत्मा **(सस्सदं)** शाश्वत् है **(इदि)** इस प्रकार **(णिच्चं चिंतए)** नित्य चिन्तन करना चाहिए।

मणिमंतोसहरक्खा हयगयरहओ य सयलविज्जाओ।
जीवाणं ण हि सरणं तिसु लोए मरणसमयम्हि ॥८॥

अन्वयार्थ–(मरणसमयम्हि) मरण के समय **(तिसु लोए)** तीनों लोकों में **(मणिमंतोसहरक्खा)** मणि, मंत्र, औषधि रक्षा के उपकरण **(हयगयरहओ)** घोड़े, हाथी, रथ **(य)** और **(सयलज्जिाओ)** समस्त विद्यायें **(जीवाणं)** जीवों के **(हि)** निश्चय से **(सरणं ण)** शरण नहीं है।

सग्गो हवे हि दुग्गं भिच्चा देवा य पहरणं वज्जं।
अइरावदो गइंदो इंदस्स ण विज्जदे सरणं ॥९॥

अन्वयार्थ–(हि) निश्चय से **(सग्गो)** स्वर्ग (जिसका) **(दुग्गं हवे)** दुर्ग है **(देवा भिच्चा)** देव भृत्य हैं **(य)** और **(अइरावदो गइंदो)** ऐरावत गजेन्द्र है, उस **(इंदस्स)** इन्द्र का (भी मृत्यु के समय कोई) **(सरणं ण विज्जदे)** शरण नहीं है।

णवणिहि चउदहरयणं हयमत्तगइंदचाउरंगबलं।
चक्के सस्स ण सरणं पेच्छंतो कड्ढिए काले ॥१०॥

अन्वयार्थ–(काले कड्ढिय) काल के द्वारा मर्दन किए जाने पर **(णवणिहि)** नवनिधि **(चउदह रयणं)** चौदह रत्न **(हय मत्तगइंद)** घोड़े, मत्त हाथी **(य)** और **(चाउरंग बलं)** चतुरंगिनी सेना **(चक्केसस्स)** चक्रवर्ती को **(सरणं ण)** शरण नहीं **(पेच्छंतो)** दिखाई देते।

जाईजरमरणरोगभयदो रक्खेदि अप्पणो अप्पा।
तम्हा आदा सरणं बंधोदयसत्त-कम्मवदिरित्तो ॥११॥

अन्वयार्थ–(अप्पा) आत्मा **(जाईजरमरण)** जन्म-जरा-मरण **(रोग-भयदो)** रोग (और) भय से **(अप्पणो रक्खेदि)** अपनी रक्षा करता है **(तम्हा)** इसलिए **(बंधोदयसत्त)** बन्ध, उदय, सत्त्व रूप **(कम्मवदिरित्तो)** कर्मों से रहित **(आदा सरणं)** आत्मा शरण है।

अरुहा सिद्धा - इरिया उवझाया साहु पंचपरमेट्ठी।
ते वि हु चेट्ठदि आदे तम्हा आदा हु मे सरणं ॥१२॥

अन्वयार्थ–(अरुहा) अर्हन्त **(सिद्धाइरिया)** सिद्ध, आचार्य **(उवझाया)** उपाध्याय (और) **(साहु पंचपरमेट्ठी)** साधु ये पञ्च परमेष्ठी हैं **(ते वि हु)** वे भी निश्चय से **(आदे)** आत्मा में **(चेट्ठदि)** लीन रहते हैं, प्रवर्तते हैं **(तम्हा)** अतः **(आदा हु)** आत्मा ही **(मे सरणं)** मेरा शरण है।

सम्मत्तं सण्णाणं सच्चारित्तं च सत्तवो चेव।
चउरो चेट्ठदि आदे तम्हा आदा हु मे सरणं ॥१३॥

अन्वयार्थ–(सम्मत्तं) सम्यग्दर्शन **(सण्णाणं)** सम्यग्ज्ञान **(च)** और **(सच्चारित्तं)** सम्यक्चारित्र **(चेव सत्तवो)** तथा सम्यक् तप **(चउरो)** (ये) चारों **(आदे चेट्ठदि)** आत्मा में अवस्थित हैं **(तम्हा)** अतः **(मे आदा हु)** मेरा आत्मा ही **(सरणं)** शरण है।

एक्को करेदि कम्मं एक्को हिंडदि य दीहसंसारे।
एक्को जायदि मरदि य तस्य फलं भुंजदे एक्को ॥१४॥

अन्वयार्थ–(एक्को) यह संसारी जीव अकेला ही **(कम्मं करेदि)** कर्म करता है (बाँधता है) **(य)** और **(एक्को)** अकेला ही **(दीह संसारे)** दीर्घ

संसार में **(हिंडदि)** परिभ्रमण करता है **(एक्को)** अकेला ही **(जायदि य मरदि)** जन्म लेता है और मरता है **(एक्को)** और अकेला ही **(तस्स फलं भुंजदे)** उस कर्म के फल को भोगता है।

एक्को करेदि पावं विसयणिमित्तेण तिव्वलोहेण।
णिरयतिरियेसु जीवो तस्स फलं भुंजदे एक्को ॥१५॥

अन्वयार्थ–(एक्को) अकेला ही **(विसयणिमित्तेण)** विषयों के निमित्त **(तिव्वलोहेण)** तीव्र लोभ से **(पावं करेदि)** पाप करता है (और) **(एक्को)** अकेला ही **(जीवो)** (यह) जीव **(णिरयतिरियेसु)** नरक और तिर्यञ्च गति में **(तस्स फलं)** उस कर्म के फल को **(भुंजदे)** भोगता है।

एक्को करेदि पुण्णं धम्मणिमित्तेण पत्तदाणेण।
मणुवदेवेसु जीवो तस्स फलं भुंजदे एक्को ॥१६॥

अन्वयार्थ–(एक्को) अकेला ही **(धम्मणिमित्तेण)** धर्म के निमित्त (कारणभूत) **(पत्तदाणेण)** पात्रदान के द्वारा **(पुण्णं करेदि)** पुण्य करता (बाँधता) है और **(जीवो)** यह जीव **(एक्को)** अकेला ही **(मणुवदेवेसु)** मनुष्य और देवगति में **(तस्स फलं)** उस पुण्य के फल को **(भुंजदे)** भोगता है।

उत्तमपत्तं भणियं सम्मत्तगुणेण संजुदो साहू।
सम्मादिट्ठी सावय मज्झिमपत्तो हु विण्णेओ ॥१७॥

अन्वयार्थ–(सम्मत्तगुणेण) सम्यक्त्व गुण से **(संजुदो साहू)** युक्त साधु (दान का) **(उत्तमपत्तं)** उत्तम पात्र **(भणियं)** कहा गया है (और) **(सम्मादिट्ठी सावय)** सम्यग्दृष्टि श्रावक (को) **(हु)** वास्तव में **(मज्झिमपत्तो)** मध्यम पात्र **(विण्णेओ)** समझना चाहिए।

णिद्दिट्ठो जिणसमए अविरदसम्मो जहण्ण पत्तो त्ति।
सम्मत्तरयणरहिदो अपत्तमिदि संपरिक्खेज्जो ॥१८॥

अन्वयार्थ–(जिणसमए) जिनेन्द्र भगवान् के धर्म में **(अविरदसम्मो)** अविरत सम्यग्दृष्टि को (दान का) **(जहण्ण पत्तो)** जघन्य पात्र **(णिद्दिट्ठो)** कहा गया है जो **(सम्मत्तरयणरहिदो)** सम्यक्त्व रत्न से रहित है (वह) **(अपत्तं)** अपात्र है **(इदि)** इस प्रकार (पात्र-अपात्र की) **(सं परिक्खेज्जो)**

परीक्षा करनी चाहिए।

दंसणभट्टा भट्टा दंसणभट्टस्स णत्थि णिव्वाणं।
सिज्झंति चरियभट्टा दंसणभट्टा ण सिज्झंति ॥१९॥

अन्वयार्थ—जो **(दंसणभट्टा)** सम्यग्दर्शन से भ्रष्ट हैं (वे ही वास्तव में) **(भट्टा)** भ्रष्ट हैं **(दंसणभट्टस्स)** दर्शन से भ्रष्ट जीवों को **(णिव्वाणं णत्थि)** निर्वाण नहीं होता **(चरियभट्टा)** जो चारित्र से भ्रष्ट हो जाते हैं (पुनः चारित्र धारण कर) **(सिज्झंति)** सिद्ध पद प्राप्त कर सकते हैं **(दंसणभट्टा)** दर्शन से भ्रष्ट **(ण सिज्झंति)** सिद्ध पद प्राप्त नहीं कर सकते।

एक्कोहं णिम्ममो सुद्धो णाणदंसण लक्खणो।
सुद्धेयत्तमुपादेय एवं चिंतेइ संजदो ॥२०॥

अन्वयार्थ—**(अहं)** मैं **(एक्को)** एक हूँ (अकेला हूँ) **(णिम्ममो)** ममता रहित हूँ **(सुद्धो)** शुद्ध हूँ **(णाणदंसण लक्खणो)** ज्ञान-दर्शन स्वभावी हूँ **(सुद्धेयत्तं)** शुद्ध एकत्व स्वरूप ही **(उपादेयं)** उपादेय है **(एवं)** इस प्रकार **(संजदो)** संयमी को **(चिंतेइ)** चिन्तन करना चाहिए।

मादापिदरसहोदरपुत्तकलत्तादि - बंधुसंदोहो।
जीवस्स ण संबंधो णिय कज्जवसेण वट्टंति ॥२१॥

अन्वयार्थ—**(मादापिदर)** माता-पिता **(सहोदर)** सगा भाई **(पुत्त कलत्तादि)** पुत्र, स्त्री आदि **(बंधु संदोहो)** बंधुओं का समूह (इनसे) **(जीवस्स)** जीव का **(संबंधो ण)** सम्बन्ध नहीं है ये सब **(णिय कज्जवसेण)** अपने कार्यवश (स्वार्थवश) **(वट्टंति)** साथ रहते हैं।

अण्णो अण्णं सोयदि मदो त्ति मम णाहगो त्ति मण्णंतो।
अप्पाणं ण हु सोयदि संसार महण्णवे बुड्ढं ॥२२॥

अन्वयार्थ—**(मदो त्ति)** यह मर गया **(मम णाहगो)** यह मेरा स्वामी था **(त्ति मण्णंतो)** ऐसा मानता हुआ **(अण्णो)** अन्य संसारी जीव **(अण्णं)** अन्य जीव के लिए **(सोयदि)** शोक करता है, किन्तु **(संसार महण्णवे)** संसार रूपी महासमुद्र में **(बुड्ढं)** डूबते हुए **(अप्पाणं)** अपनी आत्मा के लिए **(ण हु सोयदि)** शोक नहीं करता।

अण्णं इमं सरीरादिगं पि जं होज्ज बाहिरं दव्वं।
णाणं दंसणमादा एवं चिंतेहि अण्णत्तं ॥२३॥

अन्वयार्थ–(इमं) यह **(सरीरदिगं पि)** शरीर आदि भी (आत्मा से) **(अण्णं)** अन्य हैं **(जं)** क्योंकि (ये) **(बाहिरं दव्वं)** बाह्य द्रव्य **(होज्ज)** हैं और **(आदा)** आत्मा **(णाणं दंसणं)** ज्ञान दर्शन स्वरूप है **(एवं अण्णत्तं)** इस प्रकार अन्यत्व (भावना) का **(चिंतेहि)** चिन्तन करो।

पंचविहे संसारे जाइजरामरण रोगभयपउरे।
जिणमग्गमपेच्छंतो जीवो परिभमदि चिरकालं ॥२४॥

अन्वयार्थ–(जिणमग्गं) जिनमार्ग को **(अपेच्छंतो)** न देखने वाला (श्रद्धान न करने वाला) **(जीवो)** जीव **(जाइजरामरण)** जन्म, जरा, मृत्यु **(रोग-भयपउरे)** रोग और भय से भरे हुए **(पंचविहे संसारे)** पाँच प्रकार के संसार में **(चिरकालं)** चिरकाल तक **(परिभमदि)** परिभ्रमण करता है।

सव्वे वि पोग्गला खलु एगे भुत्तुज्झिया हु जीवेण।
असयं अणंतखुत्तो पुग्गलपरियट्ट संसारे ॥२५॥

अन्वयार्थ–(पुग्गलपरियट्ट) पुद्गल-परावर्तन रूप **(संसारे)** संसार में **(एगे जीवेण)** एक जीव ने **(खलु)** निश्चय से **(सव्वे वि)** सभी **(पोग्गला)** पुद्गलों को **(असयं)** बार-बार **(अणंतखुत्तो)** अनन्त बार **(हु)** वस्तुतः **(भुत्तुज्झिया)** भोगकर त्याग दिया है।

सव्वम्हि लोयखेत्ते कमसो तण्णत्थि जण्ण उप्पण्णं।
ओग्गाहणेण बहुसो परिभमिदो खेत्तसंसारे ॥२६॥

अन्वयार्थ–(सव्वम्हि) सम्पूर्ण **(लोयखेत्ते)** लोक के क्षेत्र में (लोकाकाश में) **(तण्णत्थि)** वह नहीं है (कोई स्थान ऐसा नहीं है) **(जण्ण)** जहाँ (यह जीव) **(कमसो)** क्रमशः **(बहुसो)** नाना प्रकार की **(ओग्गाहणेण)** अवगाहना के द्वारा **(ण उप्पण्णं)** नहीं उत्पन्न हुआ (इस प्रकार इस जीव ने) **(खेत्तसंसारे)** क्षेत्र संसार में **(परिभमिदो)** परिभ्रमण किया है।

अवसप्पिणिउस्सप्पिणिसमयावलियासु णिरवसेसासु।
जादो मुदो य बहुसो परिभमिदो कालसंसारे ॥२७॥

अन्वयार्थ–(अवसप्पिणि) अवसर्पिणी (और) **(उस्सप्पिणि)** उत्सर्पिणी काल की **(णिरवसेसासु)** सम्पूर्ण **(समयावलियासु)** समयावलियों में

(बहुसो) अनेक बार (जीव ने) **(जादो य मुदो)** जन्म लिया और मरण किया है (इस प्रकार) **(कालसंसारे)** काल संसार में **(परिभमिदो)** परिभ्रमण किया है।

णिरयाउजहण्णादिसु जावदु उपरिल्लया दु गेवेज्जा।
मिच्छत्तसंसिदेण दु बहुसो वि भवट्ठिदी भमिदो ॥२८॥

अन्वयार्थ—(णिरयाउजहण्णादिसु) जघन्य आयु वाले नरक से लेकर **(उपरिल्लया)** उपरिम **(गेवेज्जा)** ग्रैवेयक **(जावदु)** पर्यन्त **(मिच्छत्त-संसिदेण)** मिथ्यात्व के वशीभूत (जीव ने) **(दु)** वस्तुतः **(बहुसो वि)** अनेक बार **(भवट्ठिदी)** भवस्थिति धारण कर **(भमिदो)** भ्रमण किया है।

सव्वे पयडिट्ठिदिओ अणुभागपदेसबंधठाणाणि।
जीवो मिच्छत्तवसा भमिदो पुण भावसंसारे ॥२९॥

अन्वयार्थ—(भावसंसारे) भाव संसार में **(मिच्छत्तवसा)** मिथ्यात्व के वशीभूत **(जीवो)** जीव ने **(सव्वे)** सभी कर्मों के **(पयडिट्ठिदिओ)** प्रकृति, स्थिति **(अणुभागपदेसबंधठाणाणि)** अनुभाग और प्रदेश बन्ध के सभी स्थानों **(पुण भमिदो)** बार-बार भ्रमण किया है।

पुत्तकलत्तणिमित्तं अत्थं अज्जयदि पावबुद्धीए।
परिहरदि दयादाणं सो जीवो ममदि संसारे ॥३०॥

अन्वयार्थ—जो **(पुत्तकलत्तणिमित्तं)** पुत्र और स्त्री के लिए **(पावबुद्धीए)** पाप बुद्धि से **(अत्थं)** धन **(अज्जदि)** कमाता है और **(दया-दाणं)** दया और दान को **(परिहरदि)** छोड़ देता है **(सो जीवो)** वह जीव **(संसारे भमदि)** संसार में भ्रमण करता है।

मम पुत्तं मम भाज्जा मम धण धण्णो त्ति तिव्व कंखाए।
चइऊण धम्मबुद्धिं पच्छा परिपडदि दीहसंसारे ॥३१॥

अन्वयार्थ—(मम पुत्तं) मेरा पुत्र है **(मम भाज्जा)** मेरी भार्या है **(मम धण धण्णो)** मेरा धन-धान्य है **(त्ति)** ऐसी **(तिव्व कंखाए)** तीव्र आकांक्षा (इच्छा) से **(धम्मबुद्धिं)** धर्म-बुद्धि को **(चइऊण)** छोड़कर **(पच्छा)** पश्चात् (बाद में) **(दीहसंसारे)** दीर्घ संसार में **(परिपडदि)** गिरता है (भ्रमण करता है)।

मिच्छोदयेण जीवो णिंदंतो जोण्ह भासिदं धम्मं।
कुधम्म कुलिंगकुतित्थं मण्णंतो भमदि संसारे ॥३२॥

अन्वयार्थ—(जीवो) संसारी जीव **(मिच्छोदयेण)** मिथ्यात्व के उदय से **(जोण्ह भासिदं)** जिनेन्द्र भगवान् द्वारा भाषित **(धम्मं)** धर्म की **(णिंदंतो)** निंदा करता हुआ **(कुधम्म कुलिंगकुतित्थं)** कुधर्म, कुलिंग और कुतीर्थ को **(मण्णंतो)** मानता हुआ **(संसारे भमदि)** संसार में भ्रमण करता है।

हंतूण जीवरासिं महुमंसं सेविऊण सुरपाणं।
परदव्व परकलत्तं गहिऊण य भमदि संसारे ॥३३॥

अन्वयार्थ—संसारी जीव **(जीवरासिं)** जीवराशि को **(हंतूण)** मारकर **(महुमंसं)** मधु, मांस और **(सुरपाणं)** मदिरापान **(सेविऊण)** सेवन कर **(य)** और **(परदव्व परकलत्तं)** पराये धन तथा परायी स्त्री को **(गहिऊण)** ग्रहण कर **(संसारे भमदि)** संसार में परिभ्रमण करता है।

जत्तेण कुणइ पावं विसयणिमित्तं च अहण्णिसं जीवो।
मोहंधयारसहिओ तेण दु परिपडदि संसारे ॥३४॥

अन्वयार्थ—(मोहंधयारसहिओ) मोहरूपी अंधकार से युक्त **(जीवो)** जीव **(अहण्णिसं)** दिन-रात **(विसयणिमित्तं)** इन्द्रिय विषयों के लिए **(जत्तेण)** यत्नपूर्वक **(पावं कुणइ)** पाप करता है **(तेण दु)** इसलिए **(संसारे परिपडदि)** संसार में गिरता है।

णिच्चदरधादु सत्त य तरु दस वियलिंदियेसु छच्चेव।
सुरणिरयतिरय चउरो चोद्दस मणुवे सदसहस्सा ॥३५॥

अन्वयार्थ—(णिच्चदरधादु) नित्यनिगोद, इतरनिगोद और धातु (पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु कायिक) इनमें से प्रत्येक की **(सत्त सदसहस्सा)** सात लाख **(य)** और **(तरु)** वनस्पतिकाय की **(दस सदसहस्सा)** दस लाख **(वियलिंदियेसु)** विकलेन्द्रियों (द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय) की **(छच्चेव सदसहस्सा)** छह लाख **(सुरणिरयतिरय)** देव, नारकी और तिर्यञ्च (पञ्चेन्द्रिय) **(चउरो सदसहस्सा)** (प्रत्येक की) चार लाख **(मणुवे)** मनुष्यों की **(चोद्दस सदसहस्सा)** चौदह लाख (इस तरह कुल चौरासी लाख योनियाँ हैं)।

संजोगविप्पजोगं लाहालाहं सुहं च दुक्खं च।
संसारे भूदाणं होदि हु माणं तहावमाणं च ॥३६॥

अन्वयार्थ–(संसारे) संसार में **(भूदाणं)** प्राणियों को **(संजोगविप्पजोगं)** संयोग, वियोग **(च)** और **(लाहालाहं)** लाभ, अलाभ **(तहा)** तथा **(माणं च अवमाणं)** मान और अपमान **(हु होदि)** अवश्य ही प्राप्त होते हैं।

कम्मणिमित्तं जीवो हिंडदि संसारघोरकांतारे।
जीवस्स ण संसारो णिच्छयणयेण कम्मणिम्मुक्को ॥३७॥

अन्वयार्थ–(जीवो) जीव **(कम्मणिमित्तं)** कर्म के निमित्त से **(संसार-घोरकांतारे)** संसार रूपी भगवान वन में **(हिंडदि)** भ्रमण करता है (किन्तु) **(णिच्छयणयेण)** निश्चयनय से **(जीवस्स)** जीव के **(संसारो ण)** संसार नहीं है (क्योंकि वह परमार्थतः) **(कम्मणिम्मुक्को)** कर्मों से रहित है।

संसारमदिक्कंतो जीवोवादेयमिदि विचिंतिज्जो।
संसार-दुहक्कंतो जीवो सो हेयमिदि विचिंतिज्जो ॥३८॥

अन्वयार्थ–(संसारमदिक्कंतो) जिसने संसार को पार कर लिया है (वह) **(जीवोवादेयं)** जीव उपादेय है **(इदि)** ऐसा **(विचिंतिज्जो)** चिन्तन करना चाहिए (तथा) **(संसार-दुहक्कंतो)** जो संसार के दुःखों से आक्रान्त है **(सो जीवो)** वह जीव **(हेयं)** हेय है**(इति विचिंतिज्जो)** ऐसा चिन्तन करना चाहिए।

जीवादिपयत्थाणं समवाओ सो णिरुच्चये लोगो।
तिविहो हवेइ लोगो अहमज्झिम उड्ढभेएण ॥३९॥

अन्वयार्थ–(जीवादिपयत्थाणं) जीवादि पदार्थों का (जो) **(समवाओ)** समुदाय **(सो)** वह **(लोगो)** लोक **(णिरुच्चये)** कहलाता है **(लोगो)** लोक **(अहमज्झिम)** अधोलोक, मध्यलोक और ऊर्ध्वलोक **(उड्ढभेएण)** के भेद से **(तिविहो हवेइ)** तीन प्रकार का होता है।

णिरया हवंति हेट्ठा मज्झे दीवंबुरासयोसंखा।
सग्गो तिसट्ठिभेओ एत्तो उड्ढं हवे मोक्खो ॥४०॥

अन्वयार्थ–(णिरया) नरक **(हेट्ठा हवंति)** अधोलोक में हैं **(मज्झे)** मध्यलोक में **(असंखा दीवंबुरासयो)** असंख्यात द्वीप और समुद्र हैं **(सग्गो)** स्वर्गों के **(तिसट्ठिभेओ)** त्रेसठ भेद (पटल) हैं **(एत्तो उड्ढं)** इससे ऊपर **(मोक्खो हवे)** मोक्ष है।

इगतीस-सत्त चत्तारि दोण्णि एकेक्क छक्क चदुकप्पे।
तित्तिय एक्केक्केंदय णामा उडुआदि तेसट्ठी ॥४१॥

अन्वयार्थ–(इगतीस) (सौधर्म ऐशान स्वर्ग के) इकतीस पटल **(सत्त)** (सानतकुमार माहेन्द्र स्वर्ग के) सात **(चत्तारि)** (ब्रह्म-ब्रह्मोतर स्वर्ग के) सात **(दोण्णि)** (लान्तव-कापिष्ठ स्वर्ग के) दो **(एकेक्क)** (शुक्र-महाशुक्र, शतार-सहस्रार स्वर्ग के) एक-एक **(चदुकप्पे)** (आनत-प्राणत, आरण-अच्युत स्वर्ग के) चार कल्पों में **(छक्क)** छह **(तित्तिय)** (अधो, मध्य और ऊर्ध्व ग्रैवेयक के) तीन-तीन **(एकेक्क)** (नव अनुदिश और पाँच अनुत्तर का)एक-एक **(उडु आदि)** ऋतु आदि **(इंदय णामा)** इन्द्रक नामक **(तेसट्ठी)** त्रेसठ पटल होते हैं।

असुहेण णिरयतिरियं सुहउवजोगेण दिविजणरसोक्खं।
सुद्धेण लहइ सिद्धिं एवं लोगं विचिंतिज्जो ॥४२॥

अन्वयार्थ–जीव **(असुहेण)** अशुभभाव से **(णिरयतिरियं)** नरक और तिर्यञ्चगति प्राप्त करता है **(सुह उवजोगेण)** शुभ उपयोग से **(दिविजणर-सोक्खं)** स्वर्ग और मनुष्यगति के सुख प्राप्त करता है और **(सुद्धेण)** शुद्ध उपयोग से **(सिद्धिं लहइ)** मोक्ष प्राप्त करता है **(एवं लोगं)** इस प्रकार लोक का **(विचिंतिज्जो)** चिन्तन करना चाहिए।

अट्ठीहिं पडिबद्धं मंसविलित्तं तएण ओच्छण्णं।
किमिसंकुलेहिं भरियमचोक्खं देहं सदाकालं ॥४३॥

अन्वयार्थ–(देहं) यह देह **(अट्ठीहिं)** हड्डियों से **(पडिबद्धं)** बना हुआ है **(मंसविलित्तं)** मांस से लिप्त है **(तएण)** त्वचा से **(ओच्छण्णं)** ढका या मढ़ा हुआ है **(किमिसंकुलेहिं)** कीट समूहों से **(भरियं)** भरा हुआ है (अतः यह देह) **(सयाकालं)** सदैव **(अचोक्खं)** अपवित्र है।

दुग्गंधं बीभच्छं कलिमलभरिदं अचेयणं मुत्तं।
सडणप्पडणसहावं देहं इदि चिंतये णिच्चं ॥४४॥

अन्वयार्थ—(देहं) यह देह **(दुग्गंधं बीभच्छं)** दुर्गन्धमय है, बीभत्स है **(कलिमलभरिदं)** गन्दे मल से भरा हुआ है **(अचेयणं)** अचेतन है **(मुत्तं)** मूर्तिक है **(सडणप्पडणसहावं)** सड़ना गलना इसका स्वभाव है **(इदि णिच्चं)** इस प्रकार सदा **(चिंतये)** चिन्तन करना चाहिए।

रसरुहिरमंसमेदट्ठी मज्जसंकुलं मुत्तपूय - किमिबहुलं।
दुग्गंधमसुचि चम्ममयमणिच्चमचेयणं पडणं ॥४५॥

अन्वयार्थ—(यह शरीर) **(रसरुहिरमंस)** रस, रुधिर, मांस **(मेदट्ठी मज्ज-संकुलं)** चर्बी, अस्थि, मज्जा से भरा हुआ है **(मुत्तपूयकिमिबहुलं)** (इसमें) मूत्र, मवाद और कृमि की बहुलता है **(दुग्गंधं)** दुर्गन्धमय है **(असुचि)** अपवित्र है **(चम्ममयमयं)** चर्ममय **(अणिच्चं)** अनित्य है **(अचेयणं)** अचेतन है (और) **(पडणं)** पतनशील (नाशवान) है।

देहादो वदिरित्तो कम्मविरहिओ अणंतसुहणिलओ।
चोक्खो हवेइ अप्पा इदि णिच्चं भावणं कुज्जा ॥४६॥

अन्वयार्थ—(अप्पा) आत्मा **(देहादो वदिरित्तो)** देह से भिन्न है **(कम्म-विरहिओ)** कर्मों से रहित **(अणंत सुहणिलओ)** अनन्त सुख का धाम है **(चोक्खो हवेइ)** शुद्ध है **(इदि)** ऐसी **(णिच्चं भावणं)** भावना सदा **(कुज्जा)** करनी चाहिए।

मिच्छत्तं अविरमणं कसाय जोगा य आसवा होंति।
पणपणचउतियभेदा सम्मं परिकित्तिदा समए ॥४७॥

अन्वयार्थ—(मिच्छत्तं अविरमणं) मिथ्यात्व, अविरति **(कसाय जोगा य)** कषाय और योग (ये) **(आसवा होंति)** आस्रव होते हैं (इनके क्रमशः) **(पण पण चउ)** पाँच, पाँच, चार और **(तियभेदा)** तीन भेद **(समए)** जिन शास्त्र में **(सम्मं)** सम्यक् प्रकार से **(परिकित्तिदा)** कहे गये हैं।

एयंतविणयविवरियसंसयमण्णाणमिदि हवे पंच।
अविरमणं हिंसादी पंचविहो हवइ णियमेण ॥४८॥

अन्वयार्थ—मिथ्यात्व के **(एयंतविणयविवरिय)** एकान्त, विनय, विपरीत **(संसयमण्णाणं)** संशय और अज्ञान **(इदि)** ये **(पंच हवे)** पाँच भेद होते

हैं **(अविरमणं)** अविरति **(णियमेण)** नियम से **(हिंसादी पंचविहो)** हिंसादि पाँच प्रकार की **(हवइ)** होती है।

कोहो माणो माया लोहो इदि चउव्विहं कसायं खु।
मणवचकायेण पुणे जोगो तिवियप्पमिदि जाणे ॥४९॥

अन्वयार्थ–(कसायं) कषाय **(खु)** निश्चय से **(कोहो माणो माया लोहो)** क्रोध, मान, माया, लोभ **(इदि चउव्विहं)** इस तरह चार प्रकार की है **(पुणो)** पुनः और **(जोगो)** योग **(मणवचकायेण)** मन, वचन, काय के भेद से **(तिवियप्पं)** तीन प्रकार का है **(इदि जाणे)** ऐसा जानो।

असुहेदरभेदेण दु एक्केक्कं वण्णिदं हवे दुविहं।
आहारादी सण्णा असुहमणं इदि विजाणेहि ॥५०॥

अन्वयार्थ–उन तीनों योगों में से **(एक्केक्कं)** प्रत्येक योग **(असुहेदरभेदेण दु)** अशुभ और इतर अर्थात् शुभ के भेद से **(दुविहं)** दो प्रकार का **(वण्णिदं हवे)** बतलाया गया है **(आहारादि सण्णा)** आहारादि संज्ञा **(असुहमणं)** अशुभ मन है **(इदि विजाणेहि)** ऐसा जाना।

किण्हादि तिण्ण लेस्सा करणजसोक्खेसु गिद्धपरिणामो।
ईसा विसादभावो असुहमणं त्तिय जिणा वेंति ॥५१॥

अन्वयार्थ–(किण्हादि) कृष्ण आदि **(तिण्ण लेस्सा)** तीन लेश्याएँ **(करणजसोक्खेसु)** इन्द्रियजन्य सुखों में **(गिद्धपरिणामो)** गृद्धता रूप परिणाम **(ईसा विसादभावो)** ईर्ष्या और विषाद रूप भाव **(असुहमणं)** अशुभ मन हैं **(त्तिय)** ऐसा **(जिणा वेंति)** जिनेन्द्रदेव जानते हैं।

रागो दोसो मोहो हस्सादि-णोकसाय परिणामो।
थूलो वा सुहुमो वा असुहमणो त्ति य जिणावेंति ॥५२॥

अन्वयार्थ–(रागो दोसो मोहो) राग-द्वेष-मोह **(हस्सादि)** हास्य आदि **(णोकसाय परिणामो)** नोकषाय रूप परिणाम **(थूलो वा)** चाहे वे स्थूल हों **(सुहुमो वा)** अथवा सूक्ष्म हों **(असुहमणो)** अशुभ मन हैं **(त्ति य)** ऐसा **(जिणावेंति)** जिनेन्द्रदेव जानते हैं।

भत्तित्थिराय चोरकहाओ वयणं वियाण असुहमिदि।
बंधण छेदणमारणकिरिया सा असुहकायेत्ति ॥५३॥

अन्वयार्थ—(भत्तित्थि) भोजनकथा, स्त्रीकथा **(राय चोरकहाओ)** राजकथा और चोरकथा **(असुहं वयणं)** अशुभ वचन हैं **(इदि वियाण)** ऐसा जानो (तथा) **(बंधण छेदण)** बाँधने, छेदने **(मारणकिरिया)** और मारने की जो क्रिया है **(सा)** वह **(असुहकाय)** अशुभकाय है **(इत्ति वियाण)** ऐसा जानो।

मोत्तूण असुहभावं पुव्वत्तं णिरवसेसदो दव्वं।
वदसमिदिसीलसंजमपरिणामं सुहमणं जाणे ॥५४॥

अन्वयार्थ—(पुव्वत्तं) पहले कहे हुए **(असुहभावं)** अशुभ भाव (और) **(दव्वं)** अशुभ द्रव्य को **(णिरवसेसदो)** सम्पूर्ण रूप से **(मोत्तूण)** छोड़कर **(वदसमिदिसील)** व्रत, समिति, शील (और) **(संजमपरिणामं)** संयम परिणाम का होना **(सुहमणं)** शुभ मन है **(जाणे)** ऐसा जानो।

संसारछेदकारण - वयणं सुहवयणमिदि जिणुद्दिट्ठं।
जिणदेवादिसु पूया सुहकायं त्ति य हवे चेट्ठा ॥५५॥

अन्वयार्थ—जो वचन **(संसारछेद)** संसार के छेद (विनाश) **(कारण वयणं)** करने के कारण हैं, वे **(सुहवयणं)** शुभ वचन हैं **(इदि)** ऐसा **(जिणुद्दिट्ठं)** जिनेन्द्र भगवान् ने कहा है **(य)** और **(जिणदेवादिसु)** जिनेन्द्रदेव आदि की **(पूया चेट्ठा)** पूजा रूप चेष्टा (क्रिया) **(सुहकायं)** शुभकाय **(हवे त्ति)** है।

जम्मसमुद्दे बहुदोसवीचिए दुक्खजलचराकिण्णे।
जीवस्स परिब्भमणं कम्मासवकारणं होदि ॥५६॥

अन्वयार्थ—जो वचन **(बहुदोसवीचिए)** अनेक दोष रूप तरंगों से युक्त (और) **(दुक्खजलचर)** दुःख रूपी जलचर जीवों से **(आकिण्णे)** व्याप्त **(जम्मसमुद्दे)** जन्म (संसार) रूप समुद्र में **(जीवस्स परिब्भमणं)** जीव का परिभ्रमण **(कम्मासवकारणं)** कर्मास्रव के कारण **(होदि)** होता है।

कम्मासवेण जीवो बूडदि संसारसायरे घोरे।
जं णाणवसं किरिया मोक्खणिमित्तं परंपरया ॥५७॥

अन्वयार्थ—(जीवो) जीव **(कम्मासवेण)** कर्मास्रव के कारण **(घोरे)** घोर **(संसारसायरे)** संसार रूप सागर में **(बूडदि)** डूबता है (और) **(जं किरिया)** जो क्रिया **(णाणवसं)** ज्ञानपूर्वक होती है, वह **(परंपरया)**

परम्परा से **(मोक्खणिमित्तं)** मोक्ष का कारण होती है।

आसवहेदू जीवो जम्मसमुद्दे णिमज्जदे खिप्पं।
आसवकिरिया तम्हा मोक्खणिमित्तं ण चिंतेज्जो ॥५८॥

अन्वयार्थ–(जीवो) जीव **(आसवहेदू)** आस्रव (कर्मास्रव) के कारण **(जम्मसमुद्दे)** जन्म (संसार) समुद्र में **(खिप्पं)** शीघ्र **(णिमज्जदे)** डूब जाता है (गोते खाता है) **(तम्हा)** इसलिए **(आसवकिरिया)** आस्रव रूप क्रिया (जो कर्मास्रव का कारण है ऐसी क्रिया) **(मोक्खणिमित्तं ण)** मोक्ष का निमित्त (हेतु) नहीं है **(चिंतेज्जो)** (ऐसा) विचार करना चाहिए।

पारंपज्जाएण दु आसवकिरियाए णत्थि णिव्वाणं।
संसारगमणकारणमिदि णिंदं आसवो जाण ॥५९॥

अन्वयार्थ–(पारंपज्जाएण) परम्परा से **(दु)** भी **(आसवकिरियाए)** आस्रव की कारणभूत क्रिया से **(णिव्वाणं)** निर्वाण **(णत्थि)** नहीं होता **(आसवो)** आस्रव **(संसारगमणकारणं)** संसार गमन का कारण है **(इदि)** इसलिए (इसे) **(णिंदं जाण)** निन्दनीय जानना चाहिए।

पुव्वुत्तासवभेया णिच्छयणएण णत्थि जीवस्स।
उहयासवणिम्मुक्कं, अप्पाणं चिंतए णिच्चं ॥६०॥

अन्वयार्थ–(पुव्वुत्ता आसव भेया) पहले जो आस्रव के भेद कहे गये हैं (वे) **(णिच्छयणएण)** निश्चयनय से **(जीवस्स णत्थि)** जीव के नहीं हैं (इसलिए) **(अप्पाणं)** आत्मा को **(उहय आसव णिम्मुक्कं)** दोनों प्रकार के आस्रवों से रहित **(णिच्चं चिंतए)** सदा विचारना चाहिए।

चलमलिणमगाढं च वज्जिय सम्मत्तदिढकवाडेण।
मिच्छत्तासवदारणिरोहो होदि त्ति जिणेहि णिद्दिट्ठं ॥६१॥

अन्वयार्थ–(चलमलिणं) चल, मलिन **(च)** और **(अगाढं वज्जियं)** अगाढ़ (दोष) को छोड़कर **(सम्मत्तदिढकवाडेण)** सम्यक्त्व रूपी दृढ़ कपाटों के द्वारा **(मिच्छत्ता आसवदार)** मिथ्यात्व रूपी आस्रव द्वार का **(णिरोहो होदि)** निरोध हो जाता है **(त्ति)** ऐसा **(जिणेहि णिद्दिट्ठं)** जिनेन्द्र देव ने कहा है।

पंचमहव्वयमणसा अविरमणणिरोहणं हवे णियमा।
कोहादि आसवाणं दाराणि कसायरहियपल्लगेहि ॥६२॥

अन्वयार्थ—(पंचमहव्वयमणसा) पाँच महाव्रतों से युक्त मन से **(अविरमण-णिरोहणं)** अविरति रूप आस्रव का निरोध **(णियमा हवे)** नियम से हो जाता है और **(कोहादि आसवाणं)** क्रोधादि कषाय रूप आस्रवों के **(दाराणि)** द्वार **(कसायरहिय)** कषाय के अभाव रूप **(पल्लगेहिं)** फाटकों से **(णिरोहो)** बन्द हो जाते हैं।

सुहजोगस्स पवित्ती संवरणं कुणदि असुहजोगस्स।
सुहजोगस्स णिरोहो सुद्धुवजोगेण संभवदि ॥६३॥

अन्वयार्थ—(सुहजोगस्स) शुभयोग की **(पवित्ती)** प्रवृत्ति **(असुह-जोगस्स)** अशुभयोग का **(संवरणं कुणदि)** संवर करती है (और) **(सुद्धुवजोगेण)** शुद्धोपयोग के द्वारा **(सुहजोगस्स)** शुभयोग का **(णिरोहो)** निरोध **(संभवदि)** होता है।

सुद्धुवजोगेण पुणो धम्मं सुक्कं च होदि जीवस्स।
तम्हा संवरहेदू झाणो त्ति विचिंतए णिच्चं ॥६४॥

अन्वयार्थ—(पुणो) पुनः **(सुद्धुवजोगेण)** शुद्धोपयोग के द्वारा **(जीवस्स)** जीव के **(धम्मं च सुक्कं)** धर्मध्यान और शुक्लध्यान **(होदि)** होता है **(तम्हा)** इसलिए **(झाणो)** ध्यान **(संवरहेदू)** संवर का कारण है **(त्ति)** ऐसा **(णिच्चं विचिंतए)** सदा विचार करना चाहिए।

जीवस्स ण संवरणं परमट्ठणएण सुद्धभावादो।
संवरभावविमुक्कं अप्पाणं चिंतएं णिच्च ॥६५॥

अन्वयार्थ—(परमट्ठणएण) परमार्थ (निश्चयनय) से **(जीवस्स)** जीव के **(संवरणं ण)** संवर नहीं है (क्योंकि द्रव्य दृष्टि से वह) **(सुद्धभावादो)** शुद्ध भावमय है, इसलिए **(अप्पाणं)** आत्मा को **(संवरभावविमुक्कं)** संवर भाव से रहित **(णिच्च चिंतएं)** सदा विचारना चाहिए।

बंधपदेसग्गलणं णिज्जरणं इदि जिणेहि पण्णत्तं।
जेण हवे संवरणं तेण दु णिज्जरणमिदि जाण ॥६६॥

अन्वयार्थ—(बंधपदेसग्गलणं) बँधे हुए कर्म-प्रदेशों का गलना **(णिज्जरणं)** निर्जरा है **(इदि)** ऐसा **(जिणेहि पण्णत्तं)** जिनेन्द्रदेव ने कहा **(जेण)** जिस कारण से **(संवरणं हवे)** संवर होता है **(तेण दु)** उसी कारण से **(णिज्जरणं)** निर्जरा होती है **(इदि जाण)** ऐसा जानो।

सा पुण दुविहा णेया सकालपक्का तवेण कयमाणा।
चदुगदियाणं पढमा वयजुत्ताणं हवे विदिया ॥६७॥

अन्वयार्थ—(पुण) फिर **(सा)** वह (निर्जरा) **(दुविहा णेया)** दो प्रकार की जाननी चाहिए **(सकालपक्का)** स्वकाल पकना (कर्मों का उदयकाल आने पर स्वयं होने वाली निर्जरा) तथा दूसरी **(तवेण कयमाणा)** तप के द्वारा की जाने वाली (स्थिति पूर्ण होने से पहले ही तप के द्वारा कर्मों का झड़ाना) **(पढमा)** पहली निर्जरा **(चदुगदियाणं)** चारों गतियों के जीवों को होती है तथा **(विदिया)** दूसरी निर्जरा **(वयजुत्ताणं)** व्रतों से युक्त जीवों (व्रतियों) के ही होती है।

एयारसदसभेयं धम्मं सम्मत्तपुव्वयं भणियं।
सागारणगाराणं उत्तमसुहसंपजुत्तेहिं ॥६८॥

अन्वयार्थ—जिनेन्द्र भगवान् ने **(उत्तमसुहसंपजुत्तेहिं)** उत्तम (आत्मिक) सुख से युक्त **(सागारणगाराणं)** सागारों और अनगारों का **(धम्मं)** धर्म (क्रमशः) **(एयारसदसभेयं)** ग्यारह और दशभेद वाला **(भणिदं)** कहा गया है (वह धर्म) **(सम्मत्तपुव्वयं)** सम्यक्त्वपूर्वक होता है।

दंसणवयसामाइयपोसहसच्चित्तरायभत्ते य।
बम्हारंभपरिग्गह अणुमणमुद्दिट्ठ देसविरदेदे ॥६९॥

अन्वयार्थ—(दंसणवयसामाइय) दर्शन, व्रत, सामायिक **(पोसह-सच्चित्त)** प्रोषध, सचित्त त्याग **(रायभत्ते य)** रात्रिभुक्ति त्याग **(बम्ह आरंभपरिग्गह)** ब्रह्मचर्य, आरम्भ और परिग्रह त्याग **(अणुमणमुद्दिट्ठ)** अनुमति औद उद्दिष्टत्याग **(देसविरदे य)** ये देशविरत (श्रावक)धर्म के ग्यारह भेद हैं।

उत्तमखममद्दवज्जवसच्चसउच्चं च संजमं चेव।
तवचागमकिंचण्हं बम्हा इदि दसविहं होदि ॥७०॥

अन्वयार्थ—(उत्तमखम) उत्तम क्षमा **(मद्दवज्जव)** मार्दव, आर्जव **(सच्चसउच्चं)** सत्य, शौच **(संजमं चेव)** संयम **(तवचागमकिंचण्हं)** तप, त्याग, आकिञ्चन्य और **(बम्हा)** ब्रह्मचर्य **(इदि)** ये **(दसविहं होदि)** (मुनि धर्म के) दस भेद हैं।

कोहुप्पत्तिस्स पुणो बहिरंगं जदि हवेदि सक्खादं।
ण कुणदि किंचिवि कोहो तस्स खमा होदि धम्मोत्ति ॥७१॥

अन्वयार्थ–(पुणो) पुनः **(कोहुप्पत्तिस्स)** क्रोध की उत्पत्ति का **(जदि)** यदि **(सक्खादं)** साक्षात् **(बहिरंगं हवेदि)** बहिरंग (कारण) हो, फिर भी जो **(किंचिवि कोहो)** तनिक भी क्रोध **(ण कुणदि)** नहीं करता **(तस्स)** उसके **(खमा धम्मो त्ति)** क्षमा धर्म **(होदि)** होता है।

कुलरूवजादिबुद्धिसु तपसुदसीलेसु गारवं किंचि।
जो ण वि कुव्वदि समणो मद्दवधम्मं हवे तस्स ॥७२॥

अन्वयार्थ–(जो समणो) जो श्रमण **(कुल रूव जादि बुद्धिसु)** कुल, रूप, जाति, बुद्धि **(तव सुदसीलेसु)** तप, श्रुत और शील के विषय में **(किंचि वि)** किंचित् **(गारवं)** गर्व **(ण कुव्वदि)** नहीं करता है **(तस्स)** उसके **(मद्दवधम्मं)** मार्दव धर्म **(हवे)** होता है।

मोत्तूण कुडिलभावं णिम्मलहिदएण चरदि जो समणो।
अज्जवधम्मं तइयो तस्स दु संभवदि णियमेण ॥७३॥

अन्वयार्थ–(जो समणो) जो श्रमण **(कुडिलभावं मोत्तूण)** कुटिल भाव को छोड़कर **(णिम्मलहिदएण)** निर्मल हृदय में **(चरदि)** आचरण करता है **(तस्स दु)** उसके तो **(णियमेण)** नियम से **(तइयो)** तृतीय **(अज्जवधम्मं)** आर्जव धर्म **(संभवदि)** होता है।

परसंतावणकारणवयणं मोत्तूण सपरहिदवयणं।
जो वददि भिक्खु तुरियो तस्स दु धम्मं हवे सच्चं ॥७४॥

अन्वयार्थ–(जो भिक्खु) जो भिक्षु **(पर संतावय)** दूसरों को संताप **(कारणवयणं)** उत्पन्न करने वाले वचन को **(मोत्तूण)** छोड़कर **(सपरहिदवयणं)** स्व और पर का हित करने वाले वचन **(वददि)** बोलता है **(तस्स दु)** उसके **(तुरियो)** चतुर्थ **(सच्चं धम्मो)** सत्य धर्म होता है।

कंखाभावणिवित्तिं किच्चा वेरग्गभावणाजुत्तो।
जो वट्टदि परममुणी तस्स दु धम्मो हवे सोच्चं ॥७५॥

अन्वयार्थ–(जो परममुणी) जो परम मुनि **(कंखाभावणिवित्तिं)** कांक्षा भाव से निवृत्ति **(किच्चा)** करके **(वेरग्गभावणाजुत्ता)** वैराग्य भावना

से युक्त **(वट्टदि)** वर्तता है **(तस्स दु)** उसके **(सोच्चं धम्मो)** शौच धर्म **(हवे)** होता है।

वदसमिदिपालणाए दंडच्चाएण इंदियजएण।
परिणममाणस्स पुणो संजमधम्मो हवे णियमा ॥७६॥

अन्वयार्थ—(पुणो) पुनः **(दंडच्चाएण)** दण्ड (मन, वचन, काय की प्रवृत्ति) का त्याग कर **(इंदियजएण)** इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर **(वद-समिदि-पालणाए)** व्रत और समितियों के पालन में **(परिणममाणस्स)** प्रवृत्ति करने वाले मुनि के **(णियमा)** नियम से **(संजमधम्मो)** संयम धर्म **(हवे)** होता है।

विसयकसायविणिग्गहभावं काऊण झाणसज्झाए।
जो भावइ अप्पाणं, तस्स तवं होदि णियमेण ॥७७॥

अन्वयार्थ—(जो) जो (मुनि) **(झाणसज्झाए)** ध्यान और स्वाध्याय के द्वारा **(विसय कसाय)** विषय और कषाय के **(विणिग्गहभावं)** निग्रह रूप भाव को **(काऊण)** करके (निग्रह करके) **(अप्पाणं भावइ)** आत्मा की भावना करता है **(तस्स)** उसके **(णियमेण)** नियम से **(तवं होदि)** तप (धर्म) होता है।

णिव्वेगतियं भावइ मोहं चइऊण सव्वदव्वेसु।
जो तस्स हवे चागो इदि भणिदं जिणवरिंदेहिं ॥७८॥

अन्वयार्थ—(जो) जो (मुनि) **(सव्वदव्वेस)** सभी द्रव्यों में **(मोहं चइऊण)** मोह का त्याग करके **(णिव्वेगतियं)** तीन प्रकार के निर्वेद (संसार, शरीर तथा भोगों से वैराग्य) की **(भावइ)** भावना करता है **(तस्स)** उस (मुनि के) **(चागो हवे)** त्याग (धर्म) होता है **(इदि)** ऐसा **(जिणवरिंदेहिं)** जिनेन्द्रों ने **(भणिदं)** कहा है।

होऊण य णिस्संगो णियभावं णिग्गहित्तु सुदुहदं।
णिद्वंदेण दु वट्टदि अणयारो तस्स किंचण्हं ॥७९॥

अन्वयार्थ—जो **(अणयारो)** अनगार (मुनि) **(णिस्संगो होऊण)** निस्संग (परिग्रह रहित) होकर **(य)** और **(सुदुहदं)** सुख-दुःख देने वाले **(णियभावं)** अपने भावों का **(णिग्गहित्तु)** निग्रह करके **(णिद्वंदेण दु)** निर्द्वन्द्वता (समता भाव) पूर्वक **(वट्टदि)** रहता है **(तस्स)** उस (मुनि) के **(अकिंचण्हं)**

आकिञ्चन्य (धर्म) होता है।

सव्वंगं पेच्छंतो इत्थीणं तासु मुयदि रदिभावं।
सो बम्हचेरभावं सक्कदि खलु दुद्धरं धरिदुं ॥८०॥

अन्वयार्थ—जो मुनि **(इत्थीणं)** स्त्रियों के **(सव्वंगं पेच्छंतो)** सब अंगों को देखता हुआ भी **(तासु)** उन स्त्रियों में **(रदिभावं मुयदि)** राग भाव छोड़ देता है **(सो)** वह (मुनि) **(खलु)** निश्चय ही **(दुद्धरं बम्हचेरभावं)** दुर्धर ब्रह्मचर्य को **(धरिदुं सक्कदि)** धारण करने में समर्थ होता है। (धारण करता है)।

सावयधम्मं चत्ता जदिधम्मे जो हु वट्टए जीवो।
सो णय वज्जदि मोक्खं धम्मं इदि चिंतए णिच्चं ॥८१॥

अन्वयार्थ—**(जो हु)** जो **(जीवो)** जीव **(सावयधम्मं)** श्रावक धर्म को **(चत्ता)** छोड़कर **(जदिधम्मे)** मुनियों के धर्म में **(वट्टए)** प्रवृत्त होता है **(सो चेव)** वही **(मोक्खं जादि)** मोक्ष प्राप्त करता है। **(इदि)** इस प्रकार **(णिच्चं)** निरन्तर **(धम्मं चिंतइ)** धर्म का चिन्तन करना चाहिए।

णिच्छयणएण जीवो सागारणगारधम्मदो भिण्णो।
मज्झत्थभावणाए सुद्धप्पं चिंतए णिच्चं॥ ८२॥

अन्वयार्थ—**(जीवो)** जीव **(णिच्छयणएण)** निश्चय नय से **(सागार-णगारधम्मदो)** सागार और अनगार धर्म से **(भिण्णो)** भिन्न है इसलिए **(मज्झत्थभावणाए)** इन दोनों में मध्यस्थ भावना से (माध्यस्थ भाव रखकर) **(सुद्धप्पं)** शुद्धात्मा का **(णिच्चं चिंतए)** निरन्तर चिन्तन करना चाहिए।

उप्पज्जदि सण्णाणं जेण उवाएण तस्सुवायस्स।
चिंता हवेइ बोही अच्चंतं दुल्लहं होदि ॥८३॥

अन्वयार्थ—**(जेण उवाएण)** जिस उपाय से **(सण्णाणं उप्पज्जदि)** सम्यग्ज्ञान उत्पन्न होता है **(तस्स उवायस्स)** उस उपाय का **(चिंता)** चिन्तन करना **(बोहीहवेइ)** बोधि है (वह बोधि) **(अच्चंतं दुल्लहं)** अत्यन्त दुर्लभ **(होदि)** है।

कम्मुदयजपज्जायां हेयं खाओवसमियणाणं तु।
सगदव्वमुवादेयं णिच्छयत्ति होदि सण्णाणं ॥८४॥

अन्वयार्थ–(खु) वस्तुतः **(कम्म उदयज पज्जायां)** कर्मोदय जनित पर्यायें तथा **(खाओवसमियणाणं)** क्षायोपशमिक ज्ञान **(हेयं)** हेय हैं **(य)** और **(सगदव्वमुवादेयं)** स्वद्रव्य उपादेय है **(णिच्छयत्ति)** ऐसा निश्चय (निर्णय) होना **(सण्णाणं)** सम्यग्ज्ञान है।

मूलुत्तरपयडीओ मिच्छत्तादी असंखलोगपरिमाणा।
परदव्वं सगदव्वं अप्पा इदि णिच्छयणएण ॥८५॥

अन्वयार्थ–(मिच्छत्तादी) मिथ्यात्व आदि **(असंखलोगपरिमाणा)** असंख्यात लोक प्रमाण **(मूल-उत्तर पयडीओ)** (कर्मों की) मूल तथा उत्तर प्रकृतियाँ **(परदव्वं)** पर द्रव्य हैं **(अप्पा सगदव्व)** आत्मा (ही) स्वद्रव्य है **(इदि णिच्छयणएण)** ऐसा निश्चयनय से (कहा जाता है)

एवं जायदि णाणं हेयमुवादेय णिच्छये णत्थि।
चिंतिज्जइ मुणि बोहिं संसारविरमणट्ठे य ॥८६॥

अन्वयार्थ–(एवं) इस प्रकार (हेयोपादेय का) **(णाणं जायदि)** ज्ञान होता है **(णिच्छये)** निश्चय में **(हेयं उवादेयं)** हेय और उपादेय का (विकल्प) **(णत्थि)** नहीं है **(मुणि)** मुनि को **(संसार विरमणट्ठे य)** संसार से विरक्त होने के लिए **(बोहिं)** बोधि (बोधि दुर्लभ भावना) का **(चिंतिज्जइ)** चिन्तन करना चाहिए।

बारस अणुवेक्खाओ पच्चक्खाणं तहेव पडिकमणं।
आलोयणं समाहिं तम्हा भावेज्ज अणुवेक्खं ॥८७॥

अन्वयार्थ–(बारस अणुवेक्खाओ) ये बारह अनुप्रेक्षाएँ ही **(पच्चक्खाणं)** प्रत्याख्यान **(पडिकमणं)** प्रतिक्रमण **(आलोयणं)** आलोचना **(तहेव)** तथा **(समाहिं)** समाधि हैं **(तम्हा)** इसलिए (इन) **(अणुवेक्खं)** अनुप्रेक्षाओं की (निरन्तर) **(भावेज्ज)** भावना करनी चाहिए।

रत्तिदिवं पडिकमणं पच्चक्खाणं समाहि सामइयं।
आलोयणं पकुव्वदि जदि विज्जदि अप्पणो सत्तिं ॥८८॥

अन्वयार्थ–(जदि) यदि **(अप्पणो सत्तिं)** अपने में शक्ति **(विज्जदि)** है (तो) **(रत्तिदिवं)** दिन-रात **(पडिकमणं)** प्रतिक्रमण **(पच्चक्खाणं)** प्रत्याख्यान **(समाहि)** समाधि (ध्यान) **(सामइयं)** सामायिक (और)

(आलोयणं) आलोचना **(पकुव्वदि)** करनी चाहिए।

मोक्खया जे पुरिसा अणाइकालेण बारसणुवेक्खं।
परिभाविऊण सम्मं पणमामि पुणो पुणो तेसिं ॥८९॥

अन्वयार्थ–(जे पुरिसा) जो पुरुष **(अणाइकालेण)** अनादिकाल से (आज तक) **(मोक्ख गया)** मोक्ष गये हैं (वे) **(बारसणुवेक्खं)** बारह अनुप्रेक्षाओं का **(सम्मं)** सम्यक् प्रकार **(परिभाविऊण)** चिन्तन करके (गये हैं) **(पुणो पुणो)** बारम्बार (मैं) **(तेसिं पणमामि)** उन्हें प्रणाम करता हूँ।

किं पलविएण बहुणा जे सिद्धा णरवरा गए काले।
सिज्झिहदि जे वि भविया तज्जाणह तस्स माहप्पं ॥९०॥

अन्वयार्थ–(बहुणा) बहुत **(पलविएण)** प्रलाप करने से **(किं)** क्या (लाभ है) **(गए काले)** भूतकाल में **(जे णरवरा)** जो महापुरुष **(सिद्धा)** सिद्ध हुए हैं (और) **(जे वि भविया)** जो भी भव्य जन (भविष्य में) **(सिज्झिहदि)** सिद्ध होंगे **(तत)** उसे **(तस्स)** उन (अनुप्रेक्षाओं) का ही **(माहप्पं जाणह)** माहात्म्य जानो।

इदि णिच्छयववहारं जं भणियं कुंदकुंद मुणिणाहे।
जो भावइ सुद्धमणो सो पावइ परम णिव्वाणं ॥९१॥

अन्वयार्थ–(इदि) इस प्रकार **(कुंदकुंदमुणिणाहे)** कुन्दकुन्द मुनिनाथ ने **(णिच्छयववहारं)** निश्चय और **(जं भणियं)** जो कुछ कहा है (भावनाओं का जो वर्णन किया है) **(सुद्धमणो)** शुद्ध मन से उसे **(जो भावइ)** जो भाता है, (चिन्तन करता है) **(सो)** वह **(परमणिव्वाणं)** परम निर्वाण को **(पावइ)** प्राप्त करता है।

❑ ❑ ❑

शास्त्रसार समुच्चय

श्रीमन्नम्रामरस्तोमं प्राप्तानन्तचतुष्टयम्।
नत्वा जिनाधिपं वक्ष्ये शास्त्रसारसमुच्चयम्॥

अथ प्रथमानुयोग वेदः

त्रिविधः कालः ॥१॥ द्विविधः ॥२॥ षड्विधो वा ॥३॥ दशविधाः कल्प-द्रुमाः ॥४॥ चतुर्दश कुलकरा इति ॥५॥ षोडश भावनाः ॥६॥ चतुर्विंशति-तीर्थङ्कराः ॥७॥ चतुस्त्रिंशदतिशयाः ॥८॥ पञ्चमहाकल्याणानि ॥९॥ घाति-चतुष्टयाष्टादशदोष-रहिताः ॥१०॥ समवसरणैकादशा भूमयः ॥११॥ द्वादशा गणाः ॥१२॥ अष्टमहाप्रातिहार्याणि ॥१३॥ अनन्तचतुष्टयमिति ॥१४॥ द्वादश चक्रवर्तिनः ॥१५॥ सप्ताङ्गानि ॥१६॥ चतुर्दशा रत्नानि॥१७॥ नवनिधयः ॥१८॥ दशाङ्गभोगाः ॥१९॥ नव बलदेवाः ॥२०॥ वासुदेवप्रतिवासुदेवनारदाश्चेति ॥२१॥ एकादश रुद्राः ॥२२॥

अथ करणानुयोग वेदः

त्रिविधो लोकः ॥१॥ सप्तनरकाः ॥२॥ एकोनपञ्चाशत पटलानि ॥३॥ इन्द्रकाणि च ॥४॥ चतुरूत्तरषट्शत नवसहस्रं श्रेणीबद्धानि ॥५॥ सप्त-चत्वारिंशदुत्तर त्रिशताधिक नवतिसहस्रालङ्कृत त्र्यशीतिलक्ष-प्रकीर्णकानि ॥६॥ चतुरशीति-लक्षबिलानि ॥७॥ चतुर्विधं दुःखमिति ॥८॥ जम्बूद्वीप-लवणसमुद्रादयो असंख्यातद्वीप समुद्राः ॥९॥ तत्रार्धतृतीय-द्वीपसमुद्रौ मनुष्यक्षेत्रं ॥१०॥ पञ्चदश कर्मभूमयः ॥११॥ त्रिंशद्भोगभूमयः ॥१२॥ षण्णवति कुभोगभूमयः ॥१३॥ पञ्च मन्दरगिरयः ॥१४॥ जम्बूवृक्षाः ॥१५॥ शाल्मलयश्च ॥१६॥ चतुस्त्रिंशद् वर्षधरपर्वताः ॥१७॥ त्रिंशदुत्तरशत सरोवराः ॥१८॥ सप्ततिर्महानद्यः ॥१९॥ विंशतिर्नाभि-नगाः ॥२०॥ विंशतिर्यमकगिरयश्च ॥२१॥ सहस्रकनकगिरयः ॥२२॥ चत्वारिंशद्दिग्गजपर्वताः॥२३॥ शतं वक्षारक्ष्माधराः॥२४॥ षष्टि-र्विभङ्गनद्यः ॥२५॥ षष्ट्युत्तरशतं विदेहजनपदाः ॥२६॥ सप्तत्यधिकशतं विजयार्ध-पर्वताः ॥२७॥ वृषभगिरयश्चेति ॥२८॥ देवाश्चतुर्णिकायाः ॥२९॥ भवनवासिनो दशविधाः ॥३०॥ अष्टविधाः व्यन्तराः ॥३१॥ पञ्च-विधाः ज्योतिष्काः॥३२॥ द्विविधाः वैमानिकाः ॥३३॥ षोडश स्वर्गाः॥३४॥ नवग्रैवेयकाः ॥३५॥ नवानुदिशाः ॥३६॥ पञ्चानुत्तराः॥३७॥ त्रिषष्टि-

पटलानि ॥३८॥ इन्द्रकाणि च ॥३९॥ षोडशोत्तराष्टशतान्वितसप्तसहस्त्र-श्रेणिबद्धानि ॥४०॥चतुश्चत्वारिंशदुत्तरैकशतानीतनवत्यशीतिसहस्त्रालङ्कृत-चतुरशीतिलक्षं प्रकीर्णकानि॥४१॥ त्रयोविंशत्युत्तरसप्तनवतिसहस्त्रान्वित-चतुरशीतिलक्षमेवं विमानानि ॥४२॥ ब्रह्मलोकान्तालयाश्चतुर्विंशति-लौकान्तिकाः ॥४३॥ अणिमाद्यष्टगुणाः॥४४॥

अथ चरणानुयोग वेदः

पञ्चलब्धयः॥१॥ करणं त्रिविधम् ॥२॥ सम्यक्त्वं द्विविधम् ॥३॥ त्रिविधम् ॥४॥ दशविधं वा॥५॥ तत्र वेदकसम्यक्त्वस्य पञ्चविंशतिर्मलानि॥६॥ अष्टाङ्गानि ॥७॥ अष्टगुणाः ॥८॥ पञ्चातिचारा इति ॥९॥ एकादश निलयाः ॥१०॥ त्रिविधो निर्वेगः॥११॥ सप्त व्यसनानि ॥१२॥ शल्यत्रयम्॥१३॥ अष्टौ मूलगुणाः ॥१४॥ पञ्चाणु-व्रतानि ॥१५॥ त्रीणि गुणव्रतानि ॥१६॥ शिक्षाव्रतानि चत्वारि ॥१७॥ सप्त शीलानि ॥१८॥ व्रतशीलेषु पञ्च पञ्चातिचाराः ॥१९॥ मौनं सप्त स्थानम् ॥२०॥ अन्तरायाश्च ॥२१॥ श्रावकधर्मश्चतुर्विधः॥२२॥ जैनाश्रमाश्च ॥२३॥ तत्र ब्रह्मचारिणः पञ्चविधाः॥२४॥ आर्यकर्माणि षट् ॥२५॥ तत्रेज्या दशविधाः॥२६॥ अर्थोपार्जनकर्माणि षट्॥२७॥ दत्तिश्चतुर्विधा ॥२८॥ क्षत्रियो द्विविधः॥२९॥ भिक्षुश्चतुर्विधः ॥३०॥ यतयो द्विविधाः॥३१॥ मुनयस्त्रि-विधाः॥३२॥ ऋषयश्चतुर्विधाः॥३३॥ तत्र राजर्षयो द्विविधाः ॥३४॥ ब्रह्मर्षयश्च ॥३५॥ मरणं द्वित्रिचतुःपञ्चविधं वा ॥३६॥ पञ्चातिचारा इति॥३७॥ द्वादशानुप्रेक्षाः ॥३८॥ यतिधर्मो दशविधः ॥३९॥ अष्टाविंशतिमूलगुणाः ॥४०॥ पञ्च महाव्रतस्थैर्यार्थं भावनाः पञ्च-पञ्च ॥४१॥ तिस्रोः गुप्तयः ॥४२॥ अष्टौ प्रवचनमातृकाः॥४३॥ द्वाविंशति-परीषहाः ॥४४॥ द्वादशविधं तपः ॥४५॥ दशविधानि प्रायश्चित्तानि ॥४६॥ आलोचनं च ॥४७॥ चतुर्विधो विनयः॥४८॥ दशविधानि वैय्यावृत्यानि॥४९॥ पञ्च विधः स्वाध्यायः ॥५०॥ द्विविधो व्युत्सर्गः ॥५१॥ ध्यानं चतुर्विधम् ॥५२॥ आर्तरौद्रधर्मशुक्लं च ॥५३॥ धर्मध्यानं दशविधं वा ॥५४॥ अष्टौ ऋद्धयः ॥५५॥ बुद्धिरष्टादश-विधा ॥५६॥ क्रिया द्विविधा ॥५७॥ विक्रियैकादशा-विधा ॥५८॥ तपः सप्तविधम् ॥५९॥ बलं त्रिविधम्॥६०॥ भैषजमष्टविधम्॥६१॥ रसः षड्विधः ॥६२॥ अक्षीणर्द्धि द्विविधश्चेति ॥६३॥ चतुस्त्रिंशदुत्तरगुणाः ॥६४॥ पञ्चविधा

निर्ग्रन्थाः॥६५॥ आचारश्च ॥६६॥ समाचारं दशविधम् ॥६७॥ सप्त परमस्थानानि ॥६८॥

अथ द्रव्यानुयोगवेदः

षड् द्रव्याणि॥१॥ पञ्चास्तिकायाः॥२॥ सप्त तत्त्वानि॥३॥ नव पदार्थाः ॥४॥ चतुर्विधो न्यासः ॥५॥ द्विविधं प्रमाणम् ॥६॥ पञ्च संज्ञानानि ॥७॥ त्रीण्य-ज्ञानानि॥८॥ मतिज्ञानं षट्त्रिंशदुत्तरत्रिशतभेदम् ॥९॥ द्विविधं श्रुतज्ञानम् ॥१०॥ द्वादशाङ्गाणि ॥११॥ चतुर्दश प्रकीर्णकानि॥१२॥ त्रिविधमवधि-ज्ञानम्॥१३॥ द्विविधं मनःपर्यश्च ॥१४॥ केवलमेकमसहायम् ॥१५॥ नव नयाः॥१६॥ सप्तभङ्गा इति ॥१७॥ पञ्च भावाः ॥१८॥ औपशमिको द्विविधः ॥१९॥ क्षायिको नवविधः ॥२०॥ अष्टादशविधः क्षायोपशमिकः ॥२१॥ औदयिक एकविंशतिविधः ॥२२॥ पारिणामिकस्त्रिविधः ॥२३॥ गुणजीव-मार्गणास्थानानि प्रत्येकं चतुर्दश ॥२४॥ द्विविधमेकेन्द्रियम् ॥२५॥ त्रीणि विकलेन्द्रियाणि ॥२६॥ पञ्चेन्द्रियं द्विविधम् ॥२७॥ षट् पर्याप्तयः ॥२८॥ दश प्राणाः ॥२९॥ चतस्रः संज्ञा ॥३०॥ गतिश्चतुर्विधा ॥३१॥ पञ्चेन्द्रियाणि ॥३२॥ षड् जीव निकायाः ॥३३॥ त्रिविधो योगः॥३४॥ पंचदश विधो वा ॥३५॥ वेदस्त्रिविधः ॥३६॥ नव विधो वा ॥३७॥ चत्वारः कषायाः ॥३८॥ अष्टौ ज्ञानानि ॥३९॥ सप्त संयमाः ॥४०॥ चत्वारि दर्शनानि॥४१॥ षड्लेश्याः ॥४२॥ द्विविधं भव्यत्वम्॥४३॥ षड्विधा सम्यक्त्वमार्गणा ॥४४॥ द्विविधं संज्ञित्वं ॥४५॥ आहारोपयोगश्चेति ॥४६॥ पुद्गलाकाश कालास्रवाश्च प्रत्येकं द्विविधम् ॥४७॥ बन्धहेतवः पञ्चविधाः ॥४८॥ बन्धश्चतुर्विधः ॥४९॥ अष्ट-कर्माणि ॥५०॥ ज्ञानावरणीयं पञ्चविधम् ॥५१॥ दर्शनावरणीयं नवविधम् ॥५२॥ वेदनीयं द्विविधम्॥५३॥ मोहनीयमष्टाविंशतिविधम् ॥५४॥ आयुश्चतुर्विधम् ॥५५॥ द्विचत्वारिंशद्विधं नाम ॥५६॥ द्विविधं गोत्रम् ॥५७॥ पञ्चविधमन्तरायम् ॥५८॥ पुण्यं द्विविधम् ॥५९॥ पापं च ॥६०॥ संवरश्च ॥६१॥ एकादश निर्जराः ॥६२॥ त्रिविधो मोक्षहेतुः ॥६३॥ द्विविधो मोक्षः॥६४॥ सिद्धस्य द्वादशानुयोग-द्वाराणि ॥६५॥ अष्टौ सिद्धगुणाः ॥६६॥

❑ ❑ ❑

परीक्षामुख सूत्र

प्रथमः परिच्छेदः

प्रमाणादर्थसंसिद्धि - स्तदाभासाद्विपर्ययः।
इति वक्ष्ये तयो-र्लक्ष्म, सिद्धमल्पं लघीयसः ॥

अर्थ—प्रमाण से (सम्यग्ज्ञान से) अभीष्ट अर्थ की सिद्धि होती है और प्रमाणाभास से (मिथ्याज्ञान से) इष्ट अर्थ की सिद्धि नहीं होती, इसलिए मैं प्रमाण और प्रमाणाभास का पूर्वाचार्य से प्रसिद्ध एवं पूर्वापर दोष से रहित संक्षिप्त लक्षण को लघु जनों (मंद बुद्धि वालों) के हितार्थ कहूँगा।

१. स्वापूर्वार्थव्यवसायात्मकं ज्ञानं प्रमाणम्। सूत्रार्थ—अपने आपके और जिसे किसी अन्य प्रमाण से जाना नहीं है, ऐसे पदार्थ के निश्चय करने वाले ज्ञान को प्रमाण कहते हैं।

२. हिताहितप्राप्तिपरिहारसमर्थं हि प्रमाणं ततो ज्ञानमेव तत्। सूत्रार्थ—जो सुख की प्राप्ति और दुःख का परिहार करने में समर्थ है उसे प्रमाण कहते हैं ऐसा वह प्रमाण ज्ञान ही हो सकता है। 'सन्निकर्ष नहीं।'

३. तन्निश्चयात्मकं समारोपविरुद्धत्वादनुमानवत्। सूत्रार्थ—वह ज्ञान निश्चयात्मक है क्योंकि समारोप का विरोधी होने से जैसे अनुमान की तरह।

४. अनिश्चितोऽपूर्वार्थः। सूत्रार्थ—जिस पदार्थ का पहले किसी प्रमाण से निश्चय नहीं किया गया हो, उसे अपूर्वार्थ कहते हैं।

५. दृष्टोऽपि समारोपात्तादृक्। सूत्रार्थ—किसी अन्य प्रमाण से ज्ञात भी पदार्थ समारोप हो जाने से अपूर्वार्थ हो जाता है।

६. स्वोन्मुखतया प्रतिभासनं स्वस्य व्यवसायः। सूत्रार्थ—स्वोन्मुख रूप से अपने-आपको जानना स्वव्यवसाय है।

७. अर्थस्येव तदुन्मुखतया। सूत्रार्थ—जिस प्रकार अर्थ के उन्मुख होकर उसे जानना अर्थव्यवसाय है।

८. घटमहमात्मना वेद्मि। सूत्रार्थ—मैं घड़े को अपने आपके द्वारा जानता हूँ।

९. कर्मवत्कर्तृकरणक्रियाप्रतीतेः। सूत्रार्थ—कर्म के समान कर्ता, करण और क्रिया की भी प्रतीति होती है।

१०. शब्दानुच्चारणेऽपि स्वस्यानुभवनमर्थवत्। सूत्रार्थ—पदार्थ के समान शब्द का उच्चारण नहीं करने पर भी अपने आपका अनुभव होता है।

११. को वा तत्प्रतिभासिनमर्थमध्यक्षमिच्छंस्तदेव तथा नेच्छेत्। सूत्रार्थ—कौन ऐसा पुरुष है जो ज्ञान से प्रतिभासित हुए पदार्थ को प्रत्यक्ष मानता हुआ भी स्वयं ज्ञान को ही प्रत्यक्ष न माने। अपितु मानेगा ही।

१२. प्रदीपवत्। सूत्रार्थ—दीपक के समान।

१३. तत्प्रामाण्यं स्वतः परतश्च। सूत्रार्थ—प्रमाण की वह प्रमाणता अभ्यासदशा में अपने-आपसे और अनभ्यास दशा में पर से होती है।

द्वितीयः परिच्छेदः

१. तद्द्वेधा। सूत्रार्थ—वह प्रमाण दो प्रकार का है।

२. प्रत्यक्षेतरभेदात्। सूत्रार्थ—प्रत्यक्ष और इतर अर्थात् परोक्ष के भेद से प्रमाण दो प्रकार का है।

३. विशदं प्रत्यक्षम्। सूत्रार्थ—विशद अर्थात् निर्मल और स्पष्ट ज्ञान को प्रत्यक्ष कहते हैं।

४. प्रतीत्यन्तराव्यवधानेन विशेषवत्तया वा प्रतिभासनं वैशद्यम्। सूत्रार्थ—दूसरे ज्ञान के अंतराल से रहित और विशेषता से होने वाले प्रतिभासको विशदता (वैशद्य) कहते हैं।

५. इन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तं देशतः सांव्यवहारिकम्। सूत्रार्थ—इन्द्रिय और मन के निमित्त से होने वाले एकदेश विशद ज्ञान को सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष कहते हैं।

६. नार्थालोकौ कारणं परिच्छेद्यत्वात्तमोवत्। सूत्रार्थ—पदार्थ और प्रकाश ये दोनों सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष के कारण नहीं है क्योंकि ज्ञान के विषय होने से (ज्ञेय) अंधकार के समान।

७. तदन्वयव्यतिरेकानुविधानाभावात् केशोण्डुकज्ञानवन्न-

क्तञ्चर-ज्ञानवच्च। सूत्रार्थ—अर्थ और प्रकाश ज्ञान के कारण नहीं है, क्योंकि ज्ञान का अर्थ और प्रकाश के साथ अन्वय व्यतिरेक रूप संबंध का अभाव है जैसे- केशों में होने वाले मच्छर, ज्ञान के साथ तथा नक्तंचर (रात्रि में होने वाले) उल्लू आदिको रात्रि में होने वाले ज्ञान के साथ।

८. अतज्जन्यमपि तत्प्रकाशकं प्रदीपवत्। सूत्रार्थ—अर्थ से नहीं उत्पन्न होके भी ज्ञान अर्थ (पदार्थ) का प्रकाशक होता है, दीपक के समान।

९.स्वावरणक्षयोपशमलक्षणयोग्यतया हि प्रतिनियतमर्थं व्यवस्थापयति प्रत्यक्षमिति शेषः। सूत्रार्थ—अपने आवरण कर्मके क्षयोपशम लक्षण वाली योग्यता से प्रत्यक्ष प्रमाण प्रतिनियत पदार्थों के जानने की व्यवस्था करता है।

१०. कारणस्य च परिच्छेद्यत्वे करणादिना व्यभिचारः। सूत्रार्थ—कारण को ज्ञान का विषय मानने पर इंद्रियादि से व्यभिचार (असंगत) दोष आता है, क्योंकि इन्द्रिय ज्ञान की कारण तो हैं (परन्तु विषय नहीं है) अर्थात् इन्द्रियाँ अपने आप को नहीं जानती हैं।

११. सामग्रीविशेषविश्लेषिताखिलावरणमतीन्द्रियमशेषतो मुख्यम्। सूत्रार्थ—सामग्री की विशेषता से दूर हो गये हैं समस्त आवरण जिसके ऐसे अतीन्द्रिय और पूर्णतया विशद ज्ञान को मुख्य प्रत्यक्ष कहते हैं।

१२. सावरणत्वे करणजन्यत्वे च प्रतिबन्धसम्भवात्। सूत्रार्थ—क्योंकि आवरण सहित और इन्द्रियजनित मानने पर ज्ञान का प्रतिबंध संभव है।

तृतीयः परिच्छेदः

१. परोक्षमितरत्। सूत्रार्थ—जो प्रत्यक्ष से इतर अर्थात् भिन्न है, वह परोक्ष है।

२. प्रत्यक्षादिनिमित्तं स्मृतिप्रत्यभिज्ञानतर्कानुमानागमभेदम्। सूत्रार्थ—प्रत्यक्षादि जिसके निमित्त है, ऐसा परोक्ष प्रमाण स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क, अनुमान और आगम के भेद से ५ प्रकार का है।

३. संस्कारोद्बोधनिबन्धना तदित्याकारा स्मृतिः। सूत्रार्थ— (धारणारूप) संस्कार की प्रकटता जिसमें कारण है इस प्रकार के आकार वाले ज्ञान को स्मृति कहते हैं।

४. स देवदत्तो यथा। सूत्रार्थ—जैसे कि वह देवदत्त।

५. दर्शनस्मरणकारणकं सङ्कलनं प्रत्यभिज्ञानं, तदेवेदं तत्सदृशं तद्विलक्षणं तत्प्रतियोगीत्यादि। सूत्रार्थ—दर्शन और स्मरण जिसमें कारण हैं ऐसे जोड़ रूप ज्ञान को प्रत्यभिज्ञान कहते हैं, जैसे—यह वही है, यह उसके समान है, यह उससे विलक्षण है, यह उसका प्रतियोगी है, इत्यादि समान है, यह उससे विलक्षण है, यह उसका प्रतियोगी है, इत्यादि।

६. यथा स एवायं देवदत्तः, गोसदृशो गवयः गोविलक्षणो महिषः, इदमस्माद् दूरम्, वृक्षोऽयमित्यादि। सूत्रार्थ—जैसे—यह वही देवदत्त है (एकत्व प्रत्यभिज्ञान), गाय के समान नील गाय होती है (सदृश्य प्रत्यभिज्ञान) गाय से भिन्न भैंसा होता है (विलक्षण प्रत्यभिज्ञान) यह इससे दूर है (प्रतियोगी प्रत्यभिज्ञान), यह वृक्ष है, (सामान्य प्रत्यभिज्ञान) इत्यादि।

७. उपलम्भानुपलम्भनिमित्तं व्याप्तिज्ञानमूहः। सूत्रार्थ—निश्चय (अन्वय) और अनिश्चय (व्यतिरेक) जिसमें निमित्त हैं, ऐसे व्याप्ति के ज्ञान को तर्क कहते हैं।

८. इदमस्मिन्सत्येव भवत्यसति तु न भवत्येवेति। सूत्रार्थ— जिसके होने पर जो होता है, नहीं होने पर नहीं होता है, उसे अविनाभाव सम्बन्ध कहते हैं।

९. यथाऽग्नावेव धूमस्तदभावे न भवत्येव। सूत्रार्थ—यह साधन रूप वस्तु इस साध्य रूप वस्तु के होने पर ही होती है और साध्य रूप वस्तु के नहीं होने पर नहीं होती है, जैसे- अग्नि में ही धूम होता है। अग्नि के अभाव में धूम नहीं होता है।

१०. साधनात् साध्यविज्ञानमनुमानम्। सूत्रार्थ—साधन से साध्य के ज्ञान को अनुमान कहते हैं।

११. साध्याविनाभावित्वेन निश्चितो हेतुः। सूत्रार्थ—साध्य के

साथ अविनाभाव संबंध होने के कारण हेतु निश्चित होता है।

१२. सहक्रमभावनियमोऽविनाभावः। सूत्रार्थ—सहभव नियम और क्रमभव नियम को अविनाभाव कहते हैं।

१३. सहचारिणोर्व्याप्यव्यापकयोश्च सहभावः। सूत्रार्थ—सहचारी और व्याप्य-व्यापक पदार्थों में सहभाव नियम होता है।

१४. पूर्वोत्तरचारिणोः कार्यकारणयोश्च क्रमभावः। सूत्रार्थ—पूर्वचर और उत्तरचर में तथा कार्य और कारण में क्रमभाव नियम होता है।

१५. तर्कात्तन्निर्णयः। सूत्रार्थ—अविनाभाव संबंध का निश्चय (निर्णय) तर्क प्रमाण से होता है।

१६. इष्टमबाधितमसिद्धं साध्यम्। सूत्रार्थ—इष्ट, अबाधित और असिद्धभूत पदार्थ को 'साध्य' कहते हैं।

१७.संदिग्धविपर्यस्ताव्युत्पन्नानां साध्यत्वं यथा स्यादित्य-सिद्धपदम्। सूत्रार्थ—संदिग्ध विपर्यस्त और अव्युत्पन्न पदार्थों के साध्यपना जिस प्रकार से माना जा सके, इसलिए साध्य के लक्षण में असिद्ध पद दिया है।

१८. अनिष्टाध्यक्षादिबाधितयोः साध्यत्वं मा भूदितीष्टाबाधित वचनम्। सूत्रार्थ—अनिष्ट और प्रत्यक्षादि प्रमाणों से बाधित पदार्थों के साध्यपना न माना जाए, इसलिए इष्ट और अबाधित ये दो विशेषण दिए गए हैं।

१९. न चासिद्धवदिष्टं प्रतिवादिनः। सूत्रार्थ—असिद्ध के समान इष्ट विशेषण प्रतिवादी की अपेक्षा से नहीं है।

२०. प्रत्यायनाय हीच्छा वक्तुरेव। सूत्रार्थ—क्योंकि दूसरे को समझाने के लिए इच्छा वक्ता को ही होती है।

२१. साध्यं धर्मः क्वचित्तद्विशिष्टो वा धर्मी। सूत्रार्थ—कहीं पर धर्म साध्य होता है और कहीं पर धर्म विशिष्ट धर्मी।

२२. पक्ष इति यावत्। सूत्रार्थ—उसी धर्मी को पक्ष कहते हैं। पक्ष इस प्रकार धर्मी का ही पर्यायवाची नाम है।

२३. प्रसिद्धो धर्मी। सूत्रार्थ—धर्मी प्रसिद्ध अर्थात् प्रमाण से सिद्ध

होता है, काल्पनिक नहीं।

२४. विकल्पसिद्धे तस्मिन् सत्तेतरे साध्ये। सूत्रार्थ—उस विकल्प सिद्ध धर्मी में सत्ता और असत्ता ये दोनों ही साध्य हैं।

२५. अस्ति सर्वज्ञो, नास्ति खरविषाणम्। सूत्रार्थ—सर्वज्ञ है, गधे के सींग नहीं है।

२६. प्रमाणोभयसिद्धे तु साध्यधर्मविशिष्टता साध्याः। सूत्रार्थ—प्रमाण सिद्ध धर्मी में प्रमाण विकल्प सिद्ध धर्मी में धर्म सहित धर्मी साध्य होता है।

२७. अग्निमानयं देशः परिणामी शब्द इति यथा। सूत्रार्थ—जैसे यह प्रदेश अग्निवाला है और शब्द परिणामी है।

२८. व्याप्तौ तु साध्यं धर्म एव। सूत्रार्थ—व्याप्ति काल में तो धर्म ही साध्य होता है।

२९. अन्यथा तदघटनात्। सूत्रार्थ—अन्यथा व्याप्ति घटित नहीं हो सकती।

३०. साध्यधर्माधारसन्देहापनोदाय गम्यमानस्यापि पक्षस्य वचनम्। सूत्रार्थ—साध्य धर्म के आधार में उत्पन्न हुए संदेह को दूर करने के लिए गम्यमान भी पक्ष का प्रयोग किया जाता है।

३१.साध्यधर्मिणि साधनधर्मावबोधनाय पक्षधर्मोपसंहारवत्। सूत्रार्थ—जैसे साध्य से युक्त धर्मी में साधन धर्म का ज्ञान कराने के लिए पक्ष धर्म के उपसंहार रूप उपनय का प्रयोग किया जाता है।

३२. को वा त्रिधा हेतुमुक्त्वा समर्थयमानो न पक्षयति। सूत्रार्थ—ऐसा कौन है जो कि तीन प्रकार के हेतु को कह करके उसका समर्थन करता हुआ भी पक्ष प्रयोग न करे।

३३. एतद्द्वयमेवानुमानाङ्गं नोदाहरणम्। सूत्रार्थ—ये दोनों ही (पक्ष और हेतु) अनुमान के अंग हैं, उदाहरण नहीं।

३४. न हि तत्साध्यप्रतिपत्त्यङ्गं तत्र यथोक्त हेतोरेव व्यापारात्। सूत्रार्थ—वह उदाहरण साध्य का ज्ञान कराने के लिए कारण नहीं है, क्योंकि साध्य के ज्ञान में यथोक्त हेतु का ही व्यापार होता है।

३५. तदविनाभावनिश्चयार्थं वा विपक्षे बाधकप्रमाणबलादेव

तत्सिद्धेः। सूत्रार्थ—वह उदाहरण अविनाभाव के निश्चय के लिए भी कारण नहीं है, क्योंकि विपक्ष में बाधक प्रमाण से ही अविनाभाव सिद्ध हो जाता है।

३६. व्यक्तिरूपं च निदर्शनं सामान्येन तु व्याप्तिस्तत्रापि तद्विप्रति-पत्तावनवस्थानं स्याद् दृष्टान्तान्तरापेक्षणात्। सूत्रार्थ— निदर्शन (उदाहरण) व्यक्ति रूप होता है और व्याप्ति सामान्य से सर्वदेशकाल की उपसंहार वाली होती है। अतः उस उदाहरण में भी विवाद होने पर अन्य दृष्टान्त की अपेक्षा पड़ने से अनवस्था दोष प्राप्त होगा।

३७. नापि व्याप्तिस्मरणार्थं तथाविधहेतुप्रयोगादेव तत्स्मृतेः। सूत्रार्थ—व्याप्ति का स्मरण कराने के लिए भी उदाहरण की आवश्यकता नहीं है। उसका (व्याप्ति) स्मरण तो साध्य के अविनाभावी हेतु के प्रयोग से ही हो जाता है।

३८. तत्परमभिधीयमानं साध्यधर्मिणि साध्यसाधने सन्देहयति। सूत्रार्थ—उपनय और निगमन के बिना यदि केवल उदाहरण का प्रयोग किया जायेगा तो साध्य धर्म वाले धर्मी (पक्ष) में साध्य और साधन के सिद्ध करने में संदेह करा देगा।

३९. कुतोऽन्यथोपनयनिगमने। सूत्रार्थ—अन्यथा उपनय और निगमन का प्रयोग क्यों किया जाता।

४०. न च ते तदङ्गे, साध्यधर्मिणि हेतुसाध्ययोर्वचनादेवा-संशयात्। सूत्रार्थ—उपनय और निगमन अनुमान के अंग नहीं हैं, क्योंकि हेतु और साध्य के बोलने से ही संशय नहीं रहता है।

४१. समर्थनं वा वरं हेतुरूपमनुमानावयवो वाऽस्तु साध्ये तदुपयोगात्। सूत्रार्थ—समर्थन ही हेतु का वास्तविक स्वरूप है, अतः वही अनुमान का अवयव माना जाय, क्योंकि साध्य की सिद्धि में उसी का उपयोग होता है।

४२. बालव्युत्पत्यर्थं तत्रयोपगमे शास्त्रे एवासौ न वादेऽनुप-योगात्। सूत्रार्थ—मंदबुद्धि वाले बालकों की व्युत्पत्ति के लिए उन उदाहरणादि तीन अवयवों के मान लेने पर भी शास्त्र में ही उनकी

स्वीकारता है, वादकाल में नहीं क्योंकि वाद (शास्त्रार्थ) में उनका उपयोग नहीं है।

४३. दृष्टान्तो द्वेधा, अन्वयव्यतिरेकभेदात्। सूत्रार्थ—दृष्टान्त दो प्रकार का है—अन्वय और व्यतिरेक।

४४. साध्यव्याप्तं साधनं यत्र प्रदर्श्यते सोऽन्वयदृष्टान्तः। सूत्रार्थ—साध्य के साथ जहाँ साधन की व्याप्ति दिखाई जाती है, वह अन्वय दृष्टान्त है।

४५.साध्याभावे साधनाभावो यत्र कथ्यते स व्यतिरेकदृष्टान्तः। सूत्रार्थ—जहाँ पर साध्य के अभाव में साधन का अभाव कहा जावे वह व्यतिरेक दृष्टान्त है।

४६. हेतोरुपसंहार उपनयः। सूत्रार्थ—पक्ष में साधन के दुहराने को उपनय कहते हैं।

४७. प्रतिज्ञायास्तु निगमनम्। सूत्रार्थ—प्रतिज्ञा के दोहराने को निगमन कहते हैं।

४८. तदनुमानं द्वेधा। सूत्रार्थ—वह अनुमान दो प्रकार का है।

४९. स्वार्थपरार्थभेदात्। सूत्रार्थ—स्वार्थ और परार्थ के भेद से अनुमान के २ भेद हैं।

५०. स्वार्थमुक्तलक्षणम्। सूत्रार्थ—स्वार्थानुमान का लक्षण कहा जा चुका है।

५१. परार्थं तु तदर्थपरामर्शिवचनाज्जातम्। सूत्रार्थ—उस स्वार्थानुमान के विषयभूत पदार्थ का परामर्श करने वाले वचनों से जो उत्पन्न होता है, उसे परार्थानुमान कहते हैं।

५२. तद्वचनमपि तद्धेतुत्वात्। सूत्रार्थ—परार्थानुमान के कारण होने से परार्थानुमान के प्रतिपादक वचनों को भी परार्थानुमान कहते हैं।

५३. स हेतुर्द्वेधोपलब्ध्यनुपलब्धिभेदात्। सूत्रार्थ—अविनाभाव लक्षण वाला वह हेतु दो प्रकार का है, उपलब्धि और अनुपलब्धि के भेद से।

५४. उपलब्धिर्विधिप्रतिषेधयोरनुपलब्धिश्च। सूत्रार्थ—उपलब्धि

रूप हेतु भी विधि और प्रतिषेध दोनों का साधक है तथा अनुपलब्धि रूप हेतु भी दोनों का साधक है।

५५. अविरुद्धोपलब्धिर्विधौ षोढा-व्याप्यकार्यकारणपूर्वोत्तर-सहचरभेदात्। सूत्रार्थ—विधि साधन की दशा में अविरुद्धोपलब्धि व्याप्य, कार्य, कारण, पूर्व, उत्तर और सहचर के भेद से छह प्रकार की है।

५६. रसादेकसामग्र्यनुमानेन रूपानुमानमिच्छद्भिरिष्टमेव किञ्चित् कारणं हेतुर्यत्र सामर्थ्याप्रतिबन्धकारणान्तरावैकल्ये। सूत्रार्थ—रस से एक सामग्री के अनुमान द्वारा रूप का अनुमान स्वीकार करने वाले बौद्धों ने कोई विशिष्ट कारण रूप हेतु माना ही है, जिसमें सामर्थ्य की रुकावट नहीं है और दूसरे कारणों की विकलता नहीं है।

५७. न च पूर्वोत्तरचारिणोस्तादात्म्यं तदुत्पत्तिर्वा कालव्यवधाने तदनुपलब्धेः। सूत्रार्थ—पूर्वचर और उत्तरचर हेतुओं का साध्य के साथ तादात्म्य संबंध नहीं है, तदुत्पत्ति संबंध भी नहीं है, क्योंकि काल का व्यवधान होने पर इन दोनों संबंधों की उपलब्धि नहीं होती।

५८. भाव्यतीतयोर्मरणजाग्रद्बोधयोरपि नारिष्टोद्बोधौ प्रतिहेतुत्वम्। सूत्रार्थ—भावी मरण और अतीत के जाग्रद बोध के भी अपशकुन और जाग्रत अवस्था के बोध (उद्बोध) के प्रति कारणपना नहीं है।

५९. तद्व्यापाराश्रितं हि तद्भावभावित्वम्। सूत्रार्थ—कारण के व्यापार के आश्रित ही कार्य का व्यापार हुआ करता है।

६०. सहचारिणोरपि परस्परपरिहारेणावस्थानात्सहोत्पादाच्च। सूत्रार्थ—सहचारी पदार्थ परस्पर के परिहार से रहते हैं, अतः सहचर हेतु का स्वभाव हेतु में अन्तर्भाव नहीं हो सकता और वे एक साथ उत्पन्न होते हैं अतः उसका कार्य हेतु और कारण हेतु में भी अन्तर्भाव नहीं हो सकता है।

६१.परिणामी शब्दः कृतकत्वात्। य एवं, स एवं दृष्टो यथा घटः। कृतकश्चायं, तस्मात्परिणामीति। यस्तु न परिणामी, स न कृतको दृष्टोः यथा बन्ध्यास्तनंधयः। कृतकश्चायं, तस्मात्परिणामी। सूत्रार्थ—शब्द परिणामी है क्योंकि वह कृतक होता है। जो इस प्रकार

अर्थात् कृतक होता है, वह इस प्रकार अर्थात् परिणामी देखा जाता है, जैसे-घड़ा। शब्दकृतक है इसलिए परिणामी है जो परिणामी नहीं होता, वह कृतक भी नहीं देखा जाता है जैसे कि बन्ध्या का पुत्र। कृतक यह शब्द है, अतः वह परिणामी है।

६२. अस्त्यत्र देहिनि बुद्धिर्व्याहारादेः। सूत्रार्थ—इस शरीरधारी प्राणी में बुद्धि है, क्योंकि बुद्धि के कार्य वचनादिक पाये जाते हैं।

६३. अस्त्यत्रच्छाया छत्रात्। सूत्रार्थ—यहाँ पर छाया है क्योंकि छत्र पाया जाता है।

६४. उदेष्यति शकटं कृत्तिकोदयात्। सूत्रार्थ—(एक मुहूर्त के बाद) शकट (रोहिणी नक्षत्र) का उदय होगा क्योंकि कृतिका का उदय है।

६५. उद्गाद् भरणिः प्राक्तत एव। सूत्रार्थ—भरणी का उदय एक मुहूर्त के पूर्व ही हो चुका है, क्योंकि कृतिका का उदय पाया जाता है।

६६. अस्त्यत्र मातुलिङ्गे रूपं रसात्। सूत्रार्थ—इस बिजौरे नींबू में रूप है क्योंकि रस पाया जाता है।

६७. विरुद्धतदुपलब्धिः प्रतिषेधे तथा। सूत्रार्थ—प्रतिषेध सिद्ध करने वाली विरुद्धोपब्धि के भी ६ भेद हैं। १. विरुद्ध व्याप्योपलब्धि, २. विरुद्ध कार्योपलब्धि, ३. विरुद्ध कारणोपलब्धि, ४. विरुद्ध पूर्वचरोपलब्धि, ५. विरुद्ध उत्तचरोपलब्धि, ६. विरुद्ध सहचारोपलब्धि।

६८. नास्त्यत्र शीतस्पर्श औष्ण्यात्। सूत्रार्थ—यहाँ पर शीत स्पर्श नहीं है क्योंकि उष्णता पाई जाती है।

६९. नास्त्यत्र शीतस्पर्शो धूमात्। सूत्रार्थ—यहाँ पर शीत स्पर्श नहीं है, क्योंकि धूम है।

७०. नास्मिन् शरीरिणि सुखमस्ति हृदयशल्यात्। सूत्रार्थ—इस प्राणी में सुख नहीं है, क्योंकि हृदय में शल्य पाई जाती है।

७१. नोदेष्यति मुहूर्त्तान्ते शकटं रेवत्युदयात्। सूत्रार्थ—एक मुहूर्त के पश्चात् रोहिणी उदय नहीं होगा क्योंकि अभी रेवती नक्षत्र का उदय हो रहा है।

७२. नोद्गाद् भरणिः मुहूर्तात्पूर्वं पुष्योदयात्। सूत्रार्थ—एक मुहूर्त

पहले भरणी का उदय नहीं हुआ क्योंकि अभी पुष्य नक्षत्र का उदय पाया जा रहा है।

७३. नास्त्यत्र भित्तौ परभागाभावोऽर्वाग्भागदर्शनात्। सूत्रार्थ— इस दीवाल में उस ओर के भाग का अभाव नहीं है क्योंकि इस ओर का भाग दिखाई दे रहा है।

७४. अविरुद्धानुपलब्धिः प्रतिषेधे सप्तधा स्वभावव्यापक-कार्यकारण-पूर्वोत्तरसहचरानुपलम्भभेदात्। सूत्रार्थ—प्रतिषेध अर्थात् अभाव को सिद्ध करने वाली अविरुद्धानु-लब्धि के ७ भेद हैं-स्वभाव, व्यापक, कार्य, कारण, पूर्वचर, उत्तरचर, सहचर के भेद से।

७५. नास्त्यत्र भूतले घटोऽनुपलब्धेः। सूत्रार्थ—इस भूतल पर घट नहीं हैं क्योंकि उपलब्धि योग्य स्वभाव के होने पर वह भी नहीं पाया जा रहा है।

७६. नास्त्यत्र शिंशपा वृक्षानुपलब्धेः। सूत्रार्थ—वृक्ष की प्राप्ति नहीं होने से यहाँ पर शीशम नहीं है।

७७. नास्त्यत्राप्रतिबद्धसामर्थ्योऽग्निर्धूमानुपलब्धेः। सूत्रार्थ— यहाँ पर अप्रतिबद्ध सामर्थ्य वाली अग्नि नहीं है, क्योंकि धूम नहीं पाया जाता है।

७८. नास्त्यत्र धूमोऽनग्नेः। सूत्रार्थ—यहाँ पर धूम नहीं है, क्योंकि धूम के अविरोधी कारण अग्नि का अभाव है।

७९. न भविष्यति मुहूर्त्तान्ते शकटं कृत्तिकोदयानुपलब्धेः। सूत्रार्थ—एक मुहूर्त के पश्चात् रोहिणी का उदय नहीं होगा क्योंकि कृत्तिका के उदय की अनुपलब्धि है।

८०. नोद्गाद् भरणिः मुहूर्त्तात्प्राक् तत एव। सूत्रार्थ—एक मुहूर्त पहले भरणि का उदय नहीं होगा क्योंकि उत्तरचर कृत्तिका का उदय नहीं पाया जाता।

८१. नास्त्यत्र समतुलायामुन्नामो नामानुपलब्धेः। सूत्रार्थ—इस तराजू में एक ओर ऊँचापन नहीं है, क्योंकि उन्नाम का अविरोधि सहचर नहीं पाया जाता है।

८२.विरुद्धानुपलब्धिर्विधौ त्रेधा-विरुद्धकार्यकारण-स्व-

भावानुपलब्धि-भेदात्। सूत्रार्थ—विधि के अस्तित्व को सिद्ध करने में विरुद्धानुपलब्धि के तीन भेद हैं। १.विरुद्धाकार्यानुपलब्धि, २. विरुद्ध कारणानुपलब्धि, ३. विरुद्ध स्वभावानुपलब्धि।

८३. यथास्मिन्प्राणिनि व्याधिविशेषोऽस्ति; निरामय-चेष्टानुपलब्धेः। सूत्रार्थ—इस प्राणी में व्याधि विशेष है क्योंकि निरामय चेष्टा नहीं पाई जाती है।

८४. अस्त्यत्र देहिनि दुःखमिष्टसंयोगाभावात्। सूत्रार्थ—इस प्राणी में दुःख है क्योंकि इष्ट संयोग का अभाव है।

८५. अनेकान्तात्मकं वस्त्वेकान्तस्वरूपानुपलब्धेः। सूत्रार्थ—वस्तुअनेकान्तात्मक है अर्थात् अनेक धर्म वाली है क्योंकि वस्तु का एकान्त रूप पाया नहीं जाता।

८६. परम्परया सम्भवत्साधनमत्रैवान्तर्भावनीयम्। सूत्रार्थ—गुरु परम्परा से और भी जो साधन (हेतु) सम्भव हो सकते हैं उनका पूर्वोक्त साधनों में ही अन्तर्भाव करना चाहिए।

८७. अभूदत्र चक्रे शिवकः स्थासात्। सूत्रार्थ—इस चाक पर शिवक हो गया है, क्योंकि स्थास पाया जा रहा है।

८८. कार्यकार्यमविरुद्धकार्योपलब्धौ। सूत्रार्थ—कार्य के कार्य रूप उक्त हेतु का अविरुद्ध कार्योपलब्धि में अन्तर्भाव होता है।

८९. नास्त्यत्र गुहायां मृगक्रीडनं, मृगारिसंशब्दनात्। कारण-विरुद्धकार्यं विरुद्धकार्योपलब्धौ यथा। सूत्रार्थ—इस गुफा में हिरण की क्रीड़ा नहीं है, क्योंकि सिंह की गर्जना हो रही है, यह कारण विरुद्धकार्यरूपहेतु है, इसका विरुद्ध कार्योपलब्धि हेतु में अन्तर्भाव होता है।

९०. व्युत्पन्नप्रयोगस्तु तथोपपत्त्याऽन्यथानुपपत्त्यैव वा। सूत्रार्थ—विद्वान् (व्युत्पन्न) पुरुषों के लिए तथोपत्ति या अन्यथानुपत्ति नियम से ही प्रयोग करना चाहिए।

९१.अग्निमानयं देशस्तथैव धूमवत्त्वोपपत्तेर्धूमवत्त्वान्यथानुप-पत्तेर्वा। सूत्रार्थ—यह प्रदेश अग्नि वाला है क्योंकि तथैव अर्थात् अग्नि वाला होने पर ही धूम वाला हो सकता है अथवा अग्नि के अभाव में

धूम वाला हो नहीं सकता।

९२. हेतुप्रयोगो हि यथा व्याप्तिग्रहणं विधीयते सा च तावन्मात्रेण व्युत्पन्नैरवधार्यते। सूत्रार्थ—जैसे हेतु का प्रयोग व्याप्ति को ग्रहण करता है उतने मात्र से बुद्धिमानों के द्वारा धारण किया जाता है।

९३. तावता च साध्यसिद्धिः। सूत्रार्थ—उतने मात्र से ही साध्य की सिद्धि हो जाती है।

९४. तेन पक्षस्तदाधार सूचनायोक्तः। सूत्रार्थ—साधन से व्याप्त साध्य रूप आधार की सूचना के लिए पक्ष कहा जाता है।

९५. आप्तवचनादिनिबन्धनमर्थज्ञानमागमः। सूत्रार्थ—आप्त के वचनादि के निमित्त से होने वाले अर्थ ज्ञान को आगम कहते हैं।

९६.सहजयोग्यतासंकेतवशाद्धि शब्दादयो वस्तुप्रतिपत्ति-हेतवः। सूत्रार्थ—सहज योग्यता के होने पर संकेत के वश से शब्दादि वस्तु का ज्ञान कराने का कारण है।

९७. यथा मेर्वादयः सन्ति। सूत्रार्थ—जैसे मेरु पर्वतादिक हैं।

चतुर्थः परिच्छेदः

१. सामान्यविशेषात्मा तदर्थो विषयः। सूत्रार्थ—सामान्य और विशेष स्वरूप वस्तु प्रमाण का विषय है।

२. अनुवृत्तव्यावृत्तप्रत्ययगोचरत्वात् पूर्वोत्तराकारपरिहारा-वाप्ति-स्थितिलक्षणपरिणामेनार्थक्रियोपपत्तेश्च। सूत्रार्थ—वस्तु अनेकान्तात्मक है, क्योंकि वह अनुवृत्त और व्यावृत्त ज्ञान की विषय है। तथा पूर्व आकार का परिहार और उत्तर आकार की प्राप्ति तथा स्थिति लक्षण परिणाम के साथ उसमें अर्थ क्रिया पायी जाती है।

३. सामान्यं द्वेधा तिर्यगूर्ध्वताभेदात्। सूत्रार्थ—सामान्य के दो भेद हैं—तिर्यक् सामान्य और ऊर्ध्वपना सामान्य।

४. सदृशपरिणामस्तिर्यक् खण्डमुण्डादिषु गोत्ववत्। सूत्रार्थ—सदृश परिणाम को तिर्यक् सामान्य कहते हैं। जैसे—खण्डी, मुण्डी आदि गायों में गौपना।

५. परापरविवर्तव्यापिद्रव्यमूर्ध्वता मृदिव स्थासादिषु।

सूत्रार्थ—पूर्व और उत्तर पर्यायों में रहने वाले द्रव्य को ऊर्ध्वता सामान्य कहते हैं। जैसे—स्थास, कोश, कुशूल आदि में मिट्टी रहती है।

६. विशेषश्च। सूत्रार्थ—विशेष के भी (पर्याय और व्यतिरेक) दो भेद हैं।

७. पर्यायव्यतिरेकभेदात्। सूत्रार्थ—पर्याय और व्यतिरेक के भेद से विशेष २ प्रकार का है।

८. एकस्मिन्द्रव्ये क्रमभाविनः परिणामाः पर्याया आत्मनि हर्षविषादादि-वत्। सूत्रार्थ—एक द्रव्य में क्रम से होने वाले परिणामों को पर्याय कहते हैं जैसे आत्मा में हर्ष-विषाद आदिक।

९. अर्थान्तरगतो विसदृशपरिणामो व्यतिरेको गोमहिषादिवत्। सूत्रार्थ—एक पदार्थ की अपेक्षा अन्य पदार्थ में रहने वाले विसदृश परिणाम को व्यतिरेक कहते हैं जैसे—गाय, भैंस आदि में विलक्षणपना।

पञ्चमः परिच्छेदः

१. अज्ञाननिवृत्तिर्हानोपादानोपेक्षाश्च फलम्। सूत्रार्थ—अज्ञान की निवृत्ति, त्याग, ग्रहण और उदासीनता ये प्रमाण के फल हैं।

२. प्रमाणादभिन्नं भिन्नं च। सूत्रार्थ—फल प्रमाण से कथञ्चित् अभिन्न है और कथञ्चित् भिन्न है।

३. यः प्रमिमीते स एव निवृत्ताज्ञानो जहात्यादत्ते उपेक्षते चेति प्रतीतेः। सूत्रार्थ—जो (जानने वाला) प्रमाण से पदार्थ को जानता है, उसी का अज्ञान निवृत्त होता है, अप्रशस्त पदार्थ का त्याग करता है, इष्ट का ग्रहण करता है, इष्टानिष्ट प्रयोजन का साधक जो प्रसाधक नहीं है ऐसे (उपेक्षणीय) पदार्थ की उपेक्षा है, इस प्रकार प्रतीति से सिद्ध है।

षष्ठः परिच्छेदः

१. ततोऽन्यत्तदाभासम्। सूत्रार्थ—पहले कहे गए प्रमाण के भिन्न प्रमाणाभास है।

२. अस्वसंविदितगृहीतार्थदर्शनसंशयादयः प्रमाणाभासाः। सूत्रार्थ—अस्वसंविदित, गृहीतार्थ, दर्शन, संशय, विपर्यय और अनध्यवसाय को प्रमाणाभास कहते हैं।

३. स्वविषयोपदर्शकत्वाभावात्। सूत्रार्थ—क्योंकि वे अपने विषय का निश्चय नहीं करते हैं।

४. पुरुषान्तरपूर्वार्थगच्छत्तृणस्पर्शस्थाणुपुरुषादिज्ञानवत्। सूत्रार्थ—दूसरे पुरुष का ज्ञान, ग्राहीतग्राहीज्ञान, चलते हुए पुरुष के तृण स्पर्शी ज्ञान के समानस्थाणु है या पुरुष, ऐसे संशयादिज्ञान प्रमाणाभास है।

५. चक्षुरसयोर्द्रव्ये संयुक्तसमवायवच्च। सूत्रार्थ—द्रव्य में चक्षु और रस के संयुक्त समवाय के समान।

६. अवैशद्ये प्रत्यक्षं तदाभासं, बौद्धस्याकस्माद् धूमदर्शनाद् वह्नि-विज्ञानवत्। सूत्रार्थ—बौद्ध का अविशदरूप निर्विकल्पज्ञान को प्रत्यक्षमानना प्रत्यक्षाभास है। जैसे-अचानक धुआँ देखने से उत्पन्न हुआ अग्नि ज्ञान अनुमानाभास है।

७. वैशद्येऽपि परोक्षं तदाभासं मीमांसकस्य करणज्ञानवत्। सूत्रार्थ—विशद ज्ञान को भी परोक्ष मानना परोक्षाभास है। जैसे-मीमांसक करण ज्ञान को परोक्ष मानते हैं, उनका ऐसा मानना परोक्षाभास है।

८. अतस्मिंस्तदिति ज्ञानं स्मरणाभासं, जिनदत्ते स देवदत्तो यथा। सूत्रार्थ—पूर्व में अनुभव नहीं किए गए पदार्थ में 'वह है' अर्थात् वैसी है इस प्रकार का ज्ञान स्मरणाभास है। जैसे-जिनदत्त में वह देवदत्त है।

९. सदृशे तदेवेदं तस्मिन्नेव तेन सदृशम्, यमलकवदित्यादि प्रत्यभि-ज्ञानाभासम्। सूत्रार्थ—सदृश पदार्थ में 'यह वही है' ऐसा कहना उसी पदार्थ में यह उसके सदृश है, ऐसा कहना। जैसे- युगल उत्पन्न हुए मनुष्यों में विपरीत ज्ञान हो जाता है। ऐसा ज्ञान प्रत्यभिज्ञानाभास है।

१०. असम्बद्धे तज्ज्ञानं तर्काभासम्। सूत्रार्थ—अविनाभाव संबंध से रहित पदार्थ में अविनाभाव संबंध का ज्ञान कराना तर्काभास है।

११. इदमनुमानाभासम्। सूत्रार्थ—यह अनुमानाभास है (जो आगे कहा जा रहा है)।

१२. तत्रानिष्टादिः पक्षाभासः। सूत्रार्थ—उनमें अनिष्ट आदि

(बाधित सिद्ध) को पक्षाभास कहते हैं।

१३. अनिष्टो मीमांसकस्यानित्यः शब्दः। सूत्रार्थ—मीमांसक का कहना है कि शब्द अनित्य है, अनिष्ट पक्षाभास है।

१४. सिद्धः श्रावणः शब्दः। सूत्रार्थ—शब्द श्रवणेन्द्रिय का विषय है, यह सिद्ध पक्षाभास है।

१५. बाधितः प्रत्यक्षानुमानागमलोकस्ववचनैः। सूत्रार्थ—बाधित पक्षाभास प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम, लोक और स्ववचन से बाधित होता है।

१६. तत्र प्रत्यक्षबाधितो यथा, अनुष्णोऽग्निर्द्रव्यत्वाज्जलवत्। सूत्रार्थ—उनमें से प्रत्यक्षबाधित पक्षाभास का उदाहरण जैसे–अग्नि उष्णता रहित है, क्योंकि वह द्रव्य है, जैसे–जल।

१७. अपरिणामी शब्दः कृतकत्वात् घटवत्। सूत्रार्थ– अपरिणामी शब्द है किया जाने वाला होने से। (जो-जो किया जाने वाला है वह-वह अपरिणामी होता है जैसे–घट, यह अनुमान बाधित पक्षाभास का उदाहरण है)

१८. प्रेत्याऽसुखप्रदो धर्मः पुरुषाश्रितत्वादधर्मवत्। सूत्रार्थ– धर्म परलोक में दुःख देने वाला होता है, क्योंकि वह पुरुष के आश्रित्य है। जैसे–अधर्म। (यह पक्ष आगम बाधित है)

१९. शुचि नरशिरःकपालं प्राण्यङ्गत्वाच्छंखशुक्तिवत्। सूत्रार्थ—मनुष्य के सिर का कपाल पवित्र है, प्राणी का अंग होने से जैसे शंख और सीप। (यह पक्ष लोक बाधित है)।

२०. माता मे वन्ध्या, पुरुषसंयोगेऽप्यगर्भत्वात् प्रसिद्ध-वन्ध्यावत्। सूत्रार्थ—मेरी माता बन्ध्या है, क्योंकि पुरुष का संयोग होने पर भी उसके गर्भ नहीं रहता। जैसे प्रसिद्ध बन्ध्या स्त्री। (यह पक्ष स्ववचन बाधित है)

२१. हेत्वाभासा असिद्धविरुद्धानैकान्तिकाकिञ्चित्कराः। सूत्रार्थ—असिद्ध, विरुद्ध, अनैकान्तिक और अकिञ्चितकर ये चार हेत्वाभास के भेद हैं।

२२. असत्सत्तानिश्चयोऽसिद्धः। सूत्रार्थ—जिस हेतु की सत्ता

का अभाव हो अथवा निश्चय न हो उसे असिद्ध हेत्वाभास कहते हैं।

२३. अविद्यमानसत्ताकः परिणामी शब्दश्चाक्षुषत्वात्। सूत्रार्थ—शब्द परिणामी है, क्योंकि चाक्षुष है,यह अविद्यमान सत्ता वाले स्वरूपा-सिद्ध हेत्वाभास का उदाहरण है।

२४. स्वरूपेणासत्त्वात्। सूत्रार्थ—शब्द का चाक्षुष होना स्वरूप से ही असिद्ध है।

२५. अविद्यमाननिश्चयो मुग्धबुद्धिं प्रत्यग्निरत्र धूमात्। सूत्रार्थ—मुग्ध बुद्धि पुरुष के प्रति कहना यहाँ अग्नि है धूम होने से। यह अविद्यमान निश्चय वाले संदिग्धासिद्ध हेत्वाभास का उदाहरण है।

२६. तस्य वाष्पादिभावेन भूतसंघाते सन्देहात्। सूत्रार्थ—क्योंकि उसे भूतसंघात (चूल्हे से उतारी हुई वटलोई) में भाप आदि के रूप से संदेह हो सकता है।

२७. सांख्यम्प्रति परिणामी शब्दः कृतकत्वात्। सूत्रार्थ—सांख्य के प्रति कहना है कि शब्द परिणामी है क्योंकि वह कृतक है।

२८. तेनाज्ञातत्वात्। सूत्रार्थ—क्योंकि उसने कृतकपना जाना ही नहीं है।

२९. विपरीतनिश्चितताविनाभावो विरुद्धोऽपरिणामी शब्दः कृतकत्वात्। सूत्रार्थ—साध्य से विपरीत पदार्थ के साथ जिसका अविनाभाव निश्चित हो, उसे विरुद्ध हेत्वाभास कहते हैं। जैसे शब्द अपरिणामी है क्योंकि वह कृतक है।

३०. विपक्षेऽप्यविरुद्धवृत्तिरनैकान्तिकः। सूत्रार्थ—जिसका विपक्ष में रहना अविरुद्ध है, अर्थात् जो हेतु पक्ष-संपदा के समान विपक्ष में भी बिना किसी विरोध के रहता है, उसे अनैकान्तिक हेत्वाभास कहते हैं।

३१. निश्चितवृत्तिरनित्यः शब्दः प्रमेयत्वाद् घटवत्। सूत्रार्थ—शब्द अनित्य है प्रमेय होने से। जैसे—घट, यह निश्चित विपक्षवृत्ति अनैकान्तिक हेत्वाभास का उदाहरण है।

३२. आकाशे नित्येऽप्यस्य निश्चयात्। सूत्रार्थ—क्योंकि नित्य आकाश में भी इस प्रमेयत्व हेतु के रहने का निश्चय है।

३३. शङ्कितवृत्तिस्तु नास्ति सर्वज्ञो वक्तृत्वात्। सूत्रार्थ—सर्वज्ञ नहीं है, क्योंकि वह वक्ता है अर्थात् बोलने वाला होने से। यहाँ शंकितविपक्षवृत्ति अनैकान्तिक हेत्वाभास का उदाहरण है।

३४. सर्वज्ञत्वेन वक्तृत्वाविरोधात्। सूत्रार्थ—क्योंकि सर्वज्ञपने के साथ वक्तापने का कोई विरोध नहीं है।

३५. सिद्धे प्रत्यक्षादिबाधिते च साध्ये हेतुरकिञ्चित्करः। सूत्रार्थ—साध्य के सिद्ध होने पर तथा प्रत्यक्षादि प्रमाणों से बाधित होने पर प्रयुक्त हेतु अकिञ्चितकर हेत्वाभास कहलाता है।

३६. सिद्धः श्रावणः शब्दः शब्दत्वात्। सूत्रार्थ—शब्द कर्णेन्द्रिय का विषय होता है, इसलिए सिद्ध है, शब्द होने से।

३७. किञ्चिदकरणात्। सूत्रार्थ—कुछ भी नहीं करने से शब्दत्व हेतु अकिञ्चित्कर हेत्वाभास है।

३८. यथाऽनुष्णोऽग्निर्द्रव्यत्वादित्यादौ किञ्चित्कर्तुमशक्यत्वात्। सूत्रार्थ—जिस प्रकार अग्नि ठण्डी होती है क्योंकि वह द्रव्य है इत्यादि अनुमानों में कुछ नहीं कर सकने से द्रव्यात्वादिहेतु अकिञ्चित्कर कहे जाते हैं।

३९. लक्षणे एवासौ दोषो व्युत्पन्नप्रयोगस्य पक्षदोषेणैव दुष्टत्वात्। सूत्रार्थ—लक्षण की अपेक्षा से ही यह दोष है क्योंकि व्युत्पन्न पुरुषों का प्रयोग पक्ष के दोषों से ही पुष्ट हो जाता है।

४०. दृष्टान्ताभासा अन्वयेऽसिद्धसाध्यसाधनोभयाः। सूत्रार्थ—अन्वय दृष्टान्ताभास के तीन भेद हैं—साध्य विकल, साधन विकल और उभय विकल।

४१. अपौरुषेयः शब्दोऽमूर्त्तत्वादिन्द्रियसुखपरमाणुघटवत्। सूत्रार्थ—शब्द अपौरुषेय है, अमूर्त होने से, इन्द्रियसुख, परमाणु और घट के समान।

४२. विपरीतान्वयश्च यदपौरुषेयं तदमूर्त्तम्। सूत्रार्थ—जो अपौरुषेय होता है, वह अमूर्त होता है, यह विपरीतान्वय नाम का दृष्टान्ताभास है।

४३. विद्युदादिनाति प्रसंगेत्। सूत्रार्थ—क्योंकि इसमें बिजली

आदि से अति प्रसंग दोष आता है।

४४. व्यतिरेकेऽसिद्धतद्व्यतिरेकाः, परमाण्विन्द्रियसुखाकाशवत्। सूत्रार्थ—व्यतिरेकदृष्टान्ताभास साध्यविकल, साधन-विकल, उभय-विकल, इनके उदाहरण परमाणु, इन्द्रिय सुख, और आकाश।

४५. विपरीतव्यतिरेकश्च यन्नामूर्त्तं तन्नापौरुषेयम्। सूत्रार्थ—जो अमूर्त नहीं है, वह अपौरुषेय नहीं है, यह विपरीत व्यतिरेक दृष्टान्ताभास का उदाहरण है।

४६. बालप्रयोगाभासः पञ्चावयवेषु कियद्धीनता। सूत्रार्थ—पाँच अवयवों में से कितने ही कम अवयवों का प्रयोग बाल प्रयोगाभास है। (प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय, निगमन) (कम अवयवों वाले प्रयोग से बालकों को ज्ञान नहीं हो सकता, इसलिए वह प्रयोग बालकों के लिए झूठा है)

४७. अग्निमानयं प्रदेशो धूमवत्वाद्यदित्थं तदित्थं यथा महानसः। सूत्रार्थ—यह प्रदेश अग्नि वाला है, धूम वाला होने से। जो धूम वाला होता है वह अग्निवाला है। जैसे—रसोईघर। (इस प्रयोग में प्रतिज्ञा, हेतु और उदाहरण ये तीन ही अवयव कहे गये हैं इसलिए बाल प्रयोगाभास है)

४८. धूमवांश्चायम्। सूत्रार्थ—और यह भी धूमवाला है। (यहाँ यद्यपि उपनय सहित चार अवयव कहे गये हैं, तो भी पूरे पाँच अवयव न होने से यह बाल प्रयोगाभास है)

४९. तस्मादग्निमान् धूमवांचायम्। सूत्रार्थ—इसलिए यह अग्निवाला है और यह भी धूमवाला है। (इस सूत्र में उपनय और निगमन विपरीतता से कहे गये हैं इसलिए यह प्रयोग बालप्रयोगाभास जानना चाहिए)

५०. स्पष्टतया प्रकृतप्रतिपत्तेरयोगात्। सूत्रार्थ—कम अवयव प्रयोग करने पर पदार्थ का स्पष्टता से ठीक-ठीक ज्ञान नहीं होता।

५१. रागद्वेषमोहाक्रान्तपुरुषवचनाज्जातमागमाभासम्। सूत्रार्थ—राग-द्वेष-मोह से आक्रान्त (व्याप्त) पुरुष के वचनों से उत्पन्न हुये पदार्थ के ज्ञान को आगमाभास कहते हैं।

५२. यथा नद्यास्तीरे मोदकराशयः सन्ति, धावध्वं माणवकाः। सूत्रार्थ—जैसे कि–हे बालको दौड़ो नदी के किनारे लड्डुओं के ढेर लगे हैं।

५३. अङ्गुल्यग्रे हस्तियूथशतमास्ते इति च। सूत्रार्थ—अँगुली के अग्रभाग पर हाथियों के सौ समुदाय रहते हैं। इस प्रकार का वचन आगमाभास होता है क्योंकि प्रत्यक्ष से बाधित होने से असंभव होने से।

५४. विसंवादात्। सूत्रार्थ—विसंवाद होने से।

५५. प्रत्यक्षमेवैकं प्रमाणमित्यादि सङ्ख्याभासम्। सूत्रार्थ—प्रत्यक्ष ही एक प्रमाण है, इत्यादि रूप से सर्व संख्याभास है।

५६.लौकायतिकस्य प्रत्यक्षतः परलोकादिनिषेधस्य पर-बुद्ध्यादेश्चा-सिद्धेरतद्विषयत्वात् । सूत्रार्थ—चार्वाक का प्रत्यक्ष को ही प्रमाण मानना इसलिए संख्याभास है कि प्रत्यक्ष से परलोक आदि का निषेध और पर की बुद्धि की सिद्धि नहीं होती है, क्योंकि वे उसके विषय नहीं है।

५७.सौगतसांख्ययौगप्राभाकरजैमिनीयानां प्रत्यक्षानु-मानागमोपमानार्थापत्त्य भावैरेकैकाधिकैर्व्याप्तिवत्। सूत्रार्थ—जिस प्रकार बौद्ध, सांख्य, योग, प्रभाकर और जैमिनियों के प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम, उपमान, अर्थापत्ति और अभाव इन एक-एक अधिक प्रमाणों के द्वारा व्याप्ति विषय नहीं की जाती है।

५८. अनुमानादेरतद्विषयत्वे प्रमाणान्तरत्वम्। सूत्रार्थ—अनुमानादि के परबुद्धि के आदिक का विषयपना मानने पर अन्य प्रमाणों के मानने का प्रसंग आता है।

५९. तर्कस्येव व्याप्तिगोचरत्वे प्रमाणान्तरत्वमप्रमाणस्या-व्यवस्थापकत्वात्। सूत्रार्थ—तर्क को व्याप्ति का विषय करने वाला मानने पर बौद्धादिक को उसे एक भिन्न प्रमाण मानना पड़ता है, क्योंकि अप्रमाण ज्ञान पदार्थ की व्यवस्था नहीं कर सकता है।

६०. प्रतिभासभेदस्य च भेदकत्वात्। सूत्रार्थ—प्रतिभास का भेद ही प्रमाणों का भेदक होता है।

६१. विषयाभासः सामान्यं विशेषो द्वयं वा स्वतन्त्रम्। सूत्रार्थ—केवल सामान्य को, केवल विशेष को अथवा स्वतंत्र दोनों को प्रमाण का विषय मानना विषयाभास है।

६२. तथाऽप्रतिभासनात् कार्याकरणाच्च। सूत्रार्थ—उसी प्रकार का प्रतिभास न होने से और कार्य को नहीं करने से।

६३. समर्थस्य करणे सर्वदोत्पत्तिरनपेक्षत्वात्। सूत्रार्थ—समर्थ पदार्थ के कार्य करने पर अपेक्षा न होने से हमेशा कार्य की उत्पत्ति का प्रसंग आता है।

६४. परापेक्षणे परिणामित्वमन्यथा तदभावात्। सूत्रार्थ—दूसरे सहकारी कारणों की अपेक्षा रखने पर परिणामीपना प्राप्त होता है अन्यथा कार्य नहीं हो सकता है।

६५. स्वयमसमर्थस्याकारकत्वात् पूर्ववत्। सूत्रार्थ—आप ही असमर्थ हैं पूर्व के समान (प्रथम पक्ष के समान) कार्य करने वाला न होने से।

६६. फलाभासः प्रमाणादभिन्नं भिन्नमेव वा। सूत्रार्थ—प्रमाण से उसके फल को सर्वथा अभिन्न तथा भिन्न मानना फलाभास है।

६७. अभेदे तद्व्यवहारानुपपत्तेः। सूत्रार्थ—प्रमाण से फल सर्वथा अभिन्न माना जाए तो प्रमाण और प्रमाण के फल में व्यवहार ही नहीं हो सकता है।

६८.व्यावृत्त्यापि न तत्कल्पना फलान्तराद्व्यावृत्त्याऽफलत्व-प्रसङ्गात्। सूत्रार्थ—अफल की व्यावृत्ति से भी फल की कल्पना नहीं की जा सकती अन्यथा फलान्तर की व्यावृत्ति से अफलपने की कल्पना का प्रसंग आ जायेगा।

६९. प्रमाणान्तराद् व्यावृत्यावाप्रमाणत्वस्य। सूत्रार्थ—अन्य प्रमाण की (प्रमाणान्तर) व्यावृत्ति (निराकरण) से अप्रमाणपने का प्रसंग आता है।

७०. तस्माद्वास्तवो भेदः। सूत्रार्थ—इसलिए प्रमाण और फल में परमार्थ से भेद है।

७१. भेदे त्वात्मान्तरवत्तदनुपपत्तेः। सूत्रार्थ—भेद मानने पर

अन्य आत्मा के समान यह इस प्रमाण का फल है ऐसा व्यवहार हो नहीं सकता है।

७२. समवायेऽतिप्रसङ्गः। सूत्रार्थ—समवाय के मानने पर अति प्रसंग का दोष आता है।

७३. प्रमाणतदाभासौ दुष्टतयोद्भावितौ परिहृतापरिहृतदोषौ वादिनः साधनतदाभासौ प्रतिवादिनो दूषणभूषणे च। सूत्रार्थ—वादि के द्वारा प्रयोग में लाए गए प्रमाण और प्रमाणाभास प्रतिवादी के द्वारा दोष रूप में प्रकट किए जाने पर वादी से परिहार दोष वाले रहते हैं, तो वेवादि के लिए साधन और साधनाभास हैं और प्रतिवादी के लिए दूषण और भूषण हैं।

७४. संभवदन्यद्विचारणीयम्। सूत्रार्थ—संभव अन्य (नय-निक्षेपादि) भी विचारणीय है।

परीक्षामुखमादर्शः हेयोपादेयतत्त्वयोः।
संविदे मादृशो बालः परीक्षादक्षवद् व्यधाम् ॥२॥

श्लोकार्थ—छोड़ने योग्य और ग्रहण करने योग्य तत्त्व के ज्ञान के लिए दर्पण के समान इस परीक्षामुख ग्रन्थ को मुझ सदृश बालक ने परीक्षा में निपुण पुरुष के समान रचा।

❑ ❑ ❑

अष्ट मंगल द्रव्य

तीर्थंकर भगवान् के समवसरण की गंधकुटी के प्रथम द्वार पर ये अष्टमंगल द्रव्य सुशोभित होते हैं। ध्वजा सहित अष्टमंगल द्रव्य युक्त भगवान् का विहार होता था।

उनके नाम–१. भृंगार (झारी), २. कलश, ३. दर्पण, ४. पंखा (तालव्यञ्जन-तालवृन्त), ५. ध्वजा, ६. चँवर, ७. छत्र, ८. सुप्रतिष्ठ (स्वस्तिक-साथियाँ)

ये आठ मंगल द्रव्य कहे गए हैं।

आलाप-पद्धति

गुणानां विस्तरं वक्ष्ये स्वभावानां तथैव च।
पर्यायाणां विशेषेण नत्वा वीरं जिनेश्वरम्॥

अर्थ—वीर प्रभुको नमस्कार करके द्रव्य के, गुणों के और उसी प्रकार स्वभावों के और पर्यायों के भी विस्तार को विशेष रूप से कहता हूँ।

आलापपद्धतिर्वचनरचनाऽनुक्रमेण नयचक्रस्योपरि उच्यते॥१॥ **अर्थ**—नयचक्र के ऊपर आलाप पद्धति वचन की रचना अनुक्रम से कहते हैं।

सा च किमर्थम्?॥२॥ अर्थ—और वह किसलिए कहते हैं ?

द्रव्यलक्षणसिद्ध्यर्थम् स्वभावसिद्ध्यर्थञ्च ॥३॥ अर्थ—द्रव्य के लक्षण की सिद्धि के लिए और स्वभाव की सिद्धि के लिए कहते हैं।

द्रव्याणि कानि?॥४॥ अर्थ—द्रव्य कौन कौन हैं ?

जीवपुद्गलधर्माधर्माकाशकालद्रव्याणि ॥५॥ अर्थ—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये छह द्रव्य हैं।

सद्द्रव्यलक्षणम् ॥६॥ अर्थ—सत् द्रव्य का लक्षण है।

उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत् ॥७॥ अर्थ—उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य से सहित सत् होता है।

लक्षणानि कानि?॥८॥ अर्थ—द्रव्यों के लक्षण गुण कौन-कौन से हैं?

अस्तित्वं, वस्तुत्वं, द्रव्यत्वं, प्रमेयत्वं, अगुरुलघुत्वं, प्रदेशत्वं, चेतनत्वमचेतनत्वं मूर्तत्वममूर्तत्वं, द्रव्याणां दश सामान्यगुणाः॥९॥ **अर्थ**—अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रमेयत्व, अगुरुलघुत्व, प्रदेशत्व, चेतनत्व, अचेतनत्व, मूर्तत्व, अमूर्तत्व ये द्रव्यों के दस सामान्य गुण हैं।

प्रत्येकमष्टौ सर्वेषाम् ॥१०॥ अर्थ—इन दस सामान्य गुणों में से प्रत्येक द्रव्य में आठ-आठ गुण हैं और दो-दो गुण नहीं हैं।

ज्ञानदर्शन-सुखवीर्याणि, स्पर्शरसगन्धवर्णाः, गतिहेतुत्वं,

स्थिति-हेतुत्वं, अवगाहनहेतुत्वं, वर्तनाहेतुत्वं, चेतनत्वमचेतनत्वं, मूर्तत्वम-मूर्तत्वं, द्रव्याणां षोडश विशेष-गुणाः॥११॥ अर्थ—ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य, स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण, गति हेतुत्व, अवगाहनहेतुत्व, वर्तना हेतुत्व, चेतनत्व, अचेतनत्व, मूर्तत्त्व, अमूर्तत्त्व ये द्रव्यों के सोलह विशेष गुण हैं।

प्रत्येकं जीवपुद्गलयोः षट्॥१२॥ अर्थ—सोलह प्रकार के विशेष गुणों में से जीव और पुद्गल में छह-छह विशेष गुण पाये जाते हैं।

इतरेषां प्रत्येकं त्रयो गुणाः॥१३॥ अर्थ—धर्मद्रव्य, अधर्म द्रव्य, आकाश द्रव्य और काल द्रव्य। इन चारों द्रव्यों में तीन-तीन विशेष गुण पाये जाते हैं।

अन्तस्थाश्चत्वारो गुणाः स्वजात्यपेक्षया सामान्यगुणा विजात्य-पेक्षया त एव विशेषगुणाः ॥१४॥ अर्थ—अन्त के चेतनत्व, अचेतनत्व, मूर्तत्व और अमूर्तत्व ये चार गुण स्वजाति की अपेक्षा से सामान्य गुण तथा विजाति की अपेक्षा से विशेष गुण कहे जाते हैं।

गुणविकाराः पर्यायास्ते द्वेधा अर्थव्यंजनपर्यायभेदात्॥१५॥ अर्थ—गुणों के विकार को पर्याय कहते हैं वे पर्यायें दो प्रकार की हैं। १. अर्थ पर्याय, २. व्यञ्जन पर्याय।

अर्थपर्यायास्ते द्वेधा स्वभावविभावपर्यायभेदात् ॥१६॥ अर्थ—अर्थ पर्याय दो प्रकार की है—१. स्वभावार्थ पर्याय, २. विभावार्थ पर्याय।

अगुरुलघुविकाराः स्वभावार्थपर्यायास्ते द्वादशधा षड्वृद्धि-रूपाः षड्ढानिरूपाः; अनन्तभागवृद्धिः, असंख्यातभागवृद्धिः, संख्यात-भागवृद्धि, संख्यातगुणवृद्धिः, असंख्यातगुणवृद्धिः, अनन्तगुण-वृद्धिः, इति षड्वृद्धिः, तथा अनन्तभागहानिः, असंख्यातभागहानिः, संख्यातभागहानिः, संख्यातगुणहानिः, असंख्यातगुणहानिः, अनन्तगुणहानिः, इति षड् हानिः। एवं षट्वृद्धिषड्ढानिरूपा ज्ञेयाः ॥१७॥ अर्थ—अगुरुलघु का परिणमन स्वाभाविक अर्थ पर्यायें हैं, वे पर्यायें बारह प्रकार की हैं, छह वृद्धि रूप और छह हानि रूप, अनन्त भाग वृद्धि, असंख्यात भाग वृद्धि, संख्यात भाग वृद्धि, सुख्यात गुण वृद्धि, असंख्यात गुण वृद्धि, अनन्त गुण वृद्धि,

ये छह वृद्धि रूप पर्यायें हैं। अनन्त भाग हानि, असंख्यात भाग हानि, संख्यात भाग हानि, संख्यात गुण हानि, असंख्यात गुण हानि, अनन्त गुण हानि ये छह हानि रूप पर्यायें हैं, इस प्रकार छह वृद्धि रूप और छह हानि रूप पर्यायें जाननी चाहिए।

विभावार्थपर्यायाः षड्विधाः मिथ्यात्वकषायरागद्वेषपुण्य-पाप-रूपाऽध्यवसायाः ॥१८॥ अर्थ—विभाव अर्थपर्याय छह प्रकार की हैं—१. मिथ्यात्व, २. कषाय, ३. राग, ४. द्वेष, ५. पुण्य और ६.पाप ये छह अध्यवसाय विभाव अर्थ पर्यायें हैं।

विभावद्रव्य-व्यञ्जन-पर्यायाश्चतुर्विधा नरनारकादिपर्यायाः अथवा चतुरशीतिलक्षा योनयः ॥१९॥ अर्थ—नर नारक आदि रूप चार प्रकार की अथवा चौरासी लाख योनि रूप जीव की विभाव द्रव्य व्यञ्जन पर्याय हैं।

विभावगुणव्यंजनपर्याया मत्यादयः ॥२०॥ अर्थ—मतिज्ञानादिक जीवद्रव्य की विभावगुण व्यञ्जन पर्यायें हैं।

स्वभावद्रव्यव्यंजन-पर्यायाश्चरमशरीरात् किञ्चिन्न्यूनसिद्ध-पर्यायाः ॥२१॥ अर्थ—अंतिम शरीर से कुछ कम जो सिद्ध पर्याय है, वह जीव की स्वभाव द्रव्य व्यंजन पर्याय है।

स्वभावगुणव्यंजनपर्याया अनन्तचतुष्टयरूपा जीवस्य ॥२२॥ अर्थ—अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख और अनन्त वीर्य इन अनन्त चतुष्टय रूप जीव की स्वभाव गुण व्यंजन पर्याय है।

पुद्गलस्य तु द्व्यणुकादयो विभावद्रव्य-व्यंजनपर्यायाः ॥२३॥ अर्थ—द्वि-अणुकादिस्कंध पुद्गल की विभाव द्रव्य व्यंजन पर्याय है।

रसरसान्तरगन्धगन्धान्तरादिविभावगुणव्यंजन-पर्यायाः॥२४॥ अर्थ—द्वि अणुक आदि स्कन्धों में एक वर्ण से दूसरे वर्ण रूप, एक रस से दूसरे रस रूप, एक गंध से दूसरे गंध रूप, एक स्पर्श से दूसरे स्पर्श रूप होने वाला चिरकाल-स्थायी परिणमन पुद्गल की विभाव गुण व्यंजन पर्याय है।

अविभागिपुद्गलपरमाणुः स्वभावद्रव्यव्यंजनपर्यायः॥२५॥ अर्थ—अविभागी पुद्गल परमाणु पुद्गल की स्वभाव द्रव्य व्यंजन पर्याय

है।

वर्णगंधरसैकैकाविरूद्धस्पर्शद्वयं स्वभावगुणव्यंजन-पर्यायाः ॥२६॥ अर्थ—पुद्गल परमाणु में एक वर्ण, एक गंध, एक रस और परस्पर अविरुद्ध दो स्पर्श होते हैं। इन गुणों की जो चिरकाल स्थायी पर्यायें हैं, वे स्वभावगुण व्यंजन पर्यायें हैं।

गुण-पर्ययवद्द्रव्यम् ॥२७॥ अर्थ—गुण पर्यायवाला द्रव्य है।

स्वभावाः कथ्यन्ते-अस्तिस्वभावः, नास्तिस्वभावः, नित्य-स्वभावः, अनित्यस्वभावः, एकस्वभावः, अनेकस्वभावः, भेद-स्वभावः, अभेद-स्वभावः, भव्यस्वभावः, अभव्यस्वभावः, परम-स्वभावः एते द्रव्याणामेकादश सामान्यस्वभावाः, चेतन स्वभावः, अचेतनस्वभावः, मूर्तस्वभावः, अमूर्तस्वभावः, एक-प्रदेशस्वभावः, अनेकप्रदेशस्वभावः, विभावस्वभावः, शुद्ध-स्वभावः, अशुद्ध-स्वभावः,उपचरितस्वभावः एते द्रव्याणां दशविशेषस्वभावाः ॥२८॥ अर्थ—स्वभावों का कथन किया जाता है—१. अस्तिस्वभाव, २. नास्ति-स्वभाव, ३.नित्यस्वभाव, ४. अनित्य-स्वभाव, ५. एकस्वभाव, ६. अनेक-स्वभाव, ७.भेदस्वभाव, ८. अभेद-स्वभाव, ९. भव्यस्वभाव, १०. अभव्य-स्वभाव, ११. परमस्वभाव ये ग्यारह, द्रव्यों के सामान्य स्वभाव हैं।

१. चेतनस्वभाव, २. अचेतनस्वभाव, ३. मूर्तस्वभाव, ४. अमूर्त-स्वभाव, ५.एकप्रदेशस्वभाव, ६.अनेकप्रदेशस्वभाव, ७.विभाव-स्वभाव, ८. शुद्ध स्वभाव, ९. अशुद्धस्वभाव, १०. उपचरितस्वभाव ये दस द्रव्यों के विशेष स्वभाव हैं।

जीवपुद्गलयोरेकविंशतिः॥२९॥ अर्थ—जीव और पुद्गल में उपर्युक्त इक्कीस-इक्कीस स्वभाव पाये जाते हैं।

चेतनस्वभावः मूर्तस्वभावः विभावस्वभावः अशुद्धस्वभावः उपचरितस्वभावः एतैर्विना धर्मादि (धर्माधर्माकाशानां) त्रयाणां षोडश स्वभावाः सन्ति ॥३०॥ अर्थ—धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य तथा आकाश द्रव्य इन तीनों द्रव्यों में उपर्युक्त २१ स्वभावों में से चेतन स्वभाव, मूर्त स्वभाव, विभाव स्वभाव, उपचरित स्वभाव और अशुद्ध स्वभाव ये पाँच

स्वभाव नहीं होते शेष सोलह स्वभाव होते हैं।

तत्र बहुप्रदेशंत्वं विना कालस्य पञ्चदश स्वभावाः॥३१॥ अर्थ—३० नं. सूत्र में १६ स्वभाव बताये गये हैं, उन सोलह स्वभावों में से बहु प्रदेश स्वभाव के बिना शेष पन्द्रह स्वभाव कालद्रव्य में होते हैं।

ते कुतो ज्ञेयाः? ॥३२॥ अर्थ—वे इक्कीस प्रकार के स्वभाव कैसे जाने जाते हैं अर्थात् किसके द्वारा जाने जाते हैं?

प्रमाणनय-विवक्षातः॥३३॥ अर्थ—प्रमाण और नय की विवक्षा के द्वारा उन इक्कीस स्वभावों के यथार्य स्वरूप का ज्ञान होता है।

सम्यग्ज्ञानं प्रमाणम् ॥३४॥ अर्थ—सम्यग्ज्ञान को प्रमाण कहते है।

तद्द्वेधा प्रत्यक्षेतरभेदात् ॥३५॥ अर्थ—प्रत्यक्ष प्रमाण और इतर (परोक्ष) प्रमाण के भेद से वह प्रमाण दो प्रकार का है।

अवधिमनःपर्यायावेकदेशप्रत्यक्षौ ॥३६॥ अर्थ—अवधिज्ञान और मनःपर्यय ज्ञान ये दोनों एक देश प्रत्यक्ष हैं।

केवलं सकलप्रत्यक्षं ॥३७॥ अर्थ—केवलज्ञान सकल प्रत्यक्ष है।

मतिश्रुते परोक्षे ॥३८॥ अर्थ—मतिज्ञान और श्रुतज्ञान ये दो परोक्षज्ञान हैं।

तदवयवा नयाः ॥३९॥ अर्थ—प्रमाण के अवयव नय हैं।

नयभेदा उच्यन्ते ॥४०॥ अर्थ—नय के भेदों को कहते हैं।

द्रव्यार्थिकः, पर्यायार्थिकः, नैगमः, संग्रहः, व्यवहारः, ऋजुसूत्रः, शब्दः, समभिरूढ़ः, एवंभूत इति नव नयाः स्मृताः ॥४१॥ अर्थ—द्रव्यार्थिक, पर्यायार्थिक, नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ़ तथा एवंभूतनय ये नव नय माने गये है।

उपनयाश्च कथ्यन्ते ॥४२॥ अर्थ—अब उपनयों का कथन करते हैं।

नयानां समीपा उपनयाः ॥४३॥ अर्थ—जो नयों के समीप में रहें वे उपनय हैं।

सद्भूतव्यवहारः असद्भूतव्यवहारः उपचरितासद्भूत-

व्यवहारश्चेत्युपनयास्त्रेधा ॥४४॥ अर्थ—सद्भूत व्यवहारनय,असद्भूत व्यवहारनय और उपचरित-असद्भूत व्यवहार ऐसे उपनय के तीन भेद होते हैं।

इदानीमेतेषां भेदा उच्यन्ते ॥४५॥ अर्थ—अब उनके (नयों और उपनयों के) भेदों को कहते हैं।

द्रव्यार्थिकस्य दश भेदाः ॥४६॥ अर्थ—द्रव्यार्थिक नय के दस भेद हैं।

कर्मोपाधिनिरपेक्षः शुद्धद्रव्यार्थिकः, यथा संसारी जीवः सिद्धसदृक्शुद्धात्मा ॥४७॥ अर्थ—शुद्ध द्रव्यार्थिक नय का विषय कर्मोपाधि की अपेक्षा रहित जीवद्रव्य है जैसे संसारी जीव सिद्ध समान शुद्धात्मा है।

उत्पादव्ययगौणत्वेन सत्ताग्राहकः शुद्धद्रव्यार्थिको यथा द्रव्यं नित्यम् ॥४८॥ अर्थ—उत्पाद व्यय को गौण करके सत्ता (ध्रौव्य) को ग्रहण करने वाला शुद्ध द्रव्यार्थिक नय है। जैसे द्रव्य नित्य है।

भेदकल्पनानिरपेक्षः शुद्धो द्रव्यार्थिको यथा निजगुणपर्याय-स्वभावाद् द्रव्यमभिन्नम् ॥४९॥ अर्थ—शुद्ध द्रव्यार्थिक नय भेद कल्पना की अपेक्षा से रहित है। जैसे निजगुण से, निज पर्याय से और निज स्वभाव से द्रव्य अभिन्न है।

कर्मोपाधिसापेक्षोऽशुद्धद्रव्यार्थिको यथा क्रोधादि-कर्मजभाव आत्मा ॥५०॥ अर्थ—कर्मोपाधि की अपेक्षा सहित अशुद्ध जीवद्रव्य द्रव्यार्थिक नय का विषय है, जैसे कर्म जनित क्रोधादि भाव रूप आत्मा है।

उत्पादव्ययसापेक्षोऽशुद्धद्रव्यार्थिको यथैकस्मिन् समये द्रव्य-मुत्पादव्ययध्रौव्यात्मकम् ॥५१॥ अर्थ—उत्पाद, व्यय की अपेक्षा सहित द्रव्य अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय का विषय है, जैसे एक ही समय में उत्पाद व्यय ध्रौव्यात्मक द्रव्य है।

भेदकल्पनासापेक्षोऽशुद्धद्रव्यार्थिको यथात्मनो दर्शनज्ञानादयो गुणाः ॥५२॥ अर्थ—भेद कल्पना सापेक्ष द्रव्य सहित द्रव्य अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय का विषय है। जैसे आत्मा के ज्ञान दर्शनादि गुण हैं।

अन्वयसापेक्षो द्रव्यार्थिको यथा गुणपर्यायस्वभावं द्रव्यम् ॥५३॥ अर्थ—सम्पूर्ण गुण पर्याय और स्वभावों में द्रव्य को अन्वय रूप से ग्रहण करने वाला नयअन्वय सापेक्ष द्रव्यार्थिक नय है।

स्वद्रव्यादिग्राहकद्रव्यार्थिको यथा स्वद्रव्यादिचतुष्टयापेक्षया द्रव्यमस्ति ॥५४॥ अर्थ—स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल, स्वभाव की अपेक्षा द्रव्य को अस्ति रूप से ग्रहण करने वाला नय स्वद्रव्यादि ग्राहक द्रव्यार्थिक नय है।

परद्रव्यादिग्राहकद्रव्यार्थिको यथा परद्रव्यादिचतुष्टयापेक्षया द्रव्यं नास्ति ॥५५॥ अर्थ—परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल, परस्वभाव की अपेक्षा द्रव्य नास्ति रूप है, ऐसा परद्रव्यादिग्राहक नय है।

परमभावग्राहकद्रव्यार्थिको यथा ज्ञानस्वरूप आत्मा, अत्रानेक-स्वभावानां मध्ये ज्ञानाख्यः परमस्वभावो गृहीतः ॥५६॥ अर्थ—ज्ञानस्वरूप आत्मा ऐसा कहना परम भाव ग्राहक द्रव्यार्थिक नय का विषय है क्योंकि इसमें जीव के अनेक स्वभावों में से ज्ञान नामक परम भाव को ही ग्रहण किया गया है।

अथ पर्यायार्थिकस्य षड् भेदाः ॥५७॥ अर्थ—अब पर्यायार्थिक नय के छह भेदों का कथन करते हैं।

अनादिनित्यपर्यायार्थिको यथा पुद्गल पर्यायो नित्यो मेर्वादिः ॥५८॥ अर्थ—अनादिनित्य पर्यायार्थिक नय जैसे मेरु आदि पुद्गल की पर्याय नित्य है।

सादिनित्यपर्यायार्थिको यथा सिद्धपर्यायो नित्यः ॥५९॥ अर्थ—सादि नित्य पर्यायार्थिक नय जैसे सिद्धपर्याय नित्य है।

सत्तागौणत्वेनोत्पादव्ययग्राहकस्वभावोऽनित्यशुद्ध - पर्यायार्थिको यथासमयं समयं प्रति पर्याया विनाशिनः ॥६०॥ अर्थ—ध्रौव्य को गौण करके उत्पाद व्यय को ग्रहण करने वाला नय अनित्य पर्यायार्थिकनय है जैसे प्रति समय पर्याय विनाश होती है।

सत्तासापेक्षस्वभावो नित्या-शुद्धपर्यायार्थिको यथा एकस्मिन् समये त्रयात्मकः पर्यायः ॥६१॥ अर्थ—ध्रौव्य की अपेक्षा सहित ग्रहण करनेवाला नित्य अशुद्ध पर्यायार्थिक नय है। जैसे एक समय में पर्याय

उत्पाद व्यय ध्रौव्यात्मक है।

कर्मोपाधि-निरपेक्षस्वभावोऽनित्यशुद्धपर्यायार्थिको यथा सिद्धपर्यायसदृशाः शुद्धाः संसारिणां पर्यायाः ॥६२॥ अर्थ— कर्मोपाधि (कर्मबंधन) से निरपेक्ष ग्रहण करनेवाला नित्यशुद्ध पर्यायार्थिक नय है। जैसे संसारी जीवों की पर्याय सिद्ध समान है।

कर्मोपाधिसापेक्षस्वभावोऽनित्याशुद्धपर्यायार्थिको यथा संसारिणामुत्पत्तिमरणे स्तः ॥६३॥ अर्थ—अनित्य अशुद्ध पर्यायार्थिक नय का विषय कर्मोपाधि सापेक्ष स्वभाव है जैसे संसारी जीवों का जन्म तथा मरण होता है।

नैगमस्त्रेधा भूताभाविवर्तमानकालभेदात् ॥६४॥ अर्थ—भूत-भावि-वर्तमान काल के भेद से नैगम नय तीन प्रकार का है।

अतीते वर्तमानारोपणं यत्र, स भूतनैगमो यथा अद्य दीपोत्सवदिने श्री वर्द्धमानस्वामी मोक्षं गतः ॥६५॥ अर्थ—जहाँ पर अतीत काल में वर्तमान को संस्थापन किया जाता है वह भूत-नैगम नय है जैसे आज दीपावली के दिन श्री महावीर स्वामी मोक्ष गये हैं।

भाविनि भूतवत् कथनं यत्र स भाविनैगमो यथा अर्हन् सिद्ध एव ॥६६॥ अर्थ—जहाँ भविष्यत् पर्याय में भूतकाल के समान कथन किया जाता है वह भावि नैगम नय है। जैसे अरहंत सिद्ध ही है।

कर्तुमारब्धमीषन्निष्पन्नमनिष्पन्नं वा वस्तु निष्पन्नवत्कथ्यते यत्र स वर्तमाननैगमो यथा ओदनः पच्यते॥६७॥ अर्थ—करने के लिए प्रारम्भ की गई ऐसी ईषत् निष्पन्न (थोड़ी बनी हुई) अथवा अनिष्पन्न (बिल्कुल भी नहीं बनी हुई) वस्तु को निष्पन्नवत् कहना वह वर्तमान नैगमनय है जैसे भात पकाया जाता है।

संग्रहो द्वेधाः॥६८॥ अर्थ—संग्रह नय दो प्रकार का है—सामान्य, विशेष।

सामान्यसंग्रहो यथा सर्वाणि द्रव्याणि परस्परम-विरोधीनि ॥६९॥ अर्थ—सामान्य संग्रह नय जैसे-सर्व द्रव्य परस्पर अविरोधी हैं।

विशेषसंग्रहो यथा सर्वे जीवाः परस्परमविरोधिनः ॥७०॥ अर्थ—विशेष संग्रह नय जैसे सर्व जीव परस्पर में अविरोधी है, एक है।

व्यवहारोऽपि द्वेधा ॥७१/१॥ अर्थ—व्यवहार नय भी दो प्रकार का है सामान्य, विशेष।

सामान्यसंग्रहभेदको व्यवहारो यथा द्रव्याणि जीवाजीवाः ॥७१/२॥ अर्थ—सामान्य संग्रहनय के विषयभूत पदार्थ में भेद करने वाला सामान्य संग्रह भेद व्यवहार नय है जैसे द्रव्य के दो भेद हैं जीव और अजीव।

विशेषसंग्रहभेदको व्यवहारो यथा जीवाः संसारिणो मुक्ताश्च ॥७२॥ अर्थ—विशेष संग्रहनय के विषय भूत पदार्थ को भेद रूप से ग्रहण करने वाला विशेष संग्रह भेदक व्यवहार नय है जैसे जीव के संसारी और मुक्त ऐसे दो भेद करना।

ऋजुसूत्रोऽपि द्विविधः ॥७३॥ अर्थ—ऋजुसूत्र नय भी दो प्रकार है—सूक्ष्म ऋजुसूत्र नय और स्थूल ऋजुसूत्र नय।

सूक्ष्मर्जुसूत्रो यथा एकसमयावस्थायी पर्यायः ॥७४॥ अर्थ—जो नय एक समयवर्ती पर्याय को विषय करता है, वह सूक्ष्म ऋजुसूत्र नय है।

स्थूलर्जुसूत्रो यथा मनुष्यादिपर्यायास्तदायुः प्रमाणकालं तिष्ठन्ति ॥७५॥ अर्थ—जो नय अनेक समयवर्ती स्थूल पर्याय को विषय करता है वह स्थूल ऋजु सूत्र नय है जैसे मनुष्यादि पर्यायें अपनी-अपनी आयु प्रमाण काल तक रहती हैं।

शब्दसमभिरूढैवंभूता नयाः प्रत्येकमेकैका नयाः ॥७६॥ अर्थ—शब्द नय, समभिरूढ़ नय और एवंभूत नय इन तीनों नयों में से प्रत्येक नय एक एक प्रकार का है।

शब्दनयो यथा दाराः भार्या कलत्रं जलं आपः ॥७७॥ अर्थ—शब्द नय जैसे दारा-भार्या कलत्र अथवा जल व आप एकार्थवाची हैं।

समभिरूढनयो यथा गौः पशुः ॥७८॥ अर्थ—नाना अर्थों को 'सम' अर्थात् छोड़कर प्रधानता से एक अर्थ में रूढ होता है वह समभिरूढ़ नय है जैसे गोशब्द के वचन आदि अनेक अर्थ पाये जाते हैं तथापि वह पशु अर्थ में रूढ़ है।

एवंभूतनयो यथा इन्दतीति इन्द्रः ॥७९॥ अर्थ—जिस नय में

वर्तमान क्रिया की प्रधानता होती है वह एवंभूत नय है जैसे जिस समय देवराज इन्द्र क्रिया को करता है, उस समय ही इस नय की दृष्टि में वह इन्द्र है।

उपनयभेदा उच्यन्ते ॥८०॥ अर्थ—उपनय के भेदों को कहते हैं।

सद्भूतव्यवहारो द्विधा ॥८१॥ अर्थ—सद्भूत व्यवहार नय दो प्रकार का है।

शुद्धसद्भूतव्यवहारो यथा शुद्धगुणशुद्धगुणिनोः शुद्धपर्याय शुद्धपर्यायिणोर्भेद-कथनम् ॥८२॥ अर्थ—शुद्ध गुण और शुद्ध गुणी में तथा शुद्ध पर्याय और शुद्ध पर्यायी में जो नय भेद का कथन करता है, वह शुद्ध सद्भूत व्यवहार नय है।

अशुद्धसद्भूतव्यवहारो यथाऽशुद्धगुणाऽशुद्धगुणिनोर-शुद्धपर्यायाशुद्धपर्यायिणोर्भेद कथनम् ॥८३॥ अर्थ—अशुद्ध गुण और अशुद्ध गुणी में तथा अशुद्ध पर्याय और अशुद्ध पर्यायी में जो नय भेद का कथन करता है, वह अशुद्ध सद्भूत व्यवहार नय है।

असद्भूतव्यवहारस्त्रेधा ॥८४॥ अर्थ—असद्भूत व्यवहार नय तीन प्रकार का है।

स्वजात्यसद्भूतव्यवहारो यथा परमाणुर्बहुप्रदेशीति कथन-मित्यादि ॥८५॥ अर्थ—स्वजाति असद्भूत व्यवहार नय जैसे परमाणु को बहु प्रदेशी कहना आदि।

विजात्यसद्भूतव्यवहारो यथा मूर्तं मतिज्ञानं यतो मूर्तद्रव्येण जनितम् ॥८६॥ अर्थ—विजाति असद्भूत व्यवहार उपनय जैसे मतिज्ञानमूर्त है क्योंकि मूर्तद्रव्य से उत्पन्न हुआ है।

स्वजातिविजात्यसद्भूतव्यवहारो यथा ज्ञेये जीवेऽजीवे ज्ञानमिति कथनं ज्ञानस्य विषयात् ॥८७॥ अर्थ—ज्ञान का विषय होने के कारण जीव-अजीव ज्ञेयों में ज्ञान का कथन करना स्वजाति विजाति असद्भूत व्यवहारोपनय है।

उपचरितासद्भूतव्यवहारस्त्रेधा ॥८८॥ अर्थ—उपचरित असद्भूत व्यवहार नय तीन प्रकार का है।

स्वजात्युपचरिता-सद्भूतव्यवहारो यथा पुत्रदारादि मम् ॥८९॥

अर्थ—पुत्र, स्त्री आदि मेरे हैं, ऐसा कहना स्वजात्युपचारितासद्भूत व्यवहार उपनय का विषय है।

विजात्युपचरितासद्भूतव्यवहारो यथा वस्त्राभरणहेमरत्नादि मम् ॥९०॥ अर्थ—वस्त्र, आभूषण, स्वर्णरत्नादि मेरे हैं, ऐसा कहना विजात्युपचरित असद्भूत व्यवहार उपनय है।

स्वजातिविजात्युपचरितासद्भूतव्यवहारो यथा देशराज्य-दुर्गादि मम् ॥९१॥ अर्थ—देश, राज्य, दुर्ग मेरे हैं ऐसा कहना स्वजाति विजाति उपचरित असद्भूत व्यवहार उपनय है।

सहभुवो गुणाः क्रमवर्तिनः पर्यायाः॥९२॥ अर्थ—साथ में होने वाले गुण हैं और क्रम-क्रम से होने वाली पर्यायें हैं, अर्थात् अन्वयी गुण हैं और व्यतिरेक परिणाम पर्यायें हैं।

गुण्यते पृथक्क्रियते द्रव्यं द्रव्याद्यैस्ते गुणाः ॥९३॥ अर्थ—जिनके द्वारा एक द्रव्य दूसरे द्रव्य से पृथक् किया जाता है, वे विशेष गुण कहलाते हैं।

अस्तीत्येतस्य भावोऽस्तित्वं सद्रूपत्वम् ॥९४॥ अर्थ—'अस्ति' इसके भाव को अर्थात् सत् रूप पने को अस्तित्व कहते हैं।

वस्तुनो भावो वस्तुत्वम्, सामान्यविशेषात्मकं वस्तु॥९५॥ अर्थ—सामान्य विशेषात्मक वस्तु है, उस वस्तु का जो भाव है, वह वस्तुत्व है।

द्रव्यस्य भावो द्रव्यत्वम्, निजनिजप्रदेशसमूहैरखण्डवृत्या स्वभावविभावपर्यायान् द्रवति द्रोष्यति अदुद्रुवदिति द्रव्यम् ॥९६॥ अर्थ—जो अपने-अपने प्रदेश समूह के द्वारा अखण्ड से अपने स्वभाव विभावपर्यायों को प्राप्त होता है, होवेगा, हो चुका है, वह द्रव्य है, उस द्रव्य का जो भाव है, वह द्रव्यत्व है।

सद्द्रव्यलक्षणम्, सीदति स्वकीयान् गुणपर्यायान् व्याप्नोतीति सत्, उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत् ॥९७॥ अर्थ—द्रव्य का लक्षण सत् है। अपने गुण और पर्यायों को व्याप्त होने वाला सत् है। अथवा जो उत्पाद व्यय ध्रौव्य से युक्त है, वह सत् है।

प्रमेयस्य भावः प्रमेयत्वम्, प्रमाणेन स्वपररूपं परिच्छेद्यं प्रमेयम्

॥९८॥ अर्थ—प्रमाण के द्वारा जानने के योग्य जो स्व और परस्वरूप है, उस प्रमेय के भाव को प्रमेयत्व कहते हैं।

अगुरुलघोर्भावोऽगुरुलघुत्वम् सूक्ष्मा अवाग्गोचराः प्रतिक्षण-वर्तमाना आगमप्रमाण्यादभ्युपगम्या अगुरुलघु-गुणाः॥९९॥ अर्थ—जो सूक्ष्म है, वचन के अगोचर है, प्रति समय में परिणमनशील है तथा आगम प्रमाण से जाना जाता है, वह अगुरुलघु गुण है।

प्रदेशस्य भावः प्रदेशत्वं क्षेत्रत्वं अविभागिपुद्गलपरमाणु-नावष्टब्धम् ॥१००॥ अर्थ—प्रदेश का भाव प्रदेशत्व है अथवा क्षेत्रत्व है एक अविभागी पुद्गल परमाणु के द्वारा व्याप्त क्षेत्र को प्रदेश कहते हैं।

चेतनस्य भावश्चेतनत्वम् चैतन्यमनुभवनम् ॥१०१॥ अर्थ—चेतन के भाव को अर्थात् पदार्थों के अनुभव को चेतनत्व कहते हैं।

अचेतनस्य भावोऽचेतनत्वमचैतन्यमननुभवनम् ॥१०२॥ अर्थ—अचेतन के भाव को अर्थात् पदार्थों के अनुभवन को अचेतनत्व कहते हैं।

मूर्तस्य भावो मूर्तत्वं रूपादिमत्त्वम् ॥१०३॥ अर्थ—मूर्त के भाव को अर्थात् रूप, रस, गंध, स्पर्श युक्त को मूर्त कहते हैं।

अमूर्तस्य भावोऽमूर्तत्वं रूपादिरहितत्वम् ॥१०४॥ अर्थ—अमूर्त के भाव को अर्थात् स्पर्श, रस, गंध वर्ण से रहित पने को अमूर्तत्व कहते हैं।

स्वभावविभावरूपतया याति पर्येति परिणमतीति पर्यायः ॥१०५॥ अर्थ—जो स्वभाव विभाव रूप से सदैव परिणमन करती रहती है, वह पर्याय है। **स्वभाव-लाभादच्युतत्वादस्तिस्वभावः ॥१०६॥**

अर्थ—जिस द्रव्य को जो स्वभाव प्राप्त है, उससे कभी भी च्युत नहीं होना अस्ति स्वभाव है। **परस्वरूपेणाभावान्नास्ति-स्वभावः ॥१०७॥**

अर्थ—परस्वरूप नहीं होना नास्ति स्वभाव है।

निजनिज-नानापर्यायेषु तदेवेदमिति द्रव्यस्योपलम्भान्नित्य-स्वभावः ॥१०८॥ अर्थ—अपनी-अपनी नाना पर्यायों में 'यह वही है' इस प्रकार की प्राप्ति नित्य स्वभाव है।

तस्याप्यनेकपर्यायपरिणामितत्त्वादनित्यस्वभावः ॥१०९॥

अर्थ—उस द्रव्य का अनेक पर्याय रूप परिणत होने से अनित्य स्वभाव है।

स्वभावाना-मेकाधारत्वादेकस्वभावः ॥११०॥ अर्थ—सम्पूर्ण स्वभावों का एक आधार होने से एक स्वभाव है।

एकस्याप्यनेकस्वभावोपलम्भादनेक स्वभावः ॥१११॥ अर्थ—एक ही द्रव्य के अनेक स्वभावों की उपलब्धि होने से अनेक स्वभाव हैं।

गुणगुण्यादिसंज्ञादिभेदाद् भेदस्वभावः ॥११२॥ अर्थ—गुण गुणी आदि में संज्ञा, संख्या, लक्षण और प्रयोजन की अपेक्षा भेद होने से भेद स्वभाव है।

गुणगुण्याद्येक-स्वभावादभेदस्वभावः ॥११३॥ अर्थ—गुण और गुणी का एक स्वभाव होने से अभेद स्वभाव है।

भाविकाले परस्वरूपाकार भवनाद् भव्य-स्वभावः ॥११४॥ अर्थ—भाविकाल में पर (आगामी पर्याय) स्वरूप होने से भव्य स्वभाव है।

कालत्रयेऽपि परस्वरूपाकाराभवनाद्भव्यस्वभावः॥११५॥ अर्थ—क्योंकि त्रिकाल में भी परस्वरूपाकार (दूसरेद्रव्यरूप) नहीं होगा अतः अभव्य स्वभाव है।

पारिणामिकभावप्रधानत्वेन परमस्वभावः ॥११६॥ अर्थ—पारिणामिक भाव की प्रधानता से परम स्वभाव है।

प्रदेशादिगुणानां व्युत्पत्ति-श्चेतनादिविशेषस्वभावानां च व्युत्पत्तिर्निगदिता ॥११७॥ अर्थ—प्रदेश आदि गुणों की व्युत्पत्ति तथा चेतनादि विशेष स्वभावों की व्युत्पत्ति कही गई।

धर्मापेक्षया स्वभावा गुणा न भवन्ति ॥११८॥ अर्थ—स्वभाव की अपेक्षा स्वभाव गुण नहीं होते।

स्वद्रव्यचतुष्टयापेक्षया परस्परं गुणाः स्वभावा भवन्ति ॥११९॥ अर्थ—स्वद्रव्य चतुष्टय की अपेक्षा परस्पर में गुण स्वभाव हो जाते हैं।

द्रव्याण्यपि भवन्ति ॥१२०॥ अर्थ—स्वद्रव्य चतुष्टय की अपेक्षा गुण द्रव्य भी हो जाते हैं।

स्वभावादन्यथाभवनं विभावः ॥१२१॥ अर्थ—स्वभाव से अन्यथा (विपरीत) होने को विभाव कहते हैं।

शुद्धं केवलभावमशुद्धं तस्यापि विपरीतम् ॥१२२॥ अर्थ—केवलभाव (अमिश्रित भाव) शुद्ध स्वभाव है। इस शुद्ध के विपरीतभाव (मिश्रित भाव) अशुद्धस्वभाव है।

स्वभाव-स्याप्यन्यत्रोपचारादुपचरितस्वभावः ॥१२३॥ अर्थ—स्वभाव का भी अन्यत्र उपचार करना उपचरित स्वभाव है।

स द्वेधा कर्मजस्वाभाविकभेदात्। यथा जीवस्य मूर्तत्वम-चेतनत्वं। यथा सिद्धात्मनां परज्ञता परदर्शकत्वं च॥१२४॥ अर्थ—वह उपचरित स्वभाव कर्मज और स्वभाविक के भेद से दो प्रकार का है। जैसे जीव का मूर्तत्व और अचेतनत्व कर्मज उपचरित स्वभाव है तथा जैसे—सिद्ध आत्माओं के पर का जाननपना तथा पर का दर्शकत्व स्वभाविक उपचरित स्वभाव है।

एवमितरेषां द्रव्याणामुपचारो यथा संभवो ज्ञेयः ॥१२५॥ अर्थ—इसी प्रकार अन्य द्रव्यों में भी यथा संभव उपचरित स्वभाव जानना चाहिए।

तत्कथं ?॥१२६॥ अर्थ—वह किस प्रकार का।

तथाहि-सर्वथैकान्तेन सद्रूपस्य न नियतार्थव्यवस्था संकरादि-दोषत्वात्॥१२७॥ अर्थ—संकर आदि दोषों से दूषित होने के कारण सर्वथा एकान्त के मानने पर सद्रूप पदार्थ की नियत अर्थव्यवस्था नहीं हो सकती है।

संकर आदि आठ दोष—संकर, व्यतिकर, विरोध, वैयाधिकरण, अनवस्था, संशय, अप्रतिपत्ति, अभाव।

तथासद्रूपस्य सकलशून्यताप्रसंगात् ॥१२८॥ अर्थ—यदि सर्वथा एकान्त से असद् रूप माना जाये तो सकल शून्यता का प्रसंग आ जाएगा।

नित्यस्यैकरूपत्वादेकरूपस्यार्थ-क्रियाकारित्वाभावः। अर्थ-क्रियाकारित्वाभावे द्रव्यस्याप्यभावः ॥१२९॥ अर्थ—सर्वथा नित्य रूप मानने पर पदार्थ एक रूप हो जायेगा। एक रूप होने पर अर्थ क्रिया

कारित्व का अभाव हो जाएगा।

अनित्यपक्षेपि निरन्वयत्वात् अर्थक्रियाकारित्वाभावः। अर्थ-क्रियाकारित्वाभावे द्रव्यस्याप्यभावः ॥१३०॥ अर्थ—सर्वथा अनित्य पक्ष में भी निरन्वय अर्थात् निर्द्रव्यत्व होने से अर्थ क्रिया कारित्व का अभाव का जायेगा और अर्थक्रियाकारित्व का अभाव होने से द्रव्य का भी अभाव हो जाएगा।

एकस्वरूपस्यैकान्तेन विशेषाभावः सर्वथैकरूपत्वात्। विशेषा-भावे सामान्यस्याप्यभावः ॥१३१॥ अर्थ—एक स्वरूप के एकान्त से विशेष का अभाव हो जाता है और विशेष का अभाव हो जाने से सर्वथा एक स्वरूप होता है। विशेष का अभाव होने पर सामान्य का भी अभाव हो जाता है।

अनेकपक्षेऽपि तथा द्रव्याभावो निराधारत्वात् आधाराधेया-भावाच्च ॥१३२॥ अर्थ—सर्वथा अनेक पक्ष में भी पदार्थों (पर्यायों) का निराधार होने से तथा आधार आधेय का अभाव होने से द्रव्य का अभाव हो जाएगा।

भेदपक्षेऽपि विशेषस्वभावानां निराधारत्वादर्थक्रियाकारित्वा-भावः। अर्थक्रियाकारित्वाभावे द्रव्य-स्याप्यभावः ॥१३३॥ अर्थ— गुण-गुणी और पर्याय-पर्यायी के सर्वथा भेद पक्ष में विशेष स्वभाव अर्थात् गुण और पर्यायों के निराधार हो जाने से अर्थक्रिया कारित्व का अभाव हो जाएगा और अर्थक्रिया कारित्व के अभाव में द्रव्य का भी अभाव हो जाएगा।

अभेदपक्षेऽपि सर्वेषामेकत्वम्, सर्वेषामेकत्वेऽर्थक्रिया-कारित्वा-भावः, अर्थक्रियाकारित्वाभावे द्रव्यस्याप्यभावः ॥१३४॥ अर्थ—सर्वथा अभेद पक्ष में गुण-गुणी, पर्याय-पर्यायी सम्पूर्ण पदार्थ एक रूप हो जाएंगे। सम्पूर्ण पदार्थों के एक रूप हो जाने पर अर्थक्रियाकारित्व का अभाव हो जाएगा और अर्थ क्रिया कारित्व के अभाव में द्रव्य का भी अभाव हो जायेगा।

भव्यस्यैकान्तेन पारिणामिकत्वात् द्रव्यस्य द्रव्यान्तरत्व-प्रसङ्गात्, सङ्करादिदोषसम्भवात् ॥१३५॥ अर्थ—एकान्त से सर्वथा

भव्य स्वभाव के मानने पर द्रव्य के द्रव्यान्तर का प्रसंग आ जाएगा, क्योंकि द्रव्य परिणामी होने के कारण पर द्रव्यरूप भी परिणाम हो जाएगा। इस प्रकार संकर आदि दोष संभव है।

सर्वथाऽभव्यस्यैकान्तेऽपि तथा शून्यताप्रसङ्गात् स्व-रूपेणाप्य-भवनात् ॥१३६॥ अर्थ—एकान्त से सर्वथा अभव्य स्वभाव के मानने पर शून्यता का प्रसंग आ जाएगा क्योंकि स्वरूप से भी वह नहीं हो सकेगा।

स्वभावस्वरूपस्यैकान्तेन संसाराभावः ॥१३७॥ अर्थ—एकान्त से सर्वथा स्वभाव स्वरूप माना जाए तो संसार काही अभाव हो जाएगा।

विभावपक्षेऽपि मोक्षस्याप्यभावः ॥१३८॥ अर्थ—स्वभाव निरपेक्ष विभाव के मानने पर मोक्ष का भी अभाव हो जाएगा।

सर्वथा चैतन्यमेवेत्युक्ते सर्वेषां शुद्धज्ञानचैतन्यावाप्तिः स्यात्, तथा सति ध्यानं ध्येयं ज्ञानं ज्ञेयं गुरुः शिष्याद्यभावः ॥१३९॥ अर्थ—सर्वथा चैतन्य पक्ष के मानने से सब जीवों के शुद्धरूप चैतन्य की प्राप्ति हो जायेगी। शुद्ध ज्ञानरूपचैतन्य की प्राप्ति हो जाने पर ध्यान, ध्येय, ज्ञान, ज्ञेय, गुरु, शिष्य आदि का अभाव हो जायेगा।

सर्वथाशब्दः सर्वप्रकार-वाची, अथवा सर्वकालवाची, अथवा नियमवाची वा, अनेकान्तसापेक्षी वा ? यदि सर्वप्रकारवाची सर्वकाल-वाची अनेकान्तवाची वा, सर्वादिगणे पठनात् सर्वशब्द, एवं विधश्चेत्तर्हि सिद्धं नः समीहितम्। अथवा नियमवाची चेत्तर्हि सकलार्थानां तव प्रतीतिः कथं स्यात् ? नित्यः अनित्यः एकः अनेकः भेदः अभेदः कथं प्रतीतिः स्यात् नियमितपक्षत्वात्? ॥१४०॥

अर्थ—सर्वथा शब्द सर्वप्रकारवाची है, अथवा सर्वकालवाची है, अथवा नियमवाची है, अथवा अनेकान्तवाची है? यदिसर्वआदिगण में पाठ होने से सर्वथा शब्द सर्व प्रकार, सर्वकालवाची अथवा अनेकान्तवाची है तो हमारा समीहित अर्थात् इष्टसिद्धान्त सिद्ध होगया। यदि सर्वथा शब्द नियमवाची है तो फिर नियमित पक्ष होने के कारण सम्पूर्ण अर्थों की अर्थात् नित्य, अनित्य, एक, अनेक, भेद, अभेद आदि रूप सम्पूर्ण पदार्थों की प्रतीति कैसे होगी? अर्थात् नहीं हो सकेगी।

तथाऽचैतन्यपक्षेऽपि सकलचैतन्योच्छेदः स्यात् ॥१४१॥ अर्थ— वैसे ही सर्वथा अचेतन पक्ष के मानने पर सम्पूर्ण चेतन का उच्छेद हो जाएगा, क्योंकि केवल अचेतन ही माना गया है।

मूर्तस्यैकान्तेनात्मनो न मोक्षस्यावाप्तिः स्यात् ॥१४२॥ अर्थ— सर्वथा एकान्त से आत्मा को मूर्त स्वभाव के मानने पर आत्मा को कभी भी मोक्ष की प्राप्ति नहीं होगी, क्योंकि अष्टकर्मों के बन्धन से मुक्त हो जाने पर सिद्धात्मा अमूर्तिक है।

सर्वथाऽमूर्तस्यापि तथात्मनः संसारविलोपः स्यात् ॥१४३॥ अर्थ—आत्मा को सर्वथा अमूर्तिक मानने पर संसार का लोप हो जाएगा।

एकप्रदेशस्यैकान्तेनाखण्डपरिपूर्णस्यात्मनोऽनेककार्यकारित्व एव हानिः स्यात् ॥१४४॥ अर्थ—सर्वथा एकप्रदेश स्वभावके मानने पर अखण्डता से परिपूर्ण आत्मा के अनेक कार्यकारित्व का अभाव हो जाएगा।

सर्वथाऽनेकप्रदेशत्वेऽपि तथा तस्यानर्थकार्यकारित्वं स्व-स्वभाव-शून्यताप्रसङ्गात् ॥१४५॥ अर्थ—आत्मा के सर्वथा अनेक प्रदेशत्व मानने पर भी अखण्ड एक प्रदेश स्वरूप आत्म-स्वभाव के अभाव हो जाने से अर्थ क्रिया कारित्व का अभाव हो जाएगा।

शुद्धस्यैकान्तेनात्मनो न कर्ममलकलङ्कावलेपः सर्वथा निरञ्जनत्वात् ॥१४६॥ अर्थ—सर्वथा एकान्त से शुद्ध स्वभाव के मानने पर आत्मा सर्वथा निरंजन हो जायेगी। निरंजन हो जाने से कर्ममल रूपी कलङ्क का अवलेप अर्थात् कर्मबंध संभव नहीं होगा।

सर्वथाऽशुद्धैकान्तेऽपि तथाऽत्मनो न कदापि शुद्ध-स्वभाव-प्रसङ्गः तन्मयत्वात् ॥१४७॥ अर्थ—एकान्त से सर्वथा अशुद्ध स्वभाव के मानने पर अशुद्ध मयी हो जाने से आत्मा को कभी भी शुद्ध स्वभाव की प्राप्ति नहीं होगी, अर्थात् मोक्ष नहीं होगा।

उपचरितैकान्तपक्षेऽपि नात्मज्ञता सम्भवति नियमितपक्षत्वात् ॥१४८॥ अर्थ—उपचरित-स्वभावके एकान्त पक्ष में भी आत्मज्ञता सम्भव नहीं हैं, क्योंकि नियत पक्ष है।

तथात्मनोऽनुपचरितपक्षेऽपि परज्ञतादीनां विरोधः स्यात्

॥१४९॥ अर्थ—उसी प्रकार अनुपचरित एकान्त पक्ष में भी आत्मा के परज्ञता आदि का विरोध आ जाएगा।

स्वद्रव्यादिग्राहकेणास्तिस्वभावः ॥१५०॥ अर्थ—स्व द्रव्य क्षेत्र, काल, भाव अर्थात् स्वचतुष्टय को ग्रहण करने वाले द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा से अस्ति स्वभाव है, क्योंकि स्व चतुष्टय की अपेक्षा अस्ति स्वभाव है।

परद्रव्यादि-ग्राहकेण नास्तिस्वभावः ॥१५१॥ अर्थ—पर चतुष्टय को ग्रहण करने वाले द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा नास्ति स्वभाव है क्योंकि पर चतुष्टय की अपेक्षा नास्ति स्वभाव है।

उत्पादव्ययगौणत्वेन सत्ताग्राहकेण नित्यस्वभावः ॥१५२॥ अर्थ—उत्पाद, व्यय को गौण करके ध्रौव्य को ग्रहण करने वाले शुद्ध द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा नित्य स्वभाव है।

केनचित्पर्यायार्थिकेनानित्यस्वभावः॥१५३॥ अर्थ—किसी पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा अनित्य स्वभाव है।

भेद-कल्पनानिरपेक्षेणैकस्वभावः ॥१५४॥ अर्थ—भेद कल्पना निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा एक स्वभाव है।

अन्वयद्रव्यार्थिकेनैकस्याप्यनेक-द्रव्यस्वभावत्वम् ॥१५५॥ अर्थ—अन्वय द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा से एक द्रव्य के भी अनेक स्वभाव पाये जाते हैं।

सद्भूतव्यवहारेण गुणगुण्यादिभिर्भेदस्वभावः॥१५६॥ अर्थ—सद्भूत व्यवहार उपनय की अपेक्षा गुण-गुणी आदि में भेद स्वभाव है।

भेदकल्पनानिरपेक्षेण गुणगुण्यादिभिरभेदस्वभावः ॥१५७॥ अर्थ—भेद कल्पना निरपेक्षशुद्ध द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा गुण, गुणी आदि में अभेद स्वभाव है।

परमभावग्राहकेण भव्याभव्यपारिणामिकस्वभावः ॥१५८॥ अर्थ—परम भाव ग्राहक द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा भव्य और अभव्य पारिणामिक स्वभाव है।

शुद्धाशुद्धपरमभावग्राहकेण चेतन-स्वभावो जीवस्य ॥१५९॥ अर्थ—शुद्धाशुद्ध परम भाव ग्राहक द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा से जीव के

चेतन स्वभाव है।

असद्भूतव्यवहारेण कर्मनोकर्मणोरपि चेतनस्वभावः ॥१६०॥ अर्थ—असद्भूत व्यवहार उपनय की अपेक्षा कर्म, नोकर्म के भी चेतन स्वभाव है।

परमभावग्राहकेण कर्मनोकर्मणोरचेतनस्वभावः ॥१६१॥ अर्थ—परमभाव ग्राहक द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा कर्म, नोकर्म के अचेतन स्वभाव है।

जीवस्याप्य-सद्भूतव्यवहारेणाचेतनस्वभावः ॥१६२॥ अर्थ— विजात्यसद्भूत व्यवहार उपनय की अपेक्षा जीव के भी अचेतन स्वभाव है।

परमभावग्राहकेण कर्मनो-कर्मणोर्मूर्त्तस्वभावः ॥१६३॥ अर्थ— परम भाव ग्राहक द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा कर्म, नोकर्म के मूर्त स्वभाव है।

जीवस्याप्यसद्भूतव्यवहारेण मूर्तस्वभावः॥१६४॥ अर्थ— असद्भूत व्यवहार-उपनय की अपेक्षा जीव के भी मूर्त स्वभाव है।

परमभावग्राहकेण पुद्गलं विहाय इतरेषाममूर्तस्वभावः ॥१६५॥ अर्थ—परमभाव ग्राहक द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा पुद्गल के अतिरिक्त जीवद्रव्य, धर्मद्रव्य, अधर्म द्रव्य, आकाश द्रव्य और काल द्रव्य के अमूर्त स्वभाव है।

पुद्गल-स्योपचारादेवास्त्यमूर्त्तत्वम् ॥१६६॥ अर्थ—पुद्गल के भी उपचार से अमूर्त स्वभाव है।

परमभावग्राहकेण कालपुद्गलाणूनामेक-प्रदेशस्वभावत्वम् ॥१६७॥ अर्थ—परम भाव ग्राहक द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा से कालाणुद्रव्य और पुद्गल परमाणु का एक प्रदेश स्वभाव है।

भेदकल्पनानिरपेक्षेणेतरेषां चाखण्डत्वादेकप्रदेशत्वम् ॥१६८॥ अर्थ—भेद कल्पना निरपेक्ष द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाश द्रव्य और जीवद्रव्य के भी एक प्रदेश स्वभाव है क्योंकि वे अखण्ड हैं।

भेदकल्पनासापेक्षेण चतुर्णामपि नानाप्रदेश-स्वभावत्वम्

॥१६९॥ अर्थ—भेदकल्पना सापेक्ष-अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य और जीवद्रव्य के नाना प्रदेश स्वभाव है।

पुद्गलाणोरुपचारतो नानाप्रदेशत्वम्; न च कालाणोः स्निग्ध-रुक्षत्वाभावात् ऋजुत्वाच्च ॥१७०॥ अर्थ—उपचार से पुद्गल परमाणु के नाना प्रदेश स्वभाव है किन्तु कालाणु के उपचार से भी नाना प्रदेश स्वभाव नहीं है क्योंकि कालाणु में स्निग्ध व रूक्ष गुण का अभाव है तथा वह स्थिर है।

अणोरमूर्तकालस्यैक विंशतितमो भावो न स्यात् ॥१७१॥ अर्थ—अमूर्तिक कालाणु के २१वाँ अर्थात् उपचरित स्वभाव नहीं है।

परोक्षप्रमाणापेक्षयाऽसद्भूतव्यवहारेणाप्युपचारेणामूर्तत्वं पुद्गलस्य ॥१७२॥ अर्थ—परोक्ष प्रमाण की अपेक्षा से और असद्भूत व्यवहार उपनय की दृष्टि से पुद्गल के उपचार से अमूर्त स्वभाव है।

शुद्धाशुद्धद्रव्यार्थिकेन स्वभावविभावत्वम् ॥१७३॥ अर्थ—शुद्ध द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा द्रव्य में स्वभाव भाव है और अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा जीव, पुद्गल में विभाव स्वभाव है।

शुद्धद्रव्यार्थिकेन शुद्धस्वभावः ॥१७४॥ अर्थ—शुद्ध द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षाशुद्ध स्वभाव है।

अशुद्धद्रव्यार्थिकेनाशुद्धस्वभावः ॥१७५॥ अर्थ—अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा अशुद्ध स्वभाव है।

असद्भूतव्यवहारेण उपचरितस्वभावः ॥१७६॥ अर्थ—असद्भूत व्यवहार नय की अपेक्षा उपचरित स्वभाव है।

सकलवस्तुग्राहकं प्रमाणं, प्रमीयते परिच्छिद्यते वस्तुतत्त्वं येन ज्ञानेन तत्प्रमाणम् ॥१७७॥ अर्थ—सकल वस्तु को ग्रहण करने वाला ज्ञान प्रमाण है। जिस ज्ञान के द्वारा वस्तु स्वरूप जाना जाता है, निश्चय किया जाता है, वह ज्ञान प्रमाण है।

तद्द्वेधा सविकल्पेतरभेदात् ॥१७८॥ अर्थ—सविकल्प और निर्विकल्प के भेद से प्रमाण दो प्रकार का है।

सविकल्पं मानसं तच्चतुर्विधम् मतिश्रुतावधिमनः-पर्ययरूपम्

॥१७९॥ अर्थ—मानस अर्थात् विचार या इच्छा सहित ज्ञान सविकल्प ज्ञान है, वह चार प्रकार का है। १. मतिज्ञान, २. श्रुतज्ञान, ३. अवधिज्ञान, ४. मनःपर्ययज्ञान।

निर्विकल्पं मनोरहितं केवलज्ञानम् ॥१८०॥ अर्थ—मन रहित अथवा विचार या इच्छा रहित ज्ञान निर्विकल्प ज्ञान है। केवलज्ञान निर्विकल्प है।

प्रमाणेन वस्तु संगृहीतार्थैकांशो नयः, श्रुतविकल्पो वा, ज्ञातुरभिप्रायो वा नयः, नानास्वभावेभ्यो व्यावृत्य एकस्मिन् स्वभावे वस्तु नयति प्राप्नोतीति वा नयः ॥१८१॥ अर्थ—प्रमाण के द्वारा सम्यक् प्रकार ग्रहण की गई वस्तु के एक धर्म अर्थात् अंश को ग्रहण करने वाले ज्ञान को नय कहते हैं। अथवा श्रुतज्ञान के विकल्प को नय कहते हैं। ज्ञाता के अभिप्राय को नय कहते हैं अथवा जो नाना स्वभावों से हटकर किसी एक स्वभाव में वस्तु को प्राप्त कराता है, वह नय है।

स द्वेधा सविकल्पनिर्विकल्प-भेदात् ॥१८२॥ अर्थ—सविकल्प और निर्विकल्प के भेद से नय भी दो प्रकार का है।

प्रमाणनययोर्निक्षेपणं आरोपणं निक्षेपः, स नामस्थापनादि-भेदेन चतुर्विधः ॥१८३॥ अर्थ—प्रमाण और नय के विषय में यथायोग्य नामादि रूप से पदार्थ निक्षेपण करना अर्थात् आरोपण करना निक्षेप है। वह निक्षेप, नाम, स्थापना द्रव्य और भाव के भेद से चार प्रकार का है।

द्रव्यमेवार्थः प्रयोजनमस्येति द्रव्यार्थिकः ॥१८४॥ अर्थ—द्रव्य जिसका प्रयोजन (विषय) है, वह द्रव्यार्थिक नय है।

शुद्धद्रव्यमेवार्थः प्रयोजनमस्येति शुद्धद्रव्यार्थिकः ॥१८५॥ अर्थ—शुद्ध द्रव्य जिसका प्रयोजन है, वह शुद्ध द्रव्यार्थिक नय है।

अशुद्धद्रव्यमेवार्थः प्रयोजनमस्येति अशुद्धद्रव्यार्थिकः ॥१८६॥ अर्थ—अशुद्ध द्रव्य जिसका प्रयोजन है, वह अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय है।

सामान्यगुणादयोऽन्वयरूपेण द्रव्यं द्रव्यमिति व्यवस्थापयतीति अन्वयद्रव्यार्थिकः ॥१८७॥ अर्थ—जो नय सामान्य गुण, पर्याय, स्वभावको यह द्रव्य है, यह द्रव्य है, इस प्रकार अन्वय रूप से द्रव्य की

व्यवस्था करता है, वह अन्वय द्रव्यार्थिक नय है।

स्वद्रव्यादिग्रहणमर्थः प्रयोजनमस्येति स्वद्रव्यादि-ग्राहकः ॥१८८॥ अर्थ—स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल और स्वभाव , अर्थात् स्वचतुष्टय को ग्रहण करना जिसका प्रयोजन है, वह स्वद्रव्यार्थिक नय है।

परद्रव्यादिग्रहणमर्थः प्रयोजनमस्येति परद्रव्यादिग्राहकः ॥१८९॥ अर्थ—परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल, परभाव अर्थात् परचतुष्टयको ग्रहण जिसका प्रयोजन है, वह पर द्रव्यादि ग्राहक द्रव्यार्थिक नय है।

परमभावग्रहणमर्थः प्रयोजनमस्येति परमभाव-ग्राहकः ॥१९०॥ अर्थ—परम भाव ग्रहण करना जिसका प्रयोजन है, वह परम भाव ग्राहक द्रव्यार्थिक नय है।

पर्याय एवार्थः प्रयोजनमस्येति पर्यायार्थिकः ॥१९१॥ अर्थ—पर्याय ही जिसका प्रयोजन है वह पर्यायार्थिक नय है।

अनादि-नित्यपर्याय एवार्थः प्रयोजनमस्येत्यनादिनित्य-पर्यायार्थिकः ॥१९२॥ अर्थ—अनादि-नित्य पर्याय जिसका प्रयोजन है, वह अनादि नित्य पर्यायार्थिक नय है।

सादिनित्य-पर्याय एवार्थः प्रयोजनमस्येति सादिनित्य-पर्यायार्थिकः ॥१९३॥ अर्थ—सादि नित्य पर्याय जिसका प्रयोजन है, वह सादिनित्य पर्यायार्थिक नय है।

शुद्धपर्याय एवार्थः प्रयोजनमस्येति शुद्धपर्यायार्थिकः ॥१९४॥ अर्थ—शुद्ध पर्याय जिसका प्रयोजन है वह शुद्ध पर्यायार्थिक नय है।

अशुद्ध पर्याय एवार्थः प्रयोजनमस्येत्यशुद्धपर्यायार्थिकः ॥१९५॥ अर्थ—अशुद्ध पर्याय जिसका प्रयोजन है, वह अशुद्ध पर्यायार्थिक नय है।

नैकं गच्छतीति निगमः, निगमो विकल्पस्तत्र भवो नैगमः ॥१९६॥ अर्थ—जो एक को प्राप्त नहीं होता, अर्थात् अनेक को प्राप्त होता है, वह निगम है। निगम का अर्थ विकल्प है। जो विकल्प को ग्रहण करे, वह नैगम नय है।

अभेदरूपतया वस्तुजातं संगृह्णातीति संग्रहः ॥१९७॥ अर्थ—जो नय अभेद रूप से संपूर्ण वस्तु समूह को विषय करता है, वह संग्रह

नय है।

संग्रहेण गृहीतार्थस्य भेदरूपतया वस्तुव्यवह्रियत इति व्यवहारः ॥१९८॥ अर्थ—संग्रहनय से ग्रहण किये हुए पदार्थ को भेद रूप व्यवहार करता है, ग्रहण करता है, वह व्यवहार नय है।

ऋजु प्रांजलं सूत्रयतीति ऋजुसूत्रः ॥१९९॥ अर्थ—जो नय ऋजु अर्थात् अवक्र, सरलको सूत्रित अर्थात् ग्रहण करता है, वह ऋजुसूत्र नय है।

शब्दात् व्याकरणात् प्रकृतिप्रत्ययद्वारेण सिद्धः शब्दः शब्दनयः ॥२००॥ अर्थ—जो नय शब्द अर्थात् व्याकरण से प्रकृति और प्रत्यय के द्वारा सिद्ध अर्थात् निष्पन्न शब्द को मुख्यकर विषय करता है, वह शब्द नय है।

परस्परेणाभिरूढाः समभिरूढाः। शब्दभेदेऽप्यर्थभेदो नास्तिः। यथा शक्र इन्द्रः पुरन्दर इत्यादयः समभिरूढाः॥२०१॥ अर्थ—परस्पर में अभिरूढ़ शब्दों को ग्रहण करने वाला नय समभिरूढ़ नय है। इस नय के विषय में शब्द भेद होने पर भी अर्थ भेद नहीं है जैसे शक्र, इन्द्र, पुरन्दर, ये तीनों ही शब्द देवराज के पर्यायवाची होने से देवराज में ही अभिरूढ़ है।

एवं क्रियाप्रधानत्वेन भूयत इत्येवंभूतः ॥२०२॥ अर्थ—जिस नय में वर्तमान क्रिया की प्रधानता होती है, वह एवंभूत नय है।

शुद्धाशुद्धनिश्चयौ द्रव्यार्थिकस्य भेदौ ॥२०३॥ अर्थ—शुद्ध निश्चय नय और अशुद्ध निश्चय नय ये दोनों द्रव्यार्थिक नय के भेद हैं।

अभेदानुपचारिता वस्तुनिश्चीयत इति निश्चयः ॥२०४॥ अर्थ—अभेद और अनुपचारिता से जो नय वस्तु का निश्चय करे, वह निश्चय नय है।

भेदोपचारितया वस्तुव्यवह्रियत इति व्यवहारः ॥२०५॥ अर्थ—जो नय भेद और उपचार से वस्तु का व्यवहार करता है, वह व्यवहार नय है।

गुणगुणिनोः संज्ञादि-भेदात् भेदकः सद्भूतव्यवहारः ॥२०६॥ अर्थ—संज्ञा, संख्या, लक्षण और प्रयोजन के भेद से जो नय गुण-गुणी

में भेद करता है, वह सद्भूत व्यवहार नय है।

अन्यत्र प्रसिद्धस्य धर्मस्यान्यत्र समारोपणमसद्भूतव्यवहारः ॥२०७॥ अर्थ—अन्यत्र प्रसिद्ध धर्म (स्वभाव) अन्यत्र समारोप (निक्षेप) करने वाला असद्भूत व्यवहारनय है।

असद्भूतव्यवहार एवोपचारः उपचारादप्युपचारं यः करोति स उपचरितासद्भूतव्यवहारः ॥२०८॥ अर्थ—असद्भूत व्यवहार ही उपचार है, जो नय उपचार से भी उपचार करता है, वह उपचरित असद्भूत व्यवहार नय है।

गुणगुणिनोः पर्यायपर्यायिणोः स्वभावस्वभाविनोः कारक-कारकिणोर्भेदः सद्भूत-व्यवहारस्यार्थः ॥२०९॥ अर्थ—गुण-गुणी में, पर्याय-पर्यायी में, स्वभाव-स्वभावी में,कारक-कारकी में, भेद करना सद्भूत व्यवहार नय का विषय है।

१. द्रव्ये द्रव्योपचारः, २. पर्याये पर्यायोपचारः, ३. गुणे गुणोपचारः ४. द्रव्ये गुणोपचारः, ५. द्रव्ये पर्यायोपचारः, ६. गुणे द्रव्योपचारः, ७. गुणे पर्यायोपचारः, ८. पर्याये द्रव्योपचारः,९. पर्याये गुणोपचार इति नवविधोपचारः असद्भूत-व्यवहारस्यार्थो द्रष्टव्यः ॥ २१०॥ अर्थ—१. द्रव्य में द्रव्य का उपचार, २. पर्याय में पर्याय का उपचार, ३. गुण में गुण का उपचार, ४. द्रव्य में गुण का उपचार, ५. द्रव्य में पर्याय का उपचार, ६. गुण में द्रव्य का उपचार, ७. गुण में पर्याय का उपचार, ८. पर्याय में द्रव्य का उपचार, ९. पर्याय में गुण का उपचार, ऐसे नौ प्रकार का उपचार असद्भूत व्यवहार नय का विषय है।

उपचारः पृथग् नयो नास्तीति न पृथक् कृतः ॥२११॥ अर्थ— उपचार पृथक् नय नहीं है, अतः उसको पृथक् रूप से नय नहीं कहा है।

मुख्याभावे सति प्रयोजने निमित्ते चोपचारः प्रवर्तते ॥२१२॥ अर्थ—मुख्य के अभाव में प्रयोजनवश या निमित्त वश उपचार की प्रवृत्ति होती है।

सोऽपि सम्बन्धोऽविनाभावः, संश्लेषः सम्बन्धः, परिणाम-परिणामिसम्बन्धः, श्रद्धाश्रद्धेय-सम्बन्धः, ज्ञानज्ञेयसम्बन्धः, चारित्र-चर्यासम्बन्धश्चेत्यादि, सत्यार्थः असत्यार्थः सत्यासत्यार्थ

श्चेत्युप-चरितासद्भूत-व्यवहारनयस्यार्थः ॥२१३॥ अर्थ—वह सम्बन्ध भी सत्यार्थ अर्थात् स्वजाति पदार्थों में, असत्यार्थ अर्थात् विजाति पदार्थों में तथा सत्यासत्यार्थ अर्थात् स्वजाति विजाति उभय पदार्थों में निम्न प्रकार का होता है—१. अविनाभाव सम्बन्ध, २. संश्लेष सम्बन्ध, ३. परिणाम परिणामी सम्बन्ध, ४.श्रद्धा श्रद्धेय सम्बन्ध, ५. ज्ञान ज्ञेय सम्बन्ध, ६. चारित्र चर्या सम्बन्ध इत्यादि।

पुनरप्यध्यात्मभाषया नया उच्यन्ते ॥२१४॥ अर्थ—फिर भी अध्यात्म भाषा से नयों का कथन करते हैं।

तावन्मूलनयौ द्वौ निश्चयो व्यवहारश्च ॥२१५॥ अर्थ—नयों के मूल भेद दो है-निश्चय नय और व्यवहार नय।

तत्र निश्चयनयोऽभेदविषयो, व्यवहारो भेदविषयः ॥२१६॥ अर्थ—निश्चय नय का विषय अभेद है और व्यवहार नय का विषय भेद है।

तत्र निश्चयो द्विविधः शुद्धनिश्चयोऽशुद्धनिश्चयश्च ॥२१७॥ अर्थ—उनमें से निश्चय नय दो प्रकार का है—शुद्ध निश्चय नय और अशुद्ध निश्चय नय।

तत्र निरुपाधिकगुणगुण्यभेदविषयकः शुद्धनिश्चयो यथा केवलज्ञानादयो जीव इति ॥२१८॥ अर्थ—उनमें से जो नय कर्म जनित विकार से रहित गुण और गुणी को अभेद रूप से ग्रहण करता है, वह शुद्ध निश्चय नय है जैसे केवलज्ञान आदि स्वरूप जीव है अर्थात् केवलज्ञान मयी है क्योंकि ज्ञान जीव स्वरूप है।

सोपाधिकविषयोऽशुद्धनिश्चयो यथा मतिज्ञानादयो जीव इति ॥२१९॥ अर्थ—जो नय कर्म जनित विकार सहित गुण और गुणी को भेद रूप से ग्रहण करता है वह अशुद्ध निश्चय नय है जैसे मतिज्ञानादि स्वरूप जीव।

व्यवहारो द्विविधः सद्भूतव्यवहारोऽसद्भूतव्यवहारश्च ॥२२०॥ अर्थ—सद्भूत व्यवहार नय और असद्भूत व्यवहार नय के भेद से व्यवहार नय दो प्रकार का है।

तत्रैकवस्तुविषयः सद्भूतव्यवहारः ॥२२१॥ अर्थ—उनमें से

एक वस्तु का विषय करने वाला सद्भूत व्यवहार नय है।

भिन्नवस्तुविषयोऽसद्भूतव्यवहारः ॥२२२॥ अर्थ—भिन्न वस्तुओं को विषय करने वाला असद्भूत व्यवहार नय है।

तत्र सद्भूतव्यवहारो द्विविध उपचरितानुपचरितभेदात् ॥२२३॥ अर्थ—उपचरित और अनुपचरित के भेद से सद्भूत व्यवहार नय दो प्रकार का है।

तत्र सोपाधिगुणगुणिनोर्भेदविषयः उपचरितसद्भूत-व्यवहारो, यथा जीवस्य मतिज्ञानादयो गुणाः ॥२२४॥ अर्थ—उनमें से कर्म जनित विकार सहित गुण और गुणी के भेद को विषय करने वाला उपचरित सद्भूत व्यवहार नय है जैसे जीव के मतिज्ञानादिक गुण।

निरुपाधिगुणगुणिनोर्भेदविषयोऽनुपचरितसद्भूत-व्यवहारो, यथा जीवस्य केवलज्ञानादयो गुणाः ॥२२५॥ अर्थ—उपाधि रहित अर्थात् कर्म जनित विकार रहित जीव में गुण और गुणी के भेद रूप विषय को ग्रहण करने वाला अनुपचरित सद्भूत व्यवहार है जैसे जीव के केवलज्ञानादि गुण।

असद्भूतव्यवहारो द्विविधः उपचरितानुपचरितभेदात् ॥२२६॥ अर्थ—उचरित और अनुपचरित के भेद से असद्भूत व्यवहार नय भी दो प्रकार का है।

तत्र संश्लेषरहितवस्तुसम्बन्धविषय उपचरितासद्भूतव्यवहारो यथा देवदत्तस्य धनमिति ॥२२७॥ अर्थ—उनमें से संश्लेष-सम्बन्ध रहित,ऐसी भिन्न वस्तुओं का परस्पर में सम्बन्ध ग्रहण करना उपचरितअसद्भूत व्यवहार नय का विषय है जैसे देवदत्त का धन।

संश्लेषसहित-वस्तुसम्बन्धविषयोऽनुपचरितासद्भूतव्यवहारो, यथा जीवस्य शरीर-मिति ॥२२८॥ अर्थ—संश्लेष सहित वस्तु के सम्बन्ध को विषय करने वाला अनुपचरितासद्भूत व्यवहार नय है, जैसे जीव का शरीर इत्यादि।

❑ ❑ ❑

देवागम स्तोत्र

देवागमनभोयानचामरादिविभूतयः ।
मायाविष्वपि दृश्यन्ते नातस्त्वमसि नो महान् ॥१॥

अन्वयार्थ—(देवागम-नभोयान-चामरादि-विभूतयः) देवों का आगमन, आकाश में गमन, चँवर आदि विभूतियाँ **(मायाविषु)** मायावियों में **(अपि)** भी **(दृश्यन्ते)** देखी जाती हैं **(अतः)** इसलिए **(त्वं)** आप **(नो)** हमारे लिए **(महान्)** पूज्य **(न)** नहीं **(असि)** हो।

अध्यात्मं बहिरप्येष विग्रहादिमहोदयः।
दिव्यः सत्यो दिवौकस्स्वप्यस्ति रागादिमत्सु सः॥२॥

अन्वयार्थ—हे भगवन्! आपमें जो **(एषः)** यह **(विग्रहादि महोदयः)** शरीर आदि का अतिशय **(अध्यात्मं)** अन्तरंग और **(बहिः)** बहिरंग **(अपि)** भी **(अस्ति)** है **(सः)** वह **(दिव्यः)** दिव्य-मनोहर **(सत्यः)** सत्य-वास्तविक है, किन्तु वह **(रागादिमत्सु)** रागादि युक्त **(दिवौकस्सु)** देवों में **(अपि)** भी है।

तीर्थकृत्समयानां च परस्परविरोधतः।
सर्वेषामाप्तता नास्ति कश्चिदेव भवेद्गुरुः ॥३॥

अन्वयार्थ—(तीर्थकृत्समयानां) तीर्थ प्रवर्तकों में—तीर्थंकरों में **(च)** और आगमों में **(परस्परविरोधतः)** आपस में विरोध होने से **(सर्वेषां)** सभी के यहाँ **(आप्तता)** सर्वज्ञता **(नास्ति)** नहीं है **(कश्चिदेव)** कोई एक ही **(गुरुः)** गुरु **(भवेत्)** हो सकता है।

दोषावरणयोर्हानि - र्निश्शेषाऽस्त्यतिशायनात्।
क्वचिद्यथा स्वहेतुभ्यो बहिरन्तर्मलक्षयः ॥४॥

अन्वयार्थ—(यथा) जिस प्रकार **(स्वहेतुभ्यः)** अपने कारणों से **(बहिः)** बहिरंग मल **(अन्तः)** अंतरंग **(मलक्षयः)** मल का नाश हो जाता है **(तथा)** उसी प्रकार **(क्वचित्)** किसी पुरुष विशेष में **(अतिशायनात्)** अतिशायन होने से **(दोषावरणयोः)** दोष और आवरणों का **(निश्शेषा)** पूर्ण रूप से **(हानिः)** अभाव **(अस्ति)** है।

सूक्ष्मान्तरितदूरार्थाः प्रत्यक्षाः कस्यचिद्यथा।
अनुमेयत्वतोऽग्न्यादिरिति सर्वज्ञसंस्थितिः ॥५॥

अन्वयार्थ–(अनुमेयत्वतः) अनुमेय होने से/अनुमान का विषय होने से **(सूक्ष्मान्तरितदूरार्थाः)** सूक्ष्म, अंतरित एवं दूरवर्ती पदार्थ **(कस्यचिद्)** किसी के **(प्रत्यक्षाः)** प्रत्यक्ष हैं **(यथा)** जैसे **(अग्न्यादिः)** अग्नि आदि **(इति)** इस प्रकार **(सर्वज्ञसंस्थितिः)** सर्वज्ञ की भले प्रकार से सिद्धि होती है।

स त्वमेवासि निर्दोषो युक्तिशास्त्राविरोधिवाक्।
अविरोधो यदिष्टं ते प्रसिद्धेन न बाध्यते ॥६॥

अन्वयार्थ–(सः) वह (**निर्दोषः**) निर्दोष **(एव त्वं)** आप ही **(असि)** हो, क्योंकि **(युक्तिशास्त्राविरोधिवाक्)** युक्ति और शास्त्र से आपके वचन विरोध रहित हैं **(अविरोधः)** अविरोध का कारण यह है कि **(यत्)** जो **(ते)** आपका **(इष्टं)** इष्ट है, वह **(प्रसिद्धेन)** प्रत्यक्ष से **(न बाध्यते)** बाधित-खंडित नहीं होता है।

त्वन्मतामृतबाह्यानां सर्वथैकान्तवादिनाम् ।
आप्ताभिमानदग्धानां स्वेष्टं दृष्टेन बाध्यते ॥७॥

अन्वयार्थ–(त्वन्मतामृतबाह्यानां) आपके मतरूपी अमृत से बहिर्भूत **(सर्वथैकान्त-वादिनाम्)** सर्वथा एकान्तवादी **(आप्ताभिमानदग्धानां)** जो आप्तपने के अभिमान से जल रहे हैं **(स्वेष्टं)** उनका अपना इष्टतत्त्व **(दृष्टेन)** प्रत्यक्ष से **(बाध्यते)** बाधित है।

कुशलाकुशलं कर्म परलोकश्च न क्वचित्।
एकान्तग्रहरक्तेषु नाथ स्वपरवैरिषु ॥८॥

अन्वयार्थ–(नाथ) हे नाथ **(स्वपरवैरिषु एकान्तग्रहरक्तेषु)** स्व और पर के शत्रु ऐसे एकान्त वादियों के यहाँ पर **(कुशलाकुशलं कर्म)** शुभ-अशुभ कर्म **(च)** और **(परलोकः)** पर लोक आदि **(क्वचित्)** कुछ भी **(न)** सिद्ध नहीं होता है।

भावैकान्ते पदार्थानामभावानामपह्नवात् ।
सर्वात्मकमनाद्यन्तमस्वरूपमतावकम् ॥९॥

अन्वयार्थ– (अतावकं) जो आपको नहीं मानते हैं उनके यहाँ पर **(पदार्थानां)** पदार्थों का **(भावैकान्ते)** एकान्त से अस्तित्व है ऐसा स्वीकार

करने पर **(अभावानां)** चारों प्रकार के अभावों का **(अपह्नवात्)** लोप हो जाने से वस्तु तत्त्व **(सर्वात्मकम्)** सब रूप **(अनादि)** अनादि **(अन्तं)** अनन्त **(अस्वरूपं)** स्वरूप रहित हो जायेगा।

कार्यद्रव्यमनादि स्यात्प्रागभावस्य निह्नवे।
प्रध्वंसस्य च धर्मस्य प्रच्यवेऽनन्ततां व्रजेत् ॥१०॥

अन्वयार्थ–(प्रागभावस्य) प्राग् अभाव के **(निह्नवे)** लोप करने पर **(कार्यद्रव्यं)** कार्य द्रव्य **(अनादि स्यात्)** अनादि हो जावेगा **(च)** और **(प्रध्वंसस्य)** प्रध्वंस **(धर्मस्य)** धर्म के **(प्रच्यवे)** अभाव मानने पर **(अनन्ततां)** अनन्तपने को **(व्रजेत्)** प्राप्त होगा।

सर्वात्मकं तदेकं स्यादन्यापोहव्यतिक्रमे।
अन्यत्र समवाये न व्यपदिश्येत सर्वथा ॥११॥

अन्वयार्थ–(अन्यापोह व्यतिक्रमे) अन्योन्याभाव का लोप करने पर **(तदेकं)** वह एक इष्ट तत्त्व **(सर्वात्मकं स्यात्)** सब रूप हो जायेगा और **(अन्यत्र समवाये)** अत्यन्ताभाव के नहीं मानने पर **(सर्वथा)** सब प्रकार से (**व्यपदिश्येत न**) व्यपदेश नहीं हो सकेगा।

अभावैकान्तपक्षेऽपि भावापह्नववादिनाम् ।
बोधवाक्यं प्रमाणं न केन साधनदूषणम् ॥१२॥

अन्वयार्थ–(भावापह्नववादिनाम्) भाव अर्थात् पदार्थ का सर्वथा लोप करने वालों के यहाँ **(अभावैकान्तपक्षेऽपि)** अभाव एकान्त के पक्ष को स्वीकार करने पर भी **(बोधवाक्यं)** ज्ञान और वचन **(प्रमाणं)** प्रमाण **(न)** नहीं होगे तब **(केन)** किससे (**साधनदूषणं**) साधन और दूषण दिया जा सकता है।

विरोधान्नोभयैकात्म्यं स्याद्वादन्यायविद्विषाम् ।
अवाच्यतैकान्तेऽप्युक्ति र्नावाच्यमिति युज्यते ॥१३॥

अन्वयार्थ–(स्याद्वादन्यायविद्विषां) स्याद्वाद न्याय से द्वेष रखने वालों के यहाँ (**उभयैकात्म्यं**) उभय का एकान्त अर्थात् सर्वथा भावाभाव **(न)** नहीं बनता **(विरोधात्)** विरोध होने से **(अवाच्यतैकान्तेऽपि)** अवक्तव्यता का एकान्त स्वीकार करने पर भी **(अवाच्यं)** अवाच्य **(इति)** इस प्रकार

(उक्तिः) कथन **(न युज्यते)** किया नहीं जा सकता।

कथञ्चित्ते सदेवेष्टं कथञ्चिदसदेव तत्।
तथोभयमवाच्यं च नययोगान्न सर्वथा ॥१४॥

अन्वयार्थ–(ते) हे नाथ आपका **(तत्)** वह वस्तु तत्त्व **(कथंचित्)** किसी अपेक्षा से **(सत्)** सत् **(एव)** ही है **(कथंचित्)** किसी अपेक्षा से **(असदेव)** असत् ही है **(तथा)** इसी प्रकार **(उभयं)** उभय अर्थात् सत् असत् **(अवाच्यं च)** और अवक्तव्य भी **(इष्टं)** इष्ट है **(नययोगात्)** नय विवक्षा से **(न सर्वथा)** सर्वथा नहीं अर्थात् एकान्त से नहीं।

सदेव सर्वं को नेच्छेत् स्वरूपादिचतुष्टयात्।
असदेव विपर्यासान्न चेन्न व्यवतिष्ठते ॥१५॥

अन्वयार्थ–(स्वरूपादिचतुष्टयात्) स्वरूपादि चतुष्टय से **(सर्वं)** समस्त वस्तु **(सदेव)** सत् ही और **(विपर्यासात्)** पररूपादि चतुष्टय से **(असदेव)** असत् ही **(कः)** कौन **(न इच्छेत्)** स्वीकार नहीं करेगा **(न चेत्)** यदि स्वीकार नहीं करता है तो **(न व्यवतिष्ठते)** व्यवस्था नहीं बनती है।

क्रमार्पितद्वयाद् द्वैतं सहावाच्यमशक्तितः।
अवक्तव्योत्तराः शेषास्त्रयो भङ्गाः स्वहेतुतः ॥१६॥

अन्वयार्थ–(क्रमार्पितद्वयात्) दोनों धर्मों की क्रम से विवक्षा होने से वस्तु **(द्वैतं)** द्वैत अर्थात् उभयरूप है **(सह)** एक साथ **(अशक्तितः)** दोनों धर्मों के कहने की शक्ति न होने से **(अवाच्यं)** अवक्तव्य है **(अवक्तव्योत्तराः)** अवक्तव्य है उत्तर में जिसके ऐसे **(शेषाः)** शेष **(त्रयो)** तीन **(भङ्गाः)** भंग **(स्वहेतुतः)** अपने-अपने कारणों से बन जाते हैं।

अस्तित्वं प्रतिषेध्येनाऽविनाभाव्येक - धर्मिणि।
विशेषणत्वात्साधर्म्यं यथा भेदविवक्षया ॥१७॥

अन्वयार्थ-(यथा) जैसे **(साधर्म्यं)** साधर्म्य **(भेदविवक्षया)** भेद विवक्षा-वैधर्म्य के साथ अविनाभाव को लिए रहता है, उसी प्रकार **(विशेषणत्वात्)** विशेषण होने से **(एकधर्मिणि)** एक धर्मी में **(अस्तित्वं)** अस्तित्व धर्म **(प्रतिषेध्येन)** प्रतिषेध्य के साथ अर्थात् नास्तित्व के साथ **(अविनाभावी)** अविनाभाव सम्बन्ध को लिए है।

नास्तित्वं प्रतिषेध्येनाऽविनाभाव्येकधर्मिणि।
विशेषणत्वाद्वैधर्म्यं यथाऽभेदविवक्षया ॥१८॥

अन्वयार्थ–(विशेषणत्वात्) विशेषण होने से **(नास्तित्वं)** नास्तित्व **(एक-धर्मिणि)** एक धर्मी में **(प्रतिषेध्येन)** अस्तित्व के साथ **(अविनाभावी)** अविनाभाव सम्बन्ध को लिए है। **(यथा)** जैसे **(वैधर्म्यं)** वैधर्म्य **(अभेद-विवक्षया)** अभेद विवक्षा–साधर्म्य के साथ अविनाभाव सम्बन्ध रखता है।

विधेयप्रतिषेध्यात्मा विशेष्यः शब्दगोचरः।
साध्यधर्मो यथा हेतुरहेतुश्चाप्यपेक्षया ॥१९॥

अन्वयार्थ–(शब्दगोचरः) शब्द का विषय **(विशेष्यः)** विशेष्य **(विधेय-प्रतिषेध्यत्मा)** विधि एवं निषेधरूप है **(यथा)** जैसे **(साध्यधर्मो)** साध्य का धर्म **(अपेक्षया)** अपेक्षा से **(हेतुः)** हेतु **(अहेतुश्च)** और अहेतु **(अपि)** भी है।

शेषभङ्गाश्च नेतव्या यथोक्तनययोगतः।
न च कश्चिद्विरोधोऽस्ति मुनीन्द्र तव शासने ॥२०॥

अन्वयार्थ–(यथोक्तनययोगतः) यथोक्त नय की विवक्षा से **(शेष-भङ्गाश्च)** शेष भंग भी **(नेतव्या)** जान लेना चाहिए **(मुनीन्द्र)** हे नाथ **(तव शासने)** आपके अनेकान्तरूप शासन में **(कश्चिद्)** किसी भी प्रकार का **(विरोधः)** विरोध **(नास्ति)** नहीं है।

एवं विधिनिषेधाभ्यामनवस्थितमर्थकृत् ।
नेति चेन्न यथाकार्यं बहिरन्तरूपाधिभिः ॥२१॥

अन्वयार्थ–(एवं) इस प्रकार **(विधिनिषेधाभ्यां)** विधि और निषेध के द्वारा जो वस्तु **(अनवस्थितं)** अवस्थित नहीं है, वह **(अर्थकृत् न)** अर्थ-क्रियाकारी नहीं है **(चेत्)** यदि **(इति)** इस प्रकार नहीं माना जाये तो **(यथा)** जैसे **(कार्यं)** कार्य **(बहिरन्तरूपाधिभिः)** बहिरंग और अंतरंग कारणों के द्वारा **(न)** नहीं होगा।

धर्मे धर्मेऽन्य एवार्थो धर्मिणोऽनन्तधर्मणः।
अङ्गित्वेऽन्यतमान्तस्य शेषान्तानां तदङ्गता ॥२२॥

अन्वयार्थ—(अनन्तधर्मणः) अनन्त धर्म से युक्त **(धर्मिणः)** धर्मी के **(धर्मे धर्मे)** प्रत्येक धर्म **(अर्थः)** अर्थ **(अन्य एव)** भिन्न ही है **(अन्यतम अन्तस्य)** किसी एक धर्म के **(अंगित्वे)** अंगी–प्रधान होने पर **(शेषान्तानां)** शेष धर्म **(तदङ्गता)** उस समय अंगता–गौण हो जाते हैं।

एकानेकविकल्पादावुत्तरत्राऽपि योजयेत् ।
प्रक्रियां भङ्गिनीमेनां नयैर्नयविशारदः ॥२३॥

अन्वयार्थ—(नयविशारदः) नयों की योजना लगाने में कुशल को **(उत्तरत्र)** उत्तरवर्ती **(एकानेक-विकल्पादौ)** एक अनेक आदि धर्मों में **(अपि)** भी **(नयैः)** नयों के साथ **(एनां)** इस **(भंगिनीम्)** सप्तभंगी **(प्रक्रियां)** प्रक्रिया को **(योजयेत्)** लगा लेना चाहिए।

द्वितीयपरिच्छेद

अद्वैतैकान्तपक्षेऽपि दृष्टो भेदो विरुध्यते।
कारकाणां क्रियायाश्च नैकं स्वस्मात्प्रजायते ॥२४॥

अन्वयार्थ—(अद्वैतैकान्तपक्षेऽपि) अद्वैत एकान्त के पक्ष में भी **(कारकाणां)** कारकों का **(क्रियायाश्च)** और क्रियाओं का **(दृष्टो)** प्रत्यक्ष सिद्ध **(भेदो)** भेद **(विरुध्यते)** विरोध रूप दिखाई देता है **(एकं)** जो एक रूप होता है **(स्वस्मात्)** अपने से **(न जायते)** उत्पन्न नहीं होता है।

कर्मद्वैतं फलद्वैतं लोकद्वैतं च नो भवेत्।
विद्याऽविद्याद्वयं न स्यात् बन्धमोक्षद्वयं तथा ॥२५॥

अन्वयार्थ—अद्वैतैकान्त पक्ष में **(कर्मद्वैतं)** दो कर्म **(फलद्वैतं)** दो फल **(च)** और **(लोकद्वैतं)** दो लोक **(नो भवेत्)** नहीं बनते है **(तथा)** उसी प्रकार **(विद्याविद्याद्वयं)** विद्या और अविद्या ये दोनों **(बन्धमोक्ष-द्वयं)** बंध और मोक्ष ये दोनों **(न स्यात्)** नहीं बनेंगे।

हेतोरद्वैतसिद्धिश्चेद्द्वैतं स्याद्धेतुसाध्ययोः।
हेतुना चेद्विना सिद्धिर्द्वैतं वाङ्मात्रतो न किम् ॥२६॥

अन्वयार्थ—(चेत्) यदि **(हेतोः)** हेतु से **(अद्वैतसिद्धिः)** अद्वैत की अर्थात् एकत्व की सिद्धि मानी जाये तो **(हेतुसाध्ययोः)** हेतु और साध्य

का **(द्वैतं स्यात्)** द्वैत सिद्ध होता है **(चेत्)** यदि **(हेतुना बिना)** हेतु के बिना **(सिद्धिः)** सिद्धि मानी जाये तो **(वाङ्मात्रतः)** वचन मात्र से अर्थात् कथन मात्र से **(द्वैतं)** द्वैत **(किम् न)** क्यों नहीं होगा अर्थात् द्वैत की सिद्धि हो जायेगी।

अद्वैतं न बिना द्वैतादहेतुरिव हेतुना।
सञ्ज्ञिनः प्रतिषेधो न प्रतिषेध्यादृते क्वचित् ॥२७॥

अन्वयार्थ–(हेतुना) हेतु के बिना **(अहेतुः)** अहेतु के **(इव)** समान **(द्वैतात् बिना)** द्वैत के बिना **(अद्वैतं न)** अद्वैत नहीं बनता है **(प्रतिषेध्यात् ऋते)** प्रतिषेध्य के बिना **(क्वचित्)** कहीं पर भी **(संज्ञिनः)** संज्ञी का **(प्रतिषेधः)** प्रतिषेध **(न)** नहीं होगा।

पृथक्त्वैकान्तपक्षेऽपि पृथक्त्वादपृथक्तु तौ।
पृथक्त्वे न पृथक्त्वं स्यादनेकस्थो ह्यसौ गुणः ॥२८॥

अन्वयार्थ–(पृथक्त्वैकान्तपक्षेऽपि) पृथक्त्वैकान्त पक्ष में **(पृथक्त्वात्)** पृथक्त्व गुण से **(तौ)** दोनों द्रव्य, गुण आदि यदि **(अपृथक्)** अपृथक् हैं **(तु)** तो (स्वमत से विरोध होता है और) **(स्यात्)** यदि **(पृथक्त्वे)** द्रव्यादि पृथक्त्व गुण से पृथक् हैं तो **(पृथक्त्वं न)** पृथक्त्व गुण नहीं हो सकता है **(हि)** क्योंकि **(असौ गुणः)** पृथक्त्व गुण **(अनेकस्थो)** अनेक पदार्थों में रहता है।

सन्तानः समुदायश्च साधर्म्यं च निरङ्कुशः।
प्रेत्यभावश्च तत्सर्वं न स्यादेकत्वनिह्नवे ॥२९॥

अन्वयार्थ–(एकत्वनिह्नवे) एकत्व का लोप करने पर **(निरङ्कुशः)** बाधाओं से रहित **(संतानः)** संतान **(समुदायश्च)** और समुदाय **(साध्यर्म्यं)** साधर्म्य **(च)**और **(प्रेत्यभावश्च)** परलोकादि **(तत्सर्वं)** ये सब **(न स्यात्)** नहीं हो सकते।

सदात्मना च भिन्नं चेत् ज्ञानं ज्ञेयाद्द्विधाप्यसत्।
ज्ञानाभावे कथं ज्ञेयं बहिरन्तश्च ते द्विषाम् ॥३०॥

अन्वयार्थ–(सदात्मना) सत्स्वरूप की अपेक्षा से **(ज्ञानं)** ज्ञान को **(चेत्)** यदि **(ज्ञेयात्)** ज्ञेय से **(भिन्नं)** भिन्न माना जाये तो **(द्विधा च)** ज्ञान और ज्ञेय दोनों **(अपि)** भी **(असत्)** अवस्तु हो जायेंगे **(ते)** हे नाथ आपसे

(द्विषाम्) द्वेष रखने वालों के यहाँ **(ज्ञानाभावे)** ज्ञान के अभाव में **(बहिरन्तश्च)** बहिरंग और अंतरंग **(ज्ञेयं)** ज्ञेय **(कथं)** कैसे बनेगा?

सामान्यार्था गिरोऽन्येषां विशेषो नाभिलप्यते।
सामान्याभावतस्तेषां मृषैव सकला गिरः ॥३१॥

अन्वयार्थ–(अन्येषां) दूसरों के यहाँ **(गिरः)** वचन-शब्द **(सामान्यार्थाः)** सामान्य को ही विषय करते हैं, उन वचनों के द्वारा **(विशेषः)** विशेष **(न)** नहीं **(अभिलप्यते)** कहा जाता है **(तेषां)** उनके यहाँ से **(सामान्याभावतः)** सामान्य का अभाव होने से **(सकलाः)** सभी **(गिरः)** वचन **(मृषा एव)** असत्य ही होंगे।

विरोधान्नोभयैकात्म्यं स्याद्वादन्यायविद्विषाम् ।
अवाच्यतैकान्तेऽप्युक्तिर्नावाच्यमिति युज्यते ॥३२॥

अन्वयार्थ–(स्याद्वादन्यायविद्विषां) स्याद्वायन्याय से द्वेष रखने वालों के यहाँ **(विरोधात्)** विरोध होने से **(उभयैकात्म्यं)** उभय का एकान्त अर्थात् पृथक्त्व एवं अपृथक्त्व का एकान्त **(न)** नहीं बनता **(अवाच्यतै-कान्ते)** अवाच्यता के एकान्त में **(अवाच्यमिति)** अवाच्य इस प्रकार **(उक्तिः)** कथन **(अपि)** भी **(न युज्यते)** घटित नहीं होता।

अनपेक्षे पृथक्त्वैक्ये ह्यवस्तुद्वयहेतुतः ।
तदेवैक्यं पृथक्त्वं च स्वभेदैः साधनं यथा ॥३३॥

अन्वयार्थ–(अनपेक्षे) परस्पर एक दूसरे की अपेक्षा न रखते हुए **(पृथक्त्वैक्ये)** पृथक्त्व एवं एकत्व अर्थात् अपृथक्त्व ही **(अवस्तु)** अवस्तु रूप हैं, किन्तु **(द्वयहेतुतः)** दो हेतुओं से परस्पर सापेक्ष **(तदेवैक्यं पृथक्त्वं च)** वे दोनों ही पृथक्त्व और एकत्व (उसी प्रकार वस्तु को प्राप्त होते हैं) **(यथा)** जैसे **(स्वभेदैः)** अपने भेदों की अपेक्षा से **(साधनं)** साधन वस्तुरूप होता है।

सत्सामान्यात्तु सर्वैक्यं पृथक् द्रव्यादिभेदतः ।
भेदाभेदविवक्षायामसाधारण - हेतुवत् ॥३४॥

अन्वयार्थ–(भेदाभेदविवक्षायां) भेद और अभेद की विवक्षा में **(असाधारण-हेतुवत्)** असाधारण-असामान्य हेतु की तरह **(सत् सामान्यात्)** सत्ता सामान्य की अपेक्षा से **(तु)** तो **(सर्वैक्यं)** सभी

पदार्थों में एकता है **(द्रव्यादिभेदतः)** द्रव्यादि पदार्थों के भेदों की अपेक्षा से **(पृथक्)** भिन्नता है।

विवक्षा चाविवक्षा च विशेष्येऽनन्तधर्मिणि।
सतो विशेषणस्यात्र नासतस्तैस्तदर्थिभिः ॥३५॥

अन्वयार्थ–**(अत्र)** यहाँ **(अनंतधर्मिणि)** अनन्त धर्मात्मक जीवादि **(विशेष्ये)** विशेष्य में **(सतः विशेषणस्य)** सत् स्वरूप विशेषण की ही **(विवक्षा)** विवक्षा **(च)** और **(अविवक्षा च)** अविवक्षा की जाती है **(तदर्थिभिः)** उस विशेषण की इच्छा करने वाले **(तैः)** उन प्रतिपत्ताओं के द्वारा **(असतः)** असत् की **(न)** नहीं।

प्रमाणगोचरौ सन्तौ भेदाभेदौ न संवृती।
तावेकत्राविरुद्धौ ते गुणमुख्यविवक्षया ॥३६॥

अन्वयार्थ–**(प्रमाणगोचरौ)** प्रमाण के विषय होने के कारण **(भेदाभेदौ)** भेद और अभेद **(संतौ)** वास्तविक हैं **(संवृती न)** काल्पनिक नहीं **(ते)** आपके अनेकान्त शासन में **(गुणमुख्यविवक्षया)** गौण मुख्य की विवक्षा से **(एकत्र)** एक साथ **(तौ)** वे भेद, अभेद **(अविरुद्धौ)** विरुद्ध नहीं पड़ते हैं।

तृतीयपरिच्छेद

नित्यत्वैकान्तपक्षेऽपि विक्रिया नोपपद्यते॥
प्रागेव कारकाभावः क्व प्रमाणं क्व तत्फलम् ॥३७॥

अन्वयार्थ–**(नित्यत्वैकान्तपक्षेऽपि)** नित्य एकान्त पक्ष में भी **(विक्रिया)** परिणमन रूप क्रिया **(न उपपद्यते)** उत्पन्न नहीं होती है जब **(प्रागेव)** पहले से ही **(कारकाभावः)** कारकों का अभाव है तो **(क्व प्रमाणं)** प्रमाण कैसे और **(क्व तत्फलं)** प्रमाण का फल भी कैसे बनेगा अर्थात् नहीं बनेगा।

प्रमाणकारकैर्व्यक्तं व्यक्तं चेदिन्द्रियार्थवत् ।
ते च नित्ये विकार्यं किं साधोस्ते शासनाद्बहिः ॥३८॥

अन्वयार्थ–जैसे **(चेत्)** यदि **(इन्द्रियार्थवत्)** इन्द्रियों के द्वारा अर्थ की अभिव्यक्ति होती है उसी प्रकार **(प्रमाणकारकैः)** प्रमाण और कारकों के

द्वारा **(व्यक्तं)** व्यक्त पदार्थों की **(व्यक्तं)** अभिव्यक्ति होती है तो **(ते च नित्ये)** प्रमाण और कारकों को नित्य मानने पर **(साधोः)** हे नाथ **(ते शासनात्)** आपके शासन से **(बहिः)** बाहर **(किं विकार्यं)** क्या विकार्य बन सकता है अर्थात् नहीं।

यदि सत्सर्वथा कार्यं पुंवन्नोत्पत्तुमर्हति ।
परिणामप्रक्लृप्तिश्च नित्यत्वैकान्तबाधिनी ॥३९॥

अन्वयार्थ–(यदि) यदि **(कार्यं)** कार्य को **(सर्वथा सत्)** एकान्त से सत्स्वरूप माना जाये तो **(पुवंत्)** पुरुष तत्त्व की तरह **(उत्पत्तुं)** उत्पत्ति के योग्य **(न अर्हति)** नहीं ठहरता है और यदि **(परिणाम-प्रक्लृप्तिश्च)** परिणमन की परिकल्पना की जाये तो **(नित्यत्वैकान्तबाधिनी)** नित्यत्वैकान्त को खंडित करने वाली है।

पुण्यपापक्रिया न स्यात् प्रेत्यभावः फलं कुतः।
बन्धमोक्षौ च तेषां न येषां त्वं नासि नायकः ॥४०॥

अन्वयार्थ–(येषां) जिनके **(त्वं)** आप **(नायकः)** नायक **(न असि)** नहीं हो **(तेषां)** उनके मत में **(पुण्यपापक्रिया)** पुण्य और पाप की क्रिया **(न स्यात्)** नहीं होगी **(प्रेत्यभावः)** परलोक गमन **(फलं)** सुख-दुःखादि फल **(कुतः)** कैसे होंगे **(च)** तथा **(बन्धमोक्षौ)** बंध और मोक्ष उनके यहाँ **(न)** नहीं बनते हैं।

क्षणिकैकान्तपक्षेऽपि प्रेत्यभावाद्यसम्भवः ।
प्रत्यभिज्ञाद्यभावान्न कार्यारम्भः कुतः फलम् ॥४१॥

अन्वयार्थ–(क्षणिकैकान्तपक्षेऽपि) क्षणिक एकान्त पक्ष में भी **(प्रेत्य-भावादि असंभवः)** परलोकादि संभव नहीं हैं। **(प्रत्यभिज्ञाद्यभावात्)** प्रत्यभिज्ञान आदि के अभाव होने से **(न कार्यारम्भः)** कार्य का आरंभ नहीं हो सकता कार्य के अभाव में **(फलं कुतः)** पुण्य पाप रूप फल भी कैसे बनेगा?

यद्यसत्सर्वथा कार्यं तन्माजनि खपुष्पवत् ।
मोपादाननियामोभून्माऽश्वासः कार्यजन्मनि ॥४२॥

अन्वयार्थ–(यदि) यदि **(कार्यं)** कार्य को **(सर्वथा)** एकान्त से **(असत्)** असत् माना जाये तो **(तत्)** वह कार्य (**खपुष्पवत्**) आकाश के पुष्प की

तरह **(माजनि)** उत्पन्न नहीं हो सकता **(उपादाननियामो)** उपादान कारण का नियम भी **(माभूत्)** नहीं बनेगा और **(कार्यजन्मनि)** कार्य की उत्पत्ति में **(आश्वासः)** विश्वास **(मा)** नहीं होगा।

न हेतुफल - भावादिरन्यभावादनन्वयात् ।
सन्तानान्तरवन्नैकः सन्तानस्तद्वतः पृथक् ॥४३॥

अन्वयार्थ—क्षणिक एकान्त पक्ष में **(अनन्वयात्)** अन्वय न होने से **(हेतुफल-भावादिः न)** हेतुभाव एवं फलभाव आदि नहीं बनते **(सन्तानान्तरवत्)** क्योंकि अन्य संतान की तरह **(अन्यभावात्)** अन्य भाव होता है और **(तद्वतः)** संतानवान् से **(पृथक्)** पृथक् **(एकः)** कोई एक **(संतानः न)** संतान नहीं है।

अन्येष्वनन्यशब्दोऽयं संवृतिर्न मृषा कथम् ।
मुख्यार्थः संवृतिर्नस्याद् बिना मुख्यान्न संवृतिः ॥४४॥

अन्वयार्थ—**(अन्येषु)** अन्यों में **(अनन्यशब्दः)** अनन्य इस प्रकार जो शाब्दिक व्यवहार होता है वह **(संवृतिः)** संवृति से है **(अयं)** यह संवृति **(मृषा)** असत्य **(कथं न)** कैसे नहीं होगी, क्योंकि (**मुख्यार्थः**) मुख्य अर्थ **(संवृतिः न स्याद्)** काल्पनिक नहीं होता और **(मुख्यात् बिना न संवृतिः)** मुख्य के बिना कल्पना नहीं होती।

चतुष्कोटेर्विकल्पस्य सर्वान्तेषूक्त्ययोगतः ।
तत्त्वान्यत्वमवाच्यं चेत्तयोः सन्तानतद्वतोः ॥४५॥

अन्वयार्थ—**(सर्वान्तेषु)** समस्त धर्मों में **(चतुष्कोटेर्विकल्पस्य)** चार कोटि रूप विकल्प के **(उक्त्ययोगतः)** कहने का अभाव होने से **(तयोः संतानतद्वतोः)** उन संतान और संतानी के **(तत्त्वान्यत्वं अवाच्यं)** एकत्व और अनेकत्व धर्म अवाच्य हैं **(चेत्)** यदि ऐसा कहते हो तो।

अवक्तव्यचतुष्कोटिविकल्पोऽपि न कथ्यताम्।
असर्वान्तमवस्तु स्यादविशेष्यविशेषणम् ॥४६॥

अन्वयार्थ—**(अवक्तव्यचतुष्कोटिविकल्पः)** चतुष्कोटि विकल्प अवक्तव्य है यह **(अपि)** भी **(न कथ्यताम्)** नहीं कहना चाहिए **(असर्वान्तं)** जो समस्त धर्मों से रहित है **(अविशेष्य-विशेषणं)** वह विशेषण विशेष्यभाव से रहित होता हुआ **(अवस्तु स्यात्)** अवस्तुरूप

ठहरता है।

द्रव्याद्यन्तरभावेन निषेधः सञ्ज्ञिनः सतः।
असद्भेदो न भावस्तु स्थानं विधिनिषेधयोः ॥४७॥

अन्वयार्थ–(सतः संज्ञिनः) सत्ता से युक्त संज्ञी पदार्थ का ही **(द्रव्याद्यन्तर-भावेन)** अन्य द्रव्य आदि की अपेक्षा से **(निषेधः)** अभाव किया जाता है **(असद्भेदो भावस्तु)** असत्रूप वस्तु तो **(विधिनिषेधयोः)** विधि और निषेध का **(स्थानं न)** स्थान नहीं होती।

अवस्त्वनभिलाप्यं स्यात् सर्वान्तैः परिवर्जितम् ।
वस्त्वेवावस्तुतां याति प्रक्रियाया विपर्ययात् ॥४८॥

अन्वयार्थ–(सर्वान्तैः) समस्त धर्मों से **(परिवर्जितं)** रहित **(अवस्तु)** अवस्तु **(अनभिलाप्यं)** कथन रहित **(स्यात्)** हो क्योंकि **(प्रक्रियायाः)** प्रक्रिया के **(विपर्ययात्)** विपर्यय से **(वस्तु)** वस्तु **(एव)** ही **(अवस्तुतां)** अवस्तुपने को **(याति)** प्राप्त हो जाती है।

सर्वान्ताश्चेदवक्तव्यास्तेषां किं वचनं पुनः।
संवृतिश्चेन्मृषैवैषा परमार्थविपर्ययात् ॥४९॥

अन्वयार्थ–(चेत्) यदि **(सर्वान्ताः)** समस्त धर्म **(अवक्तव्याः)** अवक्तव्य हैं तो **(तेषां)** उनका **(पुनः वचनं किम्)** कथन क्यों किया जाता है **(चेत्)** यदि उनका कथन **(संवृतिः)** संवृति रूप है तो **(परमार्थविपर्ययात्)** परमार्थ से विपरीत होने से **(एषा)** यह संवृति **(मृषा एव)** असत्य ही है।

अशक्यत्वादवाच्यं किमभावात्किमबोधतः ।
आद्यन्तोक्तिद्वयं न स्यात् किं व्याजेनोच्यतां स्फुटम् ॥५०॥

अन्वयार्थ–(अशक्यत्वात्) क्या अशक्य होने से **(किमभावात्)** क्या अभाव होने से **(किमबोधतः)** क्या ज्ञान न होने के कारण **(अवाच्यं)** तत्त्व अवाच्य है **(आद्यन्तोक्तिद्वयं न स्यात्)** आदि और अन्त के दो पक्ष तो बनते नहीं **(व्याजेन किं)** छल करने से क्या **(स्फुटं)** स्पष्ट रूप से **(उच्यताम्)** कहिए (कि तत्त्व का सर्वथा अभाव है)।

हिनस्त्यनभिसन्धातृ न हिनस्त्यभिसन्धिमत्।
बध्यते तद्द्वयापेतं चित्तं बद्धं न मुच्यते ॥५१॥

अन्वयार्थ—क्षणिक एकान्त मानने पर **(चित्तं)** जो चित्त **(अनभिसन्धातृ)** हिंसा के अभिप्राय से रहित है **(हिनस्ति)** वह तो हिंसा करता है **(अभिसंधिमत्)** जो हिंसा के अभिप्राय से युक्त है **(न हिनस्ति)** वह हिंसा नहीं करता है **(तद्द्वयापेतं)** उक्त दोनों से रहित तीसरा **(बध्यते)** बंध को प्राप्त होता है **(बद्धं)** बंधा हुआ चित्त **(न मुच्यते)** मुक्त नहीं होता है।

अहेतुकत्वान्नाशस्य हिंसाहेतुर्न हिंसकः।
चित्तसन्ततिनाशश्च मोक्षो नाष्टाङ्गहेतुकः ॥५२॥

अन्वयार्थ—**(नाशस्य)** नाश के **(अहेतुकत्वात्)** अहेतुक मानने से **(हिंसाहेतुः)** हिंसा के कारण अर्थात् हिंसा करने वाला **(हिंसकः न)** हिंसक नहीं होगा **(च)** और **(चित्तसंततिनाशः)** चित्त संतति के नाशरूप जो **(मोक्षः)** मोक्ष है वह भी **(अष्टांगहेतुकः न)** अष्टांग हेतुक नहीं हो सकता।

विरूपकार्यारम्भाय यदि हेतुसमागमः।
आश्रयिभ्यामनन्योऽसावविशेषादयुक्तवत् ॥५३॥

अन्वयार्थ—**(यदि)** यदि **(विरूपकार्यारम्भाय)** विसदृश कार्य के प्रारंभ के लिए **(हेतुसमागमः)** हेतु का समागम होता है तो **(असौ)** यह हेतु व्यापार **(आश्रयिभ्यां)** अपने आश्रयियों से **(अनन्यः)** अभिन्न ही होगा **(अविशेषात्)** दोनों में कोई भेद न होने से **(अयुक्तवत्)** अपृथक् सिद्ध पदार्थों की तरह।

स्कन्धाः सन्ततयश्चैव संवृतित्वादसंस्कृताः।
स्थित्युत्पत्तिव्ययास्तेषां न स्युः खरविषाणवत् ॥५४॥

अन्वयार्थ—**(संवृतित्वात्)** काल्पनिक होने से **(स्कन्धाः संततयः च)** स्कन्ध संततियाँ **(असंस्कृताः एव)** अपरमार्थभूत ही हैं **(खरविषाणवत्)** खरविषाण की तरह **(तेषां)** उनमें अर्थात् स्कन्ध संततियों में **(स्थित्युत्पत्ति-व्ययाः)** स्थिति, उत्पत्ति और व्यय **(न स्युः)** नहीं हो सकते।

विरोधान्नोभयैकात्म्यं स्याद्वादन्यायविद्विषाम् ।
अवाच्यतैकान्तेऽप्युक्तिर्नावाच्यमिति युज्यते ॥५५॥

अन्वयार्थ–(स्याद्वादन्यायविद्विषां) स्याद्वाद न्याय से द्वेष रखने वालों के यहाँ **(विरोधात्)** विरोध होने से **(उभयैकात्म्यं न)** नित्यत्वैकान्त एवं अनित्यत्वैकान्त नहीं बनते हैं **(अवाच्यतैकान्तेऽपि)** अवाच्यता के एकान्त में भी **(अवाच्यं)** अवाच्य **(इति उक्तिः)** यह वचन **(न युज्यते)** युक्त नहीं है।

नित्यं तत् प्रत्यभिज्ञानान्नाकस्मात्तदविच्छिदा।
क्षणिकं कालभेदात्ते बुद्ध्यसंचरदोषतः ॥५६॥

अन्वयार्थ–हे नाथ **(ते)** आपके शासन में **(प्रत्यभिज्ञानात्)** प्रत्यभिज्ञान का विषय होने से **(तत्)** वह वस्तु तत्त्व **(नित्यं)** नित्य है **(तत्)** वह प्रत्यभिज्ञान **(अकस्मात् न)** निर्विषयक नहीं है **(अविच्छिदा)** अविच्छेद रूप से अनुभव में आता है **(कालभेदात्)** काल का भेद होने से **(क्षणिकम्)** वस्तु क्षणिक है। सर्वथा नित्य और सर्वथा क्षणिक तत्त्व में **(बुद्ध्यसंचरदोषतः)** बुद्धि संचरण नहीं होने से दोष आयेगा।

न सामान्यात्मनोदेति न व्येति व्यक्तमन्वयात्।
व्येत्युदेति विशेषात्ते सहैकत्रोदयादि सत् ॥५७॥

अन्वयार्थ–(ते) आपके अनेकान्त शासन में पदार्थ **(सामान्यात्मना)** सामान्यरूप से **(न उदेति)** उत्पन्न नहीं होता है **(न व्येति)** नष्ट भी नहीं होता है **(व्यक्तं अन्वयात्)** क्योंकि अन्वय स्पष्टरूप से देखा जाता है **(विशेषात्)** विशेष की अपेक्षा से **(व्येति)** नष्ट होता है **(उदेति)** उत्पन्न होता है **(सह एकत्र)** एक साथ एक वस्तु में **(उदयादि सत्)** उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य तीनों का होना सत् कहलाता है।

कार्योत्पादः क्षयो हेतोर्नियमाल्लक्षणात्पृथक्।
न तौ जात्याद्यवस्थानादनपेक्षाः खपुष्पवत् ॥५८॥

अन्वयार्थ–(हेतोः क्षयः) हेतु का क्षय **(नियमात्)** नियम से **(कार्योत्पादः)** कार्य का उत्पाद **(लक्षणात् पृथक्)** उत्पाद और विनाश ये दोनों अपने-अपने लक्षण से भिन्न हैं **(जात्यादि अवस्थानात् न तौ)** जाति आदि के अवस्थान से वे दोनों भिन्न नहीं हैं **(अनपेक्षाः)** अपेक्षा से रहित उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य **(खपुष्पवत्)** आकाश पुष्प की तरह अवस्तु हैं।

घटमौलिसुवर्णार्थी नाशोत्पादस्थितिष्वयम्।
शोकप्रमोदमाध्यस्थ्यं जनो याति सहेतुकम् ॥५९॥

अन्वयार्थ–(घटमौलिसुवर्णार्थी) घट, मुकुट और सुवर्ण के अर्थी **(अयं जनः)** ये व्यक्ति **(नाशोत्पादस्थितिषु)** नाश, उत्पाद और स्थिति में **(शोक-प्रमोद-माध्यस्थ्यं)** शोक, प्रमोद और माध्यस्थपने को **(याति)** प्राप्त होते हैं **(सहेतुकं)** और यह सब कारण सहित है।

पयोव्रतो न दध्यत्ति न पयोऽत्ति दधिव्रतः।
अगोरसव्रतो नोभे तस्मात्तत्त्वं त्रयात्मकम् ॥६०॥

अन्वयार्थ–(पयोव्रतः) दूध खाने के व्रत वाला **(दधि न अत्ति)** दही नहीं खाता **(दधिव्रतः)** दही खाने के व्रत वाला **(पयः न अत्ति)** दूध नहीं खाता **(अगोरसव्रतो)** अगोरसव्रती **(उभे न)** दूध, दही दोनों नहीं खाता **(तस्मात्)** इसलिए **(तत्त्वं)** तत्त्व **(त्रयात्मकम्)** उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य रूप है।

चतुर्थ परिच्छेद

कार्यकारणनानात्वं गुणगुण्यन्यताऽपि च ।
सामान्यतद्वदन्यत्वं चैकान्तेन यदीष्यते ॥६१॥

अन्वयार्थ–(यदि) यदि **(एकान्तेन)** एकान्त से **(कार्यकारणनानात्वं)** कार्यकारण में भिन्नता **(गुणगुण्यन्यता अपि च)** गुण-गुणी में भिन्नता **(सामान्यतद्वदन्यत्वं च)** सामान्य और सामान्यवान् में भिन्नता **(इष्यते)** मानते हो तो।

एकस्यानेकवृत्तिर्न भागाभावाद्बहूनि वा।
भागित्वाद्वास्य नैकत्वं दोषो वृत्तेरनार्हते ॥६२॥

अन्वयार्थ–(भागाभावात्) निरंश होने से **(एकस्य)** एक की **(अनेकवृत्तिः)** अनेक में वृत्ति **(न)** नहीं होगी [यदि वृत्ति मान ली जावेगी तो] **(बहूनि वा)** अनेकता माननी पड़ेगी (**भागित्वात् वा)** भाग हो जाने से **(अस्य एकत्वं न**) इसके एकपना नहीं हो सकता अतः **(अनार्हते)** जो अर्हत्मत को नहीं मानते उनके यहाँ पर **(वृत्तेः)** वृत्ति को मानने पर **(दोषः)** दोष आते हैं।

देशकालविशेषेऽपि स्याद्वृत्तिर्युतसिद्धवत्।
समानदेशता न स्यात् मूर्त्तकारणकार्ययोः ॥६३॥

अन्वयार्थ—(देशकालविशेषेऽपि) देश और काल की अपेक्षा से भी अवयव-अवयवी आदि में भेद मानने पर **(युतसिद्धवत्)** पृथक् सिद्ध पदार्थों की तरह **(वृत्तिः स्यात्)** वृत्ति होगी **(मूर्तकारणकार्ययोः)** मूर्तकारण और कार्य में **(समानदेशता)** एक देशपना **(न स्यात्)** नहीं बनेगा।

आश्रयाश्रयिभावान्न स्वातन्त्र्यं समवायिनाम्।
इत्ययुक्तः स सम्बन्धो न युक्तः समवायिभिः ॥६४॥

अन्वयार्थ—यदि **(आश्रयाश्रयिभावात्)** आश्रय, आश्रयिभाव होने से **(समवायिनां)** समवायियों के **(स्वातंत्र्यं न इति)** स्वतंत्रता नहीं है [ऐसा वैशेषिक कहें] तो **(समवायिभिः)** समवायियों के साथ **(अयुक्तः स सम्बन्ध)** वह सम्बन्ध अयुक्त है **(न युक्तः)** अतः घटित ही नहीं होता।

सामान्यं समवायश्चाप्येकैकत्र समाप्तितः।
अन्तरेणाश्रयं न स्यान्नाशोत्पादिषु को विधिः ॥६५॥

अन्वयार्थ—जिस प्रकार **(सामान्यं)** सामान्य **(आश्रयमंतरेण)** आश्रय के बिना **(न स्यात्)** नहीं रहता है **(समवायः अपि च)** उसी प्रकार समवाय भी आश्रय के बिना नहीं रहता है **(एकैकत्र)** ये दोनों प्रत्येक नित्य पदार्थ में **(समाप्तितः)** पूर्णरूप से रहते हैं **(नाशोत्पादिषु)** नाश और उत्पन्न होने वाले पदार्थों में **(कः विधिः)** सामान्य और समवाय की व्यवस्था कैसे बनेगी?

सर्वथाऽनभिसम्बन्धः सामान्यसमवाययोः ।
ताभ्यामर्थो न सम्बद्धस्तानि त्रीणि खपुष्पवत् ॥६६॥

अन्वयार्थ—(सामान्यसमवाययोः) सामान्य और समवाय का **(सर्वथा)** किसी भी प्रकार से **(अनभिसम्बंधः)** सम्बन्ध नहीं है **(ताभ्यां)** सामान्य और समवाय के साथ **(अर्थः)** पदार्थ **(न संबद्धः)** सम्बन्ध को प्राप्त नहीं होता इसलिए **(तानि त्रीणि)** वे तीनों **(खपुष्पवत्)** आकाश पुष्प की तरह असत् ठहरते हैं।

अनन्यतैकान्तेऽणूनां संघातेऽपि विभागवत्।
असंहतत्वं स्याद्भूतचतुष्कं भ्रान्तिरेव सा ॥६७॥

अन्वयार्थ–(अणूनां) परमाणुओं का **(अनन्यतैकान्ते)** अनन्यता का एकान्त मानने पर **(संघाते अपि)** समुदाय रूप अवस्था में भी **(विभागवत्)** विभक्त पदार्थों की तरह **(असंहतत्वं स्यात्)** समुदाय ही नहीं बनेगा **(भूतचतुष्कं)** भूतचतुष्टय **(सा भ्रान्तिः एव)** भ्रान्ति रूप ही ठहरेगा।

कार्यभ्रान्तेरणुभ्रान्तिः कार्यलिंगं हि कारणम् ।
उभयाभावतस्तत्स्थं गुणजातीतरच्च न ॥६८॥

अन्वयार्थ–(कार्यभ्रान्तेः) कार्य-भूत चतुष्क की भ्रान्ति से **(अणुभ्रान्तिः)** उसके कारण रूप जो अणु हैं उनको भी भ्रान्त मानना पड़ेगा **(हि)** क्योंकि **(कारणं)** कारण **(कार्यलिंगं)** कार्य द्वारा जाना जाता है **(उभयाभावतः)** दोनों के अभाव हो जाने से **(तत्स्थं)** उनमें रहने वाले **(गुणजातीतरच्च)** गुण, जाति और क्रिया आदि **(न)** सिद्ध नहीं होंगे।

एकत्वेऽन्यतराभावः शेषाभावोऽविनाभुवः ।
द्वित्वसंख्याविरोधश्च संवृतिश्चेन्मृषैव सा ॥६९॥

अन्वयार्थ–(एकत्वे) कार्य और कारण की सर्वथा एकता स्वीकार करने पर **(अन्यतराभावः)** उन दोनों में से किसी एक का अभाव हो जायेगा **(शेषाभावः)** एक का अभाव होने पर शेष का भी अभाव हो जायेगा **(अविनाभुवः)** क्योंकि वह एक-दूसरे के साथ अविनाभावी हैं **(च)** और **(द्वित्वसंख्या)** द्वित्व संख्या मानने पर **(विरोधः)** विरोध होगा **(चेत्)** यदि **(संवृतिः)** कल्पना से मान ली जावे तो **(सा मृषा एव)** वह कल्पना असत्य ही होती है।

विरोधान्नोभयैकात्म्यं स्याद्वादन्यायविद्विषाम् ।
अवाच्यतैकान्तेऽप्युक्तिर्नावाच्यमिति युज्यते ॥७०॥

अन्वयार्थ–(स्याद्वादन्यायविद्विषां) स्याद्वाद न्याय से द्वेष रखने वालों के यहाँ **(विरोधात्)** विरोध आने से **(उभयैकात्म्यं न)** अन्यता और अनन्यता दोनों का एकात्म्य संभव नहीं है **(अवाच्यतैकान्ते अपि)** अवाच्यता का एकान्त स्वीकार करने पर भी **(अवाच्यं)** अवाच्य **(इति)** इस प्रकार **(उक्तिः न युज्यते)** वचन युक्त नहीं होता।

द्रव्यपर्याययोरैक्यं तयोरव्यतिरेकतः ।
परिणामविशेषाच्च शक्तिमच्छक्तिभावतः ॥७१॥

संज्ञासंख्याविशेषाच्च स्वलक्षणविशेषतः।
प्रयोजनादिभेदाच्च तन्नानात्वं न सर्वथा ॥७२॥

अन्वयार्थ–(द्रव्यपर्याययोः) द्रव्य और पर्याय इन दोनों में **(ऐक्यं)** एकता है **(तयोः)** इन दोनों की **(अव्यतिरेकतः)** अलग अलग उपलब्धि नहीं होती **(परिणामविशेषात् च)** परिणाम के विशेष से **(शक्तिमच्छक्ति-भावतः)** शक्तिमान और शक्तिभाव से **(च)** और **(संज्ञा-संख्याविशेषात्)** संज्ञा तथा संख्या की विशेषता से **(स्वलक्षणविशेषतः)** अपने लक्षणों की भिन्नता से **(च)** और **(प्रयोजनादिभेदात्)** और प्रयोजन आदि के भेद से **(तन्नानात्वं)** उन दोनों में अनेकता भी है **(न सर्वथा)** किन्तु सर्वथा एकान्त नहीं है।

पंचम परिच्छेद

यद्यापेक्षिकसिद्धिः स्यान्न द्वयं व्यवतिष्ठते।
अनापेक्षिकसिद्धौ च न सामान्यविशेषता ॥७३॥

अन्वयार्थ–(यदि) यदि धर्म और धर्मी की सिद्धि **(आपेक्षिक सिद्धिः स्यात्)** सर्वथा अपेक्षाकृत ही मानी जाये तो **(द्वयं न व्यवतिष्ठते)** दोनों की सिद्धि नहीं हो सकती **(अनापेक्षिकसिद्धौ च)** और सर्वथा अनापेक्षिक सिद्धि मानने पर **(सामान्यविशेषता न)** सामान्य और विशेष भाव नहीं बन सकता है।

विरोधान्नोभयैकात्म्यं स्याद्वादन्यायविद्विषाम् ।
अवाच्यतैकान्तेऽप्युक्तिर्नावाच्यमिति युज्यते ॥७४॥

अन्वयार्थ–(स्याद्वादन्यायविद्विषां) स्याद्वादन्याय से द्वेष रखने वालों के यहाँ **(विरोधात्)** विरोध आने से **(उभयैकात्म्यं न)** उभय अर्थात् अपेक्षा एवं अनपेक्षा का उभय एकान्त नहीं बनता **(अवाच्यतैकान्ते)** अवाच्यता का एकान्त स्वीकार करने पर **(अवाच्यं इति उक्तिः)** अवाच्य है यह उक्ति भी **(न युज्यते)** घटित नहीं होती है।

धर्मधर्म्यविनाभावः सिद्ध्यत्यन्योऽन्यवीक्षया।
न स्वरूपं स्वतो ह्येतत् कारकज्ञापकाङ्गवत् ॥७५॥

अन्वयार्थ–(धर्मधर्म्यविनाभावः) धर्म और धर्मी का अविनाभाव

(अन्योन्य-वीक्षया) परस्पर की अपेक्षा से **(सिद्ध्यति)** सिद्ध होता है **(न स्वरूपम्)** इनका स्वरूप नहीं **(हि)** क्योंकि **(कारकज्ञापकांगवत्)** कारक और ज्ञापक के अंगों की तरह **(एतत् स्वतः)** यह स्वयं सिद्ध होता है।

षष्ठ परिच्छेद

सिद्धं चेद्धेतुतः सर्वं न प्रत्यक्षादितो गतिः
सिद्धं चेदागमात्सर्वं विरुद्धार्थमतान्यपि ॥७६॥

अन्वयार्थ–(हेतुतः) हेतु से **(सर्वं सिद्धं)** सभी पदार्थ सिद्ध होते हैं **(चेत्)** यदि ऐसा एकान्त माना जाये तो **(प्रत्यक्षादितो गतिः न)** प्रत्यक्षादि प्रमाण से किसी भी तत्त्व की सिद्धि नहीं होगी, **(आगमात्)** आगम से ही **(सर्वं सिद्धं)** सभी पदार्थ सिद्ध होते हैं **(चेत्)** यदि ऐसा एकान्त स्वीकार किया जावे तो **(विरुद्धार्थमतानि अपि)** परस्पर विरुद्ध अर्थ का कथन करने वाले मत भी सिद्ध हो जायेंगे।

विरोधान्नोभयैकात्म्यं स्याद्वादन्यायविद्विषाम्।
अवाच्यतैकान्तेऽप्युक्तिर्नावाच्यमिति युज्यते ॥७७॥

अन्वयार्थ–(स्याद्वादन्यायविद्विषां) स्याद्वादन्याय से द्वेष रखने वालों के यहाँ **(विरोधात्)** विरोध आने से **(उभयैकात्म्यं)** उभय अर्थात् हेतुवाद एवं आगमवाद **(न)** नहीं बनता है **(अवाच्यतैकान्ते)** अवाच्यता के एकान्त को स्वीकार करने पर **(अवाच्यमिति)** अवाच्य है इस प्रकार(**उक्तिः अपि)** उक्ति भी **(न युज्यते)** बनती नहीं है।

वक्तर्यनाप्ते यद्धेतोः साध्यं तद्धेतुसाधितम् ।
आप्ते वक्तरि तद्वाक्यात् साध्यमागमसाधितम् ॥७८॥

अन्वयार्थ–(वक्तरि अनाप्ते) वक्ता के आप्त न होने पर **(हेतोः)** हेतु के द्वारा **(यत् साध्यं)** जो साध्य होता है **(तत् हेतुसाधितम्)** वह हेतु साधित कहलाता है **(वक्तरि आप्ते)** वक्ता के आप्त होने पर **(तद्वाक्यात्)** उसके वाक्य से जो **(साध्यं)** साध्य होता है **(आगमसाधितम्)** वह आगम साधित कहलाता है।

अन्तरङ्गार्थतैकान्ते बुद्धिवाक्यं मृषाखिलम्।
प्रमाणाभासमेवातस्तत्प्रमाणादृते कथम् ॥७९॥

अन्वयार्थ–(अंतरङ्गार्थतैकान्ते) एकान्त से अन्तरंगरूप पदार्थ की सत्ता को स्वीकार करने पर **(अखिलं)** संपूर्ण **(बुद्धिवाक्यं)** बुद्धि, वाक्य **(मृषा)** असत्य ठहरते हैं **(अतः प्रमाणाभासमेव)** इसलिए इन वाक्यों में प्रमाणाभासता ही आती है **(तत्)** वह प्रमाणाभासता **(प्रमाणाद्)** प्रमाण के **(ऋते)** बिना **(कथम्)** कैसे हो सकती है ?

साध्यसाधनविज्ञप्तेर्यदि विज्ञप्तिमात्रता।
न साध्यं न च हेतुश्च प्रतिज्ञाहेतुदोषतः ॥८०॥

अन्वयार्थ–(यदि) यदि **(साध्यसाधनविज्ञप्तेः)** साध्य साधन की विज्ञप्ति **(विज्ञप्तिमात्रता)** विज्ञान मात्र ही स्वीकृत की जावे तो **(प्रतिज्ञा-हेतुदोषतः)** प्रतिज्ञा एवं हेतु के दोष से **(न साध्यं)** साध्य नहीं बन सकता **(न च हेतुः)** और हेतु भी नहीं बन सकता **(च)** और च शब्द से दृष्टान्त भी नहीं बन सकता।

बहिरङ्गार्थतैकान्ते प्रमाणाभासनिह्नवात्।
सर्वेषां कार्यसिद्धिः स्याद्विरुद्धार्थाभिधायिनाम् ॥८१॥

अन्वयार्थ–(बहिरङ्गार्थतैकान्ते) बहिरंगरूप पदार्थ घट, पट आदि ही एकान्त से वास्तविक हैं तो **(प्रमाणाभासनिह्नवात्)** प्रमाणाभास का लोप होने से **(सर्वेषां विरुद्धार्थाभिधायिनाम्)** समस्त विरुद्ध अर्थ का कथन करने वालों के यहाँ **(कार्यसिद्धिः)** कार्य सिद्धि **(स्यात्)** हो जायेगी।

विरोधान्नोभयैकात्म्यं स्याद्वादन्यायविद्विषाम्।
अवाच्यतैकान्तेऽप्युक्तिर्नावाच्यमिति युज्यते ॥८२॥

अन्वयार्थ–(स्याद्वादन्यायविद्विषां) स्याद्वादन्याय से द्वेष रखने वालों के यहाँ **(विरोधात्)** विरोध आने से **(उभयैकात्म्यं)** उभय अर्थात् अन्तरंगार्थ एवं बहिरंगार्थ का एकान्त **(न)** नहीं बनता है **(अवाच्यतैकान्ते)** अवाच्यता के एकान्त को स्वीकार करने पर **(अवाच्यमिति)** अवाच्य है इस प्रकार **(उक्तिः अपि)** उक्ति भी **(न युज्यते)** नहीं बनती है।

भावप्रमेयापेक्षायां प्रमाणाभासनिह्नवः।
बहिः प्रमेयापेक्षायां प्रमाणं तन्निभं च ते ॥८३॥

अन्वयार्थ—हे वीरनाथ! **(ते)** आपके शासन में **(भावप्रमेयापेक्षायां)** भावरूप प्रमेय की अपेक्षा में **(प्रमाणाभासनिह्नवः)** प्रमाणाभास का लोप बन जाता है **(बहिःप्रमेयापेक्षायां)** बहिरंग प्रमेय की अपेक्षा की जाती है तो **(प्रमाणं)** प्रमाणता **(तन्निभं च)** और प्रमाणाभासता बन जाती है।

जीवशब्दः सबाह्यार्थः संज्ञात्वाद्हेतुशब्दवत्।
मायादिभ्रान्तिसंज्ञाश्च मायाद्याः स्वैः प्रमोक्तिवत् ॥८४॥

अन्वयार्थ— **(जीवशब्दः)** जीव शब्द **(सबाह्यार्थः)** बाह्य अर्थ से युक्त है **(हेतुशब्दवत्)** हेतु शब्द की तरह **(संज्ञात्वात्)** संज्ञा होने से **(प्रमोक्तिवत्)** प्रमा शब्द की तरह **(मायादि-भ्रान्तिसंज्ञाश्च)** माया आदि भ्रान्ति शब्द **(स्वैः मायाद्याः)** अपने मायादि अर्थ से युक्त होते हैं।

बुद्धिशब्दार्थसंज्ञास्तास्तिस्रो बुद्ध्यादिवाचिकाः।
तुल्या बुद्ध्यादिबोधाश्च त्रयस्तत्प्रतिबिम्बकाः ॥८५॥

अन्वयार्थ—**(तास्तिस्रः बुद्धिशब्दार्थसंज्ञाः)** बुद्धि, शब्द एवं अर्थ ये तीनों संज्ञाएँ **(बुद्ध्यादि-वाचिकाः तुल्या)** बुद्धि, शब्द और अर्थ की समान वाचक हैं **(तत्प्रतिबिम्बकाः)** इन संज्ञाओं के प्रतिबिम्बक **(बुद्ध्यादिबोधाश्च त्रयः)** बुद्धि, शब्द एवं अर्थ रूप बोध हैं वे भी बुद्धि, शब्द एवं अर्थ को जानने वाले होने के समान हैं।

वक्तृश्रोतृप्रमातृणां बोधवाक्यप्रमाः पृथक्।
भ्रान्तावेव प्रमाभ्रान्तौ बाह्यार्थौ तादृशेतरौ ॥८६॥

अन्वयार्थ—**(वक्तृश्रोतृप्रमातृणां)** वक्ता, श्रोता और प्रमाता के **(बोध-वाक्यप्रमाः पृथक्)** वाक्य, बोध और प्रमा ये भिन्न-भिन्न हैं **(भ्रान्तौ एव)** वाक्य, बोध एवं प्रमा को भ्रान्ति स्वरूप मानने पर, **(प्रमाभ्रान्तौ)** प्रमाण में भ्रान्ति रूपता आने पर **(तादृशेतरौ)** प्रमाण, अप्रमाण रूप **(बाह्यार्थौ)** इष्टानिष्ट बाह्य पदार्थ भी भ्रान्त ही होंगे।

बुद्धिशब्दप्रमाणत्वं बाह्यार्थे सति नासति।
सत्यानृतव्यवस्थैवं युज्यतेऽर्थाप्त्यनाप्तिषु ॥८७॥

अन्वयार्थ–(बाह्यार्थे सति) बाह्यार्थ के होने पर **(बुद्धिशब्दप्रमाणत्वं)** बुद्धि एवं शब्द में प्रमाणता आती है **(असति न)** नहीं होने पर नहीं **(एवं)** इसी प्रकार **(अर्थाप्त्यनाप्तिषु)** अर्थ की प्राप्ति और अप्राप्ति के निमित्त को लेकर **(सत्यानृतव्यवस्था युज्यते)** सत्य और असत्य की व्यवस्था बनती है।

अष्टम परिच्छेद:

दैवादेवार्थसिद्धिश्चेद्दैवं पौरुषतः कथम्।
दैवतश्चेदनिर्मोक्षः पौरुषं निष्फलं भवेत् ॥८८॥

अन्वयार्थ–(दैवादेव) दैव अर्थात् भाग्य से ही **(अर्थसिद्धिः चेत्)** अर्थ की सिद्धि होती है ऐसा एकान्त स्वीकार करने पर **(पौरुषतः)** पुरुषार्थ से **(दैवं)** भाग्य **(कथं)** कैसे होगा **(दैवतः चेत्)** यदि दैव से दैव की सिद्धि मानी जाये तो **(अनिर्मोक्षः)** मोक्ष के अभाव का प्रसंग आयेगा और **(पौरुषं निष्फलं भवेत्)** पुरुषार्थ भी निष्फल हो जायेगा।

पौरुषादेव सिद्धिश्चेत् पौरुषं दैवतः कथम्।
पौरुषाच्चेदमोघं स्यात् सर्वप्राणिषु पौरुषम् ॥८९॥

अन्वयार्थ–(चेत्) यदि **(पौरुषात् एव सिद्धिः)** पुरुषार्थ से ही अर्थ की सिद्धि होती है ऐसा माना जाये तो **(दैवतः पौरुषं कथं)** दैव से जो पुरुषार्थ की सिद्धि होती हुई दिखाई देती है, वह कैसे होगी? **(पौरुषात् चेत्)** यदि पुरुषार्थ से ही पुरुषार्थ की सिद्धि मानी जाये तो **(सर्वप्राणिषु)** सर्व प्राणियों में **(पौरुषं)** पुरुषार्थ **(अमोघं स्यात्)** सफल होने का प्रसंग प्राप्त होगा।

विरोधान्नोभयैकात्म्यं स्याद्वादन्यायविद्विषाम्।
अवाच्यतैकान्तेऽप्युक्तिर्नावाच्यमिति युज्यते ॥९०॥

अन्वयार्थ–(स्याद्वादन्यायविद्विषां) स्याद्वादन्याय से द्वेष रखने वालों के यहाँ **(विरोधात्)** विरोध आने से **(उभयैकात्म्यं न)** भाग्य और पुरुषार्थ के निरपेक्षता रूप उभय एकान्त नहीं बनता **(अवाच्यतैकान्ते)** अवाच्यता के एकान्त को स्वीकार करने पर **(अवाच्यं)** अवाच्य **(इत्यपि)** इस प्रकार **(उक्तिः न युज्यते)** कथन भी नहीं बन सकता।

अबुद्धिपूर्वापेक्षायामिष्टानिष्टं स्वदैवतः।
बुद्धिपूर्वव्यपेक्षायामिष्टानिष्टं स्वपौरुषात् ॥९१॥

अन्वयार्थ–(अबुद्धिपूर्वापेक्षायां) अबुद्धिपूर्वक हुए कार्य की अपेक्षा में **(इष्टानिष्टं)** इष्ट-अनिष्ट कार्य **(स्वदैवतः)** अपने दैव से हुए हैं ऐसा माना जाता है **(बुद्धिपूर्वव्यपेक्षायां)** बुद्धिपूर्वक जो कार्य किये जाते हैं इस अपेक्षा में **(इष्टानिष्टं)** इष्ट-अनिष्ट जो कार्य होते हैं **(स्वपौरुषात्)** अपने पुरुषार्थ से हुए हैं, ऐसा माना जाता है।

नवम परिच्छेद

पापं ध्रुवं परे दुःखात् पुण्यं च सुखतो यदि।
अचेतनाकषायौ च बध्येयातां निमित्ततः ॥९२॥

अन्वयार्थ–(यदि) यदि **(परे)** दूसरे प्राणी में **(दुःखात्)** दुःख उत्पन्न करने से **(पापं)** पाप का बंध **(सुखतः)** सुख उत्पन्न करने से **(पुण्यं)** पुण्य का बंध **(ध्रुवं)** नियम से माना जाये तो **(अचेतनाकषायौ च)** अचेतन पदार्थ और कषाय रहित जीव के भी **(निमित्ततः)** सुख-दुःख का निमित्त होने से **(बध्येयातां)** बंध मानने का प्रसंग प्राप्त होगा।

पुण्यं ध्रुवं स्वतो दुःखात्पापं च सुखतो यदि।
वीतरागो मुनिर्विद्वांस्ताभ्यां युञ्ज्यान्निमित्ततः ॥९३॥

अन्वयार्थ–(यदि) यदि **(स्वतः)** अपने आप में **(दुःखात्)** दुःख उत्पन्न करने से **(पुण्यं)** पुण्य का बंध **(सुखतः च)** और सुख उत्पन्न करने से **(पापं)** पाप का बंध **(ध्रुवं)** नियम से माना जाये तो **(निमित्ततः)** पुण्य, पाप के निमित्त होने से **(वीतरागः)** वीतराग और **(विद्वान् मुनिः)** विद्वान् मुनिजन **(ताभ्यां)** पुण्य, पाप दोनों से **(युञ्ज्यात्)** बंधे हुए मानना चाहिए।

विरोधान्नोभयैकात्म्यं स्याद्वादन्यायविद्विषाम्।
अवाच्यतैकान्तेऽप्युक्तिर्नावाच्यमिति युज्यते ॥९४॥

अन्वयार्थ–(स्याद्वादन्यायविद्विषाम्) स्याद्वाद न्याय से द्वेष रखने वालों के यहाँ **(विरोधात्)** विरोध होने से **(उभयैकात्म्यं न)** उभय एकान्त भी नहीं बनता **(अवाच्यतैकान्ते)** अवाच्यता के एकान्त में **(अवाच्यमिति)**

अवाच्य है इस प्रकार **(अपि)** भी **(उक्तिः)** कथन **(न युज्यते)** युक्त नहीं होता है।

विशुद्धिसंक्लेशाङ्गं चेत् स्वपरस्थं सुखासुखम्।
पुण्यपापास्त्रवौ युक्तौ न चेद्व्यर्थस्तवार्हतः ॥९५॥

अन्वयार्थ–(चेत्) यदि **(स्वपरस्थं)** अपने और दूसरे में स्थित **(सुखा-सुखम्)** सुख दुःख **(विशुद्धि-संक्लेशाङ्गं)** विशुद्धि और संक्लेश के अंग हैं तो **(पुण्यपापास्त्रवौ)** पुण्य, पाप का आस्त्रव **(युक्तौ)** युक्त है **(न चेत्)** यदि नहीं हैं तो **(अर्हतः तव)** हे अर्हन्त आपके मत में **(व्यर्थः)** निष्फल है।

दशम परिच्छेद

अज्ञानाच्चेद्ध्रुवो बन्धो ज्ञेयानन्त्यान्न केवली।
ज्ञानस्तोकाद्विमोक्षश्चेदज्ञानाद्बहुतोऽन्यथा ॥९६॥

अन्वयार्थ–(चेत्) यदि **(अज्ञानात्)** अज्ञान से **(बंधः)** बंध **(ध्रुवः)** नियम से होता है तो **(ज्ञेयानन्त्यात्)** ज्ञेय पदार्थ अनन्त होने से **(न केवली)** कोई सर्वज्ञ नहीं हो सकता **(ज्ञानस्तोकात्)** और यदि अल्पज्ञान से **(विमोक्षः चेत्)** मोक्ष होता है ऐसा स्वीकार किया जाये तो **(बहुतः अज्ञानात्)** बहुत से अज्ञान से **(अन्यथा)** मुक्ति की प्राप्ति न होकर बंध ही प्राप्त होगा।

विरोधान्नोभयैकात्म्यं स्याद्वादन्यायविद्विषाम्।
अवाच्यतैकान्तेऽप्युक्तिर्नावाच्यमिति युज्यते ॥९७॥

अन्वयार्थ–(स्याद्वादन्यायविद्विषाम्) स्याद्वादन्याय से द्वेष रखने वालों के यहाँ **(विरोधात्)** विरोध होने से **(उभयैकात्म्यं न)** उभय का एकान्त भी नहीं बनता **(अवाच्यतैकान्ते)** अवाच्यता के एकान्त को स्वीकार करने पर **(अवाच्यम्)** अवक्तव्य **(इत्यपि)** इस प्रकार भी **(उक्तिःन युज्यते)** कथन घटित नहीं हो सकता है।

अज्ञानान्मोहिनो बन्धो नाज्ञानाद्वीतमोहतः।
ज्ञानस्तोकाच्च मोक्षः स्यादमोहान्मोहिनोऽन्यथा ॥९८॥

अन्वयार्थ–(मोहिनः) मोह युक्त जीव के **(अज्ञानात्)** अज्ञान से **(बन्धः)**

कर्म बंध होता है **(वीतमोहतः)** मोह रहित के **(अज्ञानात् न)** अज्ञान से कर्म बंध नहीं होता है **(अमोहात्)** मोह रहित **(ज्ञानस्तोकात्)** अल्पज्ञान से **(मोक्षः स्यात्)** मुक्ति प्राप्त होती है **(मोहिनः)** मोही जीव के **(अन्यथा)** अल्पज्ञान से मुक्ति की प्राप्ति नहीं होती।

कामादिप्रभवश्चित्रः कर्मबन्धानुरूपतः।
तच्च कर्मस्वहेतुभ्यो जीवास्ते शुद्ध्यशुद्धितः ॥९९॥

अन्वयार्थ–(कामादिप्रभवः) कामादि के उत्पाद रूप जो भाव संसार है, वह **(चित्रः)** विचित्र है, वह **(कर्मबन्धानुरूपतः)** कर्म बंध के अनुसार होता है **(तच्च कर्म)** और वह कर्म बंध **(स्वहेतुभ्यः)** अपने-अपने कारणों से होता है **(ते जीवाः)** वे जीव **(शुद्ध्यशुद्धितः)** शुद्धि और अशुद्धि के भेद से दो प्रकार के होते हैं।

शुद्ध्यशुद्धी पुनः शक्ती ते पाक्यापाक्यशक्तिवत्।
साद्यनादी तयोर्व्यक्ती स्वभावोऽतर्कगोचरः ॥१००॥

अन्वयार्थ–(पाक्यापाक्यशक्तिवत्)पाक्य एवं अपाक्य शक्ति की तरह **(पुनः ते शुद्ध्यशुद्धी शक्ती)** शुद्धि और अशुद्धि ये दो प्रकार की शक्ति होती हैं **(तयोः व्यक्ती)** उन दोनों की अभिव्यक्ति **(साद्यनादी)** सादि और अनादि है **(स्वभावः)** वस्तु का यह स्वभाव **(अतर्कगोचरः)** तर्क का विषय नहीं है।

तत्त्वज्ञानं प्रमाणं ते युगपत्सर्वभासनम्।
क्रमभावि च यज्ज्ञानं स्याद्वादनयसंस्कृतम् ॥१०१॥

अन्वयार्थ–हे नाथ! **(ते)** आपके मत में **(तत्त्वज्ञानं प्रमाणम्)** तत्त्वज्ञान प्रमाण है **(युगपत्सर्वभासनम्)** एक साथ सब पदार्थों का अवभासनरूप **(च)** और **(क्रमभावि)** क्रम से होने वाला **(यत् ज्ञानं)** जो तत्त्वज्ञान है। वह **(स्याद्वादनयसंस्कृतं)** स्याद्वाद एवं नय से संस्कारित है।

उपेक्षाफलमाद्यस्य शेषस्यादानहानधीः।
पूर्वा वाऽज्ञाननाशो वा सर्वस्यास्य स्वगोचरे ॥१०२॥

अन्वयार्थ–(आद्यस्य) आदि का ज्ञान अर्थात् केवलज्ञान का फल **(उपेक्षा)** उपेक्षा है **(शेषस्य)** शेष अर्थात् मति आदि चार ज्ञानों का फल

(आदानहानधीः) ग्रहण और त्याग बुद्धि है **(पूर्वा वा)** अथवा पूर्व में कही हुई उपेक्षा भी उनका फल है **(स्वगोचरे वा)** अथवा अपने विषय में **(अज्ञाननाशः)** अज्ञान का नाश होना यह **(सर्वस्य अस्य)** इन सभी ज्ञानों का फल है।

वाक्येष्वनेकान्तद्योती गम्यं प्रतिविशेषणम्।
स्यान्निपातोऽर्थयोगित्वात्तव केवलिनामपि ॥१०३॥

अन्वयार्थ—हे नाथ **(तव)** आपके और **(केवलिनामपि)** केवलियों के **(स्यात् निपातः)** स्यात् यह निपात शब्द **(अर्थयोगित्वात्)** अर्थ के साथ संबंधित होने से **(वाक्येषु)** वाक्यों में **(अनेकान्तद्योती)** अनेकान्त का द्योतक **(गम्यं)** गम्य-विवक्षित **(प्रतिविशेषणम्)** अर्थ के प्रति विशेषण माना गया है।

स्याद्वादः सर्वथैकान्तत्यागात् किंवृत्तचिद्विधिः।
सप्तभङ्गनयापेक्षो हेयादेयविशेषकः ॥१०४॥

अन्वयार्थ—**(सर्वथैकान्तत्यागात्)** सर्वथा एकान्त के त्याग से **(स्याद्वादः)** स्याद्वाद होता है **(किंवृत्तचिद्विधिः)** कथंचित् इत्यादि इसके पर्यायवाची शब्द हैं **(सप्तभंगनयापेक्षः)** सप्तभंग और नयों की अपेक्षा वाला है **(हेयादेय-विशेषकः)** हेय एवं उपादेय तत्त्व का विशेषक-भेदक है।

स्याद्वादकेवलज्ञाने सर्वतत्त्वप्रकाशने।
भेदःसाक्षादसाक्षाच्च ह्यवस्त्वन्यतमं भवेत् ॥१०५॥

अन्वयार्थ—**(सर्वतत्त्वप्रकाशने)** सर्वतत्त्वों का जिनसे प्रकाशन होता है ऐसे **(स्याद्वाद-केवलज्ञाने)** स्याद्वाद और केवलज्ञान में **(साक्षात्)** प्रत्यक्ष **(असाक्षात् च भेदः)** और परोक्षकृत भेद है, **(अन्यतमं हि)** इसके अतिरिक्त ज्ञान **(अवस्तु भवेत्)** अवस्तुरूप हो।

सधर्मणैव साध्यस्य साधर्म्यादविरोधतः।
स्याद्वादप्रविभक्तार्थविशेषव्यञ्जको नयः ॥१०६॥

अन्वयार्थ—**(सधर्मणा एव)** सपक्ष के साथ ही **(साधस्य साधर्म्यात्)** साध्य का साधर्म्य से **(अविरोधतः)** बिना किसी विरोध के जो **(स्याद्वाद-प्रविभक्तार्थविशेषव्यञ्जको नयः)** स्याद्वाद के विषयभूत अर्थ विशेष का व्यंजक होता है वह नय है।

नयोपनयैकान्तानां त्रिकालानां समुच्चयः।
अविभ्राट्भावसम्बन्धो द्रव्यमेकमनेकधा ॥१०७॥

अन्वयार्थ–(अविभ्राट् भावसम्बन्धः) जो अविभ्राट्–अपृथक्भाव सम्बन्ध है **(त्रिकालानां)** और त्रिकालवर्ती **(नयोपनयैकान्तानां)** नयों और उपनयों के एकान्तों का **(समुच्चयः)** समुच्चय है **(द्रव्यमेकमनेकधा)** वही द्रव्य है और वह एक रूप भी तथा अनेक रूप भी है।

मिथ्यासमूहो मिथ्या चेन्न मिथ्यैकान्ततास्ति नः।
निरपेक्षा नया मिथ्याः सापेक्षा वस्तु तेऽर्थकृत् ॥१०८॥

अन्वयार्थ–(मिथ्यासमूहो मिथ्या चेत्) यदि मिथ्याभूत एकान्तों का समूह मिथ्या रूप है तो **(मिथ्यैकान्तता नः न अस्ति)**वह मिथ्या एकान्तता हमारे यहाँ नहीं है **(निरपेक्षा नयाः मिथ्याः)** निरपेक्ष नय मिथ्या हैं **(सापेक्षाः)** सापेक्ष नय **(वस्तु)** वस्तु स्वरूप हैं **(तेऽर्थकृत)** वे ही अर्थक्रियाकारी हैं।

नियम्यतेऽर्थो वाक्येन विधिना वारणेन वा।
तथान्यथा च सोऽवश्यमविशेष्यत्वमन्यथा ॥१०९॥

अन्वयार्थ–(सः अर्थः) वह अर्थ तत्त्व **(तथा अन्यथा च अवश्यं)** विधि एवं निषेध प्रकार से अवश्य ही समर्थित हुआ है **(विधिना वारणेन वा वाक्येन)** विधि अथवा निषेध वाक्यों के द्वारा **(नियम्यते)** नियमित किया जाता है **(अन्यथा)** इससे भिन्न मान्यता में **(अविशेष्यत्वं)** कुछ भी विशेषता नहीं आ सकती।

तदतद्वस्तुवागेषा तदेवेत्यनुशासती।
न सत्या स्यान्मृषावाक्यैः कथं तत्त्वार्थदेशना ॥११०॥

अन्वयार्थ–(तदतद्वस्तु) तत् और अतत् स्वभाव वाली वस्तु है जो **(वाक्)** वचन **(तदेवेति अनुशासती)** विधिस्वरूप का ही प्रतिपादन करता है **(एषा सत्या न)** यह सत्य नहीं है **(मृषावाक्यैः)** मृषा वचनों से **(तत्त्वार्थ–देशना कथं)** तत्त्वार्थ देशना कैसे हो सकती है ?

वाक्स्वभावोऽन्यवागर्थप्रतिषेधनिरङ्कुशः ।
आह च स्वार्थसामान्यं तादृग्वाच्यं खपुष्पवत् ॥१११॥

अन्वयार्थ–(अन्यवागर्थप्रतिषेधनिरङ्कुशः) अन्य वचन के प्रतिपाद्य अर्थ के प्रतिषेध करने में निरंकुश होता हुआ **(स्वार्थसामान्यं च आह)** स्वार्थ सामान्य को कहता है **(वाक्स्वभावः)** यह वचन का स्वभाव है **(तादृग् वाच्यं)** किन्तु सर्वथा निषेधरूप वचन **(खपुष्पवत्)** आकाश पुष्प के समान अवस्तु है।

सामान्यवाग्विशेषे चेन्न शब्दार्थो मृषा हि सा।
अभिप्रेतविशेषाप्तेः स्यात्कारः सत्यलाञ्छनः ॥११२॥

अन्वयार्थ–(सामान्यवाग्) सामान्यवाक् **(विशेषे चेत्)** विशेष का प्रतिपादन करते हैं **(न)** ऐसा मानना ठीक नहीं है **(शब्दार्थो)** अन्यापोहरूप शब्दों का जो अर्थ है **(मृषा हि सा)** वह मिथ्या है **(अभिप्रेतविशेषाप्तेः)** अभिप्रेत अर्थ विशेष की प्राप्ति का सच्चा साधन **(सत्यलांछनः)** सत्य से चिह्नित **(स्यात्कारः)** स्याद्वाद है।

विधेयमीप्सितार्थाङ्गं प्रतिषेध्याविरोधि यत्।
तथैवादेयहेयत्वमिति स्याद्वादसंस्थितिः ॥११३॥

अन्वयार्थ–(यत्) जो **(विधेयम्)** विधेय है–जिसका विधान किया जाता है **(ईप्सितार्थाङ्गं)** अभीष्ट अर्थ की सिद्धि का कारण है **(प्रतिषेध्य)** प्रतिषेध्य के साथ **(अविरोधि)** अविरोधी है **(तथैवादेय-हेयत्वं)** उसीप्रकार की वस्तु का आदेय-हेयपना सिद्ध होता है **(इति)** इस प्रकार **(स्याद्वाद-संस्थितिः)** स्याद्वाद की समीचीन सिद्धि होती है ।

इतीयमाप्तमीमांसा विहिता हितमिच्छताम्।
सम्यग्मिथ्योपदेशार्थविशेषप्रतिपत्तये ॥११४॥

अन्वयार्थ–(हितम्) हित को **(इच्छताम्)** चाहने वालों के लिए **(सम्यक् मिथ्योपदेशार्थ-विशेषप्रतिपत्तये)** सम्यक् और मिथ्या उपदेश में भेदविज्ञान कराने के लिए **(इति)** इस प्रकार **(इयमाप्तमीमांसा)** यह आप्तमीमांसा **(विहिता)** बनायी गई है।

❑ ❑ ❑

तत्त्वार्थसूत्रम्

(अनुष्टुप्)

मोक्ष-मार्गस्य नेतारं, भेत्तारं कर्म-भू-भृताम्।
ज्ञातारं विश्व तत्त्वानां, वन्दे तद्गुण-लब्धये ॥

(स्रग्धरा)

त्रैकाल्यं द्रव्य-षट्कं, नव-पद-सहितं जीव षट्काय-लेश्याः।
पञ्चान्ये चास्ति-काया, व्रत - समिति-गति - ज्ञान - चारित्र - भेदाः ॥
इत्ये-तन्मोक्षमूलं, त्रिभुवन-महितैः प्रोक्त-मर्हद्-भिरीशैः।
प्रत्येति श्रद्धधाति, स्पृशति च मतिमान् यः स वै शुद्ध-दृष्टिः ॥१॥

(आर्या)

सिद्धे जयप्प-सिद्धे, चउव्विहारा-हणाफलं पत्ते।
वंदित्ता अरहंते, वोच्छं आराहणा कमसो ॥२॥
उज्जोवण-मुज्जवणं, णिव्वहणं साहणं च णिच्छरणं।
दंसण-णाण चरित्तं, तवाण-माराहणा भणिया ॥३॥

प्रथम अध्याय

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः ॥१॥ तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम् ॥२॥ तन्निसर्गादधिगमाद् वा ॥३॥ जीवाजीवास्रवबन्धसंवरनिर्जरामोक्षास्तत्त्वम् ॥४॥ नाम-स्थापना-द्रव्य-भावतस्तन्न्यासः ॥५॥ प्रमाण-नयै-रधिगमः ॥६॥ निर्देश-स्वामित्वसाधनाधिकरण-स्थिति-विधानतः ॥७॥ सत्संख्या-क्षेत्रस्पर्शनकालान्तरभावाल्प-बहुत्वैश्च ॥८॥ मति-श्रुता-वधि-मनःपर्यय-केवलानि ज्ञानम् ॥९॥ तत्प्रमाणे ॥१०॥ आद्ये परोक्षम् ॥११॥ प्रत्यक्ष-मन्यत् ॥१२॥ मतिः स्मृतिः संज्ञा चिन्ताभिनिबोध इत्य-नर्थान्तरम् ॥१३॥ तदिन्द्रिया-निन्द्रिय-निमित्तम् ॥१४॥ अव-ग्रहे-हावाय-धारणाः॥१५॥ बहु-बहुविध-क्षिप्रा-निःसृता-नुक्त-ध्रुवाणां सेतराणाम् ॥१६॥ अर्थस्य॥१७॥ व्यञ्जनस्यावग्रहः॥१८॥ न चक्षु-रनिन्द्रियाभ्याम् ॥१९॥ श्रुतं मति-पूर्वं द्व्यनेक-द्वादश-भेदम् ॥२०॥ भव-प्रत्ययोऽवधिर्देव-नारकाणाम् ॥२१॥ क्षयोपशम-निमित्तः षड्विकल्पः शेषाणाम् ॥२२॥ ऋजु-विपुलमती मनःपर्ययः ॥२३॥ विशुद्ध्य-प्रतिपाताभ्यां तद्विशेषः ॥२४॥ विशुद्धि-क्षेत्र-स्वामि-विषयेभ्योऽवधि-मनःपर्याययोः ॥२५॥ मति-श्रुतयो-र्निबन्धो

द्रव्येष्वसर्व-पर्यायेषु॥२६॥ रूपिष्ववधेः ॥२७॥ तदनन्त-भागे मनःपर्ययस्य ॥२८॥ सर्व-द्रव्य-पर्यायेषु केवलस्य ॥२९॥ एकादीनि भाज्यानि युगपदे-कस्मिन्ना-चतुर्भ्यः॥३०॥ मति-श्रुतावधयो विपर्ययश्च ॥३१॥ स-दसतो-रवि-शेषाद्यदृच्छोप-लब्धे-रुन्मत्तवत् ॥३२॥ नैगम-संग्रह-व्यवहारर्जु-सूत्र-शब्द-समभि-रूढैवं-भूता नयाः ॥३३॥

॥ इति तत्त्वार्थसूत्रे प्रथमोऽध्यायः॥

द्वितीयोऽध्यायः

औपशमिक-क्षायिकौ भावौ मिश्रश्च जीवस्य स्वतत्त्व-मौदयिक-पारिणामिकौ च ॥१॥ द्वि-नवाष्टा-दशैक-विंशति-त्रि-भेदा यथा-क्रमम् ॥२॥ सम्यक्त्व-चारित्रे ॥३॥ ज्ञान-दर्शन-दान-लाभ-भोगोप-भोग-वीर्याणि च ॥४॥ ज्ञाना-ज्ञान-दर्शन-लब्धयश्-चतुस्त्रि-त्रि पञ्चभेदाः सम्यक्त्व -चारित्र-संयमासंयमाश्च ॥५॥ गति-कषाय-लिङ्ग-मिथ्यादर्शना-ज्ञाना-संयता-सिद्ध-लेश्याश्-चतुश्-चतुस्त्र्ये-कैकैकैक-षड्भेदाः ॥६॥ जीव-भव्या-भव्यत्वानि च ॥७॥ उपयोगो लक्षणम् ॥८॥ स द्विविधोऽष्ट-चतुर्भेदः॥९॥ संसारिणो मुक्ताश्च ॥१०॥ सम-नस्का-मनस्काः॥११॥ संसारिणस्त्रस-स्थावराः॥१२॥ पृथिव्यप्तेजोवायुवन-स्पतयः स्थावराः ॥१३॥ द्वीन्द्रियादयस्त्रसाः॥१४॥ पञ्चेन्द्रियाणि ॥१५॥ द्विविधानि ॥१६॥ निर्वृत्युप-करणे द्रव्येन्द्रियम् ॥१७॥ लब्ध्युपयोगौ भावेन्द्रियम् ॥१८॥ स्पर्शन-रसन-घ्राण-चक्षुः श्रोत्राणि ॥१९॥ स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण-शब्दास्तदर्थाः ॥२०॥ श्रुत-मनिन्द्रियस्य ॥२१॥ वनस्पत्यन्तानामेकम् ॥२२॥ कृमि-पिपीलिका-भ्रमर-मनुष्यादीना-मेकैक-वृद्धानि॥२३॥ संज्ञिनः समनस्काः॥२४॥ विग्रहगतौ कर्म-योगः ॥२५॥ अनुश्रेणि गतिः॥२६॥ अविग्रहा जीवस्य ॥२७॥ विग्रहवती च संसारिणः प्राक् चतुर्भ्यः ॥२८॥ एक-समया-विग्रहा ॥२९॥ एकं द्वौ त्रीन्वानाहारकः ॥३०॥ सम्मूर्च्छन-गर्भोपपादा जन्म ॥३१॥ सचित्त-शीत-संवृताः सेतरा मिश्राश्चैकशस्तद्योनयः ॥३२॥ जरायु-जाण्डज-पोतानां गर्भः ॥३३॥ देव-नारकाणामुपपादः ॥३४॥ शेषाणां सम्मूर्च्छनम्॥३५॥ औदारिक-वैक्रियिकाहारक-तैजस-कार्मणानि शरीराणि ॥३६॥ परं परं सूक्ष्मम् ॥३७॥ प्रदेशतोऽसंख्येय-गुणं प्राक् तैजसात् ॥३८॥ अनन्त-गुणे परे ॥३९॥ अप्रतीघाते ॥४०॥ अनादि-सम्बन्धे च ॥४१॥ सर्वस्य ॥४२॥ तदादीनि

भाज्यानि युगपदेकस्या-चतुर्भ्यः ॥४३॥ निरुपभोगमन्त्यम् ॥४४॥ गर्भ-सम्मूर्च्छनजमाद्यम् ॥४५॥ औपपादिकं वैक्रियिकम् ॥४६॥ लब्धि-प्रत्ययं च ॥४७॥ तैजस-मपि ॥४८॥ शुभं विशुद्ध-मव्याघाति चाहारकं प्रमत्त-संयतस्यैव ॥४९॥ नारक-सम्मूर्च्छिनो नपुंसकानि ॥५०॥ न देवाः ॥५१॥ शेषास्त्रिवेदाः ॥५२॥ औपपादिक-चरमोत्तम-देहा-संख्येय-वर्षायुषोऽनप-वर्त्यायुषः ॥५३॥

॥ इति तत्त्वार्थसूत्रे द्वितीयोऽध्यायः॥

तृतीयोऽध्यायः

रत्न-शर्करा-बालुका-पङ्क-धूम-तमो-महातमः-प्रभा-भूमयो घनाम्बु-वाता-काश-प्रतिष्ठाः सप्ता-धोऽधः ॥१॥ तासु त्रिंशत्पञ्च-विंशति-पञ्चदश-दश-त्रि-पञ्चोनैक-नरक-शत-सहस्राणि पञ्च चैव यथाक्रमम् ॥२॥ नारका नित्या-शुभतर-लेश्या-परिणाम-देह-वेदना-विक्रियाः॥ ३॥ परस्परो-दीरित-दुःखाः॥४॥ संक्लिष्टासुरो-दीरित-दुःखाश्च प्राक्चतुर्थ्याः ॥५॥ तेष्वेक-त्रि-सप्त-दश-सप्तदश-द्वाविंशति-त्रय-स्त्रिंशत्सागरोपमा सत्त्वानां परा स्थितिः ॥६॥ जम्बूद्वीप-लवणोदादयः शुभ-नामानो द्वीप-समुद्राः ॥७॥ द्वि-र्द्वि-र्विष्कम्भाः पूर्व-पूर्वपरिक्षेपिणो वलयाकृतयः॥८॥ तन्मध्ये मेरु-नाभि-र्वृत्तो योजन-शत-सहस्र-विष्कम्भो जम्बूद्वीपः॥९॥ भरत-हैमवत-हरि-विदेह-रम्यक-हैरण्य-वतैरावतवर्षाः क्षेत्राणि ॥१०॥ तद्-विभाजिनः पूर्वा-परायता हिमवन्-महाहिमवन्-निषध-नील-रुक्मि-शिखरिणो वर्षधर-पर्वताः॥११॥ हेमार्जुन-तपनीय-वैडूर्य-रजत-हेममयाः ॥१२॥ मणि-विचित्र-पार्श्वा उपरि मूले च तुल्य-विस्ताराः॥ १३॥ पद्ममहापद्म-तिगिञ्छ-केशरि-महापुण्डरीक पुण्डरीका ह्रदास्तेषामुपरि ॥१४॥ प्रथमो योजन-सहस्रायामस्तदर्ध विष्कम्भो ह्रदः॥१५॥ दश-योजनावगाहः॥१६॥ तन्मध्ये योजनं पुष्करम् ॥१७॥ तद्-द्विगुण-द्विगुणा ह्रदाः पुष्कराणि च॥१८॥ तन्-निवासिन्यो देव्यः श्री-ह्री-धृति-कीर्ति-बुद्धि-लक्ष्म्यः पल्योपमस्थितयः ससामानिक-परिषत्काः ॥१९॥ गङ्गा-सिन्धु-रोहिद्रोहि-तास्या-हरिद्धरि-कान्ता-सीता-सीतोदा-नारी-नरकान्ता-सुवर्ण-रूप्यकूला-रक्ता-रक्तोदाः सरितस्तन्मध्यगाः॥२०॥ द्वयोर्द्वयोः पूर्वाः पूर्वगाः ॥२१॥ शेषास्त्व-परगाः॥२२॥ चतुर्दश-नदी-सहस्र-परिवृता गङ्गा-

सिन्ध्वादयो नद्यः ॥२३॥ भरतः षड् विंशति-पञ्चयोजन-शत-विस्तारः षट्चैकोन-विंशति-भागा योजनस्य ॥२४॥ तद्द्विगुण-द्विगुण-विस्तारा वर्षधर-वर्षा विदेहान्ताः ॥२५॥ उत्तरा दक्षिणतुल्याः ॥२६॥ भरतैरावतयो-र्वृद्धिह्रासौ षट्समयाभ्यामुत्सर्पिण्यवसर्पिणीभ्याम्॥२७॥ ताभ्यामपरा भूमयोऽवस्थिताः॥२८॥ एक-द्वि-त्रि-पल्योपम-स्थितयो हैमवतक-हारिवर्षकदैव-कुरवकाः ॥२९॥ तथोत्तराः ॥३०॥ विदेहेषु संख्येय-कालाः॥ ३१॥ भरतस्य विष्कम्भो जम्बूद्वीपस्य नवति-शत-भागः॥३२॥ द्विर्धातकी-खण्डे॥३३॥ पुष्करार्द्धे च ॥३४॥ प्राङ्मानुषोत्तरान्मनुष्याः॥३५॥ आर्या म्लेच्छाश्च॥३६॥ भरतैरावत-विदेहाः कर्मभूमयोऽन्यत्र देवकुरूत्तर-कुरुभ्यः ॥३७॥ नृस्थिती परावरे त्रिपल्योपमान्तर्मुहूर्ते ॥३८॥ तिर्यग्योनिजानां च ॥३९॥

॥ इति तत्त्वार्थसूत्रे तृतीयोऽध्यायः॥

चतुर्थोऽध्यायः

देवाश्चतुर्णिकायाः ॥१॥ आदितस्-त्रिषु पीतान्त-लेश्याः ॥२॥ दशाष्ट-पञ्चद्वादशविकल्पाः कल्पोपपन्नपर्यन्ताः॥३॥ इन्द्र-सामानिक-त्रायस्त्रिंश-पारिषदात्मरक्ष-लोकपालानीक-प्रकीर्णकाभियोग्यकिल्विषिकाश्चैकशः ॥४॥ त्रायस्त्रिंशलोकपालवर्ज्या व्यन्तरज्योतिष्काः॥५॥ पूर्वयोर्द्वीन्द्राः॥६॥ काय-प्रवीचारा आ ऐशानात् ॥७॥ शेषाः स्पर्श-रूप-शब्द-मनःप्रवीचाराः॥८॥ परेऽप्रवीचाराः॥९॥ भवनवासिनोऽसुरनागविद्युत्सुपर्णाग्निवातस्तनितोदधि-द्वीपदिक्कुमाराः ॥१०॥ व्यन्तराः किन्नर-किम्पुरुष-महोरग-गन्धर्व-यक्ष-राक्षस-भूत-पिशाचाः॥११॥ ज्योतिष्काः सूर्या-चन्द्र-मसौ ग्रह-नक्षत्र-प्रकीर्णक-तारकाश्च ॥१२॥ मेरु-प्रदक्षिणा नित्य-गतयो नृलोके ॥१३॥ तत्कृतः काल-विभागः ॥१४॥ बहिरवस्थिताः ॥१५॥ वैमानिकाः ॥१६॥ कल्पोपपन्नाः कल्पातीताश्च ॥१७॥ उपर्युपरि ॥१८॥ सौधर्मैशान-सानत्कुमार-माहेन्द्र-ब्रह्म-ब्रह्मोत्तरलान्तव-कापिष्ठ-शुक्र-महाशुक्र-शतार-सहस्त्रारेष्वानत-प्राणतयो-रारणा-च्युतयो र्नवसु ग्रैवेयकेषु विजय-वैजयन्त-जयन्ता-पराजितेषु सर्वार्थ-सिद्धौ च ॥१९॥ स्थिति-प्रभाव-सुख-द्युति-लेश्या-विशुद्धीन्द्रियावधि-विषयतोऽधिकाः ॥२०॥ गति-शरीर-परिग्रहाभि-मानतो हीनाः ॥२१॥ पीत-पद्म-शुक्ल-लेश्या द्वि-त्रिशेषेषु ॥२२॥

प्राग्ग्रैवेयकेभ्यः कल्पाः ॥२३॥ ब्रह्म-लोकालया लौकान्तिकाः ॥२४॥ सारस्वता-दित्य-वह्न्यरुण-गर्दतोय-तुषिताव्याबाधा-रिष्टाश्च॥ २५॥ विजयादिषु द्विचरमाः॥२६॥ औपपादिक-मनुष्येभ्यः शेषास्तिर्यग्योनयः॥२७॥ स्थिति-रसुर-नाग-सुपर्ण-द्वीप-शेषाणां सागरोपम-त्रिपल्योपमार्द्ध-हीन-मिताः ॥२८॥ सौधर्मैशानयोः सागरोपमे अधिके ॥२९॥ सानत्कुमार-माहेन्द्रयोः सप्त ॥३०॥ त्रि-सप्त-नवैका-दश-त्रयोदश-पञ्चदशभि-रधिकानि तु ॥३१॥ आरणाच्युता-दूर्ध्व-मेकैकेन नवसु ग्रैवेयकेषु विजयादिषु सर्वार्थसिद्धौ च ॥३२॥ अपरा पल्योपममधिकम् ॥३३॥ परतः परतः पूर्वा पूर्वानन्तरा ॥३४॥ नारकाणां च द्वितीयादिषु ॥३५॥ दश-वर्ष-सहस्राणि प्रथमायाम् ॥३६॥ भवनेषु च ॥३७॥ व्यन्तराणां च ॥३८॥ परा पल्योपम-मधिकम् ॥३९॥ ज्योतिष्काणां च ॥४०॥ तदष्ट-भागोऽपरा ॥४१॥ लौकान्तिकानामष्टौ सागरोपमाणि सर्वेषाम् ॥४२॥

॥ इति तत्त्वार्थसूत्रे चतुर्थोऽध्यायः॥

पंचमोऽध्यायः

अजीव-काया धर्मा-धर्मा-काश-पुद्गलाः ॥१॥ द्रव्याणि॥ २॥ जीवाश्च ॥३॥ नित्या-वस्थितान्यरूपाणि ॥४॥ रूपिणः पुद्गलाः॥५॥ आ आकाशादेक-द्रव्याणि ॥६॥ निष्क्रियाणि च ॥७॥ असंख्येयाः प्रदेशा धर्माधर्मैक-जीवानाम् ॥८॥ आकाशस्यानन्ताः ॥९॥ संख्येया-संख्येयाश्च पुद्गलानाम् ॥१०॥ नाणोः ॥११॥ लोकाकाशेऽवगाहः ॥१२॥ धर्मा-धर्मयोः कृत्स्ने ॥१३॥ एक-प्रदेशादिषु भाज्यः पुद्गलानाम् ॥१४॥ असंख्येय-भागादिषु जीवानाम् ॥१५॥ प्रदेश-संहार-विसर्पाभ्यां प्रदीपवत् ॥१६॥ गतिस्थित्युपग्रहौ धर्मा-धर्मयो-रुपकारः ॥१७॥ आकाशस्यावगाहः ॥१८॥ शरीर-वाङ्मनः प्राणापानाः पुद्गलानाम् ॥१९॥ सुख-दुःख-जीवित-मरणोपग्रहाश्च ॥२०॥ परस्परोपग्रहो जीवानाम् ॥२१॥ वर्तना-परिणाम-क्रियाः परत्वापरत्वे च कालस्य ॥२२॥ स्पर्श-रस-गन्ध-वर्णवन्तः पुद्गलाः ॥२३॥ शब्द-बन्ध-सौक्ष्म्य-स्थौल्य-संस्थान-भेद-तमश्छाया-तपोद्योत-वन्तश्च ॥२४॥ अणवः स्कन्धाश्च ॥२५॥ भेद-संघातेभ्यः उत्पद्यन्ते ॥२६॥ भेदा-दणुः ॥२७॥ भेद-संघाताभ्यां चाक्षुषः ॥२८॥ सद्द्रव्य-लक्षणम् ॥२९॥ उत्पादव्ययध्रौव्य युक्तं सत् ॥३०॥ तद्भावाव्ययं नित्यम् ॥३१॥ अर्पिता-नर्पित-सिद्धेः

॥३२॥ स्निग्ध-रूक्षत्वाद् बन्धः ॥३३॥ न जघन्य-गुणानाम् ॥३४॥ गुण-साम्ये सदृशानाम् ॥३५॥ द्व्यधिकादि-गुणानां तु ॥३६॥ बन्धेऽधिकौ पारिणामिकौ च ॥३७॥ गुण-पर्ययवद् द्रव्यम् ॥३८॥ कालश्च ॥३९॥ सोऽनन्त-समयः ॥४०॥ द्रव्याश्रया निर्गुणाः गुणाः ॥४१॥ तद्भावः परिणामः ॥४२॥

॥ इति तत्त्वार्थसूत्रे पंचमोऽध्यायः॥

षष्ठोऽध्यायः

काय-वाङ् -मनः-कर्म योगः ॥१॥ स आस्रवः॥२॥ शुभः पुण्यस्याशुभः पापस्य ॥३॥ सकषाया-कषाययोः साम्परायि-केर्या-पथयोः॥४॥ इन्द्रिय-कषाया-व्रतक्रियाः पञ्चचतुः पञ्च-पञ्चविंशति-संख्याः पूर्वस्य भेदाः॥५॥ तीव्र-मन्द-ज्ञाता-ज्ञात-भावाधि-करण-वीर्य-विशेषेभ्य-स्तद्विशेषः॥६॥ अधिकरणं जीवा-जीवाः॥७॥ आद्यं संरम्भ -समा-रम्भा-रम्भ-योग-कृत-कारितानु-मत-कषाय-विशेषैस्-त्रिस्-त्रिस्-त्रिश्-चतुश्चैकशः ॥८॥ निर्वर्तना-निक्षेप-संयोग-निसर्गा द्वि-चतुर्द्वि-त्रि-भेदाः परम्॥९॥ तत्प्रदोष-निह्नव-मात्सर्यान्तरायासादनोपघाता ज्ञान-दर्शना-वरणयोः ॥१०॥ दुःख-शोक-तापा-क्रन्दन-वध-परिदेव-नान्यात्म- परोभय -स्थानान्य सद्वेद्यस्य ॥११॥ भूतव्रत्यनु-कम्पा-दान-सराग संयमादियोगः क्षान्तिः शौच-मिति सद्-वेद्यस्य ॥१२॥ केवलि-श्रुत-संघ-धर्म-देवा-वर्णवादो दर्शन-मोहस्य ॥१३॥ कषायो-दयात्तीव्र-परिणामश्चारित्र-मोहस्य ॥१४॥ बह्वारम्भ-परिग्रहत्वं नारकस्यायुषः ॥१५॥ माया तैर्यग्योनस्य ॥१६॥ अल्पारम्भ-परिग्रहत्वं मानुषस्य ॥१७॥ स्वभाव-मार्दवं च ॥१८॥ निः शीलव्रतत्वं च सर्वेषाम् ॥१९॥ सराग-संयम-संयमासंयमा-कामनिर्जरा-बाल-तपांसि दैवस्य ॥२०॥ सम्यक्त्वं च ॥२१॥ योगवक्रता विसंवादनं चाशुभस्य नाम्नः॥२२॥ तद्विपरीतं शुभस्य ॥२३॥ दर्शन-विशुद्धिर्विनय-सम्पन्नता शील-व्रतेष्वनती-चारोऽभीक्ष्ण-ज्ञानोपयोग-संवेगौ शक्तितस्त्यागतपसी साधुसमाधिर्वैयावृत्त्य-करणमर्हदाचार्य-बहुश्रुत-प्रवचनभक्ति-रावश्यका-परि-हाणि-र्मार्ग-प्रभावना-प्रवचन-वत्सलत्वमिति तीर्थकरत्वस्य॥२४॥ परात्म-निन्दा-प्रशंसे स-दसद्-गुणोच्छादनोद्-भावने च नीचै र्गोत्रस्य ॥२५॥ तद्विपर्ययो नीचैर्वृत्त्यनुत्सेकौ चोत्तरस्य ॥२६॥ विघ्नकरणमन्तरायस्य

॥२७॥

॥ इति तत्त्वार्थसूत्रे षष्ठोऽध्यायः॥

सप्तमोऽध्यायः

हिंसानृत-स्तेयाब्रह्म-परिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतम् ॥१॥ देश-सर्वतोऽणु-महती ॥२॥ तत्स्थैर्यार्थं भावनाः पञ्च पञ्च ॥३॥ वाङ्मनोगुप्तीर्या-दान-निक्षेपण-समित्यालोकित-पान-भोजनानि पञ्च ॥४॥ क्रोध-लोभ-भीरुत्व-हास्य-प्रत्या-ख्यानान्य-नुवीचि-भाषणं च पञ्च ॥५॥ शून्यागार-विमोचितावास-परोपरोधाकरण-भैक्ष्यशुद्धि-सधर्मा-विसंवादाः पञ्च ॥६॥ स्त्रीरागकथा-श्रवण-तन्मनोहराङ्ग-निरीक्षण-पूर्वरतानुस्मरण-वृष्येष्टरस-स्वशरीर-संस्कारत्यागाः पञ्च ॥७॥ मनोज्ञामनोज्ञेन्द्रिय-विषय-राग-द्वेष-वर्जनानि पञ्च ॥८॥ हिंसा-दिष्विहामुत्रापायावद्य-दर्शनम् ॥९॥ दुःख-मेव वा ॥१०॥ मैत्रीप्रमोदकारुण्य-माध्यस्थ्यानि च सत्त्वगुणाधिकक्लिश्यमानाविनेयेषु ॥११॥ जगत्कायस्वभावौ वा संवेग-वैराग्यार्थम् ॥१२॥ प्रमत्त-योगात्प्राणव्यपरोपणं हिंसा ॥१३॥ असदभिधानमनृतम् ॥१४॥ अदत्ता-दानं स्तेयम् ॥१५॥ मैथुन-मब्रह्म ॥१६॥ मूर्च्छा परिग्रहः ॥१७॥ निःशल्यो व्रती ॥१८॥ अगार्यनगारश्च ॥१९॥ अणु-व्रतोऽगारी ॥२०॥ दिग्देशानर्थदण्ड-विरतिसामायिकप्रोषधो-पवासोपभोगपरिभोग-परिमाणातिथि-संविभाग-व्रत-सम्पन्नश्च ॥२१॥ मारणांतिकीं सल्लेखनां जोषिता ॥२२॥ शङ्काकांक्षा-विचिकित्सान्यदृष्टि-प्रशंसासंस्तवाः सम्यग्दृष्टे-रतिचाराः ॥२३॥ व्रतशीलेषु पञ्च पञ्च यथाक्रमम् ॥२४॥ बन्धवधच्छेदाति-भारारोपणान्न-पाननिरोधाः ॥२५॥ मिथ्योपदेशरहोभ्याख्यान-कूटलेख-क्रियान्यासापहार-साकार-मन्त्रभेदाः ॥२६॥ स्तेनप्रयोगतदाहृतादानविरुद्धराज्यातिक्रमहीनाधिक-मानोन्मान-प्रतिरूपकव्यवहाराः ॥२७॥ परविवाहकरणेत्वरिका-परिगृहीता-परिगृहीता-गमनानङ्गक्रीडा-कामतीव्राभिनिवेशाः ॥२८॥ क्षेत्रवास्तु-हिरण्य-सुवर्णधनधान्य-दासी-दास-कुप्य-भाण्ड प्रमाणातिक्रमाः ॥२९॥ ऊर्ध्वाधस्तिर्यग्व्यतिक्रम-क्षेत्रवृद्धि-स्मृत्यन्तराधानानि ॥३०॥आनयन-प्रेष्यप्रयोगशब्द-रूपानुपात-पुद्गल-क्षेपाः ॥३१॥ कन्दर्पकौत्कुच्यमौखर्या-समीक्ष्याधिकरणोपभोगपरिभोगानर्थक्यानि ॥३२॥ योगदुष्प्रणिधानानादर-स्मृत्यनुपस्थानानि ॥३३॥ अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितोत्सर्गादानसंस्तरोप-

क्रमणानादरस्मृत्यनुपस्थानानि ॥३४॥ सचित्त-सम्बन्धसम्मिश्राभिषव-दुःपक्वाहाराः॥३५॥ सचित्तनिक्षेपापिधानपरव्यपदेश-मात्सर्यकालातिक्रमाः ॥३६॥ जीवितमरणाशंसामित्रानुरागसुखानुबन्धनिदानानि ॥३७॥ अनुग्रहार्थं स्वस्यातिसर्गो दानम् ॥३८॥ विधिद्रव्यदातृ-पात्र-विशेषात्तद्वि-शेषः ॥३९॥

॥ इति तत्त्वार्थसूत्रे सप्तमोऽध्यायः॥

अष्टमोऽध्यायः

मिथ्यादर्शनाविरतिप्रमाद-कषाय-योगा बन्ध-हेतवः ॥१॥ सकषायत्वाज्जीवः कर्मणो योग्यान् पुद्गलानादत्ते स बन्धः॥२॥ प्रकृति-स्थित्यनुभव-प्रदेशास् तद्विधयः॥ ३॥ आद्यो ज्ञानदर्शनावरणवेदनीयमोहनीयायुर्नाम-गोत्रान्तरायाः ॥४॥ पञ्च-नव-द्व्यष्टा-विंशति-चतुर्द्वि-चत्वारिंशद्-द्वि-पञ्च-भेदा यथाक्रमम् ॥५॥ मतिश्रुतावधिमनःपर्यय-केवलानाम् ॥६॥ चक्षु-रचक्षु-रवधि-केवलानां निद्रा-निद्रानिद्रा-प्रचला-प्रचलाप्रचलास्त्यानगृद्धयश्च॥७॥ स-दसद्वेद्ये ॥८॥ दर्शन-चारित्र-मोहनीया-कषाय-कषायवेदनीयाख्यास्-त्रि-द्वि-नव-षोडशभेदाः सम्यक्त्व-मिथ्यात्व-तदुभयान्य-कषाय-कषायौ-हास्य-रत्यरति-शोक-भय-जुगुप्सा-स्त्री-पुन्नपुंसक -वेदा अनन्तानु-बन्ध्यप्रत्याख्यान-प्रत्याख्यान-संज्वलन-विकल्पाश्चैकशः क्रोध-मान-माया-लोभाः ॥९॥ नारक-तैर्यग्योन-मानुष-दैवानि ॥१०॥ गति-जाति-शरीराङ्गोपाङ्ग-निर्माण-बंधन-संघात-संस्थान-संहनन-स्पर्श-रस-गंध-वर्णानु-पूर्व्यगुरु-लघूपघात-पर-घाता-तपो-द्योतोच्छ्वास-विहायोगतयः प्रत्येक-शरीर-त्रस-सुभग-सुस्वर-शुभ-सूक्ष्म-पर्याप्ति-स्थिरादेय-यशः कीर्ति-सेतराणि तीर्थकरत्वं च ॥११॥ उच्चैर्नीचैश्च ॥१२॥ दान-लाभ-भोगोपभोग-वीर्याणाम् ॥१३॥ आदितस्-तिसृणा-मन्तरायस्य च त्रिंशत्सागरोपम-कोटी-कोट्यः परा स्थितिः ॥१४॥ सप्तति-र्मोहनीयस्य ॥१५॥ विंशति-र्नाम-गोत्रयोः ॥१६॥ त्रयस्-त्रिंशत्सागरोपमाण्यायुषः ॥१७॥ अपरा द्वादश-मुहूर्ता वेदनीयस्य ॥१८॥ नाम-गोत्रयो-रष्टौ॥ १९॥ शेषाणा-मन्तर्मुहूर्ताः ॥२०॥ विपाकोऽनुभवः ॥२१॥ स यथानाम ॥२२॥ ततश्च निर्जरा ॥२३॥ नामप्रत्ययाः सर्वतो योगविशेषात् सूक्ष्मैकक्षेत्रावगाहस्थिताः सर्वात्म-प्रदेशेष्वनन्तानन्तप्रदेशाः ॥२४॥ सद्वेद्य-शुभायुर्नाम-गोत्राणि पुण्यम्

॥२५॥ अतोऽन्यत्पापम् ॥२६॥

॥ इति तत्त्वार्थसूत्रे अष्टमोऽध्यायः॥

नवमोऽध्यायः

आस्रव-निरोधः संवरः ॥१॥ स गुप्ति-समिति-धर्मानुप्रेक्षा-परीषहजय-चारित्रैः॥२॥ तपसा निर्जरा च ॥३॥ सम्यग्योग-निग्रहो गुप्तिः ॥४॥ ईर्याभाषैषणा-दान-निक्षेपोत्सर्गाः समितयः ॥५॥ उत्तम-क्षमा-मार्दवार्जव-शौच-सत्य-संयम-तपस्त्यागाकिञ्चन्य-ब्रह्मचर्याणि धर्मः ॥६॥ अनित्या-शरण-संसारैकत्वान्यत्वा-शुच्यास्रव संवर-निर्जरा-लोक-बोधिदुर्लभ-धर्मस्वा-ख्या-तत्वानु-चिन्तन-मनुप्रेक्षाः ॥७॥ मार्गाच्यवन-निर्जरार्थं परिषोढव्याः परीषहाः ॥८॥ क्षुत्पिपासा-शीतोष्ण-दंश-मशक-नाग्न्यारति-स्त्री-चर्या-निषद्या-शय्या-क्रोश-वध-याचना-लाभ-रोग-तृणस्पर्श-मल-सत्कार-पुरस्कार-प्रज्ञाज्ञाना-दर्शनानि ॥९॥ सूक्ष्म-साम्पराय -छद्मस्थ-वीत-रागयोश्चतुर्दश ॥१०॥ एकादश जिने॥११॥ बादरसाम्पराये सर्वे ॥१२॥ ज्ञानावरणे प्रज्ञाज्ञाने ॥१३॥ दर्शन-मोहान्तराययोरदर्शना-लाभौ ॥१४॥ चारित्र-मोहे नाग्न्या-रति-स्त्री-निषद्या-क्रोश-याचना-सत्कार-पुरस्काराः ॥१५॥ वेदनीये शेषाः ॥१६॥ एकादयो भाज्या युगपदेकस्मिन्नैकोनविंशतेः ॥१७॥ सामायिकच्छेदोप-स्थापना-परिहार-विशुद्धि-सूक्ष्म साम्पराय-यथाख्यात-मिति चारित्रम् ॥१८॥ अनशनाव-मौदर्य-वृत्तिपरिसंख्यान-रस-परित्याग-विविक्त -शय्यासन-कायक्लेशा बाह्यं तपः ॥१९॥ प्रायश्चित्त-विनय-वैयावृत्त्य-स्वाध्याय-व्युत्सर्ग-ध्यानान्युत्तरं ॥२०॥ नव-चतुर्दश-पञ्च-द्विभेदा यथाक्रमं प्राग्ध्यानात् ॥२१॥आलोचना-प्रतिक्रमण-तदुभय-विवेक-व्युत्सर्ग-तपश्छेद-परिहारोप-स्थापनाः ॥२२॥ ज्ञान-दर्शन-चारित्रोपचाराः ॥२३॥ आचार्योपाध्याय-तपस्वि-शैक्ष्य-ग्लान-गण-कुल-सङ्घ-साधु-मनोज्ञानाम् ॥२४॥ वाचना-पृच्छनानुप्रेक्षाम्नाय धर्मोपदेशाः ॥२५॥ बाह्याभ्यन्तरोपध्योः ॥२६॥ उत्तम-संहननस्यैकाग्र-चिन्ता-निरोधो ध्यानमान्तर्मुहूर्तात् ॥२७॥ आर्तरौद्रधर्म्यशुक्लानि ॥२८॥ परे मोक्ष-हेतू ॥२९॥ आर्त-ममनोज्ञस्य सम्प्रयोगे तद्विप्रयोगाय स्मृति-समन्वाहारः॥३०॥ विपरीतं मनोज्ञस्य ॥३१॥ वेदनायाश्च ॥३२॥ निदानं च ॥३३॥ तदविरत-देशविरत-प्रमत्त-संयतानाम् ॥३४॥ हिंसानृत-स्तेय-विषय-संरक्षणेभ्यो

रौद्र-मविरत-देशविरतयोः ॥३५॥ आज्ञापाय-विपाक-संस्थान-विचयाय धर्म्यम्॥३६॥ शुक्ले चाद्ये पूर्वविदः ॥३७॥ परे केवलिनः ॥३८॥ पृथक्त्वैकत्व-वितर्क-सूक्ष्म-क्रिया-प्रतिपाति-व्युपरत-क्रियानिवर्तीनि ॥३९॥ त्र्येक-योग-काय-योगा-योगानाम् ॥४०॥ एकाश्रये सवितर्क-वीचारे पूर्वे ॥४१॥ अवीचारं द्वितीयम् ॥४२॥ वितर्कः श्रुतम् ॥४३॥ वीचारोऽर्थ-व्यञ्जनयोग-संक्रान्तिः ॥४४॥ सम्यग्दृष्टिश्रावक-विरतानन्त -वियोजक-दर्शनमोह-क्षपकोप-शमकोपशान्तमोह क्षपक-क्षीणमोह-जिनाःक्रमशोऽ-संख्येय-गुण-निर्जराः ॥४५॥ पुलाक-बकुश-कुशील-निर्ग्रन्थ-स्नातकाः निर्ग्रन्थाः॥४६॥ संयम-श्रुतप्रतिसेवना-तीर्थ-लिङ्ग-लेश्योपपाद-स्थान-विकल्पतः साध्याः॥४७॥

॥ इति तत्त्वार्थसूत्रे नवमोऽध्यायः॥

दशमोऽध्यायः

मोहक्षयाज्ज्ञान-दर्शनावरणान्तराय-क्षयाच्च केवलम् ॥१॥ बन्धहेत्वभाव-निर्जराभ्यां कृत्स्न-कर्म-विप्रमोक्षो मोक्षः॥ २॥ औपशमिकादि-भव्यत्वानां च ॥३॥ अन्यत्र केवल-सम्यक्त्व-ज्ञान-दर्शन-सिद्धत्वेभ्यः॥४॥ तदनन्तर-मूर्ध्वं गच्छत्या-लोकान्तात् ॥५॥ पूर्व-प्रयोगादसङ्गत्वाद्-बन्धच्-छेदात्तथा-गति-परिणामाच्च ॥६॥ आविद्ध-कुलाल -चक्रवद्-व्यपगतलेपालाबु-वदेरण्डबीज-वदग्नि शिखावच्च ॥७॥ धर्मास्तिकायाभावात् ॥८॥ क्षेत्र-काल-गति-लिङ्ग-तीर्थ-चारित्र-प्रत्येकबुद्ध-बोधित-ज्ञाना-वगाहनान्तर-संख्याल्प-बहुत्वतः साध्याः ॥९॥

॥ इति तत्त्वार्थसूत्रे दशमोऽध्यायः॥

अक्षर-मात्र पद-स्वर-हीनं, व्यञ्जन-संधि-विवर्जित-रेफम्।
साधुभिरत्र मम क्षमितव्यं, को न विमुह्यति शास्त्र-समुद्रे ॥१॥

दशाध्याये परिच्छिन्ने, तत्त्वार्थे पठिते सति।
फलं स्यादुपवासस्य, भाषितं मुनिपुङ्गवैः ॥२॥

तत्त्वार्थसूत्र-कर्तारं, गृद्धपिच्छोप-लक्षितम्।
वन्दे गणीन्द्र-संजातमुमास्वामी-मुनीश्वरम् ॥३॥

पढम चउक्के पढमं पंचमे जाणि पुग्गलं तच्च।
छह सत्तमे हि आस्सव अट्ठमे बंध णायव्वो ॥४॥

णवमे संवर णिज्जर दहमे मोक्खं वियाणे हि।
इह सत्त तच्च भणियं दह सुत्ते मुणिवरिं देहिं ॥५॥
जं सक्कइ तं कीरइ, जं च ण सक्कइ तहेव सद्दहणं।
सद्दह-माणो जीवो, पावइ अजरामरं ठाणं ॥६॥
तवयरणं वयधरणं, संजम-सरणं च जीवदया-करणम्।
अन्ते समाहि-मरणं, चउगइ दुक्खं णिवारेई ॥७॥
कोटिशतं द्वादश-चैव कोट्यो, लक्षाण्यशीतिस्त्र्यधिकानि चैव।
पंचाशदष्टौ च सहस्र-संख्य, मेतच्छ्रुतं पंचपदं नमामि ॥८॥
अरहंत भासियत्थं, गणहर-देवेहिं गंथियं सम्मं।
पणमामि भत्तिजुत्तो, सुदणाण-महोवयं सिरसा ॥९॥
गुरवः पांतु नो नित्यं, ज्ञान-दर्शन-नायकाः।
चारित्रार्णव-गम्भीरा, मोक्ष-मार्गोप-देशकाः ॥१०॥

❑ ❑ ❑

जीवन का ध्येय

जब जीवन का अंत हो, मेरे सामने एक संत हो।
मेरे ओठों पर अरिहंत हो, महावीर का वह पंथ हो॥
कषायों की आग में जलता जलता आया हूँ।
वासना की राह में चलता - चलता आया हूँ॥
दुख भरी इस यात्रा का, सुखद अंत हो।
जब जीवन का अंत...॥१॥
तन में जब तक श्वास है, मन में एक विश्वास है।
मुक्ति की ही प्यास है, पण्डित मरण की आस है॥
तन अचल और मन अमल हो, अब न कोई द्वंद्व हो।
जब जीवन का अंत...॥२॥
धर्म में मेरी प्रीत हो, वेदना में जीत हो।
आगम का संगीत हो, प्रभु नाम का गीत हो॥
साधना के नंदन वन में, भावना बसंत हो।
जब जीवन का अंत...॥३॥

कौन-कौन सी भक्ति कहाँ-कहाँ करनी चाहिए

- ❑ **जिनप्रतिमावन्दना**—चैत्यभक्ति, पंचमहागुरुभक्ति।
- ❑ **आचार्यवन्दना**—लघुसिद्धभक्ति, लघुआचार्य भक्ति।
- ❑ **सिद्धान्तवेत्ता आचार्य की वन्दना**—सिद्धभक्ति, श्रुतभक्ति, आचार्यभक्ति।
- ❑ **साधारण मुनियों की वन्दना**—सिद्धभक्ति।
- ❑ **सिद्धान्तवेत्ता मुनियों की वन्दना**—सिद्धभक्ति, श्रुतभक्ति।
- ❑ **स्वाध्याय का प्रारम्भ**—लघुश्रुतभक्ति, आचार्यभक्ति।
- ❑ **स्वाध्याय की समाप्ति**—लघुश्रुतभक्ति।
- ❑ **आचार्य की अनुपस्थिति में पहले दिन उपवास वा प्रत्याख्यान ग्रहण किया हो तो दूसरे दिन आहार के समय**—सिद्धभक्ति पढ़कर उसका त्याग वा आहार के लिये गमन।
- ❑ **आहार की समाप्ति पर अगले दिन के उपवास वा प्रत्याख्यान का ग्रहण करने में**—सिद्धभक्ति।
- ❑ **आचार्य की उपस्थिति में आहार लिये जाने के पहले**—लघुसिद्धभक्ति, लघुयोगिभक्ति।
- ❑ **आहार के अनन्तर प्रत्याख्यान वा उपवास की प्रतिज्ञा के लिये**—लघुसिद्धभक्ति, लघुयोगिभक्ति।
- ❑ **चतुर्दशी के दिन त्रिकालवन्दना के लिये**—चैत्यभक्ति, श्रुतभक्ति, पंचमहागुरुभक्ति अथवा सिद्धभक्ति, चैत्यभक्ति, श्रुतभक्ति, पंचमहागुरु-भक्ति, शान्तिभक्ति और समाधिभक्ति।
- ❑ **नन्दीश्वरपर्व में**—सिद्धभक्ति, नन्दीश्वरभक्ति, पंचमहागुरु-भक्ति, शान्तिभक्ति, समाधिभक्ति।
- ❑ **सिद्धप्रतिमा के सामने**—सिद्धभक्ति।
- ❑ **तीर्थंकर के जन्म दिन**—चैत्यभक्ति, श्रुतभक्ति, पंच-महागुरुभक्ति अथवा सिद्धभक्ति, चैत्यभक्ति, श्रुतभक्ति, पंच-महागुरुभक्ति, शान्ति-भक्ति।
- ❑ **अष्टमी-चतुर्दशी की क्रिया में अपूर्व चैत्यवन्दना वा त्रिकाल नित्यवन्दना के समय**—चैत्यभक्ति, पंच-महागुरुभक्ति, शान्तिभक्ति।

- **अभिषेकवन्दना**—सिद्धभक्ति, चैत्यभक्ति, पंचमहागुरुभक्ति, शान्तिभक्ति।
- **स्थिरबिम्बप्रतिष्ठा**—सिद्धभक्ति, शान्तिभक्ति।
- **चलबिम्ब-प्रतिष्ठा**—सिद्धभक्ति, शान्तिभक्ति।
- **चलबिम्बप्रतिष्ठा के चतुर्थ अभिषेक में**—सिद्धभक्ति, चैत्यभक्ति, पंचमहागुरुभक्ति, शान्तिभक्ति।
- **तीर्थंकरों के गर्भ-जन्मकल्याणक में**—सिद्धभक्ति, चारित्रभक्ति, शान्तिभक्ति।
- **दीक्षाकल्याणक में**—सिद्धभक्ति, चारित्रभक्ति, योगिभक्ति, शान्ति-भक्ति।
- **ज्ञानकल्याणक में**—सिद्धभक्ति, श्रुतभक्ति, चारित्रभक्ति, योगिभक्ति, निर्वाणभक्ति, शान्तिभक्ति।
- **निर्वाणकल्याणक में**—सिद्धभक्ति, श्रुतभक्ति, चारित्रभक्ति, योगिभक्ति, निर्वाणभक्ति, शान्तिभक्ति।
- **वीरनिर्वाण-सूर्योदय के समय**—सिद्धभक्ति, निर्वाणभक्ति, पंचमहागुरु-भक्ति, शान्तिभक्ति।
- **श्रुतपंचमी**—बृहत्सिद्धभक्ति, बृहत्श्रुतभक्ति, श्रुतस्कन्ध की स्थापना, वृहद् वाचना, बृहत् श्रुत-आचार्यभक्ति पूर्वक स्वाध्याय, श्रुतभक्ति द्वारा स्वाध्याय की पूर्णता, अन्त में शान्तिभक्ति कर क्रिया की पूर्णता।
- **श्रुतपंचमी के दिन गृहस्थों को**—सिद्धभक्ति, श्रुतभक्ति, शान्तिभक्ति।
- **सिद्धान्तवाचना**—स्वाध्याय का प्रारम्भ श्रुतभक्ति, आचार्य -भक्ति द्वारा करके वाचना करे और अन्त में श्रुत और शान्तिभक्ति।
- **गृहस्थों को संन्यास के प्रारम्भ में**—सिद्ध, श्रुत, शान्तिभक्ति।
- **गृहस्थों को संन्यास के अन्त में**—सिद्धभक्ति, श्रुतभक्ति, शान्तिभक्ति।
- **वर्षायोग धारण करते समय**—सिद्धभक्ति, योगिभक्ति, चैत्यभक्ति।
- **वर्षायोग धारण की प्रदक्षिणा में**—यावन्ति जिनचैत्यानि, स्वयंभू-स्तोत्र की स्तुति, चैत्यभक्ति।
- **वर्षायोग स्वीकार करते समय**—पंचमहागुरुभक्ति, शान्तिभक्ति।
- **वर्षायोग की समाप्ति में**—वर्षायोग धारण करने की पूर्व विधि।

- **प्रतिमायोग धारण करने वाले मुनि की वन्दना करते समय—** सिद्धभक्ति, योगिभक्ति, शान्तिभक्ति।
- **दीक्षा ग्रहण करते समय—**बृहत्सिद्धभक्ति, योगिभक्ति।
- **दीक्षा के अन्त में—**सिद्धभक्ति।
- **केशलोंच करते समय—**लघुसिद्धभक्ति, लघुयोगिभक्ति।
- **लोंच के अन्त में—**सिद्धभक्ति।
- **प्रतिक्रमण में—**सिद्धभक्ति, प्रतिक्रमणभक्ति, वीरभक्ति, चतुर्विंशति-तीर्थंकरभक्ति।
- **रात्रियोग धारण करते समय—**योगिभक्ति।
- **रात्रियोग के त्याग समय—**योगिभक्ति।
- **देववन्दना में दोष लगने पर—**समाधिभक्ति।
- **सामान्य ऋषि के स्वर्गवास होने पर उनके शरीर और निषद्या की क्रिया में—**सिद्धभक्ति, योगिभक्ति, शान्तिभक्ति।
- **पाक्षिकप्रतिक्रमण में—**सिद्धभक्ति, चारित्रभक्ति, प्रतिक्रमणभक्ति, वीरभक्ति, चतुर्विंशतितीर्थंकरभक्ति, चारित्रालोचना, पंचमहागुरुभक्ति, बृहदालोचना, लघु-आचार्यभक्ति।
- **चातुर्मासिक प्रतिक्रमण में—**सिद्धभक्ति, चारित्रभक्ति, प्रतिक्रमण-भक्ति, वीरभक्ति, चतुर्विंशतितीर्थंकरभक्ति, चारित्रालोचना, पंचमहागुरु-भक्ति, बृहदालोचना, लघु-आचार्यभक्ति।
- **वार्षिक प्रतिक्रमण में—**सिद्धभक्ति, चारित्रभक्ति, प्रतिक्रमणभक्ति, वीरभक्ति, चतुर्विंशति-तीर्थंकरभक्ति, चारित्रालोचना, पंचमहागुरुभक्ति, बृहदालोचना, लघु-आचार्यभक्ति।

❑❑❑